प्राप्ति-स्थान :

श्री आदिनाथ महाराज
दिगंबर जैन मंदिर ट्रस्ट,
४२६, शुक्रवार पेठ,
सोलापुर - ४१३ ००२ (महाराष्ट्र)

इ. स. १९८३
वीर निर्वाण सं. २५०९



प्रथमावृत्ति १०००
मूल्य : १०



मुद्रक :
कुमुदचंद्र फुलचंद शाह
मे. सन्मति मुद्रणालय,
१६६, शुक्रवार पेठ,
सोलापुर - ४१३ ००२

॥ समयपाहुड का विषय–क्रम ॥





समयपाहुड

मूलरचयिता-श्री कुंदकुंदाचार्य
संस्कृतटीका-तात्पर्यवृत्ति-टीकाकार-श्री जयसेनाचार्य

नमः समयसाराय

श्री जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति-मंगलाचरण-

वीतरागं जिनं नत्वा ज्ञानानंदैकसंपदम् ।
वक्ष्ये समयसारस्य वृत्तिं तात्पर्यसंज्ञिकाम् ॥

अथ शुद्धपरमात्मतत्त्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन विस्तारुचिशिष्यप्रतिबोधनार्थं श्री कुंदकुंदाचार्यदेवनिर्मिते समयसारप्राभृतग्रन्थे अधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन पातनिकासहितं व्याख्यानं क्रियते। तत्रादौ 'वंदित्तु सव्वसिद्धे' इति नमस्कारगाथामादिं कृत्वा सूत्रपाठक्रमेण प्रथमस्थले स्वतंत्रगाथाषट्कं भवति। तदनंतरं द्वितीयस्थले भेदाभेदरत्नत्रयप्रतिपादनरूपेण 'ववहारेणुवदिस्सदि' इत्यादिगाथाद्वयं। अथ तृतीयस्थले निश्चयव्यवहारश्रुतकेवलिव्याख्यानमुख्यत्वेन 'जो

श्लोकार्थः— मैं (श्री जयसेनाचार्य) वीतरागमय, और ज्ञानानंद एक संपदा स्वरूप जिन को नमस्कार कर समयसार की तात्पर्यनामकी वृत्ति— टीका को कहता हूँ।

टीकार्थः— यहां शुद्धात्मतत्त्वप्रतिपादनकी मुख्यतासे विस्तारमें रूचि रखनेवाले शिष्यों को प्रतिबोधनार्थ श्री कुंदकुंदाचार्यदेव के बनाये हुए समयसारप्राभृतग्रन्थमें अधिकारकी शुद्धिपूर्वक पीठिकासहित व्याख्यान किया जा रहा हैं। वहां आरंभमें 'वंदित्तु सव्वसिद्धे' इस प्रकार नमस्कारगाथासे प्रारंभ कर सूत्रपाठक्रमसे प्रथमस्थलमें छह स्वतंत्र गाथायें हैं। तदनंतर द्वितीयस्थलमें भेदाभेदरत्नत्रयका प्रतिपादन रूप 'ववहारेणुवदिस्सदि' इत्यादि दो गाथायें हैं।

हि सुदेण' इत्यादिसूत्रद्वयम् । अतः परं चतुर्थस्थले भेदाभेदरत्नत्रयभावनार्थं तथैव भावनाफल–प्रतिपादनार्थं च 'णाणह्मि भावणा' इत्यादिसूत्रद्वयम् । तदनंतरं पंचमस्थले निश्चयव्यवहार–नयद्वयव्याख्यानरूपेण 'ववहारोऽभूदत्थो' इत्यादिसूत्रद्वयम् । एवं चतुर्दशगाथाभिः स्थलपंचकेन समयसारपीठिकाव्याख्याने समुदायपातनिका । तद्यथा-अथ प्रथमसूत्तावद्गाथायाः पूर्वार्द्धेन मंगलार्थ–मिष्टदेवतानमस्कारमुत्तरार्धेन तु समयसारग्रंथव्याख्यानं करोमीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति ।

वंदित्तु सव्वसिद्धे, धुवममलमणोवमं गदिं पत्ते ।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं ॥ १ ॥

॥ आ. ख्या. १ ॥

तात्पर्यवृत्तिः– 'वंदित्तु' इत्यादि पदखंडनारूपेण व्याख्यानं क्रियते । वंदित्तु-निश्चयनयेन स्वस्मिन्नेवाराध्याराधकभावरूपेण निर्विकल्पसमाधिलक्षणेन भावनमस्कारेण, व्यवहारेण तु वचनात्मकद्रव्यनमस्कारेण वंदित्वा । कान् । सव्वसिद्धे-स्वात्मोपलब्धिसिद्धिलक्षणसर्वसिद्धान् । किं विशिष्टान् । पत्ते-प्राप्तान् । कां ? गदिं-सिद्धगतिं सिद्धपरिणतिं । कथंभूतां । धुवं टंकोत्कीर्ण–ज्ञायकैकस्वभावत्वेन ध्रुवामविनश्वरां । अमलं भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममलरहितत्वेन शुद्धस्वभाव–

तृतीयस्थलमें निश्चयश्रुतकेवली और व्यवहारश्रुतकेवली के कथन मुख्यत्वसे 'जो हि सुदेण' इत्यादि दो गाथायें हैं । इसके आगे चतुर्थस्थलमें भेदाभेदरत्नत्रय की भावना के लिये और भेदाभेदरत्नत्रय की भावना का फल कथन करने की दृष्टिसे 'णाणह्मि भावना' इत्यादि दो गाथायें हैं । इसके बाद पंचमस्थलमें निश्चयनय और व्यवहारनय के व्याख्यान रूपसे 'ववहारोऽभूदत्थो' इत्यादि दो गाथायें हैं । इसतरह चौदह गाथाओंद्वारा पांचस्थलोंसे समयसारपीठिका के व्याख्यानमें समुदायपातनिका है ।

उसका विस्तार अब प्रथम गाथाके पूर्वार्ध में मंगल के लिये इष्ट देवता को नमस्कार कर और उत्तरार्ध में समयसार ग्रंथका व्याख्यान करने की प्रतिज्ञाका अभिप्राय मनमें धारण कर प्रथम सूत्र कहते है–

गाथार्थः– [**धुवं**] ध्रुव [**अमलं**] अमल-निर्मल [**अणोवमं**] अनुपम इन तीन विशेषणों से युक्त [**गदिं**] गतिको [**पत्ते**] प्राप्त हुअे [**सव्वसिद्धे**] सर्व सिद्धों को [**वंदित्तु**] नमस्कार करके [**ओ**] हे भव्य ! [**सुदकेवलीभणिदं**] श्रुतकेवलियोंके द्वारा कथित [**इणं**] यह [**समयपाहुडं**] समयप्राभृत [**वोच्छामि**] कहूँगा ।

टीकार्थः– 'वंदित्तु' इत्यादि पदखंडनारूपसे कथन किया जा रहा है– **वंदित्तु** निश्चयनयसे अपनेमें ही आराध्य आराधकभावसे, निर्विकल्पसमाधि है लक्षण जिसका ऐसे भाव-नमस्कारके द्वारा और व्यवहारनयसे वचनात्मक द्रव्यनमस्कार द्वारा वंदन कर । किनको ? सव्वसिद्धे स्वात्मोपलब्धि है लक्षण जिनका ऐसे सर्व सिद्धोंको । **गदिं पत्ते** जो सिद्ध गतिको प्राप्त हो गये हैं । **ध्रुवम्** वह परिणति कैसी है– टंकोत्कीर्णज्ञायक एक स्वभाव होनेसे ध्रुव है,

सहितत्वेन च निर्मलां। अथवा **अचलं** इति पाठांतरे द्रव्यक्षेत्रादिपंचप्रकारसंसारभ्रमणरहितत्वेन स्वस्वरूपनिश्चलत्वेन च चलनरहितामचलां। **अणोवमं** निखिलोपमानरहितत्वेन निरुपमामद्भुत–स्वस्वभावसहितत्वेन अनुपमां। एवं पूर्वार्धेन नमस्कारं कृत्वापरार्धेन संबंधाभिधेयप्रयोजनसूचनार्थं प्रतिज्ञां करोति। **वोच्छामि** वक्ष्यामि। किं **समयपाहुडं** समयप्राभृतं सम्यग् अयःबोधो यस्य भवति स समय आत्मा, अथवा समं एकीभावेनायनं गमनं समयः। प्राभृतं सारं सारः शुद्धावस्था समयस्यात्मनः प्राभृतं समयप्राभृतं, अथवा समय एव प्राभृतं समयप्राभृतं। **इणं** इदं प्रत्यक्षीभूतं। ओ अहो भव्याः। कथंभूतं **सुदकेवलीभणिदं** प्राकृतलक्षणबलात्केवलीशब्ददीर्घत्वं। श्रुते परमागमे केवलिभिः सर्वज्ञैर्भणितं। अथवा श्रुतकेवलिभणितं गणधरदेवकथितमिति। संबंधाभिधेयप्रयोजनानि कथ्यन्ते। व्याख्यानं वृत्तिग्रन्थः व्याख्येयं तत्प्रतिपादकसूत्रमिति तयोस्संबंधो व्याख्यानव्याख्येयसंबंधः। सूत्रमभिधानं सूत्रार्थोऽभिधेयः तयोः संबंधोऽभिधानाभिधेयसंबंधः। निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानेन शुद्धात्मपरिज्ञानं प्राप्तिर्वा प्रयोजनमित्यभिप्रायः ॥ १ ॥

अविनश्वर है। अमलं भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममलसे रहित होने से और शुद्धस्वभावसहित होने से निर्मल है। अथवा **अचलं** आत्मख्यातिमें अचलं ऐसा पाठ है, उसका अर्थ द्रव्यक्षेत्रकालभाव और भव ऐसे पांच प्रकारके संसार भ्रमणसे रहित है और स्वस्वरूप में निश्चल होने से चलपने से रहित अचल है। **अणोवमं** निखिलउपमा से रहित होने से निरूपम अद्भूत स्वस्वभाव–सहितत्व होनेसे अनुपम ऐसी सिद्ध अवस्था है। इस तरह पूर्वार्द्ध से नमस्कार कर उत्तरार्द्ध से संबंध अभिधेय प्रयोजन की सूचना के लिये प्रतिज्ञा करते है कि, **वोच्छमि** कहूँगा। क्या कहूँगा? **समयपाहुडं** समयप्राभृत कहूँगा। समयप्राभृत याने सम्यक्-समीचीन अय-बोध (ज्ञान) जिसको है ऐसा समय याने आत्मा है। अथवा सम् **समं** याने एकीभावसे अयनं-गमनं है जिसका, याने जानना और परिवर्तन जहां होता है ऐसा आत्मा समय है। प्राभृत का अर्थ सार या शुद्ध अवस्था ऐसा है। समयका जो सार या आत्माका जो सार वह समयप्राभृत है। अथवा समयही प्राभृत (रत्न वा नजराणास्वरूपमौल्यवान् वस्तु) वह समयप्राभृत है। **इणं** यह प्रत्यक्ष हमारे अनुभूत है। **ओ** अहो भव्यजन! वह समयप्राभृत प्रत्यक्ष है। यहाँ गाथामें जो 'केवली' शब्द है वह प्राकृत भाषाके नियम अनुसार दीर्घ है। वह श्रुत या परमागम, सर्वज्ञ वा श्रुतकेवलि–द्वारा अथवा गणधरदेवके द्वारा कथन किया हुआ है।

अव संबंध, अभिधेय और प्रयोजन कहते है– व्याख्यान याने ग्रंथकी टीका, व्याख्येय याने उसका अभिधान-प्रतिपादन करनेवाले सूत्र, इस तरह दोनोंका व्याख्यान और व्याख्येय संबंध है। सूत्र वाचक है और सूत्रका अर्थ अभिधेय-वाच्य है। इन दोनोंका अभिधान अभिधेय संबंध है। इसका प्रयोजन यह है कि, निर्विकार स्वसंवेदनज्ञानसे शुद्धात्माको जानना अथवा शुद्धात्माकी अनुभूति (प्राप्ति)।

भावार्थः– यहां यह बात स्पष्ट है कि, अपना शुद्ध पंचमपारिणामिकभावस्वरूप आत्मा ही आराधना करनेके लिये योग्य है और अपना आत्मा ही आराधक है। और शुद्धात्मानूभूति की प्राप्ति करना यह प्रयोजन है

अथ गाथापूर्वार्द्धेन स्वसमयमपरार्द्धेन परसमयं च कथयामीत्यभिप्रायं मनसि संप्रधार्य सूत्रमिदं निरूपयति–

जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदं तं हि ससमयं जाण।
पुग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं ॥ २ ॥

॥ आ. ख्या.– २ ॥

श्री जयसेनाचार्यजीने यहां अध्यात्मभाषा (निश्चयनय) की और आगमभाषा की, (व्यवहारनयकी) तौलनिकता दिखाकर अविरोध दिखाया है।

अध्यात्मभाषा	आगमभाषा
१) अपने ही ध्रुव, निर्मल, अचल, अनुपम पंचमपारिणामिक भावको वंदन करके	१) ध्रुव, निर्मल, अचल, अनुपम, पंचम गतिको प्राप्त सवसिद्धोंको वंदन करके
२) अपने ही शुद्धात्मानुभूति द्वारा प्राप्त हुआ समयपाहुड (समयसार)	२) सर्वज्ञ, श्रुतकेवलि द्वारा कथन किया हुआ समयपाहुड
३) स्वानुभूति (समयसार) प्रगट करूंगा।	३) कथन करूंगा

आगमभाषा (व्यवहारनय) अभूतार्थ है और अध्यात्मभाषा (निश्चयनय) भूतार्थ है। जिसको अध्यात्म लक्ष्य में नहीं आया उसकी व्यवहार क्रिया मोक्षमार्ग में कार्यकारी नही है॥ १॥

अब गाथाके पूर्वार्द्धसे स्वसमय और गाथाके उत्तरार्द्धसे परसमयका कथन करता हूँ, ऐसा अभिप्राय मनमें धारण करके यह गाथा कहते है–

गाथार्थ– हे भव्य ! [**जीवो**] जो जीव [**चरित्तदंसणणाणट्ठिदं**] चारित्र, दर्शन और ज्ञानमें स्थित है [**तं**] उसे [**हि**] निश्चयसे [**ससमयं**] स्वसमय [**जाण**] जानो [**च**] और जो जीव [**पुग्गलकम्मपदेसट्ठिदं**] पुद्‌गलकर्मके प्रदेशोंमें स्थित है [**तं**] उसे [**परसमयं**] परसमय [**जाण**] जानो।

टीकार्थ– जो शुद्धनिश्चयनयसे शुद्धबुद्ध एक स्वभावरूप निश्चय प्राणके द्वारा तथा अशुद्धनिश्चयनयसे क्षायोपशमिक अशुद्धभावके द्वारा और असद्‌भूत व्यवहारनयसे यथासंभव द्रव्यप्राणोंद्वारा जो वर्तमानमें जीवित है, आगे जीवित रहेगा और जो पूर्वमें जीवित था वह जीव है। और वह जीव जब चारित्रदर्शनज्ञानमें-स्वभावमें (अभेदरत्नत्रयमें) स्थित है उससमय वही जीव निश्चयसे स्वसमय है, ऐसा जानो। उसका विस्तार करते है– अपने विशुद्धज्ञान दर्शन स्वभाव-रूप निजपरमात्मामें जो रुचि वह सम्यग्दर्शन है, और उसीमें जो रागादिरहित स्वसंवेदन है वह सम्यग्ज्ञान है और जो निश्चलस्वानुभूति है वह वीतराग चारित्र है, इस प्रकार कहे गये लक्षणवाले निश्चयरत्नत्रयसे परिणत जीवपदार्थको, हे शिष्य ! स्वसमय जानो। और जो जीव

जीवो चरित्त इत्यादि– **जीवो** शुद्धनिश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावनिश्चयप्राणेन तथैवाशुद्धनिश्चयेन क्षायोपशमिकाशुद्धभावप्राणैरसद्‌भूतव्यवहारेण यथासंभवद्रव्यप्राणैश्च जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीवः **चरित्तदंसणणाणट्ठिदं तं हि ससमयं जाण** स च जीवश्चारित्रदर्शनज्ञानस्थितो यदा भवति तदा काले तमेव जीवं हि स्फुटं स्वसमयं जानीहि । तथाहि-विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे निजपरमात्मनि यद्रुचिरूपं सम्यग्दर्शनं तत्रैव रागादिरहितस्वसंवेदनं ज्ञानं तथैव निश्चलानुभूतिरूपं वीतरागचारित्रमित्युक्तलक्षणेन निश्चयरत्नत्रयेण परिणतजीवपदार्थं हे शिष्य स्वसमयं जानीहि । **पुग्गलकम्मुवदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं** पुद्‌गलकर्मोपदेशस्थितं च तमेव जानीहि परसमयं । तद्यथा-पुद्‌गलकर्मोदयेन जनिता ये नारकाद्युपदेशा व्यपदेशाः संज्ञाः पूर्वोक्तनिश्चयरत्नत्रयाभावात्तत्र यदा स्थितो भवत्ययं जीवस्तदा तं जीवं परसमयं जानीहीति स्वसमयपरसमयलक्षणं ज्ञातव्यम् ॥ २ ॥

अथ स्वगुणैकत्वनिश्चयगतशुद्धात्मैवोपादेयः कर्मबंधेन सहैकत्वगतो हेय इति, अथवा स्वसमय एव शुद्धात्मनः स्वरूपं न पुनः परसमय इत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा, अथवास्य सूत्रस्यानंतरं सूत्रमिदमुचितं भवतीति निश्चित्य विवक्षितसूत्रं प्रतिपादयतीति पातनिकालक्षणं सर्वत्र ज्ञातव्यं ।

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोए ।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होई ॥ ३ ॥

॥ आ. ख्या.– ३ ॥

पुद्‌गलकर्म प्रदेशोंमें स्थित है उस जीवकोही परसमय जानो । उसका विस्तार पुद्‌गलकर्मसे उत्पन्न होनेवाली नारकादि संज्ञावाली पर्यायें है, पूर्वोक्त निश्चयरत्नत्रयका अभाव होने से उन नारकादिपर्यायोंमें जब वह जीव स्थित है तब वह जीव परसमय है, ऐसा जानो । इसतरह स्वसमयका लक्षण और परसमयका लक्षण जानना चाहिये ।

भावार्थ– जो जीव अपने अभेदरत्नत्रयकी अनुभूतिमें है वह स्वसमय है और जो जीव पर्यायकी अनुभूतिमें है वह परसमय है । चतुर्थ गुणस्थानसे सिद्धतकके जीव अभेद रत्नत्रय स्वसमय–सम्यग्दर्शनवाले है । एक से तीन तकके गुणस्थानवाले जीव परसमय–मिथ्यादर्शनवाले है ॥ २ ॥

अब अपने गुणोंके साथ एकत्वनिश्चयगत शुद्धात्मा (**पारिणामिक भाव**) ही उपादेय है और कर्मबंधके साथ कथंचित् एकपनाको प्राप्त हुआ आतमा हेय है । अथवा स्वसमय ही शुद्धात्माका स्वरूप है, परसमय यह शुद्धात्माका स्वरूप नहीं है यह अभिप्राय मनमें धारण कर अथवा इस सूत्रके अनंतर यही सूत्र उचित है ऐसा निश्चय कर विवक्षित सूत्र कहते है ऐसी उत्थानिका सर्वत्र जानना चाहिये ।

गाथार्थ– [**एयत्तणिच्छयगदो**] एकत्वनिश्चय में प्राप्त जो [**समओ**] समय है वह [**लोए**] लोकमें [**सव्वत्थ**] सर्वत्र [**सुंदरो**] सुंदर है [**तेण**] इसलिए [**एयत्ते**] एकत्वमें [**बंधकहा**] बंधकथा [**विसंवादिणी**] विसंवाद-विरोध जनक [**होई**] है ।

एयत्तणिच्छयगदो स्वकीयशुद्धगुणपर्यायपरिणतः, अभेदरत्नत्रयपरिणतो वा एकत्वनिश्चयगतः **समओ** समयशब्देनात्मा, कस्माद्धेतोः सम्यगयते गच्छति परिणमति। कान्? स्वकीयगुणपर्यायानिति व्युत्पत्तेः। **सव्वत्थसुंदरो** सर्वत्र समीचीनः। क्व? **लोगे** लोके अथवा सर्वत्रैकेंद्रियाद्यवस्थासु शुद्धनिश्चयनयेन सुन्दर उपादेय इति। **बंधकहा** कर्मबंधजनितगुणस्थानादिपर्यायाः। **एयत्ते** एकत्वे तन्मयत्वे या बंधकथा प्रवर्तते **तेण** तेन पूर्वोक्तजीवपदार्थेन सह सा **विसंवादिणी** विसंवादी कोऽर्थः विसंवादिनी कथा। प्राकृतलक्षणवलात् पुल्लिगे स्त्रीलिंगनिर्देशः। विसंवादिनी असत्या **होदि** भवति। शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धजीवस्वरूपं न भवतीत्यर्थः। ततः स्थितं स्वसमय एवात्मनः स्वरूपमिति ॥ ३ ॥

अथैकत्वपरिणतं शुद्धात्मस्वरूपं सुलभं न भवतीत्याख्याति

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलभो विहत्तस्स ॥ ४ ॥

॥ आ. ख्या. ४ ॥

टीकार्थ– एयत्तणिच्छयगदो अपने ही शुद्धगुणपर्यायमें परिणत हुआ अथवा अभेदरत्नत्रयमें परिणत हुआ, निश्चयसे एकताको प्राप्त हुआ याने पारिणामिक भाववाला **समओ** यह आत्मा है, यहां समय शब्दका अर्थ आत्मा लेना ठीक है क्योंकि उसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है 'सम्यक् अयते गच्छति परिणमति कान् स्वकीयगुणपर्यायान्' अर्थात् जो अपने ही गुणपर्यायोंको (**गुणपर्यायोंमे**) प्राप्त होता है, वह समय याने आत्मा है। **सव्वत्थ सुंदरो** वह आत्मा सर्वत्र सर्वप्रकारसे समीचीन – सुंदर है। कहां? लोए लोकमें – संसारमें अथवा एकेंद्रिय विकलेंद्रिय असंज्ञी पंचेद्रिय संज्ञीपंचेंद्रिय आदि सब अवस्थाओंमें–पर्यायोंमें शुद्धनिश्चयनयसे सुंदर है, उपादेय है **बंधकहा** – कर्मबंधके सान्निध्यमें उत्पन्न होनेवाली गुणस्थानादिपर्यायें हैं। **एयत्ते** एकत्व स्वभावमें जो बंधकथा प्रवर्तती है। पूर्वोक्त जीव पदार्थके साथ वह (**बंधकथा**) **तेण विसंवादिणी** उससे विसंवाद–विरोध पैदा करनेवाली **होदि** होती है अर्थात् असत्य है। क्योंकि शुद्धनिश्चयनयसे वह (**विसंवादिनी कथा**) जीवका शुद्धजीवस्वरूप नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि स्वसमयही आत्मा का स्वरूप है।

[प्राकृत लक्षण (**व्याकरण**) के बलसे पुल्लिग होनेपर स्त्रीलिंग निर्देश किया है।]

भावार्थ– अपने पारिणामिकभावमें स्वसमय और परसमय इनकी कथा नहीं है ॥ ३ ॥

अब एकत्वपरिणत शुद्धात्मस्वरूप सुलभ नहीं है ऐसा कहते है–

गाथार्थ– [**सव्वस्स वि**] सर्व लोकको [**कामभोगबंधकहा**] कामभोगसंबंधी बंधकी कथा तो [**सुदपरिचिदाणुभूदा**] सुननेमें आ गई है, परिचयमें आ गई है, और अनुभवमे भी आ गई है इसलिये सुलभ है [**विहत्तस्स**] भिन्न आत्माके [**एयत्तस्सुवलंभो**] एकत्व स्वभावकी प्राप्ति कभी न तो सुनी है, न परिचयमें आई है और न अनुभवमें आई है, इसलिये (**णवरि**), केवल एकमात्र वही [**ण सुलभो**] सुलभ नहीं है।

"सुदपरिचिदाणुभूदा" इत्यादि **सुदा** श्रुता अनंतशो भवति । **परिचिदा** परिचिता सा पूर्वमनंतशो भवति **अणुभूदा** अनुभूतानंतशो भवति कस्य **सव्वस्स वि** सर्वस्यापि जीवलोकस्य । कासौ ? **कामभोगबंधकहा** कामरूपभोगाः कामभोगाः अथवा कामशब्देन स्पर्शनरसनेंद्रियद्वयं भोगशब्देन घ्राणचक्षुःश्रोत्रत्रयं तेषां कामभोगानां बंधः संबंधस्तस्य कथा । अथवा बंधशब्देन प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधास्तत्फलं च नरनारकादिरूपं भण्यते । कामभोगबंधानां कथा कामभोगबंधकथा, यतः पूर्वोक्तप्रकारेण श्रुतपरिचितानुभूता भवति ततो न दुर्लभा किन्तु सुलभैव । **एयत्तस्स** एकत्वस्य सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैक्यपरिणतिरूपनिर्विकल्पसमाधिबलेन स्वसंवेद्यशुद्धात्मस्वरूपस्य तस्यैकत्वस्य **उवलंभो** उपलम्भः प्राप्तिर्लाभः **णवरि** केवलं अथवा नवरि किन्तु **ण सुलभो** नैव सुलभः । कथंभूतस्यैकत्वस्य । **विभत्तस्स** विभक्तस्य रागादिरहितस्य । कथं न सुलभ इति चेत्, श्रुतपरिचितानुभूतत्वाभावादिति ॥ ४ ॥

टीकार्थ– सब संसारी जीवोंको काम-भोग-बंधकथा अनंत बार सुननेमें आई है, अनंत वार परिचयमें आई है, अनंत वार अनुभवमें आई है, यहां कामरूपभोग ही कामभोग है, काम शब्दसे स्पर्शन रसन इन दो इंद्रियोंके विषय लिये हैं, और भोग शब्दसे घ्राण, चक्षु व श्रोत्र इन तीन इंद्रियों के विषय लिये हैं, उन काम-भोगोंके संबंधकी कथा वह कामभोगबंध कथा है । अथवा बंध शब्दसे प्रकृति स्थिति अनुभाग व प्रदेश बंध और उनका फल जो नरनारकादिरूप कहा जाता है । इसतरह कामभोगबंधकी जो कथा वह कामभोग–बंध–कथा है । इसलिये पूर्वोक्त प्रकारसे श्रुत परिचित और अनुभूत होनेसे वह कथा दुर्लभ नहीं, किन्तु सुलभ ही है । **एयत्तस्स** एकत्वकी याने सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी ऐक्य परिणतिरूप निर्विकल्प समाधि के वलसे जो स्वसंवेद्यशुद्धात्मस्वरूपके एकत्व की उपलब्धि, प्राप्ति या लाभ होना केवल (अथवा परंतु) सुलभ नहीं है ।

शंका– कैसे एकत्वकी प्राप्ति सुलभ नहीं है !

समाधान– विभक्त याने रागादिसे रहित (**भिन्न**) एकत्वकी सुलभता नही है ।

शंका– वह कैसे सुलभ नही है ?

समाधान– वह स्वएकत्व रूप स्वानुभूति सुलभ नहीं क्योंकि वह कभी सुनी नहीं और वह कभी परिचित नहीं और उसका कभी अनुभव किया नहीं है ॥ ४ ॥

अब एकत्व सुलभ नही है इसलिये उसकाही कथन किया जा रहा है–

गाथार्थ– [**तं**] उस [**एयत्तविभत्तं**] एकत्व विभक्त आत्माको [**हं**] मैं [**अप्पणो**] आत्माके [**सविहवेण**] निजवैभवसे [**दाएहं**] दिखाता हूँ, [**जदि**] यदि मैं [**दाएज्ज**] दिखाऊं तो [**पमाणं**] प्रमाण [**स्वीकार**] करना, [**चुक्किज्ज**] और यदि कहीं चूक जाऊं तो [**छलं**] छल [**ण**] न [**घित्तव्वं**] ग्रहण करना ।

अथ यस्मादेकत्वं सुलभं न भवति तस्मात्तदेव कथ्यते–

तं एयत्तविभत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण ।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्किज्ज छलं ण घित्तव्वं ॥ ५ ॥

॥ आ. ख्या. ५ ॥

तं तत्पूर्वोक्तं **एयत्तविभत्तं** एकत्वविभक्तं अभेदरत्नत्रयैकपरिणतं मिथ्यात्वरागादिरहितं परमात्मस्वरूपमित्यर्थः । **दाएहं** दर्शयेहं केन **अप्पणो सविहवेण** आत्मनः स्वकीयमिति विभवेन आगमतर्कपरमगुरूपदेशस्वसंवेदनप्रत्यक्षेणेति । **जदि दाएज्ज** यदि दर्शयेयं तदा **पमाणं** स्वसंवेदनज्ञानेन परीक्ष्य प्रमाणीकर्तव्यं भवद्भिः । **चुक्किज्ज** यदि च्युतो भवामि **छलं ण घित्तव्वं** तर्हि छलं न ग्राह्यं दुर्जनवदिति ॥ ५ ॥

टीकार्थ– उस पूर्वोक्त एकत्व विभक्त (**विधिरूप कथनसे**) अभेदरत्नत्रयएकपरिणत और (**निषेधरूप कथनसे**) मिथ्यात्वरागादिसे रहित ऐसा परमात्माका स्वरूप (**पारिणामिक भावस्वरूप आत्मा**) है । याने औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भावस्वरूप आत्मा का यहाँ कथन नही है । उस परमात्मस्वरूपको (**एकत्वविभक्त आत्माके स्वरूपको**) दिखलाता हूँ ।

शंका– किसकेद्वारा परमात्माका स्वरूप दिखलाते है ।

समाधान– अध्यात्मभाषासे	**आगमभाषासे**
अपने स्वसंवेदन प्रत्यक्ष स्वानुभूतिके वैभवसे दिखाता हूँ ।	आगम, तर्क और गुरुउपदेशसे दिखाता हूँ ।

हे भव्यो ! इसका आप अपने स्वसंवेदनज्ञानसे (**स्वानुभूतिसे**) परीक्षा करके प्रमाण करना याने स्वीकार करना चाहिये । यदि कहाँ भूल हो जाय तो दुर्जनके तरह छल नहीं ग्रहण करना ॥ ५ ॥

तो फिर 'यह शुद्धात्मा कौन है ? याने उसका स्वरूप क्या हैं ?' ऐसा प्रश्न पूछनेपर श्री आचार्य उत्तर देते है–

गाथार्थ– [**जो**] जो [**अपमत्त**] अप्रमत्त (**निर्विकल्पपर्यायस्वरूप**) [**ण**] नहीं और जो [**पमत्त**] प्रमत्त [**सविकल्पपर्यायरूप**] [**वि**] भी [**ण**] नहीं [**दु**] लेकिन [**जाणगो**] ज्ञायक [**भावो**] भाव है [**एवं**] इसप्रकार [**सुद्धा**] उसे शुद्ध [**भणंति**] कहते है [**च**] और [**जो**] जो [**णादा**] ज्ञाता है [**सोदु**] वह तो [**सो**] वह ज्ञाता [**एव**] ही है [**तु**] अन्य कोई नहीं ।

अथ कोऽयं शुद्धात्मेति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति–

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो ।
एवं भणंति सुद्धा णादा जो सो दु सो चेव ॥ ६ ॥

॥ आ. ख्या.– ६ ॥

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुभाशुभपरिणमनाभावान्न भवत्यप्रमत्तः प्रमत्तश्च । प्रमत्तशब्देन मिथ्यादृष्ट्यादिप्रमत्तांतानि षड्गुणस्थानानि, अप्रमत्तशब्देन पुनरप्रमत्ताद्ययोग्यंतान्यष्टगुणस्थानानि गृह्यन्ते । स कः कर्ता । **जाणगो दु जो भावो** ज्ञायको ज्ञानस्वरूपो योऽसौ भावः पदार्थः शुद्धात्मा । **एवं भणंति सुद्धा** शुद्धनयावलंबिनः, तर्हि किं **भवति णादा जो सो दु सो चेव** ज्ञाता शुद्धात्मा यः कथ्यते स तु स चैव ज्ञातैवेत्यर्थः ॥ ६ ॥

इति स्वतंत्रगाथाषट्केन प्रथमस्थलं गतम् । अथानंतरं तथाप्रमत्तादिगुणस्थानविकल्पा जीवस्य व्यवहारनयेन विद्यन्ते शुद्धद्रव्यार्थिकनिश्चयेन न विद्यन्ते तथा दर्शनज्ञानचारित्र–विकल्पोपीत्युपदिशति–

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्तदंसणं णाणं ।
ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥ ७ ॥

॥ आ. ख्या.– ७ ॥

टीकार्थ– शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे (पारिणामिक भावकी दृष्टीसे अशेषधर्मात्मक) आत्मा के शुभाशुभ परिणमनका अभाव होनेसे वह अप्रमत्त और प्रमत्त नहीं है । यहां प्रमत्त शब्दसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर प्रमत्तविरत गुणस्थानतक छह गुणस्थान और अप्रमत्तशब्दसे अप्रमत्तगुणस्थानसे अयोगकेवली तक आठ गुणस्थान ग्रहण किये जाते हैं । यह शुद्धात्मा केवल ज्ञायक ज्ञानस्वरूप जो भाव याने पदार्थ है, ऐसा शुद्धनयका अवलंबन करनेवाले कहते हैं । वह कैसा है ? तो, उसे ज्ञाता या शुद्धात्मा कहा जाता है, वह वही है याने ज्ञाता ही है, ऐसा भाव है ।

भावार्थ– शुद्धद्रव्यार्थिक नयसे सविकल्प और निर्विकल्प पर्यायस्वरूप नहीं ऐसा ज्ञायकस्वभाववाला सत् द्रव्य, ऐसा जो शुद्ध (ज्ञातः) ज्ञात हुआ, याने जाना गया, याने अनुभूतिमें आगया, वह (ज्ञात हुआ) वह ही है याने ज्ञायक स्वभाव ही है ऐसा कहते हैं । श्री आचार्यदेवने गाथा नं. ५ में कहा था कि, " स्वानुभूतिसे एकत्वविभक्त या अभेदरत्नत्रयमय जीव कहूंगा " वह उन्होंने यहां कह दिया है ॥ ६ ॥

इस प्रकार प्रथम स्थलमें छह गाथाऐं हो गयी है । इस के बाद अप्रमत्तादि गुणस्थानके विकल्प व्यवहारनयसे जीवके है और निश्चयनयसे अप्रमत्तादि गुणस्थानके (भेद) जीवके नहीं है । वैसे दर्शन ज्ञान चारित्र विकल्प भी जीवके नहीं है, ऐसा उपदेश देते हैं ।

गाथार्थ– [**णाणिस्स**] ज्ञानीके [**चरित्तदंसणं णाणं**] चारित्र, दर्शन, ज्ञान इस-तरहसे गुणभेद [**ववहारेण**] व्यवहार द्वारा [**उवदिस्सदि**] कहे जाते हैं । निश्चयसे

ववहारेण सद्भूतव्यवहारनयेन उवदिस्सदि उपदिश्यते कथ्यते। कस्य। णाणिस्स ज्ञानिनो जीवस्य। किं चरित्तदंसणं णाणं चारित्रदर्शनज्ञानस्वरूपं। ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं शुद्धनिश्चयनयेन न पुनर्ज्ञानं न चारित्रं न दर्शनं। तर्हि किमस्तीति चेत् जाणगो ज्ञायक: शुद्धचैतन्यस्वभाव:। सुद्धो शुद्ध एव रागादिरहित इति। अयमत्रार्थ: यथा निश्चयनयेनाभेदरूपेणाग्निरेक एव पश्चाद्भेदरूपव्यवहारेण दहतीति दाहक: पचतीति पाचक: प्रकाशं करोतीति प्रकाशक: इति व्युत्पत्त्या विषयभेदेन त्रिधा भिद्यते। तथा जीवोऽपि निश्चयरूपाभेदनयेन शुद्धचैतन्यरूपोऽपि भेदरूपव्यवहारनयेन जानातीति ज्ञानं पश्यतीति दर्शनं चरतीति चारित्रमिति व्युत्पत्त्या विषयभेदेन त्रिधा भिद्यते इति ॥ ७ ॥

अथ यदि शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्य दर्शनज्ञानचारित्राणि न संति तर्हि परमार्थ एवैको वक्तव्यो न व्यवहार इति चेत्तन्न–

जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं ॥ ८ ॥

॥ आ. ख्या. ८ ॥

[ण वि णाणं] ज्ञान भी नहीं है, [ण चरित्तं] चारित्र भी नहीं है और [ण दंसणं] दर्शन भी नहीं है, ज्ञानी तो एक [जाणगो सुद्धो] शुद्ध ज्ञायक ही है।

टीकार्थ– सद्भूत व्यवहारनयसे कहते है, उपदेश देते है, कि, जीवका चारित्र, दर्शन, ज्ञान स्वरूप है। फिर शुद्धनिश्चयनयसे न ज्ञान है, न चारित्र है, न दर्शन है।

शंका– तो ज्ञानीका स्वरूप क्या है ?

समाधान– ज्ञायक शुद्ध चैतन्यस्वभाव ज्ञानी का स्वरूप है। शुद्ध याने एक-अभेद–भेदरहित तथा रागादिरहित है।

इसका अर्थ यह है कि, निश्चयनयसे, अभेदरूपसे अग्नि एक ही है लेकिन पश्चात् भेदरूपसे दहन करनेवाला दाहक, पकानेवाला पाचक, प्रकाश करनेवाला प्रकाशक, ऐसे व्युत्पत्तिके विषयभेदसे तीन प्रकारका कहा जाता है। उसी तरह जीव भी निश्चयरूप अभेदनयसे शुद्ध चैतन्यरूप एक अभेद होते हुओ भी भेदरूप व्यवहारनयसे जीव जाननेवाला है इसलिये ज्ञान स्वरूप है, देखनेवाला है इसलिये दर्शन स्वरूप है, आचरण करनेवाला है इसलिये चारित्र स्वरूप है, ऐसे व्युत्पत्तिके विषयभेदसे तीन प्रकारका कहा जाता है ॥ ७ ॥

फिर शंकाकार पूछता है कि, यदि शुद्धनिश्चयनयसे दर्शन, ज्ञान और चारित्र जीवके नहीं है, तो एक परमार्थका (शुद्धनिश्चयनयका) ही कथन करना योग्य है, व्यवहारनयका कथन नहीं करना चाहिये। इसप्रकार पूछनेपर आचार्य उत्तर देते है ऐसा नहीं है क्योंकि–

जह ण वि सक्कं यथा न शक्यः। कोऽसौ। **अणज्जो** अनार्यो म्लेच्छः। किं कर्तुं। **गाहेदुं** अर्थग्रहणरूपेण संबोधयितुं। कथं? **अणज्जभासं विणा** अनार्यभाषा म्लेच्छभाषा तां विना दृष्टांतो गतः। इदानीं दार्ष्टांतमाह – **तह** तथा **ववहारेण विणा** व्यवहारनयेन विना **परमत्थुवदेसणमसक्कं** परमार्थोपदेशनं कर्तुमशक्यं इति। अयमत्राभिप्रायः – यथा कश्चिद्ब्राह्मणो यतिर्वा म्लेच्छपल्ल्यां गतः तेन नमस्कारे कृते सति ब्राह्मणेन यतिना वा स्वस्तीति भणिते स्वस्त्यर्थमविनश्वरत्वमजानन्सन् निरीक्षते मेष इव। तथायमज्ञानिजनोप्यात्मेति भणिते, सत्यात्मशब्दस्यार्थमजानन्सन् भ्रांत्या निरीक्षत एव। यदा पुनर्निश्चयव्यवहारनयज्ञपुरुषेण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि जीवशब्दस्यार्थ इति कथ्यते तदा संतुष्टो भूत्वा जानातीति। एवं भेदाभेदरत्नत्रयव्याख्यानमुख्यतया गाथाद्वयेन द्वितीयं स्थलं गतम् ॥ ८ ॥

अथ पूर्वगाथायां भणितं व्यवहारेण परमार्थो ज्ञायते ततस्तमेवार्थं कथयति–

जो हि सुदेणभिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोगप्पदीवयरा ॥ ९ ॥

॥ आ. ख्या. ९ ॥

गाथार्थ– [**जह**] जैसे [**अणज्जो**] अनार्य को [**अणज्जभासं**] अनार्यभाषाके [**विणा**] विना [**गाहेदुं**] वस्तु का स्वरूप ग्रहण करानेके लिये [**ण वि सक्कं**] समर्थ नहीं है। [**तह**] उसीप्रकार [**ववहारेण**] व्यवहारके [**विणा**] विना [**परमत्थुवदेसणं**] परमार्थका उपदेश करना [**असक्कं**] अशक्य है।

टीकार्थ– अनार्य व्यक्तिको अनार्य भाषाके विना शब्दका अर्थ ग्रहण कराना अशक्य है। यह दृष्टांत है। अब दार्ष्टांत इसतरह है, व्यवहारनयके विना परमार्थका उपदेश ग्रहण कराना अशक्य है। इसका भावार्थ यह है कि, कोई ब्राह्मण अथवा यति म्लेच्छ गलीमें गया, वहां किसी म्लेंच्छने जब उन्हें नमस्कार किया, उसी समय ब्राह्मणने वा यतिने उसे 'स्वस्ति' इसप्रकार आशीर्वादात्मक वचन कह दिया तो, 'स्वस्ति' शब्दका अर्थ जो 'अविनश्वरत्व हो, कल्याण हो' इसको वह न जाननेसे वह मेंढेके समान देखते रहता है ('**ये क्या कह रहे है?**') उसी तरह यह अज्ञानी जन भी 'आत्मा' ऐसा कहनेपर आत्मा शब्दका अर्थ नहीं जानते हैं। और भ्रांतिसे (**भ्रमसे**) देखते रहते हैं कि, ये क्या कह रहे हैं? और जब निश्चयनय और व्यवहारनयको जाननेवाले आचार्य आत्मा (**जीव**) याने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रमय ऐसा द्रव्य है ऐसा कथन करनेके बाद वह संतुष्ट होकर जानता है। (**उसे परमानंद होता है**) इसतरह भेद अभेद रत्नत्रयके कथनकी मुख्यतासे दो गाथाओंसें द्वितीय स्थल हुआ ॥ ८ ॥

व्यवहारसे परमार्थ जाना जाता है (**याने व्यवहारके विना परमार्थका कथन अशक्य है**) ऐसा जो पूर्व गाथामें कहा था उसी अर्थ को ही दृढ करनेके लिये कहते हैं–

जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सव्वं जह्मा सुदकेवली तह्मा ॥ १० ॥

॥ आ. ख्या. १० ॥

जो यः कर्ता। हि स्फुटं। सुदेण भावश्रुतेन स्वसंवेदनज्ञानेन निर्विकल्पसमाधिना करणभूतेन। अभिगच्छदि अभि समंताज्जानात्यनुभवति। कं। अप्पाणं आत्मानं इणं इमं प्रत्यक्षीभूतं। तं पुरुषं। सुदकेवलिं निश्चयश्रुतकेवलिनं। इसिणो परमऋषयः भणंति कथयंति लोगप्पदीवयरा लोकप्रदीपकराः लोकप्रकाशका इति। अनया गाथया निश्चयश्रुतकेवलिलक्षणमुक्तम्। अथ सुदणाणमित्यादि जो यः कर्त्ता सुदणाणं द्वादशांगं द्रव्यश्रुतं सव्वं सर्वं परिपूर्णं जाणदि जानाति

गाथार्थ- [जो] जो जीव [हि] निश्चयसे (वास्तवमें) [सुदेण तु] श्रुतज्ञानके द्वारा [इणं] इस अनुभवगोचर [केवलं सुद्धं] केवल एक शुद्ध [अप्पाणं] आत्माको [अभिगच्छदि] सम्मुख होकर जानता है [तं] उसे [लोगप्पदीवयरा] लोकको प्रगट जाननेवाले [इसिणो] ऋषीश्वर [सुदकेवलिं] श्रुतकेवली ऐसा [भणंति] कहते हैं। [जो] जो जीव [सव्वं] सर्व [सुदणाणं] श्रुतज्ञानको [जाणदि] जानता है [तं] उसे [जिना] जिनभगवान [सुदकेवलिं] श्रुतकेवली [आहु] कहते हैं [जह्मा] क्योंकि [सव्वं णाणं] सव ज्ञान [अप्पा] आत्मा ही है [तह्मा] इसलिये [सुदकेवली] (वह जीव) श्रुतकेवली है।

टीकार्थ- जो निश्चयसे भावश्रुतसे-स्वसंवेदनज्ञानसे-निर्विकल्प समाधि साधनसे सर्व प्रकारसे जानता है, अनुभवता है। किसको अनुभवता है? जो अपने आत्माको अनुभवता है। कैसे? प्रत्यक्ष अनुभवता है। और कैसे? एकमात्र या असहाय अपने आत्माको अनुभवता है। कैसे? रागादिरहित अनुभवता है। उस जीवको (आत्माको) निश्चय श्रुतकेवली, ऐसा लोकको प्रकाशित करनेवाले परमऋषी कहते हैं। इस गाथामें निश्चयश्रुतकेवलीका लक्षण कहा है। जो द्वादशांग द्रव्यश्रुतको परिपूर्ण जानता है, उस पुरुषको व्यवहारश्रुतकेवली ऐसा कहते हैं। कौन कहते हैं? जिनेंद्र या सर्वज्ञ कहते हैं। क्योंकि द्रव्यश्रुतके आधारसे उत्पन्न (द्रव्यश्रुतके सान्निध्यमें) भावश्रुतज्ञानवाला आत्मा (होता) है। कैसे? आत्माके संवेदनके सर्व विषय का या पर विषय का ज्ञान उसको होता है। इसलिये वह द्रव्यश्रुतकेवली है।

इसका भावार्थ यह है कि, जो भावश्रुतसे-स्वसंवेदनज्ञान वलसे शुद्धात्माको जानता है वह निश्चयश्रुतकेवली है। जो स्वशुद्धात्माका स्वसंवेदन नहीं करता है, जो स्वशुद्धात्माकी भावभासना नही करता हैं, वाह्यविषयरूप द्रव्यश्रुतार्थको जानता है वह व्यवहार श्रुतकेवली है। (जैसे नियमसार गाथा नं. १६९)

सुदकेवलि व्यवहारश्रुतकेवलिनं तमाहु जिणा तं पुरुषं आहुः ब्रुवंति। के ते जिनाः सर्वज्ञाः। कस्मादिति चेत्। जह्मा यस्मात्कारणात् सुदणाणं द्रव्यश्रुताधारेणोत्पन्नं भावश्रुतज्ञानं आदा आत्मा भवति। कथंभूतं सव्वं सर्वमात्मसंवित्तिविषयं परपरिच्छित्तिविषयं वा तह्मा तस्मात्कारणात् सुदकेवली द्रव्यश्रुतकेवली स भवतीति। अयमत्रार्थः यो भावश्रुतेन स्वसंवेदनज्ञानबलेन शुद्धात्मानं जानाति स निश्चयश्रुतकेवली भवति। यस्तु स्वशुद्धात्मानं न संवेदयति न भावयति बहिर्विषयं द्रव्यश्रुतार्थं जानाति स व्यवहारश्रुतकेवली भवतीति। ननु तर्हि स्वसंवेदनज्ञानबलेनास्मिन्-कालेऽपि श्रुतकेवली भवति? तन्न यादृशं पूर्वपुरुषाणां शुक्लध्यानरूपं स्वसंवेदनज्ञानं तादृशमिदानीं नास्ति किंतु धर्मध्यानं योग्यमस्तीत्यर्थः। एवं निश्चयव्यवहारश्रुतकेवलि व्याख्यानरूपेण गाथाद्वयेन तृतीयस्थलं गतम् ॥ ९–१० ॥

अथ गाथायाः पूर्वार्द्धेन भेदरत्नत्रयभावनामुत्तरार्द्धेनाभेदरत्नत्रयभावनां च प्रतिपादयति–

णाणह्मि भावणा खलु कादव्वा दंसणे चरित्ते य।
ते पुण तिण्णिवि आदा तह्मा कुण भावणं आदे ॥ ११ ॥

~~॥ आ. ख्या.– ११ ॥~~

लोयालोयं जाणइ अप्पाणं णेव केवली भगवं।
जइ कोइ भणइ एवं तस्स य किं दूसणं होई ॥ १६९ ॥

अर्थ– व्यवहारनयसे केवली भगवान लोकालोक जानते हैं, आत्माको नही। इसप्रकार कोई कहता है तो उसको क्या दोष है? अर्थात् दोष नहीं है।

इसलिए निश्चयनयसे द्रव्यश्रुतकेवलीको आत्मानुभव नही है, ऐसा अर्थ कोई निकालेगा तो गलत है। क्यों कि मिथ्याज्ञानी [आत्मानुभूतिसे रहित] जीव ग्यारह अंग नव पूर्वकाही पाठी होता है।

शंका– तो फिर इसकालमें भी स्वसंवेदनज्ञानबलसे क्या श्रुतकेवली होता है?

समाधान– इस कालमें द्वादशांगपारगामी ऐसे श्रतुकेवली नहीं होते हैं। लेकिन स्वसंवेदनज्ञानवाले श्रुतकेवली हैं। जैसे पूर्वमें पुरुषोंको शुक्लध्यानरूप (शुद्धोपयोग) स्वसंवेदनज्ञान था, वैसा अभी नहीं है, किन्तु धर्मध्यान योग्य (शुद्धोपयोग) स्वसंवेदनज्ञान अभी भी है, (याने जाति अपेक्षा शुद्धोपयोग अभी भी है लेकिन विशदताकी अपेक्षावाला शुक्लध्यान नहीं है) इस प्रकार तृतीय स्थलमें निश्चयश्रुतकेवली और व्यवहार श्रुतकेवलीके व्याख्यानरूपसे दो गाथाओंमें कथन हो गया ॥ ९, १० ॥

अब यहाँ पूर्वार्द्धसे भेदरत्नत्रयकी भावनाका और उत्तरार्द्धसे अभेदरत्नत्रयकी भावनाका प्रतिपादन करते हैं, कि–

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयभावना खलु स्फुटं कर्तव्या भवति। पुनस्त्रीण्यपि निश्चयेनात्मैव यतः कारणात् तस्मात् कुरु भावनां शुद्धात्मनीति ॥ ११ ॥

अथ भेदाभेदरत्नत्रयभावनाफलं दर्शयति–

जो आदभावणमिणं णिच्चुवजुत्तो मुणी समाचरदि।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ॥ १२ ॥

॥ आ. ख्या.— १२ ॥

यः कर्ता आत्मभावनामिमां नित्योद्यतः सन् मुनिः तपोधनः समाचरति सम्यगाचरति भावयति स सर्वदुःखमोक्षं प्राप्नोत्यचिरेण स्तोककालेनेत्यर्थः। इति निश्चयव्यवहाररत्नत्रयभावनाभावनाफलव्याख्यानरूपेण गाथाद्वयेन चतुर्थस्थलं गतम् ॥ १२ ॥

अथ यथा कोऽपि ब्राह्मणादिविशिष्टो जनो म्लेच्छप्रतिबोधनकाले एव म्लेच्छभाषां ब्रूते न च शेषकाले तथैव ज्ञानिपुरुषोप्यज्ञानिप्रतिबोधनकाले व्यवहारमाश्रयति न च शेषकाले।

गाथार्थ– [णाणह्मि] ज्ञानमें [दंसणे] दर्शनमें [य] और [चरित्ते] चारित्रमें [खलु] दृढतासे [भावणा] भावना [कादव्वा] करनी चाहिये [पुण] और [ते] वे [तिण्णिवि] तीनोंभी [आद्ये] अभेदनयसे एक आत्माही हैं, [तह्मा] इसलिये [आदौ] आत्मामें [भावणं कुण] भावना करो।

टीकार्थ– सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंकी दृढतासे भावना करनी चाहिये। और निश्चयसे तीनोंभी (सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र) एक आत्मा ही है। इसलिये अपने एक शुद्धआत्मामें ही (शुद्धात्माकी) अनुभूति करनी चाहिये ॥ ११ ॥

गाथार्थ– यहां भेदाभेदरत्नत्रयभावनाका फल दिखाते हैं– [जो] जो [आदभावणं] आत्मभावनामें [णिच्चुवजुत्तो] निरंतर शुद्धोपयोगयुक्त होता हुवा [समाचरति] सम्यक् आचरण करता है अर्थात् आत्मभावनामें लीन होता है [सो] वह [मुणी] मुनी [अचिरेण कालेण] थोडे ही कालमें [सव्वदुक्खमोक्खं] सर्व दुःखोंसे मुक्ति को [पावदि] प्राप्त करता है।

टीकार्थ– जो मुनि, तपोधन, निरंतर शुद्धोपयोग युक्त होता हुआ आत्मानुभूति का समीचीन आचरण करता है, भावना करता है, वह थोडे ही कालमें सवदुःखोंसे मुक्ति को प्राप्त करता है। इस तरह चतुर्थस्थलमें दो गाथाओंसे निश्चयरत्नत्रयकी और व्यवहाररत्नत्रयकी भावना व भावनाका फल कथन किया है ॥ १२ ॥

जैसे ब्राह्मणादि विशेषव्यक्ति म्लेंच्छको समझानेके लिये ही म्लेंच्छभाषामें कथन करते हैं, उसी तरह ज्ञानी पुरुष भी अज्ञानीको समझानेके समय व्यवहारनयका वक्तव्यमात्र आश्रय करते हैं। शेषकालमें व्यवहारनयका उपादेय मानकर आश्रय नहीं करते हैं।

कस्मादभूतार्थत्वादिति प्रकाशयति–

ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ ।

भूयत्थमस्सिदो खलु सम्मादिठ्ठी हवइ जीवो ॥ १३ ॥

॥ आ. ख्या.–११॥

ववहारो व्यवहारनयः **अभूदत्थो** अभूतार्थः असत्यार्थो भवति । **भूदत्थो** भूतार्थः सत्यार्थः **देसिदो** देशितः कथितः दु पुनः कोसौ **सुद्धणओ** शुद्धनयः निश्चयनयः । तर्हि केन नयेन सम्यग्दृष्टिर्भवतीति चेत् । **भूदत्थं** भूतार्थं सत्यार्थं निश्चयनयं **अस्सिदो** आश्रितो गतः स्थितः । **खलु** स्फुटं **सम्मादिठ्ठी हवदि जीवो** सम्यग्दृष्टिर्भवति जीव इति टीकाव्याख्यानं । द्वितीयव्याख्यानेन पुनः **ववहारो अभूदत्थो** व्यवहारोऽभूतार्थो **भूदत्थो** भूतार्थश्च **देसिदो** देशितः कथितः । न केवलं व्यवहारो देशितः **सुद्धणओ** शुद्धनिश्चयनयोऽपि । दु शब्दादयं शुद्धनिश्चयनयोपीतिव्याख्यानेन भूताभूतार्थभेदेन व्यवहारोपि द्विधा, शुद्धनिश्चयाशुद्धनिश्चयभेदेन निश्चयनयोपि द्विधा इति नयचतुष्टयम् । इदमत्र तात्पर्यं – यथा कोऽपि ग्राम्यजनः सकर्दमं नीरं पिबति, नागरिकः पुनः विवेकीजनः कतकफलं निक्षिप्य निर्मलोदकं पिबति । तथा स्वसंवेदनरूपभेदभावनाशून्यजनो

व्यवहार नय अभूतार्थ कैसे हैं, यह दिखाते हैं–

गाथार्थ– [**ववहारो**] व्यवहारनय [**अभूयत्थो**] अभूतार्थ है [**दु**] और [**सुद्धणओ**] शुद्धनय [**भूयत्थो**] भूतार्थ है ऐसा [**देसिदो**] सर्वज्ञभगवानने बताया है [**जीवो**] जो जीव [**भूदत्थम्**] भूतार्थका [**अस्सिदो**] आश्रय करता है वह जीव [**खलु**] निश्चयसे [**सम्मादिठ्ठी**] सम्यग्दृष्टि [**हवइ**] होता है ।

टीकार्थ– (**सिद्धांतमें**) व्यवहारनय अभूतार्थ, असत्यार्थ है, और शुद्धनय भूतार्थ, सत्यार्थ है, ऐसा कथन किया गया है । तो फिर कौनसे नयसे सम्यग्दृष्टि होता है ? भूतार्थ-सत्यार्थ-निश्चयनयका आश्रय करनेवाला जीव निश्चयसे सम्यग्दृष्टि है ।

दुसरी पद्धतिसे– व्यवहार भूतार्थ और अभूतार्थ है । केवल व्यवहार भूतार्थ और अभूतार्थ है, ऐसा नही, तो निश्चयनयभी भूतार्थ और अभूतार्थ हैं । यहाँ 'दु' शब्दसे निश्चयनयभी भूतार्थ, अभूतार्थ हैं, इस प्रकारके नय व्याख्यानसे व्यवहार भूतार्थ और अभूतार्थ के भेदसे दो प्रकारका है, उसी प्रकार निश्चयनय भी शुद्धनिश्चयनय, अशुद्ध निश्चयनय के भेदसे दो प्रकारका है । इस तरह चार प्रकारके नय है ।

यहां यह तात्पर्य है कि, कोई अविवेकीजन कीचडसहित जल पीता है किन्तु विवेकी नागरिक उस कीचडसहित जल में निर्मलीद्रव्य डालकर उसे निर्मल बनाकर निर्मल जल पीता है । उसी प्रकार स्वसंवेदनरूप भेदभावनासे रहित जो अविवेकी जीव है, वह मिथ्यात्वरागादि विभावपरिणामसहित आत्माका (अशुद्ध आत्माका) अनुभव करता है (याने मिथ्यादृष्टि है) ।

मिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामसहितमात्मानमनुभवति, सद्दृष्टिजनः पुनरभेदरत्नत्रयलक्षण-निर्विकल्पसमाधिबलेन कतकफलस्थानीयं निश्चयनयमाश्रित्य शुद्धात्मानमनुभवतीत्यर्थः ॥ १३ ॥

अथ पूर्वगाथायां भणितं भूतार्थनयमाश्रितो जीवः सम्यग्दृष्टिर्भवति । अत्र तु न केवलं भूतार्थो निश्चयनयो निर्विकल्पसमाधिरतानां प्रयोजनवान् भवति किंतु निर्विकल्पसमाधिरहितानां पुनः षोडशवर्णिकासुवर्णलाभाभावे अधस्तनवर्णिकासुवर्णलाभवत् केषांचित् प्राथमिकानां कदाचित् सविकल्पावस्थायां मिथ्यात्वविषयकषायदुर्ध्यानवंचनार्थं व्यवहारनयोपि प्रयोजनवान् भवतीति प्रतिपादयति–

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं ।
ववहारदेसिदो पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे ॥ १४ ॥

॥ आ. ख्या. १२ ॥

सुद्धो शुद्धनयः निश्चयनयः कथंभूतः सुद्धादेसो शुद्धद्रव्यस्यादेशः कथनं यत्र स भवति शुद्धादेशः णादव्वो ज्ञातव्यः भावयितव्यः कैः परमभावदरसीहिं शुद्धात्मभावदर्शिभिः । कस्मादिति चेत्, यतः षोडशवर्णिकाकार्तस्वरलाभवदभेदरत्नत्रयस्वरूपसमाधिकाले सप्रयोजनो भवति ।

और विवेकीजन अभेदरत्नत्रयलक्षणरूप निर्विकल्पसमाधि के बलसे निर्मलीद्रव्यके समान शुद्ध निश्चयनयका आश्रयकरके शुद्धात्माका अनुभव करता है (वह सम्यग्दृष्टि होता है) ।

भावार्थ– शुद्धात्मानुभूतिसे ही चतुर्थादि गुणस्थान प्रगट होते है । अशुद्धात्मानुभूतिसे मिथ्यात्व, दुःख, वा आकुलता होती है ॥ १३ ॥

पूर्व गाथामें कहा है कि भूतार्थनयका आश्रय करनेवाला जीव सम्यग्दृष्टि होता है । इस गाथामें कहते हैं कि केवल भूतार्थ निश्चयनय निर्विकल्पसमाधिस्थित जीवोंको प्रयोजन-वान् है ऐसा नहीं है किंतु जो निर्विकल्पसमाधिसे रहित है याने सविकल्प अवस्थामें स्थित है उन्हें अंतिम सोलह ताव वाले जातिवंत सुवर्ण के लाभके अभावमें नीचेके तावलाले सुवर्ण के लाभ की तरह प्रयोजनवान हैं । कोई प्राथमिक अवस्थावाले जीवोंको सविकल्प अवस्थामें मिथ्यात्व-विषयकषायभावरूप दुर्ध्यानसे वचनेके लिये व्यवहारनय भी तावत्काल प्रयोजनवान् है । ऐसा प्रतिपादन करते है–

गाथार्थ– [परमभावदरिसीहिं सुद्धो सुद्धादेसो णायव्वो] परमभावदर्शियोंको शुद्ध-तत्त्वका उपदेश करनेवाला शुद्धनय जानने योग्य है [पुण जे दु अपरमे भावे ट्ठिदा ववहारदेसिदो] और जो जीव अपरमभावमें स्थित है, उनके लिये व्यवहारनय देशित है ।

टीकार्थ– सुद्धो शुद्धनय निश्चयनय है ।

शंका– कैसा है शुद्धनय ?

समाधान– सुद्धादेसो शुद्धद्रव्यका-परमपारिणामिकभाव रूप शुद्धद्रव्यका कथन जिसमें है, ऐसा शुद्धनय णादव्वो जानने योग्य-अनुभव करने योग्य है ।

निःप्रयोजनो न भवतीत्यर्थः। ववहारदेसिदो व्यवहारेण विकल्पेन भेदेन पर्यायेण दर्शितः कथित इति व्यवहारदेशितो व्यवहारनयः पुण पुनः अधस्तनवर्णिकासुवर्णलाभवत्प्रयोजनवान् भवति। केषां जे ये पुरुषाः दु पुनः अपरमे अशुद्धे असंयतसम्यग्दृष्ट्यपेक्षया श्रावकापेक्षया वा सरागसम्यग्दृष्टिलक्षणे शुभोपयोगे प्रमत्ताप्रमत्तसंयतापेक्षया च भेदरत्नत्रयलक्षणे वा ठिदा स्थिताः, कस्मिन् स्थिताः। भावे जीवपदार्थे तेषामिति भावार्थः ॥ १४ ॥

शंका– किनके द्वारा ज्ञातव्य है?

समाधान– परमभावदरसीहिं परमपारिणामिकभाव दर्शियोंको सुद्धो सुद्धादेसो केवल शुद्धनय ही अनुभव करने योग्य है।

शंका– किस कारणसे?

समाधान– क्योंकि सोलह तावहवाले सुवर्णके लाभ की तरह अभेदरत्नत्रयस्वरूप समाधिकालमें शुद्धनय ही प्रयोजनवान् है। उनके लिये शुद्धनय निष्प्रयोजन नहीं है।

ववहारदेसिदो पुण तथा भेद-विकल्प-पर्यायरूप से कथन किया गया व्यवहारनयका उपदेश नीचेके तावहवाले सुवर्णके लाभ की तरह प्रयोजन भूत है।

शंका– किनके लिये?

समाधान– जे दु अपरमे भावे ठिदा जो पुरुष अपरमभावमें स्थित है, अर्थात् चतुर्थ-गुणस्थानवर्ती असंयत सम्यग्दृष्टिकी अपेक्षासे अथवा पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावककी अपेक्षासे जो सराग सम्यग्दर्शन लक्षण शुभोपयोगमें स्थित है अथवा षष्ठ-सप्तम गुणस्थानवर्ती प्रमत्त-अप्रमत्त संयत (सकलसंयम) की अपेक्षासे भेदरत्नत्रयलक्षण शुभोपयोगमें-जीवपदार्थमें स्थित है उनके लिये तो व्यवहारनय प्रयोजनवान् है।

भावार्थ– भूतार्थनयका आश्रय करनेसेही सम्यग्दर्शन की प्राप्ती होती है। शुद्धात्माकी अनुभूतिके इच्छुक सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी पुरुषोंको निरंतर शुद्धनिश्चयनयका विषय जो परमपारिणामिक भाववाला निजात्मा ही अवश्य ज्ञातव्य है, अवश्य जानने योग्य है। अवश्य अनुभव करने योग्य है। भावना करने योग्य है। परन्तु निर्विकल्प समाधिलक्षण शुद्धात्मानुभूतिमें अविचल स्थिर रहनेमें असमर्थ होकर विकल्पमें आये हुअे जीवके द्वारा अशुभसे बचनेके लिये व्यवहारनयका उपदेश दिया है।

अथवा– इसके पहले गाथामें कहा है कि, भूतार्थनयका आश्रय करनेवाला जीव सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभूतिवाला) होता है। अब इस गाथामे निर्विकल्पसमाधिमें जो रत है उन्हें ही केवल निश्चयनय भूतार्थ हैं ऐसा नहीं। किंतु जो जीव निर्विकल्पसमाधिसे रहित याने सविकल्प अवस्थामें है उन्हे निर्विकल्प अवस्था प्राप्त करने के लिये निश्चयनय-भूतार्थनय प्रयोजनवान् है। और जिनको सोलहतावहवाला शुद्ध सुवर्णका लाभ नहीं हुआ उनको शुद्ध सुवर्ण प्राप्त करना

चाहिये और शुद्धसुवर्णके लाभ के अभावमें अधस्तनवाला सुवर्णका लाभ होना प्रयोजन है, उन प्राथमिक अवस्थावालों को कभी सविकल्प अवस्थामें मिथ्यात्वविषयकषायदुर्ध्यानसे बचनेके लिये व्यवहारनय भी प्रयोजनवान् है ऐसा प्रतिपादन करते हैं–

गाथार्थ– [**परमभावदरिसीहिं (जो परिज्ञायमाणो) सुद्धो**] परमभावदर्शिवाले-निर्विकल्प समाधिवाले–शुद्धात्मानुभववाले जीवों के द्वारा जो परिज्ञायमान–अनुभव किया जानेवाला शुद्धात्मापारिणामिक भाववाला आत्मा है। [**(सो) सुद्धादेसो पुण अपरमे भावे णादव्वो**] और उस शुद्धात्मा का कथन करनेवाला शुद्धनय अपरम भाववाले–सविकल्पभाववाले के द्वारा जानने योग्य है। [**जे दु अपरमे भावे ट्ठिदा ववहारदेसिदो**] और जो अपरमभावमें–सविकल्पभावमें स्थित है, वे व्यवहारदेशित हैं।

टीकार्थ– सुद्धो शुद्धनय, निश्चयनय।

शंका– कैसा है वह शुद्धनय ?

समाधान– शुद्धद्रव्यका आदेश अथवा निर्देश अथवा कथन जिस नयसे किया जाता है वह शुद्धनय अथवा शुद्धादेश है।

णादव्वो जानना चाहिये, अनुभव करना चाहिये।

शंका– किनके द्वारा अनुभव करना चाहिये ?

समाधान– शुद्धात्मानुभूतिकी प्राप्ती करनेकी जिनको इच्छा है, उनको शुद्धात्मानुभव करना चाहिये याने सविकल्प अवस्थामें जो है, अभी शुद्धात्मानुभवमें रत नहीं है, लेकिन शुद्धात्माकी प्राप्ती करनेकी इच्छा (भावना) है उनको शुद्धनयका आश्रय करके शुद्धात्मानुभव करना चाहिये।

शंका– ऐसा क्यों ?

समाधान– सोलहताववाले शुद्धसुवर्ण लाभकी तरह अभेद रत्नत्रय स्वरूप समाधिकालमें शुद्धनयका आश्रय है, अपरम भाववालोंको शुद्धनय निःप्रयोजन नहीं है क्योंकि अपरमभाववालोंको स्वानुभूति के लिये शुद्धनय प्रयोजनवान है। समाधिमें या शुद्धात्मानुभूतिमें शुद्धनयका आश्रय नहीं है, ऐसा नहीं है (याने शुद्धात्मानुभूतिमें शुद्धात्मा अनुभवमें या जाननेमें आता है)

ववहारदेसिदो व्यवहारसे-विकल्पसे-भेदसे-पर्यायार्थिकनयसे दिखायी हुओ या कथन की हुओ ऐसी व्यवहारदेशना या ऐसा व्यवहारनय है। और अधस्तनवर्णिकावाले सुवर्णके लाभके समान व्यवहारनय प्रयोजनवान् है।

शंका– यह व्यवहारनय किनको प्रयोजनवान है ?

उत्तर– जो पुरुष अशुद्धभावमें याने विकल्प अवस्थामें है असंयत सम्यग्दृष्टि, देशसंयत और जो प्रमत्ताप्रमत्तसंयत (सकलसंयमी) विकल्पभूमिकामें (सम्यग्दर्शन होते हुओ भी

बुद्धिपूर्वक विकल्प अवस्थामें) - भेदरत्नत्रयकी विचार अवस्थामें स्थित हैं उनको अशुभोपयोगसे बचनेके लिये (दुर्ध्यान न हो इसलिये) व्यवहारनय प्रयोजनवान् है ।

शंका– वे विकल्पकी भूमिकावाले जीव कहाँ स्थित हैं ?

समाधान– जीवादिपदार्थोंके द्रव्य, गुण और पर्यायकी विचारमें अथवा विकल्पमें स्थित हैं । तेषाम् उनको व्यवहारनयका आश्रय लेना पडता है, लेकिन निर्विकल्प अवस्था प्राप्त करनेके लिये विकल्पवाले जीवों के द्वारा शुद्धनय याने शुद्धात्मा जानना (अनुभव करना) चाहिये ।

भावार्थ– शंका– इस गाथामें 'प्रमत्ताप्रमत्तसंयतापेक्षया च भेदरत्नत्रयलक्षणे' ऐसा क्यों लिखा है ? केवल 'प्रमत्तसंयतापेक्षया च भेदरत्नत्रयलक्षणे' ऐसा क्यों नहीं लिखा है ?

समाधान– प्रमत्ताप्रमत्तसंयतकी याने सकलसंयमकी अपेक्षासे भेदरत्नत्रयलक्षणवाले छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनी ऐसा ही अर्थ है । क्यों कि (क) अव्रती सम्यक्त्वी एक ही जीवमें दो भेद दिखाना है याने अव्रती सम्यक्त्वीका निर्विकल्पका (शुद्धात्मानुभवका) क्षण और अव्रती सम्यक्त्वीका सविकल्पका क्षण, उसी प्रकारसे (ख) देशसंयमीमें एक ही जीवमें दो भेद दिखाना याने देश संयमीका निर्विकल्पका क्षण और देशसंयमीका सविकल्पका क्षण है । ऐसे ही (ग) सकलसंयमी एक ही जीवमें अप्रमत्तसंयतवालेका निर्विकल्प क्षण और प्रमत्तसंयतवालेका सविकल्प क्षण इससे दिखाया है ।

और सकलसंयमी जीव जिस समय सविकल्प अवस्थामें है याने छट्ठे गुणस्थानमें है उस समय वह अपरमभावमें है याने भेदरत्नत्रयमें है, उसी तरह देशसंयमी जिस समय सविकल्प अवस्थामें है वह उस समय अपरमभावमें (शुभोपयोगमें) है उसी तरह अव्रती सम्यक्त्वी जिस समय सविकल्प अवस्थामें है उस समय अपरमभावमें (शुभोपयोगमें) है ।

और सकलसंयमी की निर्विकल्प अवस्था याने सातवाँ गुणस्थान और आठवे गुणस्थानसे सिद्ध तक यह परम अवस्था (पारिणामिक भावको देखनेवाली) है, और देशसंयमीकी निर्विकल्प अवस्था-परम अवस्था (पारिणामिक भावको देखनेवाली) है और अव्रती सम्यक्त्वीकी निर्विकल्प अवस्था (पारिणामिक भावको देखनेवाली) है ।

ऐसा दिखानेके लिए यहाँ 'प्रमत्ताप्रमत्तसंयतापेक्षया' ऐसा शब्द लिखा है । इसलिए "प्रमत्ताप्रमत्तसंयतापेक्षया च भेदरत्नत्रयलक्षणे" इसका अर्थ 'प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत दोनों भी सविकल्पमें है' ऐसा कहना गलत है क्योंकि प्रवचनसार गाथा नं. १९६ (तत्त्वदीपिका) की तात्पर्यवृत्ति में श्री जयसेनाचार्यजीने ध्यानसंतानमें दिखाया है कि, अप्रमत्त संयतवाला याने सप्तमगुणस्थानवर्ती निर्विकल्प (ध्यानमें) है और प्रमत्तगुणस्थानवर्ती सविकल्पमें (तत्त्वचिन्तामें) है और एक अंतर्मुहुर्त अप्रमत्त गुणस्थान उसके बाद एक अंतर्मुहुर्त प्रमत्त गुणस्थान फिर एक अंतर्मुहुर्त अप्रमत्तगुणस्थान फिर एक अंतर्मुहुर्त प्रमत्तगुणस्थान ऐसी संतानधारा धर्मध्यानमें चलती है ।

एवं निश्चयव्यवहारनयव्याख्यानप्रतिपादनरूपेण गाथाद्वयेन पंचमं स्थलं गतम्। इति चतुर्दशगाथाभिः स्थलपंचकेन पीठिका समाप्ता। अथ कश्चिदासन्नभव्यः पीठिकाव्याख्यान-मात्रेणैव हेयोपादेयतत्त्वं परिज्ञाय विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं निजस्वरूपं भावयति।

विस्ताररुचिः पुनर्नवभिरधिकारैः समयसारं ज्ञात्वा पश्चाद्भावनां करोति। तद्यथा— विस्ताररुचिशिष्यं प्रति जीवादिनवपदार्थाधिकारैः समयसारव्याख्यानं क्रियते। तत्रादौ नवपदा-र्थाधिकारगाथाया आर्त्तरौद्रपरित्यागलक्षणनिर्विकल्पसामायिकस्थितानां यच्छुद्धात्मरूपस्य दर्शन-मनुभवनमवलोकनमुपलब्धिः संवित्तिः प्रतीतिः ख्यातिरनुभूतिस्तदेव निश्चयनयेन निश्चयचारि-त्राविनाभावि निश्चयसम्यक्त्वं वीतरागसम्यक्त्वं भण्यते। तदेव च गुणगुण्यभेदरूपनिश्चयनयेन

इसलिए स्वस्थान अप्रमत्तसंयमी जीव निर्विकल्प अवस्थावाला है। स्वस्थान अप्रमत्त संयमी जीव सविकल्प अवस्थावाला नहीं है।



१) अव्रती सम्यक्त्वीके दो शुद्धात्मानुभूतिके बीचमें का सम्यक्त्वसहित सविकल्पका जघन्यकाल अंतर्मुहुर्त और उत्कृष्ट काल छः महिना है।

२) देशव्रती सम्यक्त्वीके दो शुद्धात्मानुभूतिके बीचमें का सम्यक्त्वसहित सविकल्पका जघन्यकाल अंतर्मुहुर्त और उत्कृष्टकाल १५ दिनका है।

३) सम्यक्त्वसहित सकलसंयमीके दो शुद्धात्मानुभूतिके बीचमें का सम्यक्त्वसहित सवि-कल्पका (प्रमत्त गुणस्थानका) उत्कृष्टकाल अंतर्मुहुर्त है॥ १४॥

इसप्रकार पंचमस्थलमें दो गाथाओंसे निश्चयनयका कथन और व्यवहारनयका कथन प्रतिपादन किया। इस तरह १४ गाथाओंसे पांच स्थलमें पीठिका समाप्त हुअी। यहां कोई आसन्नभव्य जीव पीठिकाके व्याख्यानमात्रसे हेयतत्त्व (व्यवहारनय हेयतत्त्व) और उपादेयतत्त्व (शुद्धनिश्चयनय उपादेयतत्त्व) को जानकर अपने विशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावरूप निजस्वरूपकी भावभासना (स्वानुभूति) करता है।

और विस्ताररुचि शिष्य नव अधिकारद्वारा समयसारको जानकर बादमें शुद्धात्मानुभूति करता है। वह इस प्रकार है, विस्ताररुचि शिष्यको समझानेके लिये जीवादि नवपदार्थ अधिकार के द्वारा समयसारका व्याख्यान किया जाता है। वहाँ प्रथम नवपदार्थके अधिकारकी गाथाद्वारा आर्त्तरौद्र ध्यानके परित्याग लक्षणवाले निर्विकल्पसामायिकमें स्थित रहनेवालोंका जो शुद्धात्म-

शुद्धात्मस्वरूपं भवतीत्येका पातनिका। अथवा नवपदार्था भूतार्थेन ज्ञाता: संत एवाभेदोपचारेण सम्यक्त्वविषयत्वाद्व्यवहारसम्यक्त्वनिमित्तं भवन्ति, निश्चयेन तु स्वकीयशुद्धपरिणाम एव सम्यक्त्वमिति द्वितीया चेति पातनिकाद्वयं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्ररूपयति–

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं॥ १५॥

॥ आ. ख्या. १३ ॥

भूदत्थेण भूतार्थेन निश्चयनयेन शुद्धनयेन **अभिगदा** अभिगता निर्णीता निश्चिता ज्ञाताः संतः के ते **जीवाजीवा य पुण्णपावं च आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य** जीवाजीवपुण्यपापास्रवसंवरनिर्जराबंधमोक्षस्वरूपा नवपदार्था **सम्मत्तं** त एवाभेदोपचारेण सम्यक्त्वविषयत्वात्कारणत्वात्-सम्यक्त्वं भवन्ति। निश्चयेन परिणाम एव सम्यक्त्वमिति। नवपदार्थाः भूतार्थेन ज्ञाता: संतः सम्यक्त्वं भवन्तीत्युक्तं भवद्भिस्तत्कीदृशं भूतार्थपरिज्ञानमिति पृष्टे प्रत्युत्तरमाह। यद्यपि नवपदार्थाः तीर्थवर्त्तनानिमित्तं प्राथमिकशिष्यापेक्षया भूतार्था भण्यन्ते तथाप्यभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्वि-

---

रूपका दर्शन, शुद्धात्माका अनुभव, शुद्धात्माका अवलोकन, शुद्धात्माकी उपलब्धि, संवित्ति, प्रतीति, ख्याति, शुद्धात्माकी अनुभूति उसीको ही निश्चयनयसे निश्चय चारित्रके अविनाभावी निश्चय-सम्यक्त्वरूप वीतराग सम्यक्त्व कहा जाता है। और वह ही गुणगुणिके अभेदरूप (अभेदवृत्तिसे) निश्चयनयसे शुद्धात्माका स्वरूप है यह प्रथम पातनिका है। अथवा द्वितीय पातनिका—नवपदार्थ भूतार्थसे जानते रहनेपर अभेदोपचारसे (व्यवहारनयसे) सम्यक्त्वका विषय होनेसे व्यवहार सम्यक्त्वके निमित्त होते हैं। लेकिन निश्चयनयसे अपने आत्माका शुद्धपरिणाम (स्वानुभूति) ही सम्यक्त्व है। [स्वानुभूतिमें रहना आत्माको सुखमय है] ऐसी दो पातनिकायें मनमें धारण करके सूत्र कहते हैं–

गाथार्थ– [**भूदत्थेण**] भूतार्थनयसे [**जीवाजीवा**] जीव, अजीव, [**पुण्णपावं**] पुण्य, पाप, [**च**] तथा [**आसवसंवरणिज्जरबंधो**] आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध [**य**] और [**मोक्खो**] मोक्ष [**य**] और प्रमाण, नय निक्षेपादि [**अभिगदा**] एक आत्मा रूपसे ज्ञात होनेपर [**सम्मत्तं**] यह आत्ममयता सम्यग्दर्शन है वही शुद्धात्मानुभूति है।

टीकार्थ– भूतार्थसे-निश्चयनयसे शुद्धनिश्चयनयसे अभिगत होते हैं, निर्णीत होते हैं निश्चित होते हैं, जाने जाते हैं

शंका– वे कौन ज्ञात होते हैं?

समाधान– जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष स्वरूप नव पदार्थ भूतार्थसे (शुद्धनिश्चयनयसे) ज्ञात होते हैं। अभेदोपचारसे वे नवपदार्थ ही सम्यक्त्वके विषयके रूप कारण होनेसे सम्यक्त्व हैं। निश्चयसे स्वपरिणाम ही सम्यक्त्व है।

कल्पसमाधिकाले अभूतार्था, असत्यार्था, शुद्धात्मस्वरूपं न भवन्ति। तस्मिन् परमसमाधिकाले नवपदार्थमध्ये शुद्धनिश्चयनयेनैक एव शुद्धात्मा प्रद्योतते प्रकाशते प्रतीयते अनुभूयत इति। या चानुभूतिः प्रतीतिः शुद्धात्मोपलब्धिः सा चैव निश्चयसम्यक्त्वमिति सा चैवानुभूतिर्गुणगुणिनोर्निश्चयनयेनाभेदविवक्षायां शुद्धात्मस्वरूपमिति तात्पर्यम्। किं च ये च प्रमाणनयनिक्षेपाः परमात्मादितत्त्वविचारकाले सहकारिकारणभूतास्तेपि सविकल्पावस्थायामेव भूतार्थाः। परमसमाधिकाले पुनरभूतार्थास्तेषु मध्ये भूतार्थेन शुद्धजीव एक एव प्रतीयत इति नवपदार्थाधिकारगाथा गता॥ १५॥

शंका– भूतार्थनयके द्वारा जाने हुये नवपदार्थ सम्यक्त्व हैं, ऐसा जो आपने कहा है, उस भूतार्थके ज्ञानका क्या स्वरूप है?

समाधान– यद्यपि प्राथमिकशिष्यकी अपेक्षासे तीर्थ प्रवृत्ति के लिये निमित्तमात्र नवपदार्थ भूतार्थ (प्रयोजनभूत) कहे जाते हैं तथापि अभेदरत्नत्रयलक्षणवाले निर्विकल्पसमाधिके कालमें (समयमें) वे नवपदार्थ अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं, अप्रयोजन भूत है, शुद्धात्मस्वरूप नहीं हैं उस शुद्धात्मानुभवमें परमसमाधिकालमें नवपदार्थोमे शुद्धनिश्चयनयसे एक शुद्धात्माकी ही प्रतीति होती है, शुद्धात्माका ही अनुभव होता है। और जो यह शुद्धात्मानुभूति, प्रतीति, शुद्धात्मोपलब्धि है, वही निश्चयसम्यक्त्व है। वह स्वानुभूतिही गुण और गुणीमें निश्चयनयसे अभेद विवक्षा (अभेदवृत्ति नय) में शुद्धात्माका स्वरूप है, ऐसा तात्पर्य है।

और प्रमाणनयनिक्षेप परमात्मादितत्त्वविचारकालमें सहकारी कारणभूत हैं, वे भी सविकल्प अवस्थामें ही तावत्काल भूतार्थ, प्रयोजनभूत है परंतु परमसमाधि कालमें अभूतार्थ हैं प्रयोजनभूत नही है। उन नवपदार्थमें और प्रमाणनय निक्षेपोमें भूतार्थसे एक शुद्धजीवकी ही प्रतीति होती है। इसप्रकार नवपदार्थके अधिकारकी गाथा समाप्त हुई।

भावार्थ– **"तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं"** इस सूत्रका अभिप्राय जीवादि सप्ततत्त्वोंका या नव पदार्थोंका हेय उपादेय रूप ज्ञान करना यह व्यवहार सम्यग्दर्शन है। और इन सात तत्त्वोंको अभूतार्थ-अप्रयोजनभूत समझकर इन सात तत्त्वोंमे अथवा नव पदार्थोंमें सदा ध्रुवरूपसे रहनेवाला जो एक कारण परमात्मा उसीको जानना अनुभव करना इसको निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं।

निश्चय सम्यग्दर्शन होनेपर–शुद्धात्मानुभूति होनेपर उसीमें दृढ स्थिरता का अभ्यास करनेके लिये जो सात तत्त्वों के भेद चिंतवन का अभ्यास किया जाता है, उसीको व्यवहार नयसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।

भूतार्थनयसे सात तत्त्वोंमें अन्तर्लीन गूढ शुद्धात्माकी अनुभूति किये बिना किया गया जो सात तत्त्वोंका चिंतवन उसको व्यवहारनयसे भी सम्यग्दर्शन नहीं कहते हैं॥ १५॥

वहाँ नव अधिकारोंमें पहले २८ गाथापर्यंत जीवाधिकार कहा जाता है। वहां सहजानंद एक स्वभावमय शुद्धात्माके भावनाकी मुख्यतासे 'जो पस्सदि अप्पाणं' इत्यादि सूत्रपाठके क्रमसे प्रथम स्थलमें तीन गाथाये हैं उसके पश्चात् दृष्टांत और दार्ष्टांतद्वारसे

तत्र नवाधिकारेषु मध्ये प्रथमतस्तावदष्टाविंशतिगाथापर्यंतं जीवाधिकारः कथ्यते। तथाहि सहजानंदैकस्वभावशुद्धात्मभावनामुख्यतया **जो पस्सदि अप्पाणमित्यादि** सूत्रपाठक्रमेण प्रथमस्थले गाथात्रयं। तदनंतरं दृष्टांतदार्ष्टांतद्वारेण भेदाभेदरत्नत्रयभावनामुख्यतया **दंसणणाणचरित्ताणि** इत्यादि द्वितीयस्थले गाथात्रयम्। ततः परं जीवस्याप्रतिबुद्धत्वकथनेन प्रथमगाथा, बंधमोक्षयोग्यपरिणामकथनेन द्वितीया, जीवो निश्चयेन रागादिपरिणामानामेव कर्त्तेति तृतीया चेत्येवं **कम्मे णोकम्मम्हि य इत्यादि** तृतीयस्थले परस्परसम्बन्धनिरपेक्षस्वतंत्रं गाथात्रयम्। तदनंतरमिंधनाग्निदृष्टांतेनाप्रतिबुद्धलक्षणकथनार्थं **अहमेदमित्यादि** चतुर्थस्थले सूत्रत्रयम्। अतः परं शुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभूतिलक्षणाभेदरत्नत्रयभावनाविषये योऽसावप्रतिबुद्धस्तत्प्रतिबोधनार्थं **अण्णाणमोहिदमदी** इत्यादि पंचमस्थले सूत्रत्रयम्। अथ निश्चयरत्नत्रयलक्षणशुद्धात्मतत्त्वमजानन् देह एवात्मेति योऽसौ पूर्वपक्षं करोति तस्य स्वरूपकथनार्थं **जदि जीवो** इत्यादि पूर्वपक्षरूपेण गाथैका। तदनंतरं व्यवहारेण देहस्तवनं निश्चयेन शुद्धात्मस्तवनमिति नयद्वयविभागप्रतिपादनमुख्यत्वेन **ववहारणओ भासदि** इत्यादि परिहारसूत्रचतुष्टयम्। अथ परमोपेक्षालक्षणशुद्धात्मसंवित्तिरूपनिश्चयस्तुतिमुख्यत्वेन **जो इंदिए जिणित्ता** इत्यादि सूत्रत्रयम्। एवं गाथाष्टकसमुदायेन षष्ठस्थलं। ततः परं निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानमेव विषयकषायादि परद्रव्याणां प्रत्याख्यानमिति कथनेन **णाणं सव्वे भावा** इत्यादि सप्तमस्थले गाथाचतुष्टयं। तदनंतरमनंतज्ञानादिलक्षणशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मकस्वसंवेदनमेव भावितात्मनः स्वरूपमित्युपसंहारमुख्यतया **अहमिक्को खलु सुद्धो** इत्यादि सूत्रमेकं। एवं दंडकान्विहायाष्टाविंशतिसूत्रैः सप्तभिरंतरस्थलैर्जीवाधिकारे समुदायपातनिका।

भेदरत्नत्रयकी भावना और अभेदरत्नत्रयकी भावना की मुख्यतासे **'दंसणणाणचरित्ताणि'** इत्यादि द्वितीयस्थलमें तीन गाथायें है। इसके बाद जीवकी अप्रतिबुद्धता (अज्ञानता) का कथन करनेवाली प्रथम गाथा है। तथा द्वितीय गाथामें बंध मोक्ष योग्य परिणामका कथन है। निश्चयसे (अशुद्धनिश्चयनयसे) जीव रागादि परिणामोंका कर्ता हैं, ऐसा तृतीय गाथामें है। इस प्रकार **'कम्मे णोकम्मह्मि य'** इत्यादि तृतीयस्थलमें परस्परसंबंधनिरपेक्ष स्वतंत्र तीन गाथायें हैं। उसके बाद अप्रतिबुद्धका लक्षण कथन करने के लिये इंधन और अग्निके दृष्टांत की **'अहमेदमित्यादि'** तीन गाथायें चतुर्थस्थलमें हैं। इसके बाद पांचवें स्थलमें शुद्धात्मतत्त्वके सम्यक् श्रद्धान, सम्यक्ज्ञान और शुद्धात्मानुभूति लक्षणवाले अभेदरत्नत्रयकी भावनाके विषयमें जो अज्ञानी है उसको समझानेके लिये **'अण्णाणमोहिदमदी'** इत्यादि तीन गाथायें हैं। इसके बाद निश्चयरत्नत्रयलक्षणवाले शुद्धात्मतत्त्वको न जाननेवाला (शुद्धात्मानुभूतिको न जाननेवाला) जो देहको ही आत्मा कहता हैं यह जो पूर्वपक्ष है, कथन करनेके लिये **'जदि जीवो'** इत्यादि पूर्वपक्षरूपसे एक गाथा है। तदनंतर देहस्तवन व्यवहारसे है शुद्धात्मस्तवन निश्चयसे है ऐसे नयविभागके प्रतिपादनकी मुख्यतासे **'ववहारणओ भासदि'** इत्यादि परिहार स्वरूपसे चार गाथायें हैं, इसके बाद परम उपेक्षालक्षणवाली शुद्धात्मानुभूति स्वरूप निश्चयस्तुति की मुख्यतासे **'जो इंदिये जिणित्ता'**

तद्यथा– अथ प्रथमगाथायामबद्धस्पृष्टमनन्यकं नियतमविशेषमसंयुक्तं संसारावस्थायामपि शुद्धनयेन बिसिनीपत्रमृत्तिकावार्धिसुवर्णोष्ण्यरहितजलवत्पंचविशेषणविशिष्टं शुद्धात्मानं कथयति–

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं ।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥ १६ ॥

॥ आ. ख्या. १४ ॥

जो पस्सदि यः कर्त्ता पश्यति जानाति । कं । **अप्पाणं** शुद्धात्मानं कथंभूतं । **अबद्धपुट्ठं** द्रव्यकर्मनोकर्मभ्यामसंस्पृष्टं जले बिसिनीपत्रवत् । **अणण्णयं** अनन्यकं नरनारकादिपर्यायेषु द्रव्य-

---

इत्यादि तीन गाथायें हैं । इसप्रकार आठ गाथाओंमें छट्ठा स्थल है । इसके पश्चात् सातवे स्थलमें निर्विकार स्वसंवेदनज्ञान को (निर्विकल्प अनुभूति) ही, विषयकषायादि परद्रव्योंका प्रत्याख्यान कहते हैं ऐसा कथन करते हुये **'णाणं सव्वे भावा'** इत्यादि चार गाथायें हैं । तदनंतर अनंतज्ञानादिलक्षणवाले शुद्धात्माके सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूप अभेदरत्नत्रयात्मक स्वसंवेदनकी ही भावना करनेवाले आत्मा का स्वरूप है इसप्रकार उपसंहारकी मुख्यताकी अपेक्षासे (मुख्यतासे) **'अहमिक्को खलु सुद्धो'** इत्यादि एक गाथा है । इस प्रकार दंडकोंके विना २८ गाथाओंमें सात अंतर स्थलोंसे जीवाधिकारमें समुदाय पातनिका है ।

यहाँ पहली गाथामें यह कहते है कि, संसार अवस्थामें भी शुद्धनयसे आत्मा १) अबद्ध अस्पृष्ट; २) अनन्य, ३) नियत ४) अविशेष, ५) असंयुक्त इन पांच विशेषणों से विशिष्ट है, जैसे कमलपत्र, मृत्तिका, समुद्र, स्वर्ण और उष्णता रहित जल होता है ।

गाथार्थ– [**जो**] जो [**अप्पाणं**] आत्माको [**अबद्धपुट्ठं**] अबद्ध, अस्पर्श, [**अणण्णयं**] अन्यत्व रहित, [**णियदं**] नियत याने चलाचलरहित, [**अविसेसम्**] विशेष रहित [**असंजुत्तं**] असंयुक्त याने अन्यके संयोगसे रहित ऐसा [**पस्सदि**] देखता याने अनुभवता है [**तं**] उसे [**सुद्धणयं**] शुद्धनय [**वियाणीहि**] जानो ।

टीकार्थ– जो देखता है, जानता है (अनुभवता है) शंका-किसको देखता है ?

समाधान– शुद्धात्माको देखता है ।

शंका– किसप्रकार जानता है ?

समाधान– १) **अबद्धपुट्ठं–** जलमें कमलपत्र रहते हुये भी (स्वभावकी दृष्टीसे) कमलपत्र जलको स्पर्श नही करता, जलसे बद्ध नही है, उसीप्रकार संसारमें यह आत्मा द्रव्यकर्म नोकर्मसे संस्पर्श नही करती है ।

२) **अणण्णयं–** स्थास, कोश, कुशूल और घटादि पर्यायोंमे (स्वभावसे) मृत्तिका मृत्तिकारूपही बनी रहती है उसी प्रकार नरनारकादि पर्यायोंमें द्रव्यरूपसे (स्वभावसे) आत्मा शुद्ध शुद्ध ही है ।

रूपेण तमेव स्थासकोशकुशूलघटादिपर्यायेषु मृत्तिकाद्रव्यवत् । अविसेसं अविशेषमभिन्नं ज्ञानदर्शनादिभेदरहितं गुरुत्वस्निग्धत्वपीतत्वादिधर्मेषु सुवर्णवत् असंजुत्तं असंयुक्तमसंबद्धं रागादिविकल्परूपभावकर्मरहितं निश्चयनयेनौष्ण्यरहितजलवदिति तं सुद्धणयं वियाणीहि तं पुरुषमेवाभेदनयेन शुद्धनयविषयत्वाच्छुद्धात्मसाधकत्वाच्छुद्धाभिप्रायपरिणतत्वाच्च शुद्धं विजानीहीति भावार्थः ॥ १६ ॥

अथ द्वितीयगाथायां या पूर्वं भणिता शुद्धात्मानुभूतिः सा चैव निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानानुभूतिरिति प्रतिपादयति–

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं ।
अपदेससुत्तमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं ॥ १७ ॥

॥ आ. ख्या. १५ ॥

---

३) **णियदं–** जिसप्रकार निस्तरंग और उत्तरंग रूप चंचल अवस्थामें समुद्र परिणमता हुआ समुद्र नियत ही है, उसी प्रकार आत्मामें षड्गुणहानिवृद्धिरूप पर्यायें होती रहती हुओ भी आत्मा द्रव्यरूपसे अवस्थित है ।

४) **अविसेसं–** जिसप्रकार गुरुत्व, स्निग्धत्व, पीतत्वादि गुणधर्म कथंचित् विशेषरूपसे सुवर्णमें होते हुओ भी एक अभिन्नता (अभेदता) से एक सुवर्ण ही है, उसी प्रकार आत्मामें ज्ञानदर्शनादि गुणधर्म कथंचित् विशेष (भेद) होते हुओ भी अभेददृष्टिसे आत्मा एक ही है, वहां गुणभेद नहीं है ।

५) **असंजुत्तं–** जिस प्रकार तप्त हुओ जलके तरफ, जलकी शीतस्वभावकी दृष्टिसे देखें तो जल उष्णता रहित ही है, उसी तरह निश्चयनयसे आत्मा रागादिविकल्प रूप भावकर्म रहित ऐसा असंयुक्त, असंबद्ध है । ऐसे पांचों विशेषणोंसे विशिष्ट आत्माको अभेदनय के द्वारा शुद्धनयका विषय होनेसे, शुद्धात्माका साधकत्व होनेसे, शुद्ध अभिप्रायरूप परिणति होनेसे शुद्ध जानो, ऐसा भावार्थ है ।

भावार्थ– चतुर्थ गुणस्थानसे सिद्धतक के जीव अपने आत्माको अबद्धस्पृष्टादि अनुभव करते हैं । यह कथन शुद्धनयका विषय जानो । यहां अबद्ध अस्पृष्ट याने द्रव्यकर्मनोकर्मसे अबद्ध अस्पृष्ट है, अनन्यक याने अन्यत्वरहित नियत याने षड्गुणहानि वृद्धि न होनेवाला ऐसा नियत स्वभाववाला आत्मा है, अविशेष अखंड आत्माके तरफ देखनेपर गुणभेदसे रहित है और असंयुक्त याने रागादिविकल्परूप भावकर्मसे रहित ऐसा असंयुक्त एक अखंड आत्मा है ।

ऐसा अबद्धस्पृष्ट, अनन्यक, नियत, अविशेष और असंयुक्त स्वभाव आत्मानुभव का विषय है (या शुद्धनयका विषय है अथवा शुद्धात्मानुभूति, निर्विकल्प समाधि है) ॥ १६ ॥

पूर्व गाथामें जो शुद्धात्मानुभूति का कथन किया है, वह शुद्धात्मानुभूति ही निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानानुभूति है, ऐसा इस गाथामें प्रतिपादन करते हैं–

गाथार्थ– [**जो**] जो [**अप्पाणं**] आत्माको [**अबद्धपुट्ठं**] अबद्धस्पृष्ट [**अणण्णं**] अनन्य [**अविसेसं**] अविशेष (तथा उपलक्षणसे नियत और असंयुक्त) [**पस्सदि**] देखता है,

जो पस्सदि यः कर्त्ता पश्यति जानात्यनुभवति । कं । **अप्पाणं** शुद्धात्मानं । किंविशिष्टं । **अबद्धपुट्ठं** अत्र बद्धशब्देन संश्लेषरूपबंधो ग्राह्यः । स्पृष्टशब्देन तु संयोगमात्रमिति । द्रव्यकर्म-नोकर्मभ्यामसंस्पृष्टं जले बिसिनीपत्रवत् । **अणण्णं** अनन्यं मृत्तिकाद्रव्यवत् । **अविसेसं** अविशेषम-भिन्नं सुवर्णवत् । नियतमवस्थितं समुद्रवत् । असंयुक्तं परद्रव्यसंयोगरहितं निश्चयनयेननौष्ण्यरहित-जलवदिति । नियतासंयुक्तविशेषणद्वयं सूत्रे नास्ति । कथं लभ्यत इति चेत् सामर्थ्यात् । तदपि कथं, श्रुतप्रकृतसामर्थ्ययुक्तो हि भवति सूत्रार्थः इति वचनात् । स पुरुष **पस्सदि** पश्यति जानाति । किं तत् **जिणसासणं** जिनशासनं अर्थसमयरूपं जिनमतं **सव्वं** सर्वं द्वादशांगपरिपूर्णं । कथंभूतं । **अपदेससुत्तमज्झं** अपदेशसूत्रमध्यं अपदिश्यतेऽर्थो येन स भवत्यपदेशः शब्दो द्रव्यश्रुतमिति यावत् ।

अनुभवता है वह [**सव्वं जिणसासणं**] सर्व जिनशासनको [**पस्सदि**] देखता है, अनुभवता है, जानता है [**अपदेससुत्तमज्झं**] क्योंकि श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा होनेसे ज्ञानकी अनुभूति ही आत्मानुभूति है ।

टीकार्थ– जो देखता है, जानता है, अनुभवता है ।

शंका– किसको अनुभवता है ?

समाधान– जो अपने शुद्ध आत्माको अनुभता है ।

शंका– किस प्रकारके शुद्ध आत्माको अनुभवता है ?

समाधान– अबद्धपुट्ठं–यहाँ बद्ध शब्दसे संश्लेष रूप बंध ग्राह्य है और स्पृष्ट शब्दसे संयोग मात्र ग्राह्य है । जैसे जलमें कमलपत्र असंस्पृष्ट है, उसीतरह आत्माको द्रव्यकर्मनोकर्मसे असंस्पृष्ट अनुभवता है ।

और जिस तरह स्थास, कोश, कुशूल घटादिमें मृत्तिका द्रव्य अनन्य है, उसीतरह नरनारकादि पर्यायोंमें आत्मा अनन्य है । एकही है । अन्य अन्य नहीं है ।

और जिसतरह गुरुत्वादि गुण सुवर्णसे अभिन्न हैं । उसीतरह ज्ञानदर्शनादि गुणोंसे आत्मा अभिन्न होनेसे अविशेष है, अभिन्न है । भिन्न-भिन्न नहीं है । और जैसे समुद्रमें निस्तरंग और उत्तरंग रूप चंचलता होनेपर भी समुद्र नियत ही है, वैसे आत्मामें षड्गुणहानिवृद्धि होते हुए भी आत्मा नियत है । अनियत-वृद्धिहानिरुप नही है ।

और जिस तरह उष्ण जलभी निश्चयनयसे शीत स्वभावमय है, उसी तरह यह आत्मा परद्रव्यसंयोगरहित स्वभावरूप है ।

शंका– नियत और असंयुक्त शब्द सूत्रमें नही है, अर्थमें कैसे लिये है ?

समाधान– " **श्रुतप्रकृतसामर्थ्ययुक्तो हि भवति सूत्रार्थः** " ।

याने सूत्रका अर्थ शास्त्रके प्रकरण सामर्थ्यसे सहित होता है । ऐसा वचन है । इस आधारसे पूर्व गाथामें दिये हुए नियत और असंयुक्त इनका भी संकेत यहां लेना चाहिये । ऐसे विशिष्ट आत्माको देखता है । वह पुरुष देखता है, अनुभवता है ।

सूत्रं परिच्छित्तिरूपं भावश्रुतं ज्ञानसमय इति यावत् तेन शब्दसमयेन वाच्यं ज्ञानसमयेन परिच्छेद्यमपदेशसूत्रमध्यं भण्यते इति। अयमत्र भावः यथा लवणखिल्य एकरसोपि फलशाकपत्रशाकादिपरद्रव्यसंयोगेन भिन्नभिन्नास्वादः प्रतिभात्यज्ञानिनां। ज्ञानिनां पुनरेकरस एव तथात्माप्यखंडज्ञानस्वभावोऽपि स्पर्शरसगंधशब्दनीलपीतादिवर्णज्ञेयपदार्थविषयभेदेनाज्ञानिनां निर्विकल्पसमाधिभ्रष्टानां खंडखंडज्ञानरूपः प्रतिभाति। ज्ञानिनां पुनरखंडकेवलज्ञानस्वरूप एव। इति हेतोरखंडज्ञानरूपे शुद्धात्मनि ज्ञाते सति सर्वं जिनशासनं ज्ञातं भवतीति मत्वा समस्तमिथ्यात्वरागादिपरिहारेण तत्रैव शुद्धात्मनि भावना कर्त्तव्येति। किंच मिथ्यात्वशब्देन दर्शनमोहो रागादिशब्देन चारित्रमोह इति सर्वत्र ज्ञातव्यम् ॥ १७ ॥

शंका– ऐसा विशिष्ट अनुभव करनेवाला वह क्या देखता है (याने क्या अनुभवता है)?

समाधान– सर्वं जिनशासनको द्वादशांगपरिपूर्ण जिनशासनको-अर्थसमयरूपका जिनमतको देखता है–जानता है–अनुभवता है।

शंका– वह अनुभव किसतरह (कैसा) है ?

समाधान– वह अनुभव '**अपदेससुत्तमज्झं**' है याने वह अनुभव ज्ञानानुभूति है।

शंका– '**अपदेससुत्तमज्झं**' याने ज्ञानानुभूति यह अर्थ किसतरह हुआ ?

समाधान– '**अपदेससुत्तमज्झं**' याने अपदेशसूत्रमध्यं। अपदेस याने शब्द (**अपदिश्यतेऽर्थो येन सः भवति अपदेशः**) अर्थात् जिस के द्वारा पदार्थ कहा जाय वह अपदेश-शब्द है। याने अपदेशका अर्थ द्रव्यश्रुत है। सूत्र याने परिच्छित्तिरूप ज्ञानमय भावश्रुत अर्थात ज्ञानसमय अथवा ज्ञानमय आत्मा है। इसप्रकार उस शब्दसमयसे जो वाच्य और ज्ञानसमयसे जो परिच्छेद्य है उसको 'अपदेससूत्रमध्यं' कहा गया है।

इसतरह 'अपदेससुत्तमज्झं' का अर्थ ज्ञानमय आत्माकी अनुभूति याने ज्ञानानुभूति-शुद्धात्मानुभूति ऐसा है। क्योंकि सर्व जिनशासनका-जिनवाणीका सार शुद्धात्मानुभूति है।

इसका भाव यह है कि, जिस प्रकार लवणकी डली एक (खार) क्षार रसवाली होती हुई भी अज्ञानियोंको फलसाग और पत्रसाग आदि परद्रव्यके संयोगसे भिन्न भिन्न स्वादवाली जान पड़ती है। और ज्ञानियोंको वह एक खारी रसवाली ही अनुभवमें आती है। उसी तरह आत्मा भी एक अखंड ज्ञान स्वभाववाली होते हुअे भी अज्ञानियोंको, निर्विकल्पसमाधिभ्रष्टवालोंको स्पर्शरसगंधशब्दनीलपीतादिवर्णरूप ज्ञेयपदार्थके विषयभेदसे वह आत्मा अनेक खंडखंडज्ञानरूप जान पड़ती है। और ज्ञानियोंको वह ही आत्मा अखंडकेवलज्ञानस्वरूप अनुभवमें आती है। इसतरह अखंडज्ञानस्वरूप शुद्धात्माका अनुभव होनेपर सर्व जिनशासनका ज्ञान हो जाता है। यह जानकर समस्त मिथ्यात्वरागादिसे रहित वहाँ ही शुद्धात्मामें (स्वभावमें या शुद्ध पारिणामिकभावमें) भावना (भावभासना याने अनुभव) करना कर्तव्य है। और विशेष यह है कि, मिथ्यात्व शब्दसे दर्शनमोह और रागादि शब्दसे चारित्रमोह ऐसा अर्थ सर्वत्र जानना चाहिये, अर्थात् आत्माका स्वभाव (शुद्ध पारिणामिक भाव) दर्शनमोहसे और चारित्रमोहसे रहित है, ऐसे शुद्धात्माकी अनुभूति करना कर्तव्य है, ऐसा सर्वत्र जानना चाहिये। ऐसी शुद्धात्मानुभूति चतुर्थ गुणस्थानसे शुरु होती है ॥ १७ ॥

अथ तृतीयगाथायां सम्यग्ज्ञानादिकं सर्वं शुद्धात्मभावनामध्ये लभ्यत इति निरूपयति–

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य ।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥ १८ ॥

आदा शुद्धात्मा **खु** स्फुटं **मज्झ** मम भवति क्व विषये **णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे** सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रप्रत्याख्यानसंवरयोगभावनाविषये । योगे कोऽर्थः? निर्विकल्पसमाधौ परमसामायिके परमध्याने चेत्येको भावः । भोगाकांक्षानिदानबंधशल्यादिभावरहिते शुद्धात्मनि ध्याते सर्वं सम्यग्ज्ञानादिकं लभ्यत इत्यर्थः । एवं शुद्धनयव्याख्यानमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथात्रयं गतम् ॥ १८ ॥

इत ऊर्ध्वं भेदाभेदरत्नत्रयमुख्यत्वेन गाथात्रयं कथ्यते । तद्यथा-प्रथमगाथायां पूर्वार्द्धेन भेदरत्नत्रयभावनामपरार्द्धेन चाभेदरत्नत्रयभावनां कथयति–

अब इस तृतीय गाथामें शुद्धात्मभावभासनामें (शुद्धात्मानुभूतिमें) सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रादि सब की प्राप्ती होती है ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**खु**] निश्चयसे [**मज्झ णाणे**] मेरे ज्ञानमें [**आदा**] आत्मा है, [**मे दंसणे**] मेरे दर्शनमे [**य**] और [**चरित्ते**] मेरे चारित्रमें [**आदा**] आत्मा है, [**पच्चक्खाणे**] मेरे प्रत्याख्यानमें [**आदा**] आत्मा है [**य**] और [**मे संवरे योगे**] मेरे संवरमें तथा योगमें (शुद्धोपयोगमें) [**आदा**] आत्मा है ।

टीकार्थ– निश्चय से शुद्धात्मा मेरा है ।

शंका– किस विषयमें मेरा शुद्धात्मा है ?

समाधान– सम्यग्ज्ञान, दर्शन चारित्र, प्रत्याख्यान, संवर और शुद्धोपयोगकी भावभासनामें मेरा शुद्धात्मा है ।

शंका– 'योगे' इस शब्दका क्या अर्थ है ?

समाधान– निर्विकल्पसमाधिमें, परमसामायिकमें, परमध्यानमें इन सबका एक ही भाव है । भोग, आकांक्षा, निदान, बंध, शल्यादिभावसे रहित (पारिणामिक भावस्वरूप) स्वशुद्धात्माका ध्यान करनेसे सर्व सम्यग्ज्ञानादिक (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, प्रत्याख्यान, संवर, और शुद्धोपयोग) की प्राप्ती होती है । इस प्रकार शुद्धनयके (आत्मानुभूतिके) कथन की मुख्यतासे प्रथम स्थलमें तीन गाथायें समाप्त हुई ॥ १८ ॥

इसके आगे भेदाभेदरत्नत्रयकी मुख्यतासे तीन गाथायें कही जाती हैं । वह इस प्रकार है– प्रथम गाथामें पूर्वार्द्धसे भेदरत्नत्रयकी भावनाका और उत्तरार्द्धसे अभेदरत्नत्रयकी भावनाका कथन किया है–

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो ॥ १९ ॥

॥ आ. ख्या. १६ ॥

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि सेवितव्यानि साधुना व्यवहारनयेन नित्यं सर्वकालं **ताणि पुण जाण तिण्णिवि** तानि पुनर्जानीहि त्रीण्यपि **अप्पाणं चेव** शुद्धात्मानं चैव **णिच्छयदो** निश्चयतः शुद्धनिश्चयतः। अयमत्रार्थः पंचेंद्रियविषय-क्रोधकषायादिरहितनिर्विकल्पसमाधिमध्ये सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमस्तीति ॥ १९ ॥

अथ गाथाद्वयेन तामेव भेदाभेदरत्नत्रयभावनां दृष्टांतदार्ष्टांताभ्यां समर्थयति–

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण ॥ २० ॥

॥ आ. ख्या. १७ ॥

गाथार्थ– [**साहुणा**] साधकों के द्वारा अथवा साधु पुरुषों के द्वारा [**दंसणणाणचरित्ताणि**] दर्शन, ज्ञान और चारित्र [**णिच्चं**] नित्य अथवा निरंतर [**सेविदव्वाणि**] सेवन करना चाहिये, [**पुण**] और [**ताणि तिण्णिवि**] वे तीन हैं तो भी [**णिच्छयदो**] निश्चयनयसे [**अप्पाणं एव**] एक आत्मा ही है [**जाण**] ऐसा जानो [**च**] और अपने एक आत्माका ही अनुभव करो।

टीकार्थ– व्यवहारनयसे साधु पुरुषों के द्वारा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका नित्य सेवन करना योग्य है। और शुद्धनिश्चयसे वे तीनों भी एक आत्मा ही है ऐसा जानो। इसका अर्थ यह है कि, पंचेंद्रियविषयक्रोधकषायादिसे रहित ऐसे निर्विकल्पसमाधिमें सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्र ये तीनों हैं। अर्थात् निर्विकल्पसमाधि याने सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमय आत्मा ऐसाही है। अथवा अभेदरत्नत्रय याने निर्विकल्पसमाधि है।

इससे यह सिद्ध होता है कि, शुद्धात्मानुभूति होते समय ही श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र एक ही समयमें सम्यक्‌रूपसे परिणमित होते हैं। याने चतुर्थ गुणस्थान प्रगट होते समयमें सम्यक्‌श्रद्धा सम्यक्‌ज्ञान और सम्यक्चारित्र होता है। तभी वह अविरत सम्यग्दृष्टि होता हुआ भी मोक्षमार्गस्थ है। तत्त्वार्थसूत्रमें कहा भी है, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ १९ ॥

यहां उस ही भेदाभेदारत्नत्रयकी भावनाका दृष्टांत-दार्ष्टांतसे समर्थन करते हैं–

गाथार्थ– [**जह णाम**] जैसे [**कोवि**] कोई [**अत्थत्थीओ पुरिसो**] धनका चाहनेवाला पुरुष [**रायाणं**] राजाको [**जाणिऊण**] जानकर [**सद्दहदि**] श्रद्धान करता है [**तो**] उसके वाद [**तं**] उसकी [**पयत्तेण अणुचरदि**] अच्छी तरह सेवा करता है [**एवं हि**]

एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो ।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण ॥ २१ ॥

॥ आ. ख्या. – १८ ॥

जह यथा **णाम** अहो स्फुटं वा **को वि** कोऽपि कश्चित् **पुरिसो** पुरुषः **रायाणं** राजानं **जाणिऊण** छत्रचामरादिराजचिह्नैर्ज्ञात्वा **सद्दहदि** श्रद्धत्ते अयमेव राजेति निश्चिनोति **तो** ततो ज्ञानश्रद्धानानंतरं **तं** तं राजानं **अणुचरदि** अनुचरति आश्रयत्याराधयति । कथंभूतःसन् **अत्थत्थीओ** अर्थार्थिको जीवितार्थी **पयत्तेण** प्रयत्नेन सर्वतात्पर्येणेति दृष्टांतगाथा गता । **एवं** अनेन प्रकारेण **हि** स्फुटं **जीवराया** शुद्धजीवराजा **णादव्वो** निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञातव्यः । **तह य** तथैव **सद्दहेदव्वो** अयमेव नित्यानंदैकस्वभावो रागादिरहितः शुद्धात्मेति निश्चेतव्यः **अणुचरिदव्वो य** अनुचरितव्यश्च निर्विकल्पसमाधिनानुभवनीयः । **पुणो** पुनः **सो चेव** स चैव शुद्धात्मा **दु** पुनः **मोक्खकामेण** मोक्षार्थिना पुरुषेणेति दार्ष्टांतः । इदमत्र तात्पर्यं भेदाभेदरत्नत्रयभावनारूपया परमात्मचिंतयैव पूर्यतेऽस्माकं किं विशेषेण शुभाशुभरूपविकल्पजालेनेति । एवं भेदाभेदरत्नत्रय-व्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयं द्वितीयस्थले गतम् ॥ २०, २१ ॥

इसी तरह [**मोक्खकामेण**] मोक्ष को चाहनेवाले के द्वारा [**जीवराया**] जीवरूप राजा [**णादव्वो**] जानना योग्य है [**पुण य**] और फिर [**तह**] उसी तरह [**सद्दहेदव्वो**] श्रद्धान करना चाहिये [**दु च**] और उसके वाद [**सो एव अणुचरिदव्वो**] उसकाही अनुचरण करना चाहिये [**य**] और तन्मय हो जाये ।

टीकार्थ– जैसे कोई धनका इच्छुक पुरुष छत्रचामरादि राजचिह्नोंसे राजाको जानकर श्रद्धा करता है, " यह राजा है " ऐसा निश्चय करता है उस ज्ञानश्रद्धानके वाद उस राजाकी सर्व प्रयत्नसे सेवा करता है ।

उसी प्रकार निश्चयसे शुद्ध जीवराजाको निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानसे जानना चाहिये । उसी प्रकार वह नित्यानंद एक स्वभाववाला, रागादिरहित शुद्धात्मा है ऐसा निश्चित करना चाहिये और निर्विकल्प समाधिद्वारा अनुभव करना चाहिये कि यह ही शुद्धात्मा है । इसलिये मुमुक्षुद्वारा शुद्धात्मानुभव करना योग्य है ।

इसका तात्पर्य यह है कि, भेदाभेदरत्नत्रयकी भावनारूप परमात्माके चिंतनसे याने शुद्धात्मानुभवसे सव कुछ सिद्धि हो जाती है, तो फिर विशेष शुभाशुभरूप विकल्पजालसे क्या प्रयोजन है ? याने शुभाशुभविकल्प हेय है । इस तरह भेदाभेदरत्नत्रयके व्याख्यानकी मुख्यतासे तीन गाथायें द्वितीय स्थलमें समाप्त हुई ॥ २०, २१ ॥

अथ स्वतंत्रव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयं कथ्यते—तद्यथा स्वपरभेदविज्ञानाभावे जीवस्तावदज्ञानी भवति। परं किंतु कियत्कालपर्यंतं इति न ज्ञायते एवं पृष्टे सति प्रथमगाथायां प्रत्युत्तरं ददाति—

कम्मे णोकम्मह्मि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव॥ २२॥

॥ आ. ख्या— १९॥

कम्मे कर्मणि ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मणि रागादिभावकर्मणि च **णोकम्मह्मि य** शरीरादिनोकर्मणि च अहमिदि अहमिदि प्रतीतिः **अहकं च कम्म णोकम्मं** अहकं च कर्म नोकर्मेति प्रतीतिः यथा घटे वर्णादयो गुणा घटाकारपरिणतपुद्गलस्कंधाश्च वर्णादिषु च घट इत्यभेदेन **जा** यावंतं कालं **एसा** एषा प्रत्यक्षीभूता **खलु** स्फुटं **बुद्धी** तथा कर्मनोकर्मणा सह शुद्धबुद्धैकस्वभावनिजपरमात्मवस्तुनःऐक्यबुद्धिः **अप्पडिबुद्धो** अप्रतिबुद्धः स्वसंवित्तिशून्यो बहिरात्मा **हवदि** भवति **ताव** तावत्कालमिति। अत्र भेदविज्ञानमूलां शुद्धात्मानुभूतिं स्वतः स्वयंबुद्धापेक्षया परतो वा बोधितबुद्धापेक्षया ये लभंते ते पुरुषाः शुभाशुभबहिर्द्रव्येषु विद्यमानेष्वपि मुकुरुन्दवदविकारा भवंतीति भावार्थः॥ २२॥

आगे स्वतंत्रव्याख्यान की मुख्यतासे तीन गाथायें कही जाती हैं। अब, जबतक जीवको स्व आत्माका और परका भेदविज्ञान नही है तबतक वह अज्ञानी है यह ठीक है लेकिन वह कितने कालतक इस भेदविज्ञानको नहीं जानता है, ऐसा पूछने पर श्री आचार्य जी इस गाथामें उत्तर देते हैं—

गाथार्थ— [**जा**] जबतक इस आत्माकी [**कम्मे**] ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, भावकर्म [**य**] और [**णोकम्मह्मि**] शरीरादि नोकर्म में [**अहं**] यह मैं हूँ [**च**] और [**अहकं कम्म णोकम्मं इदि**] मुझ में (आत्मामें अथवा आत्माके स्वभावमें) यह कर्म नोकर्म है इस प्रकार [**खलु**] निश्चयसे [**एसा बुद्धी**] ऐसी बुद्धि है [**ताव**] तबतक [**अप्पडिबुद्धो**] वह आत्मा अप्रतिवुद्ध [**हवदि**] है।

टीकार्थ— ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, रागादि भावकर्म और शरीरादि नोकर्ममें 'यह मैं हूँ' और मुझमें ये द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म हैं, ऐसी प्रतीति करता है।

जैसे घटमें वर्णादिक गुण हैं, घटाकार परिणतही पुद्गलस्कंध हैं और वर्णादिकमें घट है ऐसा अभेदसे (एकत्वसे) जव प्रत्यक्षीभूत कर्म, नोकर्म, भावकर्मके साथ शुद्धबुद्ध एक स्वभावमय निजपरमात्मवस्तु की एकता हैं, ऐसी एकत्वबुद्धि है तबतक, वह अप्रतिबुद्ध, वहिरात्मा, स्वसंवेदनशून्य (शुद्धात्मानुभूतिसे रहित) हैं। यहां पर भेदविज्ञानमूलक जो शुद्धात्मानुभूति है, वह स्वयंबुद्धको अपने आप और बोधितबुद्धोंको दूसरे के द्वारा प्राप्त होती है इसतरह जो जीव यहाँ भेदविज्ञानमूलक शुद्धात्मानुभूतिको प्राप्त करते हैं, वे पुरुष शुभाशुभवहिर्द्रव्योंके विद्यमान होते हुअे भी (संसार अवस्थामें द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म विद्यमान होते हुअे भी) दर्पण के समान निर्विकार रहते हैं, ऐसा भावार्थ है॥ २२॥

अथ शुद्धजीवे यदा रागादिरहितपरिणामस्तदा मोक्षो भवति। अजीवे देहादौ यदा रागादिपरिणामस्तदा वंधो भवतीत्याख्याति–

जीवे व अजीवे वा संपदि समयह्मि जत्थ उवजुत्तो।
तत्थेव बंध मोक्खो होदि समासेण णिद्दिट्ठो ॥ २३ ॥

जीवे व स्वशुद्धजीवे वा अजीवे वा देहादौ वा **संपदि समयह्मि** वर्त्तमानकाले **जत्थ उवजुत्तो** यत्रोपयुक्तः तन्मयत्वेनोपादेयबुद्धया परिणतः **तत्थेव** तत्रैव अजीवे जीवे वा **बंधमोक्खो** अजीवदेहादौ बंधो, जीवे शुद्धात्मनि मोक्षः हवदि भवति **समासेण णिद्दिट्ठो** संक्षेपेण सर्वज्ञैर्निर्दिष्ट इति। अत्रैवं ज्ञात्वा सहजानंदैकस्वभावनिजात्मनि रतिः कर्तव्या। तद्विलक्षणे परद्रव्ये विरतिरित्यभिप्रायः॥ २३॥

अथाशुद्धनिश्चयेनात्मा रागादिभावकर्मणां कर्ता अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन द्रव्यकर्मणामित्यावेदयति–

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।
णिच्छयदो ववहारा पोग्गलकम्माण कत्तारं ॥ २४ ॥

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स यं करोति रागादिभावामात्मा स तस्य भावस्य परिणामस्य कर्ता भवति। **णिच्छयदो** अशुद्धनिश्चयनयेन अशुद्ध भावानां, शुद्ध-

---

जहाँ जब इस जीवकी शुद्धजीवमें (स्वभावमें, शुद्धपारिणामिकभावमें) रागादिरहित-परिणाम (शुद्धोपयोगपरिणामस्वरूप स्वशुद्धात्मानुभव) होता है तब मोक्ष होता है और जब अजीवमें-देहादिकमें अशुद्धात्मानुभव याने रागादिपरिणाम होता है तब बंध होता है, ऐसा कथन करते हैं–

गाथार्थ– [**संपदि समयह्मि**] वर्तमानकालमें [**जीवे व**] शुद्धपारिणामिक भावमें अथवा [**अजीवे**] अनात्मभावमें [**जत्थ उवजुत्तो**] जहां पर उपयुक्त है [**तत्थेव**] वहां ही [**बंधमोक्खो वा**] बंध अथवा मोक्ष है ऐसा [**समासेण**] संक्षेपमें [**णिद्दिट्ठो**] सर्वज्ञभगवान ने निर्दिष्ट किया है।

टीकार्थ– स्वशुद्ध जीवमें (पारिणामिक भावमें) अथवा देहादिकमें (अनात्मभावमें) वर्तमान-कालमें जहां उपयोग तन्मय हुआ, उपादेय बुद्धिसे परिणत हुआ है वहाँ पर ही अजीवमें अथवा जीवमें बंध अथवा मोक्ष होता है। याने अनात्म देहादिकमें तन्मय होनेसे बंध होता है, स्वभावमें तन्मय होनेसे मोक्ष होता है, ऐसा संक्षेपसे सर्वज्ञ भगवानने कहाँ हैं। यहाँ इसप्रकार जानकर सहजानंदएकस्वभावरूप निजात्मामें रति (अनुभूति) करना कर्तव्य है। उसके विपरीत भावमें (पर्यायमें या अनात्मामें) परद्रव्यमें विरति (रति न) करना, ऐसा अभिप्राय है॥ २३॥

यहाँ अशुद्धनिश्चयनयसे आत्मा रागादि भावकर्मका कर्ता और अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे द्रव्यकर्मका कर्ता है, ऐसा कथन करते हैं।–

गाथार्थ– [**णिच्छयदो**] निश्चयनयसे [**आदा**] आत्मा [**जं भावं**] जिस भावको [**कुणदि**] करता है [**सो**] वह आत्मा [**तस्स भावस्स**] उस भावका [**कत्ता**] कर्ता

निश्चयनयेन शुद्धभावानां कर्तेति, भावानां परिणमनमेव कर्तृत्वं। **ववहारा** अनुपचरितासद्भूत-व्यवहारनयात् **पोग्गलकम्माण** पुद्गलद्रव्यकर्मादीनां **कत्तारं** कर्तेति। कर्तारं इति कर्मपदं कर्तेति कथं भवतीति चेत्, प्राकृते क्वापि कारकव्यभिचारो लिंगव्यभिचारश्च। अत्र रागादीनां जीवः कर्तेति भणितं ते च संसारकारणं ततः संसारभयभीतेन मोक्षार्थिना समस्तरागादिविभावरहिते शुद्धद्रव्यगुणपर्यायि स्वरूपे निजपरमात्मनि भावना कर्तव्येत्यभिप्रायः। एवं स्वतंत्रव्याख्यान-मुख्यत्वेन तृतीयस्थले गाथात्रयं गतम् ॥ २४ ॥

[**होदि**] होता है, [**ववहारा**] व्यवहारसे [**पोग्गलकम्माणं**] पुद्गलकर्मका [**कत्तारं**] कर्ता है।

टीकार्थ– जो आत्मा जिस रागादि भावको करता है वह उस भावका कर्ता होता है। **णिच्छयदो** (अभेदोपचारसे) अशुद्धनिश्चयनयसे आत्मा अशुद्धभावोंका कर्ता है। (अभेदो-पचारसे) शुद्धनिश्चयसे आत्मा शुद्धभावोंका कर्ता है। भावोंके परिणमनका ही कर्तृत्व है। (अभेदोपचारसे) अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे पुद्गलद्रव्यकर्मादिका कर्ता है। परम-शुद्धनयसे जीव अकर्ता[1] है।

शंका– 'कत्तारं' यह द्वितीयविभक्त्यंत कर्मपद है उसका शब्द 'कर्ता' इस प्रथमांत कर्तृपद अर्थमें किसप्रकार प्रयोग किया गया?

समाधान– प्राकृतभाषामें कभी कभी कारकव्यभिचार और लिंगव्यभिचार देखा जाता है।

यहाँ रागादिकोंका कर्ता जीव है और वे संसारके कारण है ऐसा कहा है इस कारणसे संसारसे भयभीत मुमुक्षुके द्वारा समस्त रागादिविभावों से रहित शुद्धद्रव्यगुणपर्याय (अभेदवृत्ति) स्वरूप निजपरमात्माकी भावना करनी चाहिये।

ऐसा अभिप्राय है। इसतरह स्वतंत्रव्याख्यानमुख्यतासे तृतीयस्थलमें तीन गाथायें हो गयी ॥ २४ ॥

जैसे कोई अज्ञानी, अग्नि ही इंधन है, इंधन ही अग्नि है, अग्नि ही पहले इंधन था, इंधन ही पूर्वमें अग्नि थी, भविष्यमें अग्नि ही इंधन होगा, और इंधन ही अग्नि होगी ऐसा कहता है; वैसे ही भूत, वर्तमान और भविष्य काल में जो देहरागादि परद्रव्यको स्व आत्मामें जोड़ता है वह अप्रतिबुद्ध, बहिरात्मा, मिथ्याज्ञानी है ऐसा कहते हैं–

---

१ टीप– बृहद्द्रव्यसंग्रह चूलिका "कत्ता" शुद्धपारिणामिक परमभावग्राहकेन शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन यद्यपि बंधमोक्षद्रव्यभावरूपपुण्यपापघटपटादीनां अकर्ता जीवः"

अर्थ– शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकशुद्धद्रव्यार्थिकनयसे जीव यद्यपि बंधमोक्षद्रव्यभावरूपपुण्यपाप और घटपटादिका अकर्ता है।

अथ यथा कोप्यप्रतिबुद्धः अग्निरिंधनं भवति इंधनमग्निर्भवति अग्निरिंधनमासीत् इंधनमग्निरासीत् अग्निरिंधनं भविष्यति इंधनमग्निर्भविष्यतीति वदति तथा यः कालत्रयेपि देहरागादिपरद्रव्यमात्मनि योजयति सोऽप्रतिबुद्धो वहिरात्मा मिथ्याज्ञानी भवतीति प्ररूपयति–

अहमेदं एदमहं अहमेदस्सेव होमि मम एदं ।
अण्णं जं परदव्वं सचित्ताचित्तमिस्सं वा ।। २५ ।।

।। आ. ख्या. २० ।।

आसि मम पुव्वमेदं अहमेदं चावि पुव्वकालह्मि ।
होहिदि पुणो वि मज्झं अहमेदं चावि होस्सामि ।। २६ ।।

।। आ. ख्या. २१ ।।

एदं तु असंभूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो ।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो ।। २७ ।।

।। आ. ख्या. २२ ।।

अहमेदं एदमहं अहं इदं, परद्रव्यं इदं अहं भवामि । **अहमेदस्सेव हि होमि मम एदं** अहमस्य सम्बन्धी भवामि मम सम्बन्धीदं । **अण्णं जं परदव्वं** देहादन्यद्भिन्नं पुत्रकलत्रादि यत्परद्रव्यं **सचित्ताचित्तमिस्सं वा** सचित्ताचित्तमिश्रं वा । तच्च गृहस्थापेक्षया सचित्तं स्त्र्यादि, अचित्तं

गाथार्थ– [**अण्णं जं परदव्वं**] जो पुरुष अपनेसे अन्य जो परद्रव्य [**सचित्ताचित्त मिस्सं वा**] सचित्त स्त्री पुत्रादिक, अचित्त धनधान्यादिक अथवा मिश्र ग्रामनगरादिक है, उन्हे यह समझता है कि, [**अहमेदं**] मै यह हूँ [**एदमहं**] ये द्रव्य मुझ स्वरूप है, [**एदस्स अहं**] मै इनका हूँ [**एदं मम होमि**] ये मेरे है [**एदं मम पुव्वं आसि**] ये मेरे पूर्वमें थे [**एदस्स अहं पि पुव्वं आसि**] इनका मैं भी पहले था [**पुणो**] तथा [**एदं मज्झं होहिदि**] ये मेरे आगामी होंगे [**अहमेदं चावि होस्सामि**] मैं भी इनका आगामी होऊंगा [**एदं तु असंभूदं**] ऐसा असद्भूत अथवा झूठा [**आदवियप्पं**] आत्मविकल्प [**करेदि**] करता है वह [**संमूढो**] मूढ है [**दु**] और जो पुरुष [**भूदत्थं**] परमार्थ वस्तुस्वरूपको अथवा भूतार्थको [**जाणंतो**] जानता हुआ [**तं**] ऐसा झूठा विकल्प [**ण करेदि**] नहीं करता है वह [**असंमूढो**] मूढ नहीं है, ज्ञानी है ।

टीकार्थ– अहमेदं एदमहं में यह परद्रव्य हूँ, यह परद्रव्य है सो मैं हूँ, मैं इसका संबंधि हूं और मेरे ये संबधि है । देहसे भिन्न ऐसे पुत्रकलत्र आदि जो परद्रव्य है वे सचित्त, अचित्त अथवा मिश्र ऐसे तीन प्रकारके हैं । उनमें गृहस्थ की अपेक्षा स्त्री आदि सचित्त, सुवर्णादि अचित्त, और साभरण (अलंकारादिसहित) स्त्री आदि मिश्र है । अथवा तपोधनकी (मुनिकी) अपेक्षासे छात्रादि सचित्त, पिच्छकमंडलु पुस्तकादि अचित्त और उपकरण सहित छात्रादि मिश्र हैं । अथवा रागादि सचित्त, द्रव्यकर्मादि अचित और उभय द्रव्यकर्मभावकर्मरूप मिश्र है ।

सुवर्णादि, मिश्रं साभरणस्त्र्यादि । अथवा तपोधनापेक्षया सचित्तं छात्रादि, अचित्तं पिच्छकमंडलु-पुस्तकादि मिश्रमुपकरणसहितछात्रादि । अथवा सचित्तं रागादि, अचित्तं द्रव्यकर्म्मादि, मिश्रं द्रव्यभावकर्म्मद्वयम् । अथवा विषयकषायरहितनिर्विकल्पसमाधिस्थपुरुषापेक्षया सचित्तं सिद्धपरमेष्ठि-स्वरूपं, अचित्तं पुद्गलादिपंचद्रव्यरूपं, मिश्रं गुणस्थानजीवस्थानमार्गणादिपरिणतसंसारिजीव-स्वरूपमिति वर्तमानकालापेक्षया गाथा गता । **आसीत्यादि । आसि मम पुव्वमेदं** आसीत् मम पूर्वमेतत् **अहमेदं चावि पुव्वकालह्मि** अहमिदं चैव पूर्वकाले **होहिदि पुणो वि मज्झं** भविष्यति पुनरपि मम **अहमेदं चावि होस्सामि** अहमिदं चैव पुनर्भविष्यामि इति भूतभाविकालापेक्षया गाथा गता । **एदमित्यादि । एदं** इमं तु पुनः **असंभूदं** असद्भूतं कालत्रयपरद्रव्यसंबन्धिमिथ्यारूपं **आदवियप्पं** आत्मविकल्पं अशुद्धनिश्चयनयेन जीवपरिणामं **करेदि** करोति **सम्मूढो** सम्यङ्मूढः अज्ञानी बहिरात्मा । **भूदत्थं** भूतार्थं निश्चयनयं **जाणंतो** जानन् सन् **ण करेदि** न करोति । **दु** पुनः कालत्रयपरद्रव्यसम्वन्धिमिथ्याविकल्पं **असंमूढो** असंमूढः सम्यग्दृष्टिरंतरात्मा ज्ञानी भेदाभेद-रत्नत्रयभावनारतः ।

अथवा विषयकषायरहित निर्विकल्पसमाधिस्थ पुरुषकी अपेक्षासे सिद्धपरमेष्ठिस्वरूप (याने दुसरे सिद्धोंका चितवन अथवा अपनी भाविकालकी सिद्ध पर्यायका चितवन) सचित्त है, पुद्गलादि पंचद्रव्यरूप (पुद्गल, आकाश, धर्म, अधर्म, काल ये पांच द्रव्य अथवा उन पांच द्रव्यका चितवन अथवा अशुद्धपर्यायका चितवन) अचित्त हैं और गुणस्थान, जीवस्थान मार्गणादि परिणत संसारी-जीवस्वरूप (गुणस्थान, जीवस्थान मार्गणादि परिणत संसारी जीव अथवा गुणस्थान, जीवस्थान मार्गणादि पर्यायका स्वरूप) मिश्र है। इस तरह वर्तमानकाल की अपेक्षासे गाथा समाप्त हुअी। अव **आसि मम पुव्वमेदं** ये सव मेरे पहले थे मैं भी इनका पहले था, ये सव आगे भी मेरे होंगे और मैं भी आगे इनका होऊंगा। इस प्रकार भूत और भविष्यकाल की अपेक्षासे गाथा हो गयी। लेकिन इस प्रकार अशुद्धनिश्चयनयसे यह जीव भूत, वर्तमान और भविष्य के परद्रव्यके साथ मिथ्या आत्मविकल्प-जीवका परिणाम करता हैं, या मिथ्या असद्भूत परिणाम करता है, वह अज्ञानी, बहिरात्मा है, सम्मूढ है – मोही है ।

भूतार्थनयको, शुद्धनिश्चयनयको जाननेवाला ये असद्भूत आत्मविकल्प नही करता है, और तीनकालके परद्रव्यसंबंधी मिथ्याविकल्प नहीं करनेवाला असंमूढ-मोहरहित, सम्यग्दृष्टि-अंतरात्मा ज्ञानी भेदाभेदरत्नत्रयमें रत है ।

और विशेष कहते हैं– जैसे कोई अज्ञानी तीनों कालोंमें अग्निही इंधन है और इंधनही अग्नि है ऐसा निश्चयसे-एकांतसे–अभेदसे कहता है, उसी तरह (वैसे) देहरागादि परद्रव्यही मैं हूँ, पहले भी मैं ही परद्रव्यरागादिरूप था और आगे भविष्यमें भी परद्रव्यरागादिरूप होऊंगा इत्यादि कहता है, वह अज्ञानी वहिरात्मा है। उसके विपरीत ज्ञानी, सम्यग्दृष्टि, अंतरात्मा है। इस प्रकार ज्ञानी, अज्ञानी जीवका लक्षण जानकर निर्विकार स्वसंवेदन है लक्षण जिसका ऐसे

किंच यथा कोऽप्यज्ञानी अग्निरिंधनम् इंधनमग्निः कालत्रये निश्चयेनैकांतेनाभेदेन वदति तथा देहरागादिपरद्रव्यमिदानीमहं भवामि पूर्वमहमासं पुनरग्रे भविष्यामीति यो वदति सोऽज्ञानी बहिरात्मा तद्विपरीतो ज्ञानी सम्यग्दृष्टिरंतरात्मेति। एवमज्ञानिज्ञानिजीवलक्षणं ज्ञात्वा निर्विकारस्वसंवेदनलक्षणे भेदज्ञाने स्थित्वा भावना कार्येति तामेव भावनां दृढयति। तथा कोऽपि राजसेवकपुरुषो राजशत्रुभिः सह संसर्गं कुर्वाणः सन् राजाराधको न भवति तथा परमात्माराधक-पुरुषस्तत्प्रतिपक्षभूतमिथ्यात्वरागादिभिः परिणममानः परमात्माराधको न भवतीति भावार्थः। एवमप्रतिबुद्धलक्षणकथनेन चतुर्थस्थले गाथात्रयं गतम् ॥ २५, २६, २७ ॥

अथाप्रतिबुद्धसंबोधनार्थं व्यवसायः क्रियते।–

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं।
बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्तो ॥ २८ ॥

॥ आ. ख्या. २३ ॥

सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।
कह सो पुग्गलदव्वी–भूदो जं भणसि मज्झमिणं ॥ २९ ॥

॥ आ. ख्या. २४ ॥

भेदज्ञानमें स्थित होकर भावभासना (शुद्धात्मानुभूति) करनी चाहिये, उस भावनाको ही दृढ़ करते हैं– जैसे कोई राजाका सेवक पुरुष राजाके शत्रुओंके साथ संसर्ग रखता है, तो वह राजाका आराधक नहीं हो सकता, उसी प्रकार परमात्माकी आराधना करनेवाला पुरुष शुद्धात्माके प्रतिपक्षभूत (शुद्धपारिणामिकभावके प्रतिपक्षभूत) मिथ्यात्वरागादिके साथ (अशुद्धात्माके साथ) परिणमन करनेवाला (अशुद्धात्माका विचार करनेवाला या अशुद्धात्माका चितवन करनेवाला) परमात्माका आराधक नहीं होता है, ऐसा भावार्थ है। इस प्रकार चतुर्थस्थलमें अप्रतिबुद्धके या अज्ञानीके लक्षण का कथन करनेवाली तीन गाथायें हो गयी ॥ २५, २६, २७ ॥

यहां अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) को समझाने के लिये यत्न किया जाता है–

अन्वयार्थ– [**अण्णाणमोहिदमदी**] जिसकी मति अज्ञानसे मोहित हैं [**बहुभावसंजुत्तो**] और जो मोह, राग, द्वेष आदि अनेक भावों से युक्त है ऐसा [**जीवो**] जीव [**भणदि**] कहता है कि, [**इणं**] यह [**बद्धमबद्धं च तहा**] शरीरादिक बद्ध तथा धनधान्यादिक अबद्ध [**पोग्गलं दव्वं**] पुद्गलद्रव्य [**मज्झं**] मेरा है। आचार्य कहते हैं कि [**सव्वण्हुणाणदिट्ठो**] सर्वज्ञके ज्ञान के द्वारा देखा गया जो [**णिच्चं**] सदा [**उवओगलक्खणो**] उपयोगलक्षणवाला [**जीवो**] जीव है [**सो**] वह [**पुग्गलदव्वीभूदो**] पुद्गलद्रव्यरूप [**कह**] कैसे हो सकता है? [**जं**] जिससे कि [**भणसि**] तू कहता है कि [**मज्झमिणं**] यह पुद्गलद्रव्य मेरा है? [**जदि**] यदि [**सो**] जीवद्रव्य [**पुग्गलदव्वीभूदो**] पुद्गलद्रव्यरूप हो जाय और [**इदरं**] पुद्गलद्रव्य

जदि सो पुग्गलदव्वी-भूदो जीवत्तमागदं इदरं।
तो सक्का वुत्तुं जे मज्झमिणं पुग्गलं दव्वं॥ ३०॥

॥ आ. ख्या. २५ ॥

अण्णाणेत्यादि व्याख्यानं क्रियते। **अण्णाणमोहिदमदी** अज्ञानमोहितमतिः **मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं** ममेदं भणति पुद्गलं द्रव्यं। कथंभूतं **बद्धमबद्धं च** बद्धं संबद्धं देहरूपं। अबद्धं च असंबद्धं देहाद्भिन्नं पुत्रकलत्रादि **तहा** तथा **जीवे** जीवद्रव्ये **बहुभावसंजुत्तो** मिथ्यात्वरागादि-बहुभावसंयुक्तः। अज्ञानी जीवो देहपुत्रकलत्रादिकं परद्रव्यं ममेदं भणतीत्यर्थः। इति प्रथमगाथा गता। अथास्य बहिरात्मनः संबोधनं क्रियते—रे दुरात्मन् **सव्वण्हु** इत्यादि **सव्वण्हुणाणदिट्ठो** सर्वज्ञज्ञान-दृष्टः **जीवो** जीवो जीवपदार्थः। कथंभूतो दृष्टः। **उवओगलक्खणो** केवलज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणः **णिच्चं** नित्यं सर्वकालं **कह** कथं **सो** सः जीवः **पुग्गलदव्वीभूदो** पुद्गलद्रव्यं जातः न कथमपि येन कारणेन **भणसि** भणसि त्वं **मज्झमिणं** ममेदं पुद्गलद्रव्यं इति द्वितीया गाथा गता। **जदि**

[**जीवत्तं**] जीवत्वको [**आगदं**] प्राप्त करे [**तो**] तो [**वुत्तुं सत्तो**] तू कह सकता है [**जे**] कि [**इणं पुग्गलं दव्वं**] यह पुद्गल द्रव्य [**मज्झं**] मेरा हैं (किन्तु ऐसा तो नहीं होता)।

टीकार्थ– '**अण्णाणेत्यादि**' का व्याख्यान किया जाता है। अज्ञानमोहितमतिवाला जीव "यह पुद्गलद्रव्य मेरा है" ऐसा कहता है।

शंका– पुद्गलद्रव्यको वह मेरा है ऐसा कैसे कहता है?

समाधान– देहको बद्ध, देहसे भिन्न जो पुत्रकलत्रादिको अबद्ध कहता है और जीव-द्रव्यमें मिथ्यात्वरागादिभाव संयुक्त होता हुआ अज्ञानी जीव "यह देह पुत्र कलत्र-पत्नी आदि परद्रव्य मेरा है" ऐसा कहता है। इस तरह प्रथम गाथा समाप्त हुई।

इस बहिरात्माको संबोधन किया जाता है– रे दुरात्मन्। सर्वज्ञ के ज्ञानसे देखा हुआ जीवपदार्थ है।

शंका– वह जीवपदार्थ कैसा देखा गया है?

समाधान– सर्वकालमें–नित्य केवलज्ञानदर्शनोपयोग लक्षणवाला जीवपदार्थ है। ऐसा देखा गया है।

वह जीव पुद्गल द्रव्यको कैसे प्राप्त होता है? तो वह जीव पुद्गलद्रव्यको किसी भी प्रकारसे प्राप्त नहीं होता है। जिस कारणसे तू "यह पुद्गलद्रव्य मेरा हैं" ऐसा कह सकेगा (याने ऐसा नही कह सकता है) इस प्रकार दुसरी गाथा समाप्त हुई।

यदि वह जीव पुद्गलद्रव्यको प्राप्त होता है। तथा इतरद्रव्य (पुद्गलद्रव्य) जीवत्वको प्राप्त हो जायेगा तो इस कारणसे 'यह पुद्गलद्रव्य मेरा है' ऐसा कहा जा सकता है लेकिन ऐसा नही है। जैसे वर्षाकालमें लवण पिघलकर जलरूप होता है और ग्रीष्मकालमें वही जल

इत्यादि–**जदि** यदि चेत् **सो** सः जीवः **पुद्गलदव्वीभूदो** पुद्गलद्रव्यं जातः **जीवो** जीवः। **जीवत्तं** जीवत्वं **आगदं** आगतं प्राप्तं **इवरं** इतरत् शरीरपुद्गलद्रव्यं **तो सक्का वुत्तुं** ततः शक्यं वक्तुं **जे** अहो अथवा यस्मात्कारणात् **मज्झमिणं पुग्गलं दव्वं** ममेदं पुद्गलद्रव्यमिति। न चैवं यथा वर्षासु लवणमुदकीभवति ग्रीष्मकाले जलं लवणीभवति। तथा यदि चैतन्यं विहाय जीवद्रव्यं पुद्गलद्रव्यस्वरूपेण परिणमति पुद्गलद्रव्यं च मूर्त्तत्वमचेतनत्वं विहाय चिद्रूपं चामूर्तत्वं च भवति तदा भवदीयवचनं सत्यं भवति। रे दुरात्मन् न च तथा, प्रत्यक्षविरोधात्। ततो जीवद्रव्यं देहाद्भिन्नममूर्त्तं शुद्धबुद्धैकस्वभावं सिद्धमिति। एवं देहात्मनोर्भेदज्ञानं ज्ञात्वा मोहोदयोत्पन्नसमस्तविकल्पजालं त्यक्त्वा निर्विकारचैतन्यचमत्कारमात्रे निजपरमात्मतत्त्वे भावना कर्तव्येति तात्पर्यं। इत्यप्रतिबुद्धसंबोधनार्थं पंचमस्थले गाथात्रयं गतं ॥ २८, २९, ३० ॥

अथ पूर्वपक्षपरिहाररूपेण गाथाष्टक कथ्यते, तत्रैकगाथायां पूर्वपक्षः गाथाचतुष्टये निश्चयव्यवहारसमर्थनरूपेण परिहारः। गाथात्रये निश्चयस्तुतिरूपेण परिहार इति षष्ठस्थले समुदायपातनिका। तद्यथा–प्रथमतस्तावत् यदि जीवशरीरयोरेकत्वं न भवति, तदा तीर्थंकराचार्यस्तुतिर्वृथा भवतीत्यप्रतिबुद्धशिष्यः पूर्वपक्षं करोति–

लवणरूप (डलीरूप) होता है। उसी प्रकार यदि चैतन्यत्व छोडकर जीवद्रव्य पुद्गलरूपसे परिणमित होता हो, और पुद्गलद्रव्य मूर्तत्व, अचेतनत्वको छोडकर चैतन्यरूप, अमूर्तरूप होता हो, तो आपका वचन सत्य होगा। किन्तु हे दुरात्मन्! उस प्रकार नहीं होता है, क्योंकि प्रत्यक्षमें विरोध दिखाई देता है। याने जीव मूर्तत्व, अचेतनत्व रूप नहीं होता है और पुद्गल अमूर्त चेतनत्वरूप नहीं होता है। इसलिये जीवद्रव्य देहादिसे भिन्न, अमूर्त, शुद्धबुद्धएकस्वभाववाला सिद्ध होता है।

इस प्रकार देह-आत्माका भेदज्ञान जानकर (आगम भाषासे) मोहोदयसे उत्पन्न समस्त विकल्प जालको छोडना कर्तव्य है (अध्यात्मभाषासे) निर्विकार चैतन्यचमत्कारमात्र निजपरमात्मतत्वमें, पारिणामिकभावमें अथवा स्वभावसिद्धमें भावभासना–(शुद्धात्मानुभूति) करना कर्तव्य है, यह भावार्थ है। इस तरह पंचमस्थलमें अप्रतिवुद्ध (अज्ञानी) को समझानेके लिये तीन गाथायें समाप्त हुई ॥ २८, २९, ३० ॥

आगे पूर्वपक्षके परिहारूपसे आठ गाथायें कही जाती है, वहां प्रथमगाथामें पूर्वपक्षका कथन है, उसका परिहार निश्चयव्यवहार के समर्थन रूप चार गाथाओंमें है। तीन गाथाओंमें निश्चयस्तुति द्वारा उसका परिहार है, इस प्रकार छट्ठे स्थलमें समुदायपातनिका है।

अब प्रथममें अप्रतिवुद्ध (अज्ञानी) शिष्य पूर्वपक्ष स्थापन करता है कि, यदि जीव और शरीरमें एकत्व नहीं है तो तीर्थंकरोंकी और आचार्योंकी जो स्तुतियाँ शरीरको आधार लेकर की गयी है, वें वृथा (व्यर्थ) ठहरती हैं–

जदि जीवो ण शरीरं तित्थयरायरियसंथुदी चेव।
सव्वावि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो ॥ ३१ ॥

॥ आ. ख्या. २६ ॥

जदि जीवो ण सरीरं हे भगवन्! यदि जीवः शरीरं न भवति **तित्थयरायरियसंथुदी चेव** तर्हि "**द्वौ कुंदेंदुतुषारहारधवलावित्यादि**" तीर्थंकरस्तुतिः "**देसकुलजाइसुद्धा**" इत्याचार्यस्तुतिश्च **सव्वावि हवदि मिच्छा** सर्वापि भवति मिथ्या **तेण दु आदा हवदि देहो** तेन त्वात्मा भवति देहः। इति ममैकांतिकी प्रतिपत्तिः। एवं पूर्वपक्षगाथा गता ॥ ३१ ॥

हे शिष्य! यदुक्तं त्वया तन्न घटते यतो निश्चयव्यवहारनयपरस्परसाध्यसाधकभावं न जानासि त्वमिति—

ववहारणयो भासदि जीवो देहो य हवदि खलु इक्को।
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदावि एकट्ठो ॥ ३२ ॥

॥ आ. ख्या. २७ ॥

गाथार्थ— [**जदि**] यदि, जो [**जीवो**] जीव है वह [**सरीरं ण**] शरीर नहीं है, तो [**तित्थयरायरियसंथुदी च**] तीर्थंकरोंकी और आचार्योंकी स्तुतियां [**सव्वावि**] सब भी [**मिच्छा**] मिथ्या [**हवदि**] होती हैं, [**तेण दु**] इसलिए यह सिद्ध होता है कि [**आदा**] आत्मा [**एव**] ही [**देहो**] देह [**हवदि**] है।

टीकार्थ— हे भगवन्! यदि जीव शरीररूप नहीं है, तो "**द्वौ कुंदेंदुतुषारहारधवलौ**" इत्यादि तीर्थंकरोंकी, आचार्योंकी (शरीरके आधारपर की हुओ) स्तुति सब भी मिथ्या होती (ठहरती) है, लेकिन वह मिथ्या नही है इसलिये आत्मा ही देह है अथवा देह ही आत्मा है ऐसी मेरी निश्चयसे प्रतीति है (श्रद्धा है अथवा विश्वास है)। इस प्रकार पूर्वपक्षकी गाथा हो गयी ॥ ३१ ॥

श्री आचार्यदेव उत्तर देते है कि, हे शिष्य। आपने जो कहा है, वह ठीक नहीं है क्योंकि निश्चयनयका और व्यवहारनयका जो परस्पर साध्यसाधकभाव है आप जानते नहीं है—

गाथार्थ— [**ववहारणयो**] व्यवहारनय तो [**भासदि**] कहता है कि [**जीवो य देहो**] जीव और देह [**इक्को खलु**] एकही [**हवदि**] है [**दु**] लेकिन [**णिच्छयस्स**] निश्चयनयका कहना है कि [**जीवो य देहो**] जीव और देह ये दोनों तो [**कदावि**] कभी भी [**एकट्ठो**] एक पदार्थ [**ण**] नही है।

ववहारणयो भासदि व्यवहारनयो भाषते ब्रूते किं ब्रूते ? **जीवो देहो य हवदि खलु इक्को** जीवो देहश्च भवति खल्वेकः **ण दु णिच्छयस्य जीवो देहो य कदावि एक्कट्ठो** न तु निश्चयस्याभिप्रायेण जीवो देहश्च कदाचित्काले एकार्थ एको भवति। यथा कनकलधौतयोः समावर्त्तितावस्थायां व्यवहारेणैकत्वेपि ~~अनयेन~~ निश्चयेन भिन्नत्वं तथा जीवदेहयोरिति भावार्थः। ततः कारणात् व्यवहारनयेन देहस्तवनेनात्मस्तवनं युक्तं भवतीति नास्ति दोषः ॥ ३२ ॥

तथाहि–

इणमण्णं जीवादो देहं पुग्गलमयं थुणित्तु मुणी।
मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं ॥ ३३ ॥

॥ आ. ख्या. २८ ॥

इणमण्णं जीवादो देहं पुग्गलमयं थुणित्तु मुणी इदमन्यद्भिन्नं जीवात्सकाशाद्देहं पुद्गलमयं स्तुत्वा मुनिः। **मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं** पश्चाद्व्यवहारेण मन्यते संस्तुतो वंदितो मया केवली भगवानिति। यथा सुवर्णरजतयोरेकत्वे सति शुक्लं सुवर्णमिति व्यवहारो न निश्चयः। तथा शुक्लरक्तोत्पलवर्णः केवलिपुरुष इत्यादिदेहस्तवनेन व्यवहारेणात्मस्तवनं भवति न निश्चयनयेनेति तात्पर्यार्थः ॥ ३३ ॥

टीकार्थ– व्यवहारनय कहता है कि, जीव और देह एक ही है लेकिन निश्चयनयके अभिप्रायसे जीव और देह कभी भी एक पदार्थ नही है। जैसे सुवर्ण और चांदी मिली हुओ अवस्थामें व्यवहारनयसे एक होते हुओ भी निश्चयनयसे उसी मिली हुओ अवस्था में भी सुवर्ण भिन्न है और चांदी भिन्न है। उसी तरह इस संसार अवस्थामें देह और आत्मा व्यवहारनयसे एक होते हुओ भी निश्चयनयसे देह भिन्न है, आत्मा भिन्न है। ऐसा भावार्थ है। इसलिये व्यवहारनयसे देहके स्तवनसे आत्माका स्तवन मानना दोषयुक्त नहीं हैं ॥ ३२ ॥

गाथार्थ– इसीको फिर स्पष्ट करते हैं– [**जीवादो अण्णं**] जीवसे भिन्न [**इणं पुग्गलमयं देहं**] इस पुद्गलमयी देह की [**थुणित्तु**] स्तुति करके [**मुणी**] मुनि [**मण्णदि हु**] असलमें ऐसा मानता है कि [**मए**] मैंने [**केवली भयवं**] केवली भगवानकी [**संथुदो**] स्तुति की और [**वंदिदो**] वंदना की।

टीकार्थ– जीवसे भिन्न इस पुद्गलमय देहकी स्तुति करके मुनि व्यवहारनयसे ऐसा मानता है कि, मैंने केवली भगवानकी स्तुति और वंदना की। जैसे सोना और चांदी एकत्र किया है उसको "सफेद सुवर्ण है" ऐसा व्यवहारसे कहते हैं, लेकिन निश्चयसे सुवर्ण सफेद नहीं है। उसी प्रकार "केवली भगवान शुक्ल, लाल कमल के वर्ण (रंग) वाले है" इत्यादि देहका स्तवन करनेपर व्यवहारनयसे उनकी आत्माका स्तवन होता है लेकिन निश्चयनयसे वह आत्माका स्तवन नहीं है। यह तात्पर्य अर्थ है ॥ ३३ ॥

अथ निश्चयनयेन शरीरस्तवने केवलिस्तवनं न भवतीति दृढयति—

तं णिच्छये ण जुज्जदि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो।
केवलिगुणे थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि ॥ ३४ ॥

॥ आ. ख्या. २९ ॥

तं णिच्छयेणजुज्जदि तत्पूर्वोक्तदेहस्तवने सति केवलिस्तवनं निश्चयेन न युज्यते। कथमिति चेत्। ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो यतः कारणाच्छरीरगुणाः शुक्लकृष्णादयः केवलिनो न भवन्ति। तर्हि कथं केवलिनः स्तवनं भवति? केवलिगुणे थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि केवलिगुणान् अनन्तज्ञानादीन् स्तौति यः स तत्त्वं वास्तवं स्फुटं वा केवलिनं स्तौति। यथा शुक्लवर्णरजतशब्देन सुवर्णं न भण्यते तथा शुक्लादिकेवलिशरीरस्तवनेन चिदानंदैकस्वभावं केवलिपुरुषस्तवनं निश्चयनयेन न भवतीत्यभिप्रायः ॥ ३४ ॥

अथ शरीरप्रभुत्वेपि सत्यात्मनः शरीरस्तवनेनात्मस्तवनं न भवति निश्चयनयेन। तत्र दृष्टांतमाह—

णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि।
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति ॥ ३५ ॥

॥ आ. ख्या. ३० ॥

यहां निश्चयनयसे शरीरकास्तवन करनेपर केवलीका स्तवन नहीं होता है यह दृढ करते हैं—

गाथार्थ— [तं] वह स्तवन [णिच्छये] निश्चयमें [ण जुज्जदि] ठीक नही है [हि] क्योंकि [सरीरगुणा] शरीरके गुण [केवलिणो] केवली के [ण होंति] नहीं हैं [जो] जो [केवलिगुणे] केवलीके गुणोंकी [थुणदि] स्तुति करता है [सो] वही [तच्चं] परमार्थसे [केवलिं] केवली की [थुणदि] स्तुति करता है।

टीकार्थ— पूर्वोक्तप्रकारसे देहका स्तवन करते हुओ निश्चयनयसे केवलीका स्तवन नही होता है। शंका— क्यो? समाधान— क्योंकि जो शुक्ल, कृष्ण आदि शरीरके गुण हैं, वे केवलीके गुण नहीं हैं। शंका— तो फिर केवली का स्तवन कैसे होता है? समाधान— जो जीव केवलीके अनंतज्ञानादि गुणोंकी स्तुति करता है वह वास्तवमें केवलीकी स्तुति करता है। जैसे शुक्लवर्णवाली चांदी का वर्णन करनेसे सुवर्ण का वर्णन नहीं कहा जाता है, वैसे शुक्ल आदि शब्दसे केवलीके शरीरका स्तवन करनेसे निश्चयनयसे चिदानंद एक स्वभावरूप केवलीपुरुषका स्तवन नहीं होता है, यह अभिप्राय है॥ ३४॥

आत्माको शरीरका प्रभुत्व होनेपरभी (याने आत्मा और शरीर एक क्षेत्रावगाह होनेपरभी) निश्चयनयसे शरीरका स्तवन करनेसे आत्माका स्तवन नहीं होता है, इसीका दृष्टांत कहते हैं—

यथा प्राकारोपवनखातिकादिनगरवर्णने कृतेऽपि नैव राज्ञो वर्णना कृता भवति तथा शुक्लादिदेहगुणे स्तूयमानेऽप्यनंतज्ञानादिकेवलिगुणाः स्तुता न भवन्तीत्यर्थः। इति निश्चयव्यवहार-रूपेण गाथाचतुष्टयं गतम् ॥ ३५ ॥

अथानंतरं यदि देहगुणस्तवनेन निश्चयस्तुतिर्न भवति तर्हि कीदृशी भवतीति पृष्टे सति द्रव्येंद्रियभावेंद्रियपंचेंद्रियविषयान् स्वसंवेदनलक्षणभेदविज्ञानेन जित्वा योऽसौ शुद्धमात्मानं संचेतयते स जिन इति जितेंद्रिय इति सा चैव निश्चियस्तुतिः परिहारं ददाति।

जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू ॥ ३६ ॥

॥ आ. ख्या. ३१ ॥

जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं य कर्त्ता द्रव्येंद्रियभावेंद्रिय(पंचेन्द्रिय)विषयान् जित्वा शुद्धज्ञानचेतनागुणेनाधिकं परिपूर्णं शुद्धात्मानं मनुते जानात्यनुभवति संचेतयति **तं खलु**

गाथार्थ– [**जह**] जैसे [**णयरम्मि**] नगरका [**वण्णिदे**] वर्णन करनेपर [**रण्णो**] राजाका [**वण्णणा**] वर्णन [**ण वि कदा होंति**] किया गया ऐसा नहीं होता है उसीतरह [**देहगुणे थुव्वंते**] देहके गुणोंका स्तवन होनेसे [**केवलिगुणा**] केवलीके गुणोंका [**थुदा ण**] स्तवन नहीं [**होंति**] होता हैं।

टीकार्थ– जैसे प्राकार, उपवन, और खाई आदिके वर्णनसे किसी राजाके नगरका वर्णन करने पर भी राजाका वर्णन किया है, ऐसा नही होता है। वैसे केवली भगवानके शरीरके गुणोंकी स्तुति करनेपर भी केवलीके अनंतज्ञानादि गुणोंका स्तवन नही किया गया इस तरह निश्चयव्यवहाररूपसे चार गाथायें समाप्त हुई ॥ ३५ ॥

अब यदि देह के गुणोंका स्तवन करनेसे निश्चयस्तुति नहीं होती है तो निश्चय स्तुति कैसी होती हैं? ऐसा पूछनेपर श्री आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि द्रव्येंद्रिय, भावेंद्रिय, पंचेंद्रियके विषयोंको स्वसंवेदन लक्षणवाले भेदविज्ञानसे (शुद्धात्मानुभवसे) जितकर जो शुद्धात्माको अनुभवता है वह जिन है, जितेंद्रिय है, इसप्रकार निश्चयस्तुति है–

गाथार्थ– [**जो**] जो [**इंदिये**] इंद्रियोंको [**जिणित्ता**] जीतकर [**णाणसहा-वाधियं**] ज्ञानस्वभावद्वारा अन्यद्रव्यसे अधिक [**आदं**] आत्माको [**मुणदि**] जानता है [**तं खलु**] उसको नियमसे [**जे णिच्छिदा साहू**] जो निश्चयनयमें स्थित साधुलोक हैं [**ते**] वे [**जिदिंदियं**] जितेंद्रिय ऐसा [**भणंति**] कहते हैं।

टीकार्थ– जो द्रव्येंद्रियभावेंद्रियपंचेंद्रियके विषयोंको जीतकर शुद्धज्ञानचेतनागुणसे अधिक शुद्धात्माको मानता है, जानता है, संचेतन करता है उस पुरुषको निश्चयसे निश्चयनयके जाननेवाले साधुलोक जितेंद्रिय कहते हैं।

जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू तं पुरुषं खलु स्फुटं जितेंद्रियं भणंति ते साधवः। के ते। ये निश्चिताः निश्चियज्ञा इति। किंच ज्ञेयाः स्पर्शादिपंचेंद्रियविषयाः ज्ञायकानि स्पर्शनादिद्रव्येंद्रियभावेंद्रियाणि तेषां योऽसौ जीवेन सह संकरः संयोगः स एव दोषः तं दोषं परमसमाधिबलेन योऽसौ जयति सा चैव प्रथमा निश्चयस्तुतिरिति भावार्थः ॥ ३६ ॥

अथ तामेव स्तुतिं द्वितीयप्रकारेण भाव्यभावकसंकरदोषपरिहारेण कथयति। अथवा उपशमश्रेण्यपेक्षया जितमोहरूपेणाह–

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विंति ॥ ३७ ॥

॥ आ. ख्या. ३२ ॥

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं यः पुरुषः उदयागतं मोहं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकाग्र्यरूपनिर्विकल्पसमाधिबलेन जित्वा शुद्धज्ञानगुणेनाधिकं परिपूर्णमात्मानं मनुते जानाति भावयति **तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विंति** तं साधुं जितमोहं रहितमोहं परमार्थविज्ञायका ब्रुवंति कथयन्तीति। इयं द्वितीया स्तुतिरिति। किं च भाव्यभावकसंकरदोषपरिहारेण

और विशेष कहते हैं–स्पर्शादिपंचेंद्रियके विषय ज्ञेय हैं और उनको जाननेवाली द्रव्येंद्रियभावेंद्रियरूप स्पर्शनादि पांचों इंद्रियाँ हैं उनका 'जीवके साथ जो संकर-संयोग संबंध है' वहीं दोष है। उस दोषको परमसमाधिबलसे (स्वानुभूतिसे) जो जीत लेता है वही जिन है, जितेंद्रिय है वह ही पहली निश्चय स्तुति है, ऐसा भावार्थ है ॥ ३६ ॥

यहाँ उसी निश्चयस्तुतिको दूसरे प्रकारसे भाव्य (संसारी जीव) भावक (मोहकर्म) इन दोनोमें जो संकरदोष है उसका परिहार करने रूप कथन करते हैं अथवा उपशम श्रेणीकी अपेक्षा आत्मा जितमोहरूप है ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [जो तु] जो मुनि [**मोहं**] मोहको (दर्शनमोहको) [**जिणित्ता**] जीतकर [**आदं**] अपने आत्माको [**णाणसहावाधियं**] ज्ञानस्वभाव से अन्यद्रव्यभावों से अधिक [**मुणदि**] जानता है [**तं**] उस [**साहुं**] मुनिको (साधकको) [**परमट्ठवियाणया**] परमार्थके जाननेवाले [**जिदमोहं**] जितमोह ऐसा [**विंति**] जानते हैं, कहते हैं।

टीकार्थ– जो पुरुष उदयागत मोहको सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी एकतारूप, ऐकाग्र्यरूप निर्विकल्पसमाधिबलसे जीतकर शुद्धज्ञानगुणसे अधिक परिपूर्ण अपनी आत्माको शुद्धपारिणामिकभावको अथवा कारणपरमात्माको अथवा स्वभावसिद्धको श्रद्धा करता है, जानता है, अनुभवता है उस साधुको 'जितमोह' मोह से रहित ऐसा परमार्थके जाननेवाले कहते हैं। यह द्वितीय स्तुति है।

और विशेष कहते हैं–

द्वितीया स्तुतिर्भवतीति पातनिकायां भणितं भवद्भिस्तत्कथं घटते इति भाव्यो रागादिपरिणत आत्मा, भावको रंजक उदयागतो मोहस्तयोर्भाव्यभावकयोः शुद्धजीवेन सह संकरः संयोगः संबंधः स एव दोषः। तं दोषं स्वसंवेदनज्ञानबलेन योऽसौ परिहरति सा द्वितीया स्तुतिरिति भावार्थः। एवमेव च मोहपदपरिवर्त्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायसूत्राण्येकादश पंचानां श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणामिंद्रियसूत्रेण पृथग्व्याख्यातत्वाद्व्याख्येयानि। अनेनैव प्रकारेणान्यान्यप्यसंख्येयलोकमात्रविभावपरिणामरूपाणिज्ञातव्यानि ॥ ३७ ॥

अथवा भाव्यभावकभावाभावरूपेण तृतीया निश्चयस्तुतिः कथ्यते। अथवा तामेव क्षपकश्रेण्यपेक्षया क्षीणमोहरूपेणाह–

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स।
तहिया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं ॥ ३८ ॥

॥ आ. ख्या. ३३ ॥

शंका– आपने पातनिकामें कहा था कि, भाव्य भावक में परस्पर जो संकर दोष है उसका निराकरण करनेसे द्वितीय स्तुति होती है वह यहाँ कैसे घटित होती है?

समाधान– भाव्य याने रागादिरूप परिणत हुआ आतमा और भावक-रंजक याने उदयमें आया हुआ मोहकर्म है। इन भाव्यभावकोंका जो शुद्धजीवके साथ संकर अर्थात् संयोग संबंध है वह ही दोष है। उस दोषको जो पुरुष स्वसंवेदनज्ञान के बलसे (स्वानुभूतिसे याने शुद्धपारिणामिकभावका वेदन करनेसे) नष्ट करता है (परास्त करता है अथवा परिहार करता है) वह जिन है। यह दुसरी स्तुति है।

इसी प्रकार यहां मोह पदके बदले (स्थानपर) राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, ये ग्यारह और श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना, स्पर्शन ये पांच इंद्रिय सूत्रके द्वारा पृथक् पृथक् लेकर कथन करना चाहिये। और इसी प्रकार और भी असंख्यात लोकप्रमाण विभाव परिणाम है उनको भी जानना चाहिये ॥ ३७ ॥

यहां भाव्यभावकभावके अभावरूपसे तीसरी निश्चयस्तुति कही जाती है। अथवा उसको ही क्षपकश्रेणी की अपेक्षासे क्षीणमोहरूपसे कथन करते हैं–

गाथार्थ– [**जिदमोहस्स दु साहुस्स**] जिसने मोहको जीत लिया है ऐसे साधुके [**जइया**] जिस समय [**खीणो मोहो**] मोह क्षीण [**हविज्ज**] होता है [**तहिया**] उस समय [**णिच्छयविदूहिं**] निश्चयके जानने वाले [**हु**] निश्चयकर [**सो**] उस साधुको [**खीणमोहो**] क्षीणमोह ऐसा [**भण्णदि**] कहते हैं।

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स पूर्वगाथाकथित क्रमेणजितमोहस्य सतो जातस्य यदा निर्विकल्पसमाधिकाले क्षीणो मोहो भवेत्। कस्य ? साधोः शुद्धात्मभावकस्य **तहिया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं** तदा तु गुप्तिसमाधिकाले स साधुः क्षीणमोहो भण्यते। कैर्निश्चयविद्भिः परमार्थज्ञायकैर्गणधरदेवादिभिः। इयं तृतीया निश्चयस्तुतिरिति। भाव्यभावकभावाभावरूपेण कथं जाता स्तुतिरिति चेत् – भाव्यो रागादिपरिणत आत्मा, भावको रंजक उदयागतो मोहस्तयोर्भाव्यभावकयोर्भावः स्वरूपं तस्याभावः क्षयो विनाशः सा चैव तृतीया निश्चयस्तुतिरित्यभिप्रायः। एवं रागद्वेष इत्यादि दंडको ज्ञातव्यः॥ ३८॥

टीकार्थ– पूर्वगाथामें कहे हुये क्रमसे जितमोहको उत्पन्न हुअे साधुका (याने शुद्धात्मानुभव करनेवाले साधकका) जब निर्विकल्पसमाधिकालमें (स्वानुभवमें) मोह क्षीण होता है तव उस गुप्तिसमाधिकालमें उस साधक (शुद्धात्मानुभव करनेवाले साधक) को क्षीणमोहवाला कहते हैं।

शंका– ऐसा कौन कहते हैं ?

समाधान– निश्चयनयको जाननेवाले, परमार्थको जाननेवाले गणधरादिदेवोंद्वारा शुद्धात्मानुभवसाधकको क्षीणमोहवाला कहा जाता हैं।

इस प्रकार तीसरी निश्चयस्तुति हो गयी।

शंका– यहां भाव्यभावक के अभाव रुपसे यह स्तुति कैसे उत्पन्न हुअी ?

समाधान– भाव्य याने रागादिपरिणत आत्मा और भावक-रंजक याने उदयमें आनेवाला मोह है। सो यहां आत्मा वीतराग परिणत (शुद्धोपयोग परिणत) है और उसको भावक-मोह कुछ नही कर सकता, उस मोहकी संवरपूर्वक निर्जरा हो जाती है, इसलिये भाव्यभावक का अभाव हो गया। इसलिये भाव्यभावक का अभाव, क्षय अथवा विनाश होता है।

[चतुर्थ गुणस्थान प्रगट होते समय वह आत्मा निर्विकल्प समाधिमें जाता है उस समय दर्शनमोहका अभाव होता है याने मिथ्यात्व अनंतानुबंधीरागद्वेषका अभाव होता है और क्षपकश्रेणीमें दशवे गुणस्थानके अंतमे लोभ नष्ट होता है, बारहवा गुणस्थान प्रगट होता है उसको क्षीणमोह गुणस्थान कहते हैं। यहां इस द्रव्यानुयोग ग्रंथमें चतुर्थ गुणस्थान प्रगट होनेके समय ज्ञानचेतना शुरु होती है और चतुर्थ गुणस्थानसे सिद्ध तक सबको ज्ञानचेतना ही होती है। इसलिये शुद्धात्मानुभव लेनेवाले चतुर्थ गुणस्थानसे आगेके सभी क्षीणमोहवाले है, जिन है, प्रभु है, जितेंद्रिय है। एकसे तीन गुणस्थानवाले जीव अज्ञान चेतनावाले हैं। चतुर्थ गुणस्थानके शुद्धात्मानुभूतिमें चेतनोपयोग शुद्धपारिणामिक भावसे तन्मय है, शुद्धोपयोग है, पर्याय (अनित्य) होनेसे शुद्धपारिणामिकभावसे तादात्म्य नहीं है क्यों कि शुद्धपारिणामिकभाव नित्य (ध्रुव) है।]

यह तृतीय निश्चिय स्तुति है, ऐसा अभिप्राय है। यहां पर भी मोह के स्थानपर राग, द्वेष इ. असंख्यात विभाव भावके जो दंडक है वे लगा लेना चाहिये॥ ३८॥

इति प्रथमगाथायां पूर्वपक्षस्तदनंतरं गाथाचतुष्टये निश्चयव्यवहारसमर्थनरूपेण परिहारस्ततश्च गाथात्रये निश्चयस्तुतिकथनरूपेण च परिहार इति पूर्वपक्षपरिहारगाथाष्टकसमुदायेन षष्ठस्थलं गतं ।

अथ रागादिविकल्पोपाधिरहितं स्वसंवेदनज्ञानलक्षणप्रत्याख्यानविवरणरूपेण गाथाचतुष्टयं कथ्यते । तत्र स्वसंवेदनज्ञानमेव प्रत्याख्यानमिति कथनरूपेण प्रथमगाथा प्रत्याख्यानविषये दृष्टांतरूपेण द्वितीया चेति गाथाद्वयं । तदनंतरं मोहपरित्यागरूपेण प्रथमगाथा ज्ञेयपदार्थपरित्यागरूपेण द्वितीया ⊗ । एवं सप्तमस्थले समुदायपातनिका । तथाहि – तीर्थंकराचार्यस्तुतिर्निरर्थिका भवतीति पूर्वपक्षबलेन जीवदेहयोरेकत्वं कर्तुं नायातीति ज्ञात्वा शिष्य इदानीं प्रतिबुद्धः सन् हे भगवन् ! रागादीनां किं प्रत्याख्यानमिति पृच्छति । "इति पृच्छति" कोर्थः इति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति । एवं प्रश्नोत्तररूपपातनिकाप्रस्तावे सर्वत्रेति शब्दस्यार्थो ज्ञातव्यः ।

इस तरह प्रथमगाथामें पूर्वपक्ष का कथन किया है तदनंतर चार गाथाओंमें निश्चयव्यवहार के समर्थनरूपसे उसका परिहार किया है । और तीन गाथाओंमें निश्चयस्तुतिके कथन रूपसे उसका परिहार किया है । इसतरह पूर्वपक्ष और उसका परिहार करके आठ गाथाओं के समूह से छठा स्थल समाप्त हो गया ।

अब रागादिविकल्पोंकी उपाधिसे रहित स्वसंवेदनज्ञान (शुद्धात्मानुभव) है लक्षण जिसका ऐसे प्रत्याख्यानके वर्णनसे चार गाथायें कही जाती हैं । उनमें स्वसंवेदन ज्ञान (शुद्धात्मानुभव) ही प्रत्याख्यान है, ऐसे कथनरूपसे प्रथमगाथा है, और प्रत्याख्यानके विषयमें दृष्टांतरूपसे दुसरी गाथा है । उसके बाद मोहके परित्याग रूपसे प्रथम गाथा है और ज्ञेयपदार्थके परित्यागरूपसे दुसरी गाथा हैं । इस प्रकार सातवे स्थलमें समुदाय पातनिका है ।

यदि जीव और शरीर को एक नहीं माना, तो तीर्थंकर और आचार्यकी जो स्तुति की गयी है वह व्यर्थ होगी इस प्रकार पूर्वपक्षके बलसे जीव और शरीरादिमें एकपना मानना ठीक नहीं है ऐसा जानकर प्रतिबुद्ध (ज्ञानी) होकर शिष्य प्रश्न करता है कि, हे भगवन् ! रागादीका प्रत्याख्यान कैसा किया जाय ? तो श्री आचार्य देव उत्तर देते है । इसप्रकार सर्वत्र प्रश्नोत्तररूपपातनिका में 'इति' शब्दका अर्थ 'प्रश्न पूछनेपर उत्तर दिया जा रहा है,' ऐसा जानना चाहिये ।

गाथार्थ– [णाणं] स्वसंवेदनज्ञानसे [सव्वे भावे] अपनेसे सब भावोंको [परे त्ति] पर है ऐसा [णादूण] जानकर उनका [पच्चक्खाई] प्रत्याख्यान हो जाता है [तह्मा] इसलिये [णाणं] स्वसंवेदन (शुद्धात्मानुभूति) ही [णियमा] निश्चयसे [पच्चक्खाणं] प्रत्याख्यान [मुणेदव्वं] मानना चाहिये (जानना चाहिये) ।

णाणं सव्वे भावे पच्चक्खाई परेत्ति णादूण ।
तह्मा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं ।। ३९ ।।

।। आ. ख्या. ३४ ।।

णाणं सव्वे भावे पच्चक्खाई परेत्ति णादूण जानातीति व्युत्पत्त्या स्वसंवेदनज्ञानमात्मेति भण्यते तं (तत्) ज्ञानं कर्तृ मिथ्यात्वरागादिविभावं परस्वरूपमिति ज्ञात्वा प्रत्याख्याति त्यजति निराकरोति **तह्मा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं** तस्मात्कारणात् निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानमेव प्रत्याख्यानं नियमान्निश्चयात् मंतव्यं ज्ञातव्यमनुभवनीयमिति । इदमत्र तात्पर्यं– परमसमाधिकाले स्वसंवेदनज्ञानबलेन शुद्धमात्मानमनुभवति तदेवानुभवनं निश्चयप्रत्याख्यानमिति ।। ३९ ।।

अथ प्रत्याख्यानविषये दृष्टांतमाह–

जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणं ति जाणिदुं चयदि ।
तह सव्वे परभावे, णाऊण विमुंचदे णाणी ।। ४० ।। आ.ख्या. ३५।।

जह णाम को वि पुरिसो परदव्वमिणं ति जाणिदुं चयदि यथा नाम अहो स्फुटं वा कश्चित्पुरुषो वस्त्राभरणादिकं परद्रव्यमिदमिति ज्ञात्वा त्यजति **तह सव्वे परभावे णाऊण विमुंचदे णाणी** तथा तेन प्रकारेण सर्वान् मिथ्यात्वरागादिपरभावान् पर्यायान् स्वसंवेदनज्ञानबलेन ज्ञात्वा

टीकार्थ– 'जानाति इति ज्ञानं' इस प्रकार ज्ञान शब्दकी व्युत्पत्ति है, इस व्युत्पत्तिसे स्वसंवेदन ज्ञान (शुद्धात्मानुभव) ही आत्मा इस नामसे कहा जाता है। वह स्वसंवेदनज्ञान मिथ्यात्वरागादिभावको परस्वरूप है ऐसा जानकर त्यागता है, प्रत्याख्यान करता है, निराकरण करता है, छोडता है।

इसलिये निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान (शुद्धात्मानुभव) ही नियमसे प्रत्याख्यान है ऐसा मानना चाहिये, जानना चाहिये, अनुभव करना चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि, परमसमाधिकालमें स्वसंवेदनज्ञान के बल से शुद्धात्माको (शुद्धपारिणामिकद्रव्यको) अनुभवता है। वह स्वानुभव ही निश्चय प्रत्याख्यान है। (स्वानुभूति लेते समय विकल्पभाव अपने आप नष्ट होते हैं।) ।। ३९ ।।

यहां प्रत्याख्यान के बारेमें दृष्टांत कहते हैं–

गाथार्थ– [**जह णाम**] जैसे लोकमें [**कोवि पुरिसो**] कोई पुरुष [**परदव्वं इणं ति जाणिदुं**] परवस्तुको यह परवस्तु है ऐसा जानकर [**चयदि**] परवस्तु को त्यागता है [**तह**] उसी तरह [**णाणी**] ज्ञानी [**सव्वे**] सब [**परभावे**] परभावोंको [**णाऊण**] ये परभाव है ऐसा जानकर [**विमुंचदे**] उनको छोडता है।

टीकार्थ– जैसे कोई पुरुष वस्त्र आभरण आदिको यह परद्रव्य है ऐसा जानकर उसका त्याग करता है। उसी प्रकार स्वसंवेदन ज्ञानी स्वसंवेदन ज्ञानबलसे (स्वानुभूतिसे) सब मिथ्यात्व रागादि परभावोंके पर्यायोंको ये परकीय हैं (अपने स्वभावमें नहीं है) ऐसा जानकर

विशेषेण त्रिशुध्या विमुञ्चति त्यजति स्वसंवेदनज्ञानीति। अयमत्र भावार्थः यथा कश्चिद्देवदत्तः परकीयचीवरं भ्रांत्या मदीयमिति मत्वा रजकगृहादानीय परिधाय च शयानः सन् पश्चादन्येन वस्त्रस्वामिना वस्त्रांचलमादायाच्छोद्य नग्नीक्रियमाणः सन् वस्त्रलांच्छनं निरीक्ष्य परकीयमिति मत्वा तद्वस्त्रं मुंचति तथायं ज्ञानीजीवोऽप्यतिविज्ञेन निर्विण्णेन गुरुणा मिथ्यात्वरागादिविभावा एते भवदीयस्वरूपं न भवन्ति, एक एव त्वमिति प्रतिबोध्यमानः सन् परकीयानिति ज्ञात्वा मुंचति शुद्धात्मानुभूतिमनुभवतीति। एवं गाथाद्वयं गतम् ॥ ४० ॥

अथ कथं शुद्धात्मानुभूतिमनुभवतीति पृष्टे सति मोहादिपरित्यागप्रकारमाह–

णत्थि मम कोवि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्य वियाणया विंति ॥ ४१ ॥

॥ आ. ख्या. ३६ ॥

[**अध्यात्मभाषासे**] स्वानुभूतिसे याने [**आगमभाषासे**] मनवचनकायकी विशुद्धि द्वारा छोडता है। भावार्थ यह है कि, जैसे कोई देवदत्त नामका पुरुष भ्रमसे दूसरेके वस्त्रको अपना समझकर घोबीके घरसे ले आया और पहनकर सो गया। पश्चात् उस वस्त्रके स्वामीने आकर उस वस्त्रके आंचलको खींचकर उसको नग्न करते समय उस वस्त्रके लांछनको (चिन्हको) निरीक्षण करके यह वस्त्र परकीय है ऐसा समझकर उसी समय वह उस वस्त्रको छोडता है। इसी प्रकार ज्ञानी जीव भी परम वैरागी ज्ञानी गुरुके द्वारा " ये मिथ्यात्वरागादिविभाव भाव अपना स्वभाव नही है एक शुद्धात्मा ही अपना स्वभाव है, ' ऐसा समझाया जानेपर उन सब परभावोंको परकीय है ऐसा जानकर तत्काल छोडता है। शुद्धात्मानुभूति को अनुभवता है।

भावार्थ– आत्मा को आत्मा जानना और मानना परभावको परभाव मानना यही आत्मानुभूति कहलाती है। इसीको सम्यग्दर्शन कहते हैं इसी को मोहका–परभावका त्याग कहते हैं। परभावका त्याग और आत्मस्वभावकी प्राप्ति इनका एकही समय है। आत्मा अपने पुरुषार्थसे आत्मस्वभावकी प्राप्ति करता है। उसीको परभावका त्याग कहा जाता है। परभावका त्याग करनेके लिये परमें पुरुषार्थ करना नहीं पडता है। क्यों कि आत्मा परमें पुरुषार्थ कर नही सकता है।

इस प्रकार दो गाथायें समाप्त हुई ॥ ४० ॥

अब (अध्यात्मभाषासे) शुद्धात्माकी अनुभूतिका अनुभव किस प्रकार होता है ऐसा पूछनेपर श्री आचार्यदेव उत्तर देते है कि मोहादिक का परित्याग याने शुद्धात्मानुभव इस प्रकार होता है–

गाथार्थ– [**मोहो मम कोवि णत्थि**] मोह मेरा कोई भी नहीं [**इक्को**] एक [**उवओग एव अहं**] उपयोग ही मैं हूँ ऐसा [**बुज्झदि**] जो अनुभवता है [**तं**] उस पुरुषको [**समयस्स**] सिद्धांतके अथवा स्व पर के स्वरूपको [**वियाणया**] जाननेवाले [**मोहणिम्ममत्तं**], मोहसे निर्ममत्व [**विंति**] समझते हैं अथवा कहते हैं।

णत्थि मम कोवि मोहो नास्ति न विद्यते मम शुद्धनिश्चयेन टंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावस्य सतो रागादिपरभावेन कर्तृभूतेन भावयितुं रंजयितुमशक्यत्वात्कश्चिद्द्रव्यभावरूपो मोहः । **बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को** बुध्यते जानाति । स कः कर्त्ता । ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणत्वादुपयोग आत्मैव । किं बुध्यते ? यतः कारणादहमेकः ततो मोहं प्रति निर्ममत्वोऽस्मि निर्मोहो भवामि । अथवा बुध्यते जानाति । किं जानाति विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोग एवाहमेकः । **तं मोहणिम्ममत्तं समयस्य वियाणया विंति** । तं निर्मोहशुद्धात्मभावनास्वरूपं निर्ममत्वं ब्रुवंति, वदंति, जानंति वा । के ते । समयस्य शुद्धात्मस्वरूपस्य विज्ञायकाः पुरुषा इति । किंच विशेषः यत्पूर्वं स्वसंवेदनज्ञानमेव प्रत्याख्यानं व्याख्यातं तस्यैवेदं निर्मोहत्वं विशेषव्याख्यानमिति । एवमेव च मोहपदपरिवर्त्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडशव्याख्येयानि । अनेन प्रकारेणान्यान्यप्यसंख्येयलोकमात्रप्रमितानि विभावपरिणामरूपाणि ज्ञातव्यानि ॥४१॥

अथ धर्मास्तिकायादिज्ञेयपदार्था अपि मम स्वरूपं न भवंतीति प्रतिपादयति—

णत्थि मम धम्म आदी बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को ।
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति ॥ ४२ ॥

॥ आ. ख्या. ३७ ॥

टीकार्थ— शुद्धनिश्चयनयसे टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभाववाला जो मैं इसको रागादिपरभाव के कर्तृत्वभावसे रंजायमान करने के लिये अशक्य (असमर्थ) है, इसलिये द्रव्य और भावरूप मोह कोई भी मेरा नहीं है । किन्तु ज्ञानदर्शन उपयोग लक्षणवाला होनेसे मेरा आत्माही है ऐसा अनुभवता है, कि, " मैं एक हूँ । इसलिये मोह के प्रति निर्ममत्व हूँ, निर्मोह हूँ । अथवा मैं एक विशुद्धज्ञानदर्शन उपयोगवाला ही हूँ ऐसा अनुभवता है ।

उस निर्मोही शुद्धात्माकी भावभासनावाले आत्माको " निर्ममत्ववाला " कहते हैं ।

शंका— ऐसा कौन कहते हैं ?

समाधान— शुद्धात्मस्वरूपको जाननेवाले पुरुष ऐसा कहते हैं कि " वह शुद्धात्मानुभववाला-निर्ममत्ववाला है । "

और कुछ विशेष कहते हैं, जो पूर्व गाथा में स्वसंवेदन ज्ञानको ही प्रत्याख्यान कहा था उसे ही यहाँ निर्मोहत्व ऐसा कहा है ।

और इस प्रकारही मोह शब्दके स्थानपर रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनवचनकायश्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शन ये सोलह पद परिवर्तन करके कहना चाहिये । इसी प्रकार अन्य भी जो असंख्यातलोकमात्र प्रमाण विभाव भाव है वे परिवर्तन करके जानना चाहिये ॥ ४१ ॥

यहां धर्मास्तिकायादिज्ञेयपदार्थ भी मेरा स्वरूप नहीं हैं, ऐसा कहते हैं—

गाथार्थ— [**धम्म आदी मम णत्थि**] धर्म आदि ज्ञेय पदार्थ मेरे नही हैं और [**इक्को**] एक [**उवओग एव अहं**] उपयोग ही मैं हूँ ऐसा [**बुज्झदि**] जो अनुभवता है [**तं**] उस

णत्थि मम धम्म आदी न संति न विद्यते धर्मास्तिकायादिज्ञेयपदार्था ममेति **बुज्झवि** बुध्यते ज्ञानी। तर्हि किमहं। **उवओग एव अहमिक्को** विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोग एवाहं अथवा ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणत्वादित्यभेदेनोपयोग एवात्मा स जानाति। केन रूपेण, यतोऽहं टंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभाव एकः ततो दधिखण्डशिखिरिणीवत् व्यवहारेणैकत्वेपि शुद्धनिश्चनयेन मम स्वरूपं न भवंतीति परद्रव्यं प्रति निर्ममत्वोऽस्मि **तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्य वियाणया विंति** तं शुद्धात्मभावनास्वरूपं परद्रव्यनिर्ममत्वं समयस्य शुद्धात्मनो विज्ञायकाः पुरुषा ब्रुवंति कथयन्तीति। किञ्च इदमपि परद्रव्यनिर्ममत्वं यत्पूर्वं भणितं स्वसंवेदज्ञानमेव प्रत्याख्यानं तस्यैव विशेषव्याख्यानं ज्ञातव्यम्। इति गाथाद्वयं गतम्। एवं गाथाचतुष्टयसमुदायेन सप्तमस्थलं समाप्तम्॥ ४२॥

अथ शुद्धात्मैवोपादेय इति श्रद्धानं सम्यक्त्वं तस्मिन्नेव शुद्धात्मनि स्वसंवेदनं सम्यग्ज्ञानं तत्रैव निजात्मनि वीतरागस्वसंवेदननिश्चलरूपं चारित्रमिति निश्चयरत्नत्रयपरिणतजीवस्य कीदृशं स्वरूपं भवतीत्यावेदयन्सन् जीवाधिकारमुपसंहरति।

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तं पि॥ ४३॥

॥ आ. ख्या. ३८॥

पुरुषको [**समयस्य**] आत्मज्ञ अथवा सिद्धांतके स्वरूपको [**वियाणया**] जाननेवाले [**धम्मणिम्ममत्तं**] धर्मादि परद्रव्योंसे निर्ममत्व [**विंति**] समझते हैं (कहते हैं)।

टीकार्थ– धर्मास्तिकायादिज्ञेयपदार्थ "मेरे नहीं है" ऐसा ज्ञानी अनुभवता है। मैं विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोग ही हूँ। अथवा अभेदसे ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणवाला ही होनेसे उपयोग ही आत्मा है ऐसा वह जानता है, अनुभवता है।

शंका– किस रूपसे जानता है?

समाधान– मैं टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वभाववाला हूँ एक हूँ उस कारण व्यवहारनयसे धर्म आदि परज्ञेयोंके साथ दधि, खांड आदि शिखरिणी के समान भले ही मेरे साथ एकता हो, तो भी शुद्धनिश्चयनयसे यह सब मेरा स्वरूप नहीं हैं, इसलिये मैं सब परज्ञेयपदार्थोंसे निर्मम हूँ। ऐसे उस शुद्धात्मानुभववालेको परद्रव्यसे निर्ममत्व है, ऐसा आत्मज्ञ पुरुष कहते हैं।

और कुछ विशेष कहते है पूर्वमें (पहले) यह जो स्वसंवेदनज्ञान ही प्रत्याख्यान है ऐसा कहा था उसका ही यह परद्रव्यसे निर्ममत्व का कथन विशेष स्पष्टीकरण है ऐसा जानना चाहिये। इस प्रकार दो गाथाये हो गयी। इस तरह चार गाथाओंके समुदायसे सप्तम (सातवां) स्थल समाप्त हुआ॥ ४२॥

यहां शुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसा श्रद्धान सम्यक्त्व है; उस ही शुद्धात्मामें स्वसंवेदन सम्यग्ज्ञान है और उसी स्व आत्मामें (स्वभावमें) वीतरागस्वानुभव निश्चलता ही चारित्र है, इसप्रकार निश्चयसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमय परिणत जीवका स्वरूप किस प्रकार है यह बताते हुए जीवाधिकारका उपसंहार करते हैं–

अहं अनादिदेहात्मैक्य भ्रांत्याऽज्ञानेन पूर्वमप्रतिबुद्धोपि करतलविन्यस्तसुप्तविस्मृतपश्चान्निद्राविनाशस्मृतचामीकरावलोकनन्यायेन परमगुरुप्रसादेन प्रतिबुद्धो भूत्वा शुद्धात्मनि रतो यः सोऽहं वीतरागश्चिन्मात्रं ज्योतिः पुनरपि कथंभूतः । **इक्को** यद्यपि व्यवहारेण नरनारकादिरूपेणानेकस्तथापि शुद्धनिश्चयेन टंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावत्वादेकः । **खलु** स्फुटं । पुनरपि किंरूपः । **सुद्धो** व्यावहारिकनवपदार्थेभ्यः शुद्धनिश्चयनयेन भिन्नः अथवा रागादिभावेभ्यो भिन्नोऽहमिति शुद्धः । पुनरपि किंविशिष्ट **दंसणणाणमइओ** केवलदर्शनज्ञानमयः । पुनरपि किंरूपः । **सदारूवी** निश्चयनयेन रूपरसगंधस्पर्शाभावात्सदाप्यमूर्त्तः । **णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तं पि** इत्थंभूतस्य सतः नैवास्ति ममान्यंत्परमाणुमात्रमपि परद्रव्यं किमपि । यदेकत्वेन रंजकत्वेन ज्ञेयत्वेन वा पुनरपि मम मोहमुत्पादयति । कस्मात् ? परमविशुद्धज्ञानपरिणतत्वात् ॥ ४३ ॥

इति समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां तात्पर्यवृत्तौ स्थलसप्तकेन **जो पस्सदि अप्पाणमित्यादि** ~~सप्तविंशतिगाथाभिर्जीवाधिकारः~~ समाप्तः । इति प्रथमरंगः ।

गाथार्थ– [**अहं**] मैं [**इक्को**] एक हूँ [**सुद्धो**] शुद्ध हूँ [**दंसणणाणमइओ**] दर्शनज्ञानमय हूँ [**सदारूवी खलु**] निश्चयसे सदा अरूपी हूँ [**अण्णं**] अन्य परद्रव्य [**परमाणु मित्तं पि**] परमाणुमात्र भी [**मज्झ**] मेरा [**किंचिवि**] कुछ भी [**ण वि अत्थि**] नही लगता है, यह निश्चय है ।

टीकार्थ– अनादिकालसे देह और आत्मा के एकत्व की मान्यता कर भ्रान्तीसे–अज्ञानभावसे जो पहले अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) था लेकिन जिस प्रकार हाथमें रखे हुए सुवर्णको भूल जाता है, या निद्रामें मग्न होकर सो जाता है और फिर निद्राके दूर हो जानेपर उस सुवर्णका स्मरण आ जानेसे प्रसन्न हो जाता है, वैसे ही परमगुरुके प्रसादसे प्रतिबुद्ध होकर जो स्वभाव शुद्धात्मामें रत होता हूँ वह मैं वीतराग चिन्मात्र ज्योति हूँ, ऐसा अनुभवता है ।

शंका– और कैसा अनुभवता है ?

समाधान– यद्यपि व्यवहारनयसे नरनारकादि अनेक पर्यायरूप हूँ, तो भी शुद्धनिश्चयनयसे टंकोत्कीर्णज्ञायक एक स्वभाववाला होनेसे एक हूँ । स्पष्टतासे, निश्चयसे शुद्ध हूँ । व्यवहारिक नवपदार्थोंसे शुद्धनिश्चयनयसे भिन्न हूँ । अथवा मैं रागादिभावोंसे भिन्न हूँ । ऐसा मैं शुद्ध हूँ । और केवलदर्शनज्ञानमय हूँ । और निश्चयनयसे रूपरसगंधस्पर्शरहित होनेसे सदैव अमूर्तिक हूँ ।

इस प्रकार परम विशुद्ध ज्ञान से परिणतपना होनेसे पररूप परमाणुमात्र भी परद्रव्य कुछ भी मेरा नहीं हो सकता है कि जिससे एकत्व बुद्धिसे उपरंजक होकर अथवा ज्ञेयके साथ एकत्व मानकर उत्पन्न होनेवाला मोह मुझे फिरसे उत्पन्न हो (याने मैं निर्ममत्व हूँ) ।

इस प्रकार श्री जयसेनाचार्यजी के द्वारा बनाई हुवी शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवाली, समयसारकी व्याख्यारूप तात्पर्यवृत्ति में सात स्थलोंसे "**जो पस्सदि अप्पाणं इत्यादि**" २७ गाथा और उपसंहार की एक गाथा याने सब मिलकर २८ गाथाओंसे जीवाधिकार समाप्त हुआ । इसप्रकार प्रथमरंग समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥

अथानंतरं श्रृंगारसहितपात्रवज्जीवाजीवावेकीभूतौ प्रविशतः। तत्र स्थलत्रयेण त्रिंशद्गाथापर्यंतमजीवाधिकारः कथ्यते। तेषु प्रथमस्थले शुद्धनयेन देहरागादिपरद्रव्यं जीवस्वरूपं न भवतीति निषेधमुख्यत्वेन अप्पाणमयाणंता इत्यादिगाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण गाथादशकपर्यंतं व्याख्यानं करोति। तत्र गाथादशकमध्ये परद्रव्यात्मवादे पूर्वपक्षमुख्यत्वेन गाथापंचकं तदनंतरं परिहारमुख्यत्वेन सूत्रमेकं। अथाष्टविधं कर्मपुद्गलद्रव्यं भवतीति कथनमुख्यत्वेन सूत्रमेकं। ततश्च व्यवहारनयसमर्थनद्वारेण गाथात्रयं कथ्यत इति समुदायपातनिका।

तद्यथा अथ देहरागादिपरद्रव्यं निश्चयेन जीवो भवतीति पूर्वपक्षं करोति–

अप्पाणमयाणंता मूढा दु परप्पवादिणो केई।
जीवं अज्झवसाणं कम्मं च तहा परूविंति ॥ ४४ ॥

॥ आ. ख्या. ३९ ॥

अवरे अज्झवसाणेसु तिव्वमंदाणुभागगं जीवं।
मण्णंति तहा अवरे णोकम्मं चावि जीवो त्ति ॥ ४५ ॥

॥ आ. ख्या. ४० ॥

कम्मस्सुदयं जीवं अवरे कम्माणुभागमिच्छंति।
तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहिं जो सो हवदि जीवो ॥ ४६ ॥

॥ आ. ख्या. ४१ ॥

अब इसके बाद श्रृंगारसहित पात्रके समान जीव और अजीव दोनों एकरूप होकर प्रवेश करते हैं। वहां तीन स्थलोंसे तीस गाथापर्यंत अजीवाधिकार कहा जायेगा। उनमें पहले स्थलमें शुद्धनिश्चयनयसे देह और रागादिभाव-परद्रव्य जीवद्रव्य का स्वभाव नहीं होता है इस तरह निषेधकी मुख्यतासे "अप्पाणमयाणंता" इत्यादि गाथासे शुरु करके दस गाथा तक व्याख्यान करते हैं। उन दस गाथाओंमे परद्रव्यको आतमा माननेवालोंकी पूर्वपक्षकी मुख्यतासे पांच गाथायें हैं, तदनंतर उसका परिहार करनेकी मुख्यतासे एक गाथा है। और फिर व्यवहारनयके समर्थनरूपसे तीन गाथायें कही गयी हैं। इसतरह समुदाय पातनिका हुओ।

यहाँ देह और रागादि परद्रव्यको जीव है ऐसा निश्चयनय से कहनेवाले के पूर्वपक्ष का कथन करते हैं–

गाथार्थ– जो [**अप्पाणमयाणंता**] आतमा को न जाननेवाले [**दु**] किन्तु [**परप्पवादिणो**] परको आतमा कहनेवाले [**केई मूढा**] कोई मोही अज्ञानी तो [**अज्झवसाणं**] अध्यवसानको [**तहा च**] और कोई [**कम्मं**] कर्मको [**जीवं**] जीव [**परूविंति**] कहते हैं [**अवरे**] अन्य कोई [**अज्झवसाणेसु**] अध्यवसानोंमें [**तिव्वमंदाणुभागगं**] तीव्रमंद अनुभागको [**जीवं**] जीव [**मण्णंति**] मानते हैं। [**तहा**] और [**अवरे**] अन्य कोई [**णोकम्मं चावि**]

जीवो कम्मं उहयं दोण्णिवि खलु केवि जीवमिच्छंति ।
अवरे संजोगेण दु कम्माणं जीवमिच्छंति ॥ ४७ ॥

॥ आ. ख्या. ४२ ॥

एवंविहा बहुविहा परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा ।
तेण दु परप्पवादी णिच्छयवादीहिं णिद्दिट्ठा ॥ ४८ ॥ द्दि

॥ आ. ख्या. ४३ ॥

अप्पाणमयाणंता मूढा दु परप्पवादिणो केई आत्मानमजानंतः मूढास्तु परद्रव्यमात्मानं वदंतीत्येवंशीलाः केचन परात्मवादिनः **जीवं अज्झवसाणं कम्मं च तहा परूविंति** यथांगारात् कार्ष्ण्यं भिन्नं नास्ति तथा रागादिभ्यो भिन्नो जीवो नास्तीति रागाद्यध्यवसानं कर्म च जीवं वदंतीति । अथ **अवरे अज्झवसाणेसु तिव्वमंदाणुभागगं जीवं मण्णंति** अपरे केचनैकांतवादिनः रागाद्यध्यवसानेषु तीव्रमंदतारतम्यानुभावस्वरूपं शक्तिमाहात्म्यं गच्छतीति तीव्रमंदानुभावगस्तं जीवं मन्यंते । **तहा अवरे णोकम्मं चावि जीवो त्ति** तथैवापरे चार्वाकादयः कर्मनोकर्मरहितपरमात्मभेदविज्ञानशून्याः शरीरादिनोकर्म चापि जीवं मन्यंते । अथ **कम्मस्सुदयं जीवं अवरे** अपरे कर्मण उदयं जीवमिच्छंति **कम्माणुभागमिच्छंति** अपरे च कर्मानुभागं लतादार्वस्थिपाषाणरूपं

नोकर्मको भी [**जीवो त्ति**] जीव मानते हैं [**अवरे**] अन्य कोई [**कम्मस्सुदयं**] कर्म के उदय को [**जीवं**] जीव मानते हैं, कोई [**कम्माणुभागं**] कर्म के अनुभाग को [**जो**] जो अनुभाग [**तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहिं**] तीव्रमंदरूप गुणोंसे भेदको प्राप्त होता है [**सो**] वह [**जीवो हवदि**] जीव है [**इच्छंति**] ऐसा इष्ट करते हैं [**केवि**] कोई [**जीवो कम्मं उहयं**] जीव और कर्म [**दोण्णि वि**] दोनो मिले हुए को [**खलु**] ही [**जीवमिच्छंति**] जीव मानते हैं [**दु**] और [**अवरे**] अन्य कोई [**कम्माणं संजोगेण**] कर्मोके संयोगसे ही [**जीवमिच्छंति**] जीव मानते हैं [**एवंविहा**] इसप्रकार तथा [**बहुविहा**] अन्य भी बहुत प्रकार [**दुम्मेहा**] दुर्बुद्धि मिथ्यादृष्टि जीव [**परं**] परको [**अप्पाणं**] आत्मा [**वदंति**] कहते हैं [**तेण दु परप्पवादी**] इस कारणसे वे परको आत्मा करनेवाले हैं, इसतरह [**णिच्छयवाईहिं**] निश्चयवादियोंने [**णिद्दिट्ठा**] कहा हैं ।

टीकार्थ– जो आत्माको तो जानते नहीं है लेकिन परद्रव्यको ही आत्मा कहते हैं ऐसे कोई परात्मवादी (अज्ञानी) जीव है जैसे अंगारसे कालापन कोई भिन्न (वस्तु) नहीं है, ऐसा रागादि अध्यवसानको और कर्मको ही जीव है ऐसा कहते हैं । अन्य कोई एकांतवादी लोग रागादि अध्यवसानोंमें जो तीव्रता मंदतारूप तारतम्यको लिए हुओे अनुभव-अनुभाग होता है उस शक्ति माहात्म्यके स्वरूपको प्राप्त होनेवाला ही जीव है ऐसा कहते हैं । उसी तरह चार्वाकादि जो कर्म और नोकर्मसे रहित पर और आत्मा के भेदविज्ञानसे रहित है ऐसे वे वादी शरीरादि

जीवमिच्छंति कथंभूतः स चानुभागः **तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहिं जो सो हवदि जीवो** तीव्रत्वमंदत्व-गुणाभ्यां वर्त्तते यःस जीवो भवतीति अथ जीवो **कम्मं उहयं दोण्णिवि खलु केवि जीवमिच्छंति** जीवकर्मोभयं द्वे अपि जीवकर्मणी शिखिरिणीवत् खलु स्फुटं जीवमिच्छंति । **अवरे संजोगेण दु कम्माणं जीवमिच्छंति** अपरे केचन अष्टकाष्ठखट्वावदष्टकर्मणां संयोगेनापि जीवमिच्छंति । कस्मात् । अष्टकर्मसंयोगादन्यस्य शुद्धजीवस्यानुपपत्तेः । अथ **एवंविहा बहुविहा परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा** एवंविधा बहुविधा बहुप्रकारा देहरागादिपरद्रव्यमात्मानं वदंति दुर्मेधसो दुर्बुद्धयः **तेण दु परप्पवादी णिच्छयवादीहिं णिद्दिट्ठा** तेन कारणेन तु पुनः देहरागादिकं परद्रव्य-मात्मानं वदंतीत्येवंशीलाः परात्मवादिनो निश्चयवादिभिः सर्वज्ञैर्निर्दिष्टा इति पंचगाथाभिः पूर्वपक्षः कृतः ॥ ४४, ४५, ४६, ४७, ४८ ॥

अथ परिहारं वदति–

एदे सव्वे भावा पुग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा ।
केवलिजिणेहिं भणिया कह ते जीवो त्ति वुच्चंति ॥ ४९ ॥

॥ आ. ख्या. ४४ ॥

नोकर्मको ही जीव मानते हैं । दुसरे कोई कर्मके उदयको ही जीव कहते हैं । अन्य कोई लता, दारु, अस्थि, और पाषाणरूप जो कर्मोंका फल है उसको ही जीव ऐसा कहते हैं ।

शंका– वह अनुभाग कैसा है ?

समाधान– वह अनुभाग तीव्र मंदत्व गुणोंसे जो वर्तता है उसको ही वे जीव ऐसा कहते हैं । कोई जीव और कर्म इन दोनोंको शिखरिणीके समान मिले हुओ को ही जीव कहते हैं । और कोई लोक, जैसे आठ काठोंका परस्पर संयोग होकर एक खाट बन जाती है वैसे ही आठ कर्मोंके संयोग से भी जीव हो जाता है ऐसा मानते हैं । क्योंकि आठ कर्मोंके संयोगसे भिन्न शुद्ध जीव की उपलब्धि नही है । इसी प्रकार और भी अनेक प्रकारकी कल्पना करनेवाले-दुर्बुद्धिवाले देहरागादिपरद्रव्यको " आत्मा " ऐसा कहते हैं । इसलिये निश्चयवादी-सर्वज्ञभगवानने ऐसा कहा हैं कि, " ये लोग देहरागादिरूप परद्रव्यको ही आत्मा कहनेवाले परात्मवादी हैं । " इस तरह पांच गाथाओंद्वारा पूर्वपक्षका कथन हुआ ॥ ४४ से ४८ ॥

पीछेकी पांच गाथाओंद्वारा पूर्वपक्ष कथन किया था, उसका परिहार करते हैं–

गाथार्थ– [**एदे**] ये पूर्वमें कहे हुओ अध्यवसान आदिक [**सव्वे भावा**] सब ही भाव [**पुग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा**] पुद्गलद्रव्यके परिणमनसे उत्पन्न हुओं है ऐसा [**केवलिजिणेहिं**] केवली सर्वज्ञजिनदेवने [**भणिया**] कहा हैं [**ते जीवो**] उनको जीव [**त्ति कह वुच्चंति**] ऐसा कैसे कह सकते हैं ? अर्थात् नहीं कह सकते हैं ।

टीकार्थ– ये सभी देहरागादिक, कर्मजनितपर्यायें पुद्गलद्रव्य कर्मोदयके परिणामसे निष्पन्न हैं । वे कर्मजनित पर्यायें हैं, ऐसा सर्वज्ञभगवानसे कहा गया हैं । निश्चयनयसे वे सब भाव जीवके किसी भी प्रकारसे नहीं हो सकते हैं ।

एदे सव्वे भावा पुग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा एते सर्वे देहरागादयः कर्मजनितपर्यायाः पुद्गलद्रव्यकर्मोदयपरिणामेन निष्पन्नाः **केवलिजिणेहिं भणिया कह ते जीवो त्ति वुच्चंति** केवलिजिनैः सर्वज्ञैः कर्मजनिता इति भणिताः कथं ते निश्चयनयेन जीवा इत्युच्यन्ते न कथमपि। किंच विशेषः। अंगारात् कार्ष्ण्यवद्रागादिभ्यो भिन्नो जीवो नास्तीति यद्भणितं तदयुक्तं। कथमिति चेत्। रागादिभ्यो भिन्नः शुद्धजीवोऽस्तीति पक्षः परमसमाधिस्थपुरुषैः शरीररागादिभ्यो भिन्नस्य चिदानंदैकस्वभावशुद्धजीवस्योपलब्धेरिति हेतुः। किट्टकालिकास्वरूपात् सुवर्णवदिति दृष्टांतः। किंच अंगारदृष्टांतोपि न घटते। कथमिति चेत्। यथा सुवर्णस्य पीतत्वं अग्नेरुष्णत्वं स्वभावस्तथांगारस्य कृष्णत्वस्वभावस्य तु पृथक्त्वं कर्तुं नायाति। रागादयस्तु विभावाः स्फटिकोपाधिवत्

और कुछ विशेष कहते हैं जैसे अंगारसे कालापन भिन्न नहीं है वैसे वे सभी भाव जीवसे भिन्न नहीं है ऐसा जो पूर्वपक्ष स्थापन किया था वह गलत कहा है। शुद्ध जीव रागादि भावोंसे भिन्न है, यह पक्ष है। क्योंकि परमसमाधिस्थ (स्वानुभूतिवाले) पुरुषोंके द्वारा शरीरसे और रागादिसे भिन्न ऐसे चिदानंद एक स्वभाव शुद्ध जीवकी उपलब्धि (प्राप्ति) देखी जाती है– यह हेतु है।

उदाहरणार्थ– जैसे कीट कालिमादिसे सुवर्ण भिन्न है। और विशेष यह है कि, अंगारसे कालापन भिन्न नहीं है यह दृष्टांत भी यहाँ ठीक नही बैठता।

शंका– कैसे ?

समाधान– जैसे सुवर्णका पीतत्व, अग्निका उष्णत्व स्वभाव है क्योंकि द्रव्यसे स्वभाव भिन्न नहीं है। इसी तरह अंगारसे कालापन स्वभाव भिन्न नहीं है। स्वभावको द्रव्यसे भिन्न नहीं किया जा सकता है। लेकिन स्फटिकमें आई हुओ उपाधिके समान रागादिक के विभाव भाव है। इसलिये निर्विकार शुद्धात्मानुभूतिके बलसे रागादिक भावको पृथक् किया जा सकता है।

इसी प्रकार और यह जो कहा गया है कि, आठ काठोंके संयोगसे खाट बन जाती है उसी प्रकार आठ कर्मोंके संयोगसे जीव बन जाता (उत्पन्न होता) है सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि अष्टकर्मसंयोगसे भिन्न शुद्ध जीव द्रव्य है– यह पक्षवचन है।

शंका– अष्टकर्मसंयोगसे भिन्न जीव है यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान– इसका हेतु परमसमाधिस्थ (शुद्धात्मानुभूतिवाले) पुरुषोंके द्वारा आठ कर्मोंके संयोगसे पृथक्भूत (भिन्न) शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव जीवकी उपलब्धि (अनुभूति याने प्राप्ति) देखी जाती है।

उदाहरणार्थ– जैसे आठ काठके संयोगसे बनी हुओ खाट पर सोनेवाला पुरुष उससे भिन्न होता है। और कहते हैं देह और आत्मामें अत्यंत भेद है– यह पक्ष है। इसका हेतु– देह

ततस्तेषां निर्विकारशुद्धात्मानुभूतिबलेन पृथक्त्वं कर्त्तुं शक्यते इति। यदप्युक्तमष्टकाष्ठसंयोगखट्वावदष्टकर्मसंयोग एव जीवस्तदप्यनुचितं अष्टकर्मसंयोगात् भिन्नः शुद्धजीवोस्तीति पक्षवचनं अष्टकाष्ठसंयोगखट्वाशायिनः पुरुषस्येव परमसमाधिस्थपुरुषैरष्टकर्मसंयोगात् पृथग्भूतस्य शुद्धवुद्धैकस्वभावजीवस्योपलब्धेरिति दृष्टांतसहितहेतुः। किंच देहात्मनोरत्यंतं भेदः इति पक्षः भिन्नलक्षणलक्षितत्वादिति हेतुः जलानलवदिति दृष्टान्तः। इति परिहारगाथा गता॥ ४९॥

अथ चिद्रूपप्रतिभासेऽपि रागाद्यध्यवसानादयः कथं पुद्गलस्वभावा भवंतीति चेत्–

अट्ठविहं पि य कम्मं सव्वं पुग्गलमयं जिणा विंति।
जस्स फलं तं वुच्चदि दुक्खं ति विपच्चमाणस्स॥ ५०॥

॥ आ. ख्या. ४५॥

अचेतन लक्षणवाला है और आत्मा चेतन लक्षणवाला है। इस तरह भिन्न लक्षणसे लक्षित होनेसे देह और आत्मामें भेद है।

उदाहरणार्थ– जल शीतस्वभाववाला है, और अग्नि उष्ण स्वभाववाला है इसलिये जल और अग्नि भिन्न है।

इसतरह देहरागादिक को ही जीव कहनेवाले पूर्व पक्षका परिहार करनेवाली गाथा समाप्त हो गयी॥ ४९॥

रागादि अध्यवसानभाव चैतन्यके प्रतिभास में होते हैं, तो भी रागादि अध्यवसानादि पुद्गलस्वभाववाले कैसे होते हैं? इस शंकाका उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**अट्ठविहं पि य**] आठ प्रकारके [**कम्मं**] कर्म हैं वे [**सव्वं**] सभी [**पुग्गलमयं**] पुद्गल स्वरूप है ऐसा [**जिणा**] जिनेंद्र भगवान [**विंति**] कहते हैं [**जस्स विपच्चमाणस्स**] जो पककर उदयमें आनेवाले कर्मका [**फलं**] फल [**तं**] प्रसिद्ध [**दुक्खं**] दुःख है [**ति वुच्चदि**] ऐसा कहा है।

टीकार्थ– जिनदेव, वीतराग सर्वज्ञ भगवान कहते हैं कि, "आठ प्रकारके सब कर्म पुद्गलमय होते हैं।"

शंका– वे आठ प्रकारके कर्म पुद्गलमय कैसे हैं?

समाधान– जिन कर्मोंका फल व्याकुलत्वस्वभाववाला होनेसे दुःख है ऐसा प्रसिद्ध है ऐसा कहा गया है।

शंका– किस प्रकारके कर्मोंका फल दुःख है?

समाधान– विशेषतासे उदयमें आये हुअे कर्मोंका फल दुःख है। इसका तात्पर्य यह

अट्ठविहं पि य कम्मं सव्वं पुग्गलमयं जिणा विंति सर्वमष्टविधमपि कर्म पुद्‌गलमयं भवतीति जिना **वीतरागसर्वज्ञा** ब्रुवंति कथयंति । कथंभूतं यत्कर्म **जस्स फलं तं वुच्चदि दुक्खं ति विपच्चमाणस्स** यस्य कर्मणः फलं तत्प्रसिद्धमुच्यते किं व्याकुलत्वस्वभावत्वाद्‌दुःखमिति । कथंभूतस्य कर्मणः । विशेषेण पच्यमानस्योदयागतस्य । इदमत्र तात्पर्यं अष्टविधकर्मपुद्‌गलस्य कार्यमनाकुलत्वोत्पादकदुःखलक्षणास्ततः कारणात्पुद्‌गलकार्यत्वात् शुद्धनिश्चयनयेन पौद्‌गलिका इति । अष्टविधं कर्म पुद्‌गलद्रव्यमेवेति कथनरूपेण गाथा गता ।। ५० ।।

अथ यद्यध्यवसानादयः पुद्‌गलस्वभावास्तर्हि रागी द्वेषी मोही जीव इति कथं जीवत्वेन ग्रंथांतरे प्रतिपादिता इति प्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति–

ववहारस्स दरीसणमुवएसो वण्णिदो जिणवरेहिं ।
जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा ।। ५१ ।।

।। आ. ख्या. ४६ ।।

ववहारस्स दरीसणं व्यवहारनयस्य स्वरूपं दर्शितं यत्किं कृतं । **उवएसो वण्णिओ जिणवरेहिं** उपदेशो वर्णितः कथितो जिनवरैः । कथंभूतः । **जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा** जीवा

है कि, आठ प्रकारके पुद्‌गलमय कर्मोंका कार्य, अनाकुलता लक्षणवाले पारमार्थिक सुख से विलक्षण आकुलता उत्पन्न करनेवाला दुःख है और रागादिभाव भी आकुलता उत्पन्न करनेवाला दुःख लक्षणरूप है । इस कारणसे रागादिक भाव भी पुद्‌गलके ही कार्य है, इसलिये शुद्धनिश्चयनयसे पौद्‌गलिक हैं । इस प्रकार आठ प्रकारके कर्मोंको पुद्‌गलमय है ऐसा बतानेवाली गाथा हुओ ।। ५० ।।

कोई शंका उठाता है कि, यदि अध्यवसानादिभाव पुद्‌गल स्वभावमय है तो फिर "जीव रागी, द्वेषी, मोही है" इसप्रकार अन्य ग्रंथोंमे इनको जीवस्वरूप कैसे प्रतिपादन किया है इसका उत्तर यहाँ देते हैं–

गाथार्थ– [**एदे सव्वे**] ये सब [**अज्झवसाणादओ भावा**] अध्यवसानादिक भाव [**जीवा**] वे जीव हैं ऐसा [**जिणवरेहिं**] जिनवरदेवद्वारा [**ववहारस्स दरीसणं**] व्यवहारनयका मत है ऐसा [**उवएसो वण्णिदो**] उपदेश वर्णन किया है ।

टीकार्थ– व्यवहारनयका मत या व्यवहारनयका स्वरूप दिखाया है ।

शंका– किसने दिखाया हैं ?

समाधान– जिनवरोंद्वारा उपदेश वर्णन किया गया है ।

एते सर्वे अध्यवसानादयो भावाः परिणामा भण्यंत इति। किंच विशेषः यद्यप्ययं व्यवहारनयो बहिर्द्रव्यावलंबनत्वेनाभूतार्थस्तथापि रागादिबहिर्द्रव्यावलंबनरहितविशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावस्वावलंबनसहितस्य परमार्थस्य प्रतिपादकत्वाद्दर्शयितुमुचितो भवति। यदा पुनर्व्यवहारनयो न भवति तदा शुद्धनिश्चयनयेन त्रसस्थावरजीवा न भवंतीति मत्वा निःशंकोपमर्दनं कुर्वंति जनाः। ततश्च पुण्यरूपधर्माभाव इत्येकं दूषणं। तथैव शुद्धनयेन रागद्वेषमोहरहितः पूर्वमेव मुक्तो जीवस्तिष्ठतीति मत्वा मोक्षार्थमनुष्ठानं कोपि न करोति। ततश्च मोक्षाभाव इति द्वितीयं च दूषणं। तस्माद्व्यवहारनयव्याख्यानमुचितं भवतीत्यभिप्रायः ॥ ५१ ॥

अथ केन दृष्टांतेन प्रवृत्तो व्यवहार इत्याख्याति–

राया हु णिग्गदो त्ति य एसो बलसमुदयस्स आदेसो।
ववहारेण दु उच्चदि तत्थेक्को णिग्गदो राया ॥ ५२ ॥

॥ आ. ख्या. ४७ ॥

शंका– किस प्रकार का उपदेश वर्णन किया है ?

समाधान– ये सब अध्यवसानादिक भाव परिणाम जीव स्वरूप कहते हैं।

और कुछ विशेष कहते हैं– यद्यपि व्यवहारनय बाह्यद्रव्यके आलंबनसे अभूतार्थ है तथापि रागादि बहिर्द्रव्यके आलंबनसे रहित और विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावके आलंबनसे सहित ऐसे परमार्थका प्रतिपादक होनेसे उसका कथन करना उचित (योग्य) है। यदि व्यवहारनय नहीं है तो शुद्धनिश्चयनयसे त्रस स्थावर जीव नहीं हैं ऐसा मानकर लोक निःशंक होकर त्रसस्थावरों के मर्दनमें प्रवृत्ति करते हैं (करने लगेंगे) इसलिये पुण्यरूपधर्मका अभाव होता है (हो जायगा) यह एक दूषण है। तथा शुद्धनिश्चयनयसे तो जीव रागद्वेषमोहरहित पहले से ही है इसलिये मुक्त ही है ऐसा मानकर फिर मोक्ष के लिये कोई भी अनुष्ठान नहीं करता है इसलिये मोक्षका अभाव यह दूसरा दूषण आता है। इसलिये व्यवहारनयका कथन उचित है ऐसा अभिप्राय है ॥ ५१ ॥

अब व्यवहार नय किसतरह प्रवृत्त होता है, यह दृष्टांतद्वारा बताते हैं–

गाथार्थ– जैसे [**बलसमुदयस्स**] सेना के समूहको [**राया णिग्गदो**] जैसे राजा निकला [**त्ति य एसो हु आदेसो**] ऐसा जो आदेश है वह [**ववहारेण दु उच्चदि**] व्यवहारनयसे कहा जाता है [**तत्थ**] उस सेना में तो वास्तवमे [**एक्को**] एक [**राया णिग्गदो**] ही राजा निकला है [**एमेव य**] इसी तरह [**अज्झवसाणादिअण्णभावाणं**] इन अध्यवसान आदि अन्य भावों को [**सुत्ते**] परमागममें [**जीवो त्ति**] ये जीव हैं ऐसा [**ववहारो कदो**] व्यवहारनय से कहा है [**तत्थ णिच्छिदो**] निश्चयसे विचारा जाय तो उन भावोंमे [**जीवो एक्को**] जीव तो एक ही है।

एमेव य ववहारो अज्झवसाणादिअण्णभावाणं ।
जीवो त्ति कदो सुत्ते तत्थेक्को णिच्छिदो जीवो ।। ५३ ।।

।। आ. ख्या. ४८ ।।

राया हु णिग्गदो त्ति य एसो बलसमुदयस्स आदेसो राजा हु स्फुटं निर्गत एव बलसमुदयस्यादेशः कथनं **ववहारेण दु उच्चदि तत्थेक्को णिग्गदो राया** बलसमूहं दृष्ट्वा पंचयोजनानि व्याप्य राजा निर्गत इति व्यवहारेणोच्यते । निश्चयनयेन तु तत्रैको राजा निर्गत इति दृष्टांतो गतः । इदानीं दार्ष्टांतमाह **एमेव य ववहारो अज्झवसाणादि अण्णभावाणं** एवमेव राजदृष्टांत प्रकारेणैव व्यवहारः । केषां । अध्यवसानादीनां जीवाद्भिन्नभावादीनां रागादिपर्यायाणां **जीवो त्ति कदो सुत्ते** कथंभूतो व्यवहारः । रागादयो भावाः व्यवहारेण जीव इति कृतं भणितं सूत्रे परमागमे **तत्थेक्को णिच्छिदो जीवो** तत्र तेषु रागादिपरिणामेषु मध्ये निश्चितो ज्ञातव्यः । कोऽसौ । जीवः । कथंभूतः । शुद्धनिश्चयनयेनैको भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहितः शुद्धबुद्धैकस्वभावो जीवपदार्थः । इति व्यवहारनयसमर्थनरूपेण गाथात्रयं गतं । एवमजीवाधिकारमध्ये शुद्धनिश्चयनयेन देहरागादिपरद्रव्यं जीवस्वरूपं न भवतीति कथनमुख्यतया गाथादशकेन प्रथमोत्तराधिकारो व्याख्यातः ।। ५२, ५३ ।।

अथानंतरं वर्णरसादिपुद्गलस्वरूपरहितोऽनंतज्ञानादिगुणस्वरूपश्च शुद्धजीव एव उपादेय इति भावनामुख्यतया द्वादशगाथापर्यंतं व्याख्यानं करोति । तत्र द्वादशगाथासु मध्ये परमसामायिकभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्नपरमानंदसुखसमरसीभावपरिणत शुद्धजीव एवोपादेय इति मुख्यत्वेन *अरसमरूवं* इत्यादिसूत्रगाथैका । *अथाभ्यंतरे रागादयो बहिरंगे* वर्णादयश्च शुद्धजीवस्वरूपं न भवतीति तस्यैव गाथासूत्रस्य विशेषविवरणार्थं **जीवस्स णत्थि**

टीकार्थ– राजा के साथ जाती हुअी और पांच योजनतक फैली हुअी सेनाको देखकर सब सेनाको ही यह राजा जा रहा है ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है । लेकिन निश्चयनयसे वहाँ तो एक ही राजा जा रहा है (अन्य पुरुष राजा नहीं है) यह दृष्टांत हो गया । इसका दार्ष्टांत यह है कि, अध्यवसानादिभाव सेनाके स्थानपर और राजाके स्थानपर जीव इसतरह व्यवहारसे अध्यवसानादि जीवसे भिन्न भावोकों याने रागादी पर्यायोंको जीव ऐसा सूत्रमें, परमागममें, (आगमग्रंथोमें) कहा है । लेकिन उन पर्यायोंमें शुद्धनिश्चयनयसे भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहित, शुद्धबुद्धएकस्वभाववाला एक जीवद्रव्य है ।

इस तरह व्यवहारनयके समर्थन रूपसे तीन गाथायें हो गयी । इस तरह अजीव अधिकारमें शुद्धनिश्चयनयसे देहरागादि परद्रव्य जीवस्वरूप नहीं है इस कथनकी मुख्यतासे दस गाथाओंद्वारा प्रथम उत्तर अधिकारका व्याख्यान हो गया ।। ५२, ५३ ।।

इसके बाद वर्णरसादिपुद्गलस्वरूपरहित और अनंतज्ञानादिगुणमय शुद्धजीव ही उपादेय है ऐसी भावभासनाकी मुख्यतासे १२ गाथापर्यंत व्याख्यान करते हैं । उन १२ गाथाओंमें परमसामायिकभावनापरिणतअभेदरत्नत्रयलक्षणवाले निर्विकल्पसमाधिसे समुत्पन्न परमानंदसुखसमरसीभाव से परिणत शुद्धजीव ही उपादेय है, इस मुख्यतासे **'अरसमरूवं इत्यादि'** एक

वण्णो इत्यादिसूत्रषट्कं। ततः परं त एव रागादयो वर्णादयश्च व्यवहारेण संति शुद्धनिश्चयनयेन न सन्तीति परस्परसापेक्षनयद्वयविवरणार्थं **ववहारेण दु** इत्यादि सूत्रमेकं तदनंतरमेतेषां रागादीनां व्यवहारनयेनैव जीवेन सह क्षीरनीरवत्संबंधो न च निश्चयनयेनेति समर्थनरूपेण **एदेहिं य संबंधो** इत्यादि सूत्रमेकं। ततश्च तस्यैव व्यवहारनयस्य पुनरपि व्यक्त्यर्थं दृष्टांत-दार्ष्टांतसमर्थनरूपेण **'पंथे मुस्संतं'** इत्यादि गाथात्रयं। इति द्वितीयस्थले समुदाय पातनिका।

तद्यथा— अथ यदि निश्चयेन रागादिरूपो जीवो न भवति तर्हि कथंभूतः शुद्धजीव उपादेयस्वरूप इत्यत्राह—

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥ ५४ ॥

॥ आ ख्या. ४९ ॥

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं निश्चयनयेन रसरूपगंधस्पर्शशब्दरहितं मनोगतकामक्रोधादिविकल्परहितत्वेनाव्यक्तं सूक्ष्मं पुनरपि किं विशिष्टं। शुद्धचेतनागुणं। पुनश्च किं

गाथा है। उसके वाद अभ्यंतर में रागादिभाव और वहिरंगमें वर्णादि जो भाव है वे शुद्धजीवका स्वरूप नही है इसतरह उसकाही विशेष कथन करने के लिए **जीवस्स णत्थि वण्णो** इत्यादि ६ गाथायें हैं। इसके बाद वे रागादि और वर्णादिक भाव व्यवहारसे जीवके हैं शुद्धनिश्चयनयसे रागादी और वर्णादिक भाव जीवके नहीं हैं इसतरह परस्पर सापेक्ष दो नयोंके विवरणके लिये **"ववहारेण दु इत्यादि"** एक गाथा है। तदनंतर व्यवहारनयसेही इन रागादिकों का जीवके साथ क्षीरनीरकी तरह संबंध है, निश्चयनयसे रागादिका जीवके साथ कुछ भी संबंध नहीं है इसके समर्थनरूपसे **'एदेहिं य संबंधो इत्यादि'** एक गाथा है। इसके आगे उस व्यवहार नयकाही फिरसे अर्थ व्यक्त करनेके लिये दृष्टांत—दार्ष्टांत के समर्थन रूप से **'पंथे मुस्संतं'** इत्यादि तीन गाथायें हैं। यह द्वितीय स्थलकी समुदाय पातानिका है।

यदि निश्चयनयसे जीव रागादिरूप नहीं है, तो उपादेयस्वरूप शुद्ध जीव कैसा होता है. यह कहते हैं—

गाथार्थ— हे भव्य ! तू [**जीवं**] जीवको [**अरसम्**] रसरहित [**अरूवम्**] रूपरहित [**अगन्धम्**] गन्धरहित [**अव्वत्तं**] अव्यक्त [**चेदनागुणम्**] चेतनागुणवाला [**असद्दं**] शब्दरहित [**अलिंगग्गहणं**] किसी चिन्हसे ग्रहण न होनेवाला और [**अणिद्दिट्ठसंठाणं**] जिसका कोई आकार नहीं कहा जाता है ऐसा [**जाण**] जान।

टीकार्थ— निश्चयनयसे रसरूपगंधस्पर्शशब्दरहित और मनोगतकामक्रोधादि विकल्परहित होनेसे, अव्यक्त, सूक्ष्म है और शुद्धचेतनागुणवाला है, और निश्चयनयसे स्वसंवेदनज्ञानका विषय होनेसे अलिंगग्रहणस्वरूपवाला है, और समचतुरस्रादिषट्संस्थानरहित है ऐसा जो पदार्थ

रूपं। जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं निश्चयनयेन स्वसंवेदनज्ञानविषयत्वादलिंगग्रहणं समचतुरस्रादिषट्संस्थानरहितं च यं पदार्थं तमेवं गुणविशिष्टं शुद्धजीवमुपादेयमिति हे शिष्य जानीहि। इदमत्र तात्पर्यं। शुद्धनिश्चयनयेन सर्वपुद्गलद्रव्यसंबंधिवर्णादिगुणशब्दादिपर्यायरहितः सर्वद्रव्येंद्रियभावेंद्रियमनोगतरागादिविकल्पाविषयो धर्माधर्माकाशकालद्रव्यशेषजीवांतरभिन्नोऽनंतज्ञानदर्शनसुखवीर्यश्च यः स एव शुद्धात्मा समस्तपदार्थसर्वदेशसर्वकालब्राह्मणक्षत्रियादिनानावर्णभेदभिन्नजनसमस्तमनोवचनकायव्यापारेषु दुर्लभः स एवापूर्वः स चैवोपादेय इति मत्वा निर्विकल्पनिर्मोहनिरंजननिजशुद्धात्मसमाधिसंजातसुखामृतरसानुभूतिलक्षणे गिरिगुहागह्वरे स्थित्वा सर्वतात्पर्येण ध्यातव्य इति। एवं सूत्रगाथा गता ॥ ५४ ॥

अथ बहिरंगे वर्णाद्यभ्यंतरे रागादिभावाः पौद्गलिकाः शुद्धनिश्चयेन जीवस्वरूपं न भवंतीति प्रतिपादयति—

जीवस्स णत्थि वण्णो णवि गंधो णवि रसो ण वि य फासो।
ण वि रूवं ण सरीरं ण वि संठाणं ण संहणणं ॥ ५५ ॥

॥ आ. ख्या. ५० ॥

जीवस्स णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो।
णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि ॥ ५६ ॥

॥ आ. ख्या. ५१ ॥

है उस गुणविशिष्ट उपादेयस्वरूप शुद्धजीवको ही जानो। इसका तात्पर्य यह है कि, शुद्धनिश्चयनयसे सब पुद्गलद्रव्यसंबंधिवर्णादि, गुणशब्दादिपर्यायोंसे रहित, सब द्रव्येंद्रियोंसे रहित, सब भावेंद्रियोंसे रहित, सब मनोगतरागादिविकल्पोंसे रहित, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, और इतर जीवोंसे भिन्न, और अनंतज्ञानदर्शनसुखवीर्यवाला ऐसा जो शुद्धात्मा है वह सब पदार्थ, सब देश, सब काल, ब्राह्मण क्षत्रियादि नानावर्ण भेदसे भिन्न जनोंके समस्तमनोवचनकायके व्यापारोंमें (बाह्यक्रियाकांडोंमें) यह शुद्धात्मा दुर्लभ है, वह जीव (शुद्धात्मा) अपूर्व है, और वह शुद्धात्माही उपादेय है, ऐसा जानकर निर्विकल्प-निर्मोह-निरंजन-निजशुद्धात्मसमाधि से प्रगट होनेवाले सुखामृतरसानुभूति लक्षणवाले शुद्धात्मामें स्थिर होकर शुद्धात्मानुभव करना चाहिये। और (आगमभाषासे) गिरिगुफा और दराडमें—एकांतस्थानमें रहकर ध्यान करना चाहिये। इसतरह यह सूत्र गाथा हो गई ॥ ५४ ॥

अब बाह्यमें वर्णादि और अभ्यंतरमें रागादि भाव पुद्गलके है, शुद्धनिश्चयनयसे जीवका स्वरूप नहीं है ऐसा कहते हैं—

गाथार्थ— [**जीवस्स**] जीवके [**वण्णो**] वर्ण, [**णत्थि**] नहीं है [**ण वि गंधो**] गंध भी नहीं है [**ण वि रसो**] रस भी नहीं है [**ण वि फासो**] स्पर्श भी नहीं है [**ण वि रूवं**] रूप भी नहीं है [**ण सरीरं**] शरीर नहीं है [**ण वि संठाणं**] संस्थान भी नहीं हैं [**ण संहणणं**]

जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्ढया केई।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभायठाणाणि ॥ ५७ ॥

॥ आ. ख्या. ५२ ॥

जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा।
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई ॥ ५८ ॥

॥ आ. ख्या. ५३ ॥

णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा ॥ ५९ ॥

॥ आ. ख्या. ५४ ॥

संहनन भी नहीं है। [जीवस्स] तथा जीवके [रागो णत्थि] राग भी नहीं है [ण वि दोसो] द्वेष भी नहीं है [मोहो णेव विज्जदे] मोह भी विद्यमान नहीं है [पच्चया णो] आस्रव भी नहीं है [ण कम्मं] कर्म भी नहीं है [णोकम्मं चावि] और नोकर्म भी [से णत्थि] उसके नहीं है। तथा [जीवस्स] जीवके [णत्थि वग्गो] वर्ग नहीं है [ण वग्गणा] वर्गणा नहीं है [केई फड्ढया णेव] कोई स्पर्द्धक भी नहीं है [णो अज्झप्पट्ठाणा] अध्यात्मस्थान नहीं है [य] और [णेव अणुभायठाणाणि] अनुभागस्थान भी नहीं हैं [जीवस्स] जीवके [केइ जोयट्ठाणा णत्थि] कोई योगस्थान नहीं हैं [वा] अथवा [बंधठाणा] बंधस्थान [ण] नहीं है [य] और [णेव उदयट्ठाणा] उदयस्थान भी नहीं है [केई मग्गणट्ठाणया ण] कोई मार्गणास्थान नहीं है। [जीवस्स] जीवके [णो ठिदिबंधट्ठाणा] स्थितिबंधस्थान भी नहीं है [वा] अथवा [संकिलेसठाणा] संक्लेशस्थान [ण] नहीं है [विसोहिट्ठाणा णेव] विशुद्धिस्थान भी नहीं है [वा] अथवा [णो संजमलद्धिठाणा] संयमलब्धिस्थान नही [य] और [जीवस्स] जीवके [जीवट्ठाणा] जीवस्थान [णेव] भी नहीं है [गुणट्ठाणा ण] गुणस्थान भी नहीं [दु जेण] क्योंकि [एदे सव्वे] ये सब [पुद्गलदव्वस्स] पुद्गलद्रव्यके [परिणामा] परिणाम [अत्थि] हैं।

टीकार्थ– रूप शब्दसे कहे जानेवाले वर्ण, गंध, रस और स्पर्श तथा स्पर्शरसगंधवर्णवाली मूर्ति और औदारिकादि पांच शरीर, समचतुरस्त्रादि छहसंस्थान, वज्रवृषभनाराच आदि छह संहनन है। ये सभी वर्णादिक धर्मी शुद्धनिश्चयनयसे जीवके नहीं हैं यह (वाक्य) साध्य धर्म है धर्म धर्मिका समुदाय यह पक्ष, (आस्था, संधा, प्रतिज्ञा) का लक्षण है, इसका हेतु (कारण) यह है कि, (वर्णादिक) पुद्गलद्रव्यके परिणाम होनेसे शुद्धात्मानुतिसे भिन्न है।

इस व्याख्यानमें पक्ष और हेतु दो अंगका अनुमान जानना चाहिये।

णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स ।
जेण दु एदे सव्वे पुग्गलदव्वस्स परिणामा ॥ ६० ॥ (षट्कम्)

॥ आ. ख्या. ५५ ॥

वर्णगंधरसस्पर्शास्तु रूपशब्दवाच्या: स्पर्शरसगंधवर्णवती मूर्त्तिश्च औदारिकादिपंचशरीराणि, समचतुरस्रादिषट्संस्थानानि वज्रर्षभनाराचादिषट्संहननानि चेति। एते वर्णादयो धर्मिण: शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्य न संतीति साध्यो धर्मश्चेति धर्मधर्मिसमुदायलक्षण: पक्ष:, आस्था संधा प्रतिज्ञेति यावत् पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वादिति हेतु: । एवमत्र व्याख्याने पक्षहेतुरूपेणांगद्वयमनुमानं ज्ञातव्यं। अथ रागद्वेषमोहमिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगरूपपंचप्रत्ययमूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्मौदारिकवैक्रियकाहारकशरीरत्रयाहारदिषट्पर्याप्तिरूपनोकर्माणि इति से तस्य जीवस्य शुद्धनिश्चयनयेन सर्वाण्येतानि न सन्ति कस्मात्पुद्गलपरिणाममयत्वे सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वात् । अथ परमाणोरविभागपरिच्छेदरूपशक्तिसमूहो वर्ग इत्युच्यते । वर्गाणां समूहो वर्गणा भण्यते । वर्गणासमूहलक्षणानि स्पर्द्धकानि च कानिचिन्न संति । अथवा कर्मशक्ते: क्रमेण विशेषवृद्धि: स्पर्द्धकलक्षणं। तथा चोक्तं वर्गवर्गणास्पर्द्धकानां त्रयाणां लक्षणं–

" वर्ग: शक्तिसमूहोऽणोर्बहूनां वर्गणोदिता। वर्गणानां समूहस्तु स्पर्द्धकं स्पर्द्धकापहै: ॥ "

शुभाशुभरागादिविकल्परूपाध्यवसानानि भण्यन्ते तानि च न सन्ति। लतादार्वस्थिपाषाणशक्तिरूपाणि घातिकर्मचतुष्टयानुभागस्थानानि भण्यन्ते। गुडखंडशर्करामृतसमानानि शुभाघातिकर्मानुभागस्थानानि भण्यन्ते। निंवकांजीरविषहालाहलसदृशान्यशुभाघातिकर्मानुभागस्थानानि

अब राग, द्वेष, मोह और मिथ्यात्व, अविरति प्रमाद, कषाय, योग ये पांच प्रत्यय, और मूल और उत्तर प्रकृतिके भेदसे भिन्न किये जानेवाले ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्म, और औदारिक, वैक्रियक, आहारक तीन शरीर, आहारादि षट् पर्याप्तिरूप नोकर्म, ये सब शुद्धनिश्चयनयसे जीवके नही हैं क्योंकि ये सभी पुद्गल परिणाम होनेसे शुद्धात्मानुभूतिसे भिन्न है ।

अब परमाणुके अविभाग प्रतिच्छेदरूप शक्ति समूहको वर्ग कहते है, वर्गोंके समूहको वर्गणा कहते है, वर्गणा समूहको स्पर्द्धक कहते हैं, ये सभी जीवके नहीं हैं । अथवा कर्मशक्ति की क्रमसे जो विशेषवृद्धि है उसे स्पर्धकका लक्षण कहते हैं। वर्ग वर्गणा और स्पर्धकका लक्षण कहते हैं । वर्ग वर्गणा और स्पर्धकका लक्षण आगममें इस तरह कहा है कि, अणुकी शक्ति के समूहका नाम वर्ग और बहुत वर्गोके समूहका नाम वर्गणा और वर्गणाओंके समूहका नाम स्पर्द्धक है यह कथन ऐसे स्पर्धकोंके नष्ट करनेवालों द्वारा कहा गया है। इस प्रकार शुभ अशुभरागादिविकल्पको अध्यवसान कहते हैं । वे भी जीवके नहीं हैं ।

लता, दारु, हड्डी और पाषाण जैसी शक्तिको लिये हुअे चार घातिया कर्मोके अनुभाग स्थान होते हैं । गुड, खांड, शर्करा और अमृत समान जो शुभरूप अघातिकर्म है उनके अनुभागस्थान कहे जाते है । नीम, कांजी, विष और हलाहल ये अनुभागस्थान अशुभ अघातिकर्मोंके कहे जाते है ये सभी अनुभागस्थान शुद्धनयसे जीवके नहीं हैं क्योंकि ये सब पुद्गलद्रव्यके परिणाम होनेसे शुद्धात्मानुभूतिसे भिन्न हैं ।

च तान्येतानि सर्वाण्यपि शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्य न सन्ति। कस्मात्? पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वात्। अथ वीर्यांतरायक्षयोपशमजनितमनोवचकायवर्गणावलंबन-कर्मादानहेतुभूतात्मप्रदेशपरिस्पंदलक्षणानि योगस्थानानि प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरूपचतुर्विध-वंधस्थानानि सुखदुःखफलानुभवरूपाण्युदयस्थानानि गत्यादिमार्गणास्थानानि च सर्वाण्यपि शुद्ध-निश्चयनयेन जीवस्य न सन्ति। कस्मात्? पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्न-त्वात्। अथ जीवेन सह कालांतरावस्थानरूपाणि स्थितिवंधस्थानानि कषायोद्रेकरूपाणि संक्लेश-स्थानानि कषायमंदोदयरूपाणि विशुद्धिस्थानानि कषायक्रमहानिरूपाणि संयमलब्धिस्थानानि च सर्वाण्यपि शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्य न सन्ति। कस्मात्? पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वात्। अथ जीवस्य शुद्धनिश्चयनयेन 'बादरसुहमेइंदी वितिचउरिंदी असण्णि-सण्णीणं। पज्जत्तापज्जत्ता एवं ते चउदसा होंति' इति गाथाकथितक्रमेण वादरैकेंद्रियादिचतुर्दश-जीवस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्दशगुणस्थानानि च सर्वाण्यपि न सन्ति पुद्गलद्रव्यपरिणाममयत्वे सति शुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नत्वात्। कुतः इति चेत्, यतः कारणादेते वर्णादिगुणस्थानांताः परिणामाः शुद्धनिश्चयनयेन पुद्गलद्रव्यस्य पर्याया इति। अयमत्र भावार्थः सिद्धांतादिशास्त्रेषु अशुद्धपर्याया-र्थिकनयेनाभ्यंतरे रागादयो बहिरंगे शरीरवर्णापेक्षया वर्णादयो जीवाः इत्युक्ताः। अत्र पुनरध्या-त्मशास्त्रे शुद्धनिश्चयनयेन निषिद्धा इत्युभयत्रापि नयविभागविवक्षया नास्ति विरोध इति वर्णाद्यभावस्य विशेषव्याख्यानरूपेण सूत्रषट्कं गतम्॥ ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०॥

अब वीर्यांतरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाले मन, वचन, कायके वर्गणा के आल-म्बनसे कर्मग्रहण करनेको हेतुभूत जो आत्मप्रदेशोंका परिस्पन्दन है लक्षण जिसका ऐसे योगस्थान, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूप चार प्रकारके वंधस्थान, सुखदुःखरूप फलको अनुभवरूप उदयस्थान और गति आदि मार्गणास्थान, ये सभी भी शुद्धनिश्चयनयसे जीवके नही हैं। क्योंकि ये सब पुद्गलद्रव्यके परिणाम होनेसे शुद्धात्मानुभूतिसे भिन्न हैं।

जैसा कि गोम्मटसार जीवकांड गाथा नं. ७२ में यह जो कहा है कि, "बादर एकेन्द्रिय सूक्ष्मएकेंद्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय असैनी पंचेन्द्रिय, सैनी पंचेन्द्रिय ये सात पर्याप्त और सात अपर्याप्त के भेदसे चौदह जीवसमास है" तथा मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थान ये सभी शुद्धनिश्चयनयसे जीवके नहीं हैं। क्योंकि ये सभी पुद्गलद्रव्यके परिणाम होनेसे शुद्धात्मानुभूतिसे भिन्न हैं।

शंका– ये वर्णादिकसे गुणस्थानतक के भाव जीवके नही है तो किस कारणसे नही है?

समाधान– ये वर्णादिकसे गुणस्थानके अंतपर्यंतके भाव (परिणाम) शुद्धनिश्चयनयसे पुद्गलद्रव्यकी पर्यायें हैं। इसका तात्पर्य यह है कि, अभ्यंतरमें रागादिकभावको जीव और वहिरंगमें शरीर के वर्णकी अपेक्षासे वर्णादिकको भी जीव है ऐसा अशुद्धपर्यायार्थिक नयसे सिद्धांतशास्त्रमें कहा गया हैं। और यहां अध्यात्मशास्त्रमें शुद्धनिश्चयनयसे रागादिकभावोंका और शरीरादिवर्णादिकोंका निषेध किया है इसप्रकार सिद्धांत शास्त्रमे (आगमभाषामें) और अध्यात्मशास्त्रमें (अध्यात्म भाषामें) नयविभागकी विवक्षासे विरोध नहीं हैं। इसप्रकार वर्णादिक के अभावका विशेष व्याख्यानरूपसे छह गाथायें हो गयी॥ ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०॥

अथ यदुक्तं पूर्वं सिद्धांतादौ जीवस्य वर्णादयो व्यवहारेण कथिताः अत्र तु प्राभृतग्रंथे निश्चयनयेन निषिद्धाः तमेवार्थं दृढयति–

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया।
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स ।। ६१ ।।

।। आ. ख्या. ५६ ।।

व्यवहारनयेन त्वेते जीवस्य भवन्ति वर्णाद्या गुणस्थानान्ता भावाः पर्याया न तु केऽपि निश्चयनयेनेति। एवं निश्चयव्यवहारसमर्थनरूपेण गाथा गता ।। ६१ ।।

अथ कस्माज्जीवस्य निश्चयेन वर्णादयो न सन्तीति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति–

एदेहिं य संबंधो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो।
ण य हुंति तस्स ताणि दु उवओगगुणाधिगो जह्मा ।। ६२ ।।

।। आ. ख्या. ५७ ।।

एदेहिं य संबंधो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो एतैः वर्णादिगुणस्थानांतैः पूर्वोक्तपर्यायैः सह

सिद्धांतादिग्रंथोंमें वर्णादिक जीवके हैं यह व्यवहारनयसे कहा गया था लेकिन इस प्राभृतग्रंथमें निश्चयनयसे उनका निषेध किया है यह जो पूर्वमें बताया था उसी अर्थको दृढ करते हैं–

गाथार्थ– [**एदे**] ये [**वण्णमादीया गुणठाणंता भावा**] वर्णादि गुणस्थानपर्यंत भाव कहे गये हैं वे [**ववहारेण दु**] व्यवहारनयसे तो [**जीवस्स**] जीवके [**हवंति**] हैं [**दु**] परन्तु [**णिच्छयणयस्स**] निश्चयनयसे [**केई ण**] इनमेंसे कोई भी जीवके नहीं है

टीकार्थ– व्यवहारनयसे वर्ण से शुरु करके गुणस्थानके अंततक के ये सब भाव-पर्याय जीवके हैं लेकिन निश्चयनयसे इनमेंसे कोई भी जीवके नहीं हैं। इस प्रकार निश्चयव्यवहारके समर्थन रूपसे गाथा हो गयी ।। ६१ ।।

निश्चयनयसे वर्णादिक जीवके क्यों नहीं हैं ऐसा पूछनेपर उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**एदेहिं संबंधो**] इन वर्णादिक भावोंके साथ जीवका संबंध [**खीरोदयं जहेव**] जल और दूध के एक क्षेत्रावगाह रूप संबंध सदृश [**मुणेदव्वो**] जानना [**य**] और [**ताणि**] वे [**तस्स दु ण हुंति**] उस जीवके नहीं हैं [**जह्मा**] क्योंकि जीव [**उवओग-गुणाधिगो**] इन से उपयोग गुण के कारण अधिक है।

टीकार्थ– इन पूर्वोक्त कथित पर्यायस्वरूप वर्णादि से लेकर गुणस्थान के अंतपर्यंत भावोंके साथ जीवका वैसाही संश्लेष संबंध है जैसा कि परस्परमें दूध और जल का होता है

संबंधो यथैव क्षीरनीरसंश्लेषस्तथा मंतव्यः । न चाग्न्युष्णत्वयोरिव तादात्म्यसंबंधः । कुत इति चेत् ण य हुंति तस्स ताणि दु न च भवन्ति तस्य जीवस्य ते तु वर्णादिगुणस्थानांता भावाः पर्यायाः । कस्मात् उवओगगुणाधिगो जह्मा यस्मादुष्णगुणेनाग्निरिव केवलज्ञानदर्शनगुणेनाधिकः परिपूर्ण इति । ननु वर्णादयो बहिरंगास्तत्र व्यवहारेण क्षीरनीरवत् संश्लेषसंबंधो भवतु न चाभ्यंतराणां रागादीनां तत्राशुद्धनिश्चयेन भवितव्यमिति । नैवं, द्रव्यकर्मबंधापेक्षया योऽसौ असद्भूतव्यवहार-स्तदपेक्षया तारतम्यज्ञापनार्थं रागादीनामशुद्धनिश्चयो भण्यते । वस्तुतस्तु शुद्धनिश्चयापेक्षया पुनरशुद्धनिश्चयोपि व्यवहार एवेति भावार्थः ॥ ६२ ॥

अथ तर्हि कृष्णवर्णोयं धवलवर्णोयं पुरुष इति व्यवहारो विरोधं प्राप्नोतीत्येवं पूर्वपक्षे कृते सति व्यवहाराविरोधं दर्शयतीत्येका पातनिका । द्वितीया तु तस्यैव पूर्वोक्तव्यवहारस्यविरोधं, लोकप्रसिद्धदृष्टांतद्वारेण परिहरति–

पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी ।
मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई ॥ ६३ ॥

॥ आ. ख्या. ५८ ॥

वैसा मानना योग्य है लेकिन अग्नि और उष्णताका जैसा तादात्म्य संबंध है वैसा तादात्म्य संबंध वर्णादिकसे गुणस्थानतक के भावोंका और जीवका नहीं है ।

शंका– तादात्म्य संबंध किस कारण नही है ?

समाधान– वर्णादिकसे गुणस्थान के अंतपर्यंत के भाव-पर्याय जीवके नहीं हैं क्योंकि जैसे अग्नि उष्णतासे परिपूर्ण है वैसे जीव केवलज्ञानदर्शनगुणसे अधिक है, परिपूर्ण है ।

शंका– वहाँ बहिरंग वर्णादिक जो है उनका जीव के साथ व्यवहार से संबंध है । जैसे दुध और जल का संबंध है यह ठीक है लेकिन अभ्यन्तरमें होनेवाले रागादिक भावोंका संबंध क्यों नही हो सकता ?

समाधान– रागादिभावोंके (रागादिपर्यायोंके) साथ भी जीवका संबंध नहीं है । द्रव्य-कर्मका जीव के साथ जो संबंध है वह असद्भूतव्यवहारनयकी अपेक्षा है, उसकी अपेक्षासे तारतम्यताके दिखलानेके लिए ऐसा कहा है रागादिभावका (रागादिपर्यायोंका) जीवके साथ जो संबंध है वह अशुद्धनिश्चयसे कहा जाता है । लेकिन वस्तुतः शुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षासे अशुद्धनिश्चयनय भी व्यवहारही है । ऐसा भावार्थ है ॥ ६२ ॥

यहाँ कृष्णवर्णवाला पुरुष, धवलवर्णवाला पुरुष ऐसा कहना फिर विरोध को प्राप्त होता है ऐसा पूर्वपक्ष उठानेवालेको कहते हैं कि व्यवहारका विरोध नहीं है यह दिखाते हैं यह प्रथम पातनिका है। और द्वितीय पातनिका– उस पूर्वोक्त व्यवहारका विरोध लोकप्रसिद्ध दृष्टांतद्वारसे परिहार करते हैं–

तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं ।
जीवस्स एस वण्णो जिणेहिं ववहारदो उत्तो ॥ ६४ ॥

॥ आ. ख्या. ५९ ॥

एवं रसगंधफासा संठाणादीय जे समुद्दिट्ठा ।
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति ॥ ६५ ॥

॥ आ. ख्या ६० ॥

पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी पथि मार्गे मुष्यमाणं सार्थं दृष्ट्वा व्यवहारीलोका भणन्ति (४) **मुस्सदि एसो पंथो** मुष्यत एषः प्रत्यक्षीभूतः पंथाश्चौरैः कर्तृभूतैः **ण य पंथो मुस्सदे कोई** न च विशिष्टशुद्धाकाशलक्षणः पंथा मुष्यते कश्चिदपि किन्तु पंथानमाधारीकृत्य तदाधेयभूता जना मुष्यंत इति दृष्टांतगाथा गता । **तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं** तथा तेन पथि सार्थदृष्टांतेन जीवेधिकरणभूते कर्मनोकर्मणां शुक्लादिवर्णं दृष्ट्वा **जीवस्स एस वण्णो जिणेहिं ववहारदो उत्तो** जीवस्य एष वर्णो जिनैर्व्यवहारतो भणित इति दार्ष्टांतगाथा गता । **एवं रसगंधफासा संठाणादीय जे समुद्दिट्ठा** एवमनेनैव दृष्टांतदार्ष्टांतन्यायेन रसगंधस्पर्श-

---

गाथार्थ– [**पंथे मुस्सतं**] जैसे मार्गमें चलते हुअेको लुटा हुआ [**पस्सिदूण**] देखकर [**ववहारी**] व्यवहारी [**लोगा**] लोक [**भणंति**] कहते हैं कि [**एसो पंथो**] यह मार्ग [**मुस्सदे**] लुटता है वहां परमार्थसे विचारा जाय तो [**कोई पंथो**] कोई मार्ग [**ण य मुस्सदि**] नहीं लुटता है, जाते हुअे लोक ही लुटते हैं [**तह**] उसीतरह [**जीवे**] जीवमें [**कम्माणं णोकम्माणं च**] कर्मोंका और नोकर्मोंका [**वण्णं**] वर्ण [**पस्सिदुं**] देखकर [**जीवस्स**] जीवका [**एस वण्णो**] यह वर्ण है ऐसा [**जिणेहिं**] जिनदेवने [**ववहारदो**] व्यवहारसे [**उत्तो**] कहा है [**एवं**] इसी प्रकार [**रसगंधफासा**] रस, गंध और स्पर्श रूप [**संठाणादी य**] संस्थानादिक [**जे य सव्वे**] ये सभी [**ववहारस्स**] व्यवहारसे हैं ऐसा [**णिच्छयदण्हू**] निश्चयनयके ज्ञाता (शुद्धात्मानुभूतिवाले) [**ववदिसंति**] कहते हैं ।

टीकार्थ– मार्गमें सार्थ को लुटा हुआ देखकर सर्वव्यवहारी लोग ऐसा कहते हैं कि यह सामनेवाला मार्ग ~~लूटता है~~ । मार्ग शुद्ध आकाशलक्षणवाला है, वह मार्ग किसी को भी लूटता नहीं किन्तु उस मार्गका आधार लेकर चलनेवाले पथिक लुटते हैं (या लुटे जाते हैं) यह दृष्टांत गाथा हो गयी । उसी प्रकार उस सार्थ के दृष्टान्तसे अधिकरणभूत जीवमें (याने उस जीवके सांनिध्यमें) होनेवाले कर्मके और नोकर्मके शुक्लादि वर्णको देखकर जीवके वर्ण है ऐसा जिनेंद्रदेवने व्यवहारसे कह दिया है । यह दार्ष्टांत गाथा हो गयी । इसप्रकार दृष्टांत दार्ष्टांत न्यायसे रस, गंध, स्पर्श, संस्थान, संहनन, राग, द्वेष, मोह आदिक जो पूर्व छह गाथाद्वारा (५५ से ६० तक) समीचीनतासे निर्देश किये हैं । वे सभी व्यवहारनयके अभिप्रायसे जीवके हैं ऐसा निश्चयज्ञ (निश्चयको जाननेवाले) कहते हैं, उसमें विरोध नहीं हैं ।

संस्थानसंहननरागद्वेषमोहादयो ये पूर्वगाथाषट्केन समुद्दिष्टाः **सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति** ते सर्वे व्यवहारनयस्याभिप्रायेण निश्चयज्ञा जीवस्य व्यपदिशंति कथयंतीति नास्ति व्यवहारविरोधः। इति दृष्टांतदार्ष्टांताभ्यां व्यवहारनयसमर्थनरूपेण गाथात्रयं गतम् **एवं शुद्धजीव एवोपादेय** इति प्रतिपादनमुख्यत्वेन द्वादशगाथाभिः द्वितीयांतराधिकारो व्याख्यातः ॥ ६३, ६४, ६५ ॥

अतः परं जीवस्य निश्चयनयेन वर्णादितादात्म्यसंबंधो नास्तीति पुनरपि दृढीकरणार्थं गाथाष्टकपर्यंतं व्याख्यानं करोति। तत्रादौ संसारिजीवस्य व्यवहारेण वर्णादितादात्म्यं भवति, मुक्तावस्थायां नास्तीति ज्ञापनार्थं **तत्थभवे** इत्यादि सूत्रमेकं। ततः परं जीवस्य वर्णादितादाम्य-मस्तीति दुरभिनिवेशे सति जीवाभावो दूषणं प्राप्नोतीति कथनमुख्यत्वेन **जीवो चेवहि** इत्यादि गाथात्रयं। तदनंतरमेकेंद्रियादिचतुर्दशजीवसमासानां जीवेन सह शुद्धनिश्चयनयेन तादात्म्यं नास्तीति कथनार्थं तथैव वर्णादितादात्म्यनिषेधार्थं च **एक्कं च दोण्णि** इत्यादि गाथात्रयं। ततश्च मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्दशगुणस्थानानामपि जीवेन सह शुद्धनिश्चयनयेन तादात्म्यनिराकरणार्थं तथैवा-भ्यंतरे रागादितादात्म्यनिषेधार्थं च **मोहणकम्म** इत्यादि सूत्रमेकं। एवमष्टगाथाभिः तृतीयस्थले समुदायपातनिका।

इसतरह दृष्टांत दार्ष्टांतसे व्यवहारनयसमर्थनरूपसे तीन गाथायें हो गयी।

इस तरह शुद्धजीव (शुद्ध पारिणामिकभाव या स्वभावसिद्ध आत्मा) ही उपादेय है इस प्रतिपादन की मुख्यतासे १२ गाथाओंद्वारा दुसरा अंतर्गत अधिकार का व्याख्यान हो गया ॥ ६३, ६४, ६५ ॥

इसके आगे निश्चयनयसे जीवका वर्णादिके साथ तादात्म्य संबंध नही हैं। यह पुनश्च दृढ करने के लिये आठ गाथापर्यंत व्याख्यान करते हैं। वहां पहले संसारीजीवका व्यवहारनयसे वर्णादिक के साथ तादात्म्य संबंध हैं, और मुक्त अवस्थामें वर्णादिके साथ तादात्म्य संबंध नहीं है, यह दिखानेके लिये '**तत्थभवे**' इत्यादि, एक गाथा है। उस के बाद यदि दुरभिनिवेशसे जीवका वर्णादिक के साथ तादात्म्य संबंध माना जायगा तो जीवका अभाव होगा यह दूषण प्राप्त होगा इस कथनकी मुख्यतासे '**जीवो चेवहि**' इत्यादि, तीन गाथायें हैं। तदनंतर एकेंद्रियादि १४ जीवसमासका जीवके साथ शुद्धनिश्चयनयसे तादात्म्य संबंध नहीं है इस कथनकी मुख्यतासे, और उसी तरह वर्णादिका जीवके साथ तादात्म्य संबधका निषेध करने के लिये '**एक्कं च दोण्णि**' इत्यादि तीन गाथायें हैं। उसके बाद मिथ्यादृष्टि आदि १४ गुणस्थानोंका भी जीवके साथ शुद्धनिश्चयनयसे तादात्म्य निराकरण करने के लिये, और उसीतरह अभ्यंतरमें रागादीका तादात्म्य निषेध करने के लिये '**च मोहण कम्म**' इत्यादि एक गाथा है इस प्रकार आठ गाथा-ओंद्वारा तृतीयस्थलमें यह समुदायपातनिका है।

तद्यथा– अथ कथं जीवस्य वर्णादिभिः सह तादाम्यलक्षणसम्बन्धो नास्तीति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति–

तत्थभवे जीवाणं संसारत्थाण होंति वण्णादि।
संसारपमुक्काणं णत्थि हु वण्णादओ केई ॥ ६६ ॥

॥ आ. ख्या. ६१ ॥

तत्थभवे जीवाणं संसारत्थाण होंति वण्णादी तत्र विवक्षिताविवक्षितभवे संसारस्थानां जीवानामशुद्धनयेन वर्णादयो भवंति **संसारपमुक्काणं** संसारप्रमुक्तानां **णत्थि दु वण्णादओ केई** पुद्गलस्थवर्णादितादात्म्यसम्बन्धाभावात् केवलज्ञानादिगुणसिद्धत्वादिपर्यायैः सह यथा तादात्म्यसम्बन्धोस्ति तथा वा तादात्म्यसम्बन्धाभावादशुद्धनयेनापि न सन्ति पुनर्वर्णादयः केऽपि। इति वर्णादितादात्म्यनिषेधरूपेण गाथा गता ॥ ६६ ॥

अथ जीवस्य वर्णादितादात्म्यदुराग्रहे सति दोषं दर्शयति–

जीवो चेव हि एदे सव्वे भावा त्ति मण्णसे जदि हि।
जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई ॥ ६७ ॥

॥ आ. ख्या. ६२ ॥

अव जीवका वर्णादिक के साथ तादात्म्यसंवंध किसप्रकार नहीं है। इसतरह पूछनेपर प्रत्युत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**वण्णादी**] वर्ण आदिक [**संसारत्थाण जीवाणं**] संसारमें स्थित जीवोंके [**तत्थभवे**] उस भवमें [**होंति**] होते हैं [**संसारपमुक्काणं**] संसारसे छूटे हुये (मुक्त हुये) जीवोंके [**हु**] निश्चयकर [**वण्णादओ केई**] वर्णादिक कोई भी [**णत्थि**] नहीं हैं, इसलिये तादात्म्य संवंध भी नहीं हैं।

टीकार्थ– वहाँ वर्तमान (विवक्षित) और अवर्तमान याने भूत या भावी (अविवक्षित) भवमें संसारमें स्थित हैं उन्हीं जीवोंके अशुद्धनिश्चयनयसे वर्णादिक होते हैं लेकिन संसारप्रमुक्तोंका (मुक्तजीवोंका) पुद्गल में रहनेवाले वर्णादिसे तादात्म्यसंवंधका अभाव होनेसे तादात्म्य संवंध नहीं है, या केवलज्ञानादिगुण सिद्धत्वादिपर्यायके साथ जैसा तादात्म्यसंवंध है वैसा अथवा तादात्म्यसंवंधका अभाव होनेसे अशुद्धनयसे भी वर्णादिक का जीवके साथ कोई भी संवंध नहीं हैं। इस प्रकार जीवका वर्णादिके साथ तादात्म्यसंवंध के निषेध रूपसे (कथन करनेवाली) गाथा होगयी ॥ ६६ ॥

अव यदि जीवका वर्णादि से तादात्म्यसंवंध है ऐसा दुराग्रह करनेसे आनेवाले दोषको दिखाते हैं–

गाथार्थ– [**जदि हि**] जो तू [**त्ति मण्णसे**] ऐसा मानेगा कि [**एदे भावा**] ये वर्णादिक भाव [**सव्वे हि जीवो एव**] सभी जीव हैं [**दु दे**] तो तेरे मतमें [**जीवस्स य**

जीवो चेव हि एदे सव्वे भावा त्ति मण्णसे जदि हि यथानंतज्ञानाव्यावाधसुखादिगुणा एव जीवो भवति वर्णादिगुणा एव पुद्गलस्तथा जीव एव हि स्फुटमेते वर्णादयः सर्वे भावा मनसि मन्यसे यदि चेत् **जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो हि दे कोई** तदा किं दूषणं, विशुद्धज्ञानदर्शन-स्वभावजीवस्य जडत्वादिलक्षणाजीवस्य च तस्यैव मते कोऽपि विशेषो भेदो नास्ति। ततश्च जीवाभावदूषणं प्राप्नोतीति सूत्रार्थः ॥ ६७ ॥

अथ संसारावस्थायामेव जीवस्य वर्णादितादात्म्यसंबंधोस्तीति दुरभिनिवेशेपि जीवाभाव एव दोष इत्युपदिशति—

जदि संसारत्थाणं जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी।
तम्हा संसारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा ॥ ६८ ॥

॥ आ. ख्या. ६३ ॥

एवं पुग्गलदव्वं जीवो तह लक्खणेण मूढमदी।
णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्तं पुग्गलो पत्तो ॥ ६९ ॥

॥ आ. ख्या. ६४ ॥

अजीवस्स] जीव और अजीवका [**कोई**] कोई [**विसेसो**] भेद [**णत्थि**] नहीं रहेगा।

टीकार्थ— जैसे अनंतज्ञानाव्यावाधसुखादिगुण ही जीव है, वर्णादिगुण ही पुद्गल है, वैसे यदि तू स्पष्टरूप से जीव ही वर्णादिक सब भाववाला है ऐसा मतमें मानता है तब यह दूषण आता है कि, विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाववाले जीवका और जडत्वादिलक्षणवाले अजीवका तेरे मतमें कुछ भी विशेष भेद नहीं है। इसलिये जीवका अभाव हो जाता है यह दूषण प्राप्त होता है। ऐसा सूत्रार्थ है ॥ ६७ ॥

अब यदि जीवके साथ वर्णादिक का तादात्म्य सर्वथा न मानकर केवल संसार अवस्थामें ही जीवका वर्णादिके साथ तादात्म्यसंबंध माननेका दुराग्रह किया तो भी जीवके अभाव का ही दोष आता है ऐसा उपदेश करते हैं—

गाथार्थ— [**जदि**] यदि [**संसारत्थाणं जीवाणं**] संसारमें स्थित जीवों के [**तुज्झ**] तेरे मतमें [**वण्णादी**] वर्णादिक तादात्म्यस्वरूप [**होंति**] हैं [**तम्हा**] तो इसी कारण [**संसारत्था जीवा**] संसारमें स्थित जीव [**रूवित्तमावण्णा**] रूपित्वको प्राप्त हो गये [**एवं**] ऐसा होनेपर [**पुग्गलदव्वं**] पुद्गल द्रव्य ही [**जीवो**] जीव सिद्ध हुआ [**तह लक्खणेण**] पुद्गलके लक्षण के समान जीव का लक्षण होनेसे [**मूढमई**] हे मूढमति [**णिव्वाणं**] निर्वाणको

जदि संसारत्थाणं जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी यदि चेत्संसारस्थजीवानां पुद्गलस्येव वर्णादयो गुणास्तव मतेन तवाभिप्रायेणैकांतेन भवंतीति **तम्हा संसारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा** ततः किं दूषणं, संसारस्थजीवा अमूर्त्तमनंतज्ञानादिचतुष्टयस्वभावलक्षणं त्यक्त्वा शुक्लकृष्णादिलक्षणं रूपित्वमापन्ना भवंति। अथ **एवं पुग्गलदव्वं जीवो तह लक्खणेण मूढमई** एवं पूर्वोक्तप्रकारेण जीवस्य रूपित्वे सति पुद्गलद्रव्यमेव जीवः नान्यः कोपि विशुद्धचैतन्यचमत्कारमात्रस्तव लक्षणेन तवाभिप्रायेण हे मूढमते न केवलं संसारावस्थायां पुद्गल एव जीवत्वं प्राप्तः **णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्तं पुग्गलो पत्तो** निर्वाणमुपगतोपि पुद्गल एव जीवत्वं प्राप्त नान्यः कोपि चिद्रूपः। कस्मादिति चेत्, वर्णादितादात्म्यस्य पुद्गलद्रव्यस्येव निषेधयितुमशक्यत्वादिति भवत्येव जीवाभावः। किंच संसारावस्थायामेकांतेन वर्णादितादात्म्ये सति मोक्ष एव न घटते, कस्मादिति चेत्? केवलज्ञानादि चतुष्टयव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्यैव मोक्षसंज्ञा सा च जीवस्य पुद्गलत्वे सति न संभवतीति भावार्थः। एवं जीवस्य वर्णादितादात्म्ये सति जीवाभावदूषणद्वारेण गाथात्रयं गतम् ॥ ६८, ६९ ॥

[**उवगदो य**] प्राप्त हुआ [**पुद्गल वि**] पुद्गल ही [**जीवत्तं**] जीवपनेको [**पत्तो**] प्राप्त हुआ।

टीकार्थ– यदि संसारमें स्थित जीवों के पुद्गलकी तरह वर्णादिक गुण है, तेरे मतसे, अभिप्रायसे एकांतसे मान लिया जाय तो संसारमें स्थित जीव अमूर्त्तअनंतज्ञानादिचतुष्टयलक्षण छोडकर शुक्लकृष्णादिलक्षण रूपित्व (मूर्त्तिकत्व) को प्राप्त होते हैं, यह दूषण प्राप्त होता है। हे मूढमते-तेरे अभिप्रायसे इस प्रकार जीवको रूपित्व आ जाने पर पुद्गल द्रव्य ही जीव हो गया इससे भिन्न विशुद्ध चैतन्य चमत्कारवाला जीव अन्य कोई नहीं है। केवल संसारावस्थामें ही पुद्गल ही जीवत्वको प्राप्त नही हो गया, तो निर्वाणको प्राप्त होनेपर भी पुद्गलही जीवत्वको प्राप्त हुआ, उससे अन्य कोई भी चिद्रूप नही रहा। कैसे ? तो, वर्णादिका तादात्म्य पुद्गलके साथ है इसका निषेध करना अशक्य होनेसे जीवका अभाव हो गया।

यदि कहोगे कि संसारावस्थामें एकांतसे जीवका वर्णादिके साथ तादात्म्य होनेसे मोक्षही नही ठहरता (मोक्ष ही नही घटता)। कैसे ?

केवलज्ञानादि चतुष्टयकी व्यक्ति (केवलज्ञानादि चतुष्टय प्रगट होना) रूप कार्यसमयसार की ही मोक्ष संज्ञा है और जीवको पुद्गलत्व प्राप्त होनेसे केवलज्ञानादि चतुष्टयरूप कार्यसमयसार मोक्षपर्याय (प्रगट) प्राप्त नहीं होगी। यह भावार्थ है। इस प्रकार वर्णादिका जीवके साथ तादात्म्यसंबंध माननेसे जीवका अभाव होता है यह दूषण दिखानेवाली तीन गाथायें हो गयी ॥ ६८, ६९ ॥

अथैवं स्थितं बादरसूक्ष्मैकेंद्रियादिसंज्ञीपंचेंद्रियपर्यंतचतुर्दशजीवस्थानानि शुद्धनिश्चयेन जीवस्वरूपं न भवंति तथा देहगता वर्णादयोपीत्यावेदयति–

एक्कं च दोण्णि तिण्णि य चत्तारि य पंच इंदिया जीवा ।
बादरपज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस्स ।। ७० ।।

।। आ. ख्या. ६५ ।।

एदाहि य णिव्वत्ता जीवट्ठाणाउ करणभूदाहिं ।
पयडीहिं पुग्गलमईहिं ताहिं कहं भण्णदे जीवो ।। ७१ ।।

।। आ. ख्या ६६ ।।

एकद्वित्रिचतु:पंचेंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञिबादरपर्याप्तेतराभिधानाः प्रकृतयो भवंति । कस्य संबंधिन्यो नामकर्मण इति । अथ एताभिरमूर्त्तातींद्रियनिरंजनपरमात्मतत्त्वविलक्षणाभिर्नामकर्म-प्रकृतिभिः पुद्गलमयीभिः पूर्वोक्ताभिर्निर्वर्त्तितानि चतुर्दशजीवस्थानानि निश्चयेन कथं जीवा भवंति ? न कथमपि । तथाहि – यथा रुक्मेण करणभूतेन निर्वृत्तमसिकोशं तु रुक्मैव भवति तथा पुद्गलमयप्रकृतिभिर्निष्पन्नानि जीवस्थानानि पुद्गलद्रव्यस्वरूपाण्येव भवन्ति न च जीवस्वरूपाणि । तथा । तेनैव जीवस्थानदृष्टांतेन तदाश्रिता वर्णादयोपि पुद्गलस्वरूपा भवंति, न च जीवस्वरूपा इत्यभिप्रायः ।। ७०, ७१ ।।

अब इस प्रकार बादरसूक्ष्मएकेंद्रियादिसंज्ञीपंचेंद्रियपर्यंतके १४ जीवस्थान शुद्धनिश्चय-नयसे जीवस्वरूप नहीं हैं । उसी तरह देहगत वर्णादिक भी जीव स्वरुप नही है ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**एक्कं च**] एकेंद्रिय [**दोण्णि**] द्वींद्रिय [**तिण्णि**] त्रींद्रिय [**य चत्तारि**] और चतुरिंद्रिय [**य पंच इंदिया**] और पंचेंद्रिय [**जीवा**] जीव तथा [**बादरपज्जत्तिदरा**] बादर सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त ये जीव है वे [**णामकम्मस्स**] नामकर्मकी [**पयडीओ**] प्रकृ-तियां हैं [**एदाहि य**] इन प्रकृतियोंसे ही [**करणभूदाहिं**] करणस्वरूप होकर [**जीवट्ठाणाउ**] जीवसमास [**णिव्वत्ता**] रचे गये हैं [**ताहिं**] उन [**पुग्गलमईहिं**] पुद्गलमय [**पयडीहिं**] प्रकृतियोंसे रचे हुअे को [**जीवो**] जीव [**कहं**] कैसे [**भण्णदे**] कह सकते हैं ?

टीकार्थ– एकेंद्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिंद्रिय, और पंचेंद्रिय, संज्ञी, असंज्ञी, पर्याप्त और अपर्याप्त संज्ञावाली ये नामकर्मकी प्रकृतियां हैं। अब इस अमूर्त्त अतींद्रिय निरंजन परमात्मतत्त्वसे विलक्षण ऐसे इन प्रकृतियोंद्वारा पुद्गलमयतासे पहले कहे हुअे १४ जीवसमास निश्चयसे जीव कैसे हो सकते हैं ?

समाधान– पुद्गलमय नामकर्मकी प्रकृतियोंद्वारा जो १४ जीवसमास है वे किसी भी प्रकारसे नहीं हो सकते ।

उदा– जैसे सुवर्ण के द्वारा रचाया (बनाया) गया तलवारका म्यान सुवर्ण ही होता है वैसे पुद्गलमय प्रकृतियोंद्वारा निष्पन्न (रचाये गये) हुअे जीवसमास पुद्गलमय ही हैं, जीवस्वरूप नहीं है ।। ७०, ७१ ।।

अथ ग्रंथांतरे पर्याप्तापर्याप्तबादरसूक्ष्मजीवाः कथ्यन्ते तत्कथं घटते इति पूर्वपक्षे परिहारं ददाति–

पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा बादरा य जे चेव ।
देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता ।। ७२ ।।

।। आ. ख्या. ६७ ।।

पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा बादरा य जे चेव पर्याप्तापर्याप्तदेहं दृष्ट्वा पर्याप्तापर्याप्तबादरसूक्ष्मविलक्षणपरमचिज्ज्योतिर्लक्षणशुद्धात्मस्वरूपात्पृथग्भूतस्य देहस्य सा जीवसंज्ञा कथिता। क्व, सूत्रे परमागमे । कस्मात्, व्यवहारादिति नास्ति दोषः । एवं जीवस्थानानि जीवस्थानाश्रिता वर्णादयश्च निश्चयेन जीवस्वरूपं न भवन्तीति कथनरूपेण गाथात्रयं गतम् ।। ७२ ।।

कोई शंका पूछता है कि, अन्य ग्रंथमें पर्याप्तजीव, अपर्याप्तजीव, बादरजीव, सूक्ष्म जीव हैं, ऐसा कहा गया है, वह कैसे घटता (सत्य) है? उसका परिहार करते हैं (उत्तर देते हैं)–

गाथार्थ– [**जे**] जो [**पज्जत्तापज्जत्ता**] पर्याप्त अपर्याप्त [**य**] और [**जे**] जो [**सुहुमा बादरा**] सूक्ष्म बादर आदि जितनी [**देहस्स**] देहकी [**जीवसण्णा**] जीव संज्ञाएं [**सुत्ते**] सूत्रमें (ग्रंथमें) जो कही वे सभी [**ववहारदो**] व्यवहारनयसे [**उत्ता**] कही गयी हैं।

टीकार्थ– पर्याप्त, अपर्याप्त, सूक्ष्म और बादर जीव हैं ऐसा कहा गया हैं, वह पर्याप्त अपर्याप्त आदि देहको देखकर, (याने) पर्याप्तापर्याप्तबादरसूक्ष्मसे विलक्षण जो परमज्योतिलक्षणवाले शुद्धात्मस्वरूपसे भिन्न जो देह है, उस देहकी जीवसंज्ञा है, ऐसा कहा गया है ।

शंका– कहाँ ?

समाधान– सूत्रमें, परमागममें अथवा आगमभाषामें पर्याप्त अपर्याप्त आदिको जीव कहा गया हैं । वह व्यवहारनयसे कहा गया है उसमें दोष नहीं है ।

इसप्रकार जीवसमास और जीवसमास को आश्रय करनेवाले वर्णादिक, निश्चयसे जीवका स्वरूप नहीं है, इस कथन रूपसे तीन गाथायें हो गयी ।

भावार्थ– व्यवहारनयसे पर्याप्त अपर्याप्त आदिको जीव कहना दोष नहीं है लेकिन उस कथनको वस्तुस्वभाव मानना या जीवके पारिणामिकभावमें या जीवके स्वभावमें पर्याप्त अपर्याप्त आदिको स्वभावगुण मानना दोष है । क्योंकि ये पर्याय सिद्धजीवमें या शुद्धपारिणामिकभावमें नहीं है । इसलिये अध्यात्मभाषामें शुद्धनिश्चयनयसे पर्याप्त अपर्याप्त आदि और वर्णादिक जीवका स्वरूप नहीं है । जीव परमचैतन्यलक्षणवाला शुद्धात्मा है । उस परमचैतन्यमय अखंड अभेद, अनंतगुणों के पिंडमय आत्माका चिंतवन अथवा भावभासना अथवा शुद्धात्मानुभव करनेसे अतींद्रिय आनंद होता है, आकुलता नष्ट होती है ।। ७२ ।।

अथ न केवलं बहिरंगवर्णादयो शुद्धनिश्चयेन जीवस्वरूपं न भवन्ति अभ्यंतरमिथ्यात्वादिगुणस्थानरूपरागादयोपि न भवन्तीति स्थितं–

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिदा जे इमे गुणट्ठाणा ।
ते कह हवंति जीवा ते णिच्चमचेदणा उत्ता ।। ७३ ।।

।। आ. ख्या. ६८ ।।

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिदा जे इमे गुणट्ठाणा निर्मोहपरमचैतन्यप्रकाशलक्षणपरमात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूतानाद्यविद्याकंदलीकंदायमानसंतानागतमोहकर्मोदयात्सकाशात् यानीमानि वर्णितानि कथितानि गुणस्थानानि । तथा चोक्तं **"गुणसण्णा सा च मोहजोगभवा"** ते **कह हवंति जीवा** तानि कथं भवन्ति जीवा न कथमपि । कथंभूतानि, **ते णिच्चमचेदणा उत्ता** यद्यप्यशुद्धनिश्चयेन चेतनानि तथापि शुद्धनिश्चयेन नित्यं सर्वकालमचेतनानि । अशुद्धनिश्चयस्तु वस्तुतो यद्यपि द्रव्यकर्मापेक्षयाभ्यंतररागादयश्चेतना इति मत्वा निश्चयसंज्ञां लभते तथापि शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एव । इति व्याख्यानं निश्चयव्यवहारनयविचारकाले सर्वत्र ज्ञातव्यं । एवमभ्यंतरे यथा मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानानि जीवस्वरूपं न भवन्ति तथा रागादयोपि शुद्धजीवस्वरूपं न भवन्तीति कथनरूपेणाष्टमगाथा गता । एवमष्टगाथाभिस्तृतीयांतराधिकारो व्याख्यातः ।

अब बाह्यमें पर्याप्तापर्याप्तवर्णादिक शुद्धनिश्चयसे जीवका स्वरूप नहीं हैं, इतनाही नहीं तो, अभ्यंतर मिथ्यात्वादिगुणस्थानरूप रागादिक भाव भी जीवका स्वरूप नही हैं यह सिद्ध करते हैं–

गाथार्थ– [**जे इमे**] जो ये [**गुणट्ठाणा**] गुणस्थान हैं वे [**मोहणकम्मस्सुदया दु**] मोहकर्मके उदयसे होते हैं ऐसे [**वण्णिदा**] आगममें वर्णन किये गये हैं, [**ते**] वे [**जीवा**] जीव [**कह**] कैसे [**हवंति**] हो सकते हैं क्योंकि [**जे**] ये [**णिच्चं**] नित्य [**अचेदणा**] अचेतन [**उत्ता**] कहे हैं ।

टीकार्थ– निर्मोहपरमचैतन्यप्रकाशलक्षणवाले परमात्मतत्त्वसे विरुद्धपक्षवाले अनादि अविद्या कदलीके कंदस्वरूप संतानसे प्रगट हुअे मोहकर्मके उदयसे होनेवाले ये गुणस्थान कहे गये हैं । जैसा कि गोम्मटसारमें कहा गया है **"गुणसण्णा सा च मोहजोगभवा"** मोह और योगसे उत्पन्न होनेवाले जीवके परिणाम को "गुणस्थान" कहते हैं ।

शंका– वे गुणस्थानमयभाव (पर्याय) जीव कैसे हो सकते हैं ?

समाधान– वे गुणस्थान (गुणस्थान पर्याय) जीवका स्वभाव–स्वरूप कभी भी नहीं हो सकते ।

यद्यपि अशुद्धनिश्चयनयसे गुणस्थान चेतन हैं, तथापि शुद्धनिश्चयनयसे वे गणस्थान (गुणस्थान पर्याय) नित्य, सर्वकालमें अचेतन ही हैं ।

ननु रागादयो जीवस्वरूपं न भवन्तीति जीवाधिकारे व्याख्यातं अस्मिन्नजीवाधिकारेपि तदेवेति पुनरुक्तमिदं। तत्र, विस्तररूचिशिष्यं प्रति नवाधिकारैः समयसार एव व्याख्यायते न पुनरन्यदिति प्रतिज्ञावचनं। तत्रापि समयसारव्याख्यानमत्रापि समयसारव्याख्यानमेव। यदि पुनः समयसारं त्यक्त्वान्यद्व्याख्यायते तदा प्रतिज्ञाभंग इति नास्ति पुनरुक्तं। अथवा भावनाग्रंथे समाधिशतकपरमात्मप्रकाशादिग्रंथवद्रागिणां श्रृङ्गारकथावद्वा पुनरुक्तदोषो नास्ति। अथवा तत्र जीवस्य मुख्यता अत्राजीवस्य मुख्यता। विवक्षितो मुख्य इति वचनात्। अथवा तत्र सामान्य-व्याख्यानमत्र तु विस्तरेण। अथवा तत्र रागादिभ्यो भिन्नो जीवो भवतीति विधिमुख्यतयाव्याख्यानं

किन्तु वस्तुतः अशुद्धनिश्चयनय से यद्यपि (आगम भाषासे) द्रव्यकर्मकी अपेक्षासे अभ्यंतर रागादिकभावोंको (पर्यायोंको) "चेतन हैं," ऐसा मानकर निश्चयसंज्ञा प्राप्त होती हैं। तथापि शुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षासे अशुद्धनिश्चयनय भी व्यवहारनय ही है। इसप्रकारका व्याख्यान निश्चयनय और व्यवहारनयके विचार कालमें सर्वत्र जानना चाहिये। इस प्रकार अभ्यंतरमें जैसे मिथ्यात्वादि गुणस्थान जीवका स्वरूप (जीवका स्वभाव) नहीं हैं, वैसे ही रागादिक भी जीवका शुद्ध स्वरूप (जीवका स्वभाव) नहीं हैं। इस कथन रूपसे अष्टम गाथा हो गयी। इस प्रकार आठ गाथाओंद्वारा तृतीय अंतर अधिकारका व्याख्यान हो गया।

भावार्थ– आगमग्रंथोमें आगमभाषासे जहाँ निश्चयनयसे रागादिभावको, मिथ्यात्वादि-गुणस्थानोंको जीव कहा है, वह (निश्चयनय) अध्यात्मभाषासे (शुद्धनिश्चयनयसे) अशुद्ध निश्चयनय–व्यवहारनय ही है।

कोई शंका करता है कि, रागादि जीवका स्वरूप नहीं है ऐसा जीवाधिकारमें कहा गया है, वही बात यहाँ अजीवाधिकारमें फिरसे क्यों कही गई है। यह पुनरुक्त दोष है ?

समाधान– जो जीवाधिकारमें कहा है वह अजीवाधिकार में कहनेसे पुनरुक्त दोष नहीं है। पहले हमने यही प्रतिज्ञा की है कि, 'यहाँ तक जो बात कही है उसीको विस्तार रुचिवाले शिष्योंके लिये नव अधिकारोंसे उसी समयसार का ही व्याख्यान करेंगे, अन्यका नही। इस प्रतिज्ञाके अनुसार वहाँ भी समयसारका व्याख्यान संक्षेपसे किया था वही समयसार का व्याख्यान यहाँ भी कुछ विस्तारसे है। यदि समयसारको छोडकर दुसरा (अन्य) व्याख्यान किया जाता, तो प्रतिज्ञा भंगका दोष आ जाता, इसलिए यहाँ पर पुनरुक्त दोष नहीं है (अपितु गुण ही है), प्रत्युत यह तो भावनात्मक ग्रंथ है, जैसे समाधिशतक, परमात्मप्रकाश आदि अध्यात्मिक ग्रंथ हैं। अथवा जैसे रागी जीवोंको श्रृंगारकी कथा बार बार कही जाती है वैसे यहांपर भावनात्मक (अध्यात्मिक) ग्रंथमें एक ही बात शिष्यको बार बार कही जाती है। इसलिए यहाँ पुनरुक्त दोष नहीं है।

अत्र तु रागादयो जीवस्वरूपं न भवन्तीति निषेधमुख्यतया व्याख्यानम् । किंवत्, एकत्वान्यत्वानुप्रेक्षाप्रस्तावे विधिनिषेधव्याख्यानवदिति परिहारपंचकं ज्ञातव्यम् । एवं जीवाजीवाधिकाररंगभूमौ श्रृङ्गारसहितपात्रवद्व्यवहारेणैकीभूतौ प्रविष्टौ निश्चयेन तु श्रृङ्गाररहितपात्रवत्पृथग्भूत्वा निष्क्रांताविति ॥ ७३ ॥

इति श्री जयसेनाचार्यकृतायां समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां तात्पर्यवृत्तौ स्थलत्रयसमुदायेन त्रिंशद्गाथाभिरजीवाधिकारः समाप्तः ॥ २ ॥

अथवा वहां जीवाधिकारमें जीवकी (अस्तिगुण कथनकी) मुख्यता है और यहां अजीवाधिकारमें अजीव (नास्तिगुण) के कथनकी मुख्यता है । 'विवक्षितो मुख्य इति' ऐसा वचन है क्यों कि, जो विवक्षित होता है, वह मुख्य होता है ।

अथवा वहाँ सामान्यव्याख्या है, यहाँ विस्तारसे व्याख्यान है । अथवा रागादिसे भिन्न जीवकी विधिमुख्यतासे और यहाँ रागादि जीवका स्वरूप नहीं हैं इस निषेधमुख्यतासे व्याख्यान है । जैसे एकत्व अनुप्रेक्षामें विधिकथनकी मुख्यता है और अन्यत्व अनुप्रेक्षामें निषेधकी मुख्यतासे व्याख्यान हैं ।

इस प्रकार शंकाका परिहार पांच प्रकारसे किया गया है ।

इस प्रकार जीव और अजीव के अधिकार रूप रंगभूमिमें श्रृंगारसहित पात्र के समान व्यवहारनयसे एकीभूत (एकरूप) होकर (जीव और अजीवने) प्रवेश किया था, लेकिन निश्चयनयसे वे श्रृंगाररहित (वैराग्य रूप) पात्रके समान पृथक् होकर निकल गये ॥ ७३ ॥

इस प्रकार श्री जयसेनाचार्यके द्वारा वनाई हुअी शुद्धात्मानुभूति लक्षणवाली तात्पर्यवृत्ति नामकी समयसारकी व्याख्यामें तीन स्थलोंके समुदायसे तीस गाथाओंद्वारा यह अजीवाधिकार समाप्त हुआ ॥ २ ॥



अथ कर्तृकर्माधिकार : ॥ ३ ॥

अथ पूर्वोक्तजीवाधिकाररंगभूमौ जीवाजीवावेव यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन कर्तृकर्मभावरहितौ तथापि व्यवहारनयेन कर्तृकर्मवेषेण शृंगारसहितपात्रवत्प्रविशत इति दंडकान्विहायाष्टाधिकसप्ततिगाथापर्यंतं नवभिः स्थलैर्व्याख्यानं करोतीति पुण्यपापादिसप्तपदार्थपीठिकारूपेण तृतीयाधिकारे समुदायपातनिका। अथवा **जो खलु संसारत्थो जीवो** इत्यादि गाथात्रयेण पुण्यपापादिसप्तपदार्था जीवपुद्गलसंयोगपरिणामनिर्वृत्ता न च शुद्धनिश्चयेन शुद्धजीवस्वरूपमिति पंचास्तिकायप्राभृते यत्पूर्वं संक्षेपेण व्याख्यातं तस्यैवेदानीं व्यक्त्यर्थं पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां पीठिकासमुदायकथनं तात्पर्यं कथ्यत इति द्वितीयपातनिका। प्रथमतस्तावत् **जाव ण वेदि विसेसंतरं** इत्यादि गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण गाथाषट्कपर्यंतं व्याख्यानं करोति। तत्र गाथाद्वयमज्ञानिजीवमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं, संज्ञानिजीवमुख्यत्वेन कथ्यत इति प्रथमस्थले समुदायपातनिका।

अब पूर्वोक्त जीवाधिकारकी रंगभूमिमें यद्यपि शुद्धनिश्चयनयसे कर्तृकर्मभावरहित जीव और अजीव हैं तथापि व्यवहारनयसे वही जीव और अजीव कर्ता और कर्मके भेषमें शृंगारसहित पात्रके समान प्रवेश करते हैं। इस प्रकारके दंडकोंको छोडकर ७८ गाथापर्यंत नव स्थलोंसे व्याख्यान करते हैं। इस प्रकार पुण्यपापादि सप्त पदार्थोंकी पीठिका रूपसे तृतीय अधिकारमें समुदाय पातनिका हुअी। अथवा यों कहो '**जो खलु संसारत्थो जीवो**' इत्यादि तीन गाथाओंसे पुण्यपापादिरूप सप्त पदार्थ जो जीव और पुद्गल के संयोग परिणामसे उत्पन्न हुअे हैं, वे शुद्धनिश्चयनयसे शुद्धजीवके स्वरूप (जीवका स्वभाव) नहीं हैं। इस प्रकारका व्याख्यान पंचास्तिकाय प्राभृत ग्रंथमें जो पहले संक्षेपसे किया गया है, उन्हीं पुण्यपापादि सप्तपदार्थोंका स्पष्ट कथन करने के लिये उनका पीठिकारूप समुदाय से कथनरूप तात्पर्य कहा जाता है, इसप्रकार द्वितीय पातानिका हुअी। पहले तो '**जाव ण वेदि विसेसंतरं**' इत्यादि गाथासे शुरु करके पाठक्रमसे छह गाथापर्यंत व्याख्यान करते हैं। वहां दो गाथाओंमें अज्ञानी जीवकी मुख्यतासे और चार गाथामें संज्ञानी जीवकी मुख्यतासे कथन किया गया है। यह प्रथमस्थलमें समुदाय पातनिका है।

तद्यथा– अथ क्रोधाद्यास्रवशुद्धात्मनोर्यावत्कालं भेदविज्ञानं न जानाति तावदज्ञानी भवतीत्यावेदयति–

जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोण्हं पि।
अण्णाणी ताव दु सो कोधादिसु वट्टदे जीवो ॥ ७४ ॥

॥ आ. ख्या. ६९ ॥

कोधादिसु वट्टंतस्स तस्स कम्मस्स संचओ होदि।
जीवस्सेवं बंधो भणिदो खलु सव्वदरसीहिं ॥ ७५ ॥

॥ आ. ख्या. ७० ॥

जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोण्हंपि यावत्कालं न वेत्ति न जानाति विशेषांतरं भेदज्ञानं शुद्धात्मक्रोधाद्यास्रवस्वरूपयोर्द्वयोः अण्णाणी ताव दु सो तावत्कालपर्यंतमज्ञानी

अब जबतक क्रोधादि आस्रवभाव और शुद्धात्मा का भेदविज्ञान नहीं जानता (अनुभवता) तबतक अज्ञानी है ऐसा कथन करते हैं–

गाथार्थ– [जीवो] यह जीव [जाव] जबतक [आदासवाण दोण्हंपि तु] आत्मा और आस्रव इन दोनों के [विसेसंतरं] भिन्न भिन्न लक्षण [ण वेदि] नहीं अनुभवता [ताव] तबतक [सो अण्णाणी] वह अज्ञानी हुआ [कोधादिसु] क्रोधादिक आस्रवोंमें [वट्टदे] वर्तता है, [कोधादिसु] क्रोधादिकभावोंमें [वट्टंतस्स] वर्तते हुये [तस्स] उसके [कम्मस्स] कर्मोंका [संचओ होदि] संचय होता है। [एवं] इस प्रकार [जीवस्स] जीवके [बंधो] कर्मोंका बंध [खलु] निश्चय से (अशुद्धनिश्चयसे) [सव्वदरसीहिं] सर्वज्ञभगवानने [भणिदो] कहा हैं।

टीकार्थ– जबतक शुद्धात्मा और क्रोधादि के स्वरूपका भेदविज्ञान जानता नही, अनुभवता नहीं तबतक अज्ञानी बहिरात्मा है।

शंका– वह अज्ञानी अवस्थामें क्या करता है ?

समाधान– जिसतरह ज्ञान और मैं (आत्मा) अभेद हूँ। ऐसा जानकर ज्ञानमें, (आत्मामें) वर्तता है, उसीतरह क्रोधादि आस्रवरहित निर्मल आत्मानुभूतिलक्षणवाले निज-शुद्धात्मस्वभावसे भिन्न स्वरूप क्रोधादिभावोंमें भी मैं ही क्रोध हूँ, ऐसा अभेद करके परिणमता है।

शंका– उत्तमक्षमादिस्वरूप परमात्माके विरुद्ध लक्षणवाले क्रोधादिभावोंमें परिणति करनेवाले उस जीवको क्या फल प्राप्त होता है ?

बहिरात्मा भवति । स जीवः अज्ञानी सन्किं करोति । **कोधादिसु वट्टदे जीवो** यथा ज्ञानमहं इत्यभेदेन वर्तते तथा क्रोधाद्यास्रवरहितनिर्मलात्मानुभूतिलक्षणनिजशुद्धात्मस्वभावात्पृथग्भूतेषु क्रोधादिष्वपि क्रोधोहमित्यभेदेन वर्तते परिणमतीति । अथ **कोधादिसु वट्टंतस्स तस्स** उत्तमक्षमा-दिस्वरूपपरमात्मविलक्षणेषु क्रोधादिषु वर्त्तमानस्य तस्य जीवस्य । किं फलं भवति, **कम्मस्स संचओ होदि** परमात्मप्रच्छादककर्मणः संचयः आस्रव आगमनं भवति **जीवस्सेव बंधो भणिदो खलु सव्वद-रसीहिं** तैलम्रक्षिते धूलिसमागमवदास्रवे सति ततो मलादितैलसंबंधेन मलबंधवत्प्रकृतिस्थित्यनुभाग-प्रदेशलक्षणः स्वशुद्धात्मावाप्तिस्वरूपमोक्षविलक्षणो बंधो भवति । जीवस्यैवं खलु स्फुटं भणितं सर्वदर्शिभिः सर्वज्ञैः । किंच यावत्क्रोधाद्यास्रवेभ्यो भिन्नं शुद्धात्मस्वरूपं स्वसंवेदनज्ञानबलेन न जानाति तावत्कालमज्ञानी भवति । अज्ञानी सन् अज्ञानजां कर्तृकर्मप्रवृत्तिं न मुंचति तस्माद्बन्धो भवति । बंधात्संसारं परिभ्रमतीत्यभिप्रायः । एवमज्ञानिजीवस्वरूपकथनरूपेण गाथाद्वयं गतं ॥ ७४, ७५ ॥

अथ कदा कालेऽस्याः कर्तृकर्मप्रवृत्तेर्निवृत्तिरित्येवं पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति–

जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव ।
णादं होदि विसेसंतरं तु तइया ण बंधो से ॥ ७६ ॥

॥ आ. ख्या. ७१ ॥

जइया यदा श्रीधर्मलब्धिकाले **इमेण जीवेण** अनेन प्रत्यक्षीभूतेन जीवेन **अप्पणो आसवाण य तहेव णाणं होदि विसेसंतरं तु** यथा शुद्धात्मनस्तथैव कामक्रोधाद्यास्रवाणां च ज्ञातं

समाधान– क्रोधादिभावोंमें परिणति करनेवाले जीवको कर्मका संचय होता है, कर्मका आस्रव-आगमन होता है । जैसे तेल लगाये हुअे जीवके शरीरमें धूलिका समागम हो जाता है, वैसे ही कर्मोंका आस्रव होनेपर, जैसे तेलके संबंधसे मैल चिपक जाती है, वैसे प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबंध लक्षणवाला, जो कि, अपने शुद्धात्माकी प्राप्ति स्वरूप मोक्षसे विलक्षण है ऐसा बंध होता है । ऐसा निश्चयसे सर्वज्ञ भगवानद्वारा कहा गया हैं । और जबतक क्रोधादि-आस्रवभावोंसे भिन्न शुद्धात्माका स्वभाव स्वसंवेद्ज्ञानबलसे नहीं जानता, तबतक अज्ञानी है । अज्ञानी होनेसे अज्ञानके सांनिध्यमें कर्ताकर्म प्रवृत्ति को नहीं छोडता, इसलिये बंध होता है । बंधसे संसार परिभ्रमण होता है, यह अभिप्राय है । इसप्रकार अज्ञानी जीवका स्वरूप कथन करनेवाली दो गाथायें हो गयी ॥ ७४, ७५ ॥

इस कर्तृकर्म प्रवृत्तिकी निवृत्ति किस कालमें होती है ? ऐसा पूछनेपर उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**जइया**] जिस समय [**इमेण जीवेण**] इस जीवको [**अप्पणो**] अपना [**तहेव य**] और [**आसवाण**] आस्रवोंका [**विसेसंतरं**] भिन्नलक्षण [**णादं होदि**] मालूम हो जाता है [**तइया तु**] उसी समय [**से**] उसको [**बंधो ण**] बंध नहीं होता है ।

टीकार्थ– जब श्रीधर्मलब्धिके (शुद्धात्मानुभूतिके) कालमें प्रत्यक्ष स्वानुभूति के द्वारा स्वतः जीव शुद्धात्माके स्वभावका और कामक्रोधादि आस्रव का लक्षणरूप भेदविज्ञान (विशेष अंतर) अनुभवता है (जानता है), तब उसी कालमें सम्यग्ज्ञानी होता है ।

भवति विशेषांतरं भेदज्ञानं तइया तदा काले सम्यग्ज्ञानी भवति। सम्यग्ज्ञानी सन् किं करोति, अहं कर्ता भावक्रोधादिरूपमंतरंगं मम कर्मेत्यज्ञानजां कर्तृकर्मप्रवृत्तिं मुंचति। ततः कर्तृकर्मप्रवृत्तेर्निवृत्तौ सत्यां निर्विकल्पसमाधौ सति ण बंधो न बंधो भवति से तस्य जीवस्येति ॥ ७६ ॥

अथ कथं ज्ञानमात्रादेव बंधनिरोध इति पूर्वपक्षे कृते परिहारं ददाति–

णादूण आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च।
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदि जीवो ॥ ७७ ॥

॥ आ. ख्या. ७२ ॥

क्रोधाद्यास्रवाणां संबंधि कालुष्यरूपमशुचित्वं जडत्वरूपं, विपरीतभावं, व्याकुलत्वलक्षणं दुःखकारणत्वं च ज्ञात्वा तथैव निजात्मनः संबंधि निर्मलात्मानुभूतिरूपं शुचित्वं सहजशुद्धाखंडकेवलज्ञानरूपं ज्ञातृत्वमनाकुलत्वलक्षणानंतसुखत्वं च ज्ञात्वा ततश्च स्वसंवेदनज्ञानानंतरं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकाग्र्यपरिणतिरूपे परमसामायिके स्थित्वा क्रोधाद्यास्रवाणां निवृत्तिं करोति जीवः। इति ज्ञानमात्रादेव बंधनिरोधो भवति नास्ति सांख्यादिमतप्रवेशः। किंच यच्चात्मास्रवयोः सम्बन्धि भेदज्ञानं, तद्रागाद्यास्रवेभ्यो निवृत्तं न वेति निवृत्तं चेत्तर्हि तस्य भेदज्ञानस्य मध्ये पानकवदभेदनयेन वीतरागचारित्रं वीतरागसम्यक्त्वं च लभ्यत इति सम्यग्ज्ञानादेव बंधनिरोधसिद्धिः। यदि रागादिभ्यो निवृत्तं न भवति तदा तत्सम्यग्ज्ञानमेव न भवतीति भावार्थः ॥ ७७ ॥

शंका– वह सम्यग्ज्ञानी होकर क्या करता है ?

समाधान– जिस समय शुद्धात्मानुभव कर रहा है, उसी समय में अंतरंग भावको क्रोधादिरूप कषायभावोंका कर्ता हूँ और ये मेरे कर्म हैं ऐसें अज्ञानके सांनिध्यमें होनेवाली कर्तृकर्मप्रवृत्तिकी निवृत्ति होती है, उसी समय निर्विकल्पसमाधि होनेसे उस जीवको बंध नहीं होता है।

भावार्थ– जिस समय शुद्धात्मानुभव लेता है तब ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रमय अभेदरत्नत्रय प्रगट होता है, उसी समय अज्ञान अवस्था नष्ट होती है (याने चतुर्थ गुणस्थान प्रगट होता है) मिथ्यात्व अवस्था नष्ट होती है, ज्ञानी होता है। तबही मोक्षमार्ग शुरू होता है। बंधका निरोध होता है ॥ ७६ ॥

अब ज्ञानमात्रसेही बंधका निरोध कैसे होता हैं ? ऐसा पूर्वपक्ष करनेपर, उसका परिहार करनेके लिये उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**जीवो**] यह जीव [**णादूण**] स्वानुभव करके [**आसवाणं**] आस्रवभावोंका [**असुचित्तं**] अशुचित्व [**च**] और [**विवरीयभावं**] विपरीतभावपना [**दुक्खस्स कारणं च**] और वे दुःखका कारण ही [**ति**] है ऐसा मानकर (अनुभवकर) [**य तदो**] और उनसे अपने आप [**णियत्तिं**] निवृत्तिको [**कुणदि**] प्राप्त होता है।

अथ केन भावनाप्रकारेणायमात्मा क्रोधाद्यास्रवेभ्यो निवर्त्तते इति चेत्–

अहमिक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो ।
तह्मि ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खयं णेमि ॥ ७८ ॥

॥ आ. ख्या. ७३ ॥

अहं निश्चयनयेन स्वसंवेदनज्ञानप्रत्यक्षं शुद्धचिन्मात्रज्योतिरहं इक्को अनाद्यनंतटंकोत्कीर्णज्ञायकैककस्वभावत्वादेकः खलु स्फुटं सुद्धो यः कर्तृकर्मकरणसंप्रदानापादानाधिकरणषट्का-

---

टीकार्थ– यह जीव क्रोधादि आस्रवभावोंके बारेमें कलुषतारूपको, अशुचित्वको, जडस्वरूपको, विपरीतभावको, व्याकुलत्वलक्षणको और दुःख के कारण को जानकर और उस ही समय निजात्माके संबंधमें निर्मलात्मानुभूतिरूप शुचित्वको (पवित्रताको), सहजशुद्ध अखंड केवलज्ञानरूप ज्ञातृत्वको और अनाकुलत्वलक्षणरूप अनंतसुखको जान (अनुभव) करके और उससे स्वसंवेदनज्ञानके अनंतर सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप एक आत्मिक परिणतिरूप (अभेद रत्नत्रयरूप) परमसामायिकमें ठहरकर क्रोधादिआस्रवभावोंकी निवृत्ति करता है (याने शुद्धात्मानुभूतिमें प्रवृत्ति होनेसे क्रोधादिभावोंसे निवृत्ति अपने आप होती है) इसप्रकार ज्ञानमात्रसे ही (शुद्धात्मानुभूतिमात्रसे ही) बंधका निरोध (मोक्ष का मार्ग अथवा मुक्त) हो जाता है। इसमें सांख्यमतका (निश्चयाभासीका) प्रवेश नहीं है (याने निश्चयाभासी नहीं होता है।)

किंच, आत्मा और आस्रव के संबंधमें जो भेदज्ञान है, वह भेदज्ञान रागादि आस्रवभावोंसे निवृत्त करता है अथवा निवृत्त नहीं करता है?, यदि कहोगे कि निवृत्त करता है तो उस भेदज्ञानरूप अनुभूतिमें पानक (पीनेकी वस्तु, ठंडाई, शरवत इत्यादि) के समान अभेदनयसे (शुद्धनिश्चयनयसे) ज्ञानके साथ वीतरागचारित्र और वीतराग सम्यक्त्व भी है (याने चतुर्थगुणस्थानमें और उसके आगेके गुणस्थानसे सिद्धतक स्वसंवेदनज्ञान [स्वानुभूति] के साथ वीतराग चारित्र और निश्चय सम्यक्त्व है ही)। इसप्रकार सम्यग्ज्ञानसे (शुद्धात्मानुभूतिसे) ही बंधके निरोध की सिद्धि होती है। यदि वह भेदज्ञान (ज्ञान) रागादिभावोंसे निवृत्तिको प्राप्त नहीं होता तो वह सम्यग्भेदज्ञान ही नहीं है, यह भावार्थ है ॥ ७७ ॥

यह ज्ञानी आत्मा किस प्रकारकी भावनासे क्रोधादि आस्रवभावोंसे निवर्त्तता है? उसका उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [अहं] मैं [खलु] निश्चयसे [इक्को] एक हूँ, [सुद्धो] शुद्ध हूँ [णिम्ममो] निर्मोही (ममता रहित) हूँ, [णाणदंसणसमग्गो] ज्ञान दर्शनसे पूर्ण हूँ (अभेद हूँ) [तह्मि ठिदो] ऐसे स्वभावमें स्थित [तच्चित्तो] उसी चैतन्य अनुभवमें लीन हुआ, [एदे] उन [सव्वे] क्रोधादि सव आस्रवभावोंको [खयं] क्षय [णेमि] करता हूँ।

टीकार्थ– निश्चयनयसे स्वसंवेदनज्ञान प्रत्यक्ष अनुभूतिरूप शुद्धचिन्मात्रज्योति हूँ, अनादि अनंत टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वभाववाला होनेसे एक हूँ, यह स्पष्ट है, कर्त्ता, कर्म,

रकीयविकल्पचक्ररहितत्वाच्छुद्धश्च **णिम्ममो** निर्मोहशुद्धात्मतत्त्वविलक्षणमोहोदयजनितक्रोधादिकषायचक्रस्वामित्वाभावात् ममत्वरहितः। **णाणदंसणसमग्गो** प्रत्यक्षप्रतिभासमयविशुद्धज्ञानदर्शनाभ्यां समग्रः परिपूर्णः। एवं गुणविशिष्टपदार्थविशेषोस्मि भवामि। **तह्मि ठिदो** तस्मिन्नुक्तलक्षणे शुद्धात्मस्वरूपे स्थितः। **तच्चित्तो** तच्चित्तः सहजानंदैकलक्षणसुखसमरसीभावेन तन्मयो भूत्वा **सव्वे एदे खयं णेमि** सर्वानेतान्निरास्रवपरमात्मपदार्थपृथग्भूतांस्तान् कामक्रोधाद्यास्रवान् क्षयं विनाशं नयामि प्रापयामीत्यर्थः ॥ ७३ ॥

अथ यस्मिन्नेव काले स्वसंवेदनज्ञानं तस्मिन्नेव काले रागाद्यास्रवनिवृत्तिरिति समानकालत्वं दर्शयति–

जीवणिबद्धा एए अधुव अणिच्चा तहा असरणा य ।
दुक्खा दुक्खाफला त्ति य णादूण णिवत्तए तेहिं ॥ ७९ ॥

॥ आ. ख्या. ७४ ॥

एदे जीवणिबद्धा एते क्रोधाद्यास्रवा जीवेन सह निबद्धा संबद्धा औपाधिकाः। न पुनः

करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण इन षट्कारकीय विकल्पचक्रसे रहित होनेसे शुद्ध हूँ, निर्मोह शुद्धात्मतत्त्वसे विलक्षण ऐसे मोहोदयजनित क्रोधादि कषायचक्रके स्वामित्वका अभाव होनेसे ममत्वरहित हूँ, प्रत्यक्ष प्रतिभासमय विशुद्धज्ञानदर्शनसे समग्र (अखंड, अभेद) परिपूर्ण हूँ। इस प्रकार मैं गुणविशिष्ट पदार्थ विशेष हूँ, उस कहे हुये लक्षणवाले स्वभावमें, शुद्धात्मस्वभावमें स्थित हूँ, सहजानंद एक लक्षणवाले सुखरूप समरसी भावसे (अनुभूतिसे) तन्मय होकर निरास्रवपरमार्थपदार्थसे भिन्न उन सभी क्रोधादिभावोंके विनाश (क्षय) को प्राप्त होता हूँ। (याने शुद्धात्मानुभूतिसे क्रोधादि आस्रवभावों का नाश करता है अथवा शुद्धात्मानुभूति से क्रोधादि आस्रवभावोंसे निवृत्त होता हूँ)।

भावार्थ– छद्मस्थ जीवोंका चेतनोपयोग शुद्धपारिणामिकभाव के साथ तन्मय होनेसे उसकी (स्वानुभूतिसे) स्वभावमें प्रवृत्ति होती है। यह क्षयोपशमरूप चेतनोपयोग क्रमवर्तिवाला होनेसे स्वभावमें प्रवृत्ति करते ही उसी समय रागादिभावोंसे निवृत्ति अपने आप हो जाती है। इसलिये शुद्धात्मानुभवमें अतींद्रिय आनंद है ॥ ७८ ॥

अब जिस समयमें ही स्वसंवेदन ज्ञान (स्वानुभूति) होता है उस ही समयमें रागादिआस्रवोंसे निवृत्ति होती है, इसतरह समानकालपनाको (समकालत्वको) दिखाते हैं–

गाथार्थ– [**एए**] ये आस्रव [**जीवणिबद्धा**] जीवके साथ निबद्ध हैं [**अधुव**] अध्रुव हैं [**तहा**] और [**अणिच्चा**] अनित्य हैं [**य**] और [**असरणा**] अशरण हैं [**दुक्खा**] दुःखरूप हैं [**य**] और [**दुक्खफला**] जिनका फल दुःख ही है [**त्ति णादूण**] ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष [**तेहिं**] उनसे [**णिवत्तए**] निवृत्ति करता है।

टीकार्थ– ये क्रोधादि आस्रवभाव जीवके साथ निबद्ध हैं, संबद्ध हैं, औपाधिक है। और निरुपाधि स्फटिक की तरह जो शुद्धजीवका स्वभाव है, उस शुद्धजीवस्वभावस्वरूप वे क्रोधादि

निरुपाधिस्फटिकवच्छुद्धजीवस्वभावाः। **अधुव** विद्युच्चमत्कारवदध्रुवा अतीवक्षणिकाः। ध्रुवः शुद्धजीव एव **अणिच्चा** शीतोष्णज्वरावेशवदध्रुवापेक्षया क्रमेण स्थिरत्वं न गच्छन्तीत्यनित्या विनश्वराः नित्यश्चिच्चमत्कारमात्रशुद्धजीव एव। **तहा असरणा य** तथा तेनैव प्रकारेण तीव्र-कामोद्रेकवत् त्रातुं धर्त्तुं रक्षितुं न शक्यंत इत्यशरणाः शरणो निर्विकारबोधस्वरूपः शुद्धजीव एव। **दुक्खा** आकुलत्वोत्पादकत्वाद् दुःखानि भवन्ति कामक्रोधाद्यास्रवाः अनाकुलत्वलक्षणत्वात्पारमार्थिक-सुखस्वरूपशुद्धजीव एव। **दुक्खफला त्ति य** आगामिनारकादिदुःखफलकारणत्वाद् दुःखफलाः खल्वास्रवाः वास्तवसुखफलस्वरूपशुद्धजीव एव। **णादूण णिवत्तदे तेसु** इति भेदविज्ञानानंतरमेव इत्थंभूतान्मिथ्यात्वरागाद्यास्रवान् ज्ञात्वास्रवेभ्यो यस्मिन्नेव क्षणे मेघपटलरहितादित्यवन्निवर्त्तते तस्मिन्नेव क्षणे ज्ञानी भवतीति भेदज्ञानेन सहास्रवनिवृत्तेः समानकालत्वं सिद्धमिति। ननु पुण्य-पापादिसप्तपदार्थानां पीठिकाव्याख्यानं क्रियत इति पूर्वं प्रतिज्ञा कृता भवद्भिः व्याख्यानं पुनः अज्ञानिसज्ञानिजीवस्वरूपमुख्यत्वेन कृतं पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां पीठिकाव्याख्यानं कथं घटत इति। तन्न। जीवाजीवौ यदि नित्यमेकांतेनापरिणामिनौ भवतस्तदा द्वावेव पदार्थौ जीवाजीवा-

---

आस्रवभाव नहीं है। वे क्रोधादि आस्रवभाव विजलीके चमत्कारके समान अध्रुव, अतीव क्षणिक, (अत्यंत क्षणिक) हैं। शुद्धजीवस्वभाव ध्रुव ही है। शीतोष्ण ज्वरके वेगके समान वे क्रोधादि-आस्रवभाव अध्रुवता की अपेक्षासे क्रमसे स्थिर (एकसे) रहनेवाले नहीं हैं, (कभी कम कभी अधिक होते हैं, स्थिरताको प्राप्त नहीं होते) इसतरह अनित्य, विनश्वर हैं, लेकिन चित्-चमत्कारमात्रशुद्धजीवस्वभाव ही नित्य है। उसी प्रकार वे क्रोधादि आस्रवभाव तीव्र काम उद्रेक के समान नियंत्रित करनेके (धारण करनेके) लिये शक्य नहीं हो सकते, इसलिये अशरण है, किन्तु निर्विकारबोधस्वरूप शुद्धजीवस्वभाव ही शरणस्वरूप है। वे कामक्रोधादि आस्रवभाव आकुलता उत्पन्न करनेवाले होनेसे अनेक प्रकारके दुःखही हैं किन्तु शुद्धजीवस्वभाव अनाकुलत्वलक्षणवाला होनेसे पारमार्थिक सुखस्वरूप ही है। वे क्रोधादि आस्रवभाव आगामी (भविष्यकालमें होनेवाले) नारकादिदुःखफलके कारण होनेसे दुःखफलस्वरूप हैं, किन्तु शुद्धजीवस्वभावही वास्तवमें सुखफलस्वरूप है। इसके वाद भेदविज्ञानको [**शुद्धात्मानुभवको**] और उन मिथ्यात्व रागादि आस्रवभावोंको जानकर उन आस्रवभावोंसे निवृत्त होता है; जैसे जिस समय मेघपटल दूर होता है उसी समय सूरजका प्रकाश फैलता है वैसे जिस समय भेदज्ञानसे (शुद्धात्मानुभवसे) ज्ञानी होता है उसी समय साथमें रहनेवाले आस्रवभावोंसे निवृत्त होता है। इस प्रकार स्वानुभूति और मिथ्यात्वक्रोधादि आस्रवोंसे निवृत्ति, एकही समयमें (कालमें) होती है, यह सिद्ध हुआ।

शंका— इस प्रकरणके पूर्वमें आपने प्रतिज्ञा तो यह की थी कि, अब पुण्यपापादि सात पदार्थोंकी पीठिका का व्याख्यान किया जाता हैं और यहां व्याख्यानमें सम्यग्ज्ञानी और अज्ञानी जीवका स्वरूप मुख्यतासे कहा गया है तो यहां पुण्यपापादि सात पदार्थोंकी पीठिका का व्याख्यान कैसे घटित होता है ?

विति । यदि च एकांतेन परिणामिनौ तन्मयौ भवतस्तदैक एव पदार्थः । किंतु कथंचित्परिणामिनौ भवतः । कथंचित्कोर्थः ? यद्यपि जीवः शुद्धनिश्चयेन स्वरूपं न त्यजति तथापि व्यवहारेण कर्मोदयवशाद्रागाद्युपाधिपरिणामं गृह्णाति । यद्यपि रागाद्युपाधिपरिणामं गृह्णाति तथापि स्वरूपं न त्यजति स्फटिकवत् । तत्रैवं कथंचित्परिणामित्वे सति अज्ञानी वहिरात्मा मिथ्यादृष्टिर्जीवो विषयकषायरूपाशुभोपयोगपरिणामं करोति । कदाचित्पुनश्चिदानंदैकस्वभावं शुद्धात्मानं त्यक्त्वा भोगाकांक्षानिदानस्वरूपं शुभोपयोगपरिणामं च करोति । तदा काले द्रव्यभावरूपाणां पुण्यपापास्रववंधपदार्थानां कर्तृत्वं घटते । तत्र ये भावरूपाः पुण्यपापादयस्ते जीवपरिणामा ये द्रव्यरूपास्ते चाजीवपरिणामा इति।यः पुनः सम्यग्दृष्टिरंतरात्मा स ज्ञानी जीवः स मुख्यवृत्त्या निश्चयरत्नत्रयलक्षणशुद्धोपयोगवलेन निश्चयचारित्राविनाभाविवीतरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा निर्विकल्पसमाधिरूपपरिणामपरिणतिं करोति तदा तेन परिणामेन संवरनिर्जरामोक्षपदार्थानां द्रव्यभावरूपाणां कर्ता भवति । कदाचित्पुनः निर्विकल्पसमाधिपरिणामाभावे सति विषयकषायवंचनार्थं शुद्धात्मभावना-

---

समाधान– यहां पुण्यपापादि सात पदार्थोंकी पीठिका का व्याख्यान नहीं हुआ ऐसा कहना ठीक नहीं है। क्योंकि यदि जीव और अजीव नित्य एकांतसे अपरिणामी ही हों परिणमनशील नहीं हो तव तो दोही पदार्थ ठहरे और यदि एकांतसे (सर्वथा) परिणामी हैं, तन्मय होकर रहते हैं, तो जीव और अजीव (दो भिन्न पदार्थ न रहकर) एक ही पदार्थ होगा। इसलियें जीव और अजीव कथंचित् परिणमनशील है।

शंका– कथंचित् का क्या अर्थ है ?

समाधान– यद्यपि जीव शुद्धनिश्चयनयसे स्वभाव (स्वरूप) नहीं छोडता है तथापि व्यवहारनयसे कर्मोदयवशसे (कर्मोदयके सांनिध्यमें) रागादि उपाधि परिणामको ग्रहण करता है। यद्यपि रागादि उपाधि परिणामको ग्रहण करता है तथापि स्वरूप को नहीं छोडता है जैसे स्फटिक लालवर्ण के पुष्पके सांनिध्यमें संयोगजदृष्टिसे लाल दिखता है तो भी स्वभावको न छोडनेसे स्वच्छ है, लाल नहीं है। इसलिये कथंचित् परिणामी है।

वहां इसप्रकार कथंचित् परिणामित्व होनेसे अज्ञानी वहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव विषयकषायरूप अशुभोपयोग परिणामको करता है। कदाचित् पुनः चिदानंद एक स्वभाववाले शुद्धात्माको छोडकर, भोगाकांक्षा निदान स्वरूप शुभोपयोग परिणामको करता है। उसी कालमें द्रव्य और भावरूप पुण्यपापमय आस्रववंधपदार्थोंका कर्तृत्व ठहरता है। वहां जो द्रव्यरूप पुण्यपापादि हैं, वे जीवपरिणाम है और जो द्रव्यरूप पुण्यपापादि है, वे अजीव परिणाम है।

और जो सम्यग्दृष्टि अंतरात्मा सम्यग्ज्ञानी जीव है, वह मुख्यवृत्तिसे निश्चयरत्नत्रयलक्षणवाले शुद्धोपयोगके वलसे निश्चयचारित्रके अविनाभावी वीतरागसम्यग्दृष्टि होकर निर्विकल्पसमाधिरूपपरिणाम–परिणति करता है, तव उसी परिणामसे द्रव्य और भावरूप संवर, निर्जरा, और मोक्ष पदार्थोंका कर्ता होता है।

और कदाचित् निर्विकल्पसमाधिपरिणामका अभाव होनेसे (आगमभाषासे) विषय-

साधनार्थं वा बहिर्बुद्धचा (हेयबुद्धचा) ख्यातिपूजालाभभोगाकांक्षानिदानबंधरहितः सन् शुद्धात्मलक्षणार्हत्सिद्धशुद्धात्माराधकप्रतिपादकसाधकाचार्योपाध्यायसाधूनां गुणस्मरणादिरूपं शुभोपयोगपरिणामं च करोति । अस्मिन्नर्थे दृष्टांतमाहुः । यथा कश्चिद्देवदत्तः स्वकीयदेशांतरस्थित स्त्रीनिमित्तं तत्समीपागतपुरुषाणां सन्मानं करोति, वार्त्तां पृच्छति, तत्स्त्रीनिमित्तं तेषां स्वीकारं स्नेहदानादिकं च करोति । तथा सम्यग्दृष्टिरपि शुद्धात्मस्वरूपोपलब्धिनिमित्तं शुद्धात्माराधकप्रतिपादकाचार्योपाध्यायसाधूनां गुणस्मरणं दानादिकं च स्वयं शुद्धात्माराधनारहितः सन् करोति। एवमज्ञानिसंज्ञानिजीवस्वरूपव्याख्याने कृते सति पुण्यपापादिसप्तपदार्था जीवपुद्गलसंयोगपरिणामनिर्वृत्ता इति पीठिकाव्याख्यानं घटते । नास्ति विरोधः । एवं सज्ञानिजीवव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं गतं । इति पुण्यपापादिसप्तपदार्थपीठिकाधिकारे गाथाषट्केन प्रथमांतराधिकारो व्याख्यातः ।। ७९ ।।

~~अतः परं अथवा कर्मणैकादशगाथासु~~ ॥ मध्ये जीवः कर्त्ता मृत्तिकाकलशमिवोपादानरूपेण

कषायोंसे बचनेके लिये अथवा (अध्यात्मभाषासे) शुद्धात्मानुभवकी साधनाके लिये बहिर्बुद्धिसे (विकल्पभावसे अथवा विकल्पभावोंको हेय मानते हुअे भी छद्मस्थ होनेसे वह सम्यग्दृष्टि विकल्पभावसे) ख्यातिपूजालाभभोगाकांक्षानिदानबंधरहितभाववाला होते हुअे शुद्धात्माके लक्षणवाले अर्हंत सिद्ध और शुद्धात्माके आराधक और शुद्धात्माके प्रतिपादन करनेवाले और उसी शुद्धात्माकी साधना करनेवाले आचार्य, उपाध्याय और साधुके गुणस्मरणादिरूप (द्रव्य, गुण और पर्याय का विचार) शुभोपयोग परिणाम करता है । इसी बातको बताने के लिये दृष्टांत कहते हैं, कि जैसे कोई एक देवदत्त पुरुष-जिसकी स्त्री देशांतरमें है, उस स्त्री का समाचार जानने के लिये उसके ग्रामसे आये हुअे लोगोंका सन्मान करता है, उसकी बात पूछता है और उनको अपनाकर व उनसे प्रेम दिखलाकार उनको दानादिक भी देता है, यह उसका सारा बर्ताव केवल स्त्री का परिचय प्राप्त करनेके निमित्त होता है । वैसे ही सम्यग्दृष्टि (ज्ञानी) जीव भी शुद्धात्मस्वरूपकी (उपलब्धिके लिये) शुद्धात्माके अनुभववाले (आराधक) व प्रतिपादक ऐसे आचार्य उपाध्याय व साधु हैं उनका गुणस्मरण दान सन्मान आदि करता है । उसी तरह जो स्वयं अभी शुद्धात्माकी आराधनासे रहित है वह भी शुद्धात्मानुभूतिकी उपलब्धिके लिये शुद्धात्माके आराधक व प्रतिपादक ऐसे आचार्य, उपाध्याय, साधु उनके गुणोंका स्मरण, दान सन्मान आदि करता है ।

इस प्रकार अज्ञानी और सम्यग्ज्ञानी जीवके स्वरूपका व्याख्यान करते समय पुण्यपापादि सप्तपदार्थ जीव और पुद्गल के संयोग परिणामसे निर्वृत्त है, ऐसा पीठीका का व्याख्यान घटता है। इसमें विरोध नहीं है। इसप्रकार सम्यग्ज्ञानी जीवके व्याख्यान की मुख्यतासे ४ गाथायें हो गयी। इसप्रकार पुण्यपापादिसप्तपदार्थपीठिका अधिकारमें छह गाथाओंद्वारा प्रथम (पहला) अंतर अधिकारका व्याख्यान हो गया ।। ७९ ।।

इसके आगे क्रमसे ११ गाथापर्यंत फिरसे सम्यग्ज्ञानी जीवका विशेष व्याख्यान करतें हैं।

निश्चयेन कर्म नोकर्म च न करोतीति जानन् सन् शुद्धात्मानं स्वसंवेदनज्ञानेन जानाति यः स ज्ञानी भवतीति कथनरूपेण **'कम्मस्स य परिणामं'** इत्यादि प्रथम गाथा। ततः परं पुण्यपापादिपरिणामान् व्यवहारेण करोति निश्चयेन न करोतीति प्रतिपादनरूपेण **'ण वि परिणमदि'** इत्यादि गाथात्रयं। तदनंतरं पुद्गलोपि वर्णादि स्वपरिणामस्यैव कर्ता न च ज्ञानादिजीवपरिणामस्येति कथनरूपेण **'ण वि परिणमदि'** इत्यादि सूत्रमेकं। अतः परं जीवपुद्गलयोरन्योन्यनिमित्तकर्तृत्वेऽपि सति परस्परोपादानकर्तृत्वं नास्तीति कथनमुख्यतया **'जीवपरिणाम'** इत्यादि गाथात्रयं। तदनंतरं निश्चयेन जीवस्य स्वपरिणामैरेव सह कर्तृकर्मभावो भोक्तृभोग्यभावश्चेति प्रतिपादनरूपेण **'णिच्छयणयस्स'** इत्यादि सूत्रमेकं/ततश्च व्यवहारेण जीवः पुद्गलकर्मणां कर्ता भोक्ता चेति कथनरूपेण **'ववहारस्स दु'** इत्यादि सूत्रमेकं। एवं ज्ञानिजीवस्य विशेषव्याख्यानमुख्यत्वेनैकादशगाथाभिर्द्वितीयस्थले समुदायपातनिका।

तद्यथा– अथ कथमात्मा ज्ञानीभूतो लक्ष्यत इति प्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति–

कम्मस्स य परिणामं णोकम्मस्स य तहेव परिणामं।
ण करेदि एयमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥ ८० ॥

॥ आ. ख्या. ॥ ७५ ॥

वहाँ ११ गाथाओंमें जैसे उपादानरूपसे मिट्टी कलशका कर्ता है उसी तरह निश्चयसे जीव कर्म और नोकर्मका कर्ता नहीं है, ऐसा जाननेवाला होकर जो निजस्वभावशुद्धआत्माको स्वसंवेदनज्ञानसे (शुद्धात्मानुभूतिसे) जानता है, वह ज्ञानी होता है इस कथनरूपसे **'कम्मस्स य परिणामं'** इत्यादि रूप प्रथम गाथा है। उसके वाद व्यवहारसे पुण्यपापादि परिणामोंको करता है, निश्चयसे पुण्यपापादिपरिणामोंका कर्ता नहीं है, इसकी मुख्यतासे एक गाथा है। अव इसके आगे कर्मत्वको, स्वपरिणामको और सुखदुःखादिकर्मफलको आत्मा जानता हुआ भी उदयागत परद्रव्य को नहीं करता है इसी प्रतिपादनरूपसे **'ण वि परिणमदि'** इत्यादि तीन गाथायें हैं। तदनंतर पुद्गल भी वर्णादिस्वपरिणामकाही कर्ता है, ज्ञानादिजीवपरिणामका कर्ता नही है, इस कथनरूपसे **'ण वि परिणमदि'** इत्यादि एक गाथा है। इसके वाद जीवपुद्गलका अन्योन्य निमित्त कर्तृत्व होते हुये भी [याने जीवपुद्गलका सांनिध्य देखकर परस्परमें निमित्तका आरोप किया जाता है तो भी] परस्परमें उपादानरूप से कर्तृत्व नहीं है, इस कथनकी मुख्यतासे **'जीवपरिणाम'** इत्यादि तीन गाथायें हैं। तदनंतर निश्चयसे जीवका स्वपरिणामके साथही कर्तृकर्मभाव और भोक्तृभोग्यभाव है, इसप्रकार के प्रतिपादनरूपसे **'णिच्छयणयस्स'** इत्यादि एक गाथा है और इसके वाद व्यवहारसे जीव पुद्गलकर्मोका कर्ता भोक्ता है, ऐसे कथनरूपसे **'ववहारस्स दु'** इत्यादि एक गाथा है। इसप्रकार ज्ञानी जीवके विशेष व्याख्यान की मुख्यतासे ११ गाथाओंद्वारा द्वितीय स्थलमें समुदायपातनिका है।

अव यह आत्मा ज्ञानी हुआ है, यह कैसे जाना जाता है? ऐसा प्रश्न पूछनेपर उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**जो**] जो [**आदा**] आत्मा [**एयं**] इस [**कम्मस्स**] कर्म के [**परिणामं य**] परिणामको [**तहेव य**] और उसी भांति [**णोकम्मस्स परिणामं**] नोकर्मके

कम्मस्स य परिणामं णोकम्मस्स य तहेव परिणामं ण करेदि एयमादा जो जाणदि यथा मृत्तिकाकलशमुपादानरूपेण करोति तथा कर्मणः नोकर्मणश्च परिणामं पुद्गलेनोपादानकारणभूतेन क्रियमाणं न करोत्यात्मेति यो जानाति **सो हवदि णाणी** स निश्चयशुद्धात्मानं परमसमाधिबलेन भावयन्सन् ज्ञानी भवति । इति ज्ञानीभूत जीवलक्षणकथनरूपेण गाथा गता ॥ ८० ॥

अथ पुण्यपापादिपरिणामान् व्यवहारेण करोतीति प्ररूपयति—

कत्ता आदा भणिदो ण य कत्ता केण सो उवाएण ।

धम्मादी परिणामे जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥ ८१ ॥

कर्ता आत्मा भणितः न च कर्ता केन स उपायेन । धर्मादीन् परिणामान् यः जानाति स भवति ज्ञानी । **कत्ता आदा भणिदो** कर्तात्मा भणितः **ण य कत्ता सो** न च कर्ता भवति स आत्मा **केण उवायेण** केनाप्युपायेन नयविभागेन । केन नयविभागेनेति चेत्, निश्चयेन अकर्ता

परिणामको [**ण करेदि**] नहीं करता है [**जाणदि**] जानता है, [**सो**] वह [**णाणी**] ज्ञानी [**हवदि**] है ।

टीकार्थ— जैसे मिट्टी कलशका उपादान कर्ता है, तथा कर्मके और नोकर्मके परिणामको पुद्गल उपादान कारण होकर कर्ता है, वैसे आत्मा कर्मके और नोकर्मके परिणामका कर्ता नहीं है, ऐसा जो जानता है वह निश्चयशुद्धात्माको परमसमाधिबलसे अनुभव करके ज्ञानी होता है (याने शुद्धात्माका अनुभव करनेवाला ज्ञानी है) । इसतरह ज्ञानी हुअे जीवके लक्षणके कथन रूपसे गाथा हो गयी ॥ ८० ॥

अब व्यवहारसे आत्मा पुण्यपापादि परिणामोंका कर्ता है, ऐसा कहते हैं—

गाथार्थ— [**केण सो उवाएण**] किसी एक उपायसे (व्यवहारनयसे) [**आदा**] आत्मा [**धम्मादी परिणामे**] पुण्यादिपरिणामोंका [**कत्ता**] कर्ता है [**य**] और [**केण सो उवाएण**] किसी एक उपायसे (निश्चयनयसे) [**आदा**] आत्मा [**धम्मादि परिणामे**] पुण्यादि परिणामोंका [**कत्ता ण**] कर्ता नहीं है, [**भणिदो**] ऐसा कहा गया है, इस प्रकार [**जो**] जो [**जाणदि**] जानता है, [**सो**] वह [**णाणी**] ज्ञानी [**हवदि**] है ।

टीकार्थ— किसी एक नयसे (व्यवहारनयसे) आत्मा पुण्यादिपरिणामोंका कर्ता है, और किसी एक नयसे (निश्चयनयसे) आत्मा पुण्यादि परिणामोंका कर्ता नहीं है, यह जो जानता है वह ज्ञानी है ।

शंका— कौनसे नयसे आत्मा पुण्यादि परिणामोंका कर्ता है और अकर्ता है ?

समाधान— निश्चयनयसे कर्मजनित उपाधिरूप पुण्यपापादि परिणामोंका अकर्ता है और

व्यवहारेण कर्तेति। कान् **धम्मादी परिणामे** पुण्यपापादिकर्मजनितोपाधिपरिणामान् **जो जाणदि सो हवदि णाणी** ख्यातिपूजालाभादिसमस्तरागादिविकल्पोपाधिरहितसमाधौ स्थित्वा यो जानाति स ज्ञानी भवति। इति निश्चयव्यवहाराभ्यामकर्तृत्वकर्तृत्वकथनरूपेण गाथा गता ॥ ८१ ॥

अथ पुद्गलकर्म जानतो जीवस्य पुद्गलेन सह तादात्म्यसम्बन्धो नास्तीति निरूपयति—

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाये।
णाणी जाणंतो वि हु पुग्गलकम्मं अणेयविहं ॥ ८२ ॥

॥ आ. ख्या. ७६ ॥

पुग्गलकम्मं अणेयविहं कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्येणोपादानकारणभूतेन क्रियमाणं पुद्गलकर्मानेकविधं मूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नं **जाणंतो वि हु** विशिष्टभेदज्ञानेन जानन्नपि हु स्फुटं सः। कः कर्ता, **णाणी** सहजानंदैकस्वभावनिजशुद्धात्मरागाद्यास्रवयोर्भेदज्ञानी **ण वि परिणमदि**

व्यवहारनयसे कर्मजनित उपाधिरूप पुण्यपापादि परिणामोंका कर्ता है। जो ख्यातिपूजालाभादि-समस्तरागादिविकल्पकी उपाधि से रहित समाधिमें लीन होकर (स्वानुभवमे ठहरकर) जो पुण्यपापादि परिणामोंको कर्मजनित जानता है, वह ज्ञानी है। इसतरह निश्चयव्यवहारनयसे कर्तृत्वाकर्तृत्वके कथन रूपसे गाथा हो गयी ॥ ८१ ॥

अब पुद्गलकर्मको जानते हुअे जीवका पुद्गल के साथ तादात्म्यसंबंध नहीं हैं, ऐसा निरूपण (कथन) करते हैं—

गाथार्थ— [**णाणी**] ज्ञानी [**पुग्गलकम्मं**] पुद्गलकर्म [**अणेयविहं**] अनेकप्रकारका है, ऐसा [**जाणंतो वि**] जानता हुआ भी [**हु**] निश्चयसे [**परदव्वपज्जाये**] परद्रव्यके पर्यायोंमें उनस्वरूप [**ण परिणमदि**] परिणमन नहीं करता, [**ण वि गिण्हदि**] उनका ग्रहण भी नहीं करता और [**उप्पज्जदि ण**] उन स्वरूप उत्पन्न भी नहीं होता।

टीकार्थ— कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्यद्वारा पुद्गलद्रव्यउपादान कारण होकर किये जानेवाले पुद्गलकर्म अनेकविध, मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतिके भेदसे अनेक प्रकारका (बन जाता है अथवा हो जाता) है, उनको ज्ञानी विशिष्टभेदविज्ञानसे स्पष्ट जानते हुअे भी, (याने) सहजानंद एक स्वभाव निजशुद्धात्माको और रागादि आस्रवभावोंको जाननेवाला भेदविज्ञानी आत्मा उस पूर्वोक्त परद्रव्यपर्यायरूप कर्मस्वरूप निश्चयसे परिणमन नहीं करती, तादात्म्य होकर ग्रहण नहीं करती और उस आकारद्वारा उत्पन्न नहीं होती। जैसे मृत्तिका उपा-दानरूपसे घटरूप परिणत होती है, मृत्तिका ही घटसे तादात्म्य होकर घटको ग्रहण करती है, और मृत्तिका ही घटके आकारसे उत्पन्न होती है (याने घट आकारसे रची जाती है)।

शंका— आत्मा पुद्गलकर्मस्वरूप क्यों परिणमन नहीं करता, पुद्गलकर्मको तादात्म्य

ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाये तत्पूर्वोक्तं परद्रव्यपर्यायरूपं कर्म निश्चयेन मृत्तिकाकलशरूपेणेव न परिणमति न तादात्म्यरूपतया गृह्णाति न च तदाकारेणोत्पद्यते। कस्मादिति चेत्, मृत्तिकाकलशयोरिव तेन पुद्गलकर्मणा सह तादात्म्यसम्बन्धाभावात्। तत एतदायाति पुद्गलकर्म जानतो जीवस्य पुद्गलेन सह निश्चयेन कर्तृकर्मभावो नास्तीति ॥ ८२ ॥

अथ स्वपरिणामं संकल्पविकल्परूपं जानतो जीवस्य तत्परिणामनिमित्तेनोदयागतकर्मणा सह तादाम्यसंबंधो नास्तीति दर्शयति–

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।
णाणी जाणंतो वि हु सगपरिणामं अणेयविहं ॥ ८३ ॥

॥ आ. ख्या. ७७ ॥

सगपरिणामं अणेयविहं क्षायोपशमिकं संकल्पविकल्परूपं स्वेनात्मनोपादानकारणभूतेन क्रियमाणं स्वपरिणाममनेकविधं **णाणी जाणंतो वि हु** निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानी जीवः स्वपरमात्मनो विशिष्टभेदज्ञानेन जानन्नपि हु स्फुटं **णवि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाये** तस्य पूर्वोक्तस्वकीयपरिणामस्य निमित्तभूतमुदयागतं पुद्गलकर्मपर्यायरूपं मृत्तिकाकलशरूपेणेव

रूपसे क्यों नहीं ग्रहण करता और पुद्गलकर्म स्वरूपको क्यों उत्पन्न (रचना) नहीं करता ?

समाधान– क्यों कि जैसे मृत्तिका और कलशमें (घटमें) तादात्म्य संबंध है, वैसे चेतनमय आत्मा और अचेतनमय पुद्गलकर्म में तादात्म्य संबंध नहीं है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, पुद्गलकर्मको जाननेवाले जीवका पुद्गल के साथ निश्चयसे कर्तृकर्मसंबंध (कर्तृकर्मभाव) नहीं है ॥ ८२ ॥

अब अपने संकल्पविकल्परूप परिणामको जानते हुये (भी) जीवका उस परिणामके निमित्तसे उद्यागत (भाव) कर्मके साथ तादात्म्य संबंध नहीं है, यह दिखाते हैं–

गाथार्थ– [**णाणी**] ज्ञानी [**सगपरिणामं**] अपने परिणामोंको [**अणेयविहं**] अनेक प्रकार [**जाणंतो वि**] जानता हुआ भी [**हु**] निश्चयसे [**परदव्वपज्जाए**] परद्रव्यके पर्यायमें [**ण वि परिणमदि**] न तो परिणमन करता है [**ण गिण्हदि**] न उसको ग्रहण करता है और [**उप्पज्जदि ण**] न उपजता है (इसलिये संकल्पविकल्पके साथ कर्ताकर्म भाव नहीं हैं)।

टीकार्थ– क्षायोपशमिक संकल्पविकल्प रूप स्वतःसे उपादान कारण होकर किये जानेवाले स्वपरिणाम अनेकविध है उनको निर्विकारस्वसंवेदनवाला ज्ञानी जीव स्वपरके विशिष्ट भेदविज्ञानसे जानता हुआ भी उसके पूर्वोक्त स्वकीय परिणामके निमित्तसे उदयागत पुद्गलकर्मपर्यायरूप परिणमन शुद्ध निश्चयनयसे नहीं करता है, तादात्म्य होकर उसको ग्रहण नहीं करता

शुद्धनिश्चयनयेन न परिणमति न तन्मयत्वेन गृह्णाति न तत्पर्यायेणोत्पद्यते च। कस्मात् मृत्तिका-कलशयोरिव तेन पुद्गलकर्मणा सह परस्परोपादानकारणाभावादिति। एतावता किमुक्तं भवति स्वकीयक्षायोपशमिकपरिणामनिमित्तमुदयागतं कर्म जानतोऽपि जीवस्य तेन सह निश्चयेन कर्तृकर्मभावो नास्तीति ॥ ८३ ॥

अथ पुद्गलकर्मफलं जानतो जीवस्य पुद्गलकर्मफलनिमित्तेन द्रव्यकर्मणा सह निश्चयेन कर्तृकर्मभावो नास्तीति कथयति–

णवि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।
णाणी जाणंतो वि हु पुग्गलकम्मफलमणंतं ॥ ८४ ॥

॥ आ. ख्या. ७८ ॥

पुग्गलकम्मफलमणंतं उदयागतद्रव्यकर्मणोपादानकारणभूतेन क्रियमाणं सुखदुःखरूप-शक्त्यपेक्षयानंतकर्मफलं **णाणी जाणंतो वि हु** वीतरागशुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतरसतृप्तो भेदज्ञानी निर्मलविवेकभेदज्ञानेन जानन्नपि हि स्फुटं **ण परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण**

और उस पर्याय से उत्पन्न नहीं होता। जैसे मृत्तिका उपादानरूपसे घटरूप परिणत होती है, मृत्तिका ही घटसे तादात्म्य होकर घटको ग्रहण करती है और मिट्टी ही घटके आकारसे उत्पन्न होती है क्योंकि मिट्टीका घटके साथ तादात्म्य (उपादान-उपादेय) संबंध है। लेकिन संकल्प-विकल्पके साथ, (पुद्गलकर्मके साथ) जीवका तादात्म्य संबंध नहीं है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि स्वकीय क्षायोपशमिक परिणामके निमित्तसे उदयागत कर्म को जानता हुआ भी उस संकल्प-विकल्प के साथ शुद्धनिश्चयनयसे कर्तृकर्मभाव नहीं है ॥ ८३ ॥

अब पुद्गलकर्मफलको जानते हुऐ जीवका पुद्गलकर्मफल के निमित्तसे द्रव्यकर्मके साथ निश्चयनयसे कर्तृकर्मभाव नहीं है ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**णाणी**] ज्ञानी [**अणंतं**] अनंत [**पुग्गलकम्मफलं**] पुद्गल कर्मके फलोंको [**जाणंतो वि**] जानता हुआ प्रवृत्त होता है तो भी [**हु**] निश्चयसे [**परदव्वपज्जाए**] परद्रव्यके पर्यायरूप [**ण वि परिणमदि**] नहीं परिणमन करता है [**ण गिण्हदि**] नहीं ग्रहण करता है [**ण उप्पज्जदि**] उसमें उपजता भी नहीं है। (इसप्रकार परद्रव्यके फलके साथ कर्तृकर्मभाव नहीं है)

टीकार्थ– उदयागतद्रव्यकर्मसे उपादान कारणभूत होकर किये जानेवाले सुखदुःखरूप-शक्तिकी अपेक्षासे अनंत प्रकार के कर्मफल को वीतरागशुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतरसतृप्त ऐसा भेदज्ञानी निर्मलविवेकभेदज्ञानसे (शुद्धात्मानुभूतिसे) स्पष्ट जानते हुऐ भी वर्तमानसुख-दुःखरूप शक्ति अपेक्षासे निमित्तभूत उदयागत परपर्यायरूप पुद्गलकर्मको शुद्धनिश्चयनयसे प्राप्त

परदव्वपज्जाये वर्त्तमानसुखदुःखरूपं शक्त्यपेक्षानिमित्तमुदयागतं परपर्यायरूपं पुद्गलकर्म मृत्तिका-कलशरूपेणेव शुद्धनयेन न परिणमति न तन्मयत्वेन गृह्णाति न तत्पर्यायेणोत्पद्यते च । कस्मादिति चेत्, मृत्तिकाकलशयोरिव तेन द्रव्यकर्मणा सह तादात्म्यलक्षणसंबंधाभावादिति । किंच विशेषः । यदि पुद्गलद्रव्यकर्मरूपेण न परिणमति न गृह्णाति न तदाकारेणोत्पद्यते तर्हि किं करोति ज्ञानी जीवः मिथ्यात्वविषयकषायख्यातिपूजालाभभोगाकांक्षानिदानबंधशल्यादिविभावपरिणामकर्तृत्वभो-क्तृत्वविकल्पशून्यं पूर्णकलशवच्चिदानंदैकस्वभावेन भरितावस्थं शुद्धात्मानं निर्विकल्पसमाधौ ध्यायतीति भावार्थः । एवमात्मा निश्चयेन द्रव्यकर्मादिकं परद्रव्यं न परिणमतीत्यादिव्याख्यान-मुख्यत्वेन गाथात्रयं गतम् ॥ ८४ ॥

अथ जीवपरिणामं, स्वपरिणामं, स्वपरिणामफलं च जडस्वभात्वादजानतः पुद्गलस्य निश्चयेन जीवेन सह कर्तृकर्मभावो नास्तीति प्रतिपादयति–

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
पुग्गलदव्वं पि तहा परिणमइ सएहिं भावेहिं ॥ ८५ ॥

॥ आ. ख्या. ७९ ॥

(परिणत) नहीं होता है, तन्मय होकर (उसको) ग्रहण नहीं करता है और उस पर्यायरूपसे उत्पन्न नहीं होता है जैसे मृत्तिका घटरूपको प्राप्त (परिणत) होती है, तन्मय होकर घटरूपको ग्रहण करती है और घटपर्यायरूपसे उत्पन्न होती है क्योंकि घट और मिट्टिमें तादात्म्यसंबंध है, वैसे पुद्गलकर्मका और जीवका तादात्म्यसंवंध नहीं है ।

और कुछ विशेष कहते हैं–

शंका– यदि ज्ञानी जीव पुद्गलद्रव्यकर्मरूपसे नहीं परिणमता, उसे नहीं ग्रहण करता और उसरूप नहीं उत्पन्न होता, तो क्या करता है ?

समाधान– मिथ्यात्वविषयकषायख्यातिपूजालाभभोगाकांक्षानिदानबंधशल्यादिविभावप-रिणामकर्तृत्वभोक्तृत्वविकल्पसे रहित ऐसे आत्माको जल से पूर्ण भरे हुए कलशकी तरह चिदानं-दैकस्वभावसे भरितावस्थावाले शुद्धात्माका निर्विकल्पसमाधिमें ध्यान (अनुभव) करता है। ऐसा भावार्थ है ।

इस प्रकार आत्मा निश्चयनयसे द्रव्यकर्मादिस्वरूप परद्रव्यके रूपमें नहीं परिणमता है, तन्मय होकर उसको नहीं ग्रहण करता है और उस पर्यायरूप नहीं उत्पन्न होता है, इस व्याख्यानकी मुख्यतासे तीन गाथायें हो गयी ॥ ८४ ॥

अव जीवपरिणामको, स्वपरिणामको और स्वपरिणामके फलको न जानते हुये पुद्ग-लका निश्चयनयसे जीवके साथ कर्तृकर्मभाव नहीं है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं–

गाथार्थ– [पुग्गलदव्वं पि] पुद्गलद्रव्य भी [परदव्वपज्जाए] परद्रव्यके पर्यायमें

णवि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए यथा जीवो निश्चयेनानंतसुखादिस्वरूपं त्यक्त्वा पुद्गलद्रव्यरूपेण न परिणमति न च तन्मयत्वेन गृह्णाति न तत्पर्यायेणोत्पद्यते। **पुग्गलदव्वं पि तहा** तथा पुद्गलद्रव्यमपि स्वयमंतर्व्यापकं भूत्वा मृत्तिकाकलशरूपेणेव चिदानंदैकलक्षणजीवस्वरूपेण न परिणमति न च जीवस्वरूपं तन्मयत्वेन गृह्णाति न च जीवपर्यायेणोत्पद्यते। तर्हि किं करोति **परिणमइ सएहिं भावेहिं** परिणमति स्वकीयैर्वर्णादिस्वभावैः परिणामैर्गुणैर्धर्मैरिति। कस्मादिति चेत्, मृत्तिकाकलशयोरिव जीवेन सह तादात्म्यलक्षणसंबंधाभावादिति। एवं पुद्गलद्रव्यमपि जीवेन सह न परिणमतीत्यादिव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता ॥ ८५ ॥

अथ यद्यपि जीवपुद्गलपरिणामयोरन्योन्यनिमित्तमात्रत्वमस्ति तथापि निश्चयनयेन तयोर्न कर्तृकर्मभावं इत्यावेदयति–

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमइ ॥ ८६ ॥

॥ आ. ख्या. ८० ॥

[**तहा**] उस प्रकार [**ण वि परिणमदि**] नहीं परिणमन करता है [**ण गिण्हदि**] नहीं ग्रहण करता है [**ण उप्पज्जदि**] नहीं उत्पन्न होता है क्योंकि [**सएहिं**] अपने [**भावेहिं**] भावोंसे ही [**परिणमइ**] परिणमन करता है।

टीकार्थ– जैसे जीव निश्चयनयसे अनंतसुखादिस्वरूपको छोडकर पुद्गलद्रव्यरूपसे परिणमन नहीं करता है, तन्मय होकर उनको ग्रहण नहीं करता है और उस पर्यायरूप से उत्पन्न नहीं होता है। उसी प्रकार मृत्तिका कलश की तरह पुद्गलद्रव्य भी स्वयं अंतर्व्यापक होकर चिदानंदैकलक्षणवाले जीवके स्वरूपसे परिणमन नहीं करता है, तन्मय होकर जीवस्वरूपको ग्रहण नहीं करता है, और जीव के पर्याय के स्वरूपद्वारा उत्पन्न नहीं होता है (जीवपर्यायसे उत्पन्न नहीं होता है)।

शंका– तो फिर पुद्गलद्रव्य क्या करता है ?

समाधान– स्वकीयवर्णादिस्वभावभूत गुणधर्मपरिणामोंद्वारा पुद्गलद्रव्य परिणमन करता है।

शंका– कैसे परिणमन करता है ?

समाधान– जैसे मिट्टी और कलशमें तादात्म्यसंबंध है, वैसे जीव के साथ पुद्गलका तादात्म्यसंबंध नहीं है।

इसतरह पुद्गलद्रव्य भी जीव के साथ परिणमन नहीं करता है, उसको ग्रहण नहीं करता है और उसरूप उत्पन्न नहीं होता है, इस व्याख्यानकी मुख्यतासे गाथा हो गयी ॥ ८५ ॥

अब जीवके परिणाममें और पुद्गलके परिणाममें परस्पर निमित्तमात्रपना है तथापि निश्चयनयसें दोनोंका परस्परमें कर्ताकर्मभाव नहीं है, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**पुग्गला**] पुद्गल [**जीवपरिणामहेदुं**] जीवके परिणामको निमित्तमात्र करके [**कम्मत्तं**] कर्मत्वमें [**परिणमंति**] परिणमित होते है [**तहेव**] तथा [**जीवो वि**]

ण वि कुव्वइ कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे ।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हंपि ।। ८७ ।।

।। आ. ख्या. ८१ ।।

एएण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण ।
पुग्गलकम्मकयाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ।। ८८ ।।

।। आ. ख्या. ८२ ।।

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति यथा कुंभकारनिमित्तेन मृत्तिका घटरूपेण परिणमति तथा जीवसंबंधिमिथ्यात्वरागादिपरिणामहेतुं लब्ध्वा कर्मवर्गणायोग्यं पुद्गलद्रव्यं कर्मत्वेन परिणमति । **पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि** यथैव च घटनिमित्तेन एवं घटं करोमीति कुंभकारः परिणमति तथैवोदयागतपुद्गलकर्महेतुं लब्ध्वा जीवोपि निर्विकारचिच्चमत्कारपरिणतिमलभमानः सन् मिथ्यात्वरागादिविभावेन परिणमतीति । अथ **णवि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो** यद्यपि परस्परनिमित्तेन परिणमति तथापि निश्चयनयेन जीवो वर्णादिपुद्गलकर्मगुणान्न करोति । **कम्मं तहेव जीवगुणे** कर्म च तथैवानंतज्ञानादिजीवगुणान्न करोति **अण्णोण्णणिमित्तेण दु**

जीव भी [**पुग्गलकम्मणिमित्तं**] पुद्गलकर्मको निमित्त मात्र करके [**परिणमदि**] परिणमन करता है [**जीवो**] जीव [**कम्मगुणे**] कर्मके गुणोंको [**ण वि कुव्वदि**] नहीं करता है [**तहेव**] उसी तरह [**कम्मं**] कर्म [**जीवगुणे**] जीवके गुणोंको नहीं करता है, [**दु**] परन्तु [**अण्णोण्णणिमित्तेण**] परस्पर को निमित्तमात्र करके [**दोण्हंपि**] दोनोंके [**परिणामं**] परिणाम होते हैं [**जाण**] ऐसा जानो [**एदेण**] इस [**कारणेण दु**] कारणसे [**आदा**] आत्मा [**सएण**] अपने ही [**भावेण**] भावसे [**कत्ता**] कर्ता (कहा जाता) है [**दु**] लेकिन [**पुग्गलकम्मकदाणं**] पुद्गलकर्मसे किये गये [**सव्वभावाणं**] सब भावोंका [**कत्ता ण**] कर्ता नहीं है ।

टीकार्थ– जैसे कुंभकारके परिणामको निमित्त मात्र करके मिट्टी घडेके रूपमें परिणमन करती है, उसी प्रकार जीवसंबंधिमिथ्यात्वरागादिपरिणामोंका निमित्त पाकर कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्यभी कर्मत्वसे परिणमन करता है । और जैसे घटको निमित्तमात्र करके 'यह घट मैं करता हूँ' ऐसी कुंभकार परिणति करता है । उसी प्रकारही निर्विकारचिच्चमत्कारपरिणति जिसको प्राप्त नहीं है, ऐसा जीव भी उदयागतकर्मपुद्गलका निमित्त पाकर मिथ्यात्वरागादिभावसे परिणमन करता है । यद्यपि परस्परको निमित्त मात्र करके परिणति होती है, तथापि शुद्धनिश्चयनयसे जीव पुद्गलकर्मके वर्णादि गुणोंको नहीं करता है और उसी प्रकार पुद्गलकर्म जीवके अनंतज्ञानादिगुणोंको नहीं करता है । यद्यपि उपादानरूपसे नहीं करते हैं तो भी परस्परको निमित्तमात्र करके घटकुंभकारके परिणामकी तरह जीव और पुद्गलका परिणाम होता है, ऐसा जानो । इस कारणसे पूर्व में दो गाथाओंद्वारा जो बताया गया है उसरूप निर्मल आत्मानुभूतिलक्षणवाले

परिणामं जाण दोण्हंपि यद्यप्युदानरूपेण न करोति तथाप्यन्योन्यनिमित्तेन घटकुंभकारयोरिव परिणामं जानीहि द्वयोरपि जीवपुद्गलयोरिति । अथ **एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण** एतेन कारणेन पूर्वसूत्रद्वयव्याख्यानरूपेण तु निर्मलात्मानुभूतिलक्षणपरिणामेन शुद्धोपादानकारण-भूतेनाव्याबाधानंतसुखादिशुद्धभावानां कर्ता । तद्विलक्षणेनाशुद्धोपादानकारणभूतेन रागाद्यशुद्ध-भावानां कर्त्ता भवत्यात्मा । कथं ? यथा मृत्तिकाकलशस्येति **पुग्गलकम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं** पुद्गलद्रव्यकर्मकृतानां न तु कर्ता सर्वभावानां ज्ञानावरणादिपुद्गलकर्मपर्यायाणामिति । एवं जीवपुद्गलपरस्परनिमित्तकारणव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतम् ॥ ८६, ८७, ८८ ॥

अथ तत एतदायाति जीवस्य स्वपरिणामैरेव सह निश्चयनयेन कर्तृकर्मभावो भोक्तृ-भोग्यभावश्च भवति–

णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि ।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं ॥ ८९ ॥

॥ आ. ख्या. ८३ ॥

णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि यथा यद्यपि समीरो निमित्तं भवति तथापि निश्चयनयेन पारावार एव कल्लोलान् करोति परिणमति च । एवं यद्यपि द्रव्यकर्मोदया-

---

परिणामसे (याने) शुद्ध उपादान कारणसे अव्यावाध, अनंतसुखादि शुद्धभावोंका यह आत्मा (यह जीव) कर्ता है। (और) उसके विपरीत अशुद्ध उपादान कारणसे रागादि अशुद्धभावोंका यह आत्मा कर्ता है।

शंका– यह आत्मा कैसे कर्ता है ?

समाधान– जैसे घटका कर्ता मिट्टी है उसी तरह निर्मलात्मानुभव करनेवाला आत्मा शुद्धभावोंका कर्ता है। किन्तु पुद्गलकर्मसे किये हुये जो ज्ञानावरणादिपुद्गलकर्मपर्यायरूप सब भाव हैं उनका कर्ता आत्मा नहीं है।

इस प्रकार जीव और पुद्गलके परस्परनिमित्तमात्र कारण के व्याख्यानकी मुख्यतासे तीन गाथायें पूर्ण हो गयी ॥ ८६,८७, ८८ ॥

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, निश्चयनयसे जीवका स्वपरिणामोंके साथ ही कर्तृकर्मभाव और भोक्तृभोग्यभाव हैं–

गाथार्थ– [**एवं**] इस प्रकार (पूर्वोक्त) [**णिच्छयणयस्स**] निश्चयनयसे [**आदा**] आत्मा [**अप्पाणमेव हि**] अपने को ही [**करेदि**] करता है [**दु पुणो**] फिर [**अत्ता**] वह आत्मा [**तं चेव अत्ताणं**] अपने को ही [**वेदयदि**] भोगता है [**जाण**] यह जानो।

टीकार्थ– जैसे समुद्रमे तरंगोंके उत्पन्न होते समय पवन निमित्तमात्र है तथापि निश्च-

सद्भावसद्भावात् शुद्धाशुद्धभावयोर्निमित्तं भवति तथापि निश्चयेन निर्विकारपरमस्वसंवेदनज्ञानपरिणतः केवलज्ञानादिशुद्धभावान् तथैवाशुद्धपरिणतस्तु सांसारिकसुखदुःखाद्यशुद्धभावांश्चोपादानरूपेणात्मैव करोति । अत्र परिणामानां परिणमनमेव कर्तृत्वं ज्ञातव्यमिति न केवलं करोति **वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं** वेदयत्यनुभवति भुंक्ते परिणमति पुनश्च स्वशुद्धात्मभावनोत्थसुखरूपेण शुद्धोपादानेन तदेव शुद्धात्मानमशुद्धोपादानेनाशुद्धात्मानं च । स कः कर्ता ? आत्मेति जानीहि एवं निश्चयकर्तृत्वभोक्तृत्वव्याख्यानरूपेण गाथा गता ॥ ८९ ॥

अथ लोकव्यवहारं दर्शयति–

ववहारस्स दु आदा पुग्गलकम्मं करेदि अणेयविहं ।
तं चेव य वेदयदे पुग्गलकम्मं अणेयविहं ॥ ९० ॥

॥ आ. ख्या. ८४ ॥

ववहारस्स दु आदा पुग्गलकम्मं करेदि अणेयविहं यथा लोके यद्यपि मृत्पिडं उपादानकारणं तथापि कुंभकारो घटं करोति तत्फलं च जलधारणमूल्यादिकं भुंक्त इति लोकानामनादिरूढोस्ति व्यवहारः । तथा यद्यपि कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्यमुपादानकारणभूतं तथापि व्यवहारन-

---

यनयसे समुद्रही तरंगोंको उत्पन्न करता है और समुद्रही तरंगरूप परिणमन करता है। इस प्रकार यद्यपि द्रव्यकर्मके उदय का असद्भाव और द्रव्यकर्मके उदय का सद्भाव शुद्धाशुद्धभावोंमें निमित्त है, तथापि शुद्धनिश्चयनयसे निर्विकारपरमस्वसंवेदनज्ञानसे परिणत आत्मा ही केवलज्ञानादिशुद्धभावोंको करता है और अशुद्धनिश्चयनयसे अशुद्ध उपादानरूप आत्मा ही अशुद्ध उपादान से सांसारिक सुखदुःखादि अशुद्धभावोंको करता है । यहाँ परिणामोंके परिणमनकाही कर्तृत्व जानना चाहिए। इसतरह केवल कर्ताही नहीं है तो भोक्ता भी है । जैसे आत्मा स्वशुद्धात्मभावनासे उत्पन्न सुखरूप शुद्धोपादानसे शुद्धात्माको (स्वभावको) भोगता है और आत्मा अशुद्धोपादानसे अशुद्धात्माको (पर्यायको) भोगता है। उसका कर्ता आत्मा है, ऐसा जानो। इसप्रकार निश्चयकर्तृत्वभोक्तृत्व के व्याख्यान करनेवाली गाथा पूर्ण हुओ ॥ ८९ ॥

अब लोकव्यवहारको दिखाते हैं–

गाथार्थ– [दु] परंतु [ववहारस्स] व्यवहारनयसे [आदा] आत्मा [अणेयविहं पुग्गलकम्मं] अनेकविध पुद्गलकर्मको [करेदि] करता है [य] और [तं च पुग्गलकम्मं अणेयविहं एव] उस अनेकविधपुद्गलकर्मफलको और अनेकविधपुद्गलकर्मको [वेदयदे] भोगता है।

टीकार्थ– जैसे लोकमें यद्यपि उपादान कारणसे मिट्टीका पिंड घट को करता है और इस घट रूप फल को मिट्टी भोगती है तथापि कुंभकार घट करता है, और जल आदि धारण करना, मूल्य लेना आदि घटके फलको कुंभकार भोगता है इसतरह अनादि कालसे लौकिक लोगोंका रूढ व्यवहार है ।

उसी तरह यद्यपि कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्यउपादान कारणरूप से कर्ता होकर अनेकविध मूल और उत्तरप्रकृतिके भेदसे अनेकप्रकारके पुद्गलकर्मको करता है तथापि व्यवहारनयसे आत्मा

मुख्यतासे

यस्याभिप्रायेणात्मा पुद्गलकर्मानेकविधं मूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नं करोति **तं चेव य वेदयदे पुग्गलकम्मं अणेयविहं** तथैव च तदेवोदयागतं पुद्गलकर्मानेकविधं इष्टानिष्टपंचेन्द्रियविषयरूपेण वेदयति अनुभवति इत्यज्ञानिनां निर्विषयस्वशुद्धात्मोपलंभसंजातसुखामृतरसास्वादरहितानामनादिरूढोऽस्ति व्यवहारः। एवं व्यवहारेण सुखदुःखकर्तृत्वभोक्तृत्वकथनमुख्यतया गाथा गता। इति ज्ञानिजीवस्य विशेषव्याख्यानरूपेणैकादशगाथाभिर्द्वितीयांतराधिकारो व्याख्यातः ॥ ९० ॥

अतः परं पञ्चविंशतिगाथापर्यंतं द्विक्रियावादिनिराकरणरूपेण व्याख्यानं करोति। तत्र चेतनाचेतनयोरेकोपादानकर्तृत्वं द्विक्रियावादित्वमुच्यते तस्य संक्षेपव्याख्यानरूपेण '**जदिपुग्गलकम्ममिणं**' इत्यादि गाथाद्वयं भवति। तद्विवरणद्वादशगाथासु मध्ये '**पुग्गलकम्मणिमित्तं**' इत्यादि गाथाक्रमेण प्रथमगाथाषट्कं स्वतंत्रं। तदनंतरमज्ञानिज्ञानिजीवकर्तृत्वाकर्तृत्वमुख्यतया '**परमप्पाणं कुव्वदि**' इत्यादि द्वितीयषट्कं। अतः परं तस्यैव द्विक्रियावादिनः पुनरपि विशेषव्याख्यानार्थमुपसंहाररूपेणैकादशगाथा भवंति। तत्रैकादशगाथासु मध्ये व्यवहारनयमुख्यत्वेन '**ववहारस्स दु**' इत्यादि गाथात्रयं। तदनंतर निश्चयनयमुख्यतया **जो पुग्गलदव्वाणं**' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततश्च द्रव्यकर्मणामुपचारकर्तृत्वमुख्यत्वेन '**जीवं हि हेदुभूदे**' इत्यादि सूत्रचतुष्टयमिति समुदायेन पंचविंशतिगाथाभिस्तृतीयस्थले समुदायपातनिका।

अनेकविध पुद्गलकर्म को करता है और उसी प्रकारही उसके उदयागत मूलोत्तर प्रकृतिके भेदरूप अनेकविध पुद्गलकर्मको उसके उदयमें होनेवाले पंचेन्द्रियविषयरूप इष्टानिष्टविकल्पको आत्मा वेदता है, अनुभवता है। इसतरह अनादिकालसे निर्विकल्प स्वशुद्धात्मा की उपलब्धिसे प्राप्त होनेवाले सुखामृतरसास्वादसे रहित ऐसे अज्ञानी लोगोंका रुढ व्यवहार है।

इस प्रकार व्यवहारनयकी मुख्यतासे सुखदुःखके कर्तृत्वभोक्तृत्वका कथन करनेवाली गाथा पूर्ण हो गयी।

भावार्थ– व्यवहारनयसे आत्मा द्रव्यकर्मका और विकल्पोंका और उनके फलोंका कर्ता भोक्ता है ऐसा कहते हैं, लेकिन शुद्ध निश्चयनयसे आत्मा अपने शुद्धभावोंका कर्ता भोक्ता है।

इस प्रकार ज्ञानी जीवका विशेष कथन करनेवाली ११ गाथाओंद्वारा द्वितीय अंतर अधिकारका व्याख्यान हो गया ॥ ९० ॥

इसके बाद २५ गाथापर्यंत द्विक्रियावादिके निराकरणके रुपसे कथन करते हैं। वहाँ चेतन और अचेतनकी क्रियाका एक उपादान कर्ता है ऐसी माननेवालेको द्विक्रियावादी कहते हैं। उसका संक्षेपमें कथन करनेवाली '**जदि पुग्गलकम्ममिणं**' इत्यादि दो गाथायें हैं। उसका विवरण करनेवाली १२ गाथाओंमें से '**पुग्गलकम्मणिमित्तं**' इत्यादि गाथाक्रमसे प्रथम ६ गाथायें स्वतंत्र हैं। उस के बाद अज्ञानिज्ञानिजीवके कर्तृत्वाकर्तृत्वकी मुख्यतासे '**परमप्पाणं कुव्वदि इत्यादि**' दुसरी ६ गाथायें हैं। फिर उसके बाद उसही द्विक्रियावादियोंका विशेष व्याख्यान करनेके लिये उपसंहाररूपसे ११ गाथायें हैं। वहाँ ११ गाथाओंमें व्यवहारनयकी मुख्यतासे '**ववहारस्स दु**' इत्यादि तीन गाथायें हैं। तदनंतर निश्चयनयकी मुख्यतासे '**जीवं हि हेदुभूदे**' इत्यादि चार गाथायें हैं। इस प्रकार कुल २५ गाथाओंके द्वारा तृतीय स्थलमें यह समुदाय पातनिका है।

तद्यथा– अथेदं पूर्वोक्तं कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वनयविभागव्याख्यानं कर्मतापन्नमनेकांतेन सम्मतमप्येकांतनयेन मन्यते। किं मन्यते भावकर्मवन्निश्चयेन द्रव्यकर्मापि करोतीति चेतनाचेतनकार्ययोरेकोपादानकर्तृत्वलक्षणं द्विक्रियावादित्वं स्यात्। तान् द्विक्रियावादिनो दूषयति–

जदि पुग्गलकम्ममिणं कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा।
दोकिरियावादित्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं॥ ९१॥

॥ आ. ख्या. ८५॥

जदि पुग्गलकम्ममिणं कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा यदि चेत्पुद्‌गलकर्मोदयमुपादानरूपेण करोति तदेव च पुनरुपादानरूपेण वेदयत्यनुभवत्यात्मा। **दोकिरियावादित्तं पसजदि** तदा चेतनाचेतनक्रियाद्वयस्योपादानकर्तृत्वरूपेण द्विक्रियावादित्वं प्रसजति प्राप्नोति। अथवा **दो किरियाविदिरित्तो पसजदि** सो तत्र पाठांतरे द्वाभ्यां चेतनाचेतनक्रियाभ्यामव्यतिरिक्तोऽभिन्नः प्रसजति प्राप्नोति स पुरुषः। **सम्मं जिणावमदं** तच्च व्याख्यानं जिनानां सम्यगसंमतं। यश्चेदं व्याख्यानं मन्यते स निजशुद्धात्मोपादेयरुचिरूपं निर्विकारचिच्चमत्कारमात्रलक्षणं शुद्धोपादानकारणोत्पन्नं निश्चयसम्यक्त्वमलभमानो मिथ्यादृष्टिर्भवतीति॥ ९१॥

अब पहले कहा गया कर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वके नयविभाग का कथन अनेकांतसे (अनेकांतकी दृष्टिसे) सम्मत है किन्तु एकांतनयसे ऐसा मानते हैं कि निश्चयनयसे आत्मा भावकर्म की तरह द्रव्यकर्मको भी करता है। ऐसा माननेसे चेतनका कार्य और अचेतनका कार्य इन दोनों कार्योंका कर्ता एक ही उपादान कारण है, इसतरह द्विक्रियावादित्व आता है। उन द्विक्रियावादियोंकी मान्यताको दूषित बतलाते हैं–

गाथार्थ– [**जदि**] यदि [**आदा**] आत्मा [**इणं**] इस [**पुग्गलकम्मं**] पुद्‌गलकर्मको [**कुव्वदि**] करता है [**च**] और [**तं एव**] उसको ही [**वेदयदि**] भोगता (अनुभवता) है तो [**दोकिरियावादित्तं**] दोक्रियावादित्वका [**पसजदि**] प्रसंग आता है, और [**सम्मं जिणावमदं**] वह सम्यक् वास्तवमें जिनमतको मान्य नहीं है।

टीकार्थ– यदि आत्मा उपादानरूपसे पुद्‌गलकर्मोंके उदय को करता है और आत्मा उपादानरूपसे उस पुद्‌गलकर्मोंको ही भोगता है तो चेतन की क्रिया और अचेतन की क्रिया इसतरह इन दोनोंकी क्रियाका उपादान रूपसे कर्तृत्व करनेवाला है ऐसा द्विक्रियावादित्व (दोष) प्राप्त होता है (प्रसंग आता है)। दुसरे पाठकी अपेक्षासे चेतन की क्रिया, और अचेतनकी क्रिया इन दोनोंसे आत्मा अभिन्न ठहरता है (एक हो जाता है)। और वह कथन वास्तवमें जिनभगवान को मान्य नहीं है। और जो यह द्विक्रियावादित्व (एक उपादान द्रव्यसे दो क्रियायें) मानता है वह स्वभावशुद्धात्माकी उपादेयरूपरुचिरूप, निर्विकारचिच्चमत्कारमात्रलक्षणरूप, शुद्धउपादान कारणसें उत्पन्न होनेवाले निश्चयसम्यक्त्वको प्राप्त नहीं होता हुआ मिथ्यादृष्टि होता है॥ ९१॥

अथ कुतो द्विक्रियावादी मिथ्यादृष्टिर्भवतीति प्रश्ने प्रत्युत्तरं प्रयच्छंस्तमेवार्थं प्रकारांतरेण दृढयति–

जम्हा दु अत्तभावं पुग्गलभावं च दोवि कुव्वंति ।
तेण दु मिच्छादिट्ठी दो किरियावादिणो हुंति ॥ ९२ ॥

॥ आ. ख्या. ८६ ॥

जम्हा दु अत्तभावं पुग्गलभावं च दोवि कुव्वंति यस्मादात्मभावं चिद्रूपं पुद्गलभावं चाचेतनं जडस्वरूपं द्वयमप्युपादानरूपेण कुर्वन्ति **तेण दु मिच्छादिट्ठी दोकिरियावादिणो हुंति** ततस्तेन कारणेन चेतनाचेतनक्रियाद्वयवादिनः पुरुषाः मिथ्यादृष्टयो भवंतीति । तथाहि– यथा कुंभकारः स्वकीयपरिणाममुपादानरूपेण करोति तथा घटमपि यद्युपादानरूपेण करोति तदा कुंभकारस्याचेतनत्वं घटरूपत्वं प्राप्नोति । घटस्य वा चेतनत्वं कुंभकाररूपत्वं च प्राप्नोतीति । तथा जीवोपि यद्युपादानरूपेण पुद्गलद्रव्यकर्म करोति तदा जीवस्याचेतनपुद्गलद्रव्यत्वं प्राप्नोतीति । पुद्गलकर्मणो वा चिद्रूपं जीवत्वं प्राप्नोति । किंच शुभाशुभं कर्म कुर्वेहमिति महाहंकाररूपं तमो मिथ्याज्ञानिनां न नश्यति । तर्हि केषां नश्यतीति चेत्, विषयसुखानुभवानंदवर्जिते वीतरागस्वसंवेदनवेद्ये भूतार्थनयेनैकत्वव्यवस्थापिते चिदानंदैकस्वभावे शुद्धपरमात्मद्रव्ये स्थितानामेव समस्त-

---

अब द्विक्रियावादी मिथ्यादृष्टि क्यों होता है, ऐसा प्रश्न पूछनेवालेको द्विक्रियावादी मिथ्यादृष्टि ही होता है, यह ही बात दुसरे प्रकारसे दृढ करते हैं–

गाथार्थ– [**जम्हा दु**] जिस कारणसे, आत्माके द्वारा [**अत्तभावं**] आत्माका भाव [**च**] और [**पुग्गलभावं**] पुद्गलका भाव [**दो वि**] ये दोनों भी कार्य [**कुव्वंति**] किये जाते हैं [**तेण दु**] लेकिन इस मान्यतासे [**दोकिरियावादिणो**] वे दो क्रियाओंका एक कर्ता कहनेवाले [**मिच्छादिट्ठी**] मिथ्यादृष्टि [**होंति**] होते हैं ।

टीकार्थ– जिस कारणसे चैतन्यमय आत्मकार्य और अचेतनमय जडस्वरूप पुद्गलकार्य, इन दोनों कार्यों को एक उपादानसे करता है, ऐसा (जो) मानते हैं । इसलिये एकद्रव्यसे चेतन और अचेतन ऐसी दो क्रिया माननेवाले लोग मिथ्यादृष्टि हैं ।

जैसे– कुंभकार उपादानरूपसे स्वकीयपरिणाम (स्वकीयकार्य) करता है वैसे कुंभकार खुद उपादानरूपसे घटको भी करता हैं । ऐसा मान लिया जाय तो कुम्हारको रूपत्व, अचेतनत्व और घटरूपत्व प्राप्त होता है अथवा घटको चेतनत्व और कुंभकारत्व प्राप्त होता है । उसी प्रकार जीव भी यदि उपादानरूपसे पुद्गलद्रव्यकर्म करता है तव जीवको अचेतनत्व, पुद्गलद्रव्यत्व प्राप्त होता है । अथवा पुद्गलकर्मको चेतनत्व, जीवत्व प्राप्त होता है ।

शंका– तो किन लोगों का अज्ञान अंधकार नाश होता है ?

समाधान–

अध्यात्मभाषासे

१) वीतरागस्वसंवेदनके अनुभवरूप भूतार्थनयसे एकत्वस्थापनरूप चिदानंद एकस्वभावरूप शुद्धात्मद्रव्यमें स्थित होनेवालोंके ही निर्विकल्प समाधिलक्षणरूप शुद्धोपयोग की भावभासनाके वलसे सज्ञानियोंका अज्ञान अंधःकार नष्ट होता है ।

आगमभाषासे

१) विषयसुखानुभवानंदसे रहित अवस्थामें स्थित सम्यग्ज्ञानियोंको सव शुभाशुभपरभावसे रहित होनेसे अज्ञान अंधःकार नष्ट होता है ।

शुभाशुभपरभावशून्येन निर्विकल्पसमाधिलक्षणेन शुद्धोपयोगभावनाबलेन सज्ज्ञानिनामेव विलयं विनाशं गच्छति। तस्मिन्महाहंकारविकल्पजाले नष्टे सति पुनरपि बंधो न भवतीति ज्ञात्वा बहिर्द्रव्यविषये इदं करोमीदं न करोमीति दुराग्रहं त्यक्त्वा रागादिविकल्पजालशून्ये पूर्णकलशवच्चिदानंदैकस्वभावेन भरितावस्थे स्वकीयपरमात्मनि निरंतरं भावना कर्तव्येति भावार्थः। इति द्विक्रियावादिसंक्षेपव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं ॥ ९२ ॥

अथ तस्यैव विशेषव्याख्यानं करोति–

पुग्गलकम्मणिमित्तं जह आदा कुणदि अप्पणो भावं।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तह वेददि अप्पणो भावं ॥ ९३ ॥

पुग्गलकम्मणिमित्तं जह आदा कुणदि अप्पणो भावं उदयागतं द्रव्यकर्मनिमित्तं कृत्वा यथात्मा निर्विकारस्वसंवित्तिपरिणामशून्यः सन्करोत्यात्मनः संबधिनं सुखदुःखादिभावं परिणामं **पुग्गलकम्मणिमित्तं तह वेददि अप्पणो भावं** तथैवोदयागतद्रव्यकर्मनिमित्तं लब्ध्वा स्वशुद्धात्मभावनोत्थवास्तवसुखास्वादमवेदयन्सन् तमेव कर्मोदयजनितस्वकीयरागादिभावं वेदयत्यनुभवति। न च द्रव्यकर्मरूपपरभावमित्यभिप्रायः ॥ ९३ ॥

अध्यात्मभाषासे

२) वहां विकल्पजाल नष्ट होनेसे फिर बंध नही होता ऐसा जानकर पूर्ण कलशकी भरितावस्थाके समान चिदानंद एक स्वभावसे स्वकीयपरमात्मामें (स्वस्वभावसिद्धमें) निरंतर स्वानुभव करना चाहिये।

आगमभाषासे

२) वहां महाहंकार नष्ट होनेसे फिर बंध नहीं होता है ऐसा जानकर बहिर्द्रव्यविषयमें 'यह मैं करता हूँ, यह मैं नहीं करता हूँ,' यह दुराग्रह छोडकर रागादिविकल्पजालसे रहित आत्माकी निरंतर भावना करनी चाहिये।

ऐसा भावार्थ है। इस प्रकार द्विक्रियावादियोंका कथन करनेवाली दो गाथायें पूर्ण हो गयी ॥ ९२ ॥

~~और कहते है— 'शुभाशुभकर्म को मैं करता हूँ' ऐसा महाहंकाररूपी अंधकार मिथ्याज्ञानियोंका नाश नहीं होगा~~।

अब उसका ही विशेष व्याख्यान करते हैं–

गाथार्थ– [**जह**] जिस प्रकार [**पुग्गलकम्मणिमित्तं**] पुद्‌गलकर्मके निमित्तके सांनिध्यमें [**आदा**] आत्मा [**अप्पणो भावं**] अपने भावको [**कुणदि**] करता है [**तह**] उसी प्रकार [**पुग्गलकम्मणिमित्तं**] पुद्‌गलकर्मके निमित्तके सांनिध्यमें [**आदा**] आत्मा [**अप्पणो भावं**] अपने भावको [**वेददि**] भोगता (अनुभवता) है।

टीकार्थ– उदयागत द्रव्यकर्मको निमित्तमात्र करके जैसे निर्विकारस्वानुभूतिसे रहित होता हुआ आत्मा अपने संबंधी सुखदुःखादिभावस्वरूप परिणाम करता है। उसी प्रकार उदयागत द्रव्यकर्मका निमित्त पाकर स्वशुद्धात्मानुभव से उत्पन्न वास्तविक सुखस्वादकी अनुभूतिसे रहित होनेवाला आत्मा उस ही कर्मोदयजनित स्वकीयरागादिभावको अनुभवता है, द्रव्यकर्म रूप परकीय भावको नही करता है और नही अनुभवता है ऐसा अभिप्राय है। ॥ ९३ ॥

अथ चिद्रूपानात्मभावानात्मा करोति तथैवाचिद्रूपान् द्रव्यकर्मादिपरभावान् परः पुद्गलः करोतीत्याख्याति–

मिच्छत्तं पुण दुविहं जीवमजीवं तहेव अण्णाणं।
अविरदि जोगो मोहो कोहादीया इमे भावा ॥ ९४ ॥

॥ आ. ख्या. ८७ ॥

मिच्छत्तं पुण दुविहं जीवमजीवं मिथ्यात्वं पुनर्द्विविधं जीवस्वभावमजीवस्वभावं च **तहेव अण्णाणं अविरदि जोगो मोहो कोहादीया इमे भावा** तथैव चाज्ञानमविरतिर्योगो मोहः क्रोधादयोऽमी भावाः पर्यायाः जीवरूपा अजीवरूपाश्च भवंति मयूरमुकुरंदवत् तद्यथा– यथा मयूरेण भाव्यमाना अनुभूयमाना नीलपीताद्याकारविशेषा मयूरशरीराकारपरिणता मयूर एव चेतना एव तथा निर्मलात्मानुभूतिच्युतजीवेन भाव्यमाना अनुभूयमानाः सुखदुःखादिविकल्पा जीव एवाशुद्ध-निश्चयेन चेतना एव। यथा च मुकुरंदेन स्वच्छतारूपेण भाव्यमानाः प्रकाशमानमुखप्रतिबिंबादि-विकारा मुकुरंद एव अचेतना एव तथा कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्येणोपादानभूतेन क्रियमाणा ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपर्यायाः पुद्गल एव अचेतना एवेति ॥ ९४ ॥

अब आत्मा चिद्रूप आत्मभावोंको करता है इस प्रकार ही पर पुद्गलद्रव्य अचैतन्यमय द्रव्यकर्मादि परभावोंको करता है ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**पुण**] और पीछेके गाथामें (ता. वृ. ९२ गाथामें) जो [**मिच्छत्तं**] मिथ्यात्व कहा गया था वह [**दुविहं**] दो प्रकारका हैं– [**जीवं अजीवं**] १) जीव मिथ्यात्व, २) अजीव मिथ्यात्व [**तहेव**] और उसी प्रकार [**अण्णाणं**] अज्ञान [**अविरदि**] अविरति [**जोगो**] योग [**मोहो**] मोह [**कोहादीया**] क्रोधादिकषाय [**इमे भावा**] ये सभी भाव जीव, अजीव के भेदसे दो दो प्रकारके हैं।

टीकार्थ– मयूर और दर्पणकी तरह मिथ्यात्व भी जीवस्वभाव और अजीव स्वभाववाला दो प्रकारका है, तथा ये अज्ञान, अविरति, योग, मोह और क्रोधादिकषायभाव जीवस्वभाव और अजीवस्वभाव ऐसे दो दो प्रकारके हैं।

जैसे दर्पणके सामने मयूर है मयूर के द्वारा पैदा किये हुये, अनुभवमें आनेवाले नील पीतादि आकारविशेष जो कि मयूरके शरीरके आकार रूप परिणत हो रहे हैं वे मयूर ही हैं, चेतनमयही हैं, वैसे ही निर्मल आत्मानुभूतिसे च्युत हुये जीवके द्वारा उत्पन्न किये हुये, अनुभवमें आनेवाले सुखदुःखादिविकल्परूप जो भाव हैं, वे अशुद्धनिश्चयनयसे जीवरूप ही हैं, चेतनमयही हैं। और जैसे स्वच्छतारूप दर्पणके द्वारा उत्पन्न किये हुए (दर्पणमें) प्रकाशमानमुख आदिका प्रतिबिंबादि विकारभाव दर्पणमयी हैं, अतएव अचेतनही हैं, उसी प्रकार उपादानभूत कर्मवर्गणा-योग्य पुद्गलद्रव्यके द्वारा किये हुये ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मरूप पर्याय तो पुद्गलमय ही है अतएव अचेतन ही हैं ॥ ९४ ॥

अथ कतिविधौ जीवाजीवाविति पृष्टे प्रत्युत्तरमाह्–

पुग्गलकम्मं मिच्छं जोगो अविरदि अणाणमज्जीवं।
उवओगो अण्णाणं अविरदि मिच्छत्त जीवो दु ॥ ९५ ॥

॥ आ. ख्या. ८८ ॥

पुग्गलकम्मं मिच्छं जोगो अविरदि अणाणमज्जीवं पुद्गलकर्मरूपं मिथ्यात्वं योगोऽविरतिरज्ञानमित्यजीवः। **उवओगो अण्णाणं अविरदि मिच्छत्त जीवो दु** उपयोगरूपो भावरूपः शुद्धात्मादितत्त्वभावविषये विपरीतपरिच्छित्तिविकारपरिणामो जीवस्याज्ञानं निर्विकारस्वसंवित्तिविपरीताव्रत्तपरिणामविकारोऽविरतिः। विपरीताभिनिवेशोपयोगविकाररूपं शुद्धजीवादिपदार्थविषये विपरीतश्रद्धानं मिथ्यात्वमिति जीवः। जीव इति कोर्थः। जीवरूपा भावप्रत्यया इति ॥ ९५ ॥

अथ शुद्धचैतन्यस्वभावजीवस्य कथं मिथ्यादर्शनादिविकारो जात इति चेत्–

उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स।

अब कितने प्रकारके जीव और अजीव हैं ? ऐसा पूछनेपर उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**मिच्छं**] जो मिथ्यात्व [**जोगो**] योग [**अविरदि**] अविरति [**अण्णाणं**] अज्ञान [**अज्जीव**] ये अजीव हैं वे तो [**पुग्गलकम्मं**] पुद्गल कर्म हैं [**दु**] और [**अण्णाणं**] अज्ञान [**अविरदि**] अविरति [**मिच्छत्त**] मिथ्यात्व [**जीवो**] ये जीव हैं वे तो [**उवओगो**] उपयोग हैं।

टीकार्थ– पुद्गलकर्मरूप मिथ्यात्व, योग, अविरति और अज्ञान ये अजीव हैं। उपयोगरूप भाव जो शुद्धात्मादितत्त्वके विषयमें विपरीत जानकारीरूप विकारमय परिणाम है वह जीवका अज्ञान है, जो निर्विकारस्वानुभूतिसे विपरीत अव्रत विकारी परिणाम, वह अविरति है। शुद्धजीवादिपदार्थके विषयमें विपरीत अभिनिवेशरूप जो उपयोग की विकारमय विपरीत श्रद्धा है वह मिथ्यात्व है, ये भाव जीव हैं।

शंका– जीव याने क्या ?

समाधान– ये जीवरूप भावप्रत्यय हैं ॥ ९५ ॥

अब, शुद्धचैतन्य स्वभाववाले जीवको मिथ्यादर्शनादि विकार कैसे उत्पन्न हुये यह बतलाते हैं–

गाथार्थ– [**उवओगस्स**] उपयोग [**अणाई**] अनादिसे [**मोहजुत्तस्स**] मोहयुक्त

मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदि भावो य णादव्वो ॥ ९६ ॥

॥ आ. ख्या. ८९ ॥

उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि उपयोगलक्षणत्वादुपयोग आत्मा तस्य संबंधित्वेऽनादिसंतानापेक्षया त्रयः परिणामा ज्ञातव्याः । कथंभूतस्य तस्य **मोहजुत्तस्स** मोहयुक्तस्य । के ते परिणामाः । **मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य णादव्वो** मिथ्यात्वमज्ञानमविरतिभावश्चेति ज्ञातव्य इति । तथाहि–यद्यपि शुद्धबुद्धैकस्वभावो जीवस्तथाप्यनादिमोहनीयादिकर्मबंधवशान्मिथ्यात्वाज्ञानाविरतिरूपास्त्रयः परिणामविकाराः संभवन्ति । तत्र शुद्धजीवस्वरूपमुपादेयं मिथ्यात्वादिविकारपरिणामा हेया इति भावार्थः ॥ ९६ ॥

अथात्मनो मिथ्यात्वादित्रिविधपरिणामविकारस्य कर्तृत्वमुपदिशति–

एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो ।
जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता ॥ ९७ ॥

॥ आ. ख्या. ९० ॥

एदेसु य एतेषु च मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रेषूदयागतेषु निमित्तभूतेषु सत्सु **उवओगो** ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणत्वादुपयोग आत्मा **तिविहो** कृष्णनीलपीतत्रिविधोपाधिपरिणतस्फटिकवत्त्रिविधो

होनेसे [**मिच्छत्तं**] मिथ्यात्व [**अण्णाणं**] अज्ञान [**य**] और [**अविरदिभावो**] अविरतिभाव [**तिण्णि परिणामा**] ये तीन परिणाम हैं, ऐसा [**णादव्वो**] जानना चाहिये ।

टीकार्थ– उपयोग लक्षण होनेसे उपयोगरूप आत्मा है उस मोहयुक्त आत्माके अनादिकाल की संतान अपेक्षारूप संबंधिपनासे तीन परिणाम जानने योग्य है । वे परिणाम मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति हैं, ऐसा जानना चाहिये । यद्यपि शुद्धनिश्चयनयसे शुद्धबुद्धएक स्वभावाला जीव है, तथापि अनादिसे मोहनीयादिकर्मबंधके वश होनेसे मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति ये तीन विभाव परिणाम होते हैं । तो भी वहाँ शुद्धजीवस्वभावही उपादेय है और मिथ्यात्वादिविभाव परिणाम हेय है, ऐसा भावार्थ है ॥ ९६ ॥

अब आत्माको मिथ्यात्वादि त्रिविधविभावपरिणामका कर्तृत्व है यह कहते हैं–

गाथार्थ– [**एदेसु**] मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति इन तीनोंमें [**तिविहो**] जो त्रिविध [**उवओगो**] उपयोग है [**सो**] वह (शुद्धनयसे) [**सुद्धो**] शुद्ध [**णिरंजणो**] निरंजन [**भावो**] एक भाव है [**य**] और (अशुद्धनयसे) [**उवओगो**] उपयोग [**जं भावं**] जिस भावको [**करेदि**] करता है [**सो**] वह [**तस्स**] उस भावका [**कत्ता**] कर्ता है ।

टीकार्थ– जैसे कृष्ण, नील व पीत वर्णवाले पुष्पके सांनिध्यमें रखा हुआ एक स्फटिक कृष्ण नील पीत-त्रिविध उपाधिसे परिणत होता है उसी तरह मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रके

भवति। परमार्थेन तु **सुद्धो** शुद्धो रागादिभावकर्मरहितः **णिरंजणो** निरंजनो ज्ञानवरणादिद्रव्य-कर्मांजनरहितः। पुनश्च कथंभूतः। **भावो** भावः पदार्थः अखंडैकप्रतिभासमयज्ञानस्वभावेनैक-विधोपि पूर्वोक्तमिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रपरिणामविकारेण त्रिविधो भूत्वा **जं सो करेदि भावं** यं परिणामं करोति स आत्मा **उवओगो** चैतन्यानुविधायिपरिणाम उपयोगो भण्यते तल्लक्षणत्वा-दुपयोगरूपः। **तस्स सो कत्ता** निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानपरिणामच्युतः सन् तस्यैव मिथ्यात्वादि-त्रिविधविकारपरिणामस्य कर्त्ता भवति। न च द्रव्यकर्मण इति भावः॥ ९७॥

अथात्मनो मिथ्यात्वादित्रिविधपरिणामकर्तृत्वे सति कर्मवर्गणायोग्यपुद्‌गलद्रव्यं स्वतएवोपा-दानरूपेण द्रव्यकर्मत्वेन परिणमतीति कथयति–

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।
कम्मत्तं परिणमदे तह्मि सयं पुग्गलं दव्वं॥ ९८॥

॥ आ. ख्या. ९१॥

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स यं भावं मिथ्यात्वादिविकारपरिणामं शुद्धस्वभावच्युतः सन् आत्मा करोति तस्य भावस्य स कर्त्ता भवति **कम्मत्तं परिणमदे तह्मि सयं**

उदयागत निमित्तके सांनिध्यमें ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षण होनेसे उपयोगमय आत्मा त्रिविध होता है। लेकिन परमार्थसे (अभेदवृत्तिसे) उपयोग शुद्ध याने रागादिभावकर्मरहित है, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्ममलरहित निरंजन है और वह अखंड एक प्रतिभासमयज्ञानस्वभावसे एकविधभाव-पदार्थ है, तो भी पूर्वोक्त मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रमय विभाव परिणामसे त्रिविध होकर जो भाव (परिणाम) करता है, चैतन्यानुविधायि परिणाम को उपयोग कहते हैं उस लक्षणवाला होनेसे उस आत्माको उपयोगरूप कहते हैं और यदि वह निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानपरिणामसे (शुद्धात्मा-नुभवसे) च्युत होकर मिथ्यात्वादि परिणाम करता है तो उस ही मिथ्यात्वादित्रिविधविभाव परिणामका कर्ता होता है और द्रव्यकर्मका कर्ता नहीं होता है यह भावार्थ है।

भावार्थ– उपयोग जब शुद्धात्मानुभव करता है तब शुद्धभावका कर्ता है और जब उपयोग अशुद्धात्मानुभव करता है तब अशुद्धभावका कर्ता है, द्रव्यकर्मका कर्ता नहीं है॥ ९७॥

जिस समय आत्माको मिथ्यात्वादित्रिविधपरिणामका कर्तापना होता है उसी समय कर्मवर्गणायोग्य पुद्‌गलद्रव्य स्वयंही उपादान रूपसे द्रव्यकर्मरूप परिणमता है, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [आदा] आत्मा [जं भावं] जिस भावको [कुणदि] करता है [तस्स भावस्स] उस भावका [सो] वह [कत्ता] कर्ता [होदि] होता है [तह्मि] उसी समयमें [पुग्गलं दव्वं] पुद्‌गलद्रव्य [सयं] स्वयं [कम्मत्तं] कर्मत्वरूप [परिणमदे] परिणमन करता है।

टीकार्थ– जिससमय यह आत्मा शुद्धस्वभावसे च्युत होकर जिस मिथ्यात्वादिविभाव-परिणामको करता है वह आत्मा उस भावका कर्ता होता है, उस त्रिविधविभावपरिणामका

पुग्गलं दव्वं तस्मिन्नेव त्रिविधविकारपरिणामकर्तृत्वे सति कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्यं स्वयमेवोपादानरूपेण द्रव्यकर्मत्वेन परिणमति। किंवत् गारूडादिमंत्रपरिणतपुरुषपरिणामे सति देशांतरे स्वयमेव तत्पुरुषव्यापारमंतरेणापि विषापहारबंधविध्वंसस्त्रीविडंवनादिपरिणामवत्, तथैव च मिथ्यात्वरागादिविभावविनाशकाले निश्चयरत्नत्रयरूपशुद्धोपयोगपरिणामे सति गारूडमंत्रस्य सामर्थ्येन निर्बीजविषवत् स्वयमेव नीरसीभूय पूर्ववद्धं द्रव्यकर्म जीवात्पृथग्भूत्वा निर्जरां गच्छतीति भावार्थः। एवं स्वतंत्रव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाषट्कं गतम्।

अथ निश्चयेन वीतराग स्वसंवेदनज्ञानस्याभाव एवाज्ञानं भण्यते। तस्मादज्ञानादेव कर्म प्रभवतीति तात्पर्यमाह–

परमप्पाणं कुव्वदि अप्पाणं पि य परं करंतो सो।
अण्णाणमओ जीवो कम्माणं कारगो होदि॥ ९९॥

॥ आ. ख्या. ९२॥

कर्तृत्व होनेपर उसीसमयमें कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्य स्वयंही उपादानरूप द्रव्यकर्मपनासे परिणमन करता है।

जैसे कोई पुरुष (गारूड आदि मंत्र सिद्ध करने के लिये उसके योग्य क्रिया करता है और गारुड आदि मंत्रकी सिद्धी होनेपर वह मांत्रिक) मंत्र आदि क्रिया करता है उसी समय देशांतरमें वह कुछ भी क्रिया नहीं करता तो भी अपने आप दुसरे के शरीरमें विषापहार, बंध, विध्वंस, स्त्रीविडंवन, आदि होता है। और गारूडमंत्रके सामर्थ्यसे विष अपने आप नष्ट होता है। उसी तरह मिथ्यात्वरागादिविभावोंके विनाश कालमें निश्चयरत्नत्रयरूप (शुद्धात्मानुभव) शुद्धोपयोग परिणाम करते समय स्वयमेव नीरसीभूत हुअे पूर्ववद्ध द्रव्यकर्म जीवसे पृथक् होकर निर्जराको प्राप्त होते हैं, ऐसा भावार्थ हैं।

भावार्थ– जिस समय जीव स्वयं अशुद्धात्मानुभव करता है उसी समय पुद्गलकर्म स्वयमेव द्रव्यकर्मरूप परिणमन कर बंधते हैं। और जिस समय जीव स्वयं शुद्धात्मानुभव करता है उसी समय पूर्ववद्ध द्रव्यकर्म स्वयमेव नीरसीभूत होकर निर्जराको प्राप्त होते हैं। पुद्गलकर्मके कर्मरूप परिणमनमें जीव कर्ता नही है, उसीतरह पुद्गलद्रव्यकर्म के संवरनिर्जरा में भी जीव कर्ता नहीं है॥ ९८॥

इसप्रकार स्वतंत्रव्याख्यानकी मुख्यतासे ६ गाथायें पूर्ण हुअी।

अव निश्चयसे वीतरागस्वसंवेदनज्ञान (स्वानुभव) का अभाव ही अज्ञान हैं इसलिये अज्ञानसे ही कर्म होते हैं यह कहते हैं–

गाथार्थ– [**अण्णाणमओ जीवो**] अज्ञानमय जीव [**परं**] परको [**अप्पाणं**] आत्ममय [**कुव्वदि**] करता है [**य**] और [**अप्पाणं पि**] अपनेको भी [**परं**] पर [**करंतो**] करता है, ऐसा मानता हुआ [**सो**] वह [**कम्माणं**] कर्मका [**कारगो**] कर्ता [**होदि**] होता है।

परं परद्रव्यं भावकर्मद्रव्यकर्मरूपं **अप्पाणं कुव्वदि** परद्रव्यात्मनोर्भेदज्ञानाभावादात्मानं करोति **अप्पाणं पि य करंतो** शुद्धात्मानं च परं करोति यः **सो अण्णाणमओ जीवो कम्माणं कारगो होदि** स चाज्ञानमयो जीवः कर्मणां कर्त्ता भवति। तद्यथा– यथा कोपि पुरुषः शीतोष्ण-रूपायाः पुद्गलपरिणामावस्थायास्तथाविधशीतोष्णानुभवस्य चैकत्वाभ्यासाद्भेदमजानन् शीतोह-मुष्णोहमिति प्रकारेण शीतोष्णपरिणतेः कर्त्ता भवति। तथा जीवोपि निजशुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नाया उदयागतपुद्गलपरिणामावस्थायास्तन्निमित्तसुखदुःखानुभवस्य चैकत्वाध्यवसायारोपात् परद्रव्या-त्मनोः समस्तरागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानाभावाद्भेदमजानन्नहं सुखीदुःखीति प्रकारेण परिणमत्कर्मणां कर्ता भवतीति भावार्थः॥ ९९॥

अथ वीतरागस्वसंवेदनज्ञानात्सकाशात्कर्म न प्रभवतीत्याह–

परमप्पाणमकुव्वी अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो।
सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारओ होदि॥ १००॥

॥ आ. ख्या. ९३॥

परं परं परद्रव्यं बहिर्विषये देहादिकमभ्यंतरे रागादिकं भावकर्मरूपं वा **अप्पाणमकुव्वी**

टीकार्थ– जो परद्रव्य (द्रव्यकर्म, भावकर्म) और आत्माके भेदज्ञानके अभावसे परद्रव्यरूप भावकर्मको और द्रव्यकर्मको आत्ममय मानता (करता) है और शुद्धात्मभावको परस्वरूप करता है (मानता है) वह अज्ञानमय जीव कर्मोका कर्ता होता है।

जैसे कोई पुरुष शीतोष्णरूप जो पुद्गलपरिणामकी शीतोष्ण अवस्था का और उस शीतोष्णका अनुभव-इनके एकत्वके अभ्याससे, आत्मा और पुद्गलका भेद न जानते हुओ, 'मैं ही शीत हूँ, मैं ही उष्ण हूँ' इसतरह मानकर शीतोष्ण परिणतिका कर्त्ता होता है। उसी प्रकार जीव भी निजशुद्धात्मानुभवसे भिन्न उदयागत पुद्गल परिणामकी अवस्थाको और उसके निमित्तमें होनेवाले सुखदुःखके अनुभवको एकत्व अध्यावसायके आरोपसे परद्रव्य और आत्मामें समस्त-रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानके अभावसे भेदको न जाननेवाला 'मैं सुखी, मैं दुःखी' इस प्रकारके परिणामसे कर्मोका कर्त्ता होता है, यह भावार्थ है॥ ९९॥

अब वीतरागस्वसंवेदनज्ञानसे (निजशुद्धात्मानुभूतिसे) कर्म नहीं होता है, यह बतलाते हैं–

गाथार्थ– [**णाणमओ जीवो**] ज्ञानमय जीव [**परं**] परको [**अप्पाणं**] आत्ममय [**अकुव्वी**] नहीं करता है (नहीं मानता है) [**य**] और [**अप्पाणं पि**] अपनेको भी [**परं**] पररूप [**अकुव्वंतो**] न करता, मानता हुआ [**सो**] वह [**कम्माणं**] कर्मोका [**अकारओ**] अकर्ता [**होदि**] होता है।

टीकार्थ– जो बाह्यमें देहादिक नोकर्म द्रव्यकर्मरूप परद्रव्य और अभ्यंतरमें रागादिक

भेदविज्ञानबलेनात्मानमकुर्वन्नात्मसंबंधमकुर्वन् अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो शुद्धद्रव्यगुणपर्यायस्वभावं निजात्मानं च परमकुर्वन् सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारओ होदि स निर्मलात्मानुभूतिलक्षणभेदज्ञानी जीवः कर्मणामकर्ता भवतीति। तथाहि– यथा कश्चित् पुरुषः शीतोष्णरूपायाः पुद्गलपरिणामावस्थायास्तथाविधशीतोष्णानुभवस्य चात्मनः सकाशाद्भेदज्ञानात् शीतोहमुष्णोहमिति परिणतेः कर्ता न भवति। तथा जीवोपि निजशुद्धात्मानुभूतेर्भिन्नायाः पुद्गलपरिणामावस्थायास्तन्निमित्तसुखदुःखानुभवस्य च स्वशुद्धात्मभावनोत्थसुखानुभवभिन्नस्य भेदज्ञानाभ्यासात्परात्मनोर्भेदज्ञाने सति रागद्वेषमोहपरिणाममकुर्वाणः कर्मणां कर्ता न भवति। ततः स्थितं ज्ञानात्कर्म न प्रभवतीत्यभिप्रायः ॥ १०० ॥

अथ कथमज्ञानात्कर्म प्रभवतीति पृष्टे गाथाद्वयेन प्रत्युत्तरमाह–

तिविहो एसुवओगो अस्सवियप्पं करेदि कोहोहं।
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ॥ १०१ ॥

॥ आ. ख्या. ९४ ॥

भावकर्मरूप परद्रव्यको भेदविज्ञानके बलसे आत्ममय संबंध न करनेवाला (न माननेवाला) और (अभेदवृत्तिनयसे-निश्चयनयसे) शुद्धद्रव्यगुणपर्यायस्वभाववाले निजात्माको परस्वरूप न करके वह निर्मलानुभूतिलक्षणवाला भेदज्ञानी जीव कर्मोंको नहीं करता है, (कर्मोंका अकर्ता है)।

जैसे कोई पुरुष शीत उष्ण पुद्गल परिणामकी अवस्थाका और उसी प्रकारके शीतोष्ण अनुभवका आत्मासे भेदज्ञान होने के कारण 'मैं शीत हूँ, मै उष्ण हूँ' इस परिणतिका कर्ता नहीं होता है। उसी प्रकार जीव भी निजशुद्धात्मानुभूतिसे भिन्न जो पुद्गल परिणामकी अवस्था तथा उस पुद्गलके निमित्तमें होनेवाले सुखदुःख के अनुभवकी और स्वशुद्धात्मानुभूतिसे उत्पन्न होनेवाले अतींद्रियसुखके अनुभव की भिन्नताका ज्ञान होनेपर उस भेदज्ञानके अभ्याससे पर और आत्माका भेदज्ञान होते समय रागद्वेषमोहके परिणाम न करनेवाला होता है। इसलिये जीव भी कर्मोंका कर्ता नहीं होता है।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, ज्ञान (स्वसंवेदनज्ञान अथवा निजशुद्धात्मानुभूति) से कर्म नहीं होता है, यह अभिप्राय है ॥ १०० ॥

अब अज्ञानसे कर्म क्यों होता है? ऐसा पूछनेपर दो गाथाओंद्वारा उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**एस**] यह [**तिविहो**] तीनप्रकारका [**उवओगो**] उपयोग [**अस्सवियप्पं**] असत् विकल्प करता है कि [**कोहोहं**] मैं क्रोध स्वरूप हूँ [**तस्स**] उस [**अत्तभावस्स**] अपने [**उवओगस्स**] उपयोग भावका [**सो**] वह [**कत्ता**] कर्ता [**होदि**] होता है।

तिविहो एसुवओगो त्रिविधस्त्रिप्रकार एष प्रत्यक्षीभूत उपयोगलक्षणत्वादुपयोग आत्मा **अस्सवियप्पं करेदि** स्वस्थभावस्याभावादसद्विकल्पं मिथ्याविकल्पं करोति। केन रूपेण **कोहोहं** क्रोधोहमित्यादि **कत्तातस्सुवओगस्स होदि सो** स जीवः तस्य क्रोधाद्युपयोगस्य विकल्पस्य कर्ता भवति। कथंभूतस्य, **अत्तभावस्स** आत्मभावस्याशुद्धनिश्चयेन जीवपरिणामस्येति। तथाहि– सामान्येनाज्ञानरूपेणैकविधोपि विशेषेण मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्ररूपेण त्रिविधो भूत्वा एष उपयोग आत्मा क्रोधाद्यात्मनोर्भाव्यभावकभावापन्नयोः। भाव्यभावकभावापन्नयोः कोर्थः? भाव्यः क्रोधादिपरिणत आत्मा, भावको रंजकश्चांतरात्मभावनाविलक्षणो भावक्रोधः। इत्थंभूतयोर्द्वयोर्भेदज्ञानाभावाद्भेदमजानन्निर्विकल्पस्वरूपाद् भ्रष्टः सन् क्रोधोहमित्यात्मनो विकल्पमुत्पादयति, तस्यैव क्रोधाद्युपयोगपरिणामस्याशुद्धनिश्चयेन कर्ता भवतीति भावार्थः। एवमेव च क्रोधपदपरिवर्तनेन मानमायालोभमोहरागद्वेषकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणि षोडश व्याख्येयानि। अनेन प्रकारेणाविक्षिप्तचित्तस्वभावशुद्धात्मतत्त्वविलक्षणा असंख्येयलोकमात्रप्रमिता विभावपरिणामा ज्ञातव्या इति॥ १०१॥

टीकार्थ– यह प्रत्यक्षीभूत त्रिविध (मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्र) उपयोगलक्षणवाला उपयोगमय आत्मा स्वस्थभावका (निजशुद्धात्मस्वभावका) अभाव करनेसे असत् (मिथ्या) विकल्प करता है।

शंका– किस रूपसे विकल्प करता है?

समाधान– मैं क्रोधी हूँ। इत्यादि असत् विकल्प करता है। वह जीव उस क्रोधादि उपयोगका-विकल्पका कर्ता होता है। अशुद्धनिश्चयनयसे आत्मभावका–क्रोधादिमयविकल्पका कर्ता होता है। सामान्यसे अज्ञानमय एकविध भाव होता हुआ भी विशेषसे मिथ्यादर्शनज्ञान-चारित्र रूपसे त्रिविध होकर यह उपयोगमय आत्मा क्रोधादि और आत्मा इनके भाव्यभावक-भावको प्राप्त होता है।

शंका– भाव्य और भावक को प्राप्त होना याने क्या?

समाधान– भाव्य याने क्रोधादिमयपरिणत आत्मा, भावक याने रंजक और अंतरात्म–भावनासे विपरीत होना याने भावक्रोध, ऐसा अर्थ है।

इसतरह भाव्य और भावक इन का भेदज्ञान न होनेसे (भेद न जाननेसे) निर्विकल्प स्वरूप (स्वानुभूति) से भ्रष्ट होकर 'मै क्रोध हूँ' ऐसा आत्माके बारेमें विकल्प प्रगट करता है और अशुद्धनिश्चयनयसे क्रोधादि उपयोग परिणामका कर्ता होता है, यह भावार्थ है। और इस प्रकारही मान, माया, लोभ, मोह, रॉग, द्वेष कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शन पदोंको क्रोधके बदले रखकर व्याख्यान समझ लेना चाहिए। इसी प्रकारसे अविक्षिप्तचित्तस्वभावमय शुद्धात्माके तत्त्वसे विलक्षण जो असंख्यातलोकमात्रप्रमित विभाव परिणामोंको क्रोधपदपरिवर्तन करके जानना चाहिये॥ १०१॥

अथ–

तिविहो एसुवओगो अस्सवियप्पं करेदि धम्मादि ।
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ॥ १०२ ॥

॥ आ. ख्या. ९५ ॥

तिविहो एसुवओगो सामान्येनाज्ञानरूपेणैकविधोपि विशेषेण मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्ररूपेण त्रिविधः सन्नेष उपयोग आत्मा **अस्सवियप्पं करेदि धम्मादि** परद्रव्यात्मनोर्ज्ञेयज्ञायकभावापन्नयोरविशेषदर्शनेनाविशेषपरिणत्त्या च भेदज्ञानाभावाद्भेदमजानन् धर्मास्तिकायोहमित्याद्यात्मनोऽसद्विकल्पमुत्पादयति । **कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स** निर्मलात्मानुभूतिरहितस्यैव मिथ्याविकल्परूपजीवपरिणामस्याशुद्धनिश्चयेन कर्ता भवति । ननु धर्मास्तिकायोहमित्यादि कोपि न ब्रूते तत्कथं घटत इति ? अत्र परिहारः । धर्मास्तिकायोयमिति योसौ परिछित्तिरूपविकल्पो मनसि वर्तते सोप्युपचारेण धर्मास्तिकायो भण्यते । यथा घटाकारविकल्पपरिणतिज्ञानं घट इति । तथा तद्धर्मास्तिकायोयमित्यादिविकल्पः यदा ज्ञेयतत्वविचारकाले करोति जीवः तदा शुद्धात्मस्वरूपं विस्मरति तस्मिन्विकल्पे कृते सति धर्मोहमिति विकल्प उपचारेण घटत इति भावार्थः । ततस्थितं शुद्धात्मसंवित्तेरभावरूपमज्ञानं कर्मकर्तृत्वस्य कारणं भवति ॥ १०२ ॥

अब–

गाथार्थ– [**एस**] यह [**तिविहो**] तीन प्रकारका [**उवओगो**] उपयोग [**धम्मादि**] मैं धर्मादिद्रव्यस्वरूप हूँ, ऐसा [**अस्सवियप्पं**] असत् विकल्प [**करेदि**] करता है याने उनको अपना स्वरूप समझता है [**सो**] वह [**तस्स**] उस [**उवओगस्स**] उपयोगरूप [**अत्तभावस्स**] अपने भावका [**कत्ता**] कर्ता [**होदि**] होता है ।

टीकार्थ– सामान्यसे अज्ञानमय एकविध होता हुआ भी विशेषसे मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्ररूपसे त्रिविध होनेवाला उपयोगमय आत्मा, परद्रव्य और आत्मा के ज्ञेय ज्ञायक भाव को प्राप्त होनेपर अभेददर्शनसे, अभेदपरिणतिसे और भेदज्ञानके अभावसे भेदको नही जाननेवाला होकर 'मैं धर्मास्तिकाय हूँ' इत्यादि आत्माके बारेमें असत् विकल्प करता है । और अशुद्धनिश्चयनयसे वह निर्मलात्मानुभूतिरहित मिथ्याविकल्परूप जीवके परिणामका कर्ता होता है ।

शंका– 'मैं धर्मास्तिकाय हूँ' इस तरह कोई भी नहीं कहता है, तो यह कैसे घटित हो सकता है ?

समाधान– 'यह धर्मास्तिकाय है' ऐसा जो विकल्प मनमें होता है, उसको ही उपचारसे यहां धर्मास्तिकाय कहते हैं । जैसे घटाकार विकल्परूप परिणतज्ञानको 'घट' ऐसा कहते हैं, वैसे जब ज्ञेयतत्त्वके विचारकालमें यह धर्मास्तिकाय है' इत्यादि विकल्प जीव करता है तब शुद्धात्मस्वभावका स्मरण नहीं करता हैं, उसी विकल्पके समय 'मैं धर्मास्तिकाय हूँ' ऐसा विकल्प उपचारसे घटित हो जाता है, यह भावार्थ है ।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, स्वशुद्धात्मानुभूतिके अभावरूप अज्ञान ही कर्म के कर्तृत्व का कारण है ॥ १०२ ॥

एवं पराणि दव्वाणि अप्पयं कुणदि मंदबुद्धीओ ।
अप्पाणं अवि य परं करेइ अण्णाणभावेण ।। १०३ ।।

।। आ. ख्या. ९६ ।।

एवं एवं पूर्वोक्तगाथाद्वयकथितप्रकारेण **पराणि दव्वाणि अप्पयं कुणदि** क्रोधोहमित्यादिवद्धर्मास्तिकायोहमित्यादिवच्च क्रोधादिस्वकीयपरिणामरूपाणि तथैव धर्मास्तिकायादिज्ञेयरूपाणि च परद्रव्याणि आत्मानं करोति । स कः कर्ता **मंदबुद्धीओ** मंदबुद्धिर्निर्विकल्पसमाधिलक्षणभेदविज्ञानरहितः **अप्पाणं अवि य परं करेदि** शुद्धबुद्धैकस्वभावमात्मानमपि च परं स्वस्वरूपाद्भिन्नं करोति रागादिषु योजयतीत्यर्थः । केन, **अण्णाणभावेण** अज्ञानभावेनेति । ततः स्थितं क्रोधादिविषये भूताविष्टदृष्टांतेन धर्मादिज्ञेयविषये ध्यानाविष्टदृष्टांतेनेव शुद्धात्मसंवित्यभावरूपमज्ञानं कर्मकर्तृत्वस्य कारणं भवति । तद्यथा– यथा कोपि पुरुषो भूतादिग्रहाविष्टो भूतात्मनोर्भेदमजानन् सन्नमानुषोचितशिलास्तंभचालनादिकमद्भुतव्यापारं कुर्वन्सन् तस्य व्यापारस्य कर्ता भवति । तथा जीवोपि वीतरागपरमसामायिकपरिणतशुद्धोपयोगलक्षणभेदज्ञानाभावात्कामक्रोधादिशुद्धात्मनोर्द्वयोर्भेदमजानन् क्रोधोहं कामोहमित्यादिविकल्पं कुर्वन्सन् कर्मणः कर्ता भवति । एवं क्रोधादिविषये

गाथार्थ– [**एवं**] इसप्रकार [**मंदबुद्धीओ**] अज्ञानी मंदबुद्धीवाला [**अण्णाणभावेण**] अज्ञानभावसे [**पराणि दव्वाणि**] पर द्रव्योंको [**अप्पणं**] आत्ममय [**करेदि**] करता है [**य**] और [**अप्पाणं अवि**] अपनेको भी [**परं**] परमय [**कुणदि**] करता है ।

टीकार्थ– जैसे पूर्वमें दो गाथाओंद्वारा कहा गया है उस प्रकारसे ' मैं क्रोध हूँ इत्यादि ' ज्ञेयरूपपरद्रव्योंको आत्ममय करता (मानता) है । और निर्विकल्पसमाधिलक्षणवाले भेदज्ञानसे रहित वह मंदबुद्धी जीव अपना स्वभाव शुद्धबुद्ध एक होता हुआ भी अपनेको स्वस्वरूपसे भिन्न पररूप मानता है और रागादिमें अपना चेतनोपयोग योजता है ।

शंका– कैसे ?

समाधान– अज्ञानभावसे (स्वानुभूतिसे रहित होनेसे) परको अपना स्वरूप मानता है और अपनेको पर स्वरूप मानता है ।

इससे यह सिद्ध हुआ कि, भूताविष्ट दृष्टांतसे क्रोधादिविषयमें और ध्यानाविष्ट दृष्टांतसेही धर्मादि ज्ञेयविषयमें जिसतरह कोई वर्तता (चेष्टा करता) है उसी तरह शुद्धात्मानुभव का अभावरूप अज्ञान कर्मकर्तृत्वका कारण है । जिस प्रकार– जैसे किसी पुरुष के भूत आदि ग्रह लग गया हो तो वह भूत में और अपनेमें भेद को नहीं जानता हुआ मनुष्यसे न करने योग्य ऐसे वडी भारी शिलास्तंभ उठाना आदि आश्चर्यजनक व्यापारको करता हुआ उस व्यापारका कर्ता होता है । उसीतरह जीव भी वीतरागपरमसामायिकपरिणतशुद्धोपयोगवाले भेदज्ञानके अभावसे कामक्रोधादि और स्वशुद्धात्मस्वभाव इन दोनोंके भेद (भेदज्ञान) को न जाननेवाला होकर ' मैं क्रोध हूँ, मैं काम हूँ ' इत्यादि विकल्प करनेवाला होकर कर्मोंका कर्ता

भूताविष्टदृष्टांतो गतः। तथैव च यथा कश्चिन्महामहिषादिध्यानाविष्टो महिषाद्यात्मनोर्द्वयोर्भेदमजानन्महामहिषोहं गरुडोहं कामदेवोहमग्निरहं दुग्धधारासमानामृतराशिरहमित्याद्यात्मविकल्पं कुर्वाणः सन् तस्य विकल्पस्य कर्ता भवति। तथा च जीवोपि सुखदुःखादिसमताभावनापरिणतशुद्धोपयोगलक्षणभेदज्ञानाभावाद्धर्मादिज्ञेयपदार्थानां शुद्धात्मनश्च भेदमजानन् धर्मास्तिकायोहमित्याद्यात्मविकल्पं करोति, तस्यैव विकल्पस्य कर्ता भवति। तस्मिन् विकल्पकर्तृत्वे सति द्रव्यकर्मबंधो भवतीति। एवं धर्मास्तिकायादिज्ञेयपदार्थविषये ध्यानदृष्टांतो गतः। हे भगवन्! धर्मास्तिकायोयं जीवोयमित्यादिज्ञेयतत्त्वविचारविकल्पे क्रियमाणे यदि कर्मबंधो भवतीति तर्हि ज्ञेयतत्त्वविचारो वृथेति न कर्तव्यः। नैवं वक्तव्यं। त्रिगुप्तिपरिणतनिर्विकल्पसमाधिकाले यद्यपि

होता है। इसप्रकार क्रोधादिविषयके वारेमें भूताविष्टका दृष्टांत हो गया। और उसीतरह जैसे कोई पुरुष महान् भैंसा आदिका ध्यान करनेवाला भैंसा और अपनेमें भेदको नहीं जानता हुआ, मैं महान भैंसा हूँ, मैं गरुड हूँ, मैं कामदेव हूँ, मैं अग्नि हूँ, अथवा दुधकी धाराके समान अमृत की राशि हूँ, इत्यादि आत्मविकल्पोंको करनेवाला होकर वह जीव उस विकल्पका कर्ता होता है। वैसे जीव भी सुखदुःखादिमें समताभावनापरिणतशुद्धोपयोगलक्षणवाले भेदज्ञानके अभावमें धर्मादिज्ञेयपदार्थ और स्वशुद्धात्मस्वभावमें भेदको न जानकर "मैं धर्मास्तिकाय हूँ" इत्यादि आत्मविकल्प करता है और उसही विकल्पका कर्ता होता है। विकल्पका कर्ता होनेपर उसी समयमें द्रव्यकर्मबंध होता है। इस प्रकार धर्मास्तिकाय आदि ज्ञेयपदार्थके विषयमें ध्यान का दृष्टांत हुआ।

शंका– हे भगवन्। "यह धर्मास्तिकाय है, यह जीव है" इत्यादि विकल्प ज्ञेयतत्त्वविचारकालमें करनेपर यदि कर्मबंध होता है, तो ज्ञेय तत्त्वोंका विचार करना वृथा है इसलिए ज्ञेयतत्त्व (द्रव्य, गुण व पर्याय) का विचार नहीं करना चाहिये?

समाधान– ज्ञेयतत्त्वोंका (द्रव्य, गुण और पर्यायोंका) विचार करना व्यर्थ नहीं है ज्ञेयतत्त्वोंका विचार विकल्प अवस्थामें करनेसे अशुभोपयोगसे बचाव होता है।

आगमभाषासे	अध्यात्मभाषासे
१) यद्यपि त्रिगुप्तिपरिणतकालमें ज्ञेयतत्त्वोंका (द्रव्य, गुण और पयार्य का) विकल्प नहीं करना चाहिये।	१) यद्यपि निर्विकल्पसमाधिकालमें (शुद्ध स्वानुभूतिमें) ज्ञेयतत्त्व (द्रव्य, गुण व पर्याय) का विकल्प नहीं करना चाहिये।
२) त्रिगुप्तिके अभावमें मोक्षको उपादेय करके सरागसम्यक्त्व (सविकल्प) अवस्थामें विषयकषायोंसे दूर रहनेके लिये ज्ञेयतत्त्वोंका विचार (विकल्प) करना कर्तव्य है।	२) तथापि ध्यानके (शुद्ध स्वानुभूतिके) अभावमें शुद्धात्मा (निजस्वभाव) को उपादेय करके सरागसम्यक्त्व (सविकल्प) की अवस्थामें विषयकषायोंसे दूर रहनेके लिये ज्ञेयतत्त्वोंको जानना चाहिये।

न कर्तव्यस्तथापि तस्य त्रिगुप्तिध्यानस्याभावे शुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा आगमभाषया तु मोक्षमुपादेयं कृत्वा सरागसम्यक्त्वकाले विषयकषायवंचनार्थं कर्तव्यः। तेन तत्त्वविचारेण मुख्यवृत्त्या पुण्यबंधो भवति परंपरया निर्वाणं च भवतीति नास्ति दोषः। किंतु तत्र तत्त्वविचारकाले वीतरागस्वसंवेदनज्ञानपरिणतः शुद्धात्मा साक्षादुपादेयः कर्तव्यः इति ज्ञातव्यं। ननु वीतरागस्वसंवेदनज्ञानविचारकाले वीतरागविशेषणं किमिति क्रियते प्रचुरेण भवद्भिः, किं सरागमपि स्वसंवेदनज्ञानमस्तीति ? अत्रोत्तरं विषयसुखानुभवानंदरूपं स्वसंवेदज्ञानं सर्वजनप्रसिद्धं सरागमप्यस्ति शुद्धात्मसुखानुभूतिरूपं स्वसंवेदनज्ञानं वीतरागमिति। इदं व्याख्यानं स्वसंवेदनज्ञानव्याख्यानकाले सर्वत्र ज्ञातव्यमिति भावार्थः ॥ १०३ ॥

ततः स्थितमेतत् शुद्धात्मानुभूतिलक्षणसम्यग्ज्ञानान्नश्यति कर्मकर्तृत्वं–

एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहिं परिकहिदो।
एवं खलु जो जाणदि सो मुंचदि सव्वकत्तितं ॥ १०४ ॥

॥ आ. ख्या. ९७ ॥

उस तत्त्वविचारसे मुख्यतः पुण्यबंध होता है और उस ज्ञेयतत्त्व के विचार से परंपरासे मोक्ष होता है, और इसप्रकार ज्ञेयतत्त्वका विचार करनेमें दोष नहीं है लेकिन वह साक्षात् निर्वाणका उपाय भी नही है। यह ध्यानमें रखना चाहिये कि, तत्त्वविचारकालमें वीतराग स्वसंवेदनज्ञानपरिणत (निजशुद्धात्मानुभवपरिणत) शुद्धात्मा (निजशुद्धात्मस्वभाव) ही साक्षात् उपादेय करना चाहिए।

शंका– आप वीतरागस्वसंवेदनज्ञानका विचार करते समय वीतराग ऐसे विशेषणका प्रचुरतासे (बहुलतासे) प्रयोग करते हो तो सराग (रागसहित) भी स्वसंवेदनज्ञान होता है क्या?

समाधान– सर्वजनको प्रसिद्ध ऐसा विषयसुखानुभवानंदरूप स्वसंवेदनज्ञान सराग-स्वसंवेदनज्ञान ही है। [याने मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानवर्ती स्वसंवेदनज्ञान रागसहित (अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वोदयजनितरागसहित) हैं] और शुद्धात्मसुखानुभूतिरूप स्वसंवेदनज्ञान वीतराग (स्वसंवेदनज्ञान) है [याने सम्यक्त्वीका (चतुर्थादिगुणस्थानवर्तीका) स्वसंवेदनज्ञान वीतरागस्वसंवेदनज्ञान है क्योंकि अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वजनित-रागरहित है] इसतरह का व्याख्यान (टीकामें) स्वसंवेदन ज्ञान के व्याख्यान के समय सर्वत्र जानना चाहिए यह भावार्थ है ॥ १०३ ॥

इस कथनसे यह सिद्ध हुआ कि, शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवाले सम्यग्ज्ञानसे कर्मकर्तृत्वका नाश होता है–

गाथार्थ– [एदेण दु] इस पूर्वकथित कारणसे [णिच्छयविदूहिं] निश्चयके जाननेवाले (निजशुद्धात्मानुभूतिवाले) ज्ञानियोंने [सो आदा] वह अज्ञानी आत्मा [कत्ता] कर्ता [परिकहिदो] कहा हैं [एवं खलु] इसप्रकार [जो] जो [जाणदि] जानता है [सो]

एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहिं परिकहिदो एतेन पूर्वोक्तगाथात्रयव्याख्यानरूपेणाज्ञानभावेन स आत्मा कर्त्ता भणितः। कैर्निश्चयविद्भिर्निश्चयज्ञैः सर्वज्ञैः। तथाहि–वीतरागपरमसामायिकसंयमपरिणताभेदरत्नत्रयस्य प्रतिपक्षभूतेन पूर्वगाथात्रयव्याख्यानप्रकारेणाज्ञानभावेन यदात्मा परिणमति, तदा तस्यैव मिथ्यात्वरागादिरूपस्याज्ञानभावस्य कर्ता भवति ततश्च द्रव्यकर्मवन्धो भवति। यदा तु चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मानुभूतिपरिणामेन परिणमति तदा सम्यग्ज्ञानी भूत्वा मिथ्यात्वरागादिभावकर्मरूपस्याज्ञानभावस्य कर्ता न भवति। तत्कर्तृत्वाभावे हि द्रव्यकर्मवंधोपि न भवति। **एवं खलु जो जाणदि सो मुंचदि सव्वकत्तितं** एवं गाथापूर्वार्द्धव्याख्यानप्रकारेण मनसि योऽसौ वस्तुस्वरूपं जानातीति स सरागसम्यग्दृष्टिः सन्नशुभकर्मकर्तृत्वं मुंचति। निश्चयचारित्राविनाभाविवीतरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा शुभाशुभसर्वकर्मकर्तृत्वं च मुंचति। एवमज्ञानात्कर्मप्रभवतीति, संज्ञानान्नश्यतीति स्थितं। इत्यज्ञानिसंज्ञानिजीवप्रतिपादनमुख्यत्वेन द्वितीयस्थले गाथाषट्कं गतं। एवं द्विक्रियावादिनिराकरणविशेषव्याख्यानरूपेण द्वादशगाथा गताः ॥ १०४ ॥

वह ज्ञानी [**सव्वकत्तितं**] सब कर्तृत्वको [**मुंचदि**] छोड देता है।

टीकार्थ– पूर्वोक्त तीन गाथाओंमें अज्ञानभावसे वह आत्मा कर्ता है ऐसा सर्वज्ञभगवानोंने-निश्चयको जाननेवालोंने, आत्मानुभूतिवालोंने कहा हैं। उसी प्रकार– वीतरागपरमसामायिकसंयमपरिणत अभेदरत्नत्रयके (निजशुद्धात्मानुभवके) प्रतिपक्षभूत पूर्व तीन गाथाओंके द्वारा कथित अज्ञानभावसे जव आत्मा परिणमता है तव उसही मिथ्यात्वरागादिरूप अज्ञानभावका कर्ता है। और इसलिये द्रव्यकर्मवंध होता है। लेकिन जव चिदानंदएकस्वभाव शुद्धात्मानुभूतिके परिणामसे परिणमन करता है तव सम्यग्ज्ञानी होकर मिथ्यात्वरागादिभावकर्मरूप अज्ञानभावका कर्ता नहीं होता है। उस कर्तृत्वके अभावमें ही द्रव्यकर्मवंध भी नहीं होता है। इस प्रकारसे गाथाकें पूर्वार्धके विवेचनसे मनमें (यानें जो जीव प्रायोग्यलब्धितक अर्थात् आगम, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान ज्ञानतक आया है, वह) जिनदेशनाको (वस्तुस्वरूपको) परोक्षरूपसे जानता है ऐसा जीव कभी कभी प्रथमानुयोगकी अपेक्षासे उपचारसे सराग सम्यक्त्वी कहा जाता है, लेकिन स्वानुभूति न होनेसे (दर्शनमोह का उपशमादि न होनेसे अर्थात् प्रथमगुणस्थानवर्ती होनेसे) अशुभकर्मकर्तृत्व छोडता है। जव वही जीव निश्चयचारित्रके अविनाभावी वीतरागसम्यक्त्वी (स्वानुभूतिवाला याने जिसके दर्शनमोहका उपशमादि हुआ है ऐसा जीव) होता है, तव सव शुभाशुभ कर्मके कर्तृत्वको छोडता है।

इस प्रकार अज्ञानसे ही कर्म होते है, सम्यग्ज्ञानसे कर्म नष्ट होते हैं, यह सिद्ध हुआ।

इस प्रकारसे अज्ञानी और सम्यग्ज्ञानी जीवके प्रतिपादनकी मुख्यतासे द्वितीयस्थलमें छह गाथायें पूर्ण हुओ। इसप्रकार द्विक्रियावादीके निराकरणका विशेष व्याख्यान करनेवाली १२ गाथायें पूर्ण हुओ ॥ १०४ ॥

अथ पुनरप्युपसंहाररूपेणैकादशगाथापर्यंतं द्विक्रियावादिनिराकरणविषये विशेषव्याख्यानं करोति । तद्यथा–परभावानात्मा करोतीति यद् व्यवहारिणो वदन्ति स व्यामोह इत्युपदिशति–

ववहारेण दु आदा करेदि घडपडरथाणि दव्वाणि ।
करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि ॥ १०५ ॥

॥ आ. ख्या. ९८ ॥

ववहारेण दु एवं करेदि घडपडरथाणि दव्वाणि यतो यथा अन्योन्यव्यवहारेणैवं तु पुनः घटपटरथादिवहिर्द्रव्याणीहापूर्वेण करोत्यात्मा **करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि** तथाभ्यंतरेपि करणाणींद्रियाणि कर्माणि च नोकर्माणि इह जगति विविधानि क्रोधादिद्रव्यकर्माणीहापूर्वेण विशेषेण करोतीति मन्यन्ते, ततोस्ति व्यामोहो मूढत्वं व्यवहारिणां ॥ १०५ ॥

अथ स व्यामोहः सत्यो न भवतीति कथयति–

जदि सो परदव्वाणि य करिज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज ।
जह्मा ण तम्मओ तेण सो ण तेंसि हवदि कत्ता ॥ १०६ ॥

॥ आ. ख्य. ९९ ॥

अब फिरसे उपसंहाररूपसे ११ गाथाओंपर्यंत द्विक्रियावादीका निराकरण करने के लिये विशेष कथन करते हैं। यहाँ 'परभावोंको आत्मा करता है' ऐसा जो व्यवहारी लोग कहते हैं, वह उनका व्यामोह हैं ऐसा उपदेश करते हैं–

गाथार्थ– [**दु**] परंतु (पूर्व गाथाओंसे संबंध दिखाने के लिये) [**ववहारेण**] व्यवहारसे अर्थात् व्यवहारी जन मानते हैं कि [**इह**] जगतमें [**आदा**] आत्मा [**घडपडरथाणि दव्वाणि**] घट पट रथ इत्यादि वस्तुओंको [**च**] और [**करणाणि**] इंद्रियादिक करणपदार्थोंको [**करेदि**] करता है [**य**] इसी प्रकार [**विविहाणि**] विविधप्रकारके [**कम्माणि य णोकम्माणि**] कर्मनोकर्मोंको करता है।

टीकार्थ– जैसे अन्योन्य व्यवहारसे घट पट रथ इत्यादि परद्रव्योंको बाह्यमें इच्छापूर्वक यह आत्मा करता है उसी प्रकार यह आत्मा अभ्यंतरमें भी इंद्रियों, कर्म और नोकर्मोंको याने इस जगतमें विविधप्रकारके क्रोधादिभावकर्म और द्रव्यकर्मोंको इच्छापूर्वक विशेषतासे करता हैं, ऐसा जो मानते हैं इसलिये उन व्यवहारिलोगोंका यह व्यामोह– मूढपना हैं ॥ १०५ ॥

वह मूढता सत्य (योग्य) नहीं हैं ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**जदि**] यदि [**सो**] वह आत्मा [**परदव्वाणि**] परद्रव्योंको [**करिज्ज**] करे [**य**] तो [**णियमेण**] वह आत्मा उन परद्रव्योंसे [**तम्मओ**] तादात्म्य [**होज्ज**] होगा

जदि सो परदव्वाणि य करिज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज यदि स आत्मा परद्रव्याणि नियमेनैकांतरूपेण करोति तदा तन्मयः स्यात् **जह्मा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता** यस्मात्सहजशुद्धस्वभाविकानंतसुखादिस्वरूपं त्यक्त्वा परद्रव्येण सह तन्मयो न भवति। ततः स आत्मा तेषां परद्रव्याणामुपादानरूपेण कर्ता न भवतीत्यभिप्रायः ॥ १०६ ॥

अथ न केवलमुपादानरूपेण कर्ता न भवति किंतु निमित्तरूपेणापीत्युपदिशति–

जीवो ण करेदि घडं णेव पडं णेव सेसगे दव्वे।
जोगुवओगा उप्पादगा य सो तेसिं हवदि कत्ता ॥ १०७ ॥

॥ आ. ख्या. १०० ॥

जीवो ण करेदि घडं णेव पडं णेव सेसगे दव्वे न केवलमुपादानरूपेण निमित्तरूपेणापि जीवो न करोति घटं पटं नैव शेषद्रव्याणि। कुत इति चेत् ? नित्यं सर्वकालं कर्मकर्तृत्वानुषंगात्।

[**जह्मा**] लेकिन [**तम्मओ**] तादात्म्य [**ण**] नहीं होता है [**तेण**] इसतरह तादात्म्य न होनेसे [**सो**] वह आत्मा [**तेसिं**] उनका [**कत्ता**] कर्ता [**ण हवदि**] नही हैं।

टीकार्थ– यदि निश्चयसे वह आत्मा परद्रव्योंको करता है, तो वह आत्मा उनसे तन्मय हो जायेगा, लेकिन अपने सहजशुद्धस्वाभाविक अनंतसुखादिस्वभावको छोडकर परद्रव्यके साथ तन्मय (तादात्म्य) नहीं है। इसलिये वह आत्मा उन परद्रव्योंका उपादानसे कर्ता नहीं हैं यह अभिप्राय है ॥ १०६ ॥

अब, केवल उपादानरूपसे कर्ता नहीं है किन्तु निमित्तरूपसे भी कर्ता नहीं है, ऐसा उपदेश करते हैं–

गाथार्थ– [**जीवो**] जीव [**घडं**] घटको [**ण करेदि**] नहीं करता [**य एव**] और [**पटं**] पटको भी [**ण**] नहीं करता [**सेसगे दव्वे**] शेष द्रव्योंको भी [**णेव**] नहीं करता [**जोगुवओगा**] जीवके योग और उपयोग दोनों [**उप्पादगा**] घटादिक के उत्पन्न करने के (उपचार से) निमित्त है [**तेसिं**] उन दोनों योग और उपयोगों का [**सो**] वह आत्मा [**कत्ता**] कर्ता [**हवदि**] है।

टीकार्थ– केवल उपादानसे जीव घटादियोंका कर्ता नहीं है, किन्तु निमित्तसे भी जीव घट, पटादि शेष द्रव्योंका कर्ता नहीं हैं।

शंका– कैसे ?

समाधान– सर्वकालमें जीवको परद्रव्योंका उपादानसे और निमित्तसे भी कर्तृत्व का प्रसंग (अपत्ति) आयेगा।

कस्तर्हि करोति ? **जोगुवओगा उप्पादगा य** आत्मनो विकल्पव्यापाररूपौ विनश्वरौ योगोपयोगावेव तत्रोत्पादकौ भवतः । **सो तेसिं हवदि कत्ता** सुखदुःखजीवितमरणादिसमताभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणभेदविज्ञानाभावाद्यदा काले शुद्धबुद्धैकस्वभावात्परमात्मस्वरूपाद्भ्रष्टो भवति तदा स जीवस्तयोर्योगोपयोगयोः कदाचित्कर्ता भवति न सर्वदा । अत्र योगशब्देन बहिरंगहस्तादिव्यापारः उपयोगशब्देन चांतरंगविकल्पो गृह्यते । इति परंपरया निमित्तरूपेण घटादिविषये जीवस्य कर्तृत्वं स्यात् । यदि पुनः मुख्यवृत्त्या निमित्तकर्तृत्वं भवति तर्हि जीवस्य नित्यत्वात् सर्वदैव कर्मकर्तृत्वप्रसंगात् मोक्षाभावः । इति व्यवहारव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं ।। १०७ ।।

अथ वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी ज्ञानस्यैव कर्ता न च परभावस्येति कथयति—

जे पुग्गलदव्वाणं परिणामा होंति णाणआवरणा ।
ण करेदि ताणि आदा जो जाणदि सो हवदि णाणी ।। १०८ ।।

।। आ. ख्या. १०१ ।।

जे पुग्गलदव्वाणं परिणामा होंति णाणआवरणा ये कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलपरिणामाः

शंका— तब उनका कर्ता कौन है ?

समाधान— (अशुद्धनयसे) आत्माका विकल्प और व्यापाररूप योग और उपयोग स्वयं विनश्वर हैं, वे (उपचारसे) वहाँ (उनके) उत्पादक हैं । सुखदुःखजीवितमरणादिमें समता भावनासे परिणत अभेदरत्नत्रयलक्षणरूप भेदविज्ञानके अभावसे जिस कालमें शुद्धबुद्ध-एक-स्वभावरूप परमात्मस्वरूपसे भ्रष्ट होता है तब वह जीव कदाचित् उन योग और उपयोगका कर्ता होता है, किन्तु जीव सर्वदा उन योग और उपयोगका कर्ता नहीं है ।

यहां योग शब्दसे बहिरंग हस्तादिव्यापारको और उपयोग शब्दसे अंतरंग विकल्पभावको ग्रहण किया गया है । इसप्रकार परंपरासे (उपचारसे) निमित्तरूपसे घटादिविषयमें (घटादिके विकल्पपर्यायमें) जीवका कर्तृत्व है । यदि मुख्यवृत्तिसे (निश्चयसे) निमित्तका कर्तृत्व है तो जीव नित्य होनेसे निश्चयसे सर्वदा ही कर्मकर्तृत्वका प्रसंग आयेगा और उससे मोक्षका अभाव होगा ।

इसतरह व्यवहारके व्याख्यानकी मुख्यतासे तीन गाथायें पूर्ण हुओ ।। १०७ ।।

अब वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी ज्ञानका ही कर्ता है और परभावका कर्ता नहीं है, ऐसा कहते हैं—

गाथार्थ— [**जे**] जो [**णाणआवरणा**] ज्ञानावरणादिक [**पुग्गलदव्वाणं**] पुद्गलद्रव्योंके [**परिणामा**] परिणाम है [**ताणि**] उनको [**आदा**] आत्मा [**ण करेदि**] नहीं करता है ऐसा [**जो**] जो [**जाणदि**] जानता है [**सो**] वह [**णाणी**] ज्ञानी [**हवदि**] है।

टीकार्थ— जो कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्योंका परिणमन ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्मरूप

पर्याया ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मरूपा भवंति **ण करेदि ताणि आदा** तान् पर्यायान् व्याप्यव्यापकभावेन मृत्तिकाकलशमिवात्मा न करोति गोरसाध्यक्षवत् **जो जाणदि सो हवदि णाणी** इति यो जानाति मिथ्यात्वविषयकषायपरित्यागं कृत्वा निर्विकल्पसमाधौ स्थितः सन् स ज्ञानी भवति। न च परिज्ञानमात्रेण। इदमत्र तात्पर्यं। वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी जीवः शुद्धनयेन शुद्धोपादानरूपेण शुद्धज्ञानस्यैव कर्ता। किंवदिति चेत्, पीतत्वादिगुणानां सुवर्णवत् उष्णादिगुणानामग्निवत् अनंतज्ञानादिगुणानां सिद्धपरमेष्ठिवदिति। न च मिथ्यात्वरागादिरूपस्याज्ञानभावस्य कर्तेति शुद्धोपादानरूपेण शुद्धज्ञानादिभावानामशुद्धोपादानरूपेण मिथ्यात्वरागादिभावानां च तद्रूपेण परिणमन्नेव कर्तृत्वं ज्ञातव्यं। भोक्तृत्वं च। न च हस्तव्यापारवदीहापूर्वकं घटकुंभकारवदिति। एवमेव च ज्ञानावरणपदपरिवर्तनेन दर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रांतरायसंज्ञैः सप्तभिः कर्मभेदैः सह

पर्यायें होती हैं। जैसे कलशको मृत्तिका व्याप्यव्यापकभावसे कर्ता है उसी तरह उन ज्ञानावरणादि पर्यायोंका व्याप्यव्यापकभावसे कर्ता नहीं है। जैसे ग्वाला गोरसको भिन्नत्वसे-ज्ञाता द्रष्टा दृष्टिसे देखता है, वैसे आत्मा ज्ञानावरणादि पर्यायोंको भिन्नत्वसे—साक्षीभूत (ज्ञाता द्रष्टा) दृष्टिसे देखता है।

आगमभाषासे	अध्यात्मभाषासे
इसप्रकारसे जो जानता है, वह मिथ्यात्वविषयकषायका परित्याग करके ज्ञानी होता है।	इसप्रकार जो जानता है, वह निर्विकल्प समाधिमें (निजशुद्धस्वानुभूतिमें अथवा स्वभावमें) स्थित होकर ज्ञानी होता है।

परोक्ष जानने मात्रसे ज्ञानी नहीं होता है तो वस्तुस्वरूप जानकर अपने स्वभावका शुद्धस्वानुभव लेनेसे वह ज्ञानी होता है।

इसका तात्पर्य यह है कि, (अभेदोपचाररूप) शुद्धनयसे शुद्धउपादानसे वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी (स्वानुभूतिवाला) जीव शुद्ध ज्ञान पर्याय का कर्ता है। जैसे १) पीतत्वादिपर्यायोंका सुवर्ण कर्त्ता, २) उष्णादिपर्यायोंका अग्नि कर्त्ता है ३) अनंतज्ञानादिपर्यायोंका सिद्ध परमेष्ठी कर्त्ता है। (क्योंकि व्याप्यव्यापक संबंध है)। और शुद्धउपादानसे शुद्धज्ञानादिपर्यायोंका कर्तृत्व और भोक्तृत्व है ऐसा जानना चाहिए। लेकिन शुद्ध उपादानसे मिथ्यात्वरागादिरूप अज्ञान भावका कर्तृत्व और भोक्तृत्व नहीं है। और अशुद्धउपादानसे मिथ्यात्वरागादिभावोंका अशुद्धभावरूप परिणमन करके कर्ता, भोक्ता है।

और घटकुंभकार की तरह याने घटमें कुंभकारका व्याप्यव्यापक भावका अभाव है, उसी तरह आत्मा इच्छापूर्वक हस्तव्यापारादिक का कर्ता, भोक्ता नहीं है क्योंकि हस्तव्यापारादिकमें आत्माका व्याप्यव्यापक संबंध नहीं है।

इसप्रकार ज्ञानावरणपदको दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय

मोहरागद्वेषक्रोधमानमायालोभनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणिषोडश व्याख्येयानि। अनेन प्रकारेण शुद्धात्मानुभूतिविलक्षणा असंख्येयलोकमात्रप्रमिता अन्येपि विभावपरिणामा ज्ञातव्याः ॥ १०८ ॥

अथाज्ञानी चापि रागादिस्वरूपस्याज्ञानभावस्यैव कर्ता न च ज्ञानावरणादि परद्रव्यस्येति निरूपयति–

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता।
तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स दु वेदगो अप्पा ॥ १०९ ॥

॥ आ. ख्या. १०२ ॥

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता सातासातोदयावस्थाभ्यां तीव्रमंदस्वादाभ्यां सुखदुःखरूपाभ्यां वा चिदानंदैकस्वभावेनैकस्याप्यात्मनो द्विधाभेदं कुर्वाणः सन् यं भावं शुभमशुभं वा करोत्यात्मनः स्वतंत्ररूपेण व्यापकत्वात्स तस्य भावस्य खलु स्फुटं कर्ता भवति **तं तस्स होदि कम्मं** तदेव तस्य शुभाशुभरूपं भावकर्म भवति। तेनात्मना क्रियमाणत्वात् **सो तस्स दु वेदगो अप्पा** स आत्मा तस्य तु शुभाशुभरूपस्य भावकर्मणो वेदको भोक्ता भवति स्वतंत्ररूपेण भोक्तृत्वात्, न च द्रव्यकर्मणः। किं च विशेषः। अज्ञानी जीवोऽशुद्धनिश्चयनयेनाशुद्धोपादानरूपेण

इन सात कर्मपदोंसे और मोह, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, नोकर्म, मन, वचन काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन और स्पर्शन इन सोलह पदोंसे और शुद्धात्मानुभूति से विलक्षण असंख्यातलोकप्रमाण विभाव भावोंके पदोंको परिवर्तन करके जानना चाहिये ॥ १०८॥

अब अज्ञानी रागादिरूप अज्ञान भाव का ही कर्ता है, तो भी ज्ञानावरणादि परद्रव्यका कर्ता नहीं है, ऐसा निरूपण करते हैं–

गाथार्थ– [**आदा**] आत्मा [**जं**] जिस [**सुहमसुहं**] शुभाशुभ [**भावं**] भावको [**करेदि**] करता है [**स**] वह [**तस्स**] उस भावका [**कत्ता**] कर्ता [**खलु**] निश्चयसे होता है [**तं**] वह भाव [**तस्स**] उसका [**कम्मं**] कर्म [**होदि**] होता है [**सो**] वह [**तस्स**] उसका [**वेदगो**] भोक्ता है [**दु**] लेकिन [**अप्पा**] आत्मा [**वेदगो**] वेदक याने ज्ञायक है।

टीकार्थ– शुद्धनिश्चयनयसे चिदानंद-एक-स्वभावरूप आत्मा एक है तो भी अशुद्धनिश्चयनयसे सातासाताके उदय अवस्थामें तीव्रमंदस्वादरूपसे अथवा सुखदुःखरूपसे दो भेद करनेवाला होकर आत्मा जिस शुभ अथवा अशुभ भावको करता है, वहाँ आत्माके स्वतंत्ररूपसे व्यापकत्व होनेसे उस भावका अशुद्धनिश्चयनयसे कर्ता होता है। और वह भाव ही उसका शुभाशुभरूप भावकर्म है। वह भावकर्म अशुद्धउपादानवाले आत्मासे किया हुआ होनेसे वह अशुद्धउपादानवाला आत्मा उस शुभाशुभ भावकर्मका भोक्ता है क्योंकि स्वतंत्ररूपसे भोक्तृत्व (भोक्तापन) है लेकिन वह अशुद्धउपादानवाला आत्मा भी द्रव्यकर्मका कर्ता, भोक्ता नहीं है।

मिथ्यात्वरागादिभावनामेव कर्ता न च द्रव्यकर्मणः। स चाशुद्धनिश्चयः यद्यपि द्रव्यकर्मकर्तृत्वरूपा-सद्भूतव्यवहारापेक्षया निश्चयसंज्ञां लभते तथापि शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एव। हे भगवन्! रागादीनामशुद्धोपादानरूपेण कर्तृत्वं भणितं तदुपादानं शुद्धाशुद्धभेदेन कथं द्विधा भवतीति। तत्कथ्यते। औपाधिकमुपादानमशुद्धं, तप्तायःपिंडवत्, निरूपाधिरूपमुपादानं शुद्धं पीतत्वादिगुणानां सुवर्णवत्, अनंतज्ञानादिगुणानां सिद्धजीववत्, उष्णत्वादिगुणानामग्निवत्। इदं व्याख्यानमुपादान-कारणव्याख्यानकाले शुद्धाशुद्धरूपेण सर्वत्र स्मरणीयमिति भावार्थः ॥ १०९ ॥

अथ न च परभावः केनाप्युपादानरूपेण कर्तुं शक्यते

जो जह्मि गुणे दव्वे सो अण्णह्मि दु ण संकमदि दव्वे
सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं ॥ ११० ॥

॥ आ. ख्या १०३ ॥

तात्पर्य यह हैं कि, अज्ञानी जीव अशुद्ध उपादानरूपसे (अभेदोपचाररूप) अशुद्धनिश्चय-नयसे मिथ्यात्वरागादि भावोंका ही कर्ता है, द्रव्यकर्मका कर्ता नहीं है। आत्माको द्रव्यकर्मका कर्ता असद्भूतव्यवहारनयकी अपेक्षासे कहा गया है, इसकारण (आगमभाषासे) इस अशुद्धनिश्चयको निश्चय संज्ञा दी गई है। तो भी (अध्यात्मभाषामें) शुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षासे अशुद्धनिश्च-यनयको भी व्यवहार ही कहते हैं।

शंका– हे भगवन्! आपने अशुद्ध उपादानरूपसे आत्माको रागादिभावोंका कर्ता कहा है, तो उस आत्माके शुद्धउपादान और अशुद्ध उपादान ऐसे दो भेद कैसे हुये?

समाधान– अग्निके द्वारा गर्म हुये लोहेके पिण्डके समान औपाधिक भाववाला आत्मा अशुद्धउपादान है और आत्माके चिदानंद स्वभावकी दृष्टिसे आत्मा शुद्ध उपादान है जैसे १) सुवर्ण अपने पीतत्वादि पर्यायोंका, २) सिद्धजीव अपने अनंतज्ञानादि पर्यायोंका, ३) अग्नि अपने उष्णत्वादि पर्यायोंका उपादान है।

इसप्रकार शुद्ध या अशुद्ध उपादानके स्वरूपका यह व्याख्यान उपादान कारण के व्याख्यानके समय सभी स्थान पर स्मरण रखना चाहिये ॥ १०९ ॥

अब, किसी भी प्रकारसे उपादानरूपसे परभाव करनेके लिये शक्य नहीं है (परभावका कर्ता नहीं होता है) यह कहते हैं–

गाथार्थ– [**जो**] जो द्रव्य [**जह्मि दव्वे**] जिस द्रव्यमें (अपने द्रव्यस्वभावमें) [**गुणे**] और गुणमें वर्तता है [**सो**] वह [**अण्णह्मि दु**] अन्य [**दव्वे**] द्रव्यमें तथा गुणमें [**ण संकमदि**] संक्रमण रूप नहीं होता है– पलटकर अन्यमें नहीं मिल जाता है [**सो**] वह [**अण्णमसंकंतो**] अन्यमें नहीं मिलता हुआ [**तं दव्वं**] उस अन्य द्रव्यको [**कह**] कैसे [**परिणामए**] परिणमा सकता है? कभी नहीं परिणमा सकता है।

जो जह्मि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि दु ण संकमदि दव्वे यो गुणश्चेतनस्तथैवाचेतनो वा यस्मिश्चेतनाचेतने द्रव्ये अनादिसंबंधेन स्वभावत एव स्वत एव प्रवृत्तः सोऽन्यद्रव्ये तु न संक्रमत्येव सोपि **सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं** स चेतनोऽचेतनो वा गुणः कर्ता अन्यद्भिन्नं द्रव्यांतरमसंक्रांतः सन् कथं द्रव्यांतरं परिणामयेत्तत्कथं कुर्यादुपादानरूपेण न कथमपि ॥ ११० ॥

ततः स्थितं आत्मा पुद्गलकर्मणामकर्तेति–

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पुग्गलमयह्मि कम्मह्मि ।
तं उभयमकुव्वंतो तह्मि कहं तस्स सो कत्ता ॥ १११ ॥

॥ आ. ख्या. १०४ ॥

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पुग्गलमयह्मि कम्मह्मि यथा कुंभकारः कर्ता मृण्मयकलशकर्मविषये मृत्तिकाद्रव्यस्य सम्बन्धि जडस्वरूपं वर्णादिमृत्तिका गुणस्य वा संबंधिस्वरूपं मृत्तिकाकलशमिव तन्मयत्वेन न करोति तथात्मापि पुद्गलमयद्रव्यकर्मविषये पुद्गलद्रव्यकर्मसंबंधि जडस्वरूपं वर्णादिपुद्गलद्रव्यगुणसंबंधिस्वरूपं वा तन्मयत्वेन न करोति **तं उभयमकुव्वंतो तह्मि कहं तस्स सो कत्ता** तदुभयमपि पुद्गलद्रव्यकर्मस्वरूपं वर्णादि तद्गुणं वा तन्मयत्वेनाकुर्वाणः सन् तत्र पुद्गल-

---

टीकार्थ– जो चेतन अथवा अचेतन गुण जिस चेतन द्रव्यमें अथवा जिस अचेतन द्रव्यमें अनादिसंबंधसे स्वभावतः ही, स्वयं ही प्रवृत्त है वह गुण अन्य द्रव्यमें संक्रमण नहीं करता है ⊗[याने कोई भी एकद्रव्य दुसरे गुण या द्रव्यरूप संक्रमण नहीं करता है] वह चेतन अथवा अचेतन गुण कर्ता बनकर अन्य स्वभाववाला होकर दुसरे भिन्न द्रव्यमें संक्रमण नहीं करनेसे उपादानरूपसे अन्यद्रव्य को कैसे परिणमा सकता है ? याने एक द्रव्य (उपादान बनकर) दुसरे द्रव्यमें किसी भी प्रकारसे परिणमन नहीं कर सकता है ॥ ११० ॥

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, आत्मा पुद्गलकर्मोंका अकर्ता है–

गाथार्थ– [**आदा**] आत्मा [**पुग्गलमयह्मि कम्मह्मि**] पुद्गलमयकर्ममें [**दव्वगुणस्स**] द्रव्यको तथा गुणको [**ण कुणदि**] नहीं करता [**तह्मि**] उसमें [**तं उभयं**] उन दोनोंको [**अकुव्वंतो**] नहीं करता हुआ [**तस्स**] उसका [**सो**] वह [**कत्ता**] कर्ता [**कहं**] कैसे हो सकता है ?

टीकार्थ– जैसे मिट्टीका कलश करते समय मिट्टीद्रव्य संबंधी जड स्वरूप अथवा वर्णादि गुणोंसे तन्मय होकर करती है वैसे कुम्हार मिट्टी का द्रव्य जडस्वरूपवर्णादि गुणोंसे अथवा मिट्टीके कलशसे तन्मय होकर कलश नहीं करता है । उसी तरह आत्मा भी पुद्गलमयद्रव्यकर्म बनते समयमें पुद्गल द्रव्य अथवा जडस्वरूपवर्णादि गुणोंसे अथवा पुद्गलद्रव्यकर्मसे तन्मयरूपसे नहीं करता है ।

और जब आत्मा पुद्गलद्रव्यकर्मसंबंधी स्वरूपको और उसके वर्णादिगुणोंको तन्मय

कर्मविषये स जीवः कथं कर्ता भवति, न कथमपि। चेतनाचेतनेन परस्वरूपेण न परिणमतीत्यर्थः। अनेन किमुक्तं भवति। यथा स्फटिको निर्मलोपि जपापुष्पादिपरोपाधिना परिणमति तथा कोपि सदाशिवनामा सदा मुक्तोप्यमूर्त्तोपि परोपाधिना परिणम्य जगत् करोति तन्निरस्तं। कस्मादिति चेत्, मूर्तस्फटिकस्य मूर्त्तेन सहोपाधिसंबंधो घटते तस्य पुनः सदा मुक्तस्यामूर्तस्य कथं मूर्त्तोपाधिः? न कथमपि सिद्धजीववत्। अनादिबद्धजीवस्य पुनः शक्तिरूपेण शुद्धनिश्चयेनामूर्तस्यापि व्यक्तिरूपेण व्यवहारेण मूर्त्तस्य मूर्त्तोपाधिदृष्टांतो घटत इति भावार्थः। एवं निश्चयनयमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं गतं॥ १११॥

अतः कारणादात्मा द्रव्यकर्म करोतीति यदभिधीयते स उपचारः–

जीवह्मि हेदुभूदे बंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं।
जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमत्तेण॥ ११२॥

॥ आ. ख्या. १०५॥

होकर नहीं करता है तब उस पुद्‌गलद्रव्यकर्मके विषयमें जीव कर्ता कैसे हो सकता है? किसी भी प्रकारसे उन पुद्‌गल द्रव्यकर्मका कर्ता नहीं हो सकता है। क्योंकि जीव परस्वरूप चेतन-अचेतनरूपसे परिणमन नहीं करता है। यह अर्थ है।

शंका– इसका क्या आशय है?

समाधान– जैसे स्फटिक निर्मल है तो भी जपपुष्पादिके सांनिध्यमें पर उपाधिसे परिणमन करता है, वैसे कोई सदाशिव नामका पुरुष, जो सदा मुक्त भी है, अमूर्त भी है तो भी वह परोपाधीसे परिणमन करके जगत् को निर्माण करता है, इस मान्यता का निराकरण हो जाता है। क्योंकि मूर्त स्फटिकका मूर्त जपापुष्पादिके साथ संबंध घटता है और उस मुक्त रहनेवाले अमूर्तद्रव्यके साथ मूर्तद्रव्यकी उपाधिका कैसे संबंध हो सकता है? याने मूर्तद्रव्यका अमूर्तद्रव्यसे किसी भी प्रकारसे संबंध नहीं हो सकता है, ~~याने मूर्तद्रव्यका अमूर्तद्रव्यसे किसी भी प्रकारसे संबंध नहीं हो सकता है~~, जैसे सिद्धजीव कभी भी संसारमे नहीं आते है, वे सिद्धजीव कभी भी मोहरागद्वेष नहीं करते हैं। और अनादिसे संसारमें जो जीव बद्ध है वे शुद्धनिश्चयनयसे शक्तिरूपसे अमूर्त्त है तो भी व्यवहारनयसे व्यक्तिरूपसे मूर्त है, इस कारण मूर्त्तका मूर्त्त उपाधिसे संबंध घटता है, यह दृष्टांतसे दिखाया है। यह भावार्थ है।

इसतरह निश्चयनयकी मुख्यतासे चार गाथायें समाप्त हुवी॥ १११॥

इस कारणसे आत्मा द्रव्यकर्मको करता है, यह जो कहा जाता है वह उपचार है–

गाथार्थ– [**जीवह्मि हेदुभूदे**] जीव निमित्तमात्र होनेपर [**बंधस्स**] कर्मबंधके [**परिणामं**] परिणामको [**पस्सिदूण**] देखकर [**जीवेण**] जीवने [**कम्मं**] कर्म [**कदं**] किये हैं [**दु**] लेकिन यह [**उवयारमत्तेण**] उपचारमात्रसे [**भण्णदि**] कहते हैं।

जीवह्मि हेदुभूदे बंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं परमोपेक्षासंयमभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणस्य भेदज्ञानस्याभावे मिथ्यात्वरागादिपरिणतिनिमित्तहेतुभूते जीवे सति मेघाडंबरचंद्रार्कपरिवेषादियोग्यकाले निमित्तभूते सति मेघेन्द्राचापादिपरिणतपुद्गलानामिव कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलानां ज्ञानावरणादिरूपेण द्रव्यकर्मबन्धस्य परिणामं पर्यायं दृष्ट्वा **जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमत्तेण** जीवेन कृतं कर्मेति भण्यते उपचारमात्रेणेति ।। ११२ ।।

अथ तदेवोपचारकर्मकर्तृत्वं दृष्टांतदार्ष्टांताभ्यां दृढयति–

जोधेहिं कदे जुद्धे राएण कदं ति जंपदे लोगो ।
तह ववहारेण कदं णाणावरणादि जीवेण ।। ११३ ।।

।। आ. ख्या. १०६ ।।

जोधेहिं कदे जुद्धे राएण कदं ति जंपदे लोगो यथा योधैः युद्धे कृते सति राज्ञा युद्धं कृतमिति जल्पति लोकः **तह ववहारेण कदं णाणावरणादि जीवेण** तथा व्यवहारनयेन कृतं भण्यते ज्ञानावरणादिकर्म जीवेनेति । ततः स्थितमेतत् यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावत्वान्नोत्पादयति न करोति न बध्नाति न परिणमयति न गृह्णाति च तथापि ।। ११३ ।।

टीकार्थ– निमित्तरूप बादलोंकी छाया चांद सूरज का परिवेष-मंडल आदिके योग्य काल होनेपर पानीका बरसना और इन्द्रधनुष्य आदिमें परिणत पुद्गलोंका परिणाम देखा जाता है ।

वैसे परमउपेक्षासंयमस्वरूप पारिणामिकभावसे परिणत अभेदरत्नत्रयलक्षणवाले भेदज्ञानके अभावमें मिथ्यात्वरागादिरूप परिणत जीवके निमित्तमात्र सद्भावमें कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलोंके ज्ञानावरणादिरूपसे द्रव्यकर्मबन्धकी परिणति-पर्यायको देखकर जीवसे कर्म किये गये है, ऐसा उपचारमात्रसे कहते हैं ।। ११२ ।।

अब उस उपचारकर्मकर्तृत्वको ही दृष्टांत और दार्ष्टांतसे दृढ करते हैं–

गाथार्थ– व्यवहारसे [**जोधेहिं**] जैसे योद्धाओंके द्वारा [**जुद्धे कदे**] युद्ध किये जानेपर [**राएण कदं**] राजाने युद्ध किया [**ति**] इस प्रकार [**लोगो**] लोक [**जंपदे**] कहते हैं, [**तह**] उसी प्रकार [**णाणावरणादि**] ज्ञानावरणादिकर्म [**जीवेण**] जीवने [**कदं**] किये हैं, ऐसा [**ववहारेण**] व्यवहारसे कहा जाता है ।

टीकार्थ– व्यवहारसे जैसे योद्धाओंके द्वारा युद्ध किया जानेपर "राजाने युद्ध किया है" ऐसा लोग कहते हैं । वैसे व्यवहारनयसे ज्ञानावरणादि कर्म जीवने किये हैं, ऐसा कहते हैं ।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, यद्यपि शुद्धनिश्चयनयसे शुद्ध-बुद्ध-एक स्वभाव होनेसे जीव न किसी को उत्पन करता है, न बनाता है, न बांधता है, न परिणमाता है और न ग्रहण करता है ।। ११३ ।।

उप्पादेदि करेदि य बंधदि परिणामएदि गिह्णदि य।
आदा पुग्गलदव्वं ववहारणयस्स वत्तव्वं ॥ ११४ ॥

॥ आ. ख्या. १०७ ॥

अनादिबंधपर्यायवशेन वीतरागस्वसंवेदनलक्षणभेदज्ञानाभावात् रागादिपरिणामस्निग्धः सन्नात्मा कर्मवर्गणायोग्यपुद्‌गलद्रव्यं कुंभकारो घटमिव द्रव्यकर्मरूपेणोत्पादयति प्रकृतिबंधं करोति बध्नाति परिणामयति गृह्णातीति व्यवहारनयस्याभिप्रायेण वक्तव्यं व्याख्येयमिति। अथवा उत्पादयति प्रकृतिबंधं करोति स्थितिबंध बध्नात्यनुभागबंधं परिणामयति प्रदेशबंधं तप्तायःपिंडो जलवत्सर्वात्मप्रदेशैर्गृह्णाति चेत्याभिप्रायः ॥ ११४ ॥

अथैतदेव व्याख्यानं दृष्टांतदार्ष्टांताभ्यां समर्थयति–

जह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगो त्ति आलविदो।
तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो ॥ ११५ ॥

॥ आ. ख्या. १०८ ॥

गाथार्थ– तथापि [**आदा**] आत्मा [**पुग्गलदव्वं**] पुद्‌गलद्रव्यको [**उप्पादेदि**] उत्पन्न करता है [**य**] और [**करेदि**] करता है [**बंधदि**] बांधता है, [**परिणामएदि**] परिणमन कराता है [**य**] और [**गिह्णदि**] ग्रहण करता है यह [**ववहारणयस्स**] व्यवहारनयका [**वत्तव्वं**] कथन है।

टीकार्थ– जैसे कुम्हार घडे को उत्पन्न करता है, वैसे वीतराग स्वसंवेदनलक्षणवाले भेदज्ञानके अभावसे, अनादिबंधपर्यायके वशसे रागादिपरिणामसे स्निग्ध होकर आत्मा कर्मवर्गणा-योग्य पुद्‌गलद्रव्यको द्रव्यकर्म के रूपमें उत्पन्न करता है। प्रकृतिबंध को करता है, बाँधता है, परिणमन करता है, ग्रहण करता है, ऐसा व्यवहारनयके अभिप्रायसे कथन करना योग्य है। अथवा प्रकृतिबंधको पैदा करता है, स्थितिबंधको करता है, अनुभागबंध को बांधता है, प्रदेश बंधको परिणमन करता है। जैसे गर्म लोहेका गोला सब प्रदेशोंसे जल ग्रहण करता है, वैसे विकारी (रागी) आत्मा अपने सब आत्मप्रदेशोंसे प्रदेशबंध को ग्रहण करता है, ऐसा अभिप्राय है ॥ ११४ ॥

इस ही कथनका दृष्टांत और दार्ष्टांत के द्वारा समर्थन करते हैं–

गाथार्थ– [**जह**] जैसे [**राया**] राजा (प्रजामें) [**दोसगुणुप्पादगो**] दोष और गुणोंका उत्पन्न करनेवाला है [**त्ति**] ऐसा [**ववहारा**] व्यवहारसे [**आलविदो**] कहा है [**तह**] उसी प्रकार [**जीवो**] जीव [**ववहारा**] व्यवहारसे [**दव्वगुणुप्पादगो**] पुद्‌गलद्रव्यमें द्रव्यगुणका उत्पादक [**भणिदो**] कहा गया है।

जहराया ववहारा दोसगुणुप्पादगो त्ति आलविदो यथा राजा लोके व्यवहारेण सदोषिनिर्दोषिजनानां दोषगुणोत्पादको भणितः **तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो** तथा जीवोऽपि व्यवहारेण पुद्‌गल द्रव्यस्य पुण्यपापगुणयोरुत्पादको भणितः। इति व्यवहारमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं। एवं द्विक्रियावादिनिराकरणोपसंहारव्याख्यानमुख्यत्वेनैकादशगाथा गताः। ननु निश्चयेन द्रव्यकर्म न करोत्यात्मा बहुधा व्याख्यातं तेनैव द्विक्रियावादिनिराकरणं सिद्धं पुनरपि किमर्थं पिष्टपेषणमिति। नैवं, हेतुहेतुमद्‌भावव्याख्यानज्ञापनार्थमिति नास्ति दोषः। तथाहि-यत एव हेतोर्निश्चयेन द्रव्यकर्म न करोति तत एव हेतोर्द्विक्रियावादिनिराकरणं सिद्धयतीति हेतुमद्भावव्याख्यानं ज्ञातव्यं। इति पुण्यपापादिसप्तपदार्थपीठिकारूपे महाधिकारमध्ये पूर्वोक्तप्रकारेण '**जदि सो पुग्गलदव्वं करेज्ज**' इत्यादिगाथाद्वयेन संक्षेपव्याख्यानं। ततः परं द्वादशगाथाभिस्तस्यैव विशेषव्याख्यानं ततोप्येकादशगाथाभिस्तस्यैवोपसंहाररूपेण पुनरपि विशेषविवरणमिति समुदायेन पंचविंशतिगाथाभिः द्विक्रियावादिनिषेधकनामा तृतीयोत्तराधिकारः समाप्तः॥ ११५॥

अथानंतरं '**सामण्णपच्चया**' इत्यादि गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण सप्तगाथापर्यंतं मूलप्रत्ययचतुष्टयस्य कर्मकर्तृत्वमुख्यत्वेन व्याख्यानं करोति। तत्र सप्तकमध्ये जैनमते शुद्धनिश्चयेन शुद्धोपादानरूपेण जीवः कर्म न करोति प्रत्यया एव कुर्वंतीति कथनरूपेण गाथाचतुष्टयं।

टीकार्थ– जैसे व्यवहारसे लोकमें होनेवाले सदोष और निर्दोष लोगोंके दोष और गुणोंका उत्पादक राजा को कहा जाता है, वैसे व्यवहारसे जीव भी पुद्‌गलद्रव्यके पुण्यपापगुणोंका उत्पादक है ऐसा कहते हैं। इसतरह व्यवहारकी मुख्यतासे चार गाथायें पूर्ण हुअी। इस प्रकार द्विक्रियावादीके निराकरणके उपसंहारकी मुख्यतासे कथन करनेवाली ११ गाथायें पूर्ण हुअी।

शंका– निश्चयनयसे आत्मा द्रव्यकर्मको नहीं करता है, ऐसा कथन बहुत बार किया है, उससे ही द्विक्रियावादीका निराकरण सिद्ध होता है, फिरभी यह पिष्टपेषण क्यों किया है?

समाधान– ऐसा नहीं है। हेतु और हेतुमद् भावको बताने के लिये ऐसा बार बार कहना दोष नहीं है। निश्चयनयसे जिस हेतुसे (कारणसे) ही आत्मा द्रव्यकर्म नहीं करता है, इसलिये उस ही हेतुसे (कारणसे) द्विक्रियावादीका निराकरण सिद्ध हो जाता है, इसलिये वह हेतुमद् भाव है। यह हेतु और हेतुमद् भावका कथन जानना चाहिये।

इस प्रकार पुण्यपापादि सात पदार्थोंकी पीठिका रूप महाधिकारमें पूर्वोक्त प्रकारसे '**जदि सो पुग्गलदव्वं करेज्ज**' इत्यादि दो गाथाओंद्वारा संक्षेप व्याख्यान किया है। इसके बाद १२ गाथाओंद्वारा उसका ही विशेष व्याख्यान किया है, उसके बाद ११ गाथाओंद्वारा उपसंहाररूपसे उसका ही विशेष कथन किया है। इसप्रकार २५ गाथाओंद्वारा द्विक्रियावादीका निषेधरूप तीसरा अवांतर अधिकार समाप्त हुआ॥ ११५॥

इसके अनंतर 'सामण्णपच्चया' इत्यादि गाथासे शुरू करके पाठक्रमसे ७ गाथापर्यंत चार मूलप्रत्ययके कर्मकर्तृत्वकी मुख्यतासे व्याख्यान करते हैं। इन सात गाथाओं में से ४ गाथाओंमें जैनमतमें शुद्धनिश्चयनयसे शुद्धउपादानसे जीव कर्म नहीं करता है, किन्तु ये प्रत्यय ही

अथवा शुद्धनयविवक्षां ये नेच्छंत्येकांतेन जीवो न करोतीति वदंति सांख्यमतानुसारिणः तान्प्रति दूषणं ददाति। कथमिति चेत्। यदि ते प्रत्यया एव कर्म कुर्वंति तर्हि जीवो न हि वेदकस्तेषां कर्मणामित्येकं दूषणं। अथवा तेषां मते जीव एकांतेन कर्म न करोतीति द्वितीयं दूषणं। तदनंतरं शुद्धनिश्चयेन शुद्धोपादानरूपेण न च जीवप्रत्यययोरेकत्वं जैनमताभिप्रायेणेति गाथात्रयं। अथवा पूर्वोक्तप्रकारेण ये नयविभागं नेच्छंति तान्प्रति पुनरपि दूषणं। कथमिति चेत्। जीवप्रत्यययोरेकांतेनैकत्वे सति जीवाभाव इत्येकं दूषणं। एकांतेन भिन्नत्वे सति संसाराभाव इति द्वितीयं दूषणमिति चतुर्थांतराधिकारे समुदायपातनिका।

तद्यथा निश्चयेन मिथ्यात्वादिपौद्गलिकप्रत्यया एव कर्म कुर्वंतीति प्रतिपादयति–

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो।
मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य वोद्धव्वा॥ ११६॥

॥ आ. ख्या. १०९॥

कर्म करते हैं, ऐसा कथन है। अथवा जो लोग शुद्धनयकी विविक्षाको मानते नहीं है, एकांतसे जीव करता नही है, ऐसा कहते हैं उन सांख्यमतका अनुसरण करनेवालोंको दूषण देते हैं।

शंका– कैसे?

समाधान– यदि वे प्रत्यय ही कर्मके कर्ता है तो जीव उन कर्मोका वेदक (भोक्ता) भी नहीं होना चाहिये, यह एक दूषण आता है। अथवा उनके मतमें एकांतसे जीव कर्म को नहीं करता है ऐसा दूसरा दूषण आता है (क्योंकि अशुद्धनयसे जीव भावकर्मका कर्ता है।)

तदनंतर शुद्धनिश्चयनयसे, शुद्ध उपादानरूपसे जीव और प्रत्ययोंका एकत्व नहीं है, ऐसा जैनमतका अभिप्राय है, यह कथन करनेवाली तीन गाथायें हैं। अथवा जो लोग नयविभाग नहीं मानते हैं, उनके प्रति फिरसे दूषण देते हैं।

शंका– कैसे?

समाधान– यदि जीव और मिथ्यात्वादिप्रत्ययोंका एकांतसे एकत्व माना जाय तो जीवका अभाव होगा और जीवका अभाव मानना यह दोष है। यदि एकांतसे जीव और मिथ्यात्वादि प्रत्यय भिन्न माना जाय तो संसारका अभाव मानना चाहिये और संसारका अभाव मानना, यह दूसरा दोष है।

यह चौथे अंतर अधिकारकी समुदाय पातनिका हुओ।

अब शुद्धनिश्चयनयसे मिथ्यात्वादि पौद्गलिक प्रत्यय ही कर्म को करते हैं, इसका कथन करते हैं–

गाथार्थ– [**खलु**] निश्चयसे [**सामण्णपच्चया**] प्रत्यय अर्थात् कर्मबंधके कारण जो आस्रव वे सामान्यसे [**चउरो**] चार [**बंधकत्तारो**] बंध के कर्ता [**भणंति**] कहे हैं, वे

तेसिं पुणोवि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो।
मिच्छादिट्ठीआदी जाव सजोगिस्स चरमंतं ॥ ११७ ॥

॥ आ. ख्या. ११० ॥

एदे अचेदणा खलु पुग्गलकम्मुदयसंभवा जह्मा।
ते जदि करंति कम्मं ण वि तेसिं वेदगो आदा ॥ ११८ ॥

॥ आ. ख्या. १११ ॥

गुणसण्णिदा दु एदे कम्मं कुव्वंति पच्चया जह्मा।
तह्मा जीवोऽकत्ता गुणा य कुव्वंति कम्माणि ॥ ११९ ॥

॥ आ. ख्या. ११२ ॥

सामण्णपच्चया खलु चउरो भणंति बंधकत्तारो निश्चयनयेनाभेदविवक्षायां पुद्गल एक एव कर्ता भेदविवक्षायां तु सामान्यप्रत्यया मूलप्रत्यया खलु स्फुटं चत्वारो बंधस्य कर्तारो भण्यन्ते सर्वज्ञैः उत्तरप्रत्ययाश्च पुनर्बहवो भवन्ति। सामान्यं कोर्थः। विवक्षाया अभावः सामान्यमिति सामान्यशब्दस्यार्थः सर्वत्र सामान्यव्याख्यानकाले ज्ञातव्य इति **मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा**

[**मिच्छत्तं**] मिथ्यात्व [**अविरमणं**] अविरमण [**य**] तथा [**कसायजोगा**] कषाय और योग [**बोद्धव्वा**] जानना चाहिये। [**पुणो वि य**] और फिर [**तेसिं**] उनका [**इमो**] यह [**तेरसवियप्पो**] तेरह प्रकारका [**भेदो तु**] भेद [**भणिदो**] कहा गया है [**मिच्छादिट्ठी-आदी**] मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर [**सजोगिस्स चरमंत जाण**] सयोगकेवली गुण-स्थान के अंत तक [**एदे**] यह (प्रत्यय अथवा गुणस्थान) [**खलु**] जो कि निश्चयसे [**अचेदणा**] अचेतन हैं [**जह्मा**] क्योंकि [**पुग्गलकम्मुदयसंभवा**] पुद्‌गलकर्मके उदयमें उत्पन्न होते हैं [**ते**] वे [**जदि**] यदि [**कम्मं**] कर्म को [**करंति**] करते हैं तो [**तेसिं**] उनका (कर्मोंका) [**वेदगो वि**] भोक्ता भी [**आदा**] आत्मा [**ण**] नहीं है। [**जह्मा**] क्योंकि [**एदे**] ये [**गुणसण्णिदा दु**] 'गुण' नामवाले [**पच्चया**] प्रत्यय [**कम्मं**] कर्म [**कुव्वंति**] करते हैं [**तह्मा**] इसलिये [**जीवो**] जीव तो [**अकत्ता**] कर्मोंका अकर्ता है [**य**] और [**गुणा**] 'गुण' ही [**कम्माणि**] कर्मोंको [**कुव्वंति**] करते हैं।

टीकार्थ– निश्चयनयसे अभेद विवक्षामें एक पुद्‌गल ही बंधका कर्ता है और भेदविवक्षामें चार सामान्य-मूलप्रत्यय वस्तुतः बंधके कर्ता है, ऐसा सर्वज्ञभगवानने कहा है और उत्तर प्रत्यय बहुत है।

शंका– सामान्यका क्या अर्थ है?

समाधान– विवक्षाका (विशेषका) अभाव होना, यह सामान्य शब्दका अर्थ है। जहाँ जहाँ सामान्य शब्द आयेगा वहाँ वहाँ उसका अर्थ 'विशेष विवक्षाका अभाव' ऐसा सर्वत्र जानना चाहिये।

य बोद्धव्वा ते च मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगा बोद्धव्याः। अथ **तेसिं पुणो वि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो** तेषां प्रत्ययानां गुणस्थानभेदेन पुनरिमो भणितो भेदस्त्रयोदशविकल्पः केन प्रकारेण **मिच्छादिट्ठी आदी जाव सजोगिस्स चरमंतं** मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादिसयोगिभट्टारकस्य चरमसमयं यावदिति। अथ **एदे अचेदणा खलु पुग्गलकम्मुदयसंभवा जह्मा** एते मिथ्यात्वादिभावप्रत्ययाः शुद्धनिश्चयेनाचेतनाः खलु स्फुटं। कस्मात् पुद्गलकर्मोदयसंभवा यस्मादिति। यथा स्त्रीपुरुषाभ्यां समुत्पन्नः पुत्रो विवक्षावशेन देवदत्तायाः पुत्रोऽयं केचन वदंति, देवदत्तस्य पुत्रोऽयमिति केचन वदंति दोषो नास्ति। तथा जीवपुद्गलसंयोगेनोत्पन्नाः मिथ्यात्वरागादिभावप्रत्यया अशुद्धनिश्चयेनाशुद्धोपादानरूपेण चेतना जीवसंबद्धाः। शुद्धनिश्चयेन शुद्धोपादानरूपेणाचेतनाः पौद्गलिकाः। परमार्थतः पुनरेकांतेन न जीवरूपाः न च पुद्गलरूपाः सुधाहरिद्रयोः संयोगपरिणामवत्। वस्तुतस्तु सूक्ष्मशुद्धनिश्चयनयेन न संत्येवाज्ञानोद्भवाः कल्पिता इति। एतावता किमुक्तं भवति। ये केचन वदंत्येकांतेन रागादयो जीवसंबंधिनः पुद्गलसंबंधिनो वा तदुभयमपि वचनं मिथ्या। कस्मादिति चेत्, पूर्वोक्तस्त्रीपुरुषदृष्टांतेन संयोगोद्भवत्वात्। अथ

वे चार सामान्य प्रत्यय मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग हैं, ऐसा जानना चाहिये।

उन प्रत्ययोंके गुणस्थान के भेदसे १३ भेद है। वे मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर सयोग केवली के चरम समय तक १३ है। वे मिथ्यात्वादिभावप्रत्यय शुद्धनिश्चयसे अचेतन ही है। क्योंकि वे पुद्गलकर्मोदयमें प्रगट होते है। जैसे स्त्री और पुरुषके सांनिध्यमें पुत्र उत्पन्न होता है, उसेही विवक्षाके वशसे यह पुत्र देवदत्ताका है, ऐसा कोअी कहते हैं और कोअी विवक्षाके वशसे यह पुत्र देवदत्तका है, ऐसा कहते हैं, उन दोनों कथनमें विवक्षासे दोष नहीं है। वैसे जीव और पुद्गलके संयोगमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यात्वरागादि भावप्रत्यय अशुद्धनिश्चयनयसे, अशुद्ध उपादानरूपसे चेतनमय है, जीव के साथ संवद्ध हैं। शुद्धनिश्चयनयसे, शुद्धउपादानरूपसे वे मिथ्यात्वरागादि भावप्रत्यय अचेतन हैं, पौद्गलिक हैं। फिर परमार्थरूप एकांतसे वे मिथ्यात्वरागादि भावप्रत्यय जीवरूप भी नहीं हैं और पुद्गलरूप भी नहीं हैं। किन्तु चूना और हल्दीके संयोगमें उत्पन्न हुअी कुंकुम के समान, वे मिथ्यात्वरागादि भावप्रत्यय जीव और पुद्गलके संयोगमें उत्पन्न होते हैं। लेकिन वस्तुतः सूक्ष्मशुद्धनिश्चयनयसे वे मिथ्यात्वरागादि भाव जीवके हैं ही नहीं क्योंकि अज्ञानमें प्रगट हुअे हैं, कल्पित हैं।

शंका– याने इससे क्या कहते हैं ?

समाधान– १) जो कोअी पुरुष एकांतसे कहते हैं कि, रागादिकभाव जीवके है, अथवा २) जो कोअी पुरुष एकांतसे कहते हैं कि, रागादिक भाव पुद्गलके है, तो वे दोनों वचन मिथ्या है।

शंका– वे दोनों वचन मिथ्या कैसे हैं ?

समाधान– पूर्वमें जो दृष्टान्त कहा हैं कि स्त्री और पुरुषके संयोगमें पुत्र उत्पन्न होता हैं वैसे जीव और पुद्गलके संयोगमें रागादिभाव उत्पन्न होते हैं।

मतं सूक्ष्मशुद्धनिश्चयनयेन कस्येति पृच्छामो वयं सूक्ष्मशुद्धनिश्चयेन तेषामस्तित्वमेव नास्ति पूर्वमेव भणितं तिष्ठति कथमुत्तरं प्रयच्छामः इति। **ते जदि करंति कम्मं** ते प्रत्यया यदि चेत् कुर्वंति कर्म तदा कुर्युरेव जीवस्य किमायातं शुद्धनिश्चयेन सम्मतमेव **'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'** इति वचनात्। अथ मतं। जीवो मिथ्यात्वोदयेन मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा मिथ्यात्वरागादिभावकर्म भुंक्ते यतस्ततः कर्तापि भवतीति। नैवं। **ण वि तेसिं वेदगो आदा** यतः शुद्धनिश्चयेन वेदकोपि न हि तेषां कर्मणां। यदा वेदको न भवति तदा कर्तापि कथं भविष्यति? न कथमपि इति शुद्धनिश्चयेन सम्मतमेव। अथवा ये पुनरेकांतेनाकर्तेति वदन्ति तान्प्रति दूषणं। कथमिति चेत्, यदैकांतेनाकर्ता भवति तदा यथा शुद्धनिश्चयेनाकर्ता तथा व्यवहारेणाप्यकर्ता प्राप्नोति। ततश्च सर्वथैवाकर्तृत्वे सति संसाराभाव इत्येकं दूषणं। तेषां मते वेदकोपि न भवतीति द्वितीयं च दूषणं।

शंका– वे रागादिकभाव सूक्ष्म शुद्धनिश्चयनयसे किसके है?

समाधान– हमने पूर्वमें कहा है कि, सूक्ष्मशुद्धनिश्चयनयसे उन मिथ्यात्वरागादिभावका अस्तित्व ही जीवके स्वभावमें नहीं हैं। और किसतरह हम उत्तर देवे (कहे)!

यदि ये मिथ्यात्वादि प्रत्यय ही कर्म करते हैं तो करते रहें (रहने दो) इसमें जीवका क्या हानि लाभ है? जीवको उसमें कुछ भी हानिलाभ नहीं है। क्योंकि शुद्धनिश्चयनयसे यह सम्मतही है कि, मिथ्यात्वरागादिभाव जीवके नहीं है, क्योंकि आगमका वचन है कि 'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया' याने शुद्धनयसे **(अभेदवृत्तिसे) निगोदसे लेकर सिद्धतक सभी जीव शुद्ध हैं।**

शंका– यदि कोओी मत ऐसा है कि मिथ्यात्वके उदयमें मिथ्यात्वी होकर मिथ्यात्व-रागादिभावकर्म को भोगता रहता है इसलिये उनका कर्ता भी है?

समाधान– आपका कहना ठीक नहीं है। क्योंकि शुद्धनिश्चयनयसे आत्मा इन कर्मोंका भोक्ता भी नहीं है और जब भोक्ता नहीं है तब कर्ता भी कैसे होगा? याने शुद्धनिश्चयनयसे (अभेदवृत्तिसे) वह रागादिभावकर्मोंका कर्ता-भोक्ता नही है, ऐसा सम्मत ही है।

अथवा जो एकांतसे जीवको रागादिभावोंका अकर्ता कहते हैं उन लोगोंके मतको दूषण देते हैं।

शंका– कैसे?

समाधान– यदि एकांतसे अकर्ता है, तब शुद्धनिश्चयनयसे जैसे अकर्ता है, वैसे व्यवहार-नयसे भी अकर्ता है, ऐसा अर्थ होता है। इसलिये सर्वथा अकर्तृत्व माननेसे संसारका अभाव होता है, यह एक दूषण आता है। और उनके मतमें वेदक भी नहीं होता है इसलिये यह दूसरा

अथ च वेदकमात्मानं मन्यन्ते सांख्यास्तेषां स्वमतव्याघातदूषणं प्राप्नोतीति । अथ **गुणसण्णिदा दु एदे कम्मं कुव्वंति पच्चया** जह्मा ततः स्थितं गुणस्थानसंज्ञिताः प्रत्ययाः एते कर्म कुर्वंतीति यस्मादेवं पूर्वसूत्रेण भणितं **तह्मा जीवो कत्ता गुणा य कुव्वंति कम्माणि** तस्मात् शुद्धनिश्चयेन तेषां कर्मणां जीवः कर्ता न भवति । गुणस्थानसंज्ञिताः प्रत्यया एव कर्म कुर्वंतीति सम्मतमेव । एवं शुद्धनिश्चयेन प्रत्यया एव कर्म कुर्वंतीति व्याख्यानरूपेण गाथाचतुष्टयं गतं ॥ ११६, ११७, ११८, ११९ ॥

अथ न च जीवप्रत्यययोरेकत्वमेकांतेनेति कथयति—

जह जीवस्स अणण्णुवओगो कोहो वि तह जदि अणण्णो ।
जीवस्साजीवस्स य एवमणण्णत्तमावण्णं ॥ १२० ॥

॥ आ. ख्या. ११३ ॥

एवमिह जो दु जीवो सो चेव दु णियमदो तहाजीवो ।
अयमेयत्ते दोसो पच्चयणोकम्मकम्माणं ॥ १२१ ॥

॥ आ. ख्या. ११४ ॥

अह पुण अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा ।
जह कोहो तह पच्चय कम्मं णोकम्ममवि अण्णं ॥ १२२ ॥

॥ आ. ख्या. ११५ ॥

दूषण आता है। और यदि सांख्य आत्माको भोक्ता मानते हैं तो स्वमतका व्याघात होता है। यह दूषण आता है।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, जिससे गुणस्थान संज्ञावाले जो प्रत्यय है वे ही कर्म को करते हैं यह पूर्व सूत्रमें कह दिया है। इसलिये शुद्धनिश्चयनयसे जीव उन कर्मोंका कर्ता नहीं है। गुणस्थानसंज्ञावाले प्रत्यय ही कर्मोंका कर्ता है, यह सम्मत ही है।

इसप्रकार शुद्धनिश्चयनयसे प्रत्यय ही कर्मोंको करते हैं, इस तरह व्याख्यान करनेवाली चार गाथायें पूर्ण हुओ ॥ ११६, ११७, ११८, ११९ ॥

अब एकांतसे जीव और प्रत्ययों का एकत्व नहीं है, ऐसा कहते हैं—

गाथार्थ— [**जह**] जैसे [**जीवस्स**] जीवके [**अणण्णुवओगो**] ज्ञानदर्शनोपयोग अभिन्न है [**तह**] उसी प्रकार [**जदि**] यदि [**कोहो वि**] क्रोध भी [**अणण्णो**] जीवसे अभिन्न हो जाय तो [**एवं**] इस प्रकार [**जीवस्साजीवस्स य**] जीव और अजीव का [**अणण्णत्तं**]अनन्यत्व [**आवण्णं**] प्राप्त हो गया [**एवं च**] और ऐसा होनेपर [**इह**] इस लोकमें [**जो दु**] जो [**जीवो**] जीव है [**सो एव दु**] वह ही [**णियमदो**] नियमसे [**तहा**]

जह जीवस्स अणण्णुवओगो यथा जीवस्यानन्यस्तन्मयो ज्ञानदर्शनोपयोगः । कस्मात्, अनन्यवेद्यत्वात् अशक्यविवेचनत्वाच्चाग्नेरुष्णत्ववत् **कोहो वि तह जदि अणण्णो** तथा क्रोधोपि यद्यनन्यो भवत्येकांतेन । तदा किं दूषणं, **जीवस्साजीवस्स य एवमणण्णत्तमावण्णं** एवमभेदे सति सहजशुद्धाखंडैकज्ञानदर्शनोपयोगमयजीवस्याजीवस्य चैकत्वमापन्नमिति । अथ **एवमिह जो दु जीवो सो चेव दु णियमदो तहाजीवो** एवं पूर्वोक्तसूत्रव्याख्यानक्रमेण य एव जीवः स तथैवाजीवः भवति नियमान्निश्चयात् । तथा सति जीवाभावाद् दूषणं प्राप्नोति । **अयमेयत्ते दोसो पच्चयणोकम्मकम्माणं** अयमेव च दोषो जीवाभावरूपः । कस्मिन् सति । एकांतेन निरंजननिजानंदैकलक्षणजीवेन सहैकत्वे सति । केषां । मिथ्यात्वादिप्रत्ययनोकर्मकर्मणामिति । अथ प्राकृतलक्षणबलेन प्रत्ययशब्दस्य ह्रस्वत्वमिति । **अह पुण अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा** अथ पुनरभिप्रायो भवतां पूर्वोक्तजीवाभावदूषणभयात् अन्यो भिन्नः क्रोधो जीवादन्यश्च विशुद्धज्ञानदर्शनमय आत्मा क्रोधा-

---

उसी प्रकार [**अजीवो**] अजीव होगा [**पच्चयणोकम्मकम्माणं**] प्रत्यय, नोकर्म और कर्मोंके [**एयत्ते**] एकत्वमें भी [**अयं दोसो**] यही दोष आता है [**अह पुण**] [1] अथवा (इस दोषके भयसे ऐसा मानो कि) [**कोहो**] क्रोध [**अण्णो**] अन्य है और [**उवओगप्पगो**] उपयोगात्मक [**चेदा**] आत्मा [**अण्ण**] अन्य है तो [**जह**] जैसे [**कोहो**] क्रोध अन्य है [**तह**] उसी प्रकार [**पच्चय**] प्रत्यय [**कम्मं**] कर्म और [**णोकम्ममवि**] नोकर्म भी [**अण्णं**] अन्य है ।

टीकार्थ– जैसे अग्नि और उष्णताका तादात्म्य संबंध है, उसीतरह जीव और ज्ञानदर्शनोपयोगका तादात्म्य संबंध है क्योंकि उष्णता और अग्निको भिन्न नहीं कर सकते है, उसी तरह ज्ञानदर्शनोपयोग और जीवको भिन्न नहीं कर सकते है । यह अभिन्नता अनुभवमें आती है (प्रत्यक्ष है) ।

शंका– इसी प्रकार यदि एकांतसे क्रोध भी जीवके साथ तादात्म्य हैं, ऐसा माना जाय तो क्या दोष है ?

समाधान– इसप्रकार यदि एकांतसे क्रोध और जीवका तादात्म्य संबंध माननेसे सहज शुद्ध-अखंड-एक-ज्ञानदर्शनोपयोगमय जीव और अजीवको एकत्व प्राप्त होता है । इस प्रकार पूर्व गाथामें कथन करने के क्रमसे जो ही जीव है वही अजीव है ऐसा निश्चयसे मानना पडेगा । और उस मान्यतासे जीवका अभाव होगा यह दूषण आता है । और जीवका अभाव मानना यह वड़ा दोष है । क्योंकि एकांतसे निरंजन, निजानंदरूप, एक लक्षणवाले जीवके साथ मिथ्यात्वादिप्रत्यय, नोकर्म, कर्म का तादात्म्य संबंध हो जायेगा (जो कि प्रत्यक्ष वस्तुस्थितिसे विरूद्ध है) । यहां प्राकृत गाथामें प्राकृतभाषाके लक्षण के कारण प्रत्यय शब्द ह्रस्व है ।

अव पूर्वोक्त दोषसे बचनेके लिये फिर आपका अभिप्राय ऐसा हो कि, क्रोध जीवसे

त्सकाशात् । **जह कोहो तह पच्चय कम्मं णोकम्ममवि अण्णं** यथा जडः क्रोधो निर्मलचैतन्यस्वभावजीवाद्भिन्नस्तथा प्रत्ययकर्मनोकर्माण्यपि भिन्नानि शुद्धनिश्चयेन सम्मत एव । किंच, शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्याकर्तृत्वमभोक्तृत्वं च क्रोधादिभ्यश्च भिन्नत्वं च भवतीति व्याख्याने कृते सति द्वितीयपक्षे व्यवहारेण कर्तृत्वं भोक्तृत्वं च क्रोधादिभ्यश्चाभिन्नत्वं च लभ्यते एव । कस्मात् । निश्चयव्यवहारयोः परस्परसापेक्षत्वात् । कथमिति चेत् । यथा दक्षिणेन चक्षुषा पश्यत्ययं देवदत्तः इत्युक्ते वामेन न पश्यतीत्यनुक्तसिद्धमिति । ये पुनरेवं परस्परसापेक्षनयविभागं न मन्यन्ते सांख्यसदाशिवमतानुसारिणस्तेषां मते यथा शुद्धनिश्चयनयेन कर्ता न भवति क्रोधादिभ्यश्च भिन्नो भवति तथा व्यवहारेणापि । ततश्च क्रोधादिपरिणमनाभावे सर्वदा मुक्तत्वं प्राप्नोति । स च प्रत्यक्षविरोधः, संसारस्य प्रत्यक्षेण दृश्यमानत्वादिति । एवं प्रत्ययजीवयोरेकांतेनैकत्वनिराकरणरूपेण गाथात्रयं गतं । अत्राह शिष्यः । शुद्धनिश्चयेनाकर्ता व्यवहारेण कर्तेति बहुधा व्याख्यातं तत्रैवं

भिन्न है और विशुद्धज्ञानदर्शनमय आत्मा क्रोधसे भिन्न है । जैसे जड क्रोध निर्मलचैतन्यस्वभाववाले जीवसे भिन्न है वैसे मिथ्यात्वादिप्रत्यय, कर्म तथा नोकर्म जीवसे भिन्न है, यह शुद्धनिश्चयनयसे सम्मत ही है । और कहते हैं कि, शुद्धनिश्चयनयसे (अभेदवृत्तिसे) जीवका क्रोध के बारेमें अकर्तृत्व और अभोक्तृत्व है और जीव क्रोधसे भिन्न है ऐसा कथन करते (ऐसी मान्यता रखते) समय दूसरी दृष्टिसे-व्यवहारनयसे जीवका क्रोध के बारेमें कर्तृत्व और भोक्तृत्व है और जीव क्रोधसे अभिन्न है, यह मान्य है ।

शंका– यह कैसे ?

समाधान– निश्चयनयका कथन और व्यवहारनयका कथन परस्पर सापेक्ष है ।

शंका– यह कैसे ?

समाधान– जैसे किसीने कहा कि, देवदत्त अपनी दाहिनी आंखसे देखता है, तब नहीं कहते हुये भी यह सिद्ध होता है कि देवदत्त बाई आंखसे नही देखता है । (उसी तरह निश्चयनय और व्यवहारनयका कथन परस्पर सापेक्ष है ।)

और जो सांख्यसदाशिवमतानुसारी लोग इसप्रकारके परस्पर सापेक्ष नय विभागको नहीं मानते हैं उनके मतमें जैसे शुद्धनिश्चयनयसे जीव क्रोधादिका कर्ता नहीं है और जीव क्रोधादिसे भिन्न है वैसे व्यवहारनयसे भी जीव क्रोधादिका कर्त्ता नही है और जीव क्रोधसे भिन्न है । और इसलिये क्रोधादिपरिणमनका अभाव होनेपर सिद्ध जीवोंकी तरह (संसारी जीवका) व्यवहार से भी कर्मबंधका अभाव हो जायेगा । (संसारमें परिभ्रमण करनेवाले को) कर्मबंधके अभावमें संसारका अभाव मानना होगा और संसारके अभावमें सदा ही मुक्तपनेका प्रसंग आयेगा, जो कि प्रत्यक्षमें विरोध है क्योंकि संसार तो प्रत्यक्ष देखनेमें आता है । इसतरह प्रत्यय और जीव दोनोंमें एकांतसे एकत्व माननेवालेके निराकरण करनेवाली तीन गाथायें पूर्ण हो गयी ।

कोई शिष्य शंका पूछता है– आपने बहुत बार ऐसा कहा है कि शुद्धनिश्चयनयसे जीव

सति यथा द्रव्यकर्मणां व्यवहारेण कर्तृत्वं तथा रागादिभावकर्मणां च द्वयोर्द्रव्यभावकर्मणोरेकत्वं प्राप्नोतीति । नैवं । रागादिभावकर्मणां योसौ व्यवहारस्तस्याशुद्धनिश्चयसंज्ञा भवति द्रव्यकर्मणां भावकर्मभिः सह तारतम्यज्ञापनार्थं । कथं तारतम्यमिति चेत् । द्रव्यकर्माण्यचेतनानि भावकर्माणि च चेतनानि तथापि शुद्धनिश्चयापेक्षया अचेतनान्येव । यतः कारणादशुद्धनिश्चयोपि शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एव । अयमत्र भावार्थः । द्रव्यकर्मणां कर्तृत्वं भोक्तृत्वं चानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण रागादिभावकर्मणां चाशुद्धनिश्चयेन । स च शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एवेति । एवं पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां पीठिकारूपे महाधिकारे सप्तगाथाभिः चतुर्थोंतराधिकारः समाप्तः ॥ १२०, १२१, १२२ ॥

अतः परं 'जीवे ण सयं बद्धं' इत्यादि गाथामादिं कृत्वा गाथाष्टकपर्यंतं सांख्यमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं जीवपुद्गलयोरेकांतेनापरिणामित्वं निषेधयन् सन् कथंचित् परिणामित्वं स्थापयति । तत्र गाथाष्टकमध्ये पुद्गलपरिणामित्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं । तदनंतरं जीवपरिणामित्वमुख्यत्वेन गाथापंचकमिति पंचमस्थले समुदायपातनिका ।

क्रोधादिका अकर्ता है और व्यवहारनयसे कर्ता है, तब जैसे व्यवहारनयसे जीव द्रव्यकर्मोंका कर्ता है वैसे व्यवहारनयसे भावकर्मोंका कर्ता है, तो द्रव्यकर्म और भावकर्म इन दोनोंमें एकत्व प्राप्त होता है ?

समाधान– द्रव्यकर्म और भावकर्म इनमें एकत्व नहीं हैं । जीव व्यवहारनयसे रागादिभावकर्मोंका कर्ता कहा जाता है, उस व्यवहारनयको अशुद्धनिश्चयनय यह संज्ञा है, जो द्रव्यकर्मोंका भावकर्मोंके साथ तारतम्य दिखाती है ।

शंका– किसप्रकार का तारतम्य है ?

समाधान– द्रव्यकर्म अचेतन है और भावकर्म चेतन है । तथापि शुद्धनिश्चयनयकी (अभेदवृत्तिकी) अपेक्षासे भावकर्म अचेतन ही है । इस कारणसे अशुद्धनिश्चयनय भी शुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षासे व्यवहारनय ही है । इसका भावार्थ यह है कि, अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनयकी अपेक्षासे जीव द्रव्यकर्मोंका कर्ता और भोक्ता है; और अशुद्धनिश्चयनयसे जीव रागादिभावकर्मोंका कर्ता और भोक्ता है । और शुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षासे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय और अशुद्धनिश्चयनय व्यवहारनय ही है । इसप्रकार पुण्यपापादिसप्तपदार्थोंका कथन करनेवाले पीठीकारूप महाधिकारमें सात गाथाओं के द्वारा चतुर्थ अंतराधिकार पूर्ण हुआ ॥ १२०, १२१, १२२ ॥

इसके आगे 'जीवे ण सयं बद्धं' इत्यादि गाथा से शुरू करके आठ गाथाओंतक सांख्यमतको अनुसरण करनेवाले शिष्यको संबोधन करनेके लिये जीव और पुद्गलके अपरिणामीपनका निषेध करते हुअे इनमें कथंचित् परिणामित्व स्थापित करते हैं । उन आठ गाथाओं में पुद्गलके परिणामिपनाका मुख्यतासे कथन करनेवाली तीन गाथायें हैं । तदनंतर जीवके परिणामिपनाकी मुख्यतासे कथन करनेवाली पांच गाथायें हैं । इसतरह पंचमस्थलमें समुदायपातनिका है ।

अथ सांख्यमतानुयायिशिष्यं प्रति पुद्‌गलस्य कथंचित्परिणामस्वभावत्वं साधयति–

जीवे ण सयं बद्धं ण सयं परिणमदि कम्मभावेण ।
जइ पुग्गलदव्वमिणं अप्परिणामी तदा होदि ॥ १२३ ॥

॥ आ. ख्या. ११६ ॥

कम्मइयवग्गणासु य अपरिणमंतीसु कम्मभावेण ।
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ॥ १२४ ॥

॥ आ. ख्या. ११७ ॥

जीवो परिणामयदे पुग्गलदव्वाणि कम्मभावेण ।
ते सयमपरिणमंते कहं तु परिणामयदि णाणी ॥ १२५ ॥

॥ आ. ख्या. ११८ ॥

अह सयमेव हि परिणमदि कम्मभावेण पुग्गलं दव्वं ।
जीवो परिणामयदे कम्मं कम्मत्तमिदि मिच्छा ॥

॥ आ. ख्या. ११९ ॥

णियमा कम्मपरिणदं कम्मं चि य होदि पुग्गलं दव्वं ।

अब सांख्यमतानुसारी शिष्यके प्रति पुद्‌गलके कथंचित् परिणामित्व स्वभाव को सिद्ध करते हैं–

गाथार्थ– [**जइ**] यदि [**पुग्गलदव्वं**] पुद्‌गलद्रव्य [**जीवे**] जीवमें [**सयं**] स्वयं [**ण बद्धं**] नहीं बंधता है और [**कम्मभावेण**] कर्मभावसे [**सयं**] स्वयं [**ण परिणमदि**] परिणमन नही करता है [**तदा**] तब [**इणं**] यह पुद्‌गल द्रव्य [**अपरिणामी**] अपरिणामी [**होदि**] होता है [**य**] और [**कम्मइयवग्गणासु**] कार्मणवर्गणायें [**कम्मभावेण**] कर्मभावसे [**अपरिणमंतीसु**] नहीं परिणमन करती ऐसा माना जाय तो [**संसारस्स**] संसारके [**अभावो**] अभावका [**पसज्जदे**] प्रसंग आता है [**वा**] अथवा [**संखसमओ**] सांख्यमतका प्रसंग आता है। [**जीवो**] जीव [**पुग्गलदव्वाणि**] पुद्‌गलद्रव्योंको [**कम्मभावेण**] कर्मभावसे [**परिणामयदे**] परिणमन कराता है, ऐसा माना जाय तो [**ते**] वे पुद्‌गलद्रव्य [**सयं**] स्वयं [**अपरिणमंते**] परिणमन नहीं करते [**तु**] तो उनको [**णाणी**] यह ज्ञानी जीव [**कथं**] कैसे [**परिणामयदि**] परिणमा सकता है ? [**अह**] अथवा [**पुग्गलं दव्वं**] पुद्‌गल द्रव्य [**सयमेव हि**] स्वयं ही [**कम्मभावेण**] कर्मभावसे [**परिणमदि** [परिणमन करता है तो [**जीवो**] जीव [**कम्मं**] कर्मरूप पुद्‌गलद्रव्यको [**कम्मत्तं**] कर्ममय [**परिणामयदे**] परिणमन कराता है [**इदि**] यह कहना [**मिच्छा**] मिथ्या सिद्ध होता है, इसलिये [**णियमा**] निश्चयसे [**कम्मपरिणदं**] कर्मरूपपरिणत [**पुग्गलंदव्वं**] पुद्‌गलद्रव्य [**कम्मं चि य**] कर्म ही [**होदि**] होता है [**तह**] इसी प्रकार [**णाणावरणाइपरिणदं**] ज्ञानावरणादिरूप परिणमित [**तं**]

तह तं णाणावरणाइपरिणदं मुणसु तच्चेव ॥

॥ आ. ख्या. १२० ॥

जीवे ण सयं बद्धं जीवे अधिकरणभूते स्वयं स्वभावेन पुद्गलद्रव्यकर्मबद्धं नास्ति। कस्माद् सर्वदा जीवस्य शुद्धत्वात्। **ण सयं परिणमदि कम्मभावेण** न च स्वयं स्वयमेव कर्मभावेन द्रव्यकर्मपर्यायेण परिणमति। कस्मात्, सर्वथा नित्यत्वात्। **जदि पुग्गलदव्वमिणं** एवमित्थं-भूतमिदं पुद्गलद्रव्यं यदि चेद्भवतां सांख्यमतानुसारिणां **अप्परिणामी तदा होदि** ततः कारणात्तत्पुद्गलद्रव्यमपरिणाम्येव भवति। ततश्चापरिणामित्वे सति किं दूषणं भवति। अथ कार्मणवर्गणाभिरपरिणमंतीभिः कर्मभावेन द्रव्यकर्मपर्यायेण तदा संसारस्याभावः प्रसजति प्राप्नोति हे शिष्य, सांख्यसमयवदिति। अथ मतं। **जीवो परिणामयदे पुग्गलदव्वाणि कम्मभावेण** जीवः कर्ता कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्याणि ज्ञानावरणादिकर्मभावेन द्रव्यकर्मपर्यायेण हठात्परिणामयति ततः कारणात्संसाराभावदूषणं न भवतीति चेत्, **ते सयमपरिणमंतं कहं तु परिणामयदि णाणी** ज्ञानी जीवः स्वयमपरिणममानः सन् तत्पुद्गलद्रव्यं किं स्वयमपरिणममानं परिणममानं वा परिणामयेत्? न तावदपरिणममानं परिणामयति न च स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्यते। यथा जपापुष्पादिकं कर्तृ स्फटिके जनयत्युपाधिं तथा काष्ठस्तंभादौ किं न जनयतीति। अथैकांतेन

वह पुद्गलद्रव्य [**तच्चेव**] ज्ञानावरणादिकर्म ही है [**मुणसु**] ऐसा जानो।

टीकार्थ– पुद्गलद्रव्यरूप कर्म अधिकरणभूत जीवमें न तो स्वयं बद्ध है, क्योंकि जीव तो सदा शुद्ध है। और पुद्गलद्रव्य स्वयं अपने आपसे कर्मभावसे, द्रव्यकर्मपर्यायरूपसे सर्वथा नित्य होनेसे परिणमन नहीं करता है। यदि इसप्रकार पुद्गलद्रव्यको अपरिणामी माना जाय तो आप सांख्यमतानुसारी हो गये। इसतरह माननेसे पुद्गलद्रव्य अपरिणामी ठहरता है।

शंका– इसतरह पुद्गलद्रव्यको अपरिणामी कहनेसे क्या दूषण आता है?

समाधान– हे शिष्य! कर्मभावसे-द्रव्यकर्मपर्यायरूपसे पुद्गलका अपरिणमन माननेसे (कार्मणवर्गणाओंका अपरिणमन होनेसे) उसीसमय संसारका अभाव माननेका प्रसंग आता है और यह मत सांख्यमतकी तरह है। यदि जीव हठसे कर्ता बनकर कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्यको ज्ञानावरणादिकर्मभावरूप-द्रव्यकर्मपर्यायस्वरूप परिणमन कराता है, इसलिये संसारके अभावका दोष नहीं आता है ऐसा माना जाय तो वहां यह शंका उपस्थित होती है कि, ज्ञानी जीव स्वयं अपरिणामी होता हुआ अपरिणमनशील पुद्गलद्रव्यको परिणमाता है कि परिणमनशील पुद्गल-द्रव्यको परिणमाता है? [याने वह पुद्गलद्रव्य परिणमनशील है या अपरिणमनशील है?] इन दो विकल्पोंमें से प्रथम विकल्प मानोगे तो अपरिणमनशील (पुद्गलका) द्रव्यका परिणमन जीव नहीं कर सकता है क्योंकि जहां जो शक्ति स्वयं में नहीं है, वहां वह शक्ति दूसरेके द्वारा भी नहीं की जा सकती है [यह सिद्धांत है या यह अटल नियम है] जैसे जपा-पुष्पादिक स्फटिकमणिमें उपाधि पैदा कर सकता है वैसे काठके खंभे आदिमें उपाधि क्यों पैदा नहीं कर सकता है? (क्यों कि स्फटिकमणिका उपादान स्वच्छत्व शक्ति सहित होनेसे

परिणममानं परिणामयति । तदपि न घटते । न हि वस्तुशक्तयः परमपेक्षंते तर्हि जीवो निमित्त-कर्तारमंतरेणापि स्वयमेव कर्मरूपेण परिणमतु । तथा च सति किं दूषणं ? घटपटस्तंभादि-पुद्‌गलानां ज्ञानावरणादिकर्मपरिणतिः स्यात् । स च प्रत्यक्षविरोधः । ततः स्थिता पुद्‌गलानां स्वभावभूता कथंचित्परिणामित्वशक्तिः तस्यां परिणामशक्तौ स्थितायां स पुद्‌गलः कर्ता । यं स्वस्य संबंधिनं ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपरिणामं पर्यायं करोति तस्य स एवोपादानकारणं कलशस्य मृत्पिंडमिव । न च जीवः, स तु निमित्तकारणमेव हेयतत्त्वमिदं । तस्मात्पुद्‌गलाद्व्यतिरिक्तशुद्ध-परमात्मभावनापरिणताऽभेदरत्नत्रयलक्षणेन भेदज्ञानेन गम्यश्चिदानंदैकस्वभावो निजशुद्धात्मैव शुद्धनिश्चयेनोपादेयं भेदरत्नत्रयस्वरूपं तु उपादेयमभेदरत्नत्रयसाधकत्वाद्व्यवहारेणोपादेयमिति । एवं गाथात्रयशब्दार्थव्याख्यानेन शब्दार्थो ज्ञातव्यः । व्यवहारनिश्चयरूपेण नयार्थो ज्ञातव्यः ।

स्फटिकमणि लाल या काली उपाधिरूप परिणत होती है, वैसे काष्ठ स्तंभका उपादान स्वच्छत्व शक्ति रहित है ।) यदि दूसरा विकल्प कहोगे कि, एकांतसे परिणमन करते हुवे को ही परि-णमाता है तो यह कहना भी ठीक नहीं है । क्योंकि वस्तुकी शक्तियाँ दूसरेकी अपेक्षा नहीं रखती हैं ।

शंका– तो फिर जीवनिमित्तकर्ताके विना भी पुद्‌गल स्वयमेव कर्मरूपसे परिणमन करने दो । तो उसमें क्या दोष आता है ?

समाधान– घटपटस्तंभादि पुद्‌गलोंकी ज्ञानावरणादिकर्मरूप परिणति होगी । और वह तो प्रत्यक्ष से विरोधरूप है । [क्योंकि वे घटपटादि अभी कर्मरूप परिणमन करने योग्य कार्माण वर्गणारूप नहीं है ।] इसलिये यह सिद्ध हुआ कि पुद्‌गलोंकी स्वभावभूत कथंचित् परिणामित्व शक्ति है । उस परिणामशक्तिमें जो पुद्‌गल स्थित है वह पुद्‌गल ही उस परिणामका कर्ता है । जो अपने संबंधी (कार्मणवर्गणा योग्य पुद्‌गल) ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपरिणाममय पर्याय को करता है, वह पुद्‌गलही उस (पर्याय) का उपादानकारण है, जैसे कलशमिट्टीकी पिंड की तरह [याने मिट्टी ही स्वयं व्याप्यव्यापक रूपसे परिणमन करके कलश बनता है वहां कुंभकार-चीवरादि वस्तु अकिंचित्कर है, उसी तरह कर्म योग्य पुद्‌गलद्रव्यही स्वयं उपादानमय कर्ता बनकर ज्ञानावरणादिकर्ममय परिणमन करता है, वहाँ] वह जीव कर्ता नहीं है, वह जीव अकिंचित्कर है, वह जीव निमित्तमात्र कारण है, वह निमित्तमात्र कारण ही यह हेयतत्त्व है ।

इसलिये पुद्‌गलद्रव्यसे भिन्न शुद्धपरमात्मभावना में परिणत अभेदरत्नत्रयलक्षणवाले भेदज्ञानसे अनुभवमें आनेवाला चिदानंद-एक-स्वभाव-निजशुद्धात्मा ही शुद्धनिश्चयनयसे उपादेय है, लेकिन भेदरत्नत्रयस्वरूपको अभेदरत्नत्रयका साधककारण उपचारसे कहनेसे भेदरत्नत्रय उपादेय कहा जाता है । (भेदरत्नत्रयको साधन और निश्चयको साध्य उपचारसे कहा जाता है ।) इसप्रकारसे तीन गाथाओंके शब्दार्थ व्याख्यानसे शब्दार्थ जानना चाहिये, व्यवहारनिश्चयरूपसे नयार्थको भी जानना चाहिये । सांख्यमतवालेके संबोधनार्थ (सांख्यमतवालेको समझाने के लिये)

सांख्यं प्रति मतार्थो ज्ञातव्यः। आगमार्थस्तु प्रसिद्धः। हेयोपादानव्याख्यानरूपेण भावार्थोपि ज्ञातव्यः। इति शब्दनयमतागमभावार्थः व्याख्यानकाले यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्याः। एवं पुद्गलपरिणामस्थापनार्थमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं ॥ १२३, १२४, १२५ ॥

सांख्यमतानुसारिशिष्यं प्रति जीवस्य कथंचित्परिणामस्वभावत्वं साधयति—

ण सयं बद्धो कम्मे ण सयं परिणमदि कोहमादीहिं।
जदि एस तुज्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदि ॥ १२६ ॥

॥ आ. ख्या. १२१ ॥

अपरिणमंतम्हि सयं जीवे कोहादिएहिं भावेहिं।
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ॥ १२७ ॥

॥ आ. ख्या. १२२ ॥

मतार्थको जानना चाहिये। आगमका अर्थ स्पष्ट ही है। हेय और उपादेयतत्व के व्याख्यान रूपसे भावार्थ भी जानना योग्य है। इस प्रकार १) शब्द, २) नय, ३) मत, ४) आगम और ५) भावार्थ इन पांच अर्थोंमें यहाँ व्याख्यान हुआ है उसी प्रकार शब्द, नय, मत, आगम और भावार्थ का व्याख्यान व्याख्यानकालमें यथा संभव सर्व ही स्थानमें जानना चाहिये। इसप्रकार पुद्गलको परिणमनशील बताने की मुख्यतासे तीन (पांच) गाथाओंका व्याख्यान पूर्ण हुआ ॥ १२३, १२४, १२५ ॥

सांख्यमतानुसारी शिष्यको कहते हैं कि, कथंचित् परिणमन करना यह जीवका स्वभाव है—

गाथार्थ— [**जदि**] यदि [**तुज्झ**] तेरी ऐसी मान्यता है कि [**एस**] यह [**जीवो**] जीव [**कम्मे**] कर्म में [**सयं**] स्वयं [**बद्धो ण**] बंधा नहीं है और [**कोहमादीहिं**] क्रोधादि भावोंसे [**सयं**] स्वयं [**ण परिणमदि**] परिणमन नहीं करता है [**तदा**] तब तो वह [**अप्परिणामी**] अपरिणामी [**होदि**] सिद्ध होता है और [**कोहादिएहि**] क्रोधादि [**भावेहिं**] भावरूपसे [**जीवे**] जीव के [**सयं**] स्वयं [**अपरिणमंतम्हि**] परिणमन न करने पर [**संसारस्स**] संसारके [**अभावो**] अभावका [**पसज्जदे**] प्रसंग आ जाएगा [**वा**] अथवा [**संखसमओ**] सांख्यमतका प्रसंग आ जाएगा। यदि कहेगा कि [**पोग्गलकम्मं**] पुद्गलकर्मरूप [**कोहो**] क्रोध [**जीवं**] जीवको [**कोहत्तं**] क्रोधभावरूप [**परिणामएदि**] परिणमाता है, तो [**सयं**] स्वयं [**अपरिणमंतं**] न परिणमन करनेवाले [**तं**] जीवको [**कोहत्तं**] क्रोधरूप [**कहं**] किसप्रकार [**परिणामयदि**] परिणमन करा सकता है? [**अह**] अथवा [**अप्पा**] आत्मा [**सयं**] स्वयं [**कोहभावेण**] क्रोधभावसे [**परिणमदि**] परिणमन करता है [**दे**] यदि तेरी [**एसबुद्धि**] ऐसी मान्यता है तो [**कोहो**] क्रोध [**जीवं**] जीवको [**कोहत्तं**]

पुग्गलकम्मं कोहो जीवं परिणामएदि कोहत्तं ।
तं सयमपरिणमंतं कह परिणामयदि कोहत्तं ॥ १२८ ॥
॥ आ. ख्या. १२३ ॥

अह सयमप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे वुद्धि ।
कोहो परिणामयदे जीवं कोहत्तमिदि मिच्छा ॥ १२९ ॥
॥ आ. ख्या. १२४ ॥

कोहुवजुत्तो कोहो माणुवजुत्तो य माणमेवादा ।
माउवजुत्तो माया लोहुवजुत्तो हवदि लोहो ॥ १३० ॥
॥ आ. ख्या. १२५ ॥

ण सयं बद्धो कम्मे स्वयं स्वभावेन कर्मण्यधिकरणभूते एकांतेन बद्धो नास्ति सदा मुक्तत्वात् । **ण सयं परिणमदि कोहमादीहिं** न च स्वयं स्वयमेव द्रव्यकर्मोदयनिरपेक्षो भावक्रोधादिभिः परिणमति । कस्मादेकांतेनापरिणामित्वात् । **जदि एस तुम्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदि** यदि चेदेष जीवः प्रत्यक्षीभूतः तव मताभिप्रायेणेत्थंभूतः स्यात्ततः कारणादपरिणाम्येव भवति । अपरिणामित्वे सति किं दूषणं ? अथ– अपरिणममाने सति तस्मिन् जीवे स्वयं स्वयमेव भावक्रोधादिपरिणामैः तदा संसारस्याभावः प्राप्नोति । हे शिष्य सांख्यसमयवत् । अथ मतं **पुग्गलकम्मं** कोहो **परिणामएदि कोहत्तं** पुद्‌गलकर्मरूपो द्रव्यक्रोध उदयागतः कर्ता जीवं कर्मतापन्नं

क्रोधभावरूप [**परिणामयदे**] परिणमन कराता है [**इदि**] यह कहना [**मिच्छा**] मिथ्या ठहरेगा । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि [**कोहुवजुत्तो**] क्रोधमें उपयुक्त जिसका उपयोग क्रोधाकार परिणत हुआ है ऐसा [**आदा**] आत्मा [**कोहो**] क्रोध ही है, [**माणुवजुत्तो**] मानमें उपयुक्त आत्मा [**माणमेव**] मान ही है, [**माउवजुत्तो**] मायामें उपयुक्त आत्मा [**माया**] माया है, [**लोहुवजुत्तो**] लोभमें उपयुक्त आत्मा [**लोहो**] लोभ [**हवदि**] है ।

टीकार्थ– जीव स्वयं अपने स्वभावसे अधिकरणभूत कर्ममें सर्वथा बंधा हुआ नहीं है, क्योंकि एकांतसे सदा मुक्त है । और जीव अपने आप ही द्रव्यकर्मोदयके विना भावक्रोधादि भाव के द्वारा परिणमन नही करता है, क्योंकि एकांतसे जीव अपरिणामी है । इस प्रकार मान्यता हो तो यह प्रत्यक्षीभूत संसारी जीव भी आपके अभिप्रायसे अपरिणामी ही होगा ।

शंका– जीव अपरिणामी होनेसे क्या दोष आता है ?

समाधान– अपरिणामी माननेसे उस जीवमें अपने आप ही भावक्रोधादिद्वारा परिणमन करते हुअे भी संसारका अभाव प्राप्त होगा । हे शिष्य ! यह मान्यता सांख्य आगमकी तरह है ।

यदि ऐसा माना जाय कि, उदयागत पुद्‌गलकर्मरूप द्रव्यक्रोध कर्ता (उपादान) बनकर हठसे जीवको भावक्रोधमय परिणमन कराता है, तो क्या स्वयं अपरिणममानको अथवा स्वयं परिणममानको परिणमन कराता है ?

हठात्परिणामयति भावक्रोधत्वेनेति चेत् तं **सयमपरिणमंतं कह परिणामएदि कोहत्तं** अथ किं स्वयमपरिणममानं परिणममानं वा परिणामयेत्? न तावत्स्वयमपरिणममानं परिणामयेत्। कस्मात्। न हि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्यते। न हि जपापुष्पादयः कर्तारो यथा स्फटिकादिषु जनयंत्युपाधिं तथा काष्ठस्तंभादिष्वपि। अथैकांतेन परिणममानं वा तर्हि उदयागतद्रव्यक्रोधनिमित्तमंतरेणापि भावक्रोधादिभिः परिणमंतु। कस्मादिति चेत्। न हि वस्तुशक्तयः परमपेक्षंते। तथा च सति मुक्तात्मनामपि द्रव्यक्रोधादिकर्मोदयनिमित्ताभावेपि भावक्रोधादयः प्राप्नुवंति। न च तदिष्टमागमविरोधात्। अथ मतं। **अह सयमप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे बुद्धि** अथ पूर्वदूषणभयात्स्वयमेवात्मा द्रव्यकर्मोदयनिरपेक्षो भावक्रोधरूपेण परिणमत्येषा तव बुद्धिः हे शिष्य। **कोहो परिणामयदे जीवं कोहत्तमिदि मिच्छा** तर्हि द्रव्यक्रोधः कर्ता जीवस्य भावक्रोधत्वं परिणामयति करोति यदुक्तं पूर्वगाथायां तद्वचनं मिथ्या प्राप्नोति। ततः स्थितं घटाकारपरिणता मृत्पिंडपुद्गलाः घट इव अग्निपरिणतोऽयःपिंडोग्निवत् तथात्मापि क्रोधोपयोगपरिणतः क्रोधो भवति मानोपयोगपरिणतो मानो भवति मायोपयोगपरिणतो माया भवति

प्रथम पक्षमें तो स्वयं अपरिणममानको परिणमित नहीं कर सकता है, क्योंकि जिसमें जो शक्ति नहीं है वह दूसरेके द्वारा कभी भी उत्पन्न नहीं की जा सकती है। जैसे जपापुष्पादिक कर्ता (उपादान) बनकर स्फटिकादिमें उपाधि (उपरंजकता) उत्पन्न नहीं कर सकती है। उसी तरह काष्ठस्तंभादि में भी जपापुष्पादिक (कर्ता याने) उपादान बनकर उपाधि उत्पन्न नहीं कर सकती है। (तो जपापुष्पके सांनिध्यमें स्फटिकमणि स्वयं उपाधि धारण करता है। और काष्ठस्तंभ उपाधि धारण नहीं करता है।)

अथवा दूसरे पक्षमें (यदि) एकांतसे परिणमनशील हुये जीवको पौद्गलिक कर्म परिणमन कराता है तो उदयागत द्रव्यक्रोधके निमित्त के बिना भी भावक्रोधादि रूप जीवका परिणमन हो जावे। क्योंकि वस्तुकी शक्तियां दूसरेकी अपेक्षा नहीं किया करती ऐसा सिद्धांत है (ऐसा अटल नियम है)। और ऐसा माननेपर मुक्तात्माको भी द्रव्यक्रोधादिकर्मोदय के निमित्त के बिना भी भावक्रोधादि प्राप्त होंगे। और वह इष्ट नहीं है क्योंकि आगम के विरुद्ध है। इसतरह पूर्व दूषणके भयसे स्वयमेव आत्मा द्रव्यकर्मके बिना भावक्रोधादिरूपसे परिणमन करता है, ऐसी आपकी मति है। तो फिर हे शिष्य! द्रव्यक्रोध कर्ता बनकर जीवको भावक्रोधमय परिणमन कराता है, यह जो पूर्व गाथामें कहा गया है, वह आपका वचन मिथ्या होगा।

इसलिये यह सिद्ध हुआ जैसे घटाकार परिणत मिट्टीका पिंड ही घट है, और जैसे अग्नि से परिणत लोहेका गोला अग्नि है, उसी तरह क्रोध उपयोगसे परिणत आत्मा क्रोध है। मानोपयोग से परिणत आत्मा मान है, मायोपयोग से परिणत आत्मा माया है, लोभोपयोग से परिणत

लोभोपयोगपरिणतो लोभो भवतीति स्थिता सिद्धा जीवस्य स्वभावभूता परिणामशक्तिः । तस्यां परिणामशक्तौ स्थितायां स जीवः कर्ता यं परिणाममात्मनः करोति तस्य स एवोपादानकर्ता द्रव्यकर्मोदयस्तु निमित्तमात्रमेव । तथैव च स एव जीवो निर्विकारचिच्चमत्कारशुद्धभावेन परिणतः सन् सिद्धात्मापि भवति । किंच विशेषः 'जाव ण वेदि विसेसंतरं' इत्याद्यज्ञानिज्ञानिजीवयोः संक्षेपव्याख्यानरूपेण गाथाषट्कं यदुक्तं पूर्वं पुण्यपापादिसप्तपदार्थजीवपुद्गलसंयोगपरिणामनिवृत्तास्ते च जीवपुद्गलयोः कथंचित्परिणामित्वे सति घटते । तस्यैव कथंचित्परिणामित्वस्य विशेषव्याख्यानमिदं । अथवा 'सामण्णपच्चया खलु चउरो' इत्यादि गाथासप्तके यदुक्तं पूर्वं सामान्यप्रत्यया एव शुद्धनिश्चयेन कर्म कुर्वंतीति न जीव इति जैनमतं । एकांतेनाकर्तृत्वे सति सांख्यानां संसाराभावदूषणं तस्यैव संसाराभावदूषणस्य विशेषदूषणमिदं । कथमिति चेत् । तत्रैकांतेन कर्तृत्वाभावे सति संसाराभावदूषणं अत्र पुनरेकांतेन परिणामित्वाभावे सति संसाराभावदूषणं । यतः कारणाद्भावकर्मपरिणामित्वमेव कर्तृत्वं भोक्तृत्वं च भण्यते । इति जीवपरिणामित्वे व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथापंचकं गतं । एवं पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां पीठिकारूपे महाधिकारे जीवपुद्गलपरिणामित्वव्याख्यानमुख्यत्वेनाष्टगाथाभिः पंचमांतराधिकारः समाप्तः ॥ १२७, १२८, १२९, १३० ॥

आत्मा लोभ है । इसलिए ऐसा ठहरता है कि जीवकी स्वभावभूत परिणामशक्ति है उस परिणमन शक्तिमें स्थित रहनेपर वह जीव कर्ता बनकर जो आत्माका परिणमन करता है उसका वह ही उपादान कर्ता है लेकिन द्रव्यकर्मोदय निमित्तमात्र ही है (अकिंचित्कर है) । और उसीप्रकार वह ही जीव निर्विकारचैतन्यचमत्काररूप शुद्धभावसे परिणत होनेसे सिद्धात्मा (कार्यसमयसार) भी होता है। और कुछ विशेष कहते हैं कि, 'जाव ण वेदि विसेसंतरं' इत्यादि अज्ञानी-ज्ञानी जीवोंके संक्षेपव्याख्यानरूपसे ६ गाथाओंका कथन हुआ। जो पूर्व में कहे हुए पुण्यपापादिसातपदार्थ जीव पुद्गलके संयोग परिणाममें रचे जाते हैं और वे जीव पुद्गलका कथंचित् परिणामिपना होनेसे सिद्ध होते हैं। उस ही कथंचित् परिणामिपनाका यह विशेष व्याख्यान है। अथवा 'सामण्णपच्चया खलु चउरो' इत्यादि ७ गाथाओंमें जो पूर्वमें कहे गये सामान्यप्रत्यय ही इसप्रकार शुद्धनिश्चयनयसे कर्म को करते हैं, जीव नहीं करता है, ऐसा जैनमत है। एकांतरूप अकर्तृत्वसे सांख्यमतमें संसार के अभाव का दोष आता है, उस संसार के अभाव का दोष ~~आता है, उस संसारअभावके दोषका~~ ही यह विशेष दोष है। कैसे ? तो वहां एकांतसे कर्तृत्व का अभाव होनेसे संसार के अभाव का यह दोष आता है। यहां पुनः एकांतसे परिणामिपनाका अभाव होनेसे संसार के अभावका दोष आता है, जिसकारणसे भावकर्मके परिणामिपनाको ही कर्तृत्व और भोक्तृत्व कहते हैं। इसतरह जीवके परिणामित्व के कथन की मुख्यतासे ५ गाथायें पूर्ण हुओ। इसप्रकार पुण्यपापादिसातपदार्थोंके पीठिकारूपमहाधिकारमें जीवपुद्गलके परिणामित्वकी कथनकी मुख्यतासे ८ गाथाओंद्वारा पांचवा अंतराधिकार समाप्त हुवा ॥ १२७, १२८, १२९, १३० ॥

तथाहि– अथ '**जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोण्हंपि । अण्णाणी तावदु**' इत्यादि गाथाद्वये तावदज्ञानी जीवस्वरूपं पूर्वं भणितं स चाज्ञानी जीवो यदा '**विसयकसायुवगाढ**' इत्याद्यशुभोपयोगेम परिणमति तदा पापास्रवबंधपदार्थानां त्रयाणां कर्ता भवति । यदा तु मिथ्यात्वकषायाणां मंदोदये सति भोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिरूपेण दानपूजादिनिदानं (दानपूजादिना) परिणमति तदा पुण्यपदार्थस्यापि कर्ता भवतीति पूर्वं संक्षेपेण सूचितं '**जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव । णादं होदि विसेसंतरं तु**' इत्यादिगाथाचतुष्टयेन ज्ञानी जीवस्वरूपं च संक्षेपेण सूचितं । स च ज्ञानी जीवः शुद्धोपयोगभावपरिणतोऽभेदरत्नत्रयलक्षणेन भेदज्ञानेन यदा परिणमति तदा निश्चयचारित्राविनाभाविवीतरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा संवरनिर्जरामोक्षपदार्थानां त्रयाणां कर्ता भवतीत्यपि संक्षेपेण निरूपितं पूर्वं । निश्चयसम्यक्त्वस्याभावे यदा तु सराग सम्यक्त्वेन परिणमति तदा शुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा परंपरया निर्वाणकारणस्य तीर्थंकरप्रकृत्यादिपुण्यपदार्थस्यापि कर्ता भवतीत्यपि पूर्वं निरूपितं, तत्सर्वं जीवपुद्गलयोः कथंचित्परिणामित्वे सति भवतीति तत्कथंचित्परिणामित्वमपि पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां संक्षेपसूचनार्थं पूर्वमेव संक्षेपेण निरूपितं । पुनश्च जीवपुद्गलपरि-

---

अब '**जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोण्हंपि । अण्णाणी तावदु ।**' इत्यादि (७४-७५) दो गाथाओंद्वारा जो पहले अज्ञानीका स्वरूप कहा गया है वही अज्ञानी जीव जब '**विसयकसायुवगाढ**' इत्यादि (प्रवचनसार गाथा–१५८) विषयकषायमय अशुभोपयोग से परिणत होता है तब पाप, आस्रव और बंध इन तीन पदार्थोंका कर्ता होता है और जब वह अज्ञानी जीव मिथ्यात्वकषायोंका मंद उदय होते समय भोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिरूपसे दानपूजादिमय परिणमन करता है तब पुण्यपदार्थका भी कर्ता होता है। यह कथन संक्षेपमें पहले कहा गया है । और '**जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव । णादं होदि विसेसंतरं तु**' इत्यादि (७६ से ७९ तक) चार गाथाओंमें ज्ञानी जीवका स्वरूप संक्षेपमें पहले कथन किया है । वह ज्ञानी जीव शुद्धोपयोगभावसे परिणत अभेदरत्नत्रयलक्षणवाले भेदज्ञानसे (अखंड-अभेद की अनुभूतिसे) जब परिणत होता है,तब निश्चयचारित्रके साथ अविनाभावि वीतरागसम्यग्दर्शनमय होकर संवर, निर्जरा, और मोक्ष इन तीन पदार्थोंका कर्ता होता है। यह भी संक्षेपमें पहले कहा गया है। और जब बुद्धिपूर्वक निर्विकल्प अनुभूतिके अभावमें याने सम्यग्दर्शनसहित बुद्धिपूर्वक सविकल्प अवस्थामें परिणमन करता है, तब उस सविकल्प अवस्थामें भी शुद्धात्माही उपादेय है ऐसी श्रद्धा है और लब्धिरूप ज्ञानचारित्र भी शुद्धात्मानुभवमय है इसी समय जो सविकल्पभाव है उस समय आगमभाषासे परंपरासे निर्वाण के कारण कहे गये तीर्थंकरप्रकृति आदि पुण्य पदार्थका भी कर्ता होता है इसतरह ही पूर्वमें निरूपण किया गया है । वे सब परिणमन जीवके और पुद्गलके कथंचित् परिणामीपना होनेसे होते हैं । इसी तरह वह कथंचित् परिणामित्व भी पुण्यपापादिसप्तपदार्थोंका संक्षेपसूचन करनेके लिये पहले ही संक्षेपमें निरूपण किया है । और वही जीवपुद्गलके परिणामिपनाके व्याख्यानकालमें विशेषरूपसे कथन किया गया है । वहाँ इसप्रकार कथंचित् परिणामिपना सिद्ध होनेपर अज्ञानी और ज्ञानी जीव जो कि गुणके धारक हैं इन दोनों जीवोंके

णामित्वव्याख्यानकाले विशेषेण कथितं। तत्रैवं कथंचित्परिणामित्वे सिद्धे सति अज्ञानिज्ञानिजीवयोः गुणिनोः पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां संक्षेपसूचनार्थं संक्षेपव्याख्यानं कृतं। इदानीं पुनरज्ञानमयगुण-ज्ञानमयगुणयोः मुख्यत्वेन व्याख्यानं क्रियते। न च जीवाजीवगुणिमुख्यत्वेनेति। किमर्थमिति चेत्? तेषामेव पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां संक्षेपसूचनार्थमिति। तत्र '**जो संगं तु मुइत्ता**' इत्यादिगाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण गाथानवकपर्यंतं व्याख्यानं करोति। तत्रादौ गाथात्रयं ज्ञानभावमुख्यत्वेन तदनंतरं गाथाषट्कं ज्ञानिजीवस्य ज्ञानमयो भावो भवत्यज्ञानिजीवस्याज्ञानमयो भावो भवतीति मुख्यत्वेन कथ्यत इति षष्ठांतराधिकारे समुदाय पातनिका।

तद्यथा – कथंचित्परिणामित्वे सिद्धे सति ज्ञानी जीवो ज्ञानमयस्य भावस्य कर्ता भवतीत्यभिप्रायं मनसि संप्रधार्येदं सूत्रत्रयं प्रतिपादयति–

जो संगं तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पगं सुद्धं।
तं णिस्संगं साहुं परमट्ठवियाणया विंति ॥ १३१ ॥

जो संगं तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पगं सुद्धं यः परमसाधुर्वाह्याभ्यंतरपरिग्रहं मुक्त्वा

पुण्यपापादिसातपदार्थोंकी संक्षेपरूप से सूचना देनेके लिये ही संक्षेप व्याख्यान किया है। अब यहां अज्ञानमयगुण की और ज्ञानमयगुण की मुख्यता से व्याख्यान किया जाता है, लेकिन जीव और अजीव गुणीकी मुख्यतासे यह कथन नहीं है।

शंका– किसलिए?

समाधान– उनके ही (अज्ञानी और ज्ञानी जीवके ही) पुण्यपापादिसप्तपदार्थोंकी संक्षेपमें सूचना देने के लिये यह कथन किया गया है।

यहां '**जो संग तु मुइत्ता**' इत्यादि गाथासे शुरू करके पाठक्रमसे ९ गाथापर्यंत व्याख्यान करते हैं। 'उसमें पहले तीन गाथाओंमें ज्ञानभावकी मुख्यतासे कथन है, उसके वाद छह गाथाओंमें ज्ञानी जीवके ज्ञानमय भाव है और अज्ञानी जीवके अज्ञानमय (मिथ्यात्वीके मिथ्यात्वमय) भाव होते हैं इसी प्रकारके कथनकी मुख्यतासे वर्णन किया गया है। इसतरह छठे अंतर अधिकारकी समुदाय पातनिका हुवी।

उसीतरह– कथंचित् परिणामीपना सिद्ध होने पर ज्ञानी जीव ज्ञानमय भावका कर्ता होता है, ऐसा अभिप्राय मनमें धारण करके ये तीन सूत्र कहते हैं–

गाथार्थ– [**जो**] जो [**संगं तु**] वाह्य अभ्यंतर परिग्रहको [**मुइत्ता**] छोडकर अपने आपके आत्माको [**सुद्धं उवओगमप्पगं**] शुद्धोपयोगात्मक [**जाणदि**] अनुभवता है [**परमट्ठवियाणया**] परमार्थको जाननेवाले [**तं णिस्संगं साहुं**] उसको निस्संग साधु [**विंति**] कहते हैं।

टीकार्थ– जो परमसाधु वाह्य और अभ्यंतर परिग्रहको छोडकर वीतरागचारित्रके अविनाभूत भेदज्ञानसे अपने आत्माको जानता है, अनुभवता है।

वीतरागचारित्राविनाभूतभेदज्ञानेन जानाति अनुभवति। कं कर्मतापन्नं आत्मानं। कथंभूतं। विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावत्वादुपयोगस्तमुपयोगं ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणं। पुनरपि कथंभूतं। शुद्धं भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहितं। **तं णिस्संगं साहुं परमट्ठवियाणया विंति** तं साधुं निस्संगं संगरहितं विदंति जानंति ब्रुवंति कथयंति वा। के ते परमार्थविज्ञायका गणधरदेवादय इति ॥ १३१ ॥

जो मोहं तु मुइत्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विंति ॥ १३२ ॥

जो मोहं तु मुइत्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं यः परमसाधुः कर्ता समस्तचेतनाचेतनशुभाशुभपरद्रव्येषु मोहं मुक्त्वात्मशुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररूपयोगत्रयपरिहारपरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणेन मनुते जानाति। कं कर्मतापन्नं, आत्मानं। किं विशिष्टं? निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानेनाधिकं परिणतं परिपूर्णं। **तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विंति** तं साधुं कर्मतापन्नं जितमोहं निर्मोहं विदंति जानंति। के ते? परमार्थविज्ञायकास्तीर्थंकरपरमदेवादय इति। एवं मोहपदपरिवर्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायबुद्ध्युदयशुभाशुभपरिणामश्रोत्रचक्षुघ्राणजिह्वास्पर्शनसंज्ञानि विंशतिसूत्राणि व्याख्येयानि। तेनैव प्रकारेण निर्मलपरमचिज्ज्योतिःपरिणतेर्विलक्षणा असंख्येयलोकमात्रविभावपरिणामा ज्ञातव्याः ॥ १३२ ॥

शंका– अनुभवमें आनेवाला अपना आत्मा कैसा है?

समाधान– विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावमय होनेसे उपयोगवाला है, उस ज्ञानदर्शन उपयोग लक्षणवाले आत्मा को और भावकर्मरहित, द्रव्यकर्मनोकर्मरहित, शुद्धस्वभाववाले निज आत्माको अनुभवता है।

परमार्थको जाननेवाले गणधर देवादिक उसको निस्संग साधु है ऐसा कहते हैं ॥ १३१ ॥

गाथार्थ– [**जो**] जो [**मोहं**] मोहको [**तु मुइत्ता**] छोडकर [**आदं**] अपने आपको [**णाणसहावाधियं**] ज्ञानस्वभावमय [**मुणदि**] अनुभवता है। [**परमट्ठवियाणया**] परमार्थको जाननेवाले [**तं जिदमोहं साहुं**] उसको जितमोह साधु ऐसा [**विंति**] कहते हैं।

टीकार्थ– जो परमसाधु सब चेतनअचेतनशुभाशुभपरद्रव्योंका मोह छोडकर अपने शुभाशुभमनोवचनकायरूप तीनों योगोंसे रहित ऐसे परिणत होकर अभेदरत्नत्रयलक्षणवाले भेदज्ञान से निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानमय-परिपूर्ण अपने आत्मस्वभावको अनुभवता है। परमार्थके जाननेवाले तीर्थंकरपरमदेवादिक उस साधुको जितमोही, निर्मोही साधु ऐसा कहते हैं। इसप्रकार मोहके स्थानपर राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म मन, वचन, काय, बुद्धि, उदय, शुभाशुभपरिणाम, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना और स्पर्शन ऐसे २० पद बदलकर सूत्रोंकी व्याख्या करके समझ लेना चाहिए। उसीप्रकार निर्मलपरमचैतन्यज्योतिकी परिणतिसे विलक्षण ऐसे असंख्यातलोकमात्र विभाव परिणाम मोहके स्थानपर बदलकर जानना चाहिये ॥ १३२ ॥

अथ–

जो धम्मं तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पगं सुद्धं ।
तं धम्मसंगमुक्कं परमट्ठवियाणया विंति ।। १३३ ।।

जो धम्मं तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पगं सुद्धं यः परमयोगींद्रः स्वसंवेदनज्ञाने स्थित्वा शुभोपयोगपरिणामरूपं धर्मं पुण्यसंगं त्यक्त्वा निजशुद्धात्मपरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणेनाभेदज्ञानेन जानात्यनुभवति । कं कर्मतापन्नं । आत्मानं । कथंभूतं, विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोगपरिणतं । पुनरपि कथंभूतं । शुद्धं शुभाशुभसंकल्पविकल्परहितं । **तं धम्मसंगमुक्कं परमट्ठवियाणया विंति** तं परमतपोधनं निर्विकारस्वकीयशुद्धात्मोपलंभरूपनिश्चयधर्मविलक्षणभोगाकांक्षास्वरूपनिदानबंधादि-पुण्यपरिग्रहरूपव्यवहारधर्मरहितं विदंति जानंति । के ते परमार्थविज्ञायकाः प्रत्यक्षज्ञानिन इति । किं च कथंचित्परिणामित्वे सति जीवः शुद्धोपयोगेन परिणमति पश्चान्मोक्षं साधयति परिणामित्वाभावे बद्धो बद्ध एव शुद्धोपयोगरूपं परिणामांतरस्वरूपं न घटते ततश्च मोक्षाभाव इत्यभिप्रायः । एवं शुद्धोपयोगरूपज्ञानमयपरिणामगुणव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं ।। १३३ ।।

गाथार्थ– अब [**जो**] जो [**धम्मं**] व्यवहारधर्मको [**तु मुइत्ता**] छोडकर [**उवओगमप्पगं सुद्धं**] उपयोगात्मक शुद्धस्वभावमय आत्माको [**जाणदि**] अनुभवता है । [**परमट्ठवियाणया**] परमार्थको जाननेवाले [**तं धम्मसंगमुक्कं**] उसको धर्मके परिग्रहसे रहित ऐसा [**विंति**] कहते हैं ।

टीकार्थ– जो परमयोगींद्र स्वशुद्धात्मानुभवमें ठहरकर शुभोपयोगपरिणामरूप पुण्यमय-धर्म के संगको छोडकर निजशुद्धात्मपरिणतिरूप अभेदरत्नत्रयलक्षणरूप अभेदज्ञानसे स्वभावमय विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोगपरिणत और शुभाशुभसंकल्पविकल्पसे रहित ऐसे शुद्ध आत्मा को जो अनुभवता है । प्रत्यक्ष स्वानुभववाले-परमार्थको जाननेवाले उसको परमतपोधन, निर्विकार-स्वकीयशुद्धात्मोपलंभरूपनिश्चयधर्म के विलक्षण भोगाकांक्षास्वरूपनिदानबंधादिपुण्यपरिग्रहरूप-व्यवहार धर्मसे रहित है, ऐसा कहते हैं ।

कथंचित् परिणामिपना सिद्ध होनेसे जीव शुद्धोपयोगसे परिणमन करता है और पश्चात् मोक्ष प्राप्त करता है ।

यदि परिणामिपनाका अभाव मानोगे तो जो बद्ध है वह बद्ध ही रहेगा । वह शुद्धोपयोगरूप भिन्न परिणामस्वरूप (बद्ध अवस्थामें) घटित नही होगा । और परिणमन न होनेसे मोक्षका अभाव होगा, ऐसा अभिप्राय है । इस प्रकार शुद्धोपयोगरूप ज्ञानमयपरिणामगुण के व्याख्यानकी मुख्यतासे तीन गाथायें पूर्ण हुयी ।। १३३ ।।

तदनंतरं यथा ज्ञानमयाऽज्ञानमयभावद्वयस्य कर्ता भवति तथा कथयति–

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।
णाणिस्स दु णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स ॥ १३४ ॥ आ. ख्या. १२६।

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स यं भावं परिणामं करोत्यात्मा स तस्यैव भावस्यैव कर्ता भवति **णाणिस्स दु णाणमओ** स च भावोऽनंतज्ञानादिचतुष्टयलक्षणकार्यसमयसारस्योत्पादकत्वेन निर्विकल्पसमाधिपरिणतकारणसमयसारलक्षणेन भेदज्ञानेन सर्वारंभापरिणतत्वाज्ज्ञानिनो जीवस्य शुद्धात्मख्यातिप्रतीतिसंवित्युपलब्ध्यनुभूतिरूपेण ज्ञानमय एव भवति **अण्णाणमओ अणाणिस्स** अज्ञानिनस्तु पूर्वोक्तभेदज्ञानाभावात् शुद्धात्मानुभूतिस्वरूपाभावे सत्यज्ञानमय एव भवतीत्यर्थः ॥ १३४ ॥

अथ किं ज्ञानमयभावात्फलं भवति किमज्ञानमयाद्भवतीति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह–

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेन कम्माणि।

तदनंतर जैसे ज्ञानमयभाव, और अज्ञानमयभाव इन दोनों भावोंका कर्ता है वैसे उसका कथन करते हैं–

गाथार्थ– [**आदा**] आत्मा [**जं भावं**] जिस भावको [**कुणदि**] करता है [**सो**] वह [**तस्स भावस्स**] उस भाव का [**कत्ता**] कर्ता [**होदि**] होता है [**णाणिस्स**] ज्ञानीके [**णाणमओ**] ज्ञानमय भाव होता है [**दु**] लेकिन [**अणाणिस्स**] अज्ञानीके [**अण्णाणमओ**] अज्ञानमय भाव होता है ॥ १३४ ॥

टीकार्थ– आत्मा जिस भावको या परिणामको करता है वह उस कार्यसमयसारको उत्पादकपने से निर्विकल्पसमाधि परिणामसे परिणत कारणसमयसारलक्षणवाले भेदज्ञानसे, सर्व आरंभसे-सर्वारंभ परिणत होनेसे आत्मा के सभी गुणोंकी पर्यायोंमे एकदेशशुद्धी की परिणति होनेका आरंभ होनेसे, अपरिणत होनेसे ज्ञानी जीवकी शुद्धात्माकी ख्याति-प्रतीति-संवित्ति-उपलब्धि-अनुभूति-रूपसे ज्ञानमय ही होती है, लेकिन पूर्वोक्त भेदज्ञानके अभावसे, शुद्धात्मानुभूति स्वरूपका अभाव होनेसे अज्ञानीके अज्ञानमयभाव ही होते हैं, यह अर्थ है।

भावार्थ– स्वस्वभावशुद्धात्मानुभूति प्रकट होते ही चतुर्थ गुणस्थान प्रकट होता है, इसलिये ४ थे गुणस्थानसे सिद्धतक के जीव ज्ञानी है और पहले गुणस्थानसे ३ रे गुणस्थानतक के जीव अज्ञानी है ज्ञानीके सभी भाव ज्ञानमय है, अज्ञानीके सभी भाव अज्ञानमय है। सम्यग्ज्ञान ४ थे गुणस्थानसे शुरू होता है। और पहले तीन गुणस्थानके जीव सम्यग्ज्ञानी नहीं है ॥ १३४ ॥

अब ज्ञानमयभावसे क्या फल होता है और अज्ञानमयभावसे क्या फल होता है? इस प्रश्नका उत्तर कहते हैं–

गाथार्थ– [**अणाणिणो**] अज्ञानीके [**अण्णाणमओ**] अज्ञानमय [**भावो**] भाव

णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तह्या दु कम्माणि ।। १३५ ।। आ. ख्या. १

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेव कम्माणि स्वोपलब्धिभावनाविलक्षणत्वेनाज्ञानमयभावो भण्यते । कस्मात् । यस्मात्तेन भावेन परिणामेन कर्माणि करोत्यज्ञानी जीवः । **णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तह्या दु कम्माणि** ज्ञानिनस्तु निर्विकारचिच्चमत्कारभावनावशेन ज्ञानमयो भवति तस्माद् ज्ञानमयभावात् ज्ञानी जीवः कर्माणि न करोतीति । किं च यथा स्तोकोप्यग्निः तृणकाष्ठराशिं महांतमपि क्षणमात्रेण दहति । तथा त्रिगुप्तिसमाधिलक्षणो भेदज्ञानाग्निरंतर्मुहूर्त्तेनापि बहुभवसंचितं कर्मराशिं दहतीति ज्ञात्वा सर्वतात्पर्येण तत्रैव परमसमाधौ भावना कर्तव्येति भावार्थः ।। १३५ ।।

होता है [**तेण**] उस अज्ञानभावके कारण वह [**कम्माणि**] कर्मोंको [**कुणदि**] करता है [**दु**] और [**णाणिस्स**] ज्ञानीके [**णाणमओ**] ज्ञानमय भाव होता है [**तह्या दु**] इस कारण वह [**कम्माणि**] कर्मोंको [**ण**] नहीं [**कुणदि**] करता है ।

टीकार्थ– स्वोपलब्धिभावनासे (स्वानुभूतिसे) विलक्षणपना होनेके कारण जो भाव होते हैं उनको अज्ञानमय भाव कहते हैं । जिससे कि वह अज्ञानी जीव उस भावसे-उस परिणामसे कर्मोंको करता है । लेकिन ज्ञानीके निर्विकारचैतन्यचमत्कारभावभासना के वश होनेसे ज्ञानमय भाव होते हैं, इसलिए ज्ञानमयभावसे ज्ञानी जीव कर्मोंको नहीं करता है । जैसे थोडी भी अग्नि बडे भारी भी तृण काठके राशींको (ढेरको) क्षणमात्रमें भस्म कर देती है; वैसे तीनगुप्तिसमाधि (स्वानुभूति) लक्षणवाली भेदज्ञानमय अग्नि अंतर्मुहूर्तमें भी अनेक भवोंमें संचित की हुई कर्मराशीको नष्ट करती है, यह जानकर सब तात्पर्यसे परमसमाधिमें भावभासना (स्वानुभव) करना चाहिये, यह भावार्थ है ।

भावार्थः–

आगमभाषासे	अध्यात्मभाषासे
१) तीन गुप्तिसे अंतर्मुहूर्तमें कर्मराशी नष्ट होती है।	१) शुद्धात्मामय स्वभावका अनुभव करनेसे (भेदज्ञानमय अग्निसे) विकारीभाव नष्ट होते है।
२) यह जानकर परमसमाधिकी भावभासना करनी चाहिये ।	२) यह जानकर स्वानुभूति लेनी चाहिये ।

स्वानुभूतिसे ही सम्यग्ज्ञानी होता है। स्वानुभवसे ही चतुर्थपंचमादि सिद्धतक पर्याय प्रकट होती है ।। १३५ ।।

अथ ज्ञानमय एव भावो भवति ज्ञानिनो जीवस्य न पुनरज्ञानमयस्तथैवाज्ञानमय एव भवत्यज्ञानिजीवस्य न पुनर्ज्ञानमयः किमर्थमिति चेत्–

णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा दु णाणमया ॥ १३६ ॥

॥ आ. ख्या. १२८ ॥

अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायए भावो ।
तह्मा सव्वे भावा अण्णाणमया अणाणिस्स ॥ १३७ ॥

॥ आ. ख्या. १२९ ॥

णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो जह्मा ज्ञानमयाद् भावाद् निश्चयरत्नत्रयात्मकजीवपदार्थाद् ज्ञानमय एव जायते भावः स्वशुद्धात्मावाप्तिलक्षणो मोक्षपर्यायो यस्मात्कारणात् **तह्मा णाणिस्स सव्वे भावा दु णाणमया** तस्मात्कारणात्स्वसंवेदनलक्षणभेदज्ञानिनो जीवस्य सर्वे भावाः परिणामा ज्ञानमया ज्ञानेन निर्वृत्ता भवंति । तदपि कस्मात्, उपादानकारणसदृशं कार्यं भवतीति वचनात् । न हि यवनालबीजे वपिते राजान्नशालिफलं भवतीति । तथैव च

ज्ञानी जीवका ज्ञानमय ही भाव होता है, अज्ञानमय भाव नहीं होता है, अज्ञानी जीवका अज्ञानमय ही भाव होता है, ज्ञानमय भाव नहीं होता है । कैसे ? तो यहां कहते हैं–

गाथार्थ– [**जम्हा**] जिस कारण [**णाणमया भावाओ च**] ज्ञानमय भावसे [**णाणमओ एव**] ज्ञानमय ही [**भावो**] भाव [**जायदे**] उत्पन्न होता है । [**तह्मा**] इस कारण [**णाणिस्स**] ज्ञानीके [**सव्वे भावा**] सब भाव [**णाणमया**] ज्ञानमय है [**दु**] लेकिन [**अण्णाणमया भावा**] अज्ञानमय भावसे [**अण्णाणो एव**] अज्ञानमय ही [**भावो**] भाव [**जायए**] होता है [**तह्मा**] इस कारण [**अणाणिस्स**] अज्ञानीके [**अण्णाणमया**] अज्ञानमय ही [**भावा**] भाव होते हैं ।

टीकार्थ– जिस कारणसे निश्चयरत्नत्रयात्मक जीवपदार्थरूप ज्ञानमय भावसे ज्ञानमय भाव ही उत्पन्न होता है, वह ज्ञानमय भाव स्वशुद्धात्माकी अनुभूति लक्षणवाली (स्वभावपर्याय) मोक्षपर्याय है । इसलिये स्वसंवेदनलक्षणवाले (स्वानुभूतिलक्षणवाले) भेदज्ञानी जीवके (चतुर्थगुणस्थानसे शुरू करके आगेके सभी जीवोंके) सभी भाव या परिणाम ज्ञानमय है, ज्ञानसे निर्वृत्त (रचे हुअे अथवा प्रकट होनेवाले) हैं ।

शंका– वह कैसे ?

समाधान– क्योंकि उपादानकारण के सदृश ही कार्य होता है, ऐसा आगमवचन है । उदा:– यव नालबीज (ज्वारबीज) के बोनेपर बासमती चावल पैदा नहीं हो सकता है ।

अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायए भावो अज्ञानमयाद्भावाज्जीवपदार्थात् अज्ञानमय एव जायते भावः पर्यायो यस्मात्कारणात् तह्मा सव्वे भावा अण्णाणमया अणाणिस्स यतः एवं तस्मात्कारणात्सर्वे भावाः परिणामा अज्ञानमया मिथ्यात्वरागादिरूपा भवंति। कस्य अज्ञानिनः शुद्धात्मोपलब्धिरहितस्य मिथ्यादृष्टेर्जीवस्येति ।। १३६, १३७ ।।

अथ तदेव व्याख्यानं दृष्टांतदार्ष्टांताभ्यां समर्थयति–

कणयमया भावादो जायंते कुंडलादयो भावा।
अयमयया भावादो जह जायंते तु कडयादी ।। १३८ ।।

।। आ. ख्या. १३० ।।

अण्णाणमया भावा अण्णाणिणो बहुविहा वि जायंते।
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति ।। १३९ ।।

।। आ. ख्या. १३१ ।।

कनकमयाद्भावात्पदार्थात् 'उपादानकारणसदृशं कार्यं भवतीति' कृत्वा कुंडलादयो भावाः पर्यायाः कनकमया एव भवंति। अयोमयाल्लोहमयाद्भावात्पदार्थाद् अयोमया एव भावाः पर्यायाः कटकादयो भवंति यथा केन प्रकारेणेति दृष्टांतगाथा गता। अथ दार्ष्टांतमाह अण्णाणेति

और उसी प्रकार जिसकारणसे अज्ञानमयभाववाले जीवपदार्थसे अज्ञानमय भाव (पर्याय) ही उत्पन्न होता है, उस कारण से सभी पर्यायें अथवा सभी परिणाम अथवा सभी भाव अज्ञानमय हैं, वे अज्ञानमय परिणाम मिथ्यात्वरागादिरूप होते हैं।

शंका– ये अज्ञानमय मिथ्यात्वरागादि परिणाम किसके होते हैं?

समाधान– स्वानुभूतिसे रहित अज्ञानी मिथ्यादृष्टिजीव के (१ से ३ गुणस्थानतक के जीव के) अज्ञानमय मिथ्यात्वरागादि परिणाम (विभाव पर्याय) होते हैं ।। १३६, १३७ ।।

अब उस ही कथनका दृष्टांत दार्ष्टांतसे समर्थन करते हैं–

गाथार्थ– [जह] जैसे [**कणयमया भावादो**] सुवर्णमय भावसे [**कुंडलादयो भावा**] सुवर्णमयकुंडलादिक भाव [**जायंते**] होते हैं [तु] और [**अयमयया भावादो**] लोहमय भावसे [**कडयादि**] लोहमयी कडे इत्यादिक भाव होते हैं, [तहा] उसी प्रकार [**अणाणिणो**] अज्ञानीके [**अण्णाणमया**] अज्ञानमय [**भावा**] भावसे [**बहुविहा वि**] अनेक तरहके अज्ञानमय भाव [**जायंते**] होते हैं [दु] और [**णाणिस्स**] ज्ञानीके [**सव्वे**] सभी [**णाणमया भावा**] ज्ञानमय भाव होने से ज्ञानमय ही [**होंति**] हैं।

टीकार्थ– "उपादान कारण के समान ही कार्य होता है" इस सिद्धांतके अनुसार सुवर्णमयपदार्थसे सुवर्णमय ही कुंडलादिक पर्यायें उत्पन्न होती है। और लोहमय पदार्थसे कड़ा आदिक ही बनते हैं। यह दृष्टांत गाथा हो गयी। अब दार्ष्टांत कहते हैं। उस पूर्वोक्त लोह

तथा पूर्वोक्तलोहदृष्टांतेनाज्ञानमयाद्भावाज्जीवपदार्थादज्ञानिनो भावाः पर्याया बहुविधा मिथ्यात्वरागादिरूपा अज्ञानमया जायंते । तथैव च पूर्वोक्तजांबूनददृष्टांतेन ज्ञानिनो जीवस्य ज्ञानमयाः सर्वे भावाः पर्याया भवंति । किं च विस्तरः वीतरागस्वसंवेदनभेदज्ञानी जीवः यं शुद्धात्मभावनारूपं परिणामं करोति स परिणामः सर्वोपि ज्ञानमयो भवति । ततश्च येन ज्ञानमयपरिणामेन संसारस्थितिं हित्वा देवेंद्रलौकांतिकादिमहर्द्धिकदेवो भूत्वा घटिकाद्वयेन मतिश्रुतावधिरूपं ज्ञानमयभावं पर्यायं लभते । ततश्च विमानपरिवारादिविभूतिं जीर्णतृणमिव गणयन्पंचमहाविदेहे गत्वा पश्यति । किं पश्यतीति चेत्, तदिदं समवसरणं त एते वीतरागसर्वज्ञास्त एते भेदाभेदरत्नत्रयाराधनापरिणता गणधरदेवादयो ये पूर्वं श्रूयंते परमागमे ते दृष्टाः प्रत्यक्षेणेति मत्वा विशेषेण दृढधर्ममतिर्भूत्वा तु चतुर्थगुणस्थानयोग्यां शुद्धात्मभावनामपरित्यजन्निरंतरं धर्मध्यानेन देवलोके कालं गमयित्वा, पश्चान्मनुष्यभवे राजाधिराज महाराजार्द्धमंडलीकमहामंडलिकबलदेवकामदेवचक्रवर्त्तितीर्थंकरपरमदेवाधिदेवपदे लब्धेपि पूर्वभववासनावासितशुद्धात्मरूपं भेदभावनाबलेन मोहं न गच्छति रामपांडवादिवत् । ततश्च जिनदीक्षां गृहीत्वा सप्तर्द्धिचतुर्ज्ञानमयभावं पर्यायं

दृष्टांत की तरह अज्ञानी जीव-पदार्थरूप अज्ञान भावसे वहुविध मिथ्यात्वरागादिरूप अज्ञानमय पर्यायें प्रकट होती हैं ।

उसी प्रकार पूर्वोक्त सुवर्णके दृष्टांतकी तरह ज्ञानी जीवकी सव ज्ञानमय पर्यायें होती हैं । इसका विस्तार यह है कि, शुद्धात्मानुभव करनेवाला भेदज्ञानी जीव जो शुद्धात्मभावभासना (शुद्धात्मानुभव) परिणाम करता है वे सव परिणाम ज्ञानमय ही है । इसलिये इस ज्ञानमय-परिणामसे संसार स्थितिको कम करके देवेंद्र-लोकांतिकादि महर्द्धिक देव होकर दो घडीमें सुमति-श्रुत- अवधिरूप ज्ञानमय भाव (पर्याय) प्राप्त करता है । तव वह इस प्राप्त हुअी विमान, परिवार आदि विभूतिको जीर्ण तृण के समान मानता हुआ पंचमहाविदेह क्षेत्रमें जाकर देखता है कि, वह यह समवशरण है, वे ये वीतराग सर्वज्ञ हैं और वे ये सव भेदाभेदरत्नत्रयकी आराधना करनेवाले गणधरादिक हैं, जो पूर्वमें परमागममें सुना है, वे ही यहां प्रत्यक्ष है, यह जानकर विशेपरूपसे धर्ममें दृढमति होकर और चतुर्थगुणस्थानयोग्य शुद्धात्मानुभूतिको (शुद्धात्मभावनाको) न त्यागता हुआ निरंतर धर्मध्यानसे देवलोकमें (स्वर्गमें) काल बिताकर पश्चात् मनुष्यभवमें राजाधिराज, महाराजा, अर्धमंडलिक, महामंडलिक, बलदेव, कामदेव, चक्रवर्ति, तीर्थंकर, परमदेवाधिदेव पद प्राप्त होते हुअे भी पूर्वभवकी वासनासे (संस्कारसे) युक्त शुद्धात्मामय भेदज्ञानके-शुद्धात्मानुभवके वलसे मोह को प्राप्त नहीं होता है, जैसे राम, पांडव आदि (गृहस्थ जीवनमें कुछ कालतक थे तो भी शुद्धात्मानुभूतिवाले थे) । और उसके वाद जिनदीक्षा ग्रहण करके सात प्रकारकी ऋद्धि, चार प्रकारके सम्यग्ज्ञानमय भाव (पर्याय) को प्राप्त करता है । तदनंतर

लभते। तदनंतरं समस्तपुण्यपापपरिणामपरिहारपरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणेन द्वितीयशुक्लध्यानरूपेण विशिष्टभेदभावनाबलेन स्वात्मभावनोत्थसुखामृतरसेन तृप्तो भूत्वा सर्वातिशयपरिपूर्णलोकत्रयाधिपाराध्यं परमाचिंत्यविभूतिविशेषं केवलज्ञानरूपं भावं पर्यायं लभत इत्यभिप्रायः। अज्ञानिजीवस्तु मिथ्यात्वरागादिमयमज्ञानभावं कृत्वा नरनारकादिरूपं भावं पर्यायं लभत इति भावार्थः। एवं ज्ञानमयाज्ञानमयभावकथनमुख्यत्वेन गाथाषट्कं गतं। इति पूर्वोक्तप्रकारेण पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां पीठिकारूपेण महाधिकारे कथंचित्परिणामित्वे सति ज्ञानिजीवो ज्ञानमयभावस्य कर्ता तथैव चाज्ञानिजीवोऽज्ञानमयस्य भावस्य कर्ता भवतीति, व्याख्यानमुख्यतया गाथानवकेन षष्ठोन्तराधिकारः समाप्तः॥ १३८, १३९॥

अथ पूर्वोक्त एवाज्ञानमयभावो द्रव्यभावगतपंचप्रत्ययरूपेण पंचविधो भवति स चाज्ञानिजीवस्य शुद्धात्मैवोपादेय इत्यरोचमानस्य तमेव शुद्धात्मानं स्वसंवेदनज्ञानेनाजानतस्तमेव परमसमाधिरूपेणाभावयतश्च बंधकारणं भवतीति सप्तमांतराधिकारे समुदायपातनिका—

आगमभाषासे	अध्यात्मभाषासे
समस्त पुण्यपापपरिणामसे रहित द्वितीय शुक्लध्यानसे सर्व अतिशयपरिपूर्णलोकत्रयअधिपाराध्य परम अचिंत्य विभूति विशेष केवलज्ञान भाव-पर्याय प्रकट होती है।	अभेदरत्नत्रयमय विशिष्ट भेदभावनाबलसे (स्वानुभूतिकी दृढतासे) स्वात्मभावभासनासे उत्पन्न हुओ सुखामृतरससे तृप्त होकर परम अचिंत्य विभूति विशेष केवलज्ञान भावपर्याय प्रकट होती है।

ऐसा अभिप्राय है। किन्तु अज्ञानी जीव मिथ्यात्वरागादिमय अज्ञान भाव करके नरनारकादि (चतुर्गति) रूप भाव-पर्याय प्राप्त करता है, ऐसा भावार्थ है।

इसप्रकार ज्ञानमय अज्ञानमय भाव कथन करनेकी मुख्यतासे ६ गाथायें हो गयी। इसी प्रकार पूर्वोक्तप्रकारसे पुण्यपापादिसातपदार्थोंके पीठिकारूप महाधिकारमें कथंचित् परिणामित्व होनेसे ज्ञानी जीव ज्ञानमय भावका कर्ता है और उसी प्रकार अज्ञानी जीव अज्ञानमय भावका कर्ता हैं। इस व्याख्यान की मुख्यतासे नौ गाथाओंमें छट्टा अंतर अधिकार समाप्त हुआ॥ १३८, १३९॥

जो पहले अज्ञानमय भाव कहा था वह अज्ञानमय भाव ही द्रव्यगत और भावगत पांचप्रत्ययरूपसे पांच प्रकारका है। और वह अज्ञानी जीवका भाव 'शुद्ध आत्मा ही उपादेय है' इस प्रकारकी रूचिको नहीं रखनेवाले तथा उसी अपनी शुद्धात्माको स्वसंवेदन ज्ञानके द्वारा नहीं जाननेवाले एवं उसी अपनी शुद्धात्माको परम समाधि (निर्विकल्पभाव अथवा स्वानुभूति) से नहीं अनुभव करनेवाले अज्ञानी जीवके कर्मबंधका कारण होता है, ऐसी सातवे अंतर अधिकारकी समुदाय पातनिका है—

गाथार्थ— [**जीवाणं**] जीवोंका [**जं अतच्चसद्दहणं**] जो अतत्त्वश्रद्धान होता हैं [**दु**] वह [**मिच्छत्तस्स**] मिथ्यात्वका [**उदओ**] उदय है, और [**जीवाणं**] जीवोंका [**जं अविरदत्तं**] जो स्वभावमें रतत्व-मग्नपना नहीं है [**दु**] वह [**असंजमस्स**] असंयमका

मिच्छत्तस्स दु उदओ जं जीवाणं अतच्चसद्दहणं ।
असंजमस्स दु उदओ जं जीवाणं अविरदत्तं ॥ १४० ॥

॥ आ. ख्या. १३२ ॥

अण्णाणस्स दु उदओ जं जीवाणं अतच्चउवलद्धि ।
जो दु कसाउवओगो सो जीवाणं कसाउदओ ॥ १४१ ॥

॥ आ. ख्या. १३३ ॥

तं जाण जोग उदयं जो जीवाणं तु चिट्ठउच्छाओ ।
सोहणमसोहणं वा कायव्वो विरदिभावो वा ॥ १४२ ॥

॥ आ. ख्या. १३४ ॥

एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागयं जं तु ।
परिणमदे अट्ठविहं णाणावरणादिभावेहिं ॥ १४३ ॥

॥ आ. ख्या. १३५ ॥

तं खलु जीवणिबद्धं कम्मइयवग्गणागयं जइया ।
तइया दु होदि हेदु जीवो परिणामभावाणं ॥ १४४ ॥

॥ आ. ख्या. १३६ ॥

[उदओ] उदय है, और [जीवाणं] जीवोंकी [जं अतच्चउवलद्धी] जो अतत्त्वोपलब्धि याने स्वानुभूतिका अभाव होता है [दु] वह [अण्णाणस्स] अज्ञानका [उदओ] उदय है और [जीवाणं] जीवोंका [जो] जो [कसाउवओगो] कषाय सहित उपयोग याने मलीन उपयोग है [सो] वह [कसाउदओ] कषायका उदय है और [जीवाणं] जीवोंका [जो] जो [चिट्ठउच्छाओ] चेष्टा अथवा मन, वचन, कायके व्यापार का उत्साह है [तं जोगउदयं] उसको योग का उदय [जाण] जानो [वा] अथवा [कायव्वो विरदिभावो] कार्यमें (बाह्य क्रियामें) रतिभाव वह [सोहणमसोहणं] शुभ अशुभ है। [तु] और [एदेसु हेदुभूदेसु] पूर्वोक्तप्रकार ये सब निमित्तरूप कारण होनेपर [जं] जो [कम्मइयवग्गणागयं] कर्मवर्गणाओंका समूह आता है वह [णाणावरणादिभावेहिं] ज्ञानावरणादिभावद्वारा [अट्ठविहं] आठ प्रकारसे [परिणमदे] परिणमन करता है [दु] और [जइया] जब तक [खलु] निश्चयसे [तं कम्मइयवग्गणागयं] वह आगत कर्मवर्गणा कर्मरूपसे [जीवणिबद्धं] जीव के साथ निबद्ध [होदि] होती है [तइया] तब तक [जीवो] जीव [परिणामभावाणं] अपने परिणाम भावोंका [हेदु] कारण है।

मिच्छत्तस्स दु उदओ जं जीवाणं अतच्चसद्दहणं मिथ्यात्वस्योदयो भवति जीवानामनंतज्ञानादिचतुष्टयरूपं शुद्धात्मतत्त्वमुपादेयं विहायान्यत्र यच्छ्रद्धानं रूचिरूपादेयबुद्धिः **असंजमस्स दु उदओ जं जीवाणं अविरदत्तं** असंयमस्य च स उदयो भवति जीवानामात्मसुखसंवित्त्यभावे सति विषयकषायेभ्यो यदनिवर्त्तनमिति । अथ-**अण्णाणस्स दु उदओ जं जीवाणं अतच्चउवलद्धि** अज्ञानस्योदयो भवति यत्किं भेदज्ञानं विहाय जीवानां विपरीतरूपेण परद्रव्यैकत्वेनोपलब्धिः प्रतीतिः **जो दु कसाउवओगा सो जीवाणं कसाउदओ** स जीवानां कपायोदयो भवति यः शांतात्मोपलब्धिलक्षणं शुद्धोपयोगं विहाय क्रोधादिकषायरूप उपयोगः परिणाम इति । अथ- **तं जाण जोग उदयं जं जीवाणं तु चिट्ठउच्छाहो** तं योगोदयं जानीहि त्वं हे शिष्य जीवानां मनोवचनकायवर्गणाधारेण वीर्यांतरायक्षयोपशमजनितः कर्मादानहेतुरात्मप्रदेशपरिस्पंदलक्षणः प्रयत्नरूपेण यस्तु चेष्टोत्साहो व्यापारोत्साहः **सोहणमसोहणं वा कायव्वो विरदिभावो वा** स च शुभाशुभरूपेण द्विधा भवति । तत्र व्रतादिकर्तव्यरूपः शोभनः पश्चादव्रतादिरूपो वर्जनीयः स चाशोभनः इति । अथ-**एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागयं जं तु** एतेषु पूर्वोक्तेषूदयागतेषु हेतुभूतेषु यत् मिथ्यात्वादिपंचप्रत्ययेषु कार्मणवर्गणागतं परिणतं यदभिनवं नवतरं पुद्गलद्रव्यं **परिणमदे अट्ठविहं णाणावरणादिभावेहिं** जीवस्य सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकपरिणतिरूपपरमसामायिकाभावे सति ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मरूपेणाष्टविधं परिणमतीति । अथ-**तं खलु जीवणिबद्धं कम्मइयवग्गणागयं जइया**

टीकार्थ- अनंतज्ञानादिचतुष्टयरूप शुद्धात्मतत्त्व उपादेय है, उसे छोडकर जीवोंकी जो अन्यत्र रूचिरूप उपादेय बुद्धि होती है वह श्रद्धान मिथ्यात्वका उदय है। आत्मोत्थ सुखसंवेदनके अभाव होनेपर जो विषयकषायोंसे दूर नहीं होना है (याने १ से ३ गुणस्थानतक के जीवको स्वानुभव नहीं है इसलिये विषयकषायमें मग्न है) वह संसारी जीवोंके असंयमका उदय है।

भेदज्ञानको छोडकर जीवोंका जो विपरीत अभिनिवेशरूपसे परद्रव्यके साथ एकत्व की प्रतीति, वह अज्ञानका उदय है। प्रशांत निर्विकल्प आत्मानुभूतिलक्षणवाले शुद्धोपयोगको छोडकर जो क्रोधादिकषायरूप उपयोग परिणाम है, वह जीवोंके कषाय का उदय हैं।

हे शिष्य ! जीवोंका मनवचनकाय की वर्गणाके आधारसे वीर्यांतरायके क्षयोपशमजनित कर्मोंके आनेमें हेतुभूत जो आत्मप्रदेशोंका परिस्पंदनलक्षणवाले प्रयत्नरूपसे जो व्यापार-उत्साह या चेष्टोत्साह उसको योग का उदय जानो। और वह योग का उदय शुभ, अशुभरूपसे दो प्रकारका है। वहां जो व्रतादिक को कर्तव्य मानकर उनके करनेमें उत्साह होता है उसे शुभ योग कहते हैं। तथा उनके बाद जो नहीं करनेके योग्य अव्रतादिरूप है उनके करनेमें जो उत्साह है, उसे अशुभ योग कहते हैं।

जीवके सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप अभेद-एकपरिणतिके अभावमें ये पूर्वोक्त उदयागत हेतुभूत मिथ्यात्वादि पांच प्रत्यय रहनेपर जो नवतर-आगत कार्मणवर्गणा परिणत पुद्गल द्रव्य है वह ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके द्रव्यकर्मरूपसे परिणमन करता है।

तत्पूर्वोक्तसूत्रोदितं कर्मवर्गणायोग्यमभिनवं पुद्गलद्रव्यं जीवनिबद्धं जीवसंबद्धं योगवशेनागतं यदा भवति खलु स्फुटं **तइया दु होदि हेदु जीवो परिणामभावाणं** तदा काले पूर्वोक्तेषूदयागतेषु द्रव्य-प्रत्ययेषु निमित्तभूतेषु सत्सु स्वकीयगुणस्थानानुसारेण जीवो हेतुः कारणं भवति केषां परिणाम-रूपाणां भावानां प्रत्ययानामिति । किंच उदयागतद्रव्यप्रत्ययनिमित्तेन मिथ्यात्वरागादिभावप्रत्यय-रूपेण परिणम्य जीवो नवतरकर्मबंधस्य कारणं भवतीति तात्पर्यं । अयमत्र भावार्थः, उदयागतेषु द्रव्यप्रत्ययेषु यदि जीवः स्वस्वभावं मुक्त्वा रागादिरूपेण भावप्रत्ययेन परिणमतीति तदा बंधो भव-तीति नैवोदयमात्रेण घोरोपसर्गेपि पांडवादिवत्, यदि पुनरुदयमात्रेण बंधो भवति तदा सर्वदैव संसार एव । कस्मादिति चेत् संसारिणां सर्वदैव कर्मोदयस्य विद्यमानत्वात् । इति पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां पीठिकारूपे महाधिकारेऽज्ञानिभावः पंचप्रत्ययरूपेण शुद्धात्मस्वरूपच्युतानां जीवानां बंधकारणं भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन पंचगाथाभिः सप्तमोन्तराधिकारः समाप्त ॥ १४०, १४१, १४२, १४३, १४४ ॥

जब पूर्वसूत्रमें कहे हुअे कर्मवर्गणा योग्य अभिनव पुद्गल द्रव्य जीवके साथ संबद्ध होते समय योग के वशसे आते हैं तब उसी समय पूर्व कथित उन सत्रूप उदयागत द्रव्यप्रत्ययोंके उदयोंमें अपने अपने गुणस्थानके अनुसार होनेवाले अपने अपने परिणामरूप भाव प्रत्ययोंका यह जीव कारण होता है ।

और विशेष कहते हैं, उदयागत द्रव्यप्रत्ययके निमित्तमें मिथ्यात्वरागादि भावप्रत्यय-रूपसे जीव परिणमन करके नवतरबंधका कारण होता है, यह तात्पर्य है ।

इसका भावार्थ यह है कि, उदयागत द्रव्यप्रत्ययोंके रहनेपर यदि जीव स्वस्वभावको छोडकर रागादिरूप-भावप्रत्ययरूप परिणमन करता है तब बंध होता है, जैसे पांडवोंको घोरोप-सर्ग होते हुअे भी वे स्वभावसे चलायमान नहीं हुअे वैसे कर्मोदयके उदयमात्रसे जीव रागादिरूप परिणमन नहीं करता है तब बंध भी नहीं होता है ।

यदि कर्मोंके उदयमात्रसे बंध हो जायेगा तो सभी वक्त (सर्वदा) संसार ही रहेगा ।

शंका— कैसे ?

समाधान— क्योंकि संसारी जीवोंको सर्वदा कर्मोंका उदय विद्यमान रहनेसे वे संसारी ही रहेंगे । (कोई भी मुक्त नहीं होगा) ।

इस प्रकार पुण्यपापादिसप्तपदार्थोंके पीठिकारूप महाधिकारमें अज्ञानी के भाव पांच प्रत्ययरूपसे, शुद्धात्मानुभवसे भ्रष्ट रहनेवाले जीवोंके बंधके कारण है । इस कथन की मुख्यतासे पांच गाथाओंके द्वारा सातवां अंतराधिकार पूर्ण हुआ ॥ १४०, १४१, १४२, १४३, १४४ ॥

अतः परं जीवपुद्गलयोः परस्परोपादानकारणनिषेधमुख्यत्वेन गाथात्रयमित्यष्टमांतराधिकारे समुदायपातनिका। अथ निश्चयेन कर्मपुद्गलात्पृथग्भूत एव जीवस्य परिणाम इति प्रतिपादयति–

जीवस्स दु कम्मेण य सह परिणामा दु होंति रागादि।
एवं जीवो कम्मं च दो वि रागादिमावण्णा ॥ १४५ ॥

॥ आ. ख्या. १३७ ॥

एकस्स दु परिणामो जायदि जीवस्स रागमादीहिं।
ता कम्मोदय हेदूहिं विणा जीवस्स परिणामो ॥ १४६ ॥

॥ आ. ख्या. १३८ ॥

जीवस्स दु कम्मेण य सह परिणामा होंति रागादि यदि जीवस्योपादानकारणभूतस्य कर्मोदयेनोपादानभूतेन सह रागादिपरिणामा भवंति। **एवं जीवो कम्मं च दो वि रागदिमावण्णा** एवं द्वयोर्जीवपुद्गलयोः रागादिपरिणामानामुपादानकारणत्वे सति सुधाहरिद्रयोरिव द्वयोरागित्वं प्राप्नोति स च प्रत्यक्षविरोध इति। अथ **एकस्स दु परिणामो जायदि जीवस्स रागमादीहिं**

अब आठवे अंतराधिकारमें समुदायपातनिका यह है कि, जीव और पुद्गल ये दोनों परस्परमें उपादान कारण नहीं होते हैं, इस प्रकारसे कथन करनेवाली तीन गाथायें हैं।

अब निश्चयनयसे जीवका परिणाम कर्मपुद्गलोंसे भिन्न ही है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं–

गाथार्थ– [**जीवस्स**] जीवके जो [**परिणामा**] परिणाम [**रागादि**] रागादिक हैं वे [**दु**] निश्चयसे [**कम्मेण य सह**] कर्मके साथ होते हैं [**एवं दु**] इस प्रकार तो [**जीवो च कम्मं**] जीव और कर्म [**दो वि**] ये दोनों ही [**रागादिमावण्णा**] रागादि परिणामको प्राप्त हो जायेंगे। अतः यह सिद्ध हुआ कि [**रागमादीहिं**] इन रागादिकों से [**एकस्स जीवस्स दु**] एक जीवका ही [**परिणामो**] परिणाम [**जायदि**] उत्पन्न होता है [**ता**] वह [**कम्मोदय हेदुहिं विना**] कर्म के उदयरूप निमित्त कारणसे पृथक् [**जीवस्स परिणामो**] एक जीवका ही परिणाम है।

टीकार्थ– यदि उपादान कारणभूत जीवके रागादि परिणाम उपादानभूत कर्मोदय के साथ होते हैं, ऐसा मानाजाय तो, जैसे चूना और हल्दी एकत्र करनेसे चूना लाल होता है और हल्दी भी लाल होती है, वैसे जीव और पुद्गल इन दोनोंको रागादिपरिणामोंका उपादान कारणत्व हो जानेसे जीव रागित्वको प्राप्त होगा और पुद्गल भी रागित्वको प्राप्त होगा (यह आपत्ति आयेगी)। और उससे पुद्गलको चेतनपना प्राप्त होगा (याने पुद्गलको चेतन मानना पडेगा)। और वह प्रत्यक्षके विरुद्ध है।

अथाभिप्रायो भवतां पूर्वदूषणभयादेकस्य जीवस्यैकांतेनोपादानकारणस्य रागादिपरिणामो जायते **ता कम्मोदयहेदूहिं विणा जीवस्स परिणामो** तस्मादिदं दूषणं कर्मोदयहेतुभिर्विनापि शुद्धजीवस्य रागादिपरिणामो जायते स च प्रत्यक्षविरोध आगमविरोधश्च । अथवा द्वितीयव्याख्यानं एकस्य जीवस्योपादानकारणभूतस्य कर्मोदयोपादानहेतुभिर्विना रागादिपरिणामो यदि भवति तदा सम्मतमेव । किं च ~~द्रव्यकर्मणामनुपचरितासद्भूतव्यवहारस्यापेक्षया~~ निश्चयसंज्ञां लभते, तथापि शुद्धात्मद्रव्यविषयभूतस्य शुद्धनिश्चयस्यापेक्षया वस्तुवृत्त्या व्यवहार एवेति भावार्थः । ॥ १४५, १४६ ॥

अथ निश्चयेन जीवात्पृथग्भूत एव पुद्गलकर्मणः परिणाम इति निरूपयति–

जइ जीवेण सहच्चिय पुग्गलदव्वस्स कम्मपरिणामो ।
एवं पुग्गलजीवा हु दो वि कम्मत्तमावण्णा ॥ १४७ ॥

॥ आ. ख्या. १३९ ॥

एकस्स दु परिणामो पुग्गलदव्वस्स कम्मभावेण ।
ता जीवभावहेदूहिं विणा कम्मस्स परिणामो ॥ १४८ ॥

॥ आ. ख्या. १४० ॥

यदि पूर्व दूषणके भयसे एकांतसे एक जीवके उपादानकारणसे रागादि परिणाम उत्पन्न होंगे ऐसा आपका अभिप्राय हो तो, इससे यह दोष आयेगा कि कर्मोदय हेतु के विना भी शुद्धजीवको रागादिपरिणाम उत्पन्न होंगे। और वह प्रत्यक्षके विरुद्ध है और आगमके विरुद्ध है। अथवा द्वितीय कथन यह होगा कि यदि उपादान कारणभूत एक जीवके रागादि परिणाम कर्मोदयोपादानहेतु के विना होते हैं, तो वह सम्मत ही है।

और कुछ विशेष कहते हैं कि, द्रव्यकर्मोंको अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयकी अपेक्षासे आत्मा कर्ता है। तथा रागादि भावकर्मका अशुद्धनिश्चयनयसे कर्ता है। उस अशुद्धनिश्चयको यद्यपि द्रव्यकर्मके कर्तृत्वके विषयभूत असद्भूत व्यवहारनयकी अपेक्षासे निश्चय संज्ञा प्राप्त होती है, तथापि शुद्धात्मद्रव्यस्वभाव विषय रहनेवाले शुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षासे– वस्तुवृत्तिसे (स्वभावसे) वह व्यवहारनय ही है। यह भावार्थ है ॥ १४५, १४६ ॥

अब निश्चयनयसे पुद्गलकर्मोंका परिणाम जीवसे भिन्न ही है, ऐसा निरूपण करते हैं–

गाथार्थ– [**जइ**] यदि [**जीवेण सहच्चिय**] जीवके साथ ही [**पुग्गलदव्वस्स**] पुद्गलद्रव्यका [**कम्मपरिणामो**] कर्मरूप परिणाम होता है, ऐसा माना जाय तो [**एवं**] इसप्रकार [**पुग्गलजीवा दो वि**] पुद्गल और जीव दोनों [**हु**] ही [**कम्मत्तमावण्णा**] कर्मत्वको प्राप्त हो जायेंगे। [**दु**] तथा [**एकस्स**] एक [**पुग्गलदव्वस्स**] पुद्गल द्रव्यका [**कम्मभावेण**] कर्मरूपसे [**परिणामो**] परिणाम होता है [**ता**] इसलिये [**जीवभावहेदूहिं विणा**] जीवके भावरूप निमित्तकारण से पृथक् [**कम्मस्स**] कर्मका [**परिणामो**] परिणाम है।

एकस्स परिणामो पुग्गलदव्वस्स कम्मभावेण एकस्योपादानभूतस्य कर्मवर्गणायोग्यपुद्-गलद्रव्यस्य द्रव्यकर्मरूपेण परिणामः यत **एवं ता जीवभावहेदूहि विणा कम्मस्स परिणामो** तस्मात्कारणाज्जीवगतमिथ्यात्वरागादिपरिणामोपादानहेतुभिर्विनापि द्रव्यकर्मणः परिणामः स्यात्। इति पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां पीठिकारूपे महाधिकारे जीवकर्मपुद्गलपरस्परोपादानकारणनिषेध-मुख्यतया गाथात्रयेणाष्टमोंतराधिकारः समाप्तः ।। १४७, १४८ ।।

अथानंतरं व्यवहारेण बद्धो निश्चयेनाबद्धो जीव इत्यादि विकल्परूपेण नयपक्षपातेन स्वीकारेण रहितं शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेन शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन पुण्यपापादिपदार्थेभ्यो भिन्नं शुद्धसमयसारं गाथाचतुष्टयेन कथयतीति नवमेंतराधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा। अथ किमात्मनि बद्धस्पृष्टं किमबद्धस्पृष्टं कर्मेति प्रश्ने सति नयविभागेन परिहारमाह–

जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिदं।
सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवइ कम्मं ।। १४९ ।।

।। आ. ख्या. १४१ ।।

टीकार्थ– जिस कारण इसप्रकार से उपादानभूत अकेले कर्मवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्यका द्रव्यकर्मरूपसे परिणाम है उस कारणसे जीवगतमिथ्यात्वरागादिपरिणामरूप उपादान हेतुके विना भी द्रव्यकर्मोका परिणाम होगा।

इसतरह पुण्यपापादिसातपदार्थोंके पीठिकारूप महाधिकारमें जीव और कर्मपुद्गल इन दोनोंका परस्परमें उपादान कारण नहीं है इस कथनकी मुख्यतासे अष्टम अंतर अधिकार तीन गाथाओंद्वारा पूर्ण हुआ।

भावार्थ– पूर्व गाथाओंमें कहे हुये कथनके अनुसार पुद्गलकर्म ही पुद्गलकर्मका उपादान कारण है। पुद्गलकर्मका जीवके रागादिभाव उपादान कारण नहीं है, जीवके रागादिभाव अकिंचित्कर है ।। १४७, १४८ ।।

अब व्यवहारनयसे जीव बद्ध, निश्चयनयसे जीव अबद्ध है इत्यादि विकल्परूप नयपक्षपातको स्वीकार न करते हुये शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहक-शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे पुण्यपापादि-पदार्थोंसे भिन्न ऐसे शुद्धसमयसारका कथन चार गाथाओंद्वारा कहते हैं, इसप्रकार नवमें अंतर अधिकारमें यह समुदाय पातनिका है।

अब आत्मामें कर्म क्या बद्धस्पृष्ट है या अबद्धस्पृष्ट है ? ऐसा प्रश्न करनेपर नयवि-भागसे उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**जीवे**] जीवमें [**कम्मं**] कर्म [**बद्धं पुट्ठं च**] बद्ध और स्पृष्ट है [**इदि**] ऐसा [**ववहारणयभणिदं**] व्यवहारनयसे कहा है [**दु**] लेकिन [**सुद्धणयस्स**] शुद्ध निश्चयनयसे [**जीवे**] जीवमें [**कम्मं**] कर्म [**अबद्धपुट्ठं**] अबद्ध और अस्पृष्ट [**हवइ**] है।

जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिदं जीवेऽधिकरणभूते बद्धसंश्लेषरूपेण क्षीरनीरवत्संबद्धं स्पृष्टं योगमात्रेण लग्नं च कर्मेति व्यवहारनयपक्षो व्यवहारनयाभिप्रायः **सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवइ कम्मं** शुद्धनयस्याभिप्रायेण पुनर्जीवेधिकरणभूते अबद्धस्पृष्टं कर्म इति निश्चयव्यवहारनयद्वयविकल्परूपं शुद्धात्मस्वरूपं न भवतीति भावार्थः ।। १४९ ।।

अथ यस्माद्बद्धाबद्धादिविकल्परूपं नयस्वरूपमुक्तं तस्माच्छुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन बद्धाबद्धादिनयविकल्परूपो जीवो न भवतीति प्रतिपादयति–

कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाण णयपक्खं ।
पक्खातिक्कंतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो ।। १५० ।।

।। आ. ख्या. १४२ ।।

कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाण णयपक्खं जीवेऽधिकरणंभूते कर्मं बद्धमबद्धं चेति योऽसौ विकल्पः स उभयोऽपि नयपक्षपातः स्वीकार इत्यर्थः **पक्खातिक्कंतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो** नयपक्षातिक्रांतो भण्यते यः स समयसारः शुद्धात्मा । तद्यथा-व्यवहारेण बद्धो जीव इति नयविकल्पः शुद्धजीवस्वरूपं न भवति निश्चयेनाबद्धो जीव इति च नयविकल्पः शुद्धजीवस्वरूपं न भवति निश्चयव्यवहाराभ्यां बद्धाबद्धजीव इति वचनविकल्पः शुद्धजीवस्वरूपं न भवति ।

टीकार्थ– कर्म जीवके अधिकरणमें क्षीर और नीर की तरह एकक्षेत्रावगाह (बद्धसंश्लेषरूप) होकर संबद्ध और स्पृष्ट है तथा योगमात्रसे आत्मामें लगे हैं, ऐसा व्यवहारनयका पक्ष (अभिप्राय) है । शुद्धनिश्चयनय से जीवके अधिकरणमें कर्म अबद्धस्पृष्ट है । ऐसा निश्चयव्यवहाररूप दोनों नयोंका पक्ष (विकल्प) शुद्धात्मस्वरूप नहीं है (शुद्धात्मस्वरूप निर्विकल्प है) ऐसा भावार्थ है ।। १४९ ।।

अब जिस कारणसे व्यवहारनयसे बद्ध और निश्चयनयसे अबद्ध है ऐसा विकल्परूप नयका स्वरूप कहा है, इसलिए शुद्ध पारिणामिकपरमभावग्राहक-शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे बद्धाबद्धादिनयविकल्परूप जीव नहीं है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं ।

गाथार्थ– [**जीवे**] जीवमें [**कम्मं**] कर्म [**बद्धं**] बंधे हुअे हैं अथवा [**अबद्धं**] नहीं बंधे हुअे हैं [**एवं तु**] इस प्रकारका तो [**णयपक्खं**] नयपक्ष [**जाण**] जानो [**पुण**] और [**जो**] जो [**पक्खातिक्कंतो**] पक्षसे दूरवर्ती [**भण्णदि**] कहा जाता है [**सो**] वह [**समयसारो**] समयसार है (निर्विकल्प शुद्ध आत्मतत्त्व है) ।

टीकार्थ– अधिकरणभूत जीवमें कर्म बद्ध अथवा अबद्ध है । ये दोनों विकल्प हैं । वे दोनों भी पक्षपात है ऐसा स्वीकार किया है । जो नयपक्षसे अतिक्रांत है, वह शुद्धात्मा समयसार है । जैसे व्यवहारनयसे जीव बद्ध है, ऐसा जो नयविकल्प है वह शुद्धजीवका स्वरूप नहीं है । और निश्चयनयसे जीव अबद्ध है ऐसा जो नयविकल्प है वह शुद्ध जीवका स्वरूप नहीं है ।

शंका– यह कैसे ?

कस्मादिति चेत् ? "श्रुतविकल्पा नया" इति वचनात् । श्रुतज्ञानं च क्षायोपशमिकं क्षायोपशमस्तु ज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितत्वात् । यद्यपि व्यवहारनयेन छद्मस्थापेक्षया जीवस्वरूपं भण्यते तथापि केवलज्ञानापेक्षयाशुद्धजीवस्वरूपं न भवति । तर्हि कथंभूतं जीवस्वरूपमिति चेत् ? योसौ नयपक्षपातरहितस्वसंवेदनज्ञानी तस्याभिप्रायेण वद्धावद्धमूढामूढादिनयविकल्परहितं चिदानंदैकस्वभावं जीवस्वरूपं भवतीति । तथाचोक्तं– (आत्मख्याति कलश–६९-७०)

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं स्वरूपगुप्ता निवसंति नित्यं ।
विकल्पजालच्युतशांतचित्तास्त एव साक्षादमृतं पिवंति ।। ६९ ।।
एकस्यबद्धो न तथा परस्य चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ।। ७० ।।
समयाख्यानकाले या बुद्धिर्नयद्वयात्मिका ।
वर्तते बुद्धतत्त्वस्य सा स्वस्थस्य निवर्तते ।।
हेयोपादेयतत्वे तु विनिश्चित्य नयद्वयात् ।
त्यक्त्वा हेयमुपादेयेऽवस्थानं साधुसम्मतं ।। ।। १५० ।।

समाधान– "श्रुतविकल्प ही नय हैं," ऐसा वचन है । और श्रुतज्ञान क्षायोपशमिक-ज्ञान है । और क्षयोपशमज्ञान ज्ञानावरण के क्षयोपशममें उत्पन्न होता है ।

यद्यपि व्यवहारनयसे छद्मस्थकी अपेक्षासे यह जीवस्वरूप है ऐसा कहा जाता है, तथापि (केवलज्ञानकी अपेक्षासे अशुद्धता जीवका स्वरूप नहीं है अथवा) केवलज्ञानकी अपेक्षासे शुद्ध जीव का स्वरूप नहीं है ।

शंका– तो जीव का किस प्रकार का स्वरूप है ?

समाधान– यह जो नयपक्षपातरहित स्वसंवेदनज्ञानी है उसके अभिप्रायसे वद्धावद्धमूढामूढादिनयविकल्परहित चिदानंद एक स्वभाव ऐसा जीवका स्वरूप है ।

उसी तरह आत्मख्याति ६९ कलशमें कहा है कि–जो पुरुष नयके पक्षपातको छोडकर अपने स्वरूपमें गुप्त होकर निरंतर स्थिर होते हैं, वे ही पुरुष विकल्पके जालसे रहित शांतचित्त हुये साक्षात् अमृतको पीते हैं ।

कलश नंबर–७०–एक नयका तो ऐसा पक्ष है कि यह चिन्मात्र जीव कर्मसे बंधा हुआ है और दूसरे नयका पक्ष ऐसा है कि, जीवमें बंध नहीं है। ये दो नयपक्ष हैं वे पक्षपात है। जो तत्त्ववेदी (स्वानुभव करनेवाला) पक्षपातसे रहित है, उसका चैतन्यात्मा निश्चयसे नित्य चैतन्यमय ही है।

द्रव्यके या आगमके व्याख्यानके समय मनुष्य की बुद्धि निश्चयनय और व्यवहारनय इन दोनों नयोंको लेकर चलती है, किन्तु तत्त्वको जाननेवाले-निर्विकल्पवाले जीव की बुद्धि दो नयपक्षपातसे निवृत्त (दोनों नयोंके पक्षपातसे रहित) स्वस्थ होती है ।

निश्चयनय और व्यवहारनयोंके द्वारा हेय और उपादेय तत्त्वका निर्णय कर लेनेपर हेयका त्याग करके उपादेय तत्त्वमें रहना साधुको सम्मत है ।। १५० ।।

अथ नयपक्षातिक्रांतस्य शुद्धजीवस्य किं स्वरूपमिति पृष्टे सति पुनर्विशेषेण कथयति—

दोण्हवि णयाण भणियं जाणइ णवरं तु समयपडिबद्धो।
ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचिवि णयपक्खपरिहीणो ॥ १५१ ॥

॥ आ. ख्या. १४३ ॥

योऽसौ नयपक्षपातरहितः स्वसंवेदनज्ञानी तस्याभिप्रायेण बद्धाबद्धमूढामूढादिनयविकल्परहितं चिदानंदैकस्वभावं। **दोण्हवि णयाण भणियं जाणइ** यथा भगवान् केवली निश्चयव्यवहाराभ्यां द्वाभ्यां भणितमर्थं द्रव्यपर्यायरूपं जानाति। **णवरं तु समयपडिबद्धो** तथापि नवरि केवलं सहजपरमानंदैकस्वभावस्य समयस्य प्रतिबद्ध आधीनः सन् **णयपक्खपरिहीणो** सततमुल्लसन् केवलज्ञानरूपतया श्रुतज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितविकल्पजालरूपान्नयद्वयपक्षपाताद्दूरीभूतत्वात् **ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचिवि** न तु नयपक्षं विकल्पं किमप्यात्मरूपतया गृह्णाति तथायं गणधरदेवादिछद्मस्थजनोपि नयद्वयोक्तं वस्तुस्वरूपं जानाति तथापि नवरि केवलं चिदानंदैकस्वभावस्य समयस्य प्रतिबद्ध आधीनः सन् श्रुतज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितविकल्पजालरूपान्नयद्वयपक्षपातात् शुद्धनिश्चयेन दूरीभूतत्वान्नयपक्षपातरूपं स्वीकारं विकल्पं निर्विकल्पसमाधिकाले शुद्धात्मस्वरूपतया न गृह्णाति ॥ १५१ ॥

अब "नयपक्षातिक्रांत शुद्धजीवका क्या स्वरूप है?" ऐसा प्रश्न पूछनेपर फिरसे विशेषतासे कहते हैं—

गाथार्थ— जो पुरुष [**समयपडिबद्धो**] अपने शुद्धात्मासे प्रतिबद्ध है आत्माको जानता है वह [**दोण्णवि**] दोनों ही [**णयाण**] नयोंके [**भणियं**] कथनको [**णवरं**] केवल [**जाणइ तु**] जानता ही है [**दु**] लेकिन [**णयपक्खं**] नयपक्षको [**किंचिवि**] कुछ भी [**ण गिण्हदि**] नहीं ग्रहण करता क्योंकि वह [**णयपक्खपरिहीणो**] नयके पक्षसे रहित है।

टीकार्थ— जो यह नयपक्षपातरहित स्वसंवेदनज्ञानी है, उसके अभिप्रायसे बद्धाबद्धमूढामूढादिनयविकल्परहित चिदानंद एक स्वभावको इसप्रकार जानता है, जैसे भगवान् केवली निश्चयनय और व्यवहारनय के द्वारा कहे हुये अर्थको-द्रव्यपर्यायको जानते हैं। तथापि केवल सहजपरमानंद एक स्वभावमय आत्मा के आधीन (प्रतिबद्ध) होकर नित्य उल्लसित होकर केवलज्ञानसे श्रुतज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितविकल्पजालवाले दोनों नयपक्ष से दूर रहनेसे नयपक्षविकल्पको कुछ भी आत्मस्वभावरूपसे ग्रहण नहीं करते हैं, वैसे गणधरदेवादिछद्मस्थजन भी दोनों नयों के द्वारा कहा हुआ वस्तुस्वरूप जानते हैं, तथापि केवल चिदानंदैकस्वभावमय आत्माके आधीन (प्रतिबद्ध) होकर श्रुतज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितविकल्पजालवाले दो नयपक्षपातसे शुद्धनिश्चयके द्वारा दूर रहनेसे निर्विकल्पसमाधिकालमें शुद्धात्मस्वभावसे नयपक्षपातवाले विकल्पको स्वीकाररूप ग्रहण नहीं करते हैं।

भावार्थ— अव्रतीसम्यक्त्वीसे सिद्धतक के सभी जीव स्वशुद्धात्मानुभूतिके समय नयपक्षपातसे दूर रहकर एक चिदानंदस्वभावको ग्रहण करते हैं, वे विकल्परहित हैं। (याने निर्विकल्प हैं) ॥ १५१ ॥

अथ शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन नयविकल्पस्वरूपसमस्तपक्षपातेनातिक्रांत एव समयसार इत्येव तिष्ठति–

सम्मद्दंसणणाणं एदं लहदि त्ति णवरि ववदेसं ।
सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ॥ १५२ ॥

॥ आ. ख्या. १४४ ॥

सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो इंद्रियानिंद्रियजनितवहिर्विषयसमस्तमतिज्ञानविकल्परहितः सन् बद्धाबद्धादिविकल्परूपनयपक्षपातरहितः समयसारमनुभन्नेव निर्विकल्पसमाधिस्थैः पुरुषैर्दृश्यते ज्ञायते च यत आत्मा ततः कारणात् **सम्मद्दंसणणाणं एदं लहदित्ति णवरि ववदेसं** नवरि केवलं सकलविमलकेवलदर्शनज्ञानरूपंव्यपदेशं संज्ञां लभते । न च बद्धावद्धादिव्यपदेशाविति । एवं निश्चयव्यवहारनयद्वयपक्षपातरहितशुद्धसमयसारव्याख्यानमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन नवमोंतराधिकारः समाप्तः ॥ १५२ ॥

इत्यनेन प्रकारेण '**जाव ण वेदि विसेसं**' इत्यादिगाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेणाज्ञानिसज्ञानिजीवयोः संक्षेपसूचनार्थं गाथाषट्कं । तदनंतरमज्ञानिसज्ञानिजीवयोर्विशेषव्याख्यानरूपेणैकादश गाथाः । ततश्चेतनाचेतनकार्ययोरेकोपादानकर्तृत्वलक्षणद्विक्रियावादिनिराकरणमुख्यत्वेन गाथापंच-

---

अब, शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे नयविकल्पस्वरूपसमस्तपक्षपातसे अतिक्रांत (रहित) ही समयसार होता है, ऐसा ही कहते हैं–

गाथार्थ– [**जो**] जो [**सव्वणयपक्खरहिदो**] सब नयपक्षोंसे रहित है [**सो**] वही [**समयसारो**] समयसार है, ऐसा [**भणिदो**] कहा है । [**एदं**] यह समयसार ही [**णवरि**] केवल [**सम्मद्दंसणणाणं**] सम्यग्दर्शनज्ञान [**त्ति**] ऐसे [**ववदेसं**] नामको [**लहदि**] पाता है ।

टीकार्थ– (आगमभाषासे) आत्मा, निर्विकल्पसमाधिस्थपुरुषोंद्वारा इंद्रियानिंद्रियजनित वाह्यविषयक समस्त मतिज्ञानके विकल्पोंसे रहित होकर (और अध्यात्मभाषासे) बद्धावद्धादि विकल्परूपनयपक्षपातसे रहित होकर समयसारका अनुभव करता हुआ ही देखा और जाना जाता है, इस कारणसे केवल सकलविमलकेवलदर्शनज्ञान संज्ञाको (नामको) प्राप्त होता है लेकिन बद्धावद्धादिव्यपदेशको प्राप्त नही होता है । इस प्रकार निश्चयव्यवहारनयोंके पक्षपातसे रहित शुद्धसमयसारके व्याख्यानकी मुख्यतासे चार गाथाओंद्वारा नवमा अधिकार पूर्ण हुआ ॥ १५२ ॥

इसप्रकारसे '**जाव ण वेदि विसेसं**' इत्यादिगाथासे शुरू करके पाठक्रमसे अज्ञानी और सज्ञानी (सम्यक्ज्ञानी) जीवकी संक्षेपसे सूचनाके लिये छः गाथायें हैं । तदनंतर अज्ञानी और सम्यग्ज्ञानी जीवका विशेष कथन करनेवाली ११ गाथायें है । फिर चेतन और अचेतन इन दोनों कार्योंका एक उपादान कर्ता है, ऐसा माननेवाले द्विक्रियावादीके निराकरणकी मुख्यतासे

~~२५ गाथायें है। इसके बाद मिथ्यात्वादि प्रत्यय ही कर्म करते हैं, इसका समर्थन करनेवाली सात~~
विंशतिः। तदनंतरं प्रत्यया एव कर्म कुर्वंतीति समर्थनद्वारेण सूत्रसप्तकं। ततश्च जीवपुद्गलकथंचित्परिणामित्वस्थापनमुख्यत्वेन सूत्राष्टकं। ततः परं ज्ञानमयाज्ञानमयपरिणामकथनमुख्यतया गाथानवकं। तदनंतरमज्ञानमयभावस्य मिथ्यात्वादिपंचप्रत्ययभेदप्रतिपादनरूपेण गाथापंचकं। ततश्च जीवपुद्गलयोः परस्परोपादानकर्तृत्वनिषेधमुख्यत्वेन गाथात्रयं। ततः परं नयपक्षपातरहितशुद्धसमयसारकथनरूपेण गाथाचतुष्टयं चेति समुदायेनाष्टाधिकसप्ततिगाथाभिर्नवभिरंतराधिकारैः। कर्ताकर्ममहाधिकारः समाप्तः। तत्रैवं सति जीवाजीवाधिकाररंगभूमौ नृत्यानंतरं श्रृंगारपात्रयोः परस्परपृथग्भाववत् शुद्धनिश्चयेन जीवाजीवौ कर्तृकर्मवेषविमुक्तौ निष्क्रान्ताविति।

इति श्री जयसेनाचार्यकृतायां समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां तात्पर्यवृत्तौ पुण्यपापादिसप्तपदार्थानां संबंधी पीठिकारूपस्तृतीयो महाधिकारः समाप्तः॥ ३॥

---

२५ गाथायें (x) कहीं हैं। इसके अनंतर जीव और पुद्गल इनका कथंचित् परिणामित्व सिद्ध करनेकी मुख्यतासे आठ गाथायें कही हैं। इसके आगे ज्ञानमय और अज्ञानमय परिणामोंकी मुख्यता रखकर कथन करनेवाली नौ गाथायें कही हैं। इसके आगे अज्ञानमय भावके मिथ्यात्वादि पांच प्रत्ययके भेदको कथन करनेवाली पांच गाथायें कही हैं। इसके अनंतर जीव और पुद्गलोंका परस्पर (एक दूसरेके) उपादान कर्तृत्वका निषेध करने की मुख्यतासे तीन गाथायें कहीं हैं। इसके आगे नयपक्षपातरहित शुद्धसमयसारका कथन करनेवाली चार गाथायें कही हैं। इस प्रकार समस्त ७८ गाथा और नौ अंतराधिकारों के द्वारा कर्ताकर्म महाधिकार समाप्त हुआ।

इस प्रकार वहां जीवाजीवाधिकारकी रंगभूमिमें नृत्य करने के बाद शुद्धनिश्चयनयसे श्रृंगार और पात्र दोनोंके परस्पर पृथक् पृथक् भावकी तरह जीव और अजीव ये दोनों कर्तृकर्मभेषसे रहित होकर निष्क्रान्त हो गये (चले गये)।

इसतरह श्रीजयसेनाचार्यजीकृत समयसारकी व्याख्या करनेवाली, शुद्धात्मानुभूति लक्षणवाली तात्पर्यवृत्ति में पुण्यपापादिसप्तपदार्थोंके संबंधमें पीठिकारूपतृतीय महाधिकार समाप्त हुआ॥ ३॥



पुण्यपापाधिकारः ॥ ४ ॥

अथानंतरं निश्चयेनैकमपि पुद्‌गलकर्म व्यवहारेण द्विपदीभूतपुण्यपापरूपेण प्रविशति। **कम्ममसुहं कुसीलं** इत्यादि गाथामादि कृत्वा क्रमेणैकोनविंशतिसूत्रपर्यंतं पुण्यपापव्याख्यानं करोति। तत्र यद्यपि पुण्यपापयोर्व्यवहारेण भेदोऽस्ति तथापि निश्चयेन नास्ति इति व्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रषट्कं तरनंतरमध्यात्मभाषया शुद्धात्मभावनां विना आगमभाषया तु वीतरागसम्यक्त्वं विना व्रतदानादिकं पुण्यबंधकारणमेव न च मुक्तिकारणं। सम्यक्त्वसहितं पुनः परंपरया मुक्तिकारणं च भवति इति मुख्यतया '**परमट्ठो खलु**' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं निश्चयव्यवहारमोक्ष-मार्गमुख्यत्वेन '**जीवादीसद्दहणं**' इत्यादि गाथानवमं कथयतीति पुण्यपापपदार्थाधिकारसमुदाय-पातनिका।

अब, उसके बाद निश्चयनयसे पुद्‌गलकर्म एक है, तो भी व्यवहारनयसे वही पुद्‌गलकर्म पुण्य और पाप रूपसे दो रूप होकर रंगभूमिमें प्रवेश करता है।

'**कम्ममसुहं कुसीलं**' इत्यादि गाथासे शुरू करके क्रमसे १९ गाथाओंतक पुण्यपापका व्याख्यान करते हैं। वहां यद्यपि व्यवहारनयसे पुण्य और (x) पापमें भेद नहीं हैं। इस कथनकी मुख्यतासे छः गाथायें हैं। तदनंतर

अध्यात्मभाषासे	आगमभाषासे
१) शुद्धात्मानुभूतिके विना व्रतदानादिक पुण्यबंधकेही कारण है, मुक्तिके कारण नहीं है।	१) वीतराग सम्यक्त्व (निश्चयसम्यक्त्व) के विना व्रतदानादिक पुण्यबंधके ही कारण है, मुक्तिके कारण नहीं है।
२) शुद्धात्मानुभूतिके साथ जो व्रतदानादिक है, वहां जो शुद्धोपयोग या शुद्धपरि-णति है वह शुद्धोपयोग मुक्तिका कारण है।	२) सम्यक्त्व (निश्चय सम्यक्त्व) के साथ जो व्रतदानादिक है, उसको परंपरासे मुक्तिका कारण कहते हैं।

[इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि, चतुर्थ गुणस्थानवाला मोक्षमार्गस्थ होनेसे अव्रती सम्यक्त्वीका सम्यक्त्व वीतराग सम्यक्त्व (निश्चय सम्यक्त्व) है। क्योंकि अव्रती सम्यक्त्वीको जो प्रथमोपशम या क्षयोपशम और क्षायिक सम्यक्त्व है, वहां करणानुयोगकी अपेक्षासे प्रथमो-पशम सम्यक्त्वमें सात प्रकृतिका उपशम है और क्षयोपशम सम्यक्त्वमें छः प्रकृतिका उदय नही है और क्षायिक सम्यक्त्वमें सात प्रकृतिका क्षय है।]

इसकी मुख्यतासे '**परमट्ठो खलु**' इत्यादि चार गाथायें हैं।

इसके आगे निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गकी मुख्यतासे '**जीवादीसद्दहणं**' इत्यादि ९ गाथायें कहते हैं। यह पुण्यपापपदार्थके अधिकारकी समुदाय पातनिका है।

तद्यथा– ब्राह्मण्याः पुत्रद्वयं जातं तत्रैक उपनयनवशाद्ब्राह्मणो जातः द्वितीयः पुनरुपनयाभावाच्छूद्र इति। तथैकमपि निश्चयनयेन पुद्गलकर्म शुभाशुभजीवपरिणामनिमित्तेन व्यवहारेण द्विधा भवतीति कथयति–

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं।
किह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि ॥ १५३ ॥

॥ आ. ख्या. १४५ ॥

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं कर्माशुभं कुत्सितं कुशीलं हेयमिति। शुभकर्म सुशीलं शोभनमुपादेयमिति केषांचिद् व्यवहारिणां पक्षः सन् निश्चयरूपेण पक्षांतरेण बाध्यते। **किह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि** निश्चयवादी ब्रूते कथं तत्पुण्यकर्म सुशीलं शोभनं भवति? यज्जीवं संसारे प्रवेशयति। हेतुस्वभावानुभवबंधरूपाश्रयाणां निश्चयेनाभेदात् कर्मभेदो नास्तीति। तथाहि हेतुस्तावत्कथ्यते, शुभाशुभपरिणामो हेतुः। स च शुद्धनिश्चयेनाशुभत्वं प्रति एक एव द्रव्यं पुण्यपापरूपं पुद्गलद्रव्यस्वभावः। सोऽपि निश्चयेन पुद्गलद्रव्यं

अब, किसी एक ब्राह्मणीको दो पुत्र हुअे उसमें से एक का उपनयन संस्कार हो जानेसे वह ब्राह्मण हो गया। किन्तु दूसरेका उपनयन संस्कार नहीं हुआ अतः वह शूद्र हो गया। इसी प्रकार निश्चयनयसे पुद्गलकर्म एक ही है तो भी व्यवहारसे जीवके शुभाशुभपरिणामके निमित्तसे दो प्रकारके हैं ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**कम्ममसुहं**] अशुभ कर्म तो [**कुसीलं**] पाप स्वभाव है [**चावि**] और [**सुहकम्मं**] शुभकर्म [**सुसीलं**] पुण्य स्वभाव है, ऐसा जगत् [**जाणह**] जानता है। परन्तु परमार्थ दृष्टिसे कहते हैं कि, [**जं**] जो [**संसारं**] प्राणी को संसारमें ही [**पवेसेदि**] प्रवेश कराता है [**तं**] वह कर्म [**सुसीलं**] शुभ-अच्छा [**किह**] कैसे [**होदि**] हो सकता है?

टीकार्थ– अशुभ कर्म कुत्सित् कुशील होनेसे हेय है। शुभकर्म सुशील है, अच्छा है–उपादेय है ऐसा कोई व्यवहारिजनोंका पक्ष होता है लेकिन निश्चयसे (याने दूसरे पक्षसे) वह पक्ष बाधित है (निषेध किया जाता है)। निश्चयवादी कहता है कि, वह पुण्यकर्म सुशील या अच्छा कैसे हो सकता है, जो पुण्यकर्म संसारमें प्रवेश कराता है? (संसार दुःखमय है)। कर्मके हेतु, स्वभाव, अनुभव, बंधरूप आश्रय इन का जब विचार किया जाय तो वे निश्चयसे अभेद होनेसे उन शुभाशुभ कर्मोमें भेद नहीं है। अब हेतुका कथन करते हैं-कर्मका हेतु (जीवका) शुभाशुभ परिणाम है, और वह शुद्धनिश्चयसे एक अशुद्धरूप ही है। और द्रव्य भी पुण्यपापरूप पुद्गलस्वभावमय है। वह भी निश्चयनयसे एक पुद्गलमय जड़ही है, और उसका फल

प्रति, एक एव तत्फलं सुखदुःखरूपं स च फलरूपानुभवः। सोप्यात्मोत्थनिर्विकारसुखानंदापेक्षया दुःखरूपेणैक एव आश्रयस्तु शुभाशुभबंधरूपः। सोऽपि बंधं प्रत्येक एव हेतु इति हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां सदाप्यभेदात्। यद्यपि व्यवहारेण भेदोऽस्ति तथापि निश्चयेन शुभाशुभकर्मभेदो नास्ति इति व्यवहारवादिनां पक्षो बाध्यत एव ॥ १५३ ॥

अथोभयं कर्म, अविशेषेण बंधकारणं साधयति–

सौवण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं ॥ १५४ ॥

॥ आ. ख्या. १४६ ॥

यथा सुवर्णनिगलं लोहनिगलं च अविशेषेण पुरुषं बध्नाति तथा शुभमशुभं वा कृतं कर्म अविशेषेण जीवं बध्नातीति। किं च भोगाकांक्षानिदानरूपेण रूपलावण्यसौभाग्यकामदेवेन्द्राहमिंद्रख्यातिपूजालाभादिनिमित्तं यो व्रततपश्चरणदानपूजादिकं करोति, स पुरुषः तक्रनिमित्तं रत्नविक्रयवत्, भस्मनिमित्तं रत्नराशिदहनवत्, सूत्रनिमित्तं हारचूर्णवत्, कोद्रवक्षेत्रवृत्तिनिमित्तमगुरुवनच्छे-

---

सुखदुःख है और वह फलरूप अनुभव है। वह सुखदुःखरूप अनुभव भी स्वात्मोत्थनिर्विकारसुखानंदकी अपेक्षासे एक दुःखरूप ही है, और आश्रय शुभाशुभबंधरूप है, वह भी बंध की अपेक्षासे एक ही है। क्यों कि पुण्यकर्म और पापकर्म के हेतु, स्वभाव, अनुभव और आश्रयमें सदा अभेद ही है। यद्यपि व्यवहारसे भेद है तथापि निश्चयनयसे शुभाशुभकर्ममें भेद नहीं है। इस तरह व्यवहारवादीयोंका पक्ष बाधित ही है ॥ १५३ ॥

सामान्यसे शुभ और अशुभ दोनों कर्मबंध के कारण है, यह सिद्ध करते हैं–

गाथार्थ– [**जह**] जैसे [**कालायसं णियलं**] लोहे की बेडी [**पुरिसं**] पुरुषको [**बंधदि**] बांधती है [**पि**] और [**सौवण्णियं**] सुवर्ण की [**पि**] भी बांधती है [**एवं**] इसी प्रकार [**सुहमसुहं वा**] शुभ तथा अशुभ [**कदं कम्मं**] किया हुआ कर्म [**जीवं**] जीवको [**बंधदि**] बांधता ही है।

टीकार्थ– सामान्यसे जैसे सुवर्णकी बेडी और लोहे की बेडी पुरुषको बंधनमे रखती है वैसे किया हुआ शुभ अथवा अशुभ कर्म सामान्यरुपसे जीवको बांधता है। और कुछ विशेष कहते हैं- भोगाकांक्षानिदानसे रूप, लावण्य, सौभाग्य, कामदेव, इंद्र, अहमिंद्र, ख्याति, पूजा, लाभ इत्यादि के लिये जो व्रततपश्चरणदानपूजादि करता है, वह पुरुष व्रतादिक को वृथा (व्यर्थ) खोता है जैसे छाछके लिए रत्न बेचता है, या भस्म के लिये रत्नराशि जलाता है,

दनवत् । वृथैव व्रतादिकं नाशयति । यस्तु शुद्धात्मभावनासाधनार्थं बहिरंगव्रततपश्चरणदानपूजादिकं करोति स परंपरया मोक्षं लभते इति भावार्थः ॥ १५४ ॥

अथोभयकर्माविशेषेण मोक्षमार्गविषये निषेधयति–

तह्मा दु कुसीलेहिय रायं मा कुणह मा व संसग्गं ।
साधीणो हि विणासो कुसीलसंसग्गरायेण ॥ १५५ ॥

॥ आ. ख्या. १४७ ॥

तह्मा दु कुसीलेहिय रायं मा कुणह मा व संसग्गं तस्मात् कारणात् कुशीलैः कुत्सितैः शुभाशुभकर्मभिः सह चित्तगतरागं मा कुरु। बहिरंगवचनकायगतसंसर्गं च मा कुरु। कस्मात् ? इति चेत् । **साधीणो हि विणासो कुसीलसंसग्गरायेण** कुशीलसंसर्गरागाभ्यां स्वाधीनो नियमेन विनाशः निर्विकल्पसमाधिविघातरूपः स्वार्थभ्रंशो हि स्फुटं भवति अथवा स्वाधीनस्यात्मसुखस्य विनाश इति ॥ १५५ ॥

सूत्र के लिये मोतीयोंके हारको तोडता है (मोतीयोंको नष्ट करता है), या कोदो धान्य को बोनेके लिये चंदनके वन को काटता है ।

लेकिन जो शुद्धात्मानुभूतिकी साधना के लिए बहिरंग व्रततपश्चरणदानपूजादिक करता है (विकल्पकी भूमिकामें सम्यग्दृष्टि व्रतादि दानादि क्रिया करते हुए दिखाअी देता है) और परंपरासे वह मोक्ष पाता है । ऐसा भावार्थ है ॥ १५४ ॥

अब, मोक्षमार्गमें सामान्यसे शुभ और अशुभ कर्मोंका निषेध करते हैं–

गाथार्थ– [**तह्मा**] इसलिये [**कुसीलेहिय**] उन दोनों कुशीलोंसे [**रायं**] प्रीति [**मा कुणह**] मत करो [**वा**] अथवा [**संसग्गं दु**] संसर्ग भी [**मा**] मत करो [**हि**] क्योंकि निश्चयसे [**कुसीलसंसग्गरायेण**] कुशीलके संसर्गसे और रागसे [**साधीणो विणासो**] अपनी स्वाधीनताका विनाश होता है ।

टीकार्थ– इसलिये कुशीलवाले शुभाशुभकर्मोंके साथ मानसिक राग मत करो। वहिरंगवचनकायगत भी संसर्ग मत करो ।

शंका– क्यों ?

समाधान– क्योंकि कुशीलके साथ संसर्ग और प्रीति करनेसे नियमसे अपनी स्वतंत्रताका नाश होता है, निर्विकल्प समाधिका नाश होता है, स्पष्टरूपसे अपना प्रयोजनभूत कार्य नष्ट होता है अथवा स्वाधीन आत्मसुखका नाश होता है ॥ १५५ ॥

अथोभयकर्म प्रति निषेधं स्वयमेव श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवा दृष्टांतदार्ष्टांताभ्यां समर्थयंति ।

जह णाम कोवि पुरिसो, कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता ।
वज्जेदि तेण समयं संसग्गं रायकरणं च ।। १५६ ।।

।। आ. ख्या. १४८ ।।

एमेव कम्मपयडी सीलसहावं हि कुच्छिदं णादुं ।
वज्जंति परिहरंति य तस्संसग्गं सहावरदा ।। १५७ ।।

।। आ. ख्या. १४९ ।।

जह णाम कोवि पुरिसो, कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता यथा नाम स्फुटमहो वा कश्चित्पुरुषः कुत्सितशीलं जनं ज्ञात्वा **वज्जेदि तेण समयं संसग्गं रायकरणं च** तेन समकं सह वहिरंगवचनकायगतं संसर्गं मनोगतं रागं च वर्जयतीति दृष्टांतः । **एमेव कम्मपयडी सीलसहावं हि कुच्छिदं णादुं** एवमेव पूर्वोक्तदृष्टान्तन्यायेन कर्मणः प्रकृतिशीलंस्वभावं कुत्सितं हेयं ज्ञात्वा **वज्जंति परिहरंति य तं संसग्गं सहावरदा** इह जगति वर्जयन्ति तत्संसर्गं वचनकायाभ्यां परिहरन्ति मनसा रागं च तस्य कर्मणः । के ते ? समस्तद्रव्यभावगतपुण्यपापपरिणामपरिहारपरि-

---

अब, उभय कर्मोंका निषेध स्वयं ही श्री कुंदकुंदाचार्यदेव दृष्टांतदार्ष्टांतसे करते हैं–

गाथार्थ– [**जह णाम**] जैसे [**कोवि**] कोई [**पुरिसो**] पुरुष [**कुच्छियसीलं**] निंदित स्वभाववाले [**जणं**] किसी पुरुषको [**वियाणित्ता**] जानकर [**तेण समयं**] उसके साथ अपना [**संसग्ग च रायकरणं**] संसर्ग और राग करना [**वज्जेदि**] छोड देता है [**एमेव**] इसीतरह ज्ञानी जीव [**कम्मपयडी सीलसहावं**] कर्म प्रकृतियोंके शील-स्वभावको [**कुच्छिदं णादुं**] निन्दनीय जानकर [**वज्जंति**] उससे राग छोड देते हैं [**हि**] और [**तं संसग्गं**] उसकी संगति भी [**परिहरंति**] छोड देते हैं [**य**] और [**सहावरदा**] अपने स्वभावमें लीन हो जाते हैं ।

टीकार्थ– जैसे कोई पुरुष किसीको कुत्सितशीलवाला जानकर उसके साथ वहिरंगवचनकायगत संसर्ग और मनोगत राग छोडता है, यह दृष्टांत है । इस दृष्टांत न्यायसे (उसी दृष्टांत की तरह) कर्म के प्रकृति-स्वभाव को कुत्सित-हेय जानकर इस जगतमें कायवचनसे उसका संसर्ग छोडते हैं और मनसे उन कर्मोंका राग छोडते हैं ।

शंका– वे कौन हैं ?

समाधान– समस्त द्रव्यभावगतपुण्यपापपरिणामरहित ऐसी परिणतिवाले अभेदरत्नत्रयलक्षणरूप निर्विकल्पसमाधिवाले-अपने स्वभावमें रत रहनेवाले जो जीव है, वे साधना करनेवाले

णताभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्पसमाधिस्वभावरताः साधव इति दार्ष्टांतः ॥ १५६, १५७ ॥

अथोभयं कर्म शुद्धनिश्चयेन केवलं बंधहेतुः न केवलं बंधहेतुं प्रतिषेध्यं चागमेन साधयति–

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपण्णो ।
एसो जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मा रज्ज ॥ १५८ ॥

॥ आ. ख्या. १५० ॥

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपण्णो यस्मात् कारणात् रक्तः सन् कर्माणि बध्नाति । मुच्यते जीवः कर्मजनितभावेषु विरागसंपन्नः **एसो जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मा रज्ज** एष प्रत्यक्षीभूतो जिनोपदेशः कर्ता, किं करोति ? उभयं कर्म बंधहेतुं न केवलं बंधहेतुं प्रतिषेध्यं हेयं च कथयति तस्मात्कारणात् शुभाशुभसंकल्पविकल्परहितत्वेन स्वकीयशुद्धात्मभावनोत्पन्ननिर्विकारसुखामृतरसस्वादेन तृप्तो भूत्वा शुभाशुभकर्माणि मा रज्यस्व रागं मा कुर्विति । एवं यद्यप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यपुण्यपापयोर्भेदोऽस्ति अशुद्धनिश्चयेन पुनस्तद्द्वयजनितेंद्रियसुखदुःखयोर्भेदोऽस्ति तथापि शुद्धनिश्चयनयेन नास्ति इति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाषट्कं गतं ॥ १५८ ॥

जीव उभय कर्मोंकी संगति और राग छोडते हैं ।

भावार्थ– चतुर्थ गुणस्थानसे सिद्धतक के सभी जीव दोनों कर्मोंको हेय जानते हैं और अपने स्वभावमें रत होते हैं ॥ १५६, १५७ ॥

अब दोनों ही कर्म शुद्धनिश्चयनयसे केवल बंधके कारण है और केवल बंध हेतु है इतना ही नहीं तो निषेध करने योग्य है, ऐसा आगमसे सिद्ध करते हैं–

गाथार्थ– [**रत्तो**] रागी [**जीवो**] जीव तो [**कम्मं**] कर्मोंको [**बंधदि**] बांधता है [**विरागसंपण्णो**] तथा वैराग्य को प्राप्त हुआ जीव [**मुंचदि**] कर्मसे छूट जाता है [**एसो**] यह [**जिणोवदेसो**] जिनभगवान का उपदेश है [**तह्मा**] इस कारण भो भव्य जीवो ! तुम [**कम्मेसु**] कर्मोंमें [**मा रज्ज**] रागी मत होतो, प्रीति मत करो ।

टीकार्थ– जिस कारणसे रागी होकर कर्मोंको बांधता है। कर्मजनितभावोंमें विरागसंपन्न जीव मुक्त होता है । यह स्पष्ट रूप से जिनभगवानका उपदेश है कि, उभय कर्म बंध के हेतु है और केवल बंधहेतु ही नहीं तो निषेध करने योग्य है, हेय है, त्याज्य है । इसलिये शुभाशुभसंकल्पविकल्परहितपनासे-स्वकीयशुद्धात्मभावनासे उत्पन्न निर्विकार सुखामृतरसस्वादसे तृप्त होकर शुभाशुभकर्मोंमें राग मत कर । इसप्रकार यद्यपि अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे द्रव्यपुण्यपापोंमें भेद है और अशुद्धनिश्चयनयसे उन दोंनोंसे उत्पन्न सुखदुःखमें भेद है, तथापि शुद्धनिश्चयनयसे उनमें भेद नहीं है, इस कथन की मुख्यतासे छः गाथायें समाप्त हुई ॥ १५८ ॥

अथ विशुद्धज्ञानशब्दवाच्यं परमात्मानं मोक्षकारणं कथयति-

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी ।
तह्मि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं ।। १५९ ।।

।। आ. ख्या. १५१ ।।

परमट्ठो खलु समओ उत्कृष्टार्थः परमार्थः स कः ? परमात्मा अथवा धर्मार्थ-काममोक्षलक्षणेषु परमार्थेषु परम उत्कृष्टो मोक्षलक्षणोर्थः परमार्थः सोऽपि स एव । अथवा मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानभेदरहितत्वेन निश्चयेनैकः परमार्थः सोऽपि परमात्मैव खलु स्फुटं **समओ** सम्यगयति गच्छति शुद्धगुणपर्यायान् परिणमतीति समयः । अथवा सम्यगयः संशयादिरहितो बोधो ज्ञानं यस्य भवति स समयः । अथवा समित्येकत्वेन परमसमरसीभावेन स्वकीयशुद्धस्वरूपे अयनं गमनं परिणमनं समयः सोऽपि स एव **शुद्धो** रागादिभावकर्मरहितो यः सोऽपि स एव **केवली** परद्रव्यरहितत्वेनासहायः केवली सोऽपि स एव **मुणी** मुनिः स एव **णाणी** विशुद्धज्ञानमस्यास्तीति ज्ञानी सोऽपि परमात्मैव । **तह्मि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं**

विशुद्धज्ञान शब्दसे जो वाच्य परमात्मा वा परमात्मतत्त्व वा कारण परमात्मा है, वह मोक्षका कारण है, ऐसा कहते हैं-

गाथार्थ- [**जो**] जो [**खलु**] निश्चयसे [**परमट्ठो**] परमतत्त्व है वह [**समओ**] आत्मा है, [**सुद्धो**] शुद्ध है, [**केवली**] केवली है, [**मुणी**] मुनि है, [**णाणी**] ज्ञानी है [**तह्मि सहावे**] उसी स्वभावमें [**ट्ठिदा**] स्थित रहनेवाले [**मुणिणो**] मुनि [**णिव्वाणं**] निर्वाणको [**पावंति**] प्राप्त करते हैं (प्राप्त होते हैं) ।

टीकार्थ- जो उत्कृष्ट अर्थ है, परमार्थ है (परमात्मतत्त्व है) वह परमात्मा ही है। अथवा धर्म, अर्थ, काम, मोक्षलक्षणवाले परमार्थोंमे जो परम उत्कृष्ट है वह मोक्षलक्षणवाला अर्थ है, वह परमार्थ है, वह वह ही हैं। अथवा मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान पर्यायोंसे रहित ऐसा निश्चयनयसे एक जो परमार्थ है, वह भी परमात्मा ही स्पष्ट है (ध्रुवस्वभावमय कारण-परमात्मा ही परमात्मा है) । एक ही साथ, १) युगपत् जो जानना और २) पर्यायरूप बदलना (युगपत् 'जानन और गच्छन' जो करता है) वह शुद्धगुणपर्यायोंके स्वरूप परिणमन करता है वह समय है । अथवा जो सम्यक् जानता है, संशयादिरहित ज्ञान जिसका है, वह समय है । अथवा जो सं याने एकत्वसे-परमसमरसीभावसे स्वकीय शुद्धस्वभावमें जाना-गमन करना-परिणमन करना है वह समय है वह ही रागादिभावकर्मरहित शुद्ध जो है वह भी वही है, वह ही परद्रव्य-रहितपनासे असहाय केवली है वह भी वह ही है, वह ही मुनि है, वह ही जिसका विशुद्धज्ञान है ऐसा ज्ञानी है, वह भी प्रत्यक्षज्ञानी है, वह भी परमात्मा ही है । उस परमात्मस्वभावमें

तस्मिन् परमात्मस्वभावे स्थिता वीतरागस्वसंवेदनज्ञानरता मुनयस्तपोधना निर्वाणं प्राप्नुवंति लभंत इत्यर्थः ।। १५९ ।।

अथ तस्मिन्नेव परमात्मनि स्वसंवेदनज्ञानरहितानां व्रततपश्चरणादिकं पुण्यबंधकारण-मेवेति प्रतिपादयति–

परमट्ठम्मि य अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारयदि ।
तं सव्वं बालतवं बालवदं विंति सव्वहृणू ।। १६० ।।

।। आ. ख्या. १५२ ।।

परमट्ठम्मि य अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारयदि तस्मिन्नेव पूर्वसूत्रोक्तपरमार्थ-लक्षणे परमात्मस्वरूपे अस्थितो रहितो यस्तपश्चरणं करोति व्रतादिकं च धारयति **तं सव्वं बालतवं बालवदं विंति सव्वहृणू** तत्सर्वं बालतपश्चरणं बालव्रतं ब्रुवंति कथयंति । के ते ? सर्वज्ञाः । कस्मात् ? इति चेत्, पुण्यपापोदयजनितसमस्तेंद्रियसुखदुःखाधिकारपरिहारपरिणता-भेदरत्नत्रयलक्षणेन विशिष्टभेदज्ञानेन रहितत्वात् इति ।। १६० ।।

रहनेवाले, वीतराग स्वसंवेदनज्ञानमें रत रहनेवाले ऐसे मुनि-तपोधन निर्वाण पाते हैं, प्राप्त करते हैं ।

भावार्थ– जो भी जीव वस्तुस्वरूप को जानकर अपने स्वभावमें रहता है, स्वानुभव लेता है, ऐसे अव्रती सम्यक्त्वीसे सिद्धतक के जीव निर्वाणसुख पाते हैं । उनको परमार्थ, समय, शुद्ध, केवली, मुनि, ज्ञानी शब्दोंसे कहा हैं । उस परमतत्त्वको मोक्षका कारण बताया है ।।१५९।।

अब, उसी परमात्मस्वभावके स्वसंवेदनज्ञानसे रहित रहनेवालोंके व्रततपश्चरणादिक पुण्यबंधका ही कारण है, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**जो**] जो [**परमट्ठम्मि**] परमार्थमें-स्वभावमें [**अठिदो**] स्थित नहीं हैं [**य**] और [**तवं**] तप [**कुणदि**] करता है [**च**] और [**वदं धारयदि**] व्रत धारण करता है [**तं सव्वं**] उस सब तप-व्रतको [**सव्वहृणू**] सर्वज्ञदेव [**बालतवं**] बालतप [**बालवदं**] अज्ञानव्रत [**विंति**] कहते हैं ।

टीकार्थ– पहले सूत्रमें कहे हुअे उसही परमार्थलक्षणवाले परमात्मस्वभावमें अस्थित रहनेवाले जो तपश्चरण करते हैं और व्रतादिकोंको धारण करते हैं । उन सब तपव्रतको बाल-तपश्चरण (अज्ञानतप) और बालव्रत (अज्ञानव्रत) ऐसा सर्वज्ञ देव कहते हैं ।

शंका– वे अज्ञानतप और अज्ञानव्रत कैसे हैं ?

समाधान– वह व्रततप पुण्यपापोदयजनित सभी इंद्रिय सुख-दुःखसे रहित ऐसे परिणतिवाले-अभेदरत्नत्रयलक्षणवालेविशिष्टभेदज्ञानसे रहित होनेसे अज्ञानतप और अज्ञान-व्रत है ।। १६० ।।

अथ स्वसंवेदनज्ञानं तथैवाज्ञानं चेति यथाक्रमेण मोक्षवंघहेतू दर्शयति–

वदणियमाणि घरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता ।
परमट्ठवाहिरा जेण तेण ते होंति अण्णाणी ।। १६१ ।।

।। आ. ख्या. १५३ ।।

वदणियमाणि घरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता त्रिगुप्तसमाधिलक्षणाद्भेदज्ञानाद् वाह्या ये ते व्रतनियमान् धारयंतः, शीलानि तपश्चरणं च कुर्वाणा अपि मोक्षं न लभंते। कस्मादिति चेत्, **परमट्ठवाहिरा जेण तेण ते होंति अण्णाणी** येन कारणेन पूर्वोक्तभेदज्ञानाभावात् परमार्थ-वाह्यास्तेन कारणेन ते भवंत्यज्ञानिनः। अज्ञानिनां तु कथं मोक्षः ? ये तु परमसमाधिलक्षण-भेदज्ञानसहितास्ते तु व्रतनियमानधारयन्तोऽपि शीलानि तपश्चरणं वाह्यद्रव्यरूपमकुर्वाणा अपि मोक्षं लभंते। तदपि कस्माद्, येन कारणेन पूर्वोक्तभेदज्ञानसद्भावात् परमार्थादवाह्यास्तेन कारणेन ते च ज्ञानिनो भवंति। ज्ञानिनां तु मोक्षो भवत्येवेति। किंच विस्तरः। व्रतनियमशील-वहिरंगतपश्चरणादिकं विनापि यदि मोक्षो भवति इति तर्हि संकल्पविकल्परहितानां विषय-व्यापारेऽपि पापं नास्ति, तपश्चरणाभावेऽपि मोक्षो भवतीति सांख्यशैवमतानुसारिणो वदन्तीति

अव स्वसंवेदनज्ञान (स्वानुभुति) को मोक्ष का कारण और अज्ञानको वंध का कारण दिखाते हैं–

गाथार्थ– [**जेण**] जिस कारणसे जो लोक [**वदणियमाणि**] व्रत और नियमोंको [**घरंता**] धारण करते हैं [**तहा**] उसी प्रकार [**सीलाणि च तवं कुव्वंता**] शील और तपको करते हैं लेकिन [**परमट्ठवाहिरा**] परमार्थस्वरूप शुद्धात्मानुभव से वाह्य है, [**तेण**] इसलिये [**ते**] वे [**अण्णाणी**] अज्ञानी [**होंति**] होते हैं।

टीकार्थ– त्रिगुप्तिसमाधिलक्षणवाले भेदज्ञानसे जो वाह्य है वे व्रतनियमोंको धारण करते हैं, और शील तथा तपश्चरण करते हैं तो भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता है।

शंका– क्यों ?

समाधान– पहले कहे हुये स्वानुभूतिलक्षणवाले भेदज्ञानके अभावसे-परमार्थवाह्य होनेसे वे अज्ञानी हैं। अज्ञानीको मोक्ष कैसे प्राप्त हो सकता है ? अर्थात् नहीं। जो परमसमाधिलक्षण-वाले भेदज्ञानसे सहित है लेकिन वाह्यद्रव्यरूप व्रतनियमशीलतपश्चरणादिक नहीं करते हैं, तो भी मोक्ष प्राप्त करते हैं। क्योंकि पूर्वोक्त भेदज्ञानका सद्भाव है और उस परमार्थसे वाह्य नहीं है (परमार्थसे रहित नहीं है), इसलिये वे ज्ञानी हैं। और सम्यग्ज्ञानी को मोक्ष प्राप्त होता ही है। और कुछ विशेष कहते हैं–

शंका– व्रतनियमशीलवहिरंगतपश्चरणादिक के विना भी यदि मोक्ष होता है तो संकल्पविकल्परहितवालोंको विषयव्यापारमें रहना भी पाप नहीं है, और तपश्चरणके अभावमें भी मोक्ष होता है इसप्रकार से जो सांख्यशैवमतानुसारी कहते हैं, तो उनके मतकी सिद्धि होती है ?

तेषामेव मतं सिद्धमिति नैवं, निर्विकल्पत्रिगुप्तिसमाधिलक्षणभेदज्ञानसहितानां मोक्षो भवतीति विशेषेण बहुधा भणितं तिष्ठति। एवंभूतभेदज्ञानकाले शुभरूपा ये मनोवचनकायव्यापार: परंपरया मुक्तिकारणभूतास्तेऽपि न संति। ये पुनरशुभविषयकषायव्यापाररूपास्ते विशेषेण न संति। न हि चित्तस्थे रागभावे विनष्टे सति बहिरंगविषयव्यापारो दृश्यते। तंदुलस्याभ्यंतरे तुषे गते सति बहिरंगतुष इव। तदपि कस्मात्? इति चेत्, निर्विकल्पसमाधिलक्षणभेदज्ञानविषयकषायव्यापारयोर्द्वयोः परस्परं विरुद्धत्वात् शीतोष्णवदिति ॥ १६१ ॥

अथ वीतरागसम्यक्त्वरूपां शुद्धात्मभावनां विहाय तेन पुण्यमेवैकांतेन मुक्तिकारणं ये वदंति तेषां प्रतिबोधनार्थं पुनरपि दूषणं ददाति–

समाधान– आपका कहना ठीक नहीं है। क्योंकि अनेक बार विशेषरूपसे[1] जो कहा गया है कि, निर्विकल्पत्रिगुप्तिसमाधिलक्षणभेदज्ञानसहित जीवों को (स्वानुभूतिवालोंको) मोक्ष होता हैं। एवंभूतनयसे (जिस समयमें) भेदज्ञान (शुद्धात्मानुभव अथवा स्वानुभव) है उसी कालमें (समयमें) जो शुभरूप मनोवचनकायका व्यापार परंपरासे मुक्तिका कारण माना जाता है, वे शुभभाव भी (शुभव्यापार भी) नहीं रहते हैं। और जो अशुभविषयकषायव्यापाररूप हैं वे कुछ भी नहीं होते हैं। निश्चयसे चित्तमें रागभाव नष्ट होनेसे बहिरंगविषयव्यापार नहीं दिखाई देता है (अथवा जिसके चित्तमें रागभाव नष्ट नहीं हुआ है, उसके बहिरंगविषयव्यापार दिखायी देते हैं) जैसे कि तंदुलके अभ्यंतरका छिलका (ललाई) जहां चली गयी वहाँ बहिरंग छिलका नहीं रहता है।

शंका– यह कैसे ? कुछ और समझाओ।

समाधान– जैसे शीत और उष्ण दो विरुद्ध पर्यायें हैं। जहाँ शीत है वहाँ उष्णता नहीं रहती है अथवा जहाँ उष्णता है वहां शीतता नहीं रहती है। उसी तरह निर्विकल्पसमाधिलक्षणवाला भेदज्ञान और विषयकषायव्यापार ये दोनों विरुद्ध पर्यायें हैं। जिस समयमें स्वानुभूति है उसी समयमें शुभाशुभ विषयकषायका व्यापार नहीं रहता है। यह एवंभूतनयकी अपेक्षासे कथन है ॥ १६१ ॥

अब वीतरागसम्यक्त्ववाली शुद्धात्मानुभूति को छोडकर एकांतसे उस पुण्यको ही जो मुक्तिका कारण कहते हैं, उनको संबोधन करनेके लिये और भी दूषण देते हैं–

---

१) अव्रती सम्यक्त्वी की शुद्धात्मानुभूति, देशविरत सम्यक्त्वी की शुद्धात्मानुभूति और भावलिंगी सकलसंयमीकी शुद्धात्मानुभूति जाति अपेक्षासे समान है लेकिन गुणस्थानकी अपेक्षासे, दृढता की अपेक्षासें और स्थिरताकी अपेक्षासे भेद है।

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति ।
संसारगमणहेदुं वि मोक्खहेउं अजाणंता ॥ १६२ ॥

॥ आ. ख्या. १५४ ॥

इह हि केचन सकलकर्मक्षयमोक्षमिच्छंतोऽपि निजपरमात्मभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणं परमसामायिकं पूर्वं दीक्षाकाले प्रतिज्ञायापि चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानपरिज्ञानानुष्ठानसामर्थ्याभावात्पूर्वोक्तपरमसामायिकमलभमानाः परमार्थबाह्याः संतः संसारगमनहेतुत्वेन बंधकारणमप्यज्ञानभावेन कृत्वा पुण्यमिच्छंति । किं कुर्वंतः? अभेदरत्नत्रयात्मकं मोक्षकारणमजानंतः । अथवा द्वितीयव्याख्यानं, बंधहेतुमपि पुण्यं मोक्षहेतुमिच्छंति । किं कुर्वन्तः? पूर्वोक्तमभेदरत्नत्रयात्मकपरमसामायिकं मोक्षकारणमजानन्तः संतः इति । किंच निर्विकल्पसमाधिकाले व्रताव्रतस्य स्वयमेव प्रस्तावो नास्ति । अथवा निश्चयव्रतं तदेवेत्यभिप्रायः । इति

गाथार्थ– [**जे**] जो जीव [**परमट्ठबाहिरा**] परमार्थ से बाह्य हैं, परमार्थस्वभावमय अपने आत्माका अनुभव नहीं करते हैं, [**ते**] वे जीव [**अण्णाणेण**] अज्ञानसे [**पुण्णं**] पुण्य को [**इच्छंति**] चाहते हैं वह पुण्य [**संसारगमणहेदुं वि**] संसारमें गमन करनेका कारण होता हुआ भी [**अजाणंता**] नहीं जाननेवाले उसे [**मोक्खहेउं**] मोक्ष का कारण मानते हैं ।

टीकार्थ– इस जगतमें कितने ही ऐसे जीव हैं, जो सकल कर्म के क्षय रूप मोक्षकी इच्छा करते हैं तो भी और आरंभमें-दीक्षाके समय निजपरमात्मभावनापरिणतअभेदरत्नत्रयलक्षणवाले परमसामायिककी प्रतिज्ञा करते हुअे भी चिदानंद एक स्वभावशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञान और अनुष्ठान की (स्वस्वानुभूति की) जानकारी (अनुभूति) के सामर्थ्य के अभावसे पूर्वोक्त परमसामायिकको प्राप्त नहीं करानेवाले वे परमार्थसे बाह्य रहनेवाले होकर संसारमें परिभ्रमण करानेवाले कारणरूप अज्ञानभावसे बंधकारणको करके पुण्यकी इच्छा करते हैं ।

शंका– पुण्य की इच्छा कैसे करते हैं ?

समाधान– अभेदरत्नत्रयात्मक मोक्षकारणको न जानते हुअे पुण्य की इच्छा करते हैं । अथवा बंधहेतुवाले पुण्यको भी मोक्षहेतु मानकर पुण्य की इच्छा करते हैं ।

शंका– कैसे करते हैं ?

समाधान– पहले कहे हुअे अभेदरत्नत्रयात्मकपरमसामायिक को मोक्षका कारण हैं ऐसा न जाननेसे पुण्यको मोक्षका कारण मानते हैं, पुण्यको चाहते हैं ।

और विशेष यह है कि, निर्विकल्पसमाधिकालमें (स्वानुभूतिकालमें) व्रत और अव्रतका विकल्प नहीं है । स्वानुभूति ही निश्चयव्रत है, ऐसा अभिप्राय है । इसतरह वीतराग-

वीतरागसम्यक्त्वरूपां शुद्धात्मोपादेयभावनां विना व्रततपश्चरणादिकं पुण्यकारणमेव भवति तद्भावनासहितं पुनर्बहिरंगसाधकत्वेन परम्परया मुक्तिकारणं चेति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा-चतुष्टयं गतं। एवं गाथादशकेन पुण्याधिकारः समाप्तः ॥ १६२ ॥

अथ सविकल्पत्वात्पराश्रितत्वाच्च निश्चयेन पापव्याख्यानमुख्यत्वेन, अथवा निश्चय-व्यवहारमोक्षमार्गमुख्यत्वेन '**जीवादीसद्दहण**' मित्यादिसूत्रद्वयं। तदनंतरं मोक्षहेतुभूतो योऽसौ सम्यक्त्वादिजीवगुणस्तत्प्रच्छादनमुख्यत्वेन '**वत्थस्स सेदभावो**' इत्यादि गाथात्रयं। ततः परं पापं पुण्यं च बंधकारणमेवेतिमुख्यतया '**सो सव्वणाण**' इत्यादि सूत्रमेकं। ततश्च मोक्षहेतुभूतो योसौ जीवो गुणी तत्प्रच्छादनमुख्यतया '**सम्मत्त**' इत्यादि गाथात्रयमिति समुदायेन सूत्रनवक-पर्यंतं तृतीयस्थले व्याख्यानं करोति। अथ तेषामज्ञानिनां निश्चयमोक्षहेतुं दर्शयति—

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं।
रागादीपरिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो ॥ १६३ ॥

॥ आ. ख्या. १५५ ॥

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं जीवादिनवपदार्थानां विपरीताभिनिवेशरहितत्वेन श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं

सम्यक्त्वमय (स्वानुभूतिमय) शुद्धात्मा उपादेय है, ऐसी भावभासना के विना व्रततप-श्चरणादिक पुण्यके ही कारण है। उसी शुद्धात्मानुभूतिके साथ किये हुओ व्रततपको (बहिरंग साधनको) उपचारसे मुक्ति का कारण कहते हैं। इस कथन की मुख्यतासे चार गाथायें पूर्ण हुओ। इस तरह ११ गाथाओंद्वारा पुण्याधिकार समाप्त हुआ ॥ १६२ ॥

अब (वह पुण्य भी) सविकल्प और पराश्रित होनेसे निश्चयसे पाप (शुभाशुभरूप अशुद्ध) है इस कथनकी मुख्यतासे अथवा निश्चयव्यवहाररूप मोक्षमार्गकी मुख्यतासे '**जीवा-दीसद्दहणं**' इत्यादि दो सूत्र हैं। उसके आगे '**वत्थस्स सेदभावो**' इत्यादि तीन गाथायें हैं जो कि मोक्षके कारणभूत सम्यक्त्वादिजीवके गुण हैं उनके आवरण की मुख्यतासे कथन करनेवाली हैं। इसके आगे पुण्य और पाप बंधकेही कारण है, इसकी मुख्यतासे '**सो सव्वणाण**' इत्यादी एक गाथा है उसके बाद मोक्षका हेतुभूत यह जो जीवद्रव्य है उसके आच्छादनकी मुख्यतासे '**सम्मत्त**' इत्यादि तीन गाथायें है। इस तरह तृतीय स्थलमें नौ गाथाओंकी यह समुदाय पातनिका है।

अब उन अज्ञानीजीवोंको निश्चयसे मोक्षका कारण दिखाते हैं—

गाथार्थ— [**जीवादीसद्दहणं**] जीवादिकपदार्थोंका श्रद्धान [**सम्मत्तं**] सम्यक्त्व है और [**तेसिमधिगमो**] इन जीवादिपदार्थोंका अधिगम वह [**णाणं**] ज्ञान, स्वसंवेदज्ञान (स्वानुभव-ज्ञान) ही सम्यग्ज्ञान है, तथा [**रागादीपरिहरणं चरणं**] रागादिपरिहरणमय चारित्र है [**एसो दु**] यह ही [**मोक्खपहो**] मोक्षमार्ग है।

टीकार्थ— जीवादिनवपदार्थों का विपरीत अभिनिवेशरहित रूपसे जो श्रद्धान है, वह

तेसिमधिगमो णाणं तेषामेव संशयविमोहविभ्रमरहितत्वेनाधिगमो निश्चयः परिज्ञानं सम्यग्ज्ञानं **रागादीपरिहरणं चरणं** तेषामेव संबंधित्वेन रागादिपरिहारश्चारित्रं **एसो दु मोक्खपहो** इत्येव व्यवहारमोक्षमार्गः। अथवा तेषामेव भूतार्थेनाधिगतानां पदार्थानां शुद्धात्मनः सकाशात् भिन्नत्वेन सम्यगवलोकनं निश्चयसम्यक्त्वं। तेषामेव सम्यक्परिच्छित्तिरूपेण शुद्धात्मनो भिन्नत्वेन निश्चयः सम्यग्ज्ञानं। तेषामेव शुद्धात्मनो भिन्नत्वेन निश्चयं कृत्वा रागादिविकल्परहितत्वेन स्वशुद्धात्मन्यवस्थानं निश्चयचारित्रमिति निश्चयमोक्षमार्गः ॥ १६३ ॥

अथ निश्चयमोक्षमार्गहेतोः शुद्धात्मस्वरूपाद् यदन्यच्छुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररूपं कर्म तन्मोक्षमार्गो न भवति इति प्रतिपादयति–

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारे ण विदुसा पवट्ठंति।
परमट्ठमासिदाणं दु जदीण कम्मक्खओ होदि ॥ १६४ ॥

॥ आ. ख्या. १५६ ॥

सम्यग्दर्शन है। उनका ही संशयविमोहविभ्रमरहितपनासे अधिगम निश्चयपरिज्ञान-सम्यग्ज्ञान है। उनके ही संबंधसे (स्वानुभवसे) रागादिपरिहाररूप चारित्र है ऐसा ही व्यवहार मोक्षमार्ग है। अथवा भूतार्थसे (निश्चयनयसे) अधिगत पदार्थोंको शुद्धस्वभावमय आत्मासे भिन्नत्वरूपसे सम्यक् अवलोकन करना निश्चयसम्यक्त्व है। उन ही पदार्थो को शुद्धात्मा से भिन्नत्वरूपसे सम्यक् जानना निश्चय सम्यग्ज्ञान है। उनको ही (जीवादिनवपदार्थोंको ही) शुद्धात्मासे भिन्नपनासे निश्चय करके रागादिविकल्परहित रूपसे स्वस्वभावमय शुद्धात्मामें रहना निश्चयचारित्र है, ऐसा निश्चय मोक्षमार्ग है।

भावार्थ– यह निश्चयमार्ग अव्रतिसम्यक्त्वीसे शुरू होता है ॥ १६३ ॥

अब, निश्चयमोक्षमार्गका कारण शुद्धात्मस्वरूप है, उस शुद्धात्मानुभवसे अन्य जो शुभाशुभमनवचनकायमय परिणति है वह मोक्षमार्ग नहीं है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं–

गाथार्थ– [**विदुसा**] सम्यग्ज्ञानी [**णिच्छयट्ठं मोत्तूण**] निश्चयनयको अथवा भूतार्थको अथवा स्वानुभूतिको अथवा स्वपरमशुद्धपारिणामिकभावको छोडकर [**ववहारे**] व्यवहारमें [**ण पवट्ठंति**] प्रवेश नहीं करते हैं [**दु**] इसलिये [**परमट्ठमासिदाणं जदीण**] परमार्थको आश्रय करनेवाले भेदज्ञानीओंका [**कम्मक्खओ**] कर्मक्षय [**होदि**] होता हैं।

टीकार्थ– निश्चयार्थको छोडकर व्यवहारविषयमें विद्वान-ज्ञानी लोग प्रवेश नहीं करते हैं।

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारे निश्चयार्थं मुक्त्वा व्यवहारविषये **ण विदुसा पवट्ठंति** विद्वांसो ज्ञानिनो न प्रवर्तंते। कस्मात्? **परमट्ठमासिदाणं दु जदीण कम्मक्खओ होदि** सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकाग्र्यपरिणतिलक्षणं निजशुद्धात्मभावनारूपं परमार्थमाश्रितानां तु यतीनां कर्मक्षयो भवतीति यतः कारणादिति। एवं मोक्षमार्गकथनरूपेण गाथाद्वयं गतं ॥ १६४ ॥

अथ मोक्षहेतुभूतानां सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां जीवगुणानां वस्त्रस्य मलेनेव मिथ्यात्वादिकर्मणा प्रतिपक्षभूतेन प्रच्छादनं दर्शयति—

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णायव्वो ॥ १६५ ॥
॥ आ. ख्या. १५७ ॥

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो।
अण्णाणमलोच्छण्णं तह णाणं होदि णायव्वं ॥ १६६ ॥
॥ आ. ख्या. १५८ ॥

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो।
कसायमलोच्छण्णं तह चारित्तं पि णादव्वं ॥ १६७ ॥
॥ आ. ख्या. १५९ ॥

शंका— वे प्रवेश क्यों नहीं करते हैं?

समाधान— सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमय अभेदपरिणतिलक्षणवाले— निजस्वभावशुद्धात्मावाले-परमार्थका आश्रय करनेवाले यतियोंका कर्मक्षय होता हैं, इसलिये ज्ञानी व्यवहारमें प्रवेश नहीं करते हैं। इस तरह मोक्षमार्गका कथन करनेवाली दो गाथायें समाप्त हुअी ॥ १६४ ॥

अब, मोक्षके कारणभूत सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन जीवके गुणोंके प्रतिपक्षभूत मिथ्यात्वादिकर्मोंके द्वारा आच्छादन होता है, जैसे मैलसे वस्त्रके श्वेतगुणका आच्छादन होता है, यह दिखाते हैं,—

गाथार्थ— [**जह**] जैसे [**वत्थस्स**] वस्त्रकी [**सेदभावो**] सफेदी [**मलमेलणासत्तो**] मलके मिलनेसे लिप्त हुअी [**णासेदि**] नष्ट हो जाती है [**तह**] उसी प्रकार [**मिच्छत्तमलोच्छण्णं**] मिथ्यात्वमलसे व्याप्त हुआ [**सम्मत्तं**] आत्माका सम्यक्त्व [**खु**] निश्चयसे [**णायव्वो**] आच्छादित हो रहा है, ऐसा जानना चाहिये। [**जह**] जैसे [**वत्थस्स सेदभावो**] वस्त्रकी सफेदी [**मलमेलणासत्तो**] मलके मेलसे लिप्त हुअी [**णासेदि**] नष्ट हो जाती है। [**तह**] उसी प्रकार [**अण्णाणमलोच्छण्णं**] अज्ञानमलसे व्याप्त हुआ [**णाणं**] आत्माका ज्ञान [**णादव्वं होदि**] आच्छादित होता है, ऐसा जानना चाहिये [**जह**] जैसे [**वत्थस्स सेदभावो**] वस्त्र की सफेदी [**मलमेलणासत्तो**] मल के मिलनेसे व्याप्त हुअी [**णासेदि**] नष्ट हो जाती है [**तह**] उसी तरह [**कसायमलोच्छण्णं**] कषायमलसे व्याप्त हुआ [**चारित्तंपि**] आत्मा का चारित्र भी [**णादव्वं**] आच्छादित हो जाता है, ऐसा जानना चाहिये।

वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलविमेलना, मलस्य विशेषेण मेलना सम्बन्धस्तेनाच्छन्नः। तथैव मिथ्यात्वमलेनाच्छन्नो मोक्षहेतुभूतो जीवस्य सम्यक्त्वगुणो नश्यतीति ज्ञातव्यं। वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलविमेलना, मलस्य विशेषेण मेलना संबंधस्तेनच्छन्नः। तथैवाज्ञानमलेनोच्छन्नो मोक्षहेतुभूतो जीवस्य ज्ञानगुणो नश्यतीति ज्ञातव्यं। वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलविमेलना, मलस्य विशेषेण मेलना संबंधस्तेन च्छन्नः। तथा कषायकर्ममलेनावच्छन्नः मोक्षहेतुभूतो जीवस्य चारित्रगुणो नश्यतीति ज्ञातव्यं। इति मोक्षहेतुभूतानां सम्यक्त्वादिगुणानां मिथ्यात्वाज्ञानकषायप्रतिपक्षैः प्रच्छादनकथनरूपेण गाथात्रयं गतं॥ १६५,१६६, १६७॥

अथ कर्म स्वयमेव बंधरूपं कथं मोक्षकारणं भवतीति कथयति–

सो सव्वणाणदरिसी कम्मरएण णियेणवच्छण्णो।
संसारसमावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्वं॥ १६८॥

॥ आ. ख्या. १६०॥

सो सव्वणाणदरिसी कम्मरयेण णियेणवच्छण्णो स शुद्धात्मा निश्चयेन समस्तपरिपूर्णज्ञानदर्शनस्वभावोऽपि निजकर्मरजसोवच्छन्नो झंपितः सन्। **संसारसमावण्णो ण वि जाणदि सव्वदो**

टीकार्थ– जैसे वस्त्रकी सफेदी विशेष मैलके संबंधमें आच्छादित होकर नष्ट होती है वैसे मिथ्यात्वके संबंधमें मोक्षहेतुभूत जीवका सम्यक्त्वगुण आच्छादित होता है, ऐसा जानो। जैसे वस्त्रकी सफेदी मैलके संबंधमें आच्छादित होकर नष्ट होती है, वैसे अज्ञानके संबंधमें मोक्षहेतूभूत जीवका ज्ञानगुण आच्छादित होता है ऐसा जानना चाहिये। जैसे वस्त्रकी सफेदी मैलके संबंधमें आच्छादित होकर नष्ट होती है वैसे कषायकर्ममलके संबंधमें मोक्षहेतुभूत जीवका चारित्र गुण भी आच्छादित होता है, ऐसा जानना चाहिये।

इसतरह मोक्षके हेतूभूतसम्यक्त्वादिगुणोंके प्रतिपक्षभूत मिथ्यात्व, अज्ञान और कषायद्वारा होनेवाले आच्छादनका कथन करनेवाली तीन गाथायें समाप्त हुओ ॥ १६५, १६६, १६७॥

अब, कर्म स्वयम् ही बंधरूप है तो वह मोक्षका कारण कैसे हो सकता है? ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**सो**] वह आत्मा स्वभावसे [**सव्वणाणदरिसी**] सबका जाननेवाला और देखनेवाला है [**वि**] तो भी [**णियेणवच्छण्णो**] अपने कर्मरूपी रजसे आच्छादित हुआ [**संसारसमावण्णो**] ससारको प्राप्त होता हुआ [**सव्वदो**] सब प्रकारसे [**सव्वं**] सब वस्तुको [**ण जाणदि**] नहीं जानता है।

टीकार्थ– निश्चयनयसे वह शुद्धात्मा समस्तपरिपूर्णज्ञानदर्शनस्वभाववाला है, तो भी

सव्वं संसारसमापन्नः संसारे पतितः सन् नैव जानाति सर्वं वस्तु सर्वतः सर्वप्रकारेण। ततो ज्ञायते कर्म कर्तृ जीवस्य स्वयमेव बंधरूपं कथं मोक्षकारणं भवतीति। एवं पापवत्पुण्यं बंधकारणमेवेति कथनरूपेण गाथा गता ॥ १६८ ॥

अथ पूर्वं मोक्षहेतूभूतानां सम्यक्त्वादिजीवगुणानां मिथ्यात्वादिकर्मणा प्रच्छादनं भवतीति कथितं इदानीं तद्गुणाधारभूतो गुणी जीवो मिथ्यात्वादिकर्मणा प्रच्छाद्यते इति प्रकटीकरोति—

सम्मत्तपडिणिबद्धं मिच्छत्तं जिणवरेहिं परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठी त्ति णायव्वो ॥ १६९ ॥
॥ आ. ख्या. १६१ ॥

णाणस्स पडिणिबद्धं अण्णाणं जिणवरेहिं परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो अण्णाणी होदि णायव्वो ॥ १७०॥
॥ आ. ख्या. १६२ ॥

चारित्तपडिणिबद्धं कसायं जिणवरेहिं परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो अचरित्तो होदि णायव्वो ॥ १७१ ॥
॥ आ. ख्या. १६३ ॥

निजकर्मरजसे आच्छादित होकर, संसारको प्राप्त होकर संसारमें पतित होकर सवप्रकारसे सव वस्तुको जानता ही नहीं है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि जीवका कर्म स्वयं ही बंधरूप है, वह कर्म मोक्षका कारण कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता है।

इसप्रकार पापकी तरह पुण्य भी बंधका ही कारण है इस कथन की मुख्यतासे गाथा समाप्त हुअी ॥ १६८ ॥

अभी तक यह बतलाया गया कि, मोक्षके हेतुवाले जीवके सम्यक्त्वादिगुणोंको मिथ्यात्वादिककर्मों के द्वारा आच्छादन होता है, अब उन गुणोंका आधारवाला गुणी-जीवद्रव्य मिथ्यात्वादि कर्मोके द्वारा आच्छादित किया जाता है, ऐसा प्रगट करते हैं—

गाथार्थ— [**सम्मत्तपडिणिबद्धं**] सम्यक्त्वको रोकनेवाला [**मिच्छत्तं**] मिथ्यात्वकर्म है, ऐसा [**जिणवरेहिं**] जिनवरदेवने [**परिकहियं**] कहा हैं [**तस्सोदयेण**] उस मिथ्यात्वके उदयसे [**जीवो**] यह जीव [**मिच्छादिट्ठी त्ति**] मिथ्यादृष्टि होता है ऐसा [**णायव्वो**] जानना चाहिये [**णाणस्स पडिणिबद्धं**] ज्ञानको रोकनेवाला [**अण्णाणं**] अज्ञान है, ऐसा [**जिणवरेहिं**] जिनवरोंने [**परिकहियं**] कहा है [**तस्सोदयेण**] उसके उदयसे [**जीवो**] यह जीव [**अण्णाणी**] अज्ञानी [**होदि**] होता है, ऐसा [**णायव्वो**] जानना चाहिये [**चारित्तपडिणिबद्धं**] चारित्रका प्रतिबंधक [**कसायं**] कषाय है, ऐसा [**जिणवरेहिं**] जिनवरदेवने [**परिकहियं**] कहा है, [**तस्सोदयेण**] उसके उदयसे [**जीवो**] यह जीव [**अचरित्तो**] अचारित्री [**होदि**] होता है, ऐसा [**णायव्वो**] जानना चाहिये।

सम्यक्त्वप्रतिनिवद्धं प्रतिकूलं मिथ्यात्वं भवतीति जिनवरैः परिकथितं तस्योदयेन जीवो मिथ्यादृष्टिर्भवतीति ज्ञातव्यः। ज्ञानस्य प्रतिनिवद्धं प्रतिकूलमज्ञानं भवतीति जिनवरैः परिकथितं तस्योदयेन जीवश्चाज्ञानी भवतीति ज्ञातव्यः। चारित्रस्य प्रतिनिवद्धः प्रतिकूलः क्रोधादिकपायो भवतीति जिनवरैः परिकथितः तस्योदयेन जीवोऽचारित्रो भवतीति ज्ञातव्यः। एवं मोक्षहेतुभूतो योऽसौ जीवो गुणी तत्प्रच्छादनकथनमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं ॥ १६९, १७०, १७१ ॥

इति सम्यक्त्वादिजीवगुणा मुक्तिकारणं तद्‌गुणपरिणतो जीवो वा मुक्तिकारणं भवति तस्माच्छुद्धजीवाद्भिन्नं शुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररूपं तद्‌व्यापारेणोपार्जितं वा शुभाशुभकर्म मोक्षकारणं न भवतीति मत्वा हेयं त्याज्यमिति व्याख्यान मुख्यत्वेन गाथानवकं गतं।

द्वितीयपातनिकाभिप्रायेण पापाधिकारव्याख्यानमुख्यत्वेन गतं। अत्राह शिष्यः– **'जीवादीसद्दहणमित्यादि'** व्यवहाररत्नत्रयव्याख्यानं कृतं तिष्ठति कथं पापाधिकार इति। तत्र परिहारः- यद्यपि व्यवहारमोक्षमार्गो निश्चयरत्नत्रयस्योपादेयभूतस्य कारणभूतत्वादुपादेयः परंपरया जीवस्य पवित्रताकारणत्वात् पवित्रस्तथापि वहिर्द्रव्यालंवनत्वेन पराधीनत्वात्पतति नश्यतीत्येकं कारणं।

टीकार्थ– सम्यक्त्वको रोकनेवाला मिथ्यात्व है, ऐसा जिनवरों के द्वारा कहा गया है। उस मिथ्यात्वके उदयसे जीव मिथ्यादृष्टि होता है, ऐसा जानना चाहिये। ज्ञानको रोकनेवाला अज्ञान है ऐसा जिनवरोंने कहा हैं उस अज्ञानके उदयसे जीव अज्ञानी होता है ऐसा जानना चाहिये। चारित्रके विरुद्ध क्रोधादिकषाय है ऐसा जिनवरोंने कहा हैं, उस कषायके उदयसे जीव अचारित्री होता है, ऐसा जानना चाहिये। इसप्रकार मोक्षहेतुभूत जो गुणी-जीव द्रव्य है, उसके आच्छादनके कथनकी मुख्यतासे तीन गाथायें समाप्त हुअी ॥ १६९, १७०, १७१ ॥

(और कुछ विशेष कहते हैं कि–) इसतरह सम्यक्त्वादि जीवके गुण मुक्ति के कारण है अथवा उस गुणसे-अभेदरत्नत्रयसे परिणत जीव मुक्ति का कारण है। इसलिये शुद्धजीवसे भिन्न जो मनवचनकायकी शुभाशुभक्रिया अथवा शुभाशुभपरिणति अथवा उससे प्राप्त हुअे शुभाशुभकर्म मोक्षके कारण नहीं है, ऐसा जानकर **"शुभाशुभ हेय अथवा त्याज्य ही है"** इस कथनकी मुख्यतासे नौ गाथायें पूर्ण हुअी।

द्वितीय पातनिका के अभिप्रायसे पापाधिकारके व्याख्यान की मुख्यतासे यह कथन समाप्त हुआ।

शंका– **'जीवादीसद्दहणं'** इत्यादिमें व्यवहाररत्नत्रय का कथन किया है तो यह पापाधिकार कैसे ?

समाधान– यद्यपि उपचारसे व्यवहारमोक्षमार्ग उपादेयभूत निश्चयरत्नत्रयका कारण होनेसे उपादेय है परंपरासे जीवकी पवित्रताका कारण होनेसे पवित्र है, तथापि व्यवहारमोक्षमार्गमें बाह्यद्रव्यका अवलंबन होनेसे और पराधीनता होनेसे स्वतंत्रता नष्ट होती है, यह एक

निर्विकल्पसमाधिरतानां व्यवहारविकल्पालंबनेन स्वरूपात्पतितं भवतीति द्वितीयं कारणं। **इति निश्चयनयापेक्षया पापं** अथवा सम्यक्त्वादिविपक्षभूतानां मिथ्यात्वादीनां व्याख्यानं कृतमिति वा पापाधिकारः। तत्रैवं सति व्यवहारनयेन पुण्यपापरूपेण द्विभेदमपि कर्मं निश्चयेन शृङ्गाररहित-पात्रवत्पुद्गलरूपेणैकीभूय निष्क्रांतं।

इति श्री जयसेनाचार्यकृतायां समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां तात्पर्यवृत्तौ स्थलत्रयसमुदायेनैकोनविंशतिगाथाभिश्चतुर्थः पुण्यपापाधिकारः समाप्तः ॥ ४ ॥

कारण है। निर्विकल्पसमाधिवालोंने व्यवहारविकल्पका अवलंबन करनेसे स्वरूपसे (स्वानुभूतिसे) च्यूत होते हैं, यह दुसरा कारण है। **यह पुण्य भी निश्चयनयकी (स्वानुभूतिकी) अपेक्षासे पाप ही है।**

अथवा सम्यक्त्वादिके विरुद्धपक्षवाले मिथ्यात्वादि का व्याख्यान किया है अथवा यह पापाधिकार है। वहाँ इस प्रकार से होनेपर व्यवहारनयसे कर्म पुण्य और पाप रूपसे दो प्रकारका है, तो भी निश्चयनयकी अपेक्षासे शृंगाररहित पात्रके समान पुद्गलरूपसे एक रूप होकर रंगभूमिसे निकल गया।

इसप्रकार श्रीजयसेनाचार्यजीकृत शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवाली समयसारकी तात्पर्य-वृत्तिनामक टीकामें तीन स्थलोंके समुदायसे १९ गाथाओंसे यह चौथा पुण्यपापाधिकार समाप्त हुआ ॥ ४ ॥



अथ आस्रवाधिकारः ।। ५ ।।

अथ प्रविशत्यास्रवः। यत्र सम्यग्भेदभावनापरिणतः कारणसमयसाररूपः संवरो नास्ति तत्रास्रवो भवतीति संवरविपक्षद्वारेण सप्तदशगाथापर्यंतमास्रवव्याख्यानं करोति। तत्र प्रथमतस्तावत्, वीतरागसम्यग्दृष्टेर्जीवस्य रागद्वेषमोहरूपा आस्रवा न संतीति संक्षेपेण संवरव्याख्यानरूपेण 'मिच्छत्तं अविरमणं' इत्यादि गाथात्रयं। तदनंतरं रागद्वेषमोहास्रवाणां पुनरपि विशेषविवरणमुख्यत्वेन 'भावो रागादिजुत्तो' इत्यादि स्वतंत्रगाथात्रयं। ततः परं केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपकार्यसमयसारकारणभूतनिश्चयरत्नत्रयपरिणतस्य संज्ञानिजीवस्य रागादिभावप्रत्ययनिषेधमुख्यत्वेन 'चउविह' इत्यादि गाथात्रयं। अतः परं तस्यैव ज्ञानिनो जीवस्य मिथ्यात्वादिद्रव्यप्रत्ययास्तित्वेऽपि वीतरागचारित्रभावनाबलेन रागादिभावप्रत्ययनिषेधमुख्यतया 'सव्वे पुव्वणिबद्धा' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं नवतरद्रव्यकर्मास्रवस्योदयागतद्रव्यप्रत्ययाः कारणं भवंति, तेषां च द्रव्यप्रत्ययानां जीवगतरागादिभावप्रत्ययाः कारणमिति कारणव्याख्यानमुख्यत्वेन 'रागो दोसो' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं कथयति, इति समुदायेन सप्तदशगाथाभिः पंचस्थलैः आस्रवाधिकारसमुदायपातनिका।

अब आस्रव प्रवेश करता है। जहां सम्यग्भेदभावनासे परिणत ऐसा कारणसमयसाररूप संवर नहीं है, वहां आस्रव होता है। इस तरह संवर के विरुद्धद्वारसे १७ गाथाओंपर्यंत आस्रवका व्याख्यान करते हैं। वहां पहले तो वीतरागसम्यग्दृष्टिके (स्वानुभूतिवालेके) रागद्वेषमोह रूप आस्रव नहीं हैं- इसका संक्षेपमें, संवरव्याख्यानरूपसे 'मिच्छत्तं अविरमणं' इत्यादि तीन गाथायें हैं। तदनंतर रागद्वेषमोहरूप आस्रवों का फिरसे विशेष कथन की मुख्यतासे 'भावो रागादिजुत्तो' इत्यादि तीन स्वतंत्र गाथायें हैं। इसके आगे केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपकार्य समयसारके कारणभूतनिश्चयरत्नत्रयपरिणतसम्यग्ज्ञानीजीवके रागादिभावप्रत्ययके निषेधकी मुख्यतासे 'चउविह' इत्यादि तीन गाथायें हैं। इसके आगे उस ही सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थगुणस्थानसे शुरू करके आगेके) जीवको मिथ्यात्वादिद्रव्यप्रत्ययका अस्तित्व होते हुए भी वीतरागचारित्र (स्वानुभव) की भावभावनासे रागादिभावप्रत्यय के निषेधकी मुख्यतासे 'सव्वे पुव्वणिबद्धा' इत्यादी चार गाथायें हैं। तदनंतर नवतरद्रव्यकर्मों के आस्रव का कारण उदयागत द्रव्यप्रत्यय हैं और उन द्रव्यप्रत्ययोंका कारण (व्यवहारसे) ये जीवगतरागादिभावप्रत्यय हैं, इस प्रकारके कारणों को कथन करनेकी मुख्यतासे 'रागो दोसो' इत्यादी चार गाथायें हैं, इस तरह पांच स्थलोंसे, १७ गाथाओंसे आस्रवाधिकार है, उसकी यह सामुदायिक पातनिका है।

अथ द्रव्यभावास्रवस्वरूपं कथयति–

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य सण्णसण्णा दु ।
बहुभेया जीवे तस्सेव अणण्णपरिणामा ॥ १७२ ॥

॥ आ. ख्या. १६४ ॥

णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति ।
तेसिं पि होदि जीवो य रागदोसादिभावकरो ॥ १७३ ॥

॥ आ. ख्या. १६५ ॥

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य सण्णसण्णा दु "सण्णसण्णा" इत्यत्र प्राकृतलक्षण-बलात् अकारलोपो द्रष्टव्यः । मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगाः कथंभूताः, भावप्रत्ययद्रव्य-प्रत्ययरूपेण संज्ञाऽसंज्ञाश्चेतनाचेतनाः । अथवा संज्ञाः, आहारभयमैथुनपरिग्रहरूपाः, असंज्ञाः ईषत्संज्ञाः, इहलोकाकांक्षापरलोकाकांक्षाकुधर्माकांक्षारूपास्तिस्रः । कथंभूताः । एते **बहुविधभेदा जीवे** उत्तरप्रत्ययभेदेन बहुधा विविधाः, क्व ? जीवे, अधिकरणभूते । पुनरपि कथंभूताः । **तस्सेव अणण्णपरिणामा** अनन्यपरिणामाः अभिन्नपरिणामाः तस्यैव जीवस्याशुद्धनिश्चयनयेनेति । **णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति** ते च पूर्वोक्तद्रव्यप्रत्ययाः उदयागताः संतः

आगे द्रव्य और भाव आस्रव का स्वरूप कहते हैं–

गाथार्थ– [**मिच्छत्तं अविरमणं**] मिथ्यात्व अविरति [**य**] और [**कसायजोगा**] कषाय योग [**सण्णसण्णा दु**] ये चार आस्रव के भेद चेतनाके और अचेतनाके जड-पुद्‌गलके विकार ऐसे दो दो भेद भिन्न भिन्न हैं । उनमेंसे जो चेतनके विकार हैं वे [**जीवे**] जीवमें [**बहुविहभेदा**] वहुत भेद लिये हुये हैं वे [**तस्सेव अणण्णपरिणामा**] उस जीवके ही अभेदरूप परिणाम हैं और जो मिथ्यात्व आदि पुद्‌गलके विकार हैं [**ते दु**] वे तो [**णाणावरणादीयस्स**] ज्ञाना-वरणादि [**कम्मस्स**] कर्मोंके बंधनके [**कारणं**] कारण [**होंति**] हैं [**य**] और [**तेसिं पि**] उन मिथ्यात्व आदि भावों को भी [**रागदोसादिभावकरो**] रागद्वेष आदि भावों का करनेवाला [**जीवो**] जीव [**होदि**] कारण होता है ।

टीकार्थ– '**सण्णसण्णा**' इस पदमें प्राकृत व्याकरणके अनुसार अकारका लोप हो गया है । मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग ये भावप्रत्यय और द्रव्यप्रत्यय रूपसे हैं । अथवा ये संज्ञा, असंज्ञा, अथवा चेतन, अचेतन रूपसे हैं । वे प्रत्यय संज्ञारूप याने आहार, भय, मैथुन, परिग्रहरूप हैं और असंज्ञारूप याने ईषत् संज्ञा याने इहलोक की आकांक्षा, परलोक की आकांक्षा, कुधर्म की आकांक्षा इस तरह तीन प्रकारकी हैं । वे प्रत्यय उत्तर भेदसे बहुत प्रकार के है और वे जीवके अधिकरण में हैं । और अशुद्धनिश्चयनयसे वे प्रत्यय उस जीवके ही अभिन्न (अनन्य) परिणाम हैं । और वे द्रव्यप्रत्यय जब उदयमें आते हैं उसी समयमें निश्चयचारित्रके अविनाभूत रहनेवाले वीतराग सम्यक्त्वके अभावमें (याने स्वानुभूतिके अभावमें) शुद्धात्म-

निश्चयचारित्राविनाभूतवीतरागसम्यक्त्वाभावे सति शुद्धात्मस्वरूपच्युतानां जीवानां ज्ञानावरणाद्यष्टविधस्य द्रव्यकर्मास्रवस्य कारणभूता भवंति। **तेसिं पि होदि जीवो रागदोसादिभावकरो** तेषां च द्रव्यप्रत्ययानां जीवः कारणं भवति। कथंभूतः? रागद्वेषादिभावकर रागद्वेषादिभावपरिणतः। अयमत्र भावार्थः– द्रव्यप्रत्ययोदये सति शुद्धात्मस्वरूपभावनां त्यक्त्वा यदा रागादिभावेन परिणमति तदा बंधो भवति नैवोदयमात्रेण। यदि उदयमात्रेण बंधो भवति? तदा सर्वदा संसार एव। कस्माद्? इति चेत् संसारिणां सर्वदैव कर्मोदयस्य विद्यमानत्वात्। तर्हि कर्मोदयो बंधकारणं न भवति? इति चेत् तन्न निर्विकल्पसमाधिभ्रष्टानां मोहसहितकर्मोदयो व्यवहारेण निमित्तं भवति। निश्चयेन पुनः अशुद्धोपादानकारणं स्वकीयरागाद्यज्ञानभाव एव भवति ॥ १७२, १७३ ॥

अथ वीतरागस्वसंवेदनज्ञानिनो जीवस्य रागद्वेषमोहरूपभावास्रवाणामभावं दर्शयति–

णत्थि दु आसवबंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो।
संते पुव्वणिबद्धे जाणदि सो ते अबंधंतो ॥ १७४ ॥

॥ आ. ख्या. १६६ ॥

स्वरूपसे च्युत होनेवाले जीवोंके ज्ञानावरणादि आठ द्रव्यकर्मोके आस्रव का कारण होते हैं। और उन द्रव्यप्रत्ययोंको रागद्वेषादिभावपरिणत जीव कारण हैं।

यहां यह भावार्थ है कि, द्रव्यप्रत्ययके उदय होनेके समयमें (याने एक कालप्रत्यासत्तिमें) शुद्धात्मभावभासनाको (स्वानुभवको) छोडकर यदि रागादिभावसे परिणमन करता है तब बंध होता हैं, केवल द्रव्यकर्मोके उदय मात्रसे बंध नहीं होता है।

यदि द्रव्यकर्मोके उदयमात्रसे बंध होगा, तो सर्वदा संसारही बना रहेगा, क्योंकि संसारी जीवोंको सर्वदा ही कर्मो का उदय विद्यमान है।

शंका– तो क्या कर्मोदय बंधका कारण नहीं है?

समाधान– कर्मोदय बंधका कारण नहीं है ऐसा नहीं। व्यवहारसे निर्विकल्पसमाधिभ्रष्टजीवोंको (स्वानुभूतिसे रहित रहनेवाले जीवों को) मोहसहित कर्मोदय निमित्त है, किन्तु अशुद्धनिश्चयनयसे अशुद्ध उपादानकारणरूप स्वकीयरागादि अज्ञानभाव ही निमित्त (कारण) है ॥ १७२, १७३ ॥

अब, वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी (स्वानुभूतिवाले याने अविरतसम्यक्त्वीसे शुरू करके सिद्धतक) जीवको रागद्वेषमोहरूप भावास्रवोंका अभाव है, ऐसा दिखाते हैं–

गाथार्थ– [**सम्मादिट्ठिस्स**] सम्यग्दृष्टिके [**आसवबंधो**] आस्रव, बंध [**णत्थि**] नहीं है [**दु**] लेकिन [**आसवणिरोहो**] आस्रव का निरोध है [**पुव्वणिबद्धे**] और जो पहले के बांधे हुअे [**संते**] सत्तामें मौजूद हैं [**ते**] उनको [**अबंधंतो**] आगामी नहीं बांधता हुआ [**सो**] वह [**जाणदि**] जानता ही है।

णत्थि इत्यादि पदखंडनारूपेण व्याख्यानं क्रियते। **णत्थि दु आसवबंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो** न भवतः, न विद्येते। कौ ? तौ आस्रवबंधौ। गाथायां पुनः समाहारद्वन्द्व-समासापेक्षया द्विवचनमप्येकवचनं कृतं। कस्यास्रवबंधौ न स्तः ? सम्यग्दृष्टेर्जीवस्य। तर्हि किमस्ति ? आस्रवनिरोधलक्षणसंवरोऽस्ति **सो** स सम्यग्दृष्टिः **संते** संति विद्यमानानि **ते** तानि **पुव्वणिबद्धे** पूर्वनिबद्धानि ज्ञानावरणादिकर्माणि। अथवा प्रत्ययापेक्षया पूर्वनिबद्धान् मिथ्यात्वा-दिप्रत्ययान् **जाणदि** जानाति वस्तुस्वरूपेण जानाति। किं कुर्वन् सन् ? **अबंधंतो** विशिष्टभेद-ज्ञानबलान्नवतराण्यभिनवान्यबध्नन्-अनुपार्जयन् इति। अयमत्र भावार्थः। सरागवीतरागभेदेन द्विधा सम्यग्दृष्टिर्भवति। तत्र योऽसौ सरागसम्यग्दृष्टिः, "सोलसपणवीसणभं दसचउछक्केक्क बंधवोछिण्णा दुगतीसचदुरपुव्वे पणसोलसजोगिणो इक्को ॥ गोम्मटसार कर्म. ९४ ॥" इत्यादि बंधत्रिभंगकथित-बंधविच्छेदक्रमेण मिथ्यादृष्टयपेक्षया त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनामबंधकः। सप्ताधिकसप्ततिप्रकृतीनाम-ल्पस्थित्यनुभागरूपाणां बंधकोऽपि सन् संसारस्थितिच्छेदको भवति। तेन कारणेनाबंधक इति।

टीकार्थ– 'णत्थि' आदि पदोंका पृथक् पृथक् अर्थ बतलाते हैं कि यहां गाथामें आस्रव और बंध इन दोनोंको समाहारद्वन्द्वसमासरूप से लिया है, अतः द्विवचनके स्थानपर एक वचन है। आस्रव और बंध सम्यग्दृष्टि (चतुर्थगुणस्थानसे शुरू करके सिद्धतक) जीवको नहीं हैं।

शंका– तो क्या है ?

समाधान– उस को तो आस्रवनिरोधलक्षणवाला संवर है। वह सम्यग्दृष्टि जीव सत्तामें विद्यमान पूर्वनिबद्ध ज्ञानावरणादि कर्मोंको अथवा प्रत्ययकी अपेक्षासे पूर्वनिबद्ध मिथ्या-त्वादिप्रत्ययोंको वस्तुस्वरूपसे जानता है।

शंका– सम्यग्दृष्टि जीव क्या करता हुआ जानता है ?

समाधान– विशिष्टभेदज्ञानके (स्वसंवेदनज्ञानके) बलसे नवीन कर्मोंको नहीं बांधता हुआ-नहीं उपार्जन करता हुआ जानता है।

इसका भावार्थ यह है कि, सराग और वीतराग के भेद से दो प्रकारके सम्यग्दृष्टि हैं। इसके वारेमें देखो-गोम्मटसार कर्मकांड गाथा नं. ९४ का अर्थ– प्रथम गुणस्थानमें १६ प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती हैं, सासादन गुणस्थानमें २५ प्रकृतियोंकी बंधव्युच्छित्ति होती है, मिश्र गुणस्थानमें शून्य प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है, अविरत सम्यक्त्व गुणस्थानमें १० प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है, देशसंयत गुणस्थानमें ४ प्रकृतियोंकी बंधव्युच्छित्ति होती है, प्रमत्त गुणस्थानमें ६ प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति होती है, अप्रमत्त गुणस्थानमें १ प्रकृति की बंधव्युच्छित्ति होती है। अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथमभागमें दो, छट्टे भाग में ३० और सप्तम भागमें ४, नवम गुणस्थानमें ५, दशम गुणस्थानमें १६, एवम् सयोग केवली के १ प्रकृति की बंधव्युच्छित्ति होती है।

इसतरह बंधत्रिभंगकथित बंधविच्छेदक्रमसे वह सरागसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यादृष्टि की अपेक्षासे ४३ कर्म प्रकृतीओंका अबंधक है। वह सम्यग्दृष्टि ७७ प्रकृतीओंका अल्पस्थिति अनुभागका बंधक होता हुआ भी संसारस्थितीका छेदक है, इसलिये चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीव

तथैवाविरतिसम्यग्दृष्टेर्गुणस्थानादुपरि यथासंभवं सरागसम्यक्त्वपर्यंतं, अधस्तनगुणस्थानापेक्षया तारतम्येनावंधकः। उपरिमगुणस्थानापेक्षया पुनर्वंधकः। ततश्च वीतरागसम्यक्त्वे जाते साक्षादवंधको भवति, इति मत्वा वयं सम्यग्दृष्टयः सर्वथा बंधो नास्तीति न वक्तव्यं। इति आस्रवविपक्षद्वारेण संवरस्य संक्षेपसूचनव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं ॥ १७४॥

अथ रागद्वेषमोहभावानामास्रवत्वं निश्चिनोति–

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो होदि।
रागादिविप्पमुक्को अवंधगो जाणगो णवरि ॥ १७५ ॥

॥ आ. ख्या. १६७ ॥

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो होदि यथा अयस्कांतोपलसंपर्कजो भावः परिणतिविशेषः, कालायससूचिं प्रेरयति तथा जीवेन कृतो रागाद्यज्ञानजो भावः परिणतिविशेषः कर्ता, शुद्धस्वभावेन सानंदमव्ययमनादिमनंतशक्तिमुद्योतिनं निरुपलेपगुणमपि जीवं शुद्धस्वभावात्प्रच्युतं कृत्वा कर्मवंधं कर्तुं प्रेरयति। **रागादिविप्पमुक्को अवंधगो जाणगो णवरि** यथा चायस्कां-

---

अवंधक है। उसी प्रकार अव्रती सम्यग्दृष्टि से शुरू करके ऊपरके यथासंभव सरागसम्यक्त्व तक अधस्तनगुणस्थानकी अपेक्षासे तारतम्यसे अवंधक है। और उपरके गुणस्थानकी अपेक्षासे बंधक है। और इसलिये वीतरागसम्यक्त्व (स्वानुभूतिवाले चतुर्थगुणस्थानसे शुरू करके आगेके जीव स्वसंवेदन) होते समय साक्षात् अवंधक है, ऐसा जानकर हम सम्यक्त्वी जीवोंको (चतुर्थगुणस्थानवाले, पंचम गुणस्थानवाले, छट्टे गुणस्थानवाले और सातवे गुणस्थानवाले जीवोंको) सर्वथा वंध नहीं है ऐसा वक्तव्य नहीं करना चाहिये।

इस तरह आस्रव का विपक्षवाला जो संवर है उसकी संक्षेपसे सूचना के व्याख्यान की मुख्यतासे तीन गाथायें समाप्त हुई ॥ १७४॥

अव, रागद्वेषमोहभावोंको ही आस्रवपना है, ऐसा निश्चित करते हैं–

गाथार्थ– [**रागादिजुदो भावो**] जो रागादिसे युक्त भाव [**जीवेण कदो**] जीवके द्वारा किया है [**दु**] वही [**बंधगो होदि**] वंधक है और जो [**रागादिविप्पमुक्को**] रागादि भावोंसे रहित है वह [**अवंधगो**] अवंधक है [**णवरि**] केवल [**जाणगो**] जाननेवाला– ज्ञायक है।

टीकार्थ– जैसे चुम्बकपाषाणके संपर्कमें उत्पन्न हुआ भाव-परिणतिविशेष लोहेकी सूची को हिलाने डुलानेवाला है (प्रेरित करता है) वैसे जीवके द्वारा किया हुआ रागादिअज्ञानमय भाव (परिणति) शुद्धस्वभावसे सानंद–अव्यय–अनादि–अनंत उद्योतित (स्पष्ट) शक्तिवाले– निरुपलेपगुणवाले भी जीवको शुद्धस्वभावसे च्युत करके कर्मबंधके लिये प्रेरित करता है। किन्तु

त्तोपलसंपर्करहितो भावः परिणतिविशेषः कालायससूचिं न प्रेरयति तथा रागाद्यज्ञानविप्रमुक्तो भावस्त्वबंधकः सन् नवरि किंतु जीवं कर्मबंधं कर्तुं न प्रेरयति। तर्हि किं करोति? पूर्वोक्तशुद्धस्वभावेनैव स्थापयति। ततो ज्ञायते निरुपरागचैतन्यचिच्चमत्कारमात्रपरमात्मपदार्थाद्भिन्ना रागद्वेषमोहा एव बंधकारणमिति ॥ १७५ ॥

अथ रागादिरहितशुद्धभावस्य संभवं दर्शयति–

पक्के फलम्मि पडिदे जह ण फलं बज्झदे पुणो विंटे।
जीवस्स कम्मभावे पडिदे ण पुणोदयमुवेहि ॥ १७६ ॥

॥ आ. ख्या. १६८ ॥

पक्के फलम्मि पडिदे जह ण फलं बज्झदे पुणो विंटे यथा पक्वे फले पतिते सति पुनरपि तदेव फलं वृंते न बध्यते। **जीवस्स कम्मभावे पडिदे ण पुणोदयमुवेहि** तथा तत्त्वज्ञानिनो जीवस्य सातासातोदयजनितसुखदुःखरूपकर्मभावे कर्मपर्याये पतिते गलिते निर्जीर्णे सति रागद्वेषमोहाभावात्

जैसे चुम्बकपाषाणके संपर्कसे रहित भाव लोहेकी सूचीको हिलाता (प्रेरित) नहीं करता है, वैसे रागादिअज्ञानभावसे रहित भाव अबंधक होनेसे जीवको–कर्मबंध करने के लिए प्रेरित नहीं करता है।

शंका– तो क्या करता है?

समाधान– रागादिअज्ञानभावसे रहितवाला भाव पूर्वोक्त शुद्धस्वभावसे ही स्थापन करता है। (ज्ञाताद्रष्टा रहता है।)।

इससे यह सिद्ध हुआ कि निरुपरागचैतन्यचिच्चमत्कारमात्रपरमात्मस्वभावसे भिन्न ऐसे (जो) रागद्वेषमोह भाव है, वे ही बंधके कारण हैं ॥ १७५ ॥

अब, रागादिरहितशुद्धभावकी संभावना दिखाते हैं–

गाथार्थ– [**जह**] जैसे [**फलम्मि**] वृक्ष तथा वेलिका फल [**पक्के पडिदे**] पककर गिर जाय वह [**पुणो**] फिर [**विंटे**] गुच्छे में [**ण बज्झदे**] नहीं बंधता, उसी तरह [**जीवस्स**] जीवमें [**कम्मभावे**] पुद्गल कर्मभावरूप [**पडिदे**] पककर झड़ जाय अर्थात् निर्जरा हो गयी हो वह कर्म [**पुणोदयं**] फिर उदय [**ण उवेहि**] नहीं होता है।

टीकार्थ– जैसे पक्व फल वृक्षसे नीचे गिर जाय तो फिरसे वह फल गुच्छेमें नहीं बंधा जाता है, वैसे सम्यग्ज्ञानी जीवका सातासातोदयजनितसुखदुःखभाव, कर्मपर्याय की निर्जरा होनेपर रागद्वेषमोहका अभाव होनेसे फिरसे वह कर्म बंधको प्राप्त नहीं होता है और उदय भी

पुनरपि तत्कर्म बंधं नायाति, नैवोदयं च । ततो रागाद्यभावात् शुद्धभावः संभवति । तत एव च सम्यग्दृष्टेर्जीवस्य निर्विकारस्वसंवित्तिवलेन संवरपूर्विका निर्जरा भवतीत्यर्थः ।। १७६ ।।

अथ ज्ञानिनो नवतरद्रव्यास्रवाभावं दर्शयति–

पुढवीपिंडसमाणा पुव्वणिबद्धा दु पच्चया तस्स ।
कम्मसरीरेण दु ते बद्धा सव्वेपि णाणिस्स ।। १७७ ।।

।। आ. ख्या. १६९ ।।

पुढवीपिंडसमाणा पुव्वणिवद्धा दु पच्चया तस्स पृथ्वीपिंडसमानाः अकिंचित्करा भवंति । के ते ? पूर्वनिबद्धाः मिथ्यात्वादिद्रव्यप्रत्ययाः । कस्य ? तस्य वीतरागसम्यग्दृष्टेर्जीवस्य । यतो रागाद्यजनकत्वादकिंचित्करास्ततः कारणात्, नवतरद्रव्यकर्मबंधो न भवति । तर्हि पृथ्वीपिंडसमानाः संतः केन रूपेण तिष्ठंति ? **कम्मसरीरेण दु ते बद्धा सव्वेपि णाणिस्स** कार्मणशरीररूपेणैव ते सर्वे वद्धास्तिष्ठंति, न च रागादिभावपरिणतजीवरूपेण । कस्य ? निर्मलात्मानुभूतिलक्षणभेदविज्ञानिनो

प्राप्त नहीं होता है । इसलिये रागादिका अभाव होनेसे शुद्धभाव संभवता है (प्रगट होता है) । और इसलिये ही सम्यग्दृष्टि जीवके निर्विकारस्वसंवित्ति के वलसे (शुद्धात्मानुभूतिसे) संवर-पूर्वक निर्जरा होती है ।

भावार्थ– चतुर्थगुणस्थानसे संवरपूर्वक निर्जरा शुरू होती है ।। १७६ ।।

अव, सम्यग्ज्ञानिको नवीन द्रव्यास्रव का अभाव है, ऐसा दिखाते हैं–

गाथार्थ– [**तस्स णाणिस्स**] उस पूर्वोक्त ज्ञानी के [**पुव्वणिबद्धा**] पहले अज्ञान अवस्थामें वंधे हुवे [**सव्वेपि**] सभी [**पच्चया**] कर्म भी [**पुढवीपिंडसमाना**] जीव के रागादि भावों के हुए विना पृथ्वी के पिंडसमान है जैसे मिट्टी आदि अन्य पुद्गलस्कंध है उसी तरह वे भी हैं [**दु**] और वे [**कम्मसरीरेण**] कार्मण शरीर के साथ [**बद्धा**] वंधे हुवे हैं ।

टीकार्थ– वीतरागसम्यक्त्वी (स्वानुभूतिवाले याने चतुर्थगुणस्थानसे शुरू करके आगे के) जीव के पूर्वमें वद्ध मिथ्यात्वादिद्रव्यप्रत्यय मिट्टी के पिंड के समान अकिंचित्कर हैं। जिस कारण से रागादिको उत्पन्न न करनेवाले होनेसे अकिंचित्कर है इसलिये नवीन द्रव्यकर्मोंका बंध नहीं होता है ।

शंका– तो फिर पृथ्वीपिंड के समान होकर वे कैसे रहते हैं ?

समाधान– निर्मलआत्मानुभूतिलक्षणवाले भेदज्ञानी जीवके (चतुर्थगुणस्थानसे शुरू करके आगेके याने चतुर्थगुणस्थानादि जीवके) वे सभी मिथ्यात्वादिद्रव्यप्रत्यय कार्मणशरीररूपसे ही वद्ध रहते हैं और रागादिभावपरिणत (मिथ्यात्वसासादानसम्यग्मिथ्यात्व) जीवरूपसे नहीं रहते है [याने सम्यग्ज्ञानी जीव रागादिरूप नहीं परिणमता है] ।

जीवस्येति । किंच यद्यपि द्रव्यप्रत्ययाः कार्मणशरीररूपेण मुष्टिबद्धविषवत्तिष्ठंति तथापि उदयाभावे सुखदुःखविकृतिरूपां बाधां न कुर्वंति । तेन कारणेन ज्ञानिनो जीवस्य, नवतरकर्मास्रवाभाव इति भावार्थः । एवं रागद्वेषमोहरूपास्रवाणां विशेषविवरणरूपेण स्वतंत्रगाथात्रयं गतं ॥ १७७ ॥

अथ कथं ज्ञानी निरास्रवः ? इति पृच्छति–

चहुविह अणेयभेयं बंधंते णाणदंसणगुणेहिं ।
समये समये जह्मा तेण अबंधुत्ति णाणी दु ॥ १७८ ॥

॥ आ. ख्या. १७० ॥

चहुविह अणेयभेयं बंधंते णाणदंसणगुणेहिं चहुविह इति बहुवचने प्राकृतलक्षणबलेन ऱ्हस्वत्वं । चतुर्विधा मूलप्रत्ययाः कर्तारः ज्ञानावरणादिभेदभिन्नमनेकविधं कर्म कुर्वंति । काभ्यां

और विशेष (स्पष्टीकरण) कहते हैं कि– जैसे मुट्ठीमें रखा हुआ विष जीवको कुछ बाधा नहीं पहुंचाता है (क्योंकि जब वह विष मुखसे ग्रहण किया जायेगा तब ही बाधा होती है) । वैसे यद्यपि द्रव्यप्रत्यय कार्मणशरीररूपसे रहते हैं, तथापि उदयके अभावमें सुखदुःखविकृतिरूप बाधा नहीं करते हैं । इसलिये सम्यग्ज्ञानी जीवको नवीन कर्मोंका आस्रव नहीं होता है । यह भावार्थ है ।

इसतरह रागद्वेषमोहरूप आस्रवोंका विशेष वर्णन करनेवाली स्वतंत्र तीन गाथायें समाप्त हुमी ॥ १७७ ॥

अब सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थगुणस्थानादिवर्ती) जीव निरास्रव कैसे है ? ऐसा पूछता है– उसका समाधान करते हैं–

गाथार्थ– [**जह्मा**] जिस कारण से [**समये समये**] प्रति समयमें [**णाणदंसणगुणेहिं**] (यहां बहुवचन होनेसे) भेदोंसे याने विकल्पमय ज्ञानदर्शनगुणों के द्वारा [**चहुविह**] चार प्रकारके प्रत्यय [**अणेयभेयं**] अनेक भेदोंको [**बंधंते**] बांधते हैं । [**दु**] लेकिन [**तेण**] (यहां एकवचन होनेसे) अभेदज्ञानदर्शनसे याने अभेदरत्नत्रयसे-निर्विकल्पसमाधिसे-स्वानुभतिसे [**णाणी**] सम्यग्ज्ञानी [**अबंधुत्ति**] अबंधक है ।

अथवा गाथार्थ– [**णाणदंसणगुणेहिं**] विकल्पमयज्ञानदर्शनगुणों के परिणमनसे [**चहुविह**] चार प्रकारके प्रत्यय [**अणेयभेयं**] अनेक भेदोंको-अनेक प्रकारके कर्मोंको [**बंधंते**] बांधते हैं [**जह्मा**] जिसकारणसे [**समये समये**] ज्ञानदर्शनमय आत्माका आत्मारूपसे परिणमन करनेसे [**तेण**] उस अभेदपरिणतिसे [**दु णाणी**] वह सम्यग्ज्ञानी [**अबंधुत्ति**] अबंधक है ।

टीकार्थ– यहां पर '**चहुविह**' यह शब्द बहुवचन है तो भी ह्रस्वान्त पाठ है । प्राकृत व्याकरणके अनुसार ऐसा होता है । चतुर्विध मूलप्रत्यय ज्ञानावरणादि भेदभिन्न अनेकविध

कृत्वा ? ज्ञानदर्शनगुणाभ्यां दर्शनज्ञानगुणौ कथं बंधकारणभूतौ भवतः ? इति चेत्, अयमत्र भावः, द्रव्यप्रत्यया उदयमागताः संतः जीवस्य ज्ञानदर्शनगुणद्वयं रागाद्यज्ञानभावेन परिणमयंति, तदा रागाद्यज्ञानभावपरिणतं ज्ञानदर्शनगुणद्वयं बंधकारणं भवति। वस्तुतस्तु रागाद्यज्ञानभावपरिणतं ज्ञानदर्शनगुणद्वयं अज्ञानमेव भण्यते। तत् एव 'अणाणदंसणगुणेहिं' इति पाठान्तरं केचन पठंति। **समए समए जह्मा तेण अबंधुत्ति णाणी दु** समये समये यस्मात् प्रत्ययाः कर्तारः। ज्ञानदर्शनगुणं रागाद्यज्ञानभावपरिणतं कृत्वा नवतरं कर्म कुर्वंति। तेन कारणेन भेदज्ञानी बंधको न भवति। किंतु ज्ञानदर्शनरंजकत्वेन प्रत्यया एव बंधकाः, इति ज्ञानिनो निरास्रवत्वं सिद्धं ॥ १७८ ॥

अथ कथं ज्ञानगुणपरिणामो बंधहेतुरिति पुनरपि पृच्छति–

जह्मा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणो वि परिणमदि।
अण्णत्तं णाणगुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो ॥ १७९ ॥

॥ आ. ख्या. १७१ ॥

कर्मोंको करते हैं।

शंका– क्या करके ?

समाधान– ज्ञानदर्शनगुणों के द्वारा चतुर्विध मूलप्रत्यय ज्ञानावरणादि अनेकविध कर्मोंको करते हैं।

शंका– ज्ञानदर्शनगुण बंधके कारण कैसे होते हैं ?

समाधान– द्रव्यप्रत्यय जब उदयमें आते हैं, उसी समयमें जीव के ज्ञान और दर्शन ये दोनों गुण रागादि अज्ञानभावसे परिणमन करते हैं, तब रागादिअज्ञानभावमयपरिणत ज्ञान और दर्शन ये दोनों गुण बंधके कारण होते हैं। वस्तुतः रागादिअज्ञानभावमयपरिणत ज्ञान और दर्शन इन दोनों गुणोंको अज्ञान ही कहा जाता है (क्योंकि 'बंधंते अणाणदंसणगुणेहिं' इनकी संधी करनेसे 'बंधंते णाणदंसणगुणेहिं' ऐसा हो सकता है)।

प्रति समय प्रत्यय ज्ञानदर्शनगुण को रागादि अज्ञानभावमयपरिणत करके नवीन कर्म करते हैं। भेदज्ञानीके ज्ञानदर्शनगुण ज्ञानमयभावरूप परिणत होनेसे भेदज्ञानी बंधक नहीं हैं। किंतु ज्ञानदर्शनरंजकपना से प्रत्यय ही बंधक हैं। इसतरह सम्यग्ज्ञानीका निरास्रवपना सिद्ध हो गया ॥ १७८ ॥

अब फिरसे पूछते हैं कि ज्ञानगुणका परिणाम बंधका कारण कैसे है ?–

गाथार्थ– [जह्मा दु] जिस कारणसे [णाणगुणो] ज्ञानगुण [पुणो वि] फिर भी [जहण्णादो णाणगुणादो] जघन्य ज्ञानगुणसे [अण्णत्तं] अन्यरूपसे [परिणमदि] परिणमन करता है [तेण दु] इसी कारण [सो] वह ज्ञानगुण [बंधगो भणिदो] कर्मका बंध करनेवाला कहा गया है।

जह्मा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणो वि परिणमदि अण्णत्तं णाणगुणो यस्मात् यथाख्यातचारित्रात्पूर्वं जघन्यो,हीनः सकषायो ज्ञानगुणो भवति । तस्मात्-जघन्यत्वादेव ज्ञानगुणात् सकाशात्, अंतर्मुहूर्तानंतरं निर्विकल्पसमाधौ स्थातुं न शक्नोति जीवः । ततः कारणात् अन्यत्वं सविकल्पकपर्यायांतरं परिणमति । स कः ? कर्ता । ज्ञानगुणः । **तेण दु सो बंधगो भणिदो** तेन सविकल्पेन कषायभावेन स ज्ञानगुणो बंधको भणितः । अथवा द्वितीयव्याख्यानं । जघन्यात् कोऽर्थः, जघन्यात् मिथ्यादृष्टिज्ञानगुणात् काललब्धिवशेन सम्यक्त्वे प्राप्ते सति ज्ञानगुणः कर्ता मिथ्यापर्यायं त्यक्त्वा अन्यत्वं सम्यग्ज्ञानित्वं परिणमति । **तेण दु सो बंधगो भणिदो** तेन कारणेन स ज्ञानगुणो ज्ञानगुणपरिणतजीवो वा अबंधको भणित इत्यभिप्रायः ।। १७९ ।।

अथ यथाख्यातचारित्राधस्तादंतर्मुहूर्तानंतरं निर्विकल्पसमाधौ स्थातुं न शक्यत इति भणितं पूर्वं । एवं सति कथं ज्ञानी निरास्रव इति चेत्–

दंसणणाणचरित्तं जं परिणमदे जहण्णभावेण ।
णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण ।। १८० ।।

।। आ. ख्या. १७२ ।।

दंसणणाणचरित्तं जं परिणमदे जहण्णभावेण ज्ञानी तावदीहापूर्वरागादिविकल्पकरणाभावान्निरास्रव एव । किं तु सोऽपि यावत्कालं परमसमाधेरनुष्ठानाभावे सति शुद्धात्मस्वरूपं द्रष्टुं

टीकार्थ– जिस कारण यथाख्यातचारित्रसे पूर्व अवस्थामें हीन दशावाला–सकषायवाला ज्ञानगुण है। इसलिये ज्ञानगुण (ज्ञानोपयोग) जघन्य ही होनेसे जीव निर्विकल्पसमाधिमें अंतर्मुहूर्तसे ज्यादा कालतक ठहर नहीं सकता है। इसलिये ज्ञानगुण अंतर्मुहूर्तनिर्विकल्पसमाधिके अनंतर अन्य सविकल्पपर्यायरूप परिणमन करता है। वह सविकल्प अवस्था कषायभावसहित होनेसे उस ज्ञानगुणको ही बंधक कहा गया है। अथवा दुसरा व्याख्यान यह है कि, जघन्य याने मिथ्याज्ञानगुणसे काललब्धि के वशसे सम्यक्त्व प्राप्त होते समय वह ज्ञानगुण मिथ्यापर्यायको छोडकर अन्यरूप याने सम्यग्ज्ञानरूप परिणमन करता है। इसलिये वह ज्ञानगुण अथवा सम्यग्ज्ञानीजीव (सम्यग्ज्ञानपरिणत जीव) अबंधक है, ऐसा अभिप्राय है।

भावार्थ– मिथ्यात्व, सासादन और सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) गुणस्थानमें जीव अज्ञानी है, अज्ञानसे बंध होता है और चतुर्थगुणस्थानसे जीव सम्यग्ज्ञानी है, अबंधक है ।। १७९ ।।

अब, यथाख्यातचारित्रसे नीचेके गुणस्थानोंमे अंतर्मुहूर्तसे ज्यादा काल तक निर्विकल्पसमाधिमें स्थिर नहीं रह सकते है, ऐसा पहले कहा गया है। तो फिर सम्यग्ज्ञानी जीव निरास्रव कैसे है ? इस प्रश्नका उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**जं दंसणणाणचरित्तं**] जिस कारण ज्ञानदर्शनचारित्र [**जहण्णभावेण**] जघन्यभावसे [**परिणमदे**] परिणमन करता है [**तेण दु**] उसी कारणसे ही [**णाणी**] सम्यग्ज्ञानी [**विविहेण पुग्गलकम्मेण**] विविध पुद्गल कर्मोंसे [**बज्झदि**] बंधता है।

ज्ञातुमनुचरितुं वासमर्थः तावत्कालं तस्यापि संबंधि यद्दर्शनं ज्ञानं चारित्रं तज्जघन्यभावेन सकषायभावेन अनीहितवृत्त्या परिणमति । णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण तेन कारणेन स तु भेदज्ञानी स्वकीयगुणस्थानानुसारेण परंपरया मुक्तिकारणभूतेन तीर्थंकरनामकर्मप्रकृत्यादि पुद्गलरूपेण विविधपुण्यकर्मणा बध्यते । इति ज्ञात्वा ख्यातिपूजालाभभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिविभावपरिणामपरिहारेण निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा तावत्पर्यंतं शुद्धात्मस्वरूपस्य परिपूर्णः केवलज्ञानरूपो भावो दृष्टो ज्ञातोऽनुचरितश्च भवतीति भावार्थः । एवं ज्ञानिनो भावास्रवस्वरूपनिषेधमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं ॥ १८० ॥

अथ द्रव्यप्रत्ययेषु विद्यमानेषु कथं ज्ञानी निरास्रवः ? इति चेत्–

सव्वे पुव्वणिवद्धा दु पच्चया संति सम्मदिट्ठिस्स ।
उवओगप्पाओगं वंधंते कम्मभावेण ॥ १८१ ॥

॥ आ. ख्या. १७३ ॥

टीकार्थ– सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थगुणस्थानसे शुरू करके आगेके) जीव इच्छापूर्वक (अभिप्रायपूर्वक अथवा बुद्धिपूर्वक) रागादिविकल्प नहीं करता है इसलिये सम्यग्ज्ञानी जीव निरास्रव ही है। किंतु जितने काल तक परमसमाधिके अनुष्ठानमें (स्वानुभूतिमें) नहीं रहता है उतने काल तक शुद्धात्मस्वरूपको देखने के लिये वा जानने के लिये वा अनुचरण करने के लिये असमर्थ है उसी समयमें (एक कालप्रत्यासत्तिमें) जो दर्शन, ज्ञान चारित्र है उसका जघन्यभावसे अबुद्धिपूर्वक (अभिप्राय न होते हुअे अथवा अनिच्छापूर्वक) कषायभावसहित परिणमन हो जाता है। इस कारणसे वह भेदज्ञानी स्वकीयगुणस्थान के अनुसार परंपरासे (उपचारसे) मुक्ति को कारणभूत ऐसे तीर्थंकरनामकर्मप्रकृति आदि पुद्गलरूप विविध पुण्यकर्मसे बांधा जाता है। यह जानकर ख्यातिपूजालाभभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिविभावपरिणामको छोडकर निर्विकल्प समाधिमें स्थिर रहकर शुद्धात्मस्वभावको तब तक देखना चाहिए, जानना चाहिए, और उसमें लगे रहना चाहिए जब तक शुद्धात्मस्वभावके परिपूर्ण केवलज्ञानभावरूप दृष्टा, ज्ञाता, अनुचरण करनेवाला हो। ऐसा भावार्थ है।

इसप्रकार सम्यग्ज्ञानीको भावास्रव नहीं होते हैं, इस कथनकी मुख्यतासे तीन गाथायें समाप्त हुअी ॥ १८० ॥

अब, द्रव्यप्रत्यय विद्यमान होते हुअे भी ज्ञानी निरास्रव कैसे हैं ? इसका उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**जह**] जैसे [**पुरिसस्स**] पुरुषको [**वाला इत्थी**] बाल स्त्री [**णिरुवभोज्जा**] निरुपभोग्य है [**दु**] लेकिन [**जह तरुणी इत्थी**] जब वह युवती-स्त्री [**उवभोज्जा भूदा**] उपभोग्य होती है तब [**णरस्स**] पुरुषको रागभावसे [**बंधदि**] बांध देती है [**इव**] वैसे [**सव्वे पुव्वणिवद्धा पच्चया**] सब पूर्ववद्ध प्रत्यय [**संति**] सत्तामें होते हैं [**णिरुवभोज्जा**] वे निरुपभोग्य [**संति**] हैं [**दु**] लेकिन [**जह ते उवभोज्जं**] जब वे उपभोग्य (उदयमें आते)

संति दु णिरुवभोज्जा बाला इत्थी जहेव पुरिसस्स ।
बंधदि ते उवभोज्जे तरुणी इत्थी जह णरस्स ॥ १८२ ॥

॥ आ. ख्या. १७४ ॥

होदूण णिरुवभोज्जा तह बंधदि जह हवंति उवभोज्जा ।
सत्तट्ठविहा भूदा णाणावरणादिभावेहिं ॥ १८३ ॥

॥ आ. ख्या. १७५ ॥

एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अबंधगो होदि ।
आसवभावाभावे ण पच्चया बंधगा भणिदा ॥ १८४ ॥

॥ आ. ख्या. १७६ ॥

सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया संति सम्मदिट्ठिस्स सर्वे पूर्वनिबद्धा द्रव्यप्रत्ययाः संति तावत्सम्यग्दृष्टेः । उवओगप्पाओगं बंधंते कम्मभावेण यद्यपि विद्यंते तथाप्युपयोगेन प्रायोग्यं तत्कालोदयप्रायोग्यकर्मतापन्नं कर्म बध्नंति । केन कृत्वा ? भावेन रागादिपरिणामेन न चास्तित्वमात्रेण बंधकारणं भवंतीति । संतावि णिरुवभोज्जा बाला इत्थी जहेव पुरिसस्स संत्यपि विद्यमानान्यपि कर्माणि क्वचित्प्राकृते लिंगव्यभिचारोऽपि, इति वचनान्नपुंसकलिंगे पुंल्लिंगनिर्देशः । पुंल्लिंगेऽपि नपुंसकलिंगनिर्देशः । कारके कारकांतरनिर्देशो भवति, इति । तानि कर्माणि उदयात्पूर्वं

[हवंति] होते हैं [तह] तब [उवओगप्पाओगं] उपयोगके प्रयोगानुसार [कम्मभावेण] रागभावसे [बंधदि] बांधता है और [णाणावरणादिभावेहिं] ज्ञानावरणादिभावोंसे [सत्तट्ठविहा होदूण] आयुकर्मके विना सात प्रकारके और आयुकर्मसहित आठ प्रकारके होकर [बंधंते] बांधे जाते हैं। [दु] लेकिन [सम्मदिट्ठिस्स] सम्यग्दृष्टिके [आसवभावाभावे] आस्रवभावके अभावमें [पच्चया] वे (सत्तामें रहनेवाले) प्रत्यय [बंधगा] बंधकारक [ण] नहीं [भणिदा] कहे गये हैं। [एदेण कारणेण] इस कारणसे [सम्मादिट्ठी] सम्यग्दृष्टि [अबंधगो] अबंधक [होदि] है ।

टीकार्थ— यद्यपि चतुर्थादिगुणस्थानवर्ति सम्यग्दृष्टि जीवके पूर्वमें बांधे हुओ सब द्रव्यप्रत्यय (सब कर्म) सत्तामें विद्यमान होते हैं, तथापि वे सब उपयोगमें आनेपर—तत्काल उदयको प्राप्त होनेपर आत्मा रागादिभावसे परिणमन करता है तब नूतन कर्म बंधते हैं। तथापि जो कर्म केवल सत्तामें विद्यमान होते हैं वे बंधके कारण नहीं होते हैं। (कहीं प्राकृतमें लिंग व्यभिचार भी होता है ऐसा वचन होनेसे नपुंसकलिंग के स्थानमें पुंल्लिग और पुंल्लिग के स्थानमें नपुंसक लिंग का और कारकमें कारकान्तरका निर्देश भी होता है ।)

निरुपभोग्यानि भवंति। केन दृष्टांतेन ? बाला स्त्री यथा पुरुषस्य। **बंधदि ते उवभोज्जे तरुणी इत्थी जह णरस्स** तानि कर्माणि उदयकाले उपभोग्यानि भवंति। रागादिभावेन नवतराणि च बध्नंति। कथं ? यथा तरुणी स्त्री नरस्येति। अथ तमेवार्थं दृढयति। उदयात्पूर्वं निरुपभोग्यानि भूत्वा कर्माणि स्वकीयस्वकीयगुणस्थानानुसारेण, उदयकालं प्राप्य यथा यथा भोग्यानि भवंति, तथा तथा रागादिभावेन परिणामेन आयुष्कबंधकाले अष्टविधभूतानि शेषकाले सप्तविधानि ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मभावेन पर्यायेण नवतराणि बध्नंति, न चास्तित्वमात्रेणेति। रागादिभावास्रवस्याभावे द्रव्यप्रत्यया अस्तित्वमात्रेण बंधकारणं न भवंति। एतेन कारणेन सम्यग्दृष्टिरबंधको भणित इति। किंच विस्तरः, मिथ्यादृष्टचपेक्षया चतुर्थगुणस्थाने सरागसम्यग्दृष्टिः त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनामबंधकः। सप्ताधिकसप्ततिप्रकृतीनामल्पस्थित्यनुभागरूपाणां बंधकोऽपि संसारस्थितिच्छेदं

वे कर्म उदयके पहले (जबतक सत्तामें हैं तबतक) निरुपभोग्य (भोगनेके अयोग्य) होते हैं।

शंका– यह किसी दृष्टांतसे समझाओ।

समाधान– जैसे बाल स्त्री पुरुषके भोगने योग्य नहीं है वैसे वे कर्म उदयके पहले (सत्तामें रहनेवाले) निरुपभोग्य है।

वे कर्म उदयकालमें उपभोग्य होते हैं और रागादि भावसे नवीन कर्म बंधते हैं।

शंका– कैसे ?

समाधान– जैसे वह बाल स्त्री जवान हो जानेपर पुरुषको प्रेम से अथवा रागभावसे बांध लेती है। वैसे वे कर्म उदयमें आनेपर जीव रागभावसे परिणमन करनेसे नवीन कर्मोको बांधते हैं। उसी अर्थ को दृढ करते हैं–

उदयसे पूर्व कर्म निरुपभोग्य होकर स्वकीय स्वकीय गुणस्थानके अनुसार कर्म उदयकाल को प्राप्त होनेपर जैसे जैसे उपभोग्य (भोगने योग्य) होते हैं वैसे वैसे (जीवके) रागादि भावरूप परिणाम करनेसे आयु बंधके समयमें आठ प्रकारके कर्मोको और शेषकालमें सात प्रकारके ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मभावरूप पर्यायसे नवीन कर्मोको (पर्यायोंको) बांधते हैं। कर्म केवल सत्तामें रहनेसे बंधके कारण नहीं होते हैं। जीवके रागादिभावरूप आस्रवके अभावमें द्रव्यप्रत्यय अस्तित्वमात्रसे (सत्तामें रहनेमात्रसे) बंधके कारण नहीं होते हैं। इस कारणसे सम्यग्दृष्टि (चतुर्थादिगुणस्थानवाले) जीव अबंधक कहे गये हैं।

इसका विशेष कथन यह है कि, चतुर्थगुणस्थानवाला जीव अबंधक है क्योंकि मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षासे चतुर्थ गुणस्थानमें अव्रति प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि ४३ प्रकृतीओं का अबंधक है। ७७ प्रकृतीओंकी अल्पस्थितिअनुभाग का बंधक है, तो भी संसारस्थिति का च्छेद करता है इसलिये अबंधक है। जैसे सिद्धांतमें कहा है कि, " द्वादशांगावगमः तत्तीव्रभक्तिः अनिवृत्तिपरिणामः केवलिसमुद्घातः चेति संसारस्थितिघातकरणानि भवंति " अर्थात्–

दृष्टा

करोति। तथा चोक्तं सिद्धांते– "द्वादशांगावगमस्तत्तीव्रभक्तिरनिवृत्तिपरिणामः केवलिसमुद्धातश्चेति संसारस्थितिघातकरणानि भवंति" तद्यथा, तत्र द्वादशांगश्रुतविषये अवगमो ज्ञानं व्यवहारेण बहिर्विषयः। निश्चयेन तु वीतरागस्वसंवेदनलक्षणं चेति। भक्तिः पुनः सम्यक्त्वं भण्यते व्यवहारेण सरागसम्यग्दृष्टीनां पंचपरमेष्ठ्याराधनारूपा। निश्चयेन वीतरागसम्यग्दृष्टीनां शुद्धात्मतत्त्वभावनारूपा चेति। न निवृत्तिरनिवृत्तिः शुद्धात्मस्वरूपादचलनं एकाग्रपरिणतिरिति। तत्रैवं सति द्वादशांगावगमो निश्चयव्यवहारज्ञानं जातं। भक्तिस्तु निश्चयव्यवहारसम्यक्त्वं जातं। अनिवृत्तिपरिणामस्तु सरागचारित्रानंतरं वीतरागचारित्रं जातमिति सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि भेदाभेदरत्नत्रयरूपेण संसारविच्छित्तिकारणानि भवंति। केषां? छद्मस्थानामिति केवलिनां तु

आगमभाषासे (व्यवहारनयसे)	अध्यात्मभाषासे (निश्चयनयसे)
१) द्वादशांगश्रुतविषयका ज्ञान यह बहिर्विषयका ज्ञान अवगम है (याने जीवादि द्रव्य, तत्त्व, पदार्थ आदिका ज्ञान अवगम है)।	१) वीतरागस्वसंवेदनलक्षणवाला (याने शुद्धात्मस्वस्वभावकी अनुभूतिवाला) ज्ञान अवगम है।
२) भक्तिको सम्यक्त्व कहते हैं– पंचपरमेष्ठीकी आराधना करना भक्ति है याने सम्यक्त्व है यह चतुर्थादिगुणस्थानमें होनेवाली श्रद्धा सम्यक्त्व है।	२) भक्तिको सम्यक्त्व कहते हैं– चतुर्थादि गुणस्थानमें वीतराग (स्वानुभूति अथवा निश्चयसम्यक्त्व) सम्यग्दृष्टिवाले जीव स्वशुद्धात्मस्वभावकी अनुभूति करते हैं, वह सम्यक्त्व है।
३) निवृत्ति न होना अनिवृत्ति है यह एकाग्रपरिणति है।	३) शुद्धात्मस्वभावसे (स्वानुभूतिसे) च्यूत न होना यह एकाग्र परिणति है।

इसतरह चतुर्थादिगुणस्थानोंमें १) द्वादशांगका अवगम–निश्चयव्यवहारज्ञान प्रगट होता है, २) भक्ति– निश्चयव्यवहारसम्यक्त्व प्रगट होता है, और ३) अनिवृत्तिपरिणाम याने मिथ्याचारित्र छुटकर निर्विकल्प अवस्था अथवा सम्यक्चारित्र–वीतराग चारित्र प्रगट होता है याने सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र प्रगट होता है।

आगमभाषासे	अध्यात्मभाषासे
भेदरत्नत्रयसे छद्मस्थोंके संसारका च्छेद होता है। याने इस सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रसे चतुर्थादिसे १२ वे तक के गुणस्थानवर्ती जीवोंके संसार का विच्छेद होता है।	अभेदरत्नत्रयसे छद्मस्थोंके संसारका छेद होता है। याने स्वानुभूतिसे चतुर्थगुणस्थानसे १२ तक के गुणस्थानवर्ती जीवोंके संसारका विच्छेद होता है।

और केवली भगवान दंड-कपाट-प्रतर-लोकपूरण करके संसारविच्छित्ति करते हैं, ऐसा भावार्थ है।

भगवतां दंडकपाटप्रतरलोकपूरणरूपः केवलिसमुद्घातः संसारविच्छित्तिकारणमिति भावार्थः । एवं द्रव्यप्रत्यया विद्यमाना अपि रागादिभावास्रवाभावे सति बंधकारणं न भवंतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं गतं ॥ १८१, १८२, १८३, १८४ ॥

अथ यत एव कर्मबंधहेतुभूता रागद्वेषमोहाः ज्ञानिनो न संति, तत एव तस्य कर्मबंधो नास्तीति कथयति–

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स ।
तह्मा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ॥ १८५ ॥

॥ आ. ख्या. १७७ ॥

हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं ।
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण बज्झंति ॥ १८६ ॥

॥ आ. ख्या. १७८ ॥

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स रागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्न भवंति,

---

इसतरह द्रव्यप्रत्यय (सत्तामें) विद्यमान होते हुये भी जीवके रागादिभावरूप आस्रवके अभावके समयमें वे द्रव्यप्रत्यय वंधके कारण नहीं होते हैं, इस कथनकी मुख्यतासे चार गाथायें समाप्त हुवी। आगमभाषा अभूतार्थ है, और अध्यात्मभाषा भूतार्थ है ॥१८१, १८२, १८३, १८४॥

अब, जिसकारणसे कर्मबंधके कारणभूत रागद्वेषमोह ही सम्यग्ज्ञानीको (चतुर्थादिगुण-स्थानवालेको) नहीं है, इसलिये उसको कर्मबंध नहीं होता है, ऐसा कहते हैं--

गाथार्थ– [**रागो**] राग [**दोसो**] द्वेष [**य**] और [**मोहो**] मोह [**आसवा**] ये आस्रव [**सम्मदिट्ठिस्स**] सम्यग्दृष्टिको [**णत्थि**] नहीं है [**तह्मा**] इसलिये [**आसवभावेण विना**] आस्रवभाव के विना [**पच्चया**] द्रव्यप्रत्यय [**हेदू**] कर्म वंधका कारण [**ण होंति**] नहीं होते हैं [**चदुवियप्पो**] मिथ्यात्वादि चार प्रकारके [**हेदू**] कारण हेतू [**अट्ठवियप्पस्स**] आठ प्रकार के कर्म के वंधनेका [**कारणं**] कारण [**भणिदं**] कहा गया है [**य**] और [**तेसिं पि**] उन चार प्रकार के हेतुओंको भी [**रागादी**] जीव के रागादिभाव कारण है सो सम्यग्दृष्टि के [**तेसिमभावे**] उन रागादिक भावोंका अभाव होने के कारण [**ण बज्झंति**] कर्मबंध नहीं हैं ।

टीकार्थ– चतुर्थादिगुणस्थानवाले सम्यग्दृष्टि जीवको रागद्वेष मोह नही होते हैं क्योंकि इन भावोंके होनेपर सम्यग्दृष्टिपन वन ही नहीं सकता है। इसे स्पष्ट कर बतला रहे हैं, चतुर्थ गुणस्थानवाले सम्यग्दृष्टि जीव के अनंतानुवंधी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व के उदयमें होनेवाले रागद्वेषमोह भाव नहीं होते हैं (यह पक्ष है) ।

शंका– क्यों ?

सम्यग्दृष्टित्वान्यथानुपपत्तेरिति हेतुः। तथाहि, अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वोदयजनिता रागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्न संतीति पक्षः। कस्मात्? इति चेत्, केवलज्ञानाद्यनंतगुणसहितपरमात्मोपादेयत्वे सति वीतरागसर्वज्ञप्रणीतषट्द्रव्यपंचास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थरूपस्य मूढत्रयादिपंचविंशतिदोषरहितस्य—

संवेओ णिव्वेओ णिंदा गरुहा य उवसमो भत्ती। वच्छल्लं अणुकंपा गुणट्ठ सम्मत्तस्स ॥

इति गाथाकथितलक्षणस्य चतुर्थगुणस्थानवर्तिसरागसम्यक्त्वस्यान्यथानुपपत्तेरिति हेतुः। अथवा अनंतानुवंध्यप्रत्याख्यानावरणसंज्ञाः क्रोधमानमायालोभोदयजनिता रागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्न संतीति पक्षः। कस्मात्? इति चेत्; निर्विकारपरमानंदैकसुखलक्षणपरमात्मोपादेयत्वे सति षट्द्रव्यपंचास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थरुचिरूपस्य मूढत्रयादिपंचविंशतिदोषरहितस्य तदनुसारिप्रशमसंवेगानुकम्पादेवधर्मादिविषयास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणस्य पंचमगुणस्थानयोग्यदेशचारित्राविनाभाविसरागसम्यक्त्वस्यान्यथानुपपत्तेरिति हेतुः। अथवा अनंतानुवंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्याना-

---

समाधान— अध्यात्मभाषासे

केवलज्ञानादि अनंतगुणोंसे सहित स्वस्वभावमयपरमात्माको उपादेय करके स्वानुभव सहित ही चतुर्थगुणस्थानवाला सम्यक्त्व है। इनसे रहित चतुर्थगुणस्थानवाला सम्यक्त्व नहीं रहता है। यह कारण है।

आगमभाषासे

वीतराग सर्वज्ञ कथित ६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्त्व, ९ पदार्थ की रुचिरूप और मूढत्रयादिपच्चीस दोषरहित और संवेग, निर्वेद, निंदा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य और अनुकंपा इन आठ गुणोंसे सहित ही चतुर्थगुणस्थानवाला सम्यक्त्व है। इनसे रहित चतुर्थगुणस्थानवाला सम्यक्त्व नहीं रहता है। यह कारण है।

पंचमगुणस्थानवाले सम्यग्दृष्टि जीवके अनंतानुवंधी, अप्रत्याख्यानावरण नामवाले क्रोधमानमायालोभोदयजनित रागद्वेषमोह नहीं होते हैं, यह पक्ष है। क्योंकि

अध्यात्मभाषासे—

निर्विकारपरमानंद एकसुखलक्षणवाले स्वस्वभावमय परमात्माका आश्रय करनेसे जो स्वानुभव प्रगट होता है वह पंचमगुणस्थानयोग्य देशचारित्र सहित है। और इनसे रहित पंचम गुणस्थानवाला सम्यक्त्व नहीं होता है। यह कारण है।

आगमभाषासे—

६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्त्व, ९ पदार्थ इनकी रुचि और मूढत्रयादिपच्चीस दोषरहित और उसके अनुसार प्रशम, संवेग अनुकंपादिसे ही धर्मादिविषयका आस्तिक्य और उसकी अभिव्यक्तिलक्षणवाला पंचमगुणस्थानयोग्य देशचारित्रवाला सराग सम्यक्त्व प्रगट होता है। उससे रहित यह पंचमगुणस्थान नहीं होता है। यह हेतु है।

वरणक्रोधमानमायालोभोदयजनितरागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्न संतीति पक्षः। कस्मादिति चेत्, चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मोपादेयत्वे सति षट्द्रव्यपंचास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थरूचिरूपस्य मूढत्र-यादिपंचविंशतिदोषरहितस्य तदनुसारिप्रशमसंवेगानुकंपादेवधर्मादिविषयास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणस्य षष्ठगुणस्थानरूपसरागचारित्राविनाभाविसरागसम्यक्त्वस्यानुपपत्तेरिति हेतुः। अथवा अनंतानु-बंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधमानमायालोभतीव्रोदयजनिताः प्रमादोत्पादकाः राग-द्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्न संतीति पक्षः। कस्मात्? इति चेत्, शुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मोपादेयत्वे सति तद्योग्यस्वकीयशुद्धात्मसमाधिसंजातसहजानंदैकस्वलक्षणसुखानुभूतिमात्रस्वरूपाऽप्रमत्तादिगुण-स्थानवर्तिवीतरागचारित्राविनाभूतवीतरागसम्यक्त्वस्यान्यथानुपपत्तेरिति हेतुः। तथा चोक्तं–

आद्या सम्यक्त्वचारित्रे द्वितीया घ्नन्त्यणुव्रतं। तृतीया संयमं तुर्या यथाख्यातं क्रुधादयः॥

अथवा– षष्ठगुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि जीवके अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण क्रोधमानमायालोभोदयजनित रागद्वेषमोह नहीं होते हैं, यह पक्ष है। क्योंकि–

अध्यात्मभाषासे

चिदानंद-एक-स्वभावमय शुद्धात्माको उपादेय करनेसे छट्टागुणस्थानवर्ती चारित्र प्रगट होता है। पंचमगुणस्थानकी अपेक्षा छट्टागुणस्थान वीतराग है और सप्तमगुण-स्थानकी अपेक्षा वह सराग चारित्र है।

आगमभाषासे

६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्त्व, ९ पदार्थ इनकी रुचि और मूढत्रयादिपच्चीस दोषरहित और षष्ठगुणस्थानके अनुसार प्रशम, संवेग, अनुकंपादिसे ही धर्मादिविषय का आस्तिक्य और उसकी अभिव्यक्ति लक्षणवाला छट्टागुणस्थानवाला सराग सम्यक्त्व प्रगट होता है। इनसे रहित छट्टा गुणस्थानवाला सम्यक्त्व नहीं होता है। यह हेतु है।

अथवा अप्रमत्तादि गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि जीव के अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, तीव्रसंज्वलनक्रोधमानमायालोभोदयजनित प्रमाद के उत्पादक रागद्वेषमोह नहीं होते हैं। यह पक्ष है। क्योंकि शुद्धबुद्धएकस्वभावमय परमात्माको उपादेय करने से स्वकीय स्वकीय सप्तमादिगुणस्थानयोग्य शुद्धात्मसमाधिमें प्रगट होनेवाला सहजानंद-एक-स्वलक्षणसुखानुभूतिमयस्वरूप अप्रमत्तादिगुणस्थानवर्ती वीतरागचरित्रके अविनाभूत वीतराग-सम्यक्त्व प्रकट होता है। इनसे रहित उन सप्तमादिगुणस्थानयोग्य सम्यक्त्व नहीं होता है, यह हेतु है।

प्रथम

और इसप्रकार अन्य ग्रंथमें कहा हुआ है कि, मिथ्यात्व और अनंतानुबंधीवाले क्रोध-मानमायालोभ सम्यक्त्व और चारित्र इन दोनोंको नहीं होने देते हैं। दूसरे अप्रत्याख्यानावरण कषाय सम्यक्त्व और स्वानुभूतिको नहीं रोकते हैं लेकिन अणुव्रत नहीं होने देते हैं। तीसरे प्रत्याख्यानावरण कषाय सम्यक्त्व और देशव्रतको नहीं रोकते हैं, लेकिन सकल संयम नहीं होने

इति गाथापूर्वार्द्धे व्याख्यानं गतं। **तह्मा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति–** यस्माद्गाथायाः पूर्वार्धकथितक्रमेण रागद्वेषमोहा न संति तस्मात्कारणात् रागादिरूपभावास्रवेण विना अस्तित्वमात्रेण, उदयमात्रेण वा द्रव्यप्रत्ययाः सम्यग्दृष्टेर्बंधहेतवो न भवंतीति। **हेदू चदुवियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं होदि** मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगरूपचतुर्विधो हेतुः ज्ञानावरणादिरूपस्याष्टविधस्य नवतरद्रव्यकर्मणः कारणं भवति। **तेसिं पि य रागादी** तेषामपि मिथ्यात्वादिद्रव्यप्रत्ययानां उदयागतानां जीवगतरागादिभावप्रत्ययाः कारणं भवंति। कस्मात् ? इति चेत्, **तेसिमभावे ण बज्झंति** तेषां जीवगतरागादिभावप्रत्ययानामभावे सति द्रव्यप्रत्ययेषूदयागतेष्वपि वीतरागपरमसामायिकभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणभेदज्ञानस्य सद्भावे सति कर्मणा जीवा न बध्यंते यतः कारणादिति। ततः स्थितं नवतरद्रव्यकर्मास्रवस्योदयागतद्रव्यप्रत्ययाः कारणं, तेषां च जीवगता रागादिभावप्रत्ययाः कारणमिति कारणकारणव्याख्यानं ज्ञातव्यं ॥ १८५, १८६ ॥

अथ यदुक्तं पूर्वं रागादिविकल्पोपाधिरहितं परमचैतन्यचमत्कारलक्षणनिजपरमात्मपदार्थभावनारहितानां बहिर्मुखजीवानां पूर्वबद्धप्रत्ययाः नवतरकर्म बध्नंति तमेवार्थं दृष्टांताभ्यां दृढयति–

देते हैं। एवं चौथे संज्वलन कषाय सम्यक्त्वसहित सकल संयमको नहीं रोकते हैं लेकिन यथाख्यात चारित्रको नहीं होने देते हैं।

इसप्रकार मूल गाथाके पूर्वार्ध का कथन पूर्ण हुआ। जिससे की गाथा के पूर्वार्द्ध में बताया है उसी क्रमसे सम्यग्दृष्टि (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीवके रागद्वेषमोह भाव नहीं होते हैं। इसलिये रागादिरूपभावास्रवके विना केवल सत्तामें रहनेसे अथवा केवल कर्मोदयसे द्रव्यप्रत्यय सम्यक्त्वी को कर्मबंधके कारण नहीं होते हैं।

मिथ्यात्व, अविरतिप्रमाद, कषाय और योगरूप ये चार प्रकारके हेतु ज्ञानावरणादिरूप आठ कर्मोंके नवीन द्रव्यकर्म के कारण हैं। उन उदयागत मिथ्यात्वादि द्रव्यप्रत्ययों को भी जीवगतरागादिभावप्रत्यय कारण हैं। क्योंकि उन जीवगतरागादिभावप्रत्ययोंका अभाव रहनेपर सत्तामें रहनेवाले द्रव्यप्रत्यय और उदयागत प्रत्यय होते हुअे भी वीतरागपरमसामायिकभावनापरिणत– अभेदरत्नत्रयलक्षणवाले (स्वानुभूतिवाले) भेदज्ञानके सद्भाव होनेपर जीव कर्मोंके द्वारा नहीं बांधा जाता है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, नवीन द्रव्यकर्मास्रवको उदयागत द्रव्यप्रत्यय कारण है और उनको जीवगत रागादिभाव प्रत्यय कारण है। इसतरह कारण के कारणका व्याख्यान जानना योग्य है ॥ १८५, १८६ ॥

अब, जो पहले कहा गया है कि, रागादिविकल्पउपाधिरहितपरमचैतन्यचमत्कारलक्षणवाले निजपरमात्मद्रव्यकी अनुभूति से रहित बहिर्मुखजीवों के पूर्वबद्ध प्रत्यय नूतन कर्मोंको बांधते हैं, इसी अर्थको दो दृष्टांतों से दृढ करते हैं–

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेयविहं ।
मंसवसारुहिरादी भावे उदरग्गिसंजुत्तो ॥ १८७ ॥

॥ आ. ख्या. १७९ ॥

तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं ।
बज्झंते कम्मं ते णयपरिहीणा दु ते जीवा ॥ १८८ ॥

॥ आ. ख्या. १८० ॥

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेयविहं यथा पुरुषेण गृहीताहारः स परिणमति अनेकविधं बहुप्रकारं। किं? **मंसवसारुहिरादी भावे उदरग्गिसंजुत्तो** मांसवसारुधिरादीन् पर्यायान् कर्मतापन्नान् परिणमति । कथंभूतः सन्? उदराग्निसंयुक्तः इति दृष्टांतो गतः। **तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं बज्झंते कम्मं ते**– तथैव च पूर्वोक्तोदराग्निसंयुक्ताहारदृष्टांतेन अज्ञानिनश्चैतन्यलक्षणजीवस्य, न च विवेकिनः। पूर्वं ये बद्धाः, मिथ्यात्वादिद्रव्यप्रत्ययाः, जीवगतरागादिपरिणाममुदराग्निस्थानीयं लब्ध्वा ते बहुविकल्पं कर्म बध्नंति । **णयपरिहीणा दु ते**

गाथार्थ– [**जह**] जैसे [**पुरिसेण**] पुरुष के द्वारा [**गहिदो**] ग्रहण किया हुआ [**आहारो**] आहार है [**सो उदरग्गिसंजुत्तो**] वह आहार उदराग्निका संयोग पाकर [**मंसवसारुहिरादी भावे**] मांस, मज्जा, रुधिर आदि भावों रूप [**अणेयविहं**] अनेक रूपसे [**परिणमदि**] परिणमन करता है [**तह**] उसी प्रकार [**णाणिस्स दु**] ज्ञानी के [**पुव्वं बद्धा**] पूर्व में बद्ध [**जे पच्चया**] जो प्रत्यय-द्रव्यास्रव [**ते**] वे [**बहुवियप्पं**] अनेक प्रकार के [**कम्मं**] कर्मोंको [**बज्झंते**] बांधते हैं [**ते दु जीवा**] वे जीव [**णयपरिहीणा**] शुद्धनयसे च्युत हैं। अर्थात् बुद्धिपूर्वक आत्मानुभूतिसे च्यूत होनेपर याने बुद्धिपूर्वक सविकल्प अवस्थामें सम्यग्ज्ञानी (और/अथवा) अज्ञानी जीव रागादि भावास्रव करता है, उससे द्रव्यास्रव और कर्मबन्ध होता है।

टीकार्थ– जैसे पुरुष के द्वारा ग्रहण किया हुआ आहार उदराग्निका संयोग पाकर मांस, मज्जा, रुधिर आदि अनेक प्रकारके पर्यायोंको (अवस्थाओंको) पाता है। यह दृष्टांत हुआ। उसी प्रकार चैतन्यलक्षणवाले अज्ञानी जीव के याने मिथ्याज्ञानी के जो पूर्वबद्ध मिथ्यात्वादिद्रव्यप्रत्यय उदराग्निस्थानीय जीवगतरागादिपरिणाम प्राप्त होते हीं वे अनेक प्रकार के विकल्प कर्मोंको बांधते हैं और चैतन्यलक्षणवाले ज्ञानी जीव को कर्मका बंध नहीं होता है। उन जीवों के संबंधरूप प्रत्यय कर्मको बांधते है।

जीवा येषां जीवानां संबंधिनः प्रत्ययाः कर्म बध्नंति ते जीवाः । कथंभूताः ? परमसमाधिलक्षण-भेदज्ञानात् शुद्धनयाद् भ्रष्टाः च्युताः । अथवा द्वितीयव्याख्यानं, ते प्रत्यया अशुद्धनयेन जीवात् सकाशात् परिहीणा भिन्ना न च भवंति । इदमत्र तात्पर्यं, निजशुद्धात्मध्येयरूपसर्वकर्मनिर्मूलनसमर्थ-शुद्धनयो विवेकिभिर्न त्याज्य इति । एवं कार्यकारणव्याख्यानमुख्यत्वेनगाथाचतुष्टयं गतं ॥ १८७, १८८ ॥

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां तात्पर्यवृत्तौ सप्तदशगाथाभिः पंचस्थलैः संवरविपक्षद्वारेण पंचमः आस्रवाधिकारः समाप्तः ॥ ५ ॥

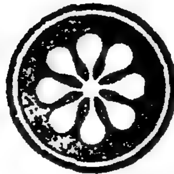
शंका– वे कर्म बांधनेवाले जीव कैसे हैं ?

समाधान– वे कर्म बांधनेवाले जीव परमसमाधि (स्वानुभूति) लक्षणवाले भेदज्ञान से-शुद्धनयसे (परमतत्त्वसे अथवा परमपारिणामिकभावमय द्रव्यसे) भ्रष्ट-च्यूत हैं । अथवा द्वितीय व्याख्यान यह है कि, अशुद्धनिश्चयनय से वे प्रत्यय जीव से भिन्न नहीं है अर्थात् अशुद्धनिश्चयनयसे वे प्रत्यय अशुद्ध जीवसे रहित नहीं है ।

इसका तात्पर्य यह है कि, जो ध्यान करनेके योग्य निजशुद्धात्मस्वभाव है वह सर्व कर्मोको मूलसे नष्ट करनेमें समर्थ है। ऐसा यह शुद्धनय विवेकी (भेदज्ञानी अथवा सम्यग्ज्ञानी अथवा मुमुक्षु) जीवों के द्वारा त्यागने योग्य नहीं है ॥ १८७, १८८ ॥

इस प्रकार कार्यकारण का कथन करने की मुख्यतासे चार गाथायें पूर्ण हुओ ।

इस प्रकार श्री जयसेनाचार्यजीकृत शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवाली समयसारकी तात्पर्यवृत्ति-नामक टीकामें पांच स्थलोंमे १७ गाथाओं के द्वारा संवर के विरूद्धपक्षवाले पांचवे आस्रवअधिकार की पूर्णता हुओ ॥ ५ ॥



अथ संवराधिकारः ॥ ६ ॥

अथ प्रविशति संवरः । संवराधिकारेऽपि यत्र मिथ्यात्वरागादिपरिणतवहिरात्मभावनारूप आस्रवो नास्ति । तत्र संवरो भवतीत्यास्रवविपक्षद्वारेण, चतुर्दशगाथापर्यंतं वीतरागसम्यक्त्वरूप-संवरव्याख्यानं करोति । तत्रादौ भेदज्ञानात् शुद्धात्मोपलाभो भवति इति संक्षेपव्याख्यानमुख्यत्वेन '**उवओगे**' इत्यादि गाथात्रयं । तदनंतरं भेदज्ञानात्कथं शुद्धात्मोपलम्भो भवतीति प्रश्ने परिहार-रूपेण '**जह कणयमग्गि**' इत्यादि गाथाद्वयं । ततः परं शुद्धभावनया पुनः शुद्धो भवतीति मुख्यत्वेन '**सुद्धं तु वियाणंतो**' इत्यादि गाथैकं । ततः परं केन प्रकारेण संवरो भवतीति पूर्वपक्षे कृते सति परिहारमुख्यतया '**अप्पाणमप्पणा**' इत्यादि गाथात्रयं । अथात्मा परोक्षस्तस्य ध्यानं कथं क्रियेतेति पृष्टे सति देवतारूपदृष्टांतेन परोक्षेऽपि ज्ञायत इति परिहाररूपेण '**उवदेसेण**' इत्यादि गाथाद्वयं । तदनंतरं अथोदयप्राप्तप्रत्ययागतानां रागाद्यध्यवसानानामभावे सति जीवगतानां रागादिभावास्र-वाणामभावो भवतीत्यादि संवरक्रमाख्यानमुख्यत्वेन '**तेसिं हेदू**' इत्यादि गाथात्रयं । एवं आस्रव-विपक्षद्वारेण संवरव्याख्याने समुदायपातनिका ।

अब संवर प्रवेश करता है। संवर अधिकारमें भी जहाँ मिथ्यात्वरागादिपरिणत बहिरात्मभावनामय आस्रव नहीं है वहां संवर है, ऐसा आस्रवके विरुद्धपक्षके द्वारा १४ गाथाओं तक वीतरागसम्यक्त्वमय (स्वानुभूतिमय) संवरका कथन करते हैं। उसकें शुरूमें भेदज्ञानसे शुद्धात्माकी प्राप्ती होती है, इसतरह संक्षेपमें कथन करनेकी मुख्यतासे '**उवओगे**' इत्यादि तीन गाथायें हैं। तदनंतर भेदज्ञानसे कैसे शुद्धात्माकी प्राप्ति होती है? इस प्रश्नके निराकरणरूपसे '**जह कणयमग्गि**' इत्यादि दो गाथायें हैं। उसके आगे शुद्धभावभासनासे (स्वानुभूतिसे) ही शुद्ध होता है इस कथन की मुख्यतासे '**सुद्धं तु वियाणंतो**' इत्यादि एक गाथा है। उसके आगे किस प्रकारसे संवर होता है, ऐसा पूर्वपक्ष करनेपर उसका परिहार करनेकी मुख्यतासे '**अप्पाण-मप्पणा**' इत्यादि तीन गाथायें हैं। "यह आत्मा परोक्ष है, उसका ध्यान कैसे किया जाय ?," ऐसा पूछनेपर देवतारूपदृष्टांतसे परोक्षमें भी जाना जाता है इसतरह निराकरण करनेवाली '**उवदेसेण**' इत्यादि दो गाथायें हैं। तदनंतर अब उदयप्राप्तप्रत्ययागत रागादि अध्यवसानोंके अभाव होनेसे जीवगत रागादिभावास्रवोंका अभाव होता हैं इत्यादि, ऐसे संवरक्रमका कथन करनेकी मुख्यतासे '**तेसिं हेदु**' इत्यादि तीन गाथायें हैं। इस प्रकार आस्रव के विरुद्ध पक्ष के द्वारसे संवर के व्याख्यान की यह समुदाय पातनिका है।

तद्यथा– प्रथमतस्तावच्छुभाशुभकर्मसंवरस्य परमोपायभूतं निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानलक्षणं भेदज्ञानं निरूपयति–

उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो ।
कोहे कोहो चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो ।। १८९ ।।

।। आ. ख्या. १८१ ।।

अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो ।
उवओगह्मि य कम्मं णोकम्मं चावि णो अत्थि ।। १९० ।।

।। आ. ख्या. १८२ ।।

एदं तु अविवरीदं णाणं जइया उ होदि जीवस्स ।
तइया ण किंचि कुव्वदि भावं उवओगसुद्धप्पा ।। १९१ ।।

।। आ. ख्या. १८३ ।।

उवओगे उवओगो ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणत्वादभेदनयेनात्मैवोपयोगस्तस्मिन्नुपयोगाभिधाने शुद्धात्मन्युपयोग आत्मा तिष्ठति **कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो** शुद्धनिश्चयेन क्रोधादिपरिणामेषु नास्ति कोप्युपयोग आत्मा **कोहे कोहो चेव हि** क्रोधे क्रोधश्चैव हि स्फुटं तिष्ठति **उवओगे णत्थि खलु कोहो** उपयोगे शुद्धात्मनि नास्ति खलु स्फुटं क्रोधः। **अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे**

यहाँ प्रथमतः शुभाशुभकर्मके संवरके परमउपायभूत निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानलक्षणवाले (स्वानुभववाले) भेदज्ञानका निरूपण करते हैं–

गाथार्थ– [**उवओगे**] उपयोगमें [**उवओगो**] उपयोग है [**कोहादिसु**] क्रोधादिकोंमें [**को वि उवओगो**] कोई भी उपयोग [**णत्थि**] नहीं है [**च**] और [**कोहे एव हि**] क्रोधमें ही [**कोहो**] क्रोध है [**खलु**] निश्चयसे [**उवओगे**] उपयोगमें [**कोहो**] क्रोध [**णत्थि**] नहीं है [**अट्ठवियप्पे**] आठ प्रकारके [**कम्मे**] कर्मोंमें [**च**] और [**णोकम्मे अवि**] नोकर्ममें भी [**उवओगो**] उपयोग [**णत्थि**] नहीं है [**य**] और [**उवओगह्मि**] उपयोगमें [**कम्मं**] कर्म [**च**] और [**णोकम्मं अवि**] नोकर्म भी [**णो अत्थि**] नहीं है [**जइया दु**] जिस कालमें [**एदं तु**] ऐसा [**अविवरीदं**] अविपरीत– सत्यार्थ [**णाणं**] ज्ञान [**जीवस्स**] जीवको [**होदि**] हो जाता है [**तइया**] तब [**उवओगसुद्धप्पा**] उपयोगस्वरूप शुद्धात्मा [**किंचि भावं**] उपयोग विना अन्य कुछ भी भावको [**ण कुव्वदि**] नहीं करता है।

टीकार्थ– ज्ञान दर्शन उपयोग लक्षण होनेसे अभेदनयसे आत्मा ही उपयोग है, उस उपयोग नामवाले शुद्ध आत्मामें उपयोगमय आत्मा रहता है। शुद्धनिश्चयनयसे क्रोधादिपरिणामोंमें कोओ भी उपयोगमय आत्मा नहीं है। क्रोधमें क्रोध ही है यह स्पष्ट है। शुद्धनिश्चयसे उपयोगरूप शुद्धात्मामें क्रोध नहीं है। उसी प्रकार अष्टविधज्ञानावरणादिद्रव्यकर्ममें और औदारिकशरीरादि-

चावि णत्थि उवओगो तथैव चाष्टविधज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मणि, औदारिकशरीरादिनोकर्मणि चैव नास्त्युपयोगः उपयोगशब्दवाच्यः शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मा **उवओगह्मि य कम्मे णोकम्मे चावि णो अत्थि** उपयोगे शुद्धात्मनि शुद्धनिश्चयेन कर्म नोकर्म चैव नास्ति इति । **एदं तु अविवरीदं णाणं जइया दु होदि जीवस्स** इदं तु चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मसंवित्तिरूपं विपरीताभिनिवेशरहितं भेदज्ञानं यदा भवति जीवस्य **तइया ण किंचि कुव्वदि भावं उवओगसुद्धप्पा** तस्माद्भेदविज्ञानात्स्वात्मोपलम्भो भवति शुद्धात्मोपलम्भो जाते सति किमपि मिथ्यात्वरागादिभावं न करोति न परिणमति । कथंभूतः सन् ? निर्विकारचिदानंदैकलक्षणशुद्धोपयोगेन शुद्धात्मा शुद्धस्वभावः सन्निति । यत्रैवंभूतो संवरो नास्ति तत्रास्रवो भवत्यस्मिन्नधिकारे सर्वत्र ज्ञातव्यमिति तात्पर्यं । एवं पूर्वप्रकारेण भेदविज्ञानात् शुद्धात्मोपलंभो भवति । शुद्धात्मोपलंभे सति मिथ्यात्वरागादिभावं न करोति ततो नवतरकर्मसंवरो भवतीति संक्षेपव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं ॥ १८९, १९०, १९१ ॥

अथ कथं भेदज्ञानादेव शुद्धात्मोपलंभो भवतीति पुनरपि पृच्छति–

जह कणयमग्गितवियं पि कणयसहावं ण तं परिच्चयइ ।
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी दु णाणित्तं ॥ १९२ ॥

॥ आ. ख्या. १८४ ॥

नोकर्ममें उपयोग नहीं है । उपयोग शब्दका वाच्य शुद्धबुद्ध-एक-स्वभाववाला परमात्मा है । शुद्धनिश्चयनयसे उपयोगवाले शुद्धात्मामें कर्म और नोकर्म नहीं हैं । इस प्रकार का चिदानंद-एकस्वभावशुद्धात्मानुभववाला विपरीताभिनिवेशरहित भेदज्ञान जब जीवको होता है तब उस भेदविज्ञानसे स्वात्माकी प्राप्ति होती है, शुद्धात्मानुभवकी प्राप्ति होते ही वह जीव कुछ भी मिथ्यात्वरागादिभाव नहीं करता है (नहीं परिणमता है) ।

शंका– कैसे होकर मिथ्यात्वरागादि भाव नहीं करता है ?

समाधान– निर्विकारचिदानंदएकलक्षणवाले शुद्धोपयोगसे शुद्धात्मा– शुद्धात्मस्वभावमय होकर मिथ्यात्वरागादिभाव नहीं करता है ।

इसप्रकार का संवर जहाँ नहीं है वहाँ आस्रव होता है, ऐसा इस अधिकारमें सर्वत्र जानना चाहिये, यह तात्पर्य है । इसतरह पूर्वप्रकारके भेदविज्ञानसे शुद्धात्माकी प्राप्ती होती है। शुद्धात्मानुभव होनेसे मिथ्यात्वरागादि भाव नहीं करता है । इसलिये नवीन कर्मोका संवर होता है, इसप्रकार संक्षेपमें कथन करनेकी मुख्यतासे तीन गाथायें समाप्त हुअी ॥ १८९, १९० १९१ ॥

अब भेदज्ञानसे ही शुद्धात्माकी प्राप्ती (अनुभूति) कैसे होती है ? ऐसा फिरसे पूछनेपर कहते हैं–

गाथार्थ– [**जह**] जैसे [**कणयमग्गितवियं पि**] सुवर्ण अग्निसे तप्त हुआ भी [**तं**] अपने [**कणयसहावं**] सुवर्ण स्वभावको [**ण परिच्चयदि**] नहीं छोडता है [**तह**] उसी तरह

एवं जाणदि णाणी अण्णाणी मुणदि रायमेवादं ।
अण्णाणतमोच्छण्णो आदसहावं अयाणंतो ।। १९३ ।।

।। आ. ख्या. १८५ ।।

जह कणयमग्गितवियं पि कणयसहावं ण तं परिच्चयदि यथा कनकं सुवर्णमग्नितप्तमपि तं कनकस्वभावं न परित्यजति । तह कम्मोदयतविदो ण चयदि णाणि दु णाणित्तं तेन प्रकारेण तीव्रपरीषहोपसर्गेण कर्मोदयेन संतप्तोऽपि रागद्वेषमोहपरिणामपरिहारपरिणतोऽभेदरत्नत्रयलक्षण-भेदज्ञानी न त्यजति । किं तत् ? शुद्धात्मसंवित्तिलक्षणं ज्ञानित्वं पांडवादिवदिति । एवं जाणदि णाणी एवमुक्तप्रकारेण शुद्धात्मानं जानाति । कोऽसो ? वीतरागस्वसंवेदनलक्षणभेदज्ञानी अण्णाणी मुणदि रागमेवादं अज्ञानी पुनः पूर्वोक्तभेदज्ञानाभावात् मिथ्यात्वरागादिरूपमेवात्मानं मनुते जानाति । कथंभूतः सन् ? अण्णाणतमोच्छण्णो अज्ञानतमसोच्छन्नः प्रच्छादितो झंपितः । पुनरपि कथंभूतः सन् । आदसहावं अयाणंतो निर्विकल्पपरमचैतन्यचमत्कारस्वभावं शुद्धात्मानं निर्विकल्पसमाधेर-भावादजानन् अननुभवन इति । एवं भेदज्ञानात्कथं शुद्धात्मोपलंभो भवतीति पृष्टे प्रत्युत्तरकथनरूपेण गाथाद्वयं गतं ।। १९२, १९३ ।।

[कम्मोदयतविदो] कर्मोंके उदयसे तप्तायमान हुआ भी [णाणित्तं] ज्ञानीपने के स्वभावको [ण जहदि] नहीं छोडता [एवं] इस तरह [णाणी] ज्ञानी [जाणदि] जानता है । और [अण्णाणि] अज्ञानी [अण्णाणतमोच्छण्णो] अज्ञानमय अंधकारसे व्याप्त होकर [आदसहावं] आत्मस्वभावको [अयाणंतो] न जानते हुये [रायमेव आदं] रागको ही आत्मा [मुणदि] मानता है ।

टीकार्थ— जैसे सुवर्ण अग्निमें तपाया जानेपर भी वह सुवर्ण अपने स्वभावको नहीं त्यागता है । उसी प्रकार कर्मोदयके तीव्र परीषहके उपसर्गसे संतप्त किया जानेपर भी रागद्वेष-मोहपरिणामसे रहित ऐसी परिणतिवाला अभेदरत्नत्रयलक्षणवाला भेदज्ञानी शुद्धात्मसंवित्ति (शुद्धात्मानुभूति) लक्षणवाले ज्ञानित्वको नहीं छोडता है । जैसे पांडवादिको परिषह होनेपर भी उन्होंने स्वानुभूतिको नहीं छोडा । इस प्रकार वीतरागस्वसंवेदनलक्षण (स्वानुभूतिलक्षण) वाला भेदज्ञानी शुद्धात्माको उक्त प्रकारसे जानता (अनुभवता) है । और अज्ञानी पूर्वोक्त भेदज्ञानके अभावसे मिथ्यात्वरागादिरूप ही आत्माको मानता है, जानता है, (अनुभवता है) ।

शंका— कैसे होकर जानता है ?

समाधान— अज्ञान अंधःकारसे आच्छादित (प्रच्छादित) होकर और निर्विकारपरम चैतन्यस्वभावको-शुद्धात्माको निर्विकल्पसमाधिका अभाव होनेसे न जानता हुआ, न अनुभवता हुआ मिथ्यात्वरागादिरूपही आत्मा मानता है, अनुभवता है ।

इस प्रकार भेदज्ञानसे कैसे शुद्धात्माकी उपलब्धि होती है, ऐसा पूछनेपर उसका उत्तर देनेवाली दों गाथायें समाप्त हुओ ।। १९२, १९३ ।।

अथ कथं शुद्धात्मोपलंभात्संवर इति पुनरपि पृच्छति–

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धमेवप्पयं लहदि जीवो ।
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहइ ॥ १९४ ॥

॥ आ. ख्या. १८६ ॥

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धमेवप्पयं लहदि जीवो भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहितमनंतज्ञानादिगुणस्वरूपं शुद्धात्मानं निर्विकारसुखानुभूतिलक्षणेन भेदज्ञानेन विजानन्ननुभवन् ज्ञानी जीवः । एवं गुणविशिष्टं यादृशं शुद्धात्मानं ध्यायति भावयति तादृशमेव लभते । कस्मात् ? इति चेत् उपादानकारणसदृशं कार्यमिति हेतोः **जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहदि** अशुद्धं मिथ्यात्वादिपरिणतमात्मानं जानन्ननुभवन् सन् अशुद्धं, नरनारकादिरूपमेवात्मानं लभते । स कः ? अज्ञानी जीव इति । एवं शुद्धात्मोपलंभादेव कथं संवरो भवतीति पृष्टे प्रत्युत्तरकथनरूपेण गाथा गता ॥ १९४ ॥

अथ केन प्रकारेण संवरो भवतीति पृष्टे पुनरपि विशेषेणोत्तरं ददाति–

अप्पाणमप्पणो रुंधिऊण दो पुण्णपावजोएसु ।
दंसणणाणह्मि ठिदो इच्छाविरओ य अण्णह्मि ॥ १९५ ॥

॥ आ. ख्या. १८७ ॥

अब, शुद्धात्मानुभवसे संवर कैसे होता है, ऐसा फिरसे पूछनेपर उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**सुद्धं तु**] शुद्ध आत्माको ही [**वियाणंतो**] अनुभवनेसे [**जीवो**] जीव [**सुद्धं एव**] शुद्ध ही [**अप्पयं**] आत्माको [**लहदि**] प्राप्त करता है [**दु**] और [**असुद्धं**] अशुद्ध आत्माको [**जाणंतो**] अनुभवनेसे [**असुद्धमेवप्पयं**] अशुद्ध आत्माको ही [**लहदि**] प्राप्त करता है ।

टीकार्थ– भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहित-अनंतज्ञानादिगुणस्वभावमय शुद्धात्माको निर्विकारसुखानुभूतिलक्षणरूप भेदज्ञानसे अनुभवन करनेवाला ज्ञानी जीव उस गुणविशिष्ट जिसप्रकारके शुद्धात्मस्वभावका ध्यान करता है, अनुभव करता है उसको उसप्रकार के शुद्धात्माकी प्राप्ती होती ~~होती~~ है । क्योंकि उपादान कारण सदृश ही कार्य होता है । अज्ञानी जीव अशुद्ध मिथ्यात्वादिपरिणत आत्माको जाननेवाला, अनुभव करनेवाला होता हुआ अशुद्ध नरनारकादिरूप ही आत्माको प्राप्त करता है । (इसप्रकार शुद्धात्मानुभूति से संवर होता है) । इस तरह शुद्धात्मानुभवसे कैसे संवर होता है ? ऐसा पूछनेपर उसके उत्तर के कथन रूपसे गाथा समाप्त हुओ ॥ १९४ ॥

अव किस प्रकारसे संवर होता है ऐसा पूछनेपर फिरसे विशेष स्पष्टीकरण करते हैं–

गाथार्थ– [**जो अप्पा**] जो आत्मा [**अप्पाणं अप्पणा**] अपने आत्माको अपनेसे [**दंसणणाणह्मि**] दर्शनज्ञानमें [**ठिदो**] स्थित [**सव्वसंगमुक्को**] सव संगरहित याने निस्संगस्व-

जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा ।
णवि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥ १९६ ॥

॥ आ. ख्या. १८८ ॥

अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अणण्णमओ ।
लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मणिम्मुक्कं ॥ १९७ ॥

॥ आ. ख्या. १८९ ॥

अप्पाणमप्पणो रुंधिऊण दो (सु) पुण्णपावजोगेसु आत्मानं कर्मत्वापन्नं आत्मना करणभूतेन द्वयोः पुण्यपापयोगयोरधिकारभूतयोर्वर्तमानं स्वसंवेदनज्ञानबलेन शुभाशुभयोगाभ्यां सकाशाद्रुन्ध्वा व्यावर्त्य । **दंसणणाणह्मि ठिदो** दर्शनज्ञाने स्थितः सन् । **इच्छाविरदो य अण्णह्मि** अन्यस्मिन् देहरागादिपरद्रव्ये सर्वत्रेच्छारहितश्चेति प्रथमगाथा गता । **जो** यः कर्ता **सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा** आत्मा, पुनरपि कथंभूतः । **सव्वसंगमुक्को** निस्संगात्मतत्त्वविलक्षण-बाह्याभ्यन्तरसर्वसंगमुक्तः सन् । **झायदि** ध्यायति । कं, **अप्पाणं** निजशुद्धात्मानं । केन करणभूतेन । **अप्पणो** स्वशुद्धात्मना **णवि कम्मं णोकम्मं** नैव कर्म नोकर्म ध्यायति, आत्मानं ध्यायन् । किं करोति । **चेदा चिंतेदि** एवं गुणविशिष्टश्चेतयितात्मा चिंतयति । किं ? एयत्तं "एकोऽहं निर्ममः

भावमें स्थित [**य**] और [**अण्णह्मि**] अन्यवस्तुमें [**इच्छाविरदो**] इच्छासे रहित [**दो पुण्णपावजोएसु**] दो पुण्यपापमय योगोंसे [**रुंधिऊण**] रोककर [**अप्पणो**] आत्मासे ही [**अप्पाणं**] आत्माका [**झायदि**] ध्यान करता है– अनुभवता है और [**कम्मं णोकम्मं**] कर्म नोकर्म को [**ण**] नहीं अनुभवता है [**वि**] और [**चेदा**] चैतन्यमय [**एयत्तं**] एकत्वस्वभावको [**चिंतेदि**] अनुभव करता है [**सो**] वह जीव [**दंसणणाणमओ**] दर्शनज्ञानमय [**अणण्णमओ**] अनन्यरूपसे– एकरूपसे [**अप्पाणं**] आत्माको [**झायंतो**] ध्यान– अनुभव करता हुआ [**अचिरेण**] थोड़े समयमें [**एव**] ही [**कम्मणिम्मुक्कं**] कर्मोंसे रहित [**अप्पाणं**] आत्माको [**लहदि**] पाता है ।

टीकार्थ– वर्तमानमें पुण्यपापयोगके सांनिध्यमें आत्माको आत्मासे स्वसंवेदनज्ञानबलसे शुभाशुभयोगसे रोककर दर्शनज्ञानमें स्थित रहकर और अन्य देहरागादि परद्रव्यमें सर्वत्र इच्छारहित होता है। जो आत्मा निस्संग आत्मस्वभाववाला है और इससे विलक्षण ऐसे बाह्य-अभ्यन्तर सब परिग्रहसे रहित रहकर निजशुद्धात्मस्वभावका ध्यान-अनुभव करता है ।

शंका– किस साधनसे ध्यान करता है ?

समाधान– अपने शुद्ध आत्मासे निजशुद्धात्मस्वभावका ध्यान करता है और द्रव्यकर्म-भावकर्मनोकर्मका ध्यान नहीं करता है ।

शंका– आत्माका ध्यान करनेवाला क्या करता है ?

समाधान– उपर कहे हुवे विशिष्ट गुणवाले चैतन्यमय आत्माका ध्यान करता है ।

शंका– कैसे ?

शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः । वाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा ॥ इष्टोपदेश–२७ ॥" इत्याद्येकत्वं इति द्वितीयगाथा गता । **सो** इत्यादि । **सो** स पूर्वसूत्रद्वयोक्तः पुरुषः **अप्पाणं झायंतो** एवं पूर्वोक्त प्रकारेणात्मानं कर्मतापन्नं चिंतयन् निर्विकल्परूपेण ध्यायन् सन् । **दंसणणाणमओ** दर्शनज्ञानमयो भूत्वा । **अणण्णमणो** अनन्यमनाश्च **लहदि** लभते । कमेव, **अप्पाणमेव** आत्मानमेव कथंभूतं **कम्मणिम्मुक्कं** भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मविमुक्तं । केन, **अचिरेण** स्तोककालेन । एवं केन प्रकारेण संवरो भवति, इति प्रश्ने सति विशेषपरिहारव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं ॥ १९५, १९६, १९७ ॥

अथ परोक्षस्य आत्मनः कथं ध्यानं भवतीति प्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति–

उवदेसेण परोक्खं रूवं जह पस्सिदूण णादेदि ।
भण्णदि तहेव धिप्पदि जीवो दिट्ठो य णादो य ॥ १९८ ॥

~~॥ आ. ख्या. १९० ॥~~

उवदेसेण परोक्खं रूवं जह पस्सिदूण णादेदि यथा लोके परोक्षमपि देवतारूपं परोपदेशाल्लिखितं दृष्ट्वा कश्चिद्देवदत्तो जानाति । **भण्णदि तहेव धिप्पदि जीवो दिट्ठो य णादो य**

समाधान– जैसा कि "एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः । वाह्या संयोगजा भावाः मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा ॥" (इष्टोपदेश श्लोक नं. २७) याने मैं तो एक हूं, निर्मम हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञानी हूँ, योगीन्द्रगोचर हूँ, इसके सिवाय सभी संयोगजभाव मेरेसे सर्वथा वाह्य (भिन्न) है।

यह दूसरी गाथा का अर्थ हुआ ।

पूर्व दोनों गाथामें कहा हुआ पुरुष उस पूर्वोक्त प्रकारसे आत्माका चिंतवन करनेवाला, निर्विकल्परूपसे (स्वानुभूतिसे) ध्यान करनेवाला और दर्शनज्ञानमय होकर अनन्यमनसे (एकरूपसे) भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहित आत्माको अल्पकालमें प्राप्त करता है ।

इस प्रकार, "किस प्रकारसे संवर होता है ?" इस प्रश्नका उत्तर विशेष प्रकारसे कथन करनेकी मुख्यतासे तीन गाथायें समाप्त हुअी ॥ १९५, १९६, १९७ ॥

अब, परोक्ष आत्माका ध्यान कैसे होता है, ऐसा प्रश्न करनेपर उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**जह**] जैसे [**उवदेसेण**] उपदेशसे [**परोक्खं रूपं**] परोक्ष रूपको [**पस्सिदूण**] देखकर [**णादेदि**] जानता है । [**तहेव भण्णदि**] उसी प्रकार उपदेशसे कहते हैं उसको [**जीवो**] जीव [**धिप्पदि**] ग्रहण करता है [**य**] और [**णादो य दिट्ठो**] वह आत्मा जाना जाता है और देखा जाता है ।

टीकार्थ– जैसे लोकमें देवता का रूप परोक्ष होता हुआ भी परोपदेशसे लिखित देवता-रूपको देखकर कोअी देवदत्त उस देवताको जानता है, वैसे ही वचनसे (श्रुतज्ञानसे) आत्मा

तथैव वचनेन भण्यते तथैव मनसि गृह्यते । कोऽसौ ? जीवः, केन रूपेण ? मया दृष्टो ज्ञातश्चेतिं मनसा संप्रधारयति । तथा चोक्तं–

गुरूपदेशादभ्यासात्संवित्तेः स्वपरांतरं ।
जानाति यः स जानाति मोक्षसौख्यं निरंतरं ॥ इष्टोपदेश-३३ ॥ १९८ ॥

अथ–

को विदिदच्छो साहू संपडिकाले भणिज्ज रूवमिणं ।
पच्चक्खमेव दिट्ठं परोक्खणाणे पवट्ठंतं ॥ १९९ ॥

अथ मतं भणिज्ज रूवमिणं पच्चक्खमेव दिट्ठं परोक्खणाणे पवट्ठंतं यौऽसौ प्रत्यक्षेणात्मानं दर्शयति । तस्य पार्श्वे पृच्छामो वयं । नैवं । **को विदिदच्छो साहू संपडिकाले भणिज्ज** को विदितार्थः साधुः सम्प्रतिकाले ब्रूयात् ? न कोऽपि । किं ब्रूयात् ।, न कोऽपि । किंतु **रूवमिणं**

कहा जाता है और उस ही आत्माको चित्तमें ग्रहण किया जाता है ।

शंका– कौन ग्रहण करता है ?

समाधान– जीव आत्माको ग्रहण करता है ।

शंका– किस रूपसे ?

समाधान– मेरे द्वारा देखा और जाना जाता है ऐसा चित्तसे ग्रहण होता है, अनुभव होता है । उसी प्रकार इष्टोपदेश श्लोक नं. ३३ में कहा गया है कि– जो गुरूपदेशसे, अभ्याससे और स्वानुभूतिसे स्व और परका भेद जानता है वह मोक्षसुखको निरंतर अनुभवता है ॥ १९८ ॥

गाथार्थ– अब [**कोविदिदच्छो साहू**] कोओी ज्ञानी साधु ही [**संपडिकाले**] सांप्रतकालमें– इस समय (इस पंचम कालमें) [**इणं पवट्ठंतं रूवं**] यह प्रवर्तमान आत्मस्वरूप [**पच्चक्खमेव**] प्रत्यक्ष ही [**परोक्खणाणे**] परोक्षज्ञानमें याने क्षयोपशमज्ञानमें [**दिट्ठं**] दिख गया ऐसा [**भणिज्ज**] कहेगा । (अर्थात् "सांप्रतकालमें शुद्धात्मा प्रत्यक्ष दिखता है," ऐसा सम्यग्ज्ञानी जीव कहेगा ।)

टीकार्थ– इसका मतलब यह है कि जो प्रत्यक्षसे आत्माको दिखाता है उसके निकट जाकर हम पूछते हैं कि, ता. वृ. गाथा नं. १९८ में जो कहा है कि "प्रथम उपदेशसे जानकर पश्चात् शुद्धात्मानुभवसे प्रत्यक्ष जानते हैं" इस प्रकारसे नहीं है ऐसा कोओी ज्ञानी साधु वर्तमान (पंचम) कालमें कहता है क्या ?

समाधान– ऐसा कोई भी नहीं कहता है ।

शंका– क्या कहता है ?

पच्चक्खमेव दिट्ठं इदमात्मस्वरूपं प्रत्यक्षमेव मया दृष्टं । चतुर्थकाले केवलज्ञानिवत् । अपि तु नैवं । कथंभूतमिदमात्मस्वरूपं । **परोक्खणाणे पवट्ठंतं** केवलज्ञानापेक्षया परोक्षे श्रुतज्ञाने प्रवर्तमानं, इति ।

किं च विस्तरः । यद्यपि केवलज्ञानापेक्षया रागादिविकल्परहितं स्वसंवेदनरूपं भावश्रुतज्ञानं शुद्धनिश्चयनयेन परोक्षं भण्यते, तथापि इंद्रियमनोजनितसविकल्पज्ञानापेक्षया प्रत्यक्षं । तेन कारणेन आत्मा स्वसंवेदनज्ञानापेक्षया प्रत्यक्षो भवति, केवलज्ञानापेक्षया पुनः परोक्षोऽपि भवति । सर्वथा परोक्ष एवेति वक्तुं नायाति । किं तु चतुर्थकालेऽपि केवलिनः किमात्मानं हस्ते गृहीत्वा दर्शयन्ति ? तेऽपि दिव्यध्वनिना भणित्वा गच्छंति । तथापि श्रवणकाले श्रोतृणां परोक्ष एव पश्चात्परमसमाधिकाले प्रत्यक्षो भवति । तथा इदानीं कालेऽपीति भावार्थः । एवं परोक्षस्यात्मनः कथं ध्यानं क्रियते, इति प्रश्ने परिहाररूपेण गाथाद्वयं गतं ॥ १९९ ॥

समाधान– पूर्व गाथामें जो कहा है कि, प्रथम उपदेश से जानकर पश्चात् स्वानुभवसे प्रत्यक्ष जानते हैं, इसप्रकारसे नहीं है, ऐसा कोई भी नहीं कहता है । किंतु यह आत्माका स्वरूप चतुर्थकालके केवलीके समान (जाती अपेक्षासे समान) प्रत्यक्ष मैंने वर्तमान इस पंचम कालमें देखा है । लेकिन केवलीके समान सकल प्रत्यक्ष (अतिविशद प्रत्यक्ष) मैंने नहीं देखा है ।

शंका– तो फिर आपने किस प्रकारका यह आत्मस्वरूप प्रत्यक्ष जाना (देखा) है ?

समाधान– केवलज्ञानकी अपेक्षासे परोक्ष ऐसे श्रुतज्ञानमें (क्षयोपशमज्ञानमें) प्रवर्तमान यह शुद्धात्मस्वरूप प्रत्यक्ष जाना (देखा) है (याने क्षायिककेवलज्ञानकी अपेक्षासे परोक्षरूप क्षयोपशमज्ञानमें प्रवर्तमान रहनेवाला यह शुद्धात्मस्वरूप प्रत्यक्ष जाना जाता है) इसका विशेष अर्थ यह है कि, यद्यपि केवलज्ञानकी अपेक्षासे रागादिविकल्परहित प्रत्यक्ष स्वसंवेदनज्ञानरूप (स्वानुभूतिरूप) भावश्रुतज्ञानको अभेदोपचारसे-पर्यायार्थिक पूर्ण शुद्धनिश्चयनयसे परोक्ष कहते हैं तथापि इंद्रियमनोजनितसविकल्पज्ञानकी (क्षयोपशमज्ञानकी) अपेक्षासे ४ से १२ गुणस्थानवर्ती स्वसंवेदनज्ञान को अतींद्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं । इस कारणसे आत्मा स्वसंवेदनकी अपेक्षासे प्रत्यक्ष है और केवलज्ञानकी अपेक्षासे क्षयोपशमसम्यग्ज्ञानीयोंका (४ से १२ गुणस्थानवर्तियोंका) शुद्धात्मानुभव परोक्ष भी है । क्षयोपशमजनित (४ से १२ गुणस्थानवर्तियोंकी) स्वानुभूति सर्वथा परोक्ष ही है ऐसा कहनेमें नहीं आता है । किंतु चतुर्थकालमें भी केवलीभगवान क्या आत्माको हाथमें ग्रहणकर दिखाते हैं ? वे केवली भगवान भी दिव्यध्वनिसे कहकर जाते हैं । (अथवा वे लोक दिव्यध्वनिसे कहा हुआ जानते हैं) । तथापि श्रवणकालमें सुननेवाले लोगोंको आत्मा परोक्ष ही है, पश्चात् स्वानुभूतिकालमें प्रत्यक्ष है । इसी तरह अभी इस (पंचम) कालमें भी उपदेशसे, आगमसे जानते समय परोक्ष है और अभी इसी पंचम कालमें भी स्वानुभूतिके समय प्रत्यक्ष ही है, ऐसा भावार्थ है । इस प्रकारसे परोक्ष आत्माका ध्यान कैसे किया जाता है ऐसा प्रश्न करनेपर उसका उत्तर देनेवाली दो गाथायें पूर्ण हुअी ॥ १९९ ॥

अथ, उदयप्राप्त द्रव्यप्रत्ययस्वरूपाणां रागाद्यध्यवसानानामभावे सति जीवगतरागादिभावकर्मरूपाणामध्यवसानानां अभावो भवतीत्यादिरूपेण संवरस्य क्रमाख्यानं कथयति—

तेसिं हेदू भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरसीहिं ।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य जोगो य ॥ २०० ॥

॥ आ. ख्या. १९० ॥

हेदुअभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो ।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोहो ॥ २०१ ॥

॥ आ. ख्या. १९१ ॥

कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं च जायदि णिरोहो ।
णोकम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होदि ॥ २०२ ॥

॥ आ. ख्या. १९२ ॥

तेसिं हेदू भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरसीहिं । तेषां प्रसिद्धानां जीवगतरागादिभावकर्मरूपाणां भावास्रवाणां हेतवः कारणानि भणितानि । कानि ? उदयप्राप्तद्रव्यप्रत्ययागतानि रागाद्यध्यवसानानि । कैः, सर्वदर्शिभिः । ननु अध्यवसानानि भावकर्मरूपाणि, तानि जीवगतान्येव भवंति उदयप्राप्तद्रव्यप्रत्ययागतानि भावप्रत्ययानि कथं भवंतीति ? नैवं, यतः कारणात् भावकर्म

अब, उदयप्राप्तद्रव्यप्रत्ययस्वरूप रागादिअध्यवसानोंका अभाव होनेपर जीवगतरागादिभावकर्मरूप अध्यवसानोंका अभाव होता है, इत्यादि रूपसे संवरका क्रमसे व्याख्यान करते हैं—

गाथार्थ— [**सव्वदरसीहिं**] सर्वज्ञदेवोंने [**तेसिं**] रागादिविभाव आस्रवोंके [**हेदू**] कारण [**मिच्छत्तं**] मिथ्यात्व, [**अण्णाणं**] अज्ञान, [**य अविरदिभावो**] और अविरतिभाव [**य जोगो**] और योग— ये चार [**अज्झवसाणाणि**] अध्यवसान [**भणिदा**] कहे हैं [**दु**] लेकिन [**णाणिस्स**] ज्ञानीके [**हेदुअभावे**] मिथ्यात्वादि हेतुओंके अभावमें [**णियमा**] नियमसे [**आसवणिरोहो**] आस्रवका निरोध [**जायदि**] होता है [**आसवभावेण विणा**] आस्रवके विना [**कम्मस**] कर्मका [**णिरोहो**] निरोध [**जायदि**] हो जाता है [**य**] और [**कम्मस्साभावेण**] कर्मका अभाव होनेपर [**णोकम्माणं च**] और नोकर्मोंका भी [**णिरोहो**] निरोध [**जायदि**] हो जाता है [**य**] और [**णोकम्मणिरोहेण**] नोकर्मका निरोध होनेसे [**संसारणिरोहणं**] संसारका निरोध [**होदि**] होता है ।

टीकार्थ— सर्वज्ञदेवोंने उन प्रसिद्ध जीवगतरागादिभावकर्मरूप भावास्रवोंका कारण उदयप्राप्तद्रव्यप्रत्ययागत रागादिअध्यवसानोंको कहा है ।

शंका— अध्यवसान तो भावकर्मरूप जीवगत ही है, तो उदयप्राप्तद्रव्यप्रत्ययागत रागादि अध्यवसानरूप भावप्रत्यय कैसे होते हैं ?

द्विधा भवति । जीवगतं पुद्गलकर्मगतं च । तथाहि–भावक्रोधादिव्यक्तिरूपं जीवभावगतं भण्यते । पुद्गलपिंडशक्तिरूपं पुद्गलद्रव्यगतं । तथा चोक्तं-**पुग्गलपिंडो दव्वं कोहादि भावदव्वं तु**– इति जीवभावगतं भण्यते । **पुग्गलपिंडो दव्वं तस्सत्ती भावकम्मं तु**– इति पुद्गलद्रव्यगतं । अत्र दृष्टांतो यथा मधुरकटुकादिद्रव्यस्य भक्षणकाले जीवस्य मधुरकटुकस्वादव्यक्तिविकल्परूपं जीवभावगतं तद्व्यक्तिकारणभूतं मधुरकटुकद्रव्यगतं शक्तिरूपं पुद्गलद्रव्यगतं । एवं भावकर्मस्वरूपं जीवगतं पुद्गलगतं च द्विधेति भावकर्मव्याख्यानकाले सर्वत्र ज्ञातव्यम् । कानि तानि, अध्यवसानानि । **मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य जोगो य** मिथ्यात्वमज्ञानमविरतिर्योगश्चेति प्रथमगाथा गता । **हेदुअभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो** पूर्वोक्तानामुदयागतद्रव्यप्रत्ययानां जीवगतभावास्रवहेतुभूतानां वीतरागस्वसंवेदनज्ञानिनो जीवस्य उदयागतद्रव्यकर्मरूपाणां अभावे सति नियमान्निश्चयात् रागादिरूपभावास्रवनिरोधलक्षणः संवरो जायते । **आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोहो** निरास्रवपरमात्मतत्त्वविलक्षणस्य जीवगतभावास्रवस्य भावेन स्वरूपेण विना जायते कर्मणो निरोधरूपः संवरः । कस्य ? परमात्मतत्त्वप्रच्छादकनवतरद्रव्यकर्मणः इति द्वितीयगाथा

समाधान– ऐसा नहीं है (याने अध्यवसान तो भावकर्मरूप जीवगत ही है, उदयप्राप्तद्रव्यप्रत्ययागत रागादि अध्यवसान भावप्रत्यय नहीं है ऐसा नहीं) क्योंकि भावकर्म दो प्रकारके हैं । १) जीवगत भावकर्म और २) पुद्गलद्रव्यगत भावकर्म । जैसे कि भावक्रोधादिव्यक्तिरूप को जीवभावगत कहते हैं। देखो 'पुग्गलपिंडो दव्वं कोहादि भावदव्वं तु' और पुद्गलपिंडशक्तिरूप को पुद्गलद्रव्यगत कहते हैं, देखो– 'पुग्गलपिंडो दव्वं तस्सत्ती भावकम्मं तु' । उसका दृष्टांत यह है कि, मधुर अथवा कडवे पदार्थको खानेके समय उसके मधुर या कडवे स्वादको चखनेरूप जो जीवका विकल्प होता है, वह जीवगत भाव कहलाता है, किन्तु उसकी अभिव्यक्तिमें कारणभूत ऐसा उस मधुर अथवा कड़वे द्रव्यमें रहनेवाला शक्तिका अंश– विशेष होता है वह पुद्गलद्रव्यगत भाव कहा जाता है । इसप्रकार भावकर्मका स्वरूप जीवगत और पुद्गलगत दो प्रकारका है, ऐसा भावकर्मके व्याख्यानमें सर्वत्र जानना चाहिये ।

शंका– वे अध्यवसान कौनसे हैं ?

समाधान– वे अध्यवसान मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति और योग हैं। यह पहली गाथा पूर्ण हुओ ।

वीतरागस्वसंवेदनज्ञानी जीवके पूर्वोक्त जीवगतभावास्रवहेतुभूत उदयागतद्रव्यप्रत्ययरूप उदयागत द्रव्यकर्मोंका अभाव होनेसे नियमसे (निश्चयसे) रागादिरूपभावास्रवके निरोधलक्षणवाला संवर प्रगट होता है । निरास्रवपरमात्मतत्त्व से विलक्षणरूप जीवगतभावास्रवके भावके स्वरूपके विना कर्मोंका निरोधरूप संवर प्रकट होता है ।

शंका– किस प्रकारके कर्मोंका संवर प्रकट होता है ?

समाधान– परमात्मतत्त्वको आच्छादन करनेवाले नवीन द्रव्यकर्मोंका संवर होता है । इस प्रकार दुसरी गाथा पूर्ण हुओ ।

गता । **कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं च जायदि णिरोहो** ततश्च नवतरकर्माभावेन संवरेण शरीरादिनोकर्मणां च जायते निरोधः संवरः **णोकम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होदि** नोकर्मनिरोधेन संवरेण संसारातीतशुद्धात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूतद्रव्यक्षेत्रादिपंचप्रकारसंसारनिरोधनं भवतीति तृतीयगाथा गता । एवं संवरक्रमाख्यानेन गाथात्रयं गतं ॥ २००, २०१, २०२ ॥
एवं पात्रवदास्रवविपक्षभूतः संवरो निष्क्रांतः ।

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां तात्पर्यवृत्तौ चतुर्दशगाथाभिः षट्स्थलैः आस्रवविपक्षद्वारेण संवरनामा षष्ठाऽधिकारः समाप्तः ॥ ६ ॥

इसलिये नूतन कर्मके अभावसे-संवरसे शरीरादिनोकर्मोंका निरोध- संवर प्रकट होता है । और नोकर्मनिरोधरूप संवरसे संसारातीत शुद्धात्मतत्त्वके प्रतिपक्षभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव इन पंच प्रकार के संसारका निरोध होता है । यह तीसरी गाथा पूर्ण हुमी । इसप्रकार संवरका क्रमसे व्याख्यान करनेवाली तीन गाथायें पूर्ण हुमी ॥ २००, २०१, २०२ ॥

इस प्रकार पात्रकी तरह आस्रवके विपक्षभूत संवर निष्क्रांत हुआ ॥

इस प्रकार श्री जयसेनाचार्यजीकृत समयसारकी व्याख्यारूप शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवाली तात्पर्यवृत्तिमें १४ गाथाओं के द्वारा छः स्थलोंमें आस्रवके विपक्षभूत संवर नामका छट्ठा अधिकार समाप्त हुआ ॥ ६ ॥



अथ निर्जराधिकारः ॥ ७ ॥

तत्रैवं सति रंगभूमेः सकाशात् श्रृंगाररहितपात्रवत् शुद्धजीवस्वरूपेण संवरो निष्क्रांतः। अथ वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूपा शुद्धोपयोगलक्षणा संवरपूर्विका निर्जरा प्रविशति। '**उवभोज्जमिंदियेहिं**' इत्यादिगाथामादिं कृत्वा दंडकान् विहाय पाठक्रमेण पंचाशद्गाथापर्यंतं षट्स्थलैर्निर्जराव्याख्यानं करोति। तत्र द्रव्यनिर्जराभावनिर्जराज्ञानशक्तिवैराग्यशक्तीनां क्रमेण व्याख्यानं करोति, इति पीठिकारूपेण प्रथमस्थले गाथाचतुष्टयं। तदनंतरं ज्ञानवैराग्यशक्तेः सामान्यव्याख्यानार्थं **सेवंतोवि ण सेवदि** इत्यादि द्वितीयस्थले गाथापंचकं। ततः परं तयोरेव ज्ञानवैराग्यशक्त्योर्विशेषविवरणार्थं **परमाणुमित्तियंपि** इत्यादि तृतीयस्थले सूत्रदशकं। ततश्च मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानानामभेदरूपं परमार्थसंज्ञं मुक्तिकारणभूतं यत्परमात्मपदं, तत्पदं येन स्वसंवेदनज्ञानगुणेन लभ्यते तस्य सामान्यव्याख्यानार्थं '**णाणगुणेहिं विहीणा**' इत्यादि चतुर्थस्थले सूत्राष्टकं। ततः परं तस्यैव ज्ञानगुणस्य विशेषविवरणार्थं '**णाणी रागप्पजहो**' इत्यादि पंचमस्थले गाथाःचतुर्दश। तदनंतरं शुद्धनयमाश्रित्य चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मभावनाश्रितानां निश्चयनिश्शंकाद्यष्टगुणानां व्याख्यानार्थं '**सम्मादिट्ठी जीवो**' इत्यादि षष्ठस्थले सूत्रनवकं कथयति। इति षड्भिरंतराधिकारैः निर्जराधिकारे समुदायपातनिका।

वहाँ ऐसा होनेपर श्रृंगाररहित पात्रके समान शुद्धजीवस्वरूप से संवर रंगभूमिसे चला गया। अब वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूप शुद्धोपयोगलक्षणवाली संवरपूर्वकवाली निर्जरा प्रवेश करती है। '**उवभोगमिंदियेहिं**' इत्यादि गाथासे शुरू करके दंडकोंको छोडकर पाठक्रमसे ५० गाथापर्यंत छः स्थलोंके द्वारा निर्जरा का व्याख्यान करते हैं। वहां द्रव्यनिर्जरा, भावनिर्जरा, ज्ञानवैराग्यशक्तियोंका क्रमसे व्याख्यान करते हैं, इस प्रकार पीठिकारूपसे प्रथमस्थलमें चार गाथायें हैं। तदनंतर ज्ञानवैराग्यशक्ति का सामान्य कथन करनेके लिये '**सेवंतोवि ण सेवदि**' इत्यादि दुसरे स्थलमें पांच गाथायें हैं। उसके आगे उन दोनों ज्ञानवैराग्यशक्तियोंका विशेष व्याख्यान के लिये '**परमाणुमित्तियंपि**' इत्यादि तृतीय स्थलमें दस गाथायें हैं। और इसके वाद मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान ये पांच पर्याय है, तो भी अभेदरूपसे परमार्थसंज्ञक मुक्ति के कारणभूत जो परमात्मपद है, उस पदको जिस स्वसंवेदनज्ञानगुणसे प्राप्त करता है उसका सामान्य कथन करने के लिये '**णाणगुणेहिं विहीणा**' इत्यादि चतुर्थ स्थलमें आठ गाथायें हैं। इसके आगे उसी ज्ञानगुणका विशेष कथन करने के लिये '**णाणी रागप्पजहो**' इत्यादि पंचमस्थलमें १४ गाथायें हैं। तदनंतर शुद्धनयका आश्रय करके चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मभावभासना के आश्रित निश्चयनिश्शंकादि अष्टगुणोंका कथन करने के लिये '**सम्मादिट्ठी जीवो**' इत्यादि छट्टे स्थलमें नौ गाथाये कहते हैं। इस प्रकार छः अंतर अधिकारों के द्वारा निर्जरा अधिकारमें समुदायपातनिका है।

तद्यथा– अथ द्रव्यनिर्जरां कथयति–

उवभोगमिंदियेहिं दव्वाणमचेदणाणमिदराणं ।
जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं ॥ २०३ ॥

॥ आ. ख्या. १९३ ॥

उवभोगमिंदियेहिं दव्वाणमचेदणाणमिदराणं जं कुणदि सम्मदिट्ठी सम्यग्दृष्टिः कर्ता चेतनाचेतनद्रव्याणां संबंधि यद्वस्तूपभोग्यं करोति । कैः कृत्वा ? पंचेन्द्रियविषयैः **तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं** तद्वस्तु मिथ्यादृष्टेर्जीवस्य रागद्वेषमोहानां सद्भावेन बंधकारणमपि सम्यग्दृष्टेर्जीवस्य रागद्वेषमोहानामभावेन समस्तमपि निर्जरानिमित्तं भवतीति । अत्राह शिष्यः– रागद्वेषमोहाभावे सति निर्जराकारणं भणितं सम्यग्दृष्टेस्तु रागादयः संति, ततः कथं निर्जराकारणं भवतीति ? अस्मिन्पूर्वपक्षे परिहारः । अत्र ग्रंथे वस्तुवृत्त्या वीतरागसम्यग्दृष्टेर्ग्रहणं, यस्तु चतुर्थगुणस्थानवर्ती सरागसम्यग्दृष्टिस्तस्य गौणवृत्त्या ग्रहणं, तत्र तु परिहारः पूर्वमेव भणितः । कथमिति चेत् ? मिथ्यादृष्टेः सकाशादसंयतसम्यग्दृष्टेः अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वोदयजनिताः, श्राव-

---

अब, द्रव्यनिर्जराका कथन करते हैं–

गाथार्थ– [**सम्मदिट्ठी**] सम्यग्दृष्टि जीव [**इंदियेहिं**] इंद्रियोंके द्वारा [**अचेदणाणं**] अचेतन और [**इदराणं**] चेतन [**दव्वाणं**] द्रव्योंका [**जं**] जो [**उवभोगं**] उपभोग [**कुणदि**] करता है [**तं सव्वं**] वह सब [**णिज्जरणिमित्तं**] निर्जराका निमित्त है ।

टीकार्थ– पंचेंद्रियविषयोंके द्वारा सम्यग्दृष्टि चेतन-अचेतन द्रव्योंके संबंधी जो वस्तु है उनको उपभोग्य करता है । वह वस्तु मिथ्यादृष्टि जीवको रागद्वेषमोहके सद्भावसे बंधका कारण है लेकिन सम्यग्दृष्टि जीवको रागद्वेषमोहके अभावसे सभी वस्तुओंका भोग भी निर्जरा का कारण है ।

शंका– रागद्वेषमोह का अभाव होनेसे वे निर्जराके कारण कहे गये हैं, लेकिन सम्यग्दृष्टिको रागादि है इसलिये वे निर्जराके कारण कैसे होते हैं ?

समाधान– इसका उत्तर ["रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठीस्स" इत्यादिमें– याने ता. वृ. गाथा नं. १८५, १८६ आदिमें] पहले ही कह दिया है । यहाँ इस ग्रंथमें मुख्यवृत्तिसे वीतरागसम्यग्दृष्टिका ग्रहण किया है और जो चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सरागसम्यग्दृष्टि है उसका जघन्यपनेसे ग्रहण किया है ।

शंका– कैसे ?

समाधान– मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षासे अव्रती सम्यग्दृष्टिको अनंतानुबंधीक्रोधमानमाया-

कस्य चाऽप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभोदयजनिता रागादयो न संतीत्यादि। किंच सम्यग्दृष्टेः संवरपूर्विका निर्जरा भवति, मिथ्यादृष्टेस्तु गजस्नानवत् बंधपूर्विका भवति, तेन कारणेन मिथ्यादृष्टयपेक्षया सम्यग्दृष्टिरबंधक इति। एवं द्रव्यनिर्जराव्याख्यानरूपेण गाथा गता ॥ २०३ ॥

अथ भावनिर्जरास्वरूपमाख्याति–

दव्वे उवभुज्जंते णियमा जायदि सुहं च दुक्खं च।
तं सुहदुक्खमुदिण्णं वेददि अह णिज्जरं जादि ॥ २०४ ॥

॥ आ. ख्या. १९४ ॥

दव्वे उवभुज्जंते णियमा जायदि सुहं च दुक्खं च उदयागते द्रव्यकर्मणि जीवेनोपभुज्यमाने सति नियमात् निश्चयात् सातासातोदयवशेन सुखं वा दुःखं वा वस्तुस्वभावत एव जायते तावत् **तं सुहदुक्खमुदिण्णं वेददि** निरुपरागस्वसंवित्तिभावनोत्पन्नपारमार्थिकसुखाद्भिन्नं तत्सुखं दुःखं वा समुदीर्णं सत् सम्यग्दृष्टिर्जीवो रागद्वेषौ न कुर्वन् हेयबुद्धया वेदयति। न च तन्मयो

लोभमिथ्यात्वजनित मोहरागद्वेष नहीं है और देशसंयतसम्यग्दृष्टीको अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभोदयजनित रागादि नहीं है।

इसलिये सम्यग्दृष्टि (चतुर्थगुणस्थानसे शुरू करके आगेके) जीवको मुख्यतासे अनंतानुबंधीक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वजनित मोहरागद्वेष न होनेसे संवरपूर्वक निर्जरा है। लेकिन मिथ्यात्वसासादानमिश्रगुणस्थानवर्ती जीवकी गजस्नानके (हाथीके स्नानके) समान बंधपूर्वक निर्जरा है।

इसलिये मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षासे सम्यग्दृष्टि (चतुर्थ गुणस्थानसे शुरू करके आगे के) जीव अबंधक है। इस प्रकार द्रव्यनिर्जराका कथन करनेवाली गाथा पूर्ण हुअी ॥ २०३ ॥

अब भाव निर्जरा का स्वरूप कहते हैं–

गाथार्थ– [**दव्वे उवभुज्जंते**] परद्रव्यको भोगनेसे [**णियमा**] नियमसे [**सुहं च दुक्खं च**] सुख और दुःख [**जायदि**] होता है [**उदिण्णं**] उदयमें आये हुअे [**तं सुहदुक्खं**] उस सुखदुःखका [**वेददि**] अनुभव करता है [**अह**] फिर वह [**णिज्जरं जादि**] निर्जराको प्राप्त होता है याने झड़ जाता है।

टीकार्थ– उदयागत द्रव्यकर्मोंको जीवके द्वारा भोगे जानेपर नियमसे सातासाताके उदयके वशसे वस्तुभावसे (अशुद्धनिश्चयनयसे) सुख अथवा दुःख प्राप्त होता है। सम्यग्दृष्टि जीव रागद्वेष न करते हुअे निरुपरागस्वानुभव से उत्पन्न होनेवाले पारमार्थिक सुखसे भिन्न रहनेवाले समुदीर्णरूप उस सातारूप सुख अथवा असातारूप दुःख को हेयबुद्धया वेदता है। और तन्मय होकर "मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ" इस प्रत्ययसे नहीं अनुभवता है। इसलिये निर्जरा

भूत्वा, अहं सुखी दुःखीत्याद्यहमिति प्रत्ययेनानुभवति । **अथ णिज्जरं जादि अथ अहो ततः** कारणान्निर्जरां याति स्वस्थभावेन निर्जराया निमित्तं भवति । मिथ्यादृष्टेः पुनः उपादेयबुद्ध्या सुख्यहं दुःख्यहमिति प्रत्ययेन बंधकारणं भवति । किंच यथा कोऽपि तस्करो यद्यपि मरणं नेच्छति तथापि तलवरेण गृहीतः सन् मरणमनुभवति । तथा सम्यग्दृष्टिः यद्यप्यात्मोत्थसुखमुपादेयं च जानाति विषयसुखं च हेयं जानाति । तथापि चारित्रमोहोदयतलवरेण गृहीतः सन् तदनुभवति, तेन कारणेन निर्जरानिमित्तं स्यात् । इति भावनिर्जराव्याख्यानं गतं ॥ २०४ ॥

अथ वीतरागस्वसंवेदनज्ञानसामर्थ्यं दर्शयति–

जह विसमुवभुज्जंतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि ।
पुग्गलकम्मस्सुदयं तह भुंजदि णेव वज्झए णाणी ॥ २०५ ॥

॥ आ. ख्या. १९५ ॥

जह विसमुवभुज्जंता विज्जापुरिसा ण मरणमुवयंति यथा विषमुपभुंजानाः संतो गारुडविद्यापुरुषाः अमोघमंत्रसामर्थ्यात् नैव मरणमुपयांति । **पुग्गलकम्मस्सुदयं तह भुंजदि णेवबज्झदे णाणी** तथा परमतत्त्वज्ञानी शुभाशुभकर्मफलं भुंक्ते तथापि निर्विकल्पसमाधिलक्षणभेदज्ञानामोघमंत्रबलान्नैव बध्यते कर्मणेति ज्ञानशक्तिव्याख्यानं गतं ॥ २०५ ॥

होती है । इसलिए स्वस्थभावसे निर्जराका निमित्त होता है । और मिथ्यादृष्टिकी उपादेय बुद्धि होनेसे "मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ" इसप्रकार भोगनेसे बंधका कारण है । इसका विशेष स्पष्टीकरण यह है कि, जैसे कोओी चोर यद्यपि मरणकी इच्छा नहीं करता है तथापि कोतवालके द्वारा पकड़ा जानेपर उस समय वह मरणका अनुभव करता है । वैसे सम्यग्दृष्टि (चतुर्थादिगुणस्थानवाला) यद्यपि आत्मोत्थसुखको उपादेय जानता है और विषयसुखको हेय जानता है, तथापि चारित्रमोहोदयरूप कोतवालसे पकड़ा जानेसे उन भोगोंको अनुभवता है (याने हेय भावसे अनुभवता है), इस कारणसे वे भोग निर्जराके निमित्त है । इस प्रकार भावनिर्जराका कथन हुआ ॥ २०४ ॥

अब, वीतरागस्वसंवेदनज्ञानकी सामर्थ्य दिखलाते हैं–

गाथार्थ– [**जह**] जैसे [**वेज्जो पुरिसो**] वैद्य पुरुष [**विसं**] विषको [**उवभुज्जंतो**] भोगता हुआ भी [**मरणं**] मरणको [**ण उवयादि**] प्राप्त नहीं होता [**तह**] उसी तरह [**णाणी**] ज्ञानी [**पुग्गलकम्मस्सुदयं**] पुद्‌गलकर्मके उदयको [**भुंजदि**] भोगता है तो भी [**णेव बज्झए**] बंधता नहीं है ।

टीकार्थ– जैसे विषको भोगनेवाले गारुडविद्यापुरुष अमोघमंत्रसामर्थ्यसे मरण को प्राप्त नहीं होते हैं, वैसे परमतत्त्वज्ञानी (सम्यग्ज्ञानी याने चतुर्थादि गुणस्थानवाला) जीव शुभाशुभकर्मफलको भोगता है, तथापि निर्विकल्पसमाधिलक्षणवाले भेदज्ञानके अमोघ मंत्रके बलसे कर्मसे बंधता नहीं है इसतरह ज्ञान शक्तिका कथन पूर्ण हुआ ॥ २०५ ॥

अथ संसारशरीरभोगविषये वैराग्यसामर्थ्यं दर्शयति–

जह मज्जं पिवमाणो अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो।
दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण बज्झदि तहेव ॥ २०६ ॥

॥ आ. ख्या. १९६ ॥

जह मज्जं पिवमाणो अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो यथा कश्चित् पुरुषो व्याधिप्रतीकारनिमित्तं मद्यमध्ये मद्यप्रतिपक्षभूतमौषधं निक्षिप्य मद्यं पिबन्नपि रतेरभावान्न माद्यति। **दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण बज्झदि तहेव** तथा परमात्मतत्त्वज्ञानी पचेंद्रियविषयभूताशनपानादिद्रव्योपभोगे सत्यपि यावता यावतांशेन निर्विकारस्वसंवित्तिशून्यबहिरात्मजीवापेक्षया रागभावं न करोति, तावता तावतांशेन कर्मणा न बध्यते। यदा तु हर्षविषादादिरूपसमस्तविकल्पजालरहितपरमयोगलक्षणभेदज्ञानबलेन सर्वथा वीतरागो भवति। तदा सर्वथा न बध्यते इति वैराग्यशक्तिव्याख्यानं गतं। एवं यथाक्रमेण द्रव्यनिर्जराभावनिर्जराज्ञानशक्तिवैराग्यशक्तिप्रतिपादनरूपेण निर्जराधिकारे तात्पर्यव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं गतं ॥ २०६ ॥

अब, संसारशरीरभोगविषयमें वैराग्यका सामर्थ्य दिखलाते हैं–

गाथार्थ– [**जह**] जैसे [**अरदिभावेण**] अरतिभावसे याने विना प्रीतिसे [**मज्जं**] मदिरा को [**पिबमाणो पुरिसो**] पीनेवाला कोई पुरुष [**ण मज्जदि**] मतवाला नहीं होता [**तहेव**] उसी तरह [**णाणी वि**] सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव) भी [**दव्वुवभोगे**] द्रव्यके उपभोगमें [**अरदो**] रतिभाव न रखता हुआ [**ण बज्झदि**] कर्मोंसे नहीं बंधता है।

टीकार्थ– जैसे कोओी पुरुष व्याधि (रोग) का प्रतीकार करनेके लिये मद्यमें मद्यके प्रतिपक्षभूत औषधी डालकर मद्यको पीते हुओ भी रतिभावका अभाव होनेसे मतवाला नहीं होता है वैसे परमात्मतत्त्वज्ञानी (स्वानुभूति लेनेवाला चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव पचेंद्रियविषयभूतखानपानादिद्रव्योंका उपभोग करते समय भी स्वानुभवरहित बहिरात्म (मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानवर्ती)जीवकी अपेक्षासे जितने अंशमें रागभाव नहीं करता है उतने अंशसे कर्मसे नहीं बंधता है। जब हर्षविषादादिरूपसमस्तविकल्पजालसे रहित परमयोग (स्वानुभूति) लक्षणवाले भेदज्ञानके बलसे सर्वथा वीतराग होता है तब सर्वथा कर्मोंसे बांधा नहीं जाता है। ऐसा वैराग्यशक्तिका कथन हुआ।

इस प्रकारसे यथाक्रमसे द्रव्यनिर्जरा, भावनिर्जरा, ज्ञानशक्ति और वैराग्यशक्ति के प्रतिपादनरूपसे तात्पर्य कहनेकी मुख्यतासे निर्जरा अधिकार में चार गाथायें पूर्ण हुओी ॥ २०६ ॥

अथैतदेव वैराग्यशक्तिस्वरूपं विवृणोति–

सेवंतोवि ण सेवदि असेवमाणो वि सेवगो कोवि ।
पगरणचेट्ठा कस्स वि ण य पायरणो त्ति सो होदि ॥ २०७ ॥

॥ आ. ख्या. १९७ ॥

सेवंतो वि ण सेवदि असेवमाणो वि सेवगो को वि निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानी जीवः स्वकीयगुणस्थानयोग्याशनपानादिपंचेंद्रियभोगं सेवन्नपि सेवको न भवति। अन्यः पुनरज्ञानी कश्चिद् रागादिसद्भावादसेवन्नपि सेवको भवति । अमुमेवार्थं दृष्टांतेन दृढयति **पगरणचेट्ठा कस्स वि ण य पायरणो त्ति सो होदि** यथा कस्यापि परगृहादागतस्य विवाहादिप्रकरणचेष्टा तावदस्ति, तथापि विवाहादिप्रकरणस्वामित्वाभावात् प्राकरणिको न भवति। अन्यः पुनः प्रकरणस्वामी नृत्यगीतादिप्रकरणव्यापारमकुर्वाणोऽपि प्रकरणरागसद्भावात् प्राकरणिको भवति । तथा परम-तत्त्वज्ञानी सेवमानोऽप्यसेवको भवति। अज्ञानी जीवो रागादिसद्भावादसेवकोऽपि सेवक इति ॥ २०७ ॥

अब, उस ही वैराग्यशक्तिके स्वरूपका वर्णन करते हैं–

गाथार्थ– [**कोवि**] कोई (याने सम्यग्दृष्टि रागादिभावके अभावके कारण) [**सेवंतो वि**] विषयोंका सेवन करता हुआ भी [**ण सेवदि**] सेवन नहीं करता है और (अज्ञानी रागादिभावके कारण) [**असेवमाणो**] उन्हें सेवन न करता हुआ भी [**सेवगो**] सेवन करनेवाला है [**कस्स वि**] जैसे किसी पुरुषको [**पगरणचेट्ठा**] किसी कार्य के करनेकी चेष्टा तो है अर्थात् उस प्रकरण की सब क्रियाओंको करता है तो भी किसीका कराया हुआ करता है [**सो**] वह [**पायरणो त्ति य ण होदि**] कार्य करनेवाला स्वामी है ऐसा नहीं कहा जाता है ।

टीकार्थ– निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानी (स्वानुभूतिवाला जीव) स्वकीय (चतुर्थादि) गुणस्थानयोग्य खानपानादिपंचेंद्रियभोगका सेवन करता हुआ भी सेवन करनेवाला नहीं है। और दुसरा कोओी अज्ञानी रागादिका सद्भाव होनेसे न सेवन करनेवाला होता हुआ भी सेवन करनेवाला है। उसी अर्थको दृढ करनेके लिये दृष्टांतसे कहते हैं। जैसे कि जिसका विवाहादि नहीं होना है अतः वह विवाहादि प्रकरणका प्राकरणिक तो नहीं है जो कि दूसरे घरसे आया हुआ पाहुना आदि है फिर भी वह उस विवाहादिका काम करता है किन्तु जो प्राकरणिक है जिसका विवाहादि होना है वह गीत, नृत्य आदि कोओी भी प्रकारका काम नहीं करता है, फिर भी उन (वैवाहिक) कामोंके प्रति उसका राग होनेसे वही प्राकरणिक कहलाता है। वैसे परमतत्त्वज्ञानी (सम्यग्ज्ञानी– चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव विषयको सेवन करनेवाला होकर भी रागभाव न होनेसे सेवन करनेवाला नहीं है। लेकिन अज्ञानी जीव रागादिका सद्भाव होनेसे सेवन करनेवाला न होकर भी विषयको सेवन करनेवाला है ॥ २०७ ॥

अथ सम्यग्दृष्टिः स्वपरस्वरूपमेव विशेषेण जानाति–

पुग्गलकम्मं कोहो तस्स विवागोदयो हवदि एसो ।
ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो दु अहमिक्को ।। २०८ ।।

।। आ. ख्या. १९९ ।।

पुग्गलकम्मं कोहो तस्स विवागोदयो हवदि एसो पुद्गलकर्मरूपो योऽसौ द्रव्यक्रोधो जीवे पूर्वबद्धस्तिष्ठति तस्य विशिष्टपाको विपाकः फलरूप उदयो भवति । स कः ? शांतात्मतत्त्वात्पृथग्भूत एषः अक्षमारूपो भावः क्रोधः **ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो दु अहमिक्को** न वैष मम भावः । कस्मात् ? इति चेत्, टंकोत्कीर्णपरमानंदज्ञायकैकभावोऽहं यतः । किंच– पुद्गलकर्मरूपः क्रोधः क्वास्ते ? भावरूप एव दृश्यते इति ? नैवं । पुद्गलपिण्डरूपो द्रव्यक्रोधस्तदुदयजनितो यश्चाक्षमारूपः स भावक्रोधः । इति व्याख्यानं पूर्वमेव कृतं तिष्ठति । कथं ? इति चेत्, **पुग्गलपिंडो दव्वं तस्सत्ती भावकम्मं तु** इत्यादि । एवमेव च क्रोधपदपरिवर्तनेन मानमायालोभरागद्वेषमोहकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसंज्ञानि षोडशसूत्राणि व्याख्येयानि । तेनैव प्रकारेणान्यान्यपि, असंख्येयलोकमात्रप्रमितानि विभावपरिणामस्थानानि वर्जनीयानीति ।। २०८ ।।

अब, सम्यग्दृष्टि स्वपरस्वरूपकोही विशेष रूपसे जानता है–

गाथार्थ– [**एसो**] यह [**कोहो**] क्रोध [**पुग्गलकम्मं**] पुद्गलकर्म है [**तस्स**] उसके [**विवागोदयो**] विपाकका उदय [**हवदि**] है [**एस दु**] यह तो [**मज्झ भावो**] मेरा भाव [**ण**] नहीं है [**अहं दु**] मैं तो [**इक्को**] एक [**जाणगभावो**] ज्ञायकभावस्वरूप हूँ ।

टीकार्थ– पूर्वबद्ध पुद्गलकर्मरूप जो यह द्रव्यक्रोध जीवमें रहता है, उसका विशिष्ट फल याने फलरूप उदय है । वह शांत आत्मतत्त्वसे भिन्न होनेसे यह अक्षमारूपभाव क्रोध है और वह मेरा भाव नहीं क्योंकि मैं टंकोत्कीर्णपरमानंदज्ञायकएकभाव हूँ । और विशेष कहते हैं कि–

शंका– पुद्गलकर्मरूप क्रोध कहाँ है ? क्रोध तो भावरूपही दिखाओी देता है ?

समाधान– आप कहते हो वैसा नहीं है । पुद्गलपिंडरूप द्रव्यक्रोध है उसके उदयमें जो अक्षमारूप भाव है वह भावक्रोध है । ऐसा कथन पहले भी '**पुग्गलपिंडो दव्वं तस्सत्ती भावकम्मं तु**' इत्यादि द्वारा किया गया है ।

इसप्रकार क्रोधके स्थानपर मान, माया, लोभ,/राग, द्वेष, मोह, कर्म, नोकर्म,/मन, वचन, काय,/श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन और स्पर्शन नामक इन १६ प्रकारके पद बदल करके कथन करना, उसी प्रकार अन्य और भी असंख्यात लोकमात्रप्रमाण विभाव परिणामोंके पद परिवर्तन करके जानना चाहिये और वे विभाव भाव त्याग करने योग्य है ।। २०८ ।।

अथ कथं तव स्वरूपं न भवतीति पृष्टे सति भेदभावनारूपेणोत्तरं ददाति–

कह एस तुज्झ ण हवदि विविहो कम्मोदयफलविवागो ।
परदव्वाणुवओगो ण दु देहो हवदि अण्णाणी ॥ २०९ ॥

कह एस तुज्झ ण हवदि विविहो कम्मोदयफलविवागो कथमेष विविधकर्मोदयफलविपाकस्तवस्वरूपं न भवतीति केनापि पृष्टः तत्रोत्तरं ददाति **परदव्वाणुवओगो** निर्विकारपरमाह्लादैकलक्षणस्वशुद्धात्मद्रव्यात्पृथग्भूतानि परद्रव्याणि यानि कर्माणि जीवे लग्नानि तिष्ठन्ति तेषामुपयोग उदयोयं, औपाधिकस्फटिकस्य परोपाधिवत् । न केवलं भावक्रोधादि मम स्वरूपं न भवति, इति **ण दु देहो हवदि अण्णाणी** देहोऽपि मम स्वरूपं न भवति हु स्फुटं । कस्मादिति चेत्, अज्ञानी जडस्वरूपो यतः कारणात्, अहं पुनः अनंतज्ञानादिगुणस्वरूप इति ॥ २०९ ॥

अथ सम्यग्दृष्टिः स्वस्वभावं जानन् रागादींश्च मुंचन् नियमाज्ज्ञानवैराग्यसंपन्नो भवति इति कथयति–

एवं सम्माइट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणगसहावं ।
उदयं कम्मविवागं य मुअदि तच्चं वियाणंतो ॥ २१० ॥

॥ आ. ख्या. २०० ॥

अब, क्रोधादि तेरा स्वभाव कैसे नहीं है ? ऐसा पूछनेपर भेदभावनारूपसे उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**एस**] यह [**विविहो**] विविध [**कम्मोदयफलविवागो**] कर्मोदयके फलका विपाकरूप विभाव परिणाम [**तुज्झ**] तेरा स्वभाव [**कह ण हवदि**] कैसे नहीं है ? [**परदव्वाणुवओगो**] परद्रव्यके उदयमें उत्पन्न होनेवाले [**अण्णाणी**] अज्ञानी-क्रोधादिभाव [**देहो दु**] और देह भी [**ण हवदि**] मेरा स्वभाव नहीं है।

टीकार्थ– " यह विविध कर्मोदयके फल तेरा स्वभाव कैसे नहीं है ? " ऐसा किसीने पूछनेपर उत्तर देते हैं– निर्विकारपरमआह्लाद-एकलक्षणवाले स्वशुद्धात्मद्रव्यसे भिन्न जो परद्रव्यरूप कर्म जीवमें एकक्षेत्रावगाह रहते हैं उनके उदयके समय जो स्फटिककी परउपाधिवाले भावके समान क्रोधादिभाव ही केवल मेरा स्वरूप नहीं है, इतना ही नहीं, तो देह भी मेरा स्वरूप नहीं है यह स्पष्ट है, क्योंकि वे जडस्वरूप–अचेतन–अज्ञानी हैं और मैं अनंतज्ञानादिगुणस्वरूप हूँ ॥ २०९ ॥

अब, सम्यग्दृष्टि स्वस्वभावको जानता (अनुभवता) हुआ और रागादिको छोडता हुआ नियमसे ज्ञानवैराग्यसंपन्न होता है, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**एवं**] इस तरह [**सम्माइट्ठी**] सम्यग्दृष्टि–चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव [**अप्पाणं**] अपने [**जाणगसहावं**] ज्ञायक स्वभावको [**मुणदि**] अनुभवता है [**य**] और [**तच्चं**] वस्तुके यथार्थ स्वरूपको [**वियाणंतो**] जानता हुआ [**उदयं**] कर्म के उदयको [**कम्मविवागं**] कर्मका विपाक जान उसे [**मुअदि**] छोडता है ।

एवं सम्माइट्ठि अप्पाणं मुणदि जाणगसहावं एवं पूर्वोक्तप्रकारेण सम्यग्दृष्टिर्जीवः आत्मानं जानाति। कथंभूतं? टंकोत्कीर्णपरमानंदज्ञायकैकस्वभावं **उदयं कम्मविवागं य मुअदि तच्चं वियाणंतो** उदयं पुनर्मम स्वरूपं न भवति कर्मविपाकोयमिति मत्वा मुंचति। किं कुर्वन् सन्? नित्यानंदैकस्वभावं परमात्मतत्त्वं त्रिगुप्तिसमाधौ स्थित्वा जानन्निति ॥ २१० ॥

अथ सम्यग्दृष्टिः सामान्येन स्वपरस्वभावमनेकप्रकारेण जानाति–

उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिओ जिणवरेहिं।
ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमिक्को ॥ २११ ॥

॥ आ. ख्या. १९८ ॥

उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिओ जिणवरेहिं उदयविपाको विविधो नानाप्रकारः कर्मणां संबंधी वर्णितः कथितः, जिनवरैः **ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमिक्को** ते कर्मोदयप्रकाराः कर्मभेदा मम स्वभावा न भवंति इति। कस्मात्? इति चेत्, टंकोत्कीर्णपरमानंदज्ञायकैकस्वभावोऽहं यतः कारणात् सम्यग्दृष्टिः सामान्येन स्वपरस्वरूपावेवं जानाति इति भणितं।

टीकार्थ– इसतरह पहले कहे हुये प्रकारसे सम्यग्दृष्टि (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव) आत्माको अनुभवता है

शंका– किसप्रकार के निज आत्माको अनुभवता है

समाधान– टंकोत्कीर्ण-परमानंद-ज्ञायक-एक-स्वभावस्वरूप निज आत्माको अनुभवता है। और उदय मेरा स्वरूप नहीं है। "यह कर्मविपाक है," ऐसा मानकर नित्यानंद-एक स्वभावरूप परमात्मतत्त्वको त्रिगुप्तिसमाधि (स्वानुभूति) में जाकर अनुभवते हुये विकारी भाव छोडता है (विकारी भाव छूट जाते हैं) ॥ २१० ॥

अब सम्यग्दृष्टि सामान्यसे स्वस्वभावको और परस्वभावको अनेक प्रकारसे जानता है–

गाथार्थ– [**जिणवरेहिं**] जिनवरदेवोंने [**कम्माणं**] कर्मोंके [**उदयविवागो**] उदयके फल [**विविहो**] अनेक प्रकारके [**वण्णिओ**] कहे हैं [**ते दु**] वे तो [**मज्झ**] मेरे [**सहावा**] स्वभाव [**ण**] नहीं है [**दु**] लेकिन [**अहं**] मैं [**इक्को**] एक [**जाणगभावो**] ज्ञायक भाव हूँ।

टीकार्थ– जिनवरदेवोंने कर्मोंके संबंधी उदयके फल अनेक प्रकारके है, ऐसा कहा हैं। वे कर्म और कर्मोदयके प्रकार मेरा स्वभाव नहीं है। क्योंकि मैं टंकोत्कीर्ण-परमानंद-ज्ञायक-एक स्वभाववाला हूँ। इसकारणसे सम्यग्दृष्टि सामान्यसे स्वस्वभाव और परस्वभावको इसप्रकार जानता है ऐसा कहा गया है।

कथं सामान्यं ? इति चेत् क्रोधोहं मानोहमित्यादि विवक्षा नास्तीति। तदपि कथमिति चेत्, "विवक्षाया अभावः सामान्यमिति वचनात्" एवं भेदभावनारूपेण ज्ञानवैराग्ययोः सामान्य-व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथापञ्चकं गतं। इति ऊर्ध्वं गाथादशकपर्यंतं पुनरपि ज्ञानवैराग्यशक्त्योर्विशेष-विवरणं करोति ॥ २११ ॥

तद्यथा। रागी सम्यग्दृष्टिर्न भवतीति कथयति-

परमाणुमित्तयं पि हु रागादीणं तु विज्जदे जस्स।
ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरो वि ॥ २१२ ॥

॥ आ. ख्या. २०१ ॥

अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चावि सो अयाणंतो।
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो ॥ २१३ ॥

॥ आ. ख्या. २०२ ॥

शंका- सामान्य याने कैसे ?

समाधान- "मैं क्रोध हूँ, मैं मान हूँ," इत्यादि विशेषकी (पर्यायकी) विवक्षा नहीं है।

शंका- वह भी कैसे ?

समाधान- "विवक्षाके अभावको सामान्य कहते हैं" ऐसा वचन है। इसप्रकार भेदभावनारूपसे ज्ञान और वैराग्य के बारेमें सामान्य व्याख्यान की मुख्यतासे ५ गाथायें समाप्त हुयी।

इसके आगे फिरसे १० गाथाओंतक ज्ञानवैराग्य की शक्तियोंका विशेष विवरण करते हैं ॥ २११ ॥

रागी जीव (मिथ्यात्वअनंतानुबंधीजनित राग करनेवाला जीव) सम्यग्दृष्टि नहीं होता है ऐसा कहते हैं-

गाथार्थ- [**हु**] वास्तवमें [**जस्स**] जिस जीवके [**रागादीणं तु परमाणुमित्तयं पि**] परमाणुमात्र-लेशमात्र भी रागादिक [**विज्जदे**] वर्तता है [**सो**] वह जीव [**सव्वागमधरो वि**] भले ही सर्व आगमका धारी (समस्त आगमोंको पढा हुआ) हो तथापि [**अप्पाणयं तु**] आत्माको [**ण वि जाणदि**] नहीं जानता [**च**] और [**अप्पाणं**] आत्माको [**अयाणंतो**] न जानता हुआ [**सो**] वह [**अणप्पयं वि**] अनात्माको (परको) भी [**अयाणंतो**] नहीं जानता [**जीवाजीवे**] इसप्रकार जो जीव और अजीवको [**अयाणंतो**] नहीं जानता वह [**सम्मदिट्ठी**] सम्यग्दृष्टि [**कह होदि**] कैसे हो सकता है ?

परमाणुमित्तयं पि य रागादीणं तु विज्जदे जस्स परमाणुमात्रमपि रागादीनां तु विद्यते यस्य हृदये हु स्फुटं **ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरो वि** स तु परमात्मतत्त्वज्ञानाभावात् शुद्धबुद्धैकस्वभावं परमात्मानं न जानाति, नानुभवति। कथंभूतोऽपि? सर्वागमधरोऽपि सिद्धांतसिंधुपारगोऽपि। **अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चेव सो अयाणंतो** स्वसंवेदनज्ञानबलेन सहजानंदैकस्वभावं शुद्धात्मानमजानन्, तथैवाभावयंश्च शुद्धात्मनो भिन्नं रागादिरूपमनात्मानं चाजानन् **कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो** स पुरुषो जीवाजीवस्वरूपमजानन् सन् कथं भवति सम्यग्दृष्टिः? न कथमपीति। किंच रागी सम्यग्दृष्टिर्न भवतीति भणितं भवद्भिः। तर्हि चतुर्थपंचमगुणस्थानवर्तिनः तीर्थंकरकुमारभरतसगररामपांडवादयः सम्यग्दृष्टयो न भवन्ति? इति। तन्न, मिथ्यादृष्ट्यपेक्षया त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बंधाभावात् सरागसम्यग्दृष्टयो भवन्ति। कथं इति चेत्, चतुर्थगुणस्थानवर्तिनां जीवानां अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वोदयजनितानां पाषाणरेखादिसमानानां

टीकार्थ– परमाणुमात्र भी रागका सद्भाव जिसके हृदयमें स्पष्ट है (ध्रुवस्वभावमें यदि परमाणुमात्र भी राग माना जाय तो) वह परमात्मतत्त्वज्ञानसे रहित होनेसे शुद्धबुद्ध-एक-स्वभावमय परमात्माको नहीं जानता है (याने) अनुभव नहीं करता है।

शंका– कैसा होता हुआ भी वह निज परमात्माको नहीं अनुभवता है?

समाधान– सब आगमका पाठी होते हुये भी वह निज शुद्धात्माको नहीं जानता है नहीं अनुभवता है।

स्वसंवेदनज्ञानबल से (शुद्धात्मानुभूति से) सहजानंद–एक–स्वभावमय शुद्धात्माको नहीं जाननेवाला तथा उसी प्रकार न अनुभव करनेवाला शुद्धात्मासे भिन्न रागादिरूप अनात्माको न जाननेवाला वह पुरुष जीवस्वभाव और अजीवस्वरूपको न जाननेवाला होनेसे कैसे सम्यग्दृष्टि हो सकता हैं?

अर्थात वस्तुस्वरूपको न जाननेवाला कभी भी सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभूतिवाला) नहीं होता है।

शंका– यदि रागी जीव सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभूतिवाले) नहीं होते हैं। ऐसा कहते हो तो चतुर्थपंचमगुणस्थानवर्ती तीर्थंकर, भरत, सगर, राम और पांडव कुमार अवस्थामें सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभूतिवाले) नहीं होते हैं?

समाधान– आप कहते हैं वैसा नहीं है याने चतुर्थपंचमगुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभूतिवाले) है। क्योंकि मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षासे ४३ प्रकृतिके बंधका अभाव होनेसे सराग सम्यग्दृष्टि (चतुर्थगुणस्थानवाले) होते हैं।

वे सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभूतिवाले) कैसे है ऐसी शंका होगी तो– चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीवोंको अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वके उदयमें होनेवाले पाषाणरेखादि के समान रागादिका अभाव होनेसे वे चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्दृष्टि, शुद्धात्मानुभूतिवाले होते हैं।

रागादीनामभावात्। पंचमगुणस्थानवर्तिनां पुनर्जीवानां अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभोदय-जनितानां भूमिरेखादिसमानानां, रागादीनामभावात् इति पूर्वमेव भणितमास्ते। अत्र तु ग्रंथे पंचमगुणस्थानादुपरितनगुणस्थानवर्तिनां वीतरागसम्यग्दृष्टीनां मुख्यवृत्त्या ग्रहणं, सरागसम्यग्दृष्टीनां गौणवृत्त्येति व्याख्यानं सम्यग्दृष्टिव्याख्यानकाले सर्वत्र तात्पर्येण ज्ञातव्यम् ॥ २१२, २१३ ॥

अथ भाविनं भोगं ज्ञानी न कांक्षतीति कथयति–

जो वेददि वेदिज्जदि समये समये विणस्सदे उहयं।
तं जाणगो दु णाणी उभयंपि ण कंखदि कयावि ॥ २१४ ॥

॥ आ. ख्या. २१६ ॥

जो वेददि वेदिज्जदि समये समये विणस्सदे उहयं योऽसौ रागादिविकल्पः कर्ता वेदयत्यनुभवति यस्तु सातोदयः कर्मतापन्नं वेद्यते तेन रागादिविकल्पेन, अनुभूयते। तदुभयमपि अर्थपर्यायापेक्षया समयं समयं प्रति विनश्वरं **तं जाणगो दु णाणी उभयंपि ण कंखदि कयावि** तदुभयमपि वेद्यवेदकरूपं वर्तमानं भाविनं च विनश्वरं जानन् सन् तत्त्वज्ञानी नाकांक्षति न वांछति कदाचिदपि ॥२१४॥

और पंचमगुणस्थानवर्ती जीवोंको अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभके उदयमें होनेवाले भूमिरेखादिसमान रागादिका अभाव होनेसे पंचमगुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्दृष्टि, शुद्धात्मानुभूतिवाले हैं। ऐसा पहले भी कह दिया है।

इस ग्रंथमें पंचमगुणस्थानसे ऊपरके गुणस्थानवर्ती वीतराग सम्यग्दृष्टियोंका मुख्यवृत्तिसे और सराग सम्यग्दृष्टियोंका (चतुर्थगुणस्थानवालोंका) जघन्यसे ग्रहण करना, इसतरह सम्यग्दृष्टि के व्याख्यानकालमें सर्वत्र जानना योग्य है, **याने जाति अपेक्षासे चतुर्थगुणस्थानसहित ऊपरके** गुणस्थानवाले जीव सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभूतिवाले) हैं, ऐसा जानना योग्य है ॥ २१२, २१३ ॥

अब, सम्यग्ज्ञानी आगामी भोगोंकी इच्छा नहीं करता है, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**जो**] जो [**वेददि**] (अनुभव करता है ऐसा) अनुभव करनेवाला भाव अर्थात् वेदक भाव और जो [**वेदिज्जदि**] जो अनुभव किया जाता है– ऐसा वेद्यभाव [**उहयं**] ये दोनों भाव अर्थपर्यायकी अपेक्षा [**समये समये**] समय समयमें [**विणस्सदे**] नष्ट हो जाते हैं [**तं**] इसलिये [**णाणी**] सम्यग्ज्ञानी [**जाणगो दु**] दोनों भावोंका ज्ञायक ही है [**उभयं पि**] इन दोनों भावोंकी भी [**कयावि**] कदापि [**ण कंखदि**] आकांक्षा नहीं करता है।

टीकार्थ– जो कोई रागादिविकल्प है वह वेदन करनेवाला, अनुभव करनेवाला कर्ता है और जो साताके उदयमें प्राप्त होनेवाला भाव रागादिविकल्पसे अनुभव किया जाता है, वे दोनों भी अर्थपर्यायकी अपेक्षा से अपने अपने समयमें और आगामी कालमें उन दोनों वेद्यवेदकभावोंको नश्वर जानकर सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव उनकी वांछा अथवा कांक्षा कदापि नहीं करता है ॥ २१४ ॥

अथ, तथैवापध्यानरूपाणि निष्प्रयोजनवंधनिमित्तानि शरीरविषये भोगनिमित्तानि च रागाद्यध्यवसानानि परमात्मतत्त्ववेदी न वांछति, इति प्रतिपादयति–

वंधुवभोगणिमित्तं अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स ।
संसारदेहविसएसु णेव उप्पज्जदे रागो ॥ २१५ ॥

॥ आ. ख्या. २१७ ॥

वंधुवभोगणिमित्तं अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स णेव उप्पज्जदे रागो स्वसंवेदनज्ञानिनो जीवस्य रागाद्युदयरूपेषु अध्यवसानेषु वंधनिमित्तं भोगनिमित्तं वा नैवोत्पद्यते रागः । कथंभूतेष्वध्यवसानेषु? **संसारदेहविसएसु** निष्प्रयोजनवंधनिमित्तेषु संसारविषयेषु भोगनिमित्तेषु देहविषयेषु वा । इदमत्र तात्पर्यं भोगनिमित्तं स्तोकमेव पापं करोत्ययं जीवः । निष्प्रयोजनापध्यानेन वहुतरं करोति शालिमत्स्यवत् । तथा चोक्तमपध्यानलक्षणं– 'वंधवंधच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥१॥' इति अपध्यानेन कर्म वध्नाति तदप्युक्तमास्ते "संकल्पकल्पतरूसंश्रयणात्त्वदीयं चेतो निमज्जति मनोरथसागरेऽस्मिन् । तत्रार्थतस्तव चकास्ति न

अव उसी तरह अपध्यानरूप, निष्प्रयोजन वंधको कारण होनेवाले और शरीरके वारेमें भोगका कारण होनेवाले रागादि अध्यवसान भावोंको परमात्मतत्त्ववेदी (स्वानुभूतिवाला) जीव नहीं चाहता है, इसका प्रतिपादन करते है ।

गाथार्थ– [**वंधुवभोगणिमित्तं**] वंध और उपभोग के निमित्त जो [**अज्झवसाणोदएसु**] अध्यवसान के उदय हैं वे [**संसारदेहविसएसु**] संसारविषयक और देहविषयक हैं उनमें [**णाणिस्स**] ज्ञानीको– चतुर्थादिगुणस्थानवर्तीको [**रागो**] राग [**णेव उप्पज्जदे**] ही नहीं उत्पन्न होता ।

टीकार्थ– स्वसंवेदनज्ञानी (स्वानुभूतिवाले) जीवको रागादि उदयरूप अध्यवसानोंमें वंधनिमित्तरूप अथवा भोगनिमित्तरूप राग उत्पन्न ही नहीं होता है ।

शंका– किसप्रकारके अध्यवसानोंमें चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीवको राग उत्पन्न नहीं होता है ?

समाधान– निष्प्रयोजन वंध के निमित्तोंमें–संसारके विषयोंमें अथवा भोगनिमित्तोंमे अथवा देहके विषयोंमें चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती स्वानुभूतिवाले जीवको राग उत्पन्न नहीं होता है ।

इसका तात्पर्य यह है कि, यह जीव भोगनिमित्त थोडे ही पाप करता है । तंदुलमत्स्यके समान यह अज्ञानी–मिथ्यात्वी जीव निष्प्रयोजनरूप अपध्यानसे वहुत पाप करता है । उसीप्रकार आगम में अपध्यानका लक्षण कहा है कि, "वंध" इत्यादि का

अर्थ– किसी प्रकारके द्वेषसे अथवा रागसे दूसरोंके स्त्री पुत्रादिकका वांधना, मार डालना, छेदना आदिका चितन करना, उसको जिनशासनमें ज्ञानी लोगोंने अपध्यान कहा है । इस अपध्यानसे कर्मका वंध करता है । और भी जिनागममें कहा है कि "संकल्पादि" अर्थात् (१)– अनेक प्रकारके संकल्पविकल्पोंका आश्रय करनेसे तेरा चित्त इच्छारूपी सागरमें निमग्न रहता है

किंचनापि पक्षः परं भवसि कल्मषसंश्रयस्य ॥ १ ॥ दौर्विध्यदग्धमनसोऽन्तरुपात्तभुक्तेश्चित्तं यथोल्लसति ते स्फुरितान्तरंगम् । धाम्नि स्फुरेद्यदि तथा परमात्मसंज्ञे कौतुस्कुती तव भवेद्विफला प्रसूतिः ॥ २ ॥ आचारशास्त्रे भणितं—

"कंखदि कलुसिदभूदो तु कामभोगेहिं मुच्छिदो संतो । णय भुंजंतो भोगे बंधदि भावेण कम्माणि ॥"

इति ज्ञात्वा, अपध्यानं त्यक्त्वा च शुद्धात्मस्वरूपे स्थातव्यमिति भावार्थः ॥ २१५ ॥

अथ मिथ्यात्वरागादिरूपमपध्यानं मम परिग्रहो न भवति, इति पुनरपि भेदज्ञानशक्तिं वैराग्यशक्तिं च प्रकटयति—

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज ।
णादेव अहं जह्मा तह्मा ण परिग्गहो मज्झ ॥ २१६ ॥

॥ आ. ख्या. २०८ ॥

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज सहजशुद्धकेवलज्ञानदर्शनस्वभावस्य मम यदि मिथ्यात्वरागादिकं परद्रव्यं परिग्रहो भवति ततोऽहमजीवत्वं जडत्वं गच्छामि । न चाहं अजीवो भवामि । **णादेव अहं जह्मा तह्मा ण परिग्गहो मज्झ** परमात्मज्ञानपदमेवाहं यस्मात्ततः परद्रव्यं मम परिग्रहो न भवतीत्यर्थः ॥ २१६ ॥

उससे तेरा कोअी भी कार्य (प्रयोजन) सिद्ध नहीं होता है लेकिन पापका संचय होता है । "**दौर्विध्यादि**" अर्थात् दुर्भाग्यसे भोगोंके विषयमें लालायित होकर तेरा चित्त जैसे दौड़धूप करता है वैसेही यदि अपने परमात्मस्वभावमें लग जायेगा तो तेरे यह विकल्पमय संसारकी विफलता प्रगट होगी (याने तेरा संसार नष्ट होगा) ।

इसी प्रकार आचारशास्त्रमें लिखा है "**कंखदि इत्यादि**" अर्थात् इन दुष्ट काम भोगों की वासनाओंमें फंसा हुआ मनुष्यका मलिन चित्त नानाप्रकारकी इच्छायें करता है, उससे भोगोंको न भोगता हुआ भी अपने इस दुर्भावके द्वारा कर्मबंध करता है ऐसा जानकर और अपध्यानका त्यागकर शुद्धात्मस्वभावका ध्यान करना चाहिये ऐसा भावार्थ है ॥ २१५ ॥

अब, मिथ्यात्वरागादिरूप अपध्यान मेरा परिग्रह नहीं है, इसतरह फिरसे भेदज्ञानशक्ति और वैराग्यशक्तिको प्रकट करते हैं—

गाथार्थ— [**जदि**] यदि [**परिग्गहो**] परिग्रह-परद्रव्य [**मज्झं**] मेरा हो [**तदो तु**] तो [**अहं**] मैं [**अजीवदं**] अजीवत्व को [**गच्छेज्ज**] प्राप्त हो जाऊँ [**जह्मा**] जिसकारणसे [**अहं**] मैं [**णादेव**] ज्ञाता स्वभाववाला ही हूँ [**तह्मा**] इस कारण [**परिग्गहो**] परिग्रह [**मज्झं ण**] मेरा नहीं है ।

टीकार्थ— यदि सहजशुद्धकेवलज्ञानदर्शनस्वभाववाले मेरा मिथ्यात्वरागादिक परद्रव्य परिग्रह है तो मैं अजीवत्व-जडत्वको प्राप्त होता हूँ । लेकिन मैं अजीव नहीं हूँ । मैं परमात्मज्ञान-पदवाला हूँ, इसलिये परद्रव्य मेरा परिग्रह नहीं है, ऐसा भावार्थ है ॥ २१६ ॥

अथ किं तत् परमात्मपदमिति पृच्छति–

आदह्मि दव्वभावे अथिरे मोत्तूण गिण्ह तव णियदं ।
थिरमेगमिमं भावं उपलब्भंतं सहावेण ॥ २१७ ॥

॥ आ. ख्या. २०३ ॥

आदह्मि दव्वभावे अथिरे मोत्तूण आत्मद्रव्येऽधिकरणभूते, द्रव्यकर्माणि भावकर्माणि च यानि तिष्ठंति तानि विनश्वराणि, इति विज्ञाय मुक्त्वा **गिण्ह** हे भव्य ! गृहाण स्वीकुरु । कं ? कर्मतापन्नं **तव णियदं थिरमेगमिमं भावं उपलब्भंतं सहावेण** भावं आत्मपदार्थं कथंभूतं ? तव संबंधि स्वरूपं । नियतं निश्चितं । पुनरपि कथंभूतं ? थिरं स्थिरं, अविनश्वरं । एकं असहायं । इमं प्रत्यक्षीभूतं । पुनरपि किं विशिष्टं ? उपलभ्यमानमनुभूयमानं । केन कृत्वा ? परमात्मसुखसंवित्तिरूपस्वसंवेदनज्ञानस्वभावेनेति ॥ २१७ ॥

अथ ज्ञानी परद्रव्यं न गृहणातीति भेदभावनां प्रतिपादयति–

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं मम इमं हवदि दव्वं ।
अप्पाणमप्पणो परिग्गहं तु णियदं वियाणंतो ॥ २१८ ॥

॥ आ. ख्या. २०७ ॥

अब, वह परमात्मपद क्या है ? ऐसा पूछते हैं, तब उसका उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**अथिरे दव्वभावे**] अनित्य द्रव्यभावरूप सभी भावोंको [**मोत्तूण**] छोडकर [**आदह्मि**] आत्मामें [**तव**] तेरा [**णियदं**] निश्चितस्वभाव [**थिरमेगं**] स्थिर एक [**सहावेण**] स्वभावसे ही [**उपलब्भंतं**] ग्रहण करने योग्य [**इमं**] इस प्रत्यक्ष अनुभवगोचर [**भावं**] चैतन्यस्वभावको [**गिण्ह**] तू ग्रहण कर (अनुभव कर) ।

टीकार्थ– आत्मद्रव्यके अधिकरणभूतमें जो द्रव्यकर्म और भावकर्म हैं। वे नश्वर–अनित्य हैं, ऐसा जानकर उन्हें छोड देते हुये हे भव्य ! अपने नियत आत्मस्वभावको ग्रहण कर ।

शंका– वह नियत आत्मस्वभाव और कैसा है ?

समाधान– वह नियत आत्मस्वभाव स्थिर-अविनश्वर, एक-असहाय (स्वतंत्र), प्रत्यक्षीभूत है ।

शंका– और भी क्या विशेषता है ?

समाधान– परमात्मसुखसंवित्तिरूपस्वसंवेदनज्ञानस्वभावसे प्रत्यक्ष उपलब्ध होनेवाला= प्रत्यक्ष अनुभूतिमें आनेवाला वह अविनश्वर, नियत, स्थिर आत्मस्वभाव है ॥ २१७ ॥

अब, सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव) परद्रव्यको ग्रहण नहीं करता है, इस भेदभावनाको कहते हैं–

गाथार्थ– [**अप्पाणं**] अपनी आत्माको ही [**णियदं**] निश्चितरूपसे [**अप्पणो**] अपना [**परिग्गहं तु**] परिग्रह [**वियाणंतो**] जानते-अनुभवते हुये [**को णाम बुहो**] कौन ज्ञानी पुरुष [**भणिज्ज**] कहेगा कि [**इदं परदव्वं**] यह परद्रव्य [**मम दव्वं**] मेरा द्रव्य [**हवदि**] है ।

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं मम इदं हवदि दव्वं परद्रव्यं मम भवतीति नाम स्फुटमहो वा को ब्रूयात् ? बुधो ज्ञानी, न कोऽपि । किं कुर्वन् ? **अप्पाणमप्पणो परिग्गहं तु णियदं वियाणंतो** चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मानमेव, आत्मनः परिग्रहं विजानन् नियतं निश्चितमिति ॥२१८॥

अथायं च मे निश्चयः, देहरागादिपरद्रव्यं मम परिग्रहो न भवतीति भेदज्ञानं निरूपयति–

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं ।
जह्मा तह्मा गच्छदु तहावि ण परिग्गहो मज्झ ॥ २१९ ॥

॥ आ. ख्या. २०९ ॥

छिज्जदु वा भिज्जदु वा, णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं छिद्यतां वा द्विधा भवतु, भिद्यतां वा छिद्रीभवतु, नीयतां वा केनचित् । अथवा विप्रलयं विनाशं गच्छतु, एवमेव **जह्मा तह्मा गच्छदु तहावि ण परिग्गहो मज्झ** अन्यस्मात् यस्मात्⊗ कारणाद्वा गच्छतु तथापि शरीरं मम परिग्रहो न भवति । कस्मात् ? इति चेत्, टंकोत्कीर्णपरमानंदज्ञायकैकस्वभावोहं, यतः कारणात् । अयं च मे निश्चयः ॥ २१९ ॥

टीकार्थ– कौन ज्ञानी पुरुष "परद्रव्य मेरा है," ऐसा कहेगा ? अर्थात् कोओी भी ज्ञानी "यह परद्रव्य मेरा हैं," ऐसा नहीं कहेगा ।

शंका– क्या करनेवाला परद्रव्यको मेरा नहीं कहेगा ?

समाधान– नियत-चिदानंद-एक-स्वभाव-शुद्धात्माको ही अपना परिग्रह जाननेवाला परद्रव्यको अपना नहीं कहेगा ॥ २१८ ॥

अब, और यह मेरा निश्चय है कि देहरागादिपरद्रव्य मेरा परिग्रह नहीं है । इस भेदज्ञानका कथन करते हैं–

गाथार्थ– [**छिज्जदु वा**] चाहे छिद जावो [**भिज्जदु वा**] चाहे भिद जावो [**णिज्जदु वा**] चाहे कोओी ले जावो [**अहव**] अथवा [**विप्पलयं जादु**] नष्ट हो जावो [**जह्मा तह्मा**] चाहे जिस कारणसे [**गच्छदु**] चला जावो [**तहावि**] तथापि [**परिग्गहो**] परिग्रह [**मज्झं ण**] मेरा नहीं है ।

टीकार्थ– चाहे शरीरादि छिद जावे, दो टुकडे हो जावे, चाहे यह भेद जावे याने नाना छेदवाला बन जावे, इसे कोओी कहीं ले जावे अथवा नष्ट हो जावे । इसप्रकार ही दुसरे किसी कारणसे कुछ भी हो जावे तथापि शरीर मेरा परिग्रह नहीं है क्योंकि मैं टंकोत्कीर्णपरमानंदज्ञायकस्वभाववाला हूँ । और यह मेरा निश्चय है ॥ २१९ ॥

अथात्मसुखे संतोषं दर्शयति–

एदह्मि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदह्मि ।
एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं ॥ २२० ॥

॥ आ. ख्या. २०६ ॥

एदह्मि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदह्मि एदेण होहि तित्तो हे भव्य ! पंचेंद्रियसुखनिवृत्तिं कृत्वा निर्विकल्पयोगबलेन स्वाभाविकपरमात्मसुखे रतो भव, संतुष्टो भव, तृप्तो भव नित्यं सर्वकालं तो होहदि उत्तमं सुक्खं ततस्तस्मादात्मसुखानुभवनात् तवोत्तममक्षयं मोक्षसुखं भविष्यति ॥ २२० ॥

अथ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानाभेदरूपं परमार्थसंज्ञं मोक्षकारणभूतं यत्परमात्मपदं तत्समस्तहर्षविषादादिविकल्पजालरहितं परमयोगाभ्यासादेवात्मानुभवति, इति प्रतिपादयति–

आभिणिसुदोहिमणकेवलं च तं होदि एक्कमेव पदं ।
सो एसो परमट्ठो जं लहिदुं णिव्वुदिं जादि ॥ २२१ ॥

॥ आ. ख्या. २०४ ॥

आत्मसुखमें ही संतोष हैं ऐसा दिखाते हैं–

गाथार्थ– हे भव्य जीव ! [**एदह्मि**] इस ज्ञानमें ही तू [**णिच्चं**] सदाकाल [**रदो**] तल्लीन होकर रह [**एदह्मि**] इस ज्ञानमें ही तू [**णिच्चं**] नित्य [**संतुट्ठो**] संतुष्ट [**होहि**] हो [**एदेण**] इस ज्ञानसे तू [**तित्तो होहि**] तृप्त रह, इससे [**तुह**] तुझे [**उत्तमं सोक्खं**] उत्तम सुख [**होहदि**] होगा ।

टीकार्थ– हे भव्य ! पंचेंद्रियसुखसे निवृत्त होकर निर्विकल्प योगबलसे (स्वानुभूति के बलसे) स्वाभाविक परमात्मसुखमें नित्य रत रह, संतुष्ट रह, तृप्त रह । इस आत्मानुभवके सुखकी अनुभूतिसे तुझे उत्तम अक्षय मोक्षसुख होगा ॥ २२० ॥

अब, जिस परमार्थरूप मोक्षके कारणभूत जो परमात्मपद है, उसमें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान भेद नहीं है, वह परमात्मपद हर्षविषादादि सभी प्रकारके विकल्पजालसे रहित है । उस परमस्वभावको यह आत्मा परमयोगाभ्यास से (स्वानुभूतिसे) ही अनुभव करता है, ऐसा कहते हैं ।

गाथार्थ– [**आभिणिसुदोहिमणकेवलं च**] मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान [**तं एक्कमेवपदं होदि**] ये ज्ञानके भेद हैं, वे ज्ञान पदको ही प्राप्त हैं, सभी एक ज्ञान नामसे कहे जाते हैं [**सो एसो परमट्ठो**] सो यह शुद्धनयका विषयस्वरूप ज्ञान सामान्य है इसलिये यही परमार्थ है [**जं लहिदुं**] जिसको पाकर आत्मा [**णिव्वुदिं**] मोक्षपद को [**जादि**] प्राप्त होता है ।

आभिणिसुदोहिमणकेवलं च तं होदि एक्कमेव पदं मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञान-भेदरूपं यत्तन्निश्चयेन, एकमेव पदं। परं किं तु यथादित्यस्य मेघावरणतारतम्यवशेन प्रकाशभेदा भवंति। तथा मतिज्ञानावरणादिभेदकर्मवशेन मतिश्रुतज्ञानादिभेदभिन्नं जातं **सो एसो परमट्ठो जं लहिदुं णिव्वुदिं जादि** स एष लोकप्रसिद्धः पंचज्ञानाभेदरूपः परमार्थः यं परमार्थं लब्ध्वा जीवो निर्वृतिं याति लभत इत्यर्थः। एवं ज्ञानशक्तिवैराग्यशक्तिविशेषविवरणरूपेण सूत्रदशकं गतं ॥ २२१ ॥

अत ऊर्ध्वं गाथाष्टकपर्यंतं तस्यैव परमात्मपदस्य प्रकाशको योसौ ज्ञानगुणः, तस्य सामान्यविवरणं करोति। तद्यथा— अथ मत्यादिपंचज्ञानाभेदरूपं साक्षान्मोक्षकारणभूतं यत्परमात्म-पदं, तत्पदं शुद्धात्मानुभूतिशून्यं व्रततपश्चरणादिकायक्लेशं कुर्वाणा अपि स्वसंवेदनज्ञानगुणेन विना न लभंते इति कथयति—

णाणगुणेहिं विहीणा एदं तु पदं बहूवि ण लहंति।
तं गिण्ह सुपदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं ॥ २२२ ॥

॥ आ. ख्या. २०५ ॥

टीकार्थ— जो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान के नामसे भेदरूप हैं तो भी वे अभेदवृत्तिसे—निश्चयनयसे एक ही पद है। किंतु जैसे मेघोंके द्वारा आवरण होनेसे तारतम्य के भेदसे सूरज के प्रकाशमें भेद हो जाते हैं, वैसे ही मतिज्ञानावरणादिभेद-कर्मवश से उत्पन्न हुए मतिश्रुतज्ञानादि भेद हैं। वह लोक प्रसिद्ध यह पांचज्ञानका अभेदरूप परमार्थ ज्ञानस्वभाव है, उस परमार्थज्ञानस्वभावको प्राप्त कर (अनुभव कर) जीव निर्वृतिको (मुक्तिको-मोक्षको) पाता है। यह भावार्थ है।

इस प्रकार ज्ञानशक्ति और वैराग्यशक्ति इनका विशेष कथन करनेवाली १० गाथायें पूर्ण हुयी ॥ २२१ ॥

अब इसके आगे आठ गाथाओंतक उस ही परमात्मपदका प्रकाशक जो ज्ञानगुण है, उस ज्ञानगुणका सामान्य विवरण करते हैं। अब मत्यादिपांचज्ञानका अभेदरूप साक्षात् मोक्षकारणभूत जो ~~परमात्मपद~~ शुद्धात्मानुभूतिशून्य व्रततपश्चरण आदि कायक्लेश करनेसे भी स्वसंवेदनज्ञानगुणके विना प्राप्त नहीं होता है, ऐसा कहते हैं—

गाथार्थ— [**णाणगुणेहिं विहीणा बहूवि**] ज्ञानगुणसे रहित बहुत प्रकारके व्रततश्चरणा-दिक करनेवाले लोग [**एदं पदं तु**] ज्ञानरूप (स्वसंवेदनज्ञानरूप) इस पदको भी [**ण लहंते**] प्राप्त नहीं होते हैं, इसलिये [**जदि**] यदि [**कम्मपरिमोक्खं**] तू कर्मोंसे मुक्त [**इच्छसि**] होना चाहता हैं तो [**तं एदं सुपदं**] उस सुपदरूप ध्रुव ज्ञानस्वभावको [**गिण्ह**] ग्रहण कर (स्वभावका अनुभव कर)।

णाणगुणेहिं विहीणा एदं तु पदं बहूवि ण लहंति निर्विकारपरमात्मतत्त्वोपलब्धिलक्षण-ज्ञानगुणेन विहीनाः रहिताः पुरुषाः बहवोऽपि शुद्धात्मोपादेयसंवित्तिरहितं दुर्धरकायक्लेशादितपश्चरणं कुर्वाणा अपि मत्यादिपंचज्ञानाभेदरूपं साक्षान्मोक्षकारणं स्वसंवेद्यं शुद्धात्मसंवित्तिलक्षणमिदं पदं न लभंते । **तं गिण्ह सुपदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं** हे भव्य ! तत्पदं गृहाण यदीच्छसि कर्मपरिमोक्षमिति ॥ २२२ ॥

अथ विशेषपरिग्रहत्यागरूपेण तमेव ज्ञानगुणं विवृणोति–

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे धम्मं ।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ २२३ ॥

॥ आ. ख्या. २१० ॥

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे धम्मं अपरिग्रहो भणितः । कोसौ ? अनिच्छः । तस्य परिग्रहो नास्ति यस्य वहिर्द्रव्येष्विच्छा वांछा मोहो नास्ति । तेन कारणेन स्वसंवेदनज्ञानी शुद्धोपयोगरूपं निश्चयधर्मं विहाय शुभोपयोगरूपं धर्मं पुण्यं नेच्छति **अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि** ततः कारणात्पुण्यरूपधर्मस्यापरिग्रहः सन् पुण्यमिदं मम स्वरूपं न भवतीति ज्ञात्वा तद्रूपेणापरिणमन् अतन्मयो भवन् दर्पणे विम्बस्येव ज्ञायक एव भवति ॥२२३॥

टीकार्थ– निर्विकारपरमात्मतत्त्वोपलब्धिलक्षणवाले ज्ञानगुणसे रहित वहुत प्रकारके पुरुष शुद्धात्मस्वभावकी अनुभूतिसे रहित दुर्धरकायक्लेशादि तपश्चरण करनेसे भी मत्यादिपांच-ज्ञानका अभेदरूपवाला-साक्षात् मोक्षकारणभूत स्वानुभव करने के योग्य-शुद्धात्मस्वभावकी अनुभूतिलक्षणवाला यह पद प्राप्त नहीं करते हैं। इसलिये हे भव्य ! यदि तू कर्मोसे मुक्त होना चाहता है तो यह सुपद याने अपने शुद्धात्मस्वभावको ग्रहण कर ॥ २२२ ॥

अब, विशेष परिग्रह के त्याग रूपसे उसही ज्ञानगुणका वर्णन करते हैं–

गाथार्थ– [**अणिच्छो**] इच्छा न करनेवाला जीव [**अपरिग्गहो**] परिग्रहसे रहित है ऐसा [**भणिदो**] कहा गया है [**य**] और [**णाणी**] सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव) [**धम्मं**] धर्मकी– पुण्यकी [**णिच्छदे**] इच्छा नहीं करता है [**तेण**] इसलिये [**धम्मस्स अपरिग्गहो सो**] धर्म के अपरिग्रहवाला वह सम्यग्ज्ञानी [**जाणगो दु**] ज्ञायक ही [**होदि**] है ।

टीकार्थ– जिसको इच्छा नहीं वह अपरिग्रहवाला है, ऐसा कहा गया है । जिसको वाह्य द्रव्यकी वांछा-मोह नहीं है उसको परिग्रह नहीं है । इसलिये स्वसंवेदनज्ञानी शुद्धोपयोगरूप निश्चयधर्म (स्वानुभव) को छोडकर शुभोपयोगरूप धर्म याने पुण्य की इच्छा नहीं है (या मोक्ष या स्वानुभवकी भी इच्छा नहीं है) । इस कारण से पुण्यरूप धर्मका (अथवा शुद्धोपयोगरूप अनित्य पर्याय का भी) अपरिग्रहवाला होकर "यह पुण्य मेरा स्वभाव नहीं है" यह जानकर उसरूपसे परिणमन न करके (याने पर्याय के विषयमें तन्मय न होकर) उसका ज्ञायक ही है, जैसे दर्पणमें प्रतिविम्ब होते हुये भी निश्चयनयसे दर्पण स्वच्छ ही है ॥ २२३ ॥

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदि अधम्मं ।
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ २२४ ॥

॥ आ. ख्या. २११ ॥

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदि अहम्मं अपरिग्रहो भणितः । स कः ? अनिच्छः तस्य परिग्रहो नास्ति यस्य बहिर्द्रव्येषु, इच्छा कांक्षा नास्ति । तेन कारणेन तत्त्वज्ञानी विषयकषायरूपमधर्मं पापं नेच्छति । **अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि** तत एव कारणात् विषयकषायरूपस्याधर्मस्याऽपरिग्रहः सन् पापमिदं मम स्वरूपं न भवतीति ज्ञात्वा तद्रूपेणापरिणमन् दर्पणे बिम्बस्येव ज्ञायक एव भवति । एवमेव च अधर्मपदपरिवर्तनेन रागद्वेषमोहक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकायश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसंज्ञानि सप्तदशसूत्राणि व्याख्येयानि । तेनैव प्रकारेण शुभाशुभसंकल्पविकल्परहितानंतज्ञानादिगुणस्वरूपशुद्धात्मनः प्रतिपक्षभूतानि शेषाण्यप्यसंख्येयलोकप्रमितानि विभावपरिणामस्थानानि वर्जनीयानि ॥ २२४ ॥

धम्मच्छि अधम्मच्छी आयासं सुत्तमंगपुव्वेसु ।
संगं च तहा णेयं देवमणुअत्तिरियणेरइयं ॥ २२५ ॥

गाथार्थ– [**अणिच्छो**] इच्छा न करनेवाला जीव [**अपरिग्गहो**] परिग्रहसे रहित है ऐसा [**भणिदो**] कहा गया है [**य**] और [**णाणी**] सम्यग्ज्ञानी [**अधम्मं**] अधर्मकी– पापकी [**णिच्छदि**] इच्छा नहीं करता है [**तेण**] इसलिये [**अधम्मस्स अपरिग्गहो सो**] अधर्मका अपरिग्रहवाला वह सम्यग्ज्ञानी [**जाणगो दु**] अधर्मका ज्ञायक ही [**होदि**] है ।

टीकार्थ– जिसको बाह्य द्रव्यकी वांछा नहीं है, उसको परिग्रह नहीं है, याने उसको अपरिग्रही कहते हैं । इसलिये तत्त्वज्ञानी (सम्यग्ज्ञानी) अधर्मकी याने पापकी इच्छा नहीं करता है । इसही कारणसे विषयकषायरूप अधर्मका अपरिग्रही होकर 'यह पाप मेरा स्वभाव नहीं है' ऐसा जानकर उसरूपसे न परिणमन करते हुये उसका ज्ञायक ही है, जैसे दर्पणमें प्रतिबिम्ब होते हुये भी दर्पण स्वच्छ ही है और इसी तरह अधर्मपदका परिवर्तन करके रागद्वेषमोहक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनवचनकायश्रोत्रचक्षुघ्राणरसनस्पर्शन इन १७ पदोंसे व्याख्या करनी चाहिए । उसी प्रकारसे शुभाशुभसंकल्पविकल्परहित अनंतज्ञानादिगुणस्वरूपशुद्धात्मस्वभावके प्रतिपक्षभूत शेष सभी असंख्यातलोकप्रमाण विभावपरिणामस्थान त्यागने योग्य हैं ॥ २२४ ॥

गाथार्थ– [**धम्मच्छि**] धर्मास्तिकाय, [**अधम्मच्छी**] अधर्मास्तिकाय, [**आयासं**] आकाश, [**अंगपुव्वेसु सुत्तं**] ११ अंग और १४ पूर्वगत सूत्र [**च**] और [**देवमणुअत्तिरियणेरइयं**] देवमनुष्यतिर्यंचनारकादिपर्याय [**तहा**] तथा [**संगं**] सब परिग्रह [**णेयं**] ये सब ज्ञेय है, (सम्यग्ज्ञानी इन ज्ञेयोंकी इच्छा नहीं करता है) ।

अपरिग्रहो भणितः । कोऽसौ ? अनिच्छः तस्य परिग्रहो नास्ति यस्य वहिर्द्रव्येषु इच्छा आकांक्षा नास्ति । तेन कारणेन परमतत्त्वज्ञानी चिदानंदैकस्वभावं शुद्धात्मानं विहाय धर्मधर्माकाशाद्यंगपूर्वगतश्रुतबाह्याभ्यंतरपरिग्रहदेवमनुष्यतिर्यङ्नारकादिविभावपर्यायान्नेच्छति इति ज्ञेयं ज्ञातव्यं । ततः कारणात्तद्विषये निष्परिग्रहो भूत्वा तद्रूपेणापरिणमन् सन् दर्पणे विम्वस्येव ज्ञायक एव भवति ॥ २२५ ॥

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो असणं च णिच्छदे णाणी ।
अपरिग्गहो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ २२६ ॥

॥ आ. ख्या. २१२ ॥

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो असणं च णिच्छदे णाणी अपरिग्रहो भणितः । स कः ? अनिच्छः । तस्य परिग्रहो नास्ति यस्य वहिर्द्रव्येषु इच्छा मूर्च्छा ममत्वं नास्ति । इच्छा त्वज्ञानमयो भावः स च ज्ञानिनो न संभवति **अपरिग्गहो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि** तत एव कारणात् आत्मसुखे तृप्तो भूत्वा अशनविषये निष्परिग्रहः सन् दर्पणे विम्वस्येव अशनाद्याहारस्य वस्तुनो वस्तुरूपेण ज्ञायक एव भवति । न च रागरूपेण ग्राहक इति ॥ २२६ ॥

टीकार्थ– जिसको वाह्य द्रव्योंकी आकांक्षा नहीं है उसको परिग्रह नहीं है याने उसको अपरिग्रही कहा गया है । इसलिये परमतत्त्वज्ञानी (स्वानुभूतिवाला चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव चिदानंदएकस्वभाववाले शुद्धात्माको छोडकर धर्म, अधर्म, आकाशादि, अंगपूर्वगतश्रुतज्ञान, वाह्य-अभ्यंतर परिग्रह और देवमनुष्यतिर्यंचनारकादिविभावपर्यायोंकी इच्छा नहीं करता है, यें सव ज्ञेय जानने योग्य हैं । इस कारणसे उस विषयमें अपरिग्रही होकर उन स्वरूप परिणमन न करनेवाला उनका ज्ञायक ही है, जैसे दर्पणमें प्रतिविम्व होते हुवे भी निश्चयनयसे दर्पण स्वच्छ ही है ॥ २२५ ॥

गाथार्थ– [अणिच्छो] इच्छा न करनेवाला जीव [अपरिग्गहो] परिग्रहसे रहित है ऐसा [भणिदो] कहा गया है [य] और [णाणी] सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव) [असणं] भोजनकी [णिच्छदे] इच्छा नहीं करता है [तेण] इसलिये [असणस्स अपरिग्गहो सो] भोजनके अपरिग्रहवाला वह सम्यग्ज्ञानी [जाणगो दु] ज्ञायक ही [होदि] है ।

टीकार्थ– जिसको वाह्य द्रव्यमें ममत्व मूर्च्छा (इच्छा) नहीं है उसको परिग्रह नहीं है ऐसा कहा गया है । इच्छा अज्ञानमय भाव है और वह ज्ञानी जीवको संभव नहीं है । इस ही कारणसे आत्मसुखमें तृप्त होकर भोजनके विषयमें अपरिग्रही होकर वस्तुस्वरूपसे उसका ज्ञायक ही है, जैसे दर्पणमें प्रतिविम्व होते हुवे भी निश्चयनयसे दर्पण स्वच्छ ही है। और सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव) रागरूपसे भोजनादि आहारका ग्राहक नहीं है ॥ २२६ ॥

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे पाणं ।
अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥ २२७ ॥

॥ आ. ख्या. २१३ ॥

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो पाणं तु णिच्छदे णाणी । अपरिग्रहो भणितः । कोऽसौ ? अनिच्छः । तस्य परिग्रहो नास्ति यस्य वहिर्द्रव्येष्वाकांक्षा तृष्णा मोह इच्छा नास्ति । इच्छा त्वज्ञानमयो भावः स च ज्ञानिनो न संभवति **अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि** ततः कारणात् स्वाभाविकपरमानंदसुखे तृप्तो भूत्वा विविधपानकविषये निष्परिग्रहः सन् दर्पणे बिम्बस्येव वस्तुनो वस्तुरूपेण ज्ञायक एव भवति, न च रागरूपेण ग्राहक इति । तथा चोक्तं–

ण वलाउसाहणट्ठं ण सरीरस्य य चयट्ठतेजट्ठं ।
णाणट्ठं संजमट्ठं झाणट्ठं चेव भुंजंति ॥ १ ॥
अक्खामक्खणिमित्तं इसिणो भुंजंति पाणधारणणिमित्तं ।
पाणा धम्मणिमित्तं धम्मं हि चरंति मोक्खट्ठं ॥ २ ॥ ॥ २२७ ॥

गाथार्थ– [**अणिच्छो**] इच्छा न करनेवाला जीव [**अपरिग्गहो**] परिग्रहसे रहित है ऐसे [**भणिदो**] कहा गया है [**य**] और [**णाणी**] सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव) [**पाणं**] जलादि पीने की [**णिच्छदे**] इच्छा नहीं करता है [**तेण**] इसलिये [**पाणस्स अपरिग्गहो सो**] पान का अपरिग्रहवाला वह सम्यग्ज्ञानो [**जाणगो दु**] जलादि पान का ज्ञायक ही [**होदि**] है ।

टीकार्थ– जिसको वाह्यद्रव्यमें मूर्च्छा (इच्छा) नहीं है उसको परिग्रह नहीं है ऐसा कहा गया है । इच्छा अज्ञानमय भाव है और वह (अज्ञानमयभाव) सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुण-स्थानवर्ती) जीवको संभव नही है । इस ही कारणसे स्वाभाविकपरमानंदसुखमें तृप्त होकर विविधपानकके विषयमें अपरिग्रही होकर पानक की वस्तुका वस्तुस्वरूपसे ज्ञायक ही है । जैसे दर्पणमें प्रतिविम्ब होते हुए भी निश्चयनयसे दर्पण स्वच्छ ही है । और सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादि-गुणस्थानवर्तीजीव) रागरूपसे पानक का ग्राहक नहीं है ।

उसी तरह कहा है कि '**ण वलाउसाहणट्ठं**' इत्यादि अर्थात् बल बढानेके लिये, आयु बढानेके लिये सम्यग्ज्ञानी अन्नादि नहीं लेते हैं और शरीरको मोटा बनाने के लिये और शरीर का तेज बढ़ाने के लिये सम्यग्ज्ञानी अन्नादि नहीं लेते हैं, तो ज्ञानार्थ, संयमार्थ और ध्यानके लिये ही सम्यग्ज्ञानी आहारादि लेते हैं ।

'**अक्खामक्खणिमित्तं**' इत्यादि अर्थात् जैसे गाडी चलनेके लिये गाडीके अक्षको बांग देते हैं वैसे प्राण धारण करने के लिये अन्नादि शरीरको देते हैं, धर्म धारण करनेके लिये प्राण है, और मोक्ष के लिये धर्मका आचरण करते हैं ॥ २२७ ॥

अथ परिग्रहत्यागव्याख्यानमुपसंहरति–

इच्चादु एदु विविहे सव्वे भावे य णिच्छदे णाणी।
जाणगभावो णियदो णीरालंबो य सव्वत्थ ॥ २२८ ॥

॥ आ. ख्या. २१४ ॥

इच्चादु एदु विविहे सव्वे भावे य णिच्छदे णाणी इत्यादिकान् पुण्यपापाशनपानादि-बहिर्भावान् सर्वान् सर्वतः परमात्मतत्त्वज्ञानी नेच्छति। अनिच्छन् स कथंभूतो भवति? **जाणगभावो णियदो णीरालंबो य सव्वत्थ** टंकोत्कीर्णपरमानंदज्ञायकैकस्वभाव एव भवति नियतो निश्चितः। पुनश्च कथंभूतो भवति? जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमितैश्च वाह्याभ्यंतरपरिग्रहरूपे चेतनाचेतनपरद्रव्ये सर्वत्र निरालंवोऽपि, अनंतज्ञानादिगुणस्वरूपे स्वस्वभावे पूर्णकलश इव सालंबन एव तिष्ठतीति भावार्थः ॥ २२८ ॥

अथ ज्ञानी वर्तमानभाविभोगेषु वांछां न करोतीति कथयति–

उप्पण्णोदयभोगे वियोगबुद्धीय तस्स सो णिच्चं।
कंखामणागदस्स य उदयस्स ण कुव्वदे णाणी ॥ २२९ ॥

॥ आ. ख्या. २१५ ॥

अब, परिग्रहत्यागके व्याख्यान का उपसंहार करते हैं–

गाथार्थ– [**इच्चादु एदु**] पुण्यपापाशनादि वाह्य भाव इत्यादिक [**विविहे**] नाना प्रकारके [**सव्वे भावे**] सव भावोंको [**णाणी**] सम्यग्ज्ञानी [**णिच्छदे**] नहीं चाहता है [**सव्वत्थ**] सर्वत्र [**णियदो**] नियमसे [**णीरालंबो जाणगभावो दु**] निरालम्व ज्ञायकभाव ही है।

टीकार्थ– परमात्मतत्त्वज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव सभी पुण्यपाप-अशन-पानादि बाह्यभावोंको सर्वतः नहीं चाहता है।

शंका– वह अनिच्छ कैसे होता है?

समाधान– वह सम्यग्ज्ञानी नियत, टंकोत्कीर्ण, परमानंद, ज्ञायक, एक स्वभाववाला ही है और तीन जगत्में और तीन कालमें भी मनवचनकायसे कृतकारितअनुमोदना के द्वारा वाह्याभ्यंतरपरिग्रहमें-चेतनअचेतनपरद्रव्यमें सर्वत्र निरालंव है तथापि अनंतज्ञानादिगूणवाले स्वस्वभावमें पूर्णकलशकी तरह सालंबन से ही रहता है। ऐसा भावार्थ है ॥ २२८ ॥

अब, ज्ञानी वर्तमानके और भाविकालके भोगोंकी वांछा नहीं करता है ऐसा कथन करते हैं–

गाथार्थ– [**तस्स उप्पणोदयभोगे**] उस उत्पन्न हुअे उदयभोग में [**णाणी**] ज्ञानी [**णिच्चं**] नित्य [**वियोगबुद्धीय**] वियोगवुद्धिसे प्रवर्तता है [**य**] और [**अणागदस्स उदयस्स**] आगामी कालमें होनेवाले उदयकी [**सो**] वह ज्ञानी [**कंखां**] कांक्षा [**ण कुव्वदे**] नहीं करता है, इसलिये अपरिग्रही है।

उप्पण्णोदयभोगे वियोगबुद्धीय तस्स सो णिच्चं उत्पन्नोदयभोगे वियोगबुद्धिश्च हेयबुद्धिर्भवति 'तस्य तस्मिन् भोगविषये षष्ठीसप्तम्योरभेद इति वचनात्' कोऽसौ निरीहवृत्तिर्भवति ? स्वसंवेदनज्ञानी नित्यं सर्वकालं **कंखामणागदस्स य उदयस्स ण कुव्वदे णाणी** स एव ज्ञानी, अनागतस्य निदानबंधरूपभाविभोगोदयस्याकांक्षां न करोति। किं च विशेषः। य एव भोगोपभोगादिचेतनाचेतनसमस्तपरद्रव्यनिरालंवनो भावः परिणामः स एव स्वसंवेदनज्ञानगुणो भण्यते। तेन ज्ञानगुणावलंवनेन य एव पुरुषः ख्यातिपूजालाभभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिविभावरहितः सन् जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमितैश्च विषयसुखानंदवासनावासितं चित्तं मुक्त्वा शुद्धात्मभावनोत्थवीतरागपरमानंदसुखेन वासितं रंजितं मूर्छितं परिणतं तन्मयं तृप्तं रतं संतुष्टं चित्तं कृत्वा वर्तते स एव मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानाभेदरूपं परमार्थशब्दाभिधेयं साक्षान्मोक्षकारणभूतं शुद्धात्मसंवित्तिलक्षणं परमागमभाषया वीतरागधर्मध्यानशुक्लध्यानस्वरूपं

टीकार्थ– उत्पन्न हुये उदयभोगमें ज्ञानीकी नित्य वियोगबुद्धि और हेयबुद्धि है। (यहां गाथामें जो 'तस्स' शब्द है वह षष्ठीका एकवचन है जो कि 'उप्पणोदयभोगे' इस सप्तमीके एक वचनात्मक पदका विशेषण है किन्तु साधारण नियमानुसार विशेषण और विशेष्य में एक विभक्ति होनी चाहिए। श्रीजयसेनाचार्यजी कहते हैं कि षष्ठी और सप्तमीमें कहीं कहीं अभेद भी होता है।)

शंका– निरीहवृत्तिवाला कौन होता है ?

समाधान– स्वसंवेदनज्ञानी सर्वकालमें निरीहवृत्तिवाला होता है। वही ज्ञानी आगामीकालमें उदयमें आनेवाले निदानबंधरूप भविष्यकालीन भोगकी कांक्षा नहीं करता है।

इसका और स्पष्टीकरण यह है कि–

जो भोगोपभोगादिचेतनाचेतन सभी परद्रव्यमें निरालंवन भाव है उसे ही स्वसंवेदनज्ञानगुण कहा जाता है। इसलिये उस स्वसंवेदनज्ञानगुणके अवलंवन से जो पुरुष ख्यातिपूजा लाभभोगाकांक्षारूप निदानबंध आदि विभावभावसे रहित होकर तीन जगतमें और तीन कालमें भी मनवचनकायसे और कृतकारितअनुमोदनाद्वारा विषयसुखानंदवासनावासित चित्त को छोडकर शुद्धात्मानुभवसे उत्पन्न वीतराग परमानंदसुख की वासना से वासित-रंजित-मूर्च्छित-परिणत-तन्मय-तृप्त-रत-संतुष्ट चित्त होकर, जो वर्तता है–

अध्यात्मभाषासे

वह सम्यग्ज्ञानी ही मतिश्रुतअवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानके अभेदरूप परमार्थज्ञानवाले साक्षात् मोक्ष कारणभूत शुद्धात्मसंवित्तिलक्षणवाले स्वसंवेद्यशुद्धात्मस्वभावको परमसमरसीभावसे अनुभवता है।

आगमभाषासे

वह सम्यग्ज्ञानी ही वीतराग धर्मध्यानशुक्लध्यानस्वरूप स्वसंवेद्यशुद्धात्मस्वभावको परमसमरसी भावसे अनुभवता है।

स्वसंवेद्यशुद्धात्मपदं परमसमरसीभावेन अनुभवति न चान्यः। यादृशं परमात्मपदमनुभवति तादृशं परमात्मपदस्वरूपं मोक्षं लभते। कस्मात्? इति चेत् उपादानकारणसदृशं कार्यं भवति यतः कारणात् इति। एवं स्वसंवेदनज्ञानगुणं विना मत्यादिपंचज्ञानविकल्परहितमखंडपरमात्मपदं न लभ्यते इति संक्षेपव्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्राष्टकं गतं ॥ २२९ ॥

अथानंतरं तस्यैव ज्ञानगुणस्य चतुर्दशगाथापर्यंतं पुनरपि विशेषव्याख्यानं करोति। तद्यथा– ज्ञानी सर्वद्रव्येषु वीतरागत्वात्कर्मणा न लिप्यते सरागत्वादज्ञानी लिप्यते, इति प्रतिपादयति–

णाणी रागप्पजहो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।
णो लिप्पदि रजएण दु कद्दममज्झे जहा कणयं ॥ २३० ॥

॥ आ. ख्या. २१८ ॥

अण्णाणी पुण रत्तो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।
लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा लोहं ॥ २३१ ॥

॥ आ. ख्या. २१९ ॥

और अन्य जीव (अज्ञानी जीव) अपने चैतन्यस्वभावको नहीं अनुभवता है [याने मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानवर्ती जीव चैतन्य स्वभावको नहीं अनुभवता है।]

जिस प्रकार जो स्वचैतन्य स्वभावको (परमात्मपदको) अनुभवता है, वह उसी प्रकार परमात्मपदस्वरूप मोक्ष को प्राप्त होता है। क्योंकि उपादान के सदृश (समान) ही कार्य होता है ॥ २२९ ॥

इस प्रकार स्वसंवेदनज्ञानगुणके (अपने चैतन्य स्वभावकी अनुभूतिके) विना मत्यादि पांच ज्ञानमय विकल्परहित अखंड परमात्मपद प्राप्त नहीं होता है। इसका संक्षेपमें कथन करनेकी मुख्यतासे आठ गाथायें पूर्ण हुअी।

इसके अनंतर उस ही ज्ञानगुणका १४ गाथाओंतक फिरसे विशेष व्याख्यान करते हैं। जैसे– ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव) सर्व द्रव्योंमें वीतरागपनासे वर्तनेसे कर्मोसे लिप्त नहीं होता है और अज्ञानी (मिथ्यात्वसासादानमिश्रगुणस्थानवर्ती जीव) सरागपनासे वर्तनेसे कर्मोंसे लिप्त होता है, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [जहा] जैसे [**कद्दममज्झे कणयं णो लिप्पदि**] कीचड़मे पड़ा हुआ सुवर्ण कीचड़से लिप्त नहीं होता है वैसे [**सव्वदव्वेसु**] सभी द्रव्योंमें [**रागप्पजहो ज्ञानी**] रागका त्याग किया हुआ ज्ञानी [**कम्ममज्झगदो दु**] कर्मोंके मध्यमें रहते हुअे भी [**रजएण**] कर्मरजसे लिप्त नहीं होता है। [**पुण दु**] और [**जह**] जैसे [**कद्दममज्झे लोहं लिप्पदि**] कीचड़में लोहको काई लग जाती है वैसे [**अण्णाणी**] अज्ञानी [**सव्वदव्वेसु**] सभी द्रव्योंमें [**रत्तो**] रागी होनेसे [**कम्ममज्झगदो**] कर्मोंके मध्यमें रहते हुअे [**कम्मरएण**] कर्मरजसे [**लिप्पदि**] लिप्त होता है।

हर्षविषादादिविकल्पोपाधिरहितः स्वसंवेदनज्ञानी सर्वद्रव्येषु रागादिपरित्यागशीलो यतः कर्दममध्यगतं कनकमिव कर्मरजसा न लिप्यते इति। अज्ञानी पुनः स्वसंवेदनज्ञानाभावात् सर्वपंचेंद्रियविषयादिपरद्रव्ये रक्तः कांक्षितो मूर्छितो मोहितो भवति यतः कारणात्, ततः कर्दममध्यलोहमिव कर्मरजसा बध्यते इति ॥ २३०, २३१ ॥

अथ सकलकर्मनिर्जरा नास्ति कथं मोक्षो भविष्यतीति प्रश्ने परिहारमाह–

णागफणीए मूलं णाइणितोएण गब्भणागेण ।

णागं होइ सुवण्णं धम्मंतं भत्त्थवाएण ॥ २३२ ॥

नागफणी नामौषधी तस्या मूलं। नागिनी हस्तिनी तस्यास्तोयं मूत्रं। गर्भनागं सिंदूरद्रव्यं। नागं सीसकं। अनेन प्रकारेण पुण्योदये सति सुवर्णं भवति न च पुण्याभावे। कथंभूतः सन्? भस्त्रया धम्यमानमिति दृष्टांत गाथा गता ॥ २३२ ॥

अथ दार्ष्टांतमाह–

कम्मं हवेइ किट्टं रागादी कालिया अह विभाओ ।

सम्मत्तणाणचरणं परमोसहमिदि वियाणाहि ॥ २३३ ॥

टीकार्थ– जैसे कीचडमें पडा हुआ सुवर्ण कीचडसे लिप्त नहीं होता है, वैसे हर्षविषादादिविकल्प की उपाधि से रहित स्वसंवेदनज्ञानी (याने स्वानुभूतिवाला चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव रागादिपरित्यागशील होनेसे कर्मरजसे लिप्त नहीं होता है। और अज्ञानी (मिथ्यात्वसासादानमिश्रगुणस्थानवर्ती) स्वसंवेदनज्ञानसे याने स्वानुभूतिसे रहित होनेसे सभी पंचेंद्रियविषयादिपरद्रव्योंमें आसक्त–मूर्च्छित अथवा मोहित होता है इसलिये जैसे लोहको कीचड़मे काई लगती है, वैसे यह अज्ञानी जीव कर्मरजसे लिप्त होता है ॥ २३०, २३१ ॥

सकल कर्मकी निर्जरा नहीं हो तो मोक्ष कैसे होगा? इस प्रश्नका उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**णागफणीए मूलं**] नागफणीका जड़ [**णाइणि तोएण**] हथिनी का मूत्र [**गब्भणागेण**] सिंदूरद्रव्य-गर्भनाग [**णागं**] सीसा धातु [**भत्त्थवाएण धम्मंतं**] इनको धोंकनीसे अग्निपर तपानेपर [**सुवण्णं होइ**] सुवर्ण होता है।

टीकार्थ– नागफणी नामक औषधीके जड़, हथिनीका मूत्र, सिंदूरद्रव्य और सीसा इनको धोंकनीसे अग्निपर तपानेपर और पुण्योदय होनेपर सुवर्ण होता है और यदि पुण्यका अभाव होगा तो सुवर्ण नहीं होता है। यह दृष्टांत गाथा पूर्ण हुअी ॥ २३२ ॥

अब दार्ष्टांत कहते हैं–

गाथार्थ– [**अह**] अब [**कम्मं**] कर्म [**किट्टं**] कीट [**हवेइ**] है [**रागादी कालिया**

णाणं हवेइ अग्गी तवयरणं भत्तली समक्खादो ।
जीवो हवेइ लोहं धमियव्वो परमजोईहिं ॥ २३४ ॥

द्रव्यकर्म किट्टसंज्ञं भवति रागादिविभावपरिणामाः कालिकासंज्ञा ज्ञातव्याः सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्रत्रयं भेदाभेदरूपं परमौषधं जानीहि इति ।

वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूपं ध्यानमग्निर्भवति । द्वादशविधतपश्चरणं भस्त्रा ज्ञातव्या । आसन्नभव्यजीवो लोहं भवति । स च भव्यजीवः पूर्वोक्तसम्यक्त्वाद्यौषधध्यानाग्निभ्यां संयोगं कृत्वा द्वादशविधतपश्चरणभस्त्रया परमयोगिभिः धमितव्यो ध्यातव्यः । इत्यनेन प्रकारेण यथा सुवर्णं भवति तथा मोक्षो भवतीति संदेहो न कर्तव्यो भट्टचार्वाकमतानुसारिभिरिति ॥ २३३, २३४ ॥

अथ ज्ञानिनः शंखदृष्टांतेन बंधाभावं दर्शयति–

भुंजंतस्सवि विविहे सच्चितताचित्तमिस्सिये दव्वे ।
संखस्स सेदभावो ण वि सक्कदि किण्णगो काउं ॥ २३५ ॥

॥ आ. ख्या. २२० ॥

विभाओ] रागादि विभावपरिणाम कालिका है [**सम्मत्तणाणचरणं**] सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र [**परमोसहं**] परम औषधी है [**इदि**] ऐसा [**वियाणाहि**] जानो । [**झाणं**] ध्यान [**अग्गी**] अग्नि [**हवेइ**] है [**तवयरणं भत्तली**] तपश्चरण भस्त्रा है [**जीवो लोहं हवेइ**] जीव लोह है यह [**परमजोईहिं**] परम योगियोंके द्वारा [**धमियव्वो**] धमना चाहिये, [**समक्खादो**] ऐसा सम्यक्कथन है ।

टीकार्थ– द्रव्यकर्म किट्ट है, रागादिविभावपरिणाम कालिका है ऐसा जानना चाहिये, भेदाभेदरत्नत्रयरूप सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रय परम औषधि है, ऐसा जानो । वीतरागनिर्विकल्प-समाधि (स्वानुभूति) यह ध्यान ही अग्नि है । बारह प्रकारका तपश्चरण धोंकनी (भस्त्रा) है, ऐसा जानना चाहिये । आसन्नभव्यजीव लोह है । और उस भव्यजीव का पूर्वोक्त सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्ररूप औषधि और ध्यानाग्निके साथ संयोग करके १२ प्रकारके तपश्चरणरूप धोंकनीसे परमयोगियों के द्वारा उसका धमनरूप ध्यान करना योग्य है । इस प्रकारसे जैसे सुवर्ण बन जाता है वैसे मोक्ष होता है इसमें भट्टचार्वाकमतानुसारियोंके द्वारा संदेह करना योग्य नहीं है । ॥ २३३, २३४ ॥

अब, शंख के दृष्टांतसे ज्ञानीको (चतुर्थादिगुणस्थानवर्तीको) बंध नहीं होता है, यह दिखाते हैं–

गाथार्थ– जैसे शंख [**विविहे**] अनेक प्रकारके [**सचित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे**] सचित्त, अचित्त और मिश्रित द्रव्योंको [**भुंजंतस्स वि**] भक्षण करता है तो भी [**संखस्य**] उस शंखका

तह णाणिस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे ।
भुंजंतस्स वि णाणं ण सक्कमण्णाणदं णेदुं ॥ २३६ ॥

॥ आ. ख्या. २२१ ॥

जइया स एव संखो सेदसहावं तयं पजहिदूण ।
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे ॥ २३७ ॥

॥ आ. ख्या. २२२ ॥

जह संखो पोग्गलदो जइया सुक्कत्तणं पजहिदूण ।
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे ॥ २३८ ॥

तह णाणी वि हु जइया णाणसहावं तयं पजहिऊण ।
अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणदं गच्छे ॥ २३९ ॥

॥ आ. ख्या. २२३ ॥

यथा सजीवस्य शंखस्य श्वेतभावः कृष्णीकर्तुं न शक्यते । किं कुर्वाणस्यापि ? भुंजानस्यापि । कानि ? कर्मतापन्नानि सचित्ताचित्तमिश्राणि विविधद्रव्याणीति व्यतिरेकदृष्टांतगाथा गता । तथा तेनैव प्रकारेण ज्ञानिनो जीवस्य वीतरागस्वसंवेदनलक्षणभेदज्ञानं रागत्वमज्ञानत्वं

[सेदभावो] सफेदपना [किण्हगो काउं] काला करनेको [ण वि सक्कदि] कोओी भी समर्थ नहीं है, [तह] उसी तरह [विविहे] अनेक प्रकारके [सचित्ताचित्तामिस्सिए] सचित्त, अचित्त और मिश्र [दव्वे] द्रव्योंको [भुंजंतस्स वि] भोगनेवाले [णाणिस्स] ज्ञानीके [णाणं वि] ज्ञानके भी [अण्णाणदं णेदुं] अज्ञानपना करने को [ण सक्कं] किसी की भी सामर्थ्य नहीं है। लेकिन [जइया] जब [स एव संखो] वही शंख [तयं सेदसहावं पजहिदूण] अपने उस श्वेतस्वभावको छोडकर [किण्हभावं] कृष्णभावको [गच्छेज्ज] प्राप्त होता है [तइया] तब [सुक्कत्तणं] सफेदपन को [पजहे] छोड देता है। [जह] जैसे [पोग्गलदो संखो] पुद्गलमय शंख [जइया] जिससमय [सुक्कत्तणं पजहिदूण] सफेदपनको छोडकर [किण्हभावं] कृष्णभावको [गच्छेज्ज] प्राप्त होता है [तइया] उस समय [सुक्कत्तणं पजहे] श्वेतपना छोड देता है। [तह] वैसे [जइया] जिससमय [णाणी वि] ज्ञानी भी [हु] निश्चयसे [तयं णाणसहावं] अपने उस ज्ञानस्वभावको [पजहिऊण] छोडकर [अण्णाणेण] अज्ञानसे [परिणदो] परिणत होता है [तइया] उसी समय [अण्णाणदं] अज्ञानपने को [गच्छे] प्राप्त होता है।

टीकार्थ— जैसे सजीव शंख अनेक प्रकारके सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्योंको भक्षण करता है तो भी उस शंखके सफेदपनाको काला करनेके लिए कोओी समर्थ नहीं है। यह व्यतिरेक दृष्टांतवाली गाथाका अर्थ है। उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानी जीवके वीतरागस्वसंवेदनलक्षणवाले भेदज्ञानको रागमय और अज्ञानमय करने के लिये कोओी समर्थ नहीं है क्योंकि स्वभावको

नेतुं न शक्यते । कस्मात् ? स्वभावस्यान्यथाकर्तुमशक्यत्वात् । किं कुर्वाणस्यापि ? भुंजानस्यापि । कानि ? स्वकीयगुणस्थानावस्थायोग्यानि सचित्ताचित्तमिश्राणि विविधद्रव्याणि । ततः कारणात् चिरंतनबद्धकर्मनिर्जरैव भवति । नवतरस्य च संवर इति व्यतिरेकदार्ष्टांतगाथा गता । अन्वयव्यतिरेकशब्देन सर्वत्र विधिनिषेधौ ज्ञातव्यौ इति । यथा यदा स एव पूर्वोक्तः सजीवशंखः कृष्णपरद्रव्यलेपवशात्, अंतरंगस्वकीयोपादानपरिणामाधीनः सन् श्वेतस्वभावत्वं विहाय कृष्णभावं गच्छेत् तदा शुक्लत्वं त्यजति । इत्यन्वयदृष्टांतगाथा गता । तथैव च यथा निर्जीवशंखः कृष्णपरद्रव्यलेपवशात् अंतरंगोपादानपरिणामाधीनः सन् श्वेतस्वभावत्वं विहाय कृष्णभावं गच्छेत् तदा शुक्लत्वं त्यजति । इति निर्जीवशंखनिमित्तं द्वितीयान्वयदृष्टांतगाथा गता । तथा तेनैव प्रकारेण ज्ञानी जीवोऽपि हि स्फुटं स्वकीयप्रज्ञापराधेन वीतरागज्ञानस्वभावत्वं विहाय मिथ्यात्वरागाद्यज्ञानभावेन परिणतो भवति तदा स्वस्वभावच्युतः सन्नज्ञानत्वं गच्छेत् । तस्य संवरपूर्विका निर्जरा नास्तीति भावार्थः– इत्यन्वयदार्ष्टांतगाथा गता ।। २३५, २३६, २३७, २३८, २३९ ।।

अन्यथा करने के लिये शक्य नहीं है ।

शंका– क्या करनेवाले को भी अन्यथा करने के लिए शक्य नही है ?

समाधान– चतुर्थादिगुणस्थानवाले स्वकीयगुणस्थान के अवस्थाको योग्य सचित्त, अचित्त, मिश्ररूप विविध द्रव्योंको भोगनेवाले को भी अपने स्वानुभूतिमय भेदज्ञानको अज्ञानमय करनेके लिये किसी को भी शक्य नहीं है ।

इस कारणसे पहले बंधे कर्मोंकी निर्जरा ही होती है । और नवीन कर्मोंका संवर होता है । यह व्यतिरेक दार्ष्टांत गाथाका अर्थ है । अन्वयव्यतिरेक शब्दसे सर्वत्र विधिनिषेध जानना चाहिये ।

जैसे जिस समय वह ही पूर्वोक्त सजीव शंख कृष्णरूप परद्रव्यके लेपके वशसे अंतरंगस्वकीय उपादानरूप परिणामके आधीन होकर सफेदपनाको छोडकर कालेपनको प्राप्त होता है उस समय सफेदपनको छोड देता है। इसप्रकार निर्जीव शंख का निमित्त लेकर कही हुई अन्वयरूप दृष्टांत रूप गाथा हुई ।

और उस ही प्रकार जैसे निर्जीव शंख कृष्णपरद्रव्यके लेपके वशसे अंतरंग उपादानपरिणामके आधीन होकर सफेदपना को छोडकर कालेपनको प्राप्त होता है तब सफेदपना छोड देता है । यह निर्जीव शंखनिमित्तवाली दूसरी अन्वयदृष्टांतवाली गाथाका अर्थ है ।

वैसे उसही प्रकारसे ज्ञानी जीव भी निश्चयसे स्वकीयप्रज्ञाके अपराधसे वीतरागज्ञानस्वभावत्वको छोडकर मिथ्यात्वरागादि अज्ञानभावसे परिणत होता है, तब स्वस्थभावसे च्युत होकर अज्ञानपना को प्राप्त होता है । उस अज्ञानी जीवकी संवरपूर्वक निर्जरा नहीं है । ऐसा भावार्थ है । इसप्रकार अन्वयदार्ष्टांत गाथा समाप्त हुई ।। २३५, २३६, २३७, २३८, २३९ ।।

अथ सरागपरिणामेन बंधः, तथैव वीतरागपरिणामेन मोक्षो भवतीति दृष्टांतदार्ष्टांताभ्यां समर्थयति–

पुरिसो जह को वि इह वित्तिणिमित्तं तु सेवदे रायं ।
तो सो वि देदि राया विविहे भोगे सुहुप्पाए ।। २४० ।।

।। आ. ख्या. २२४ ।।

एमेव जीवपुरिसो कम्मरयं सेवदे सुहणिमित्तं ।
तो सो वि देदि कम्मो विविहे भोगे सुहुप्पादे ।। २४१ ।।

।। आ. ख्या. २२५ ।।

जह पुण सो चिय पुरिसो वित्तिणिमित्तं ण सेवदे रायं ।
तो सो ण देदि राया विविहे भोगे सुहुप्पादे ।। २४२ ।।

।। आ. ख्या. २२६ ।।

एमेव सम्मदिट्ठी विसयत्थं सेवदे ण कम्मरयं ।
तो सो ण देदि कम्मो विविहे भोगे सुहुप्पादे ।। २४३ ।।

।। आ. ख्या. २२७ ।।

यथा कश्चित्पुरुषः, वृत्तिनिमित्तं राजानं सेवते ततः सोऽपि राजा तस्मै सेवकाय ददाति, कान् ? विविधसुखोत्पादकान् भोगान् इत्यज्ञानिजीवविषयेऽन्वयदृष्टांतगाथा गता ।

अब, सरागपरिणामसे बंध होता है और वीतराग परिणामसे मोक्ष होता है, इसका दृष्टांतदार्ष्टांतसे समर्थन करते हैं–

गाथार्थ– [जह] जिस प्रकार [इह] इस लोकमें [को वि पुरिसो] कोओ पुरुष [वित्तिणिमित्तं तु] आजीविका के लिये [रायं] राजा की [सेवदे] सेवा करता है [तो] तो [सो वि राया] वह राजा भी उसे [सुहुप्पादे] सुख देनेके लिये [विविहे] नाना प्रकारके [भोगे] भोग [देदि] देता है [एमेव] इसी प्रकार [जीवपुरिसो] जीवपुरुष [सुहणिमित्तं] सुखके लिए [कम्मरयं] कर्मरज की [सेवदे] सेवा करता है [तो] तो [सो कम्मो वि] वह कर्म भी [सुहुप्पादे] सुख देनेवाले [विविहे] नाना प्रकारके [भोगे] भोग [देदि] देता है [पुण] पुनः [जह] जैसे [सो चिय पुरिसो] वही पुरुष [वित्तिणिमित्तं] आजीविका के लिए [रायं] राजा की [ण सेवदे] सेवा नहीं करता है [तो] तो [सो राया] वह राजा [सुहुप्पादे] सुख देनेवाले [विविहे] नाना प्रकारके [भोगे] भोग [ण देदि] उसको नहीं देता है [एमेव] इसी प्रकार [सम्मदिट्ठी] सम्यग्दृष्टि [विसयत्थं] विषयोंके लिए [कम्मरयं] कर्मरज का [ण सेवदे] सेवन नहीं करता है [तो] तो [सो कम्मो] वह कर्म उसे [सुहुप्पादे] सुख देनेवाले [विविहे] नाना प्रकारके [भोगे] भोगोंको [ण देदि] नहीं देता है ।

टीकार्थ– जैसे कोओ पुरुष आजीविका के लिये राजाकी सेवा करता है, इसलिये वह

एवमेवाज्ञानी जीवपुरुषः शुद्धात्मोत्थसुखात्प्रच्युतः सन्नुदयागतं कर्मरजः सेवते विषयसुखनिमित्तं ततः सोऽपि पूर्वोपार्जितपुण्यकर्म राजा ददाति, कान्? विषयसुखोत्पादकान् भोगाकांक्षारूपान् शुद्धात्मभावानां विनाशकान् रागादिपरिणामान् इति। अथवा द्वितीयव्याख्यानं-कोऽपि जीवोऽभिनवपुण्यकर्मनिमित्तं भोगाऽऽकांक्षानिदानरूपेण शुभकर्मानुष्ठानं करोति सोऽपि पापानुबंधिपुण्यराजा कालांतरे भोगान् ददाति। तेऽपि निदानबंधेन प्राप्ता भोगा रावणादिवन्नारकादिदुःखपरंपरां प्रापयन्तीति भावार्थः। एवमज्ञानिजीवं प्रत्यन्वयदृष्टांतगाथा गता। यथा स चैव पूर्वोक्तपुरुषो वृत्तिनिमित्तं न सेवते राजानं। ततः सोऽपि राजा तस्मै न ददाति, कान्? विविधान् सुखोत्पादकान् भोगान् इति ज्ञानिजीवविषये व्यतिरेकदृष्टांतगाथा गता। एवमेव च सम्यग्दृष्टिर्जीवः पूर्वोपार्जितमुदयागतं कर्मरजः शुद्धात्मभावनोत्थवीतरागसुखानंदात्प्रच्युतो भूत्वा विषयसुखार्थं, उपादेयबुद्ध्या न सेवते ततस्तदपि कर्म न ददाति, कान्? विविधविषयसुखोत्पादकान् भोगाकांक्षारूपान् शुद्धात्मभावनाविनाशकान् रागादिपरिणामानिति।

राजा भी उस पुरुषको (सेवकको) विविध सुखोत्पादक भोगोंको देता है। यह अज्ञानी जीव के विषयमें अन्वयदृष्टांत गाथा का अर्थ है।

उसी प्रकार अज्ञानी जीव शुद्धात्मोत्थसुखसे च्युत होकर उदयागत कर्मरज को विषयसुखके लिए सेवन करता है इसलिये पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मरूप राजा भी विषयसुखोत्पादक भोगाकांक्षानिदानवाले और शुद्धात्माके अनुभवका नाश करनेवाले रागादिपरिणामोंको देता है। अथवा दूसरी पद्धतिसे व्याख्यान यह है कि, कोई जीव नूतन पुण्यकर्म के लिये भोगाकांक्षानिदानरूपसे शुभकर्म का अनुष्ठान करता है, वह भी पापानुबंधीपुण्यरूप राजा कालांतरमें भोगोंको देता है। और वे भी निदानबंधसे प्राप्त हुए भोग रावणके समान नारकादि दुःखमय संसारभ्रमणको प्राप्त कराते हैं। ऐसा इसका भावार्थ है। इस प्रकार अज्ञानी जीव के प्रति अन्वयदृष्टांत गाथा पूर्ण हुओ।

और जैसे वही पूर्वोक्त पुरुष आजीविकाके लिये राजाकी सेवा नहीं करता है। इसलिये वह राजा भी उस पुरुषको अनेक प्रकारके सुखोत्पादक भोगोंको नहीं देता है। इसप्रकार ज्ञानी जीवके विषयमें व्यतिरेक दृष्टांतवाली गाथाका अर्थ समाप्त हुआ।

और इस ही प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव पूर्व उपार्जित उदयागत कर्म रज को शुद्धात्मानुभवसे उत्पन्न होनेवाले वीतरागसुखानंद से च्युत होकर विषयसुखके लिये उपादेय बुद्धिसे सेवन नहीं करता है। इसलिये वह कर्म भी उस सम्यग्दृष्टिको विविधविषयसुखोत्पादक भोगाकांक्षारूप और शुद्धात्मानुभवका नाश करनेवाले रागादिपरिणामोंको नहीं देता है। अथवा दूसरा व्याख्यान यह है कि, कोओ भी सम्यग्दृष्टि जीव (एवंभूतनयकी अपेक्षासे बुद्धिपूर्वक) निर्विकल्पसमाधि (याने शुद्धात्मानुभव) के अभावसे– अशक्य अनुष्ठान होनेसे विषयकषाय से दूर रहनेके लिये यद्यपि व्रतशीलदानपूजादिशुभकर्म का अनुष्ठान करता है तथापि भोगाकांक्षारूपनिदानबंध से उस पुण्यकर्मका अनुष्ठान नहीं करता है।

अथवा द्वितीयव्याख्यानं-कोऽपि सम्यग्दृष्टिर्जीवो निर्विकल्पसमाधेरभावात्, अशक्यानुष्ठानेन विषयकषायवंचनार्थं यद्यपि व्रतशीलदानपूजादिशुभकर्मानुष्ठानं करोति तथापि भोगाकांक्षारूपनिदानबंधेन तत्पुण्यकर्मानुष्ठानं न सेवते। तदपि पुण्यानुबंधिपुण्यकर्म भवांतरे तीर्थंकरचक्रवर्तीबलदेवाद्यभ्युदयरूपेणोदयागतमपि पूर्वभवभावितभेदविज्ञानवासनाबलेन शुद्धात्मभावनाविनाशकान् विषयसुखोत्पादकान् भोगाकांक्षानिदानरूपान् रागादिपरिणामान्न ददाति भरतेश्वरादीनामिव। इति संज्ञानिजीवं प्रति व्यतिरेकदार्ष्टांतगाथा गता। एवं मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानाभेदरूपं परमार्थशब्दवाच्यं साक्षान्मोक्षकारणभूतं शुद्धात्मसंवित्तिलक्षणं स्वसंवेद्यं संवरपूर्विकाया निर्जराया उपादानकारणं पूर्वं यद्व्याख्यातं परमात्मपदं, तत्पदं येन निर्विकारस्वसंवेदनलक्षणभेदविज्ञानगुणेन विना न लभ्यते तस्यैव भेदविज्ञानगुणस्य पुनरपि विशेषव्याख्यानरूपेण चतुर्दशसूत्राणि गतानि ॥ २४०, २४१, २४२, २४३, ॥

इत ऊर्ध्वं निश्शंकाद्यष्टगुणकथनं गाथानवकपर्यंतं व्याख्यानं करोति। तत्र तावत् प्रथमगाथायां निजपरमात्मपदार्थभावनोत्पन्नसुखामृतरसास्वादतृप्ताः संतः सम्यग्दृष्टयो घोरोपसर्गेऽपि सप्तभयरहितत्त्वेन निर्विकारस्वानुभवस्वरूपं स्वस्वभावं न त्यजन्तीति कथयति—

और वह भी पुण्यानुबंधिपुण्यकर्म भवांतरमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेवादि अभ्युदयरूपसे उदयमें आते हैं तो भी पूर्वभवमें भावित जो भेदविज्ञानकी वासना है उसके (उस स्वानुभवके) बलसे शुद्धात्मानुभवका नाश करनेवाले विषयसुखोत्पादकभोगाकांक्षानिदानरूप रागादि परिणामोंको नहीं देता है, जैसे भरतचक्रवर्ती अव्रत अवस्थामें गृहमें भी बैरागी थे यानें अव्रत अवस्थामें गृहमें भी रागी नहीं थे। इस तरह सम्यग्ज्ञानी जीवके प्रति व्यतिरेकदार्ष्टांतका कथन करनेवाली गाथा पूर्ण हुओ।

इसप्रकार मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानका अभेदरूप, जो परमार्थ शब्दसे वाच्य है, वह मोक्षके कारणभूत ऐसे शुद्धात्मानुभवके लक्षणवाला स्वसंवेद्य और संवरपूर्वक निर्जराका उपादानकारणवाला जो पहले कहा गया परमात्मपद है; वह परमात्मपद जिस निर्विकारस्वसंवेदनलक्षणवाले भेदविज्ञान पर्यायके विना प्राप्त नहीं किया जाता है, उस ही भेदविज्ञानपर्यायका फिरसे विशेष व्याख्यान करनेवाली १४ गाथायें पूर्ण हुओ ॥ २४०, २४१, २४२, २४३ ॥

इसके आगे नव गाथापर्यंत निःशंकितादि आठ गुणोंका वर्णन करते हैं। इसमें भी सबसे पहली गाथामें निजपरमात्मपदार्थके अनुभवमें उत्पन्न होनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव घोरोपसर्ग के आनेपर भी सात भयोंसे रहित होनेसे निर्विकारस्वानुभवस्वरूप स्वस्वभावको नहीं छोड देते हैं, ऐसा कहते हैं—

गाथार्थ— [**सम्मादिट्ठी जीवा**] सम्यग्दृष्टि जीव [**णिस्संका**] निःशंक [**होंति**] होते हैं [**तेण**] इसलिये [**णिब्भया**] निर्भय हैं [**जह्मा**] क्योंकि [**सत्तभयविप्पमुक्का**] सप्तभयसे रहित हैं [**तह्मा**] इसलिये [**णिस्संका दु**] निःशंक ही हैं।

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण ।
सत्तभयविप्पमुक्का जह्मा तह्मा दु णिस्संका ॥ २४४ ॥

॥ आ. ख्या. २२८ ॥

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति सम्यग्दृष्टयो जीवाः शुद्धबुद्धैकस्वभावनिर्दोषपरमात्माराधनं कुर्वाणाः संतो निश्शंका भवंति यस्मात् कारणात् । **णिब्भया तेण** तेन कारणेन निर्भया भवंति **सत्तभयविप्पमुक्का जह्मा** यस्मादेव करणाद् इहलोक-परलोक-अत्राण-अगुप्ति-मरण-वेदना-आकस्मिकसंज्ञितसप्तभयविप्रमुक्ता भवंति **तह्मा दु णिस्संका** तस्मादेव कारणात् घोरपरीषहोपसर्गे प्राप्तेऽपि निश्शंकाः शुद्धात्मस्वरूपे निष्कंपाः संतः शुद्धात्मभावनोत्थवीतरागसुखानंदतृप्ताश्च परमात्मस्वरूपान्न प्रच्यवंते पांडवादिवत् ॥ २४४ ॥

अथानंतरं वीतरागसम्यग्दृष्टेर्निश्शंकाद्यष्टगुणाः नवतरबंधं निवारयन्ति ततः कारणाद्बंधो नास्ति किंतु संवरपूर्विका निर्जरैव भवतीति प्रतिपादयति–

जो चत्तारिवि पाए छिंददि ते कम्ममोहबाधकरे ।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४५ ॥

॥ आ. ख्या. २२९ ॥

जो चत्तारिवि पाए छिंददि ते कम्ममोहबाधकरे यः कर्ता मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगलक्षणान् संसारवृक्षस्य मूलभूतान् निष्कर्मात्मतत्त्वविलक्षणत्वेन कर्मकरान् निर्मोहात्मद्रव्य-

---

टीकार्थ– सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धबुद्धएकस्वभाववाले निर्दोषपरमात्माकी आराधना करनेवाले होनेसे निःशंक हैं । इसलिये वे निर्भय हैं । जिस ही कारणसे इसलोकका भय, परलोकभय, अत्राण (अरक्षा) का भय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय और आकस्मिकभय नाम के इन सात भयोंसे रहित होते हैं । इसलिये ही वे घोर परिषह, उपसर्ग आनेपर भी पांडवादिके समान निःशंक होते हुए अपने शुद्धात्मस्वभावमें निष्कंप रहकर और शुद्धात्मानुभवसे उत्पन्न होनेवाले वीतरागसुखानंदमें तृप्त रहकर परमात्मस्वभावसे च्युत नहीं होते हैं ॥ २४४ ॥

अब, आगे कहते हैं कि, वीतरागसम्यग्दृष्टि के (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती के) निश्शंकादि आठ गुण नवीन कर्मोंका बंध निवारण करते हैं, इस कारणसे बंध नहीं होता है किंतु संवरपूर्वक निर्जरा ही होती है–

गाथार्थ– [**जो**] जो कोई [**कम्ममोहबाधकरे**] कर्मबंध करनेवाला मोहभाव और सुखमें बाधा करनेवाले [**चत्तारिवि**] मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग है [**ते पाए**] उन ४ पादोंको [**छिंददि**] छेदता है [**सो चेदा**] वह आत्मा [**णिस्संको सम्मादिट्ठी**] निश्शंक सम्यग्दृष्टि [**मुणेदव्वो**] जानना चाहिये ।

टीकार्थ– जो मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग लक्षणवाले, संसारवृक्षके जड़वाले, निष्कर्म आत्मतत्त्वस्वभावसे विलक्षणवाले कर्मोंको करनेवाले, निर्मोह आत्मद्रव्यसे भिन्नरूपसे रहनेवाले मोहभावोंको करनेवाले अथवा अव्याबाधसुखादिगुणलक्षणवाले परमात्मपदार्थसे भिन्न

पृथक्त्वेन मोहकरान् अव्याबाधसुखादिगुणलक्षणपरमात्मपदार्थभिन्नत्वेन वा बाधाकरांस्तान् आगमप्रसिद्धांश्चतुरः पादान् शुद्धात्मभावनाविषये निश्शंको भूत्वा स्वसंवेदनज्ञानखड्गेन छिनत्ति **सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स चेतयिता आत्मा सम्यग्दृष्टिर्निश्शंको मंतव्यः तस्य तु शुद्धात्मभावनाविषये शंकाकृतो नास्ति बंधः, किंतु पूर्वबद्धकर्मणो निश्चितं निर्जरैव भवति ॥ २४५ ॥

जो ण करेदि दु कंखं कम्मफलेसु तह य सव्वधम्मेसु ।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४६ ॥

॥ आ. ख्या. २३० ॥

जो ण करेदि दु कंखं कम्मफलेसु तह य सव्वधम्मेसु यः कर्ता शुद्धात्मभावनासंजातपरमानंदसुखे तृप्तो भूत्वा कांक्षां वांछां न करोति । केषु ? पंचेंद्रियविषयसुखभूतेषु कर्मफलेषु तथैव च समस्तवस्तुधर्मेषु स्वभावेषु अथवा विषयसुखकारणभूतेषु नानाप्रकारपुण्यरूपधर्मेषु अथवा इहलोकपरलोकाकांक्षारूपसमस्तपरसमयप्रणीतकुधर्मेषु च । **सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स चेतयिता आत्मा सम्यग्दृष्टिः संसारसुखे निष्कांक्षितो मंतव्यः । तस्य विषयसुखकांक्षाकृतो नास्ति बंधः किंतु पूर्वसंचितकर्मणो निर्जरैव भवति ॥ २४६ ॥

जो ण करेदि दुगुंछं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं ।
सो खलु णिव्विदिगिछो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४७ ॥

॥ आ. ख्या. २३१ ॥

होने के कारण बाधा करनेवाले; उन आगमप्रसिद्ध मिथ्यात्वादि चार पादोंको शुद्धात्मानुभवके विषयमें निःशंक होकर स्वसंवेदनज्ञानरूप तलवारसे छेदता है ।

वह जाननेवाला आत्मा निःशंक सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये । उसको शुद्धात्मानुभवके विषयमें शंकाकृत बंध नहीं है, किंतु पूर्वबद्धकर्मोंकी नियमसे निर्जरा ही होती है ॥ २४५ ॥

गाथार्थ– [**जो**] जो [**चेदा**] आत्मा [**कम्मफलेसु**] कर्मोंके फलोंमें [**तह य**] तथा [**सव्वधम्मेसु**] सभी धर्मोंमें [**कंखं**] कांक्षा-इच्छा [**ण करेदि**] नहीं करता है [**सो**] वह [**दु**] ही [**णिक्कंखो**] निःकांक्ष [**सम्मादिट्ठी**] सम्यग्दृष्टि [**मुणेदव्वो**] जानना चाहिये ।

टीकार्थ– जो शुद्धात्मानुभवसे उत्पन्न होनेवाले परमानंदसुखसे तृप्त होकर पंचेंद्रियविषयसुखभूत कर्मोंके फलों की और उसीप्रकार ही सभी वस्तुओंके धर्मोंमें या स्वभावोंमें अथवा विषयसुखको कारणभूत नानाप्रकारके पुण्यरूप धर्मोंमें अथवा इहलोकपरलोकाकांक्षारूप सभी मिथ्यादृष्टि-परसमयमें कथित कुधर्मोकी वांछा-कांक्षा नहीं करता है । वह जाननेवाला सम्यग्दृष्टि आत्मा संसारसुखमें निष्कांक्षित है, ऐसा जानना चाहिये । उसको विषयसुखकी कांक्षा से उत्पन्न होनेवाले बंध नहीं होते हैं, किंतु पूर्वसंचित कर्मोंकी निर्जरा ही होती हैं ॥ २४६ ॥

जो ण करेदि दुगुंछं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं यश्चेतयिता आत्मा परमात्मतत्त्वभावनाबलेन जुगुप्सां निंदां दोषं द्वेषं विचिकित्सान्न करोति, केषां संबंधित्वेन ? सर्वेषामेव वस्तुधर्माणां, स्वभावानां, दुर्गंधादिविषये वा **सो खलु णिव्विदिगिंछो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स सम्यग्दृष्टिः निर्विचिकित्सः खलु स्फुटं मंतव्यो ज्ञातव्यः तस्य च परद्रव्यद्वेषनिमित्तो नास्ति बंधः, किंतु पूर्वसंचितकर्मणो निर्जरैव भवति ॥ २४७ ॥

जो हवदि असंमूढो चेदा सव्वेसु कम्मभावेसु ।
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४८ ॥

॥ आ. ख्या. २३२ ॥

जो हवदि असंमूढो चेदा सव्वेसु कम्मभावेसु यश्चेतयिता आत्मा स्वकीयशुद्धात्मनि श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपेण निश्चयरत्नत्रयलक्षणभावनाबलेन शुभाशुभकर्मजनितपरिणामरूपे बहिर्विषये सर्वथाऽसंमूढो भवति **सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स खलु स्फुटं सम्यग्दृष्टिरमूढदृष्टिर्मन्तव्यो ज्ञातव्यः । तस्य च बहिर्विषये मूढताकृतो नास्ति बंधः परसमयमूढताकृतो वा, किंतु पूर्वबद्धकर्मणो निश्चितं निर्जरैव भवति ॥ २४८ ॥

गाथार्थ– [**जो चेदा**] जो आत्मा [**सव्वेसिमेव धम्माणं**] सभी वस्तुके धर्मोंमें [**दुगुंछं**] ग्लानि [**ण करेदि**] नहीं करता है [**सो**] उसको [**खलु**] वस्तुतः [**णिव्विदिगिंछो**] निर्विचिकित्सक [**सम्मादिट्ठी**] सम्यग्दृष्टि [**मुणेदव्वो**] जानना चाहिये ।

टीकार्थ– जो जाननेवाला आत्मा परमस्वभावके अनुभवके बलसे जुगुप्सा, निंदा, दोष, द्वेष, अथवा विचिकित्सा नहीं करता है ।

शंका– किनके संबंधमें विचिकित्सा नहीं करता है ?

समाधान– सभी वस्तुके धर्मोंकी अथवा स्वभावोंकी वा दुर्गंधादि विषयमें ग्लानि नहीं करता है ।

वह आत्मा निश्चयसे निर्विचिकित्सक सम्यग्दृष्टि है ऐसा जानना चाहिये । और उसको परद्रव्य द्वेष निमित्तक बंध नहीं होता है किंतु पूर्वसंचित कर्मोंकी निर्जरा ही होती हैं ॥ २४७ ॥

गाथार्थ– [**जो चेदा**] जो आत्मा [**सव्वेसु कम्मभावेसु**] सभी कर्मोंके भावोंमें [**असंमूढो**] मूढ नहीं होता है [**सो**] वह [**खलु**] निश्चयसे [**अमूढदिट्ठी**] अमूढदृष्टि [**सम्मादिट्ठी**] सम्यग्दृष्टि [**मुणेदव्वो**] मानना चाहिये ।

टीकार्थ– जो चेतयिता आत्मा स्वकीयशुद्धात्मस्वभावमें श्रद्धाज्ञानचारित्ररूपसे निश्चयरत्नत्रयलक्षणवाले स्वानुभवके बलसे शुभाशुभकर्मजनित परिणामरूप बाह्य विषयमें सर्वथा मूढ नहीं होता है वह निश्चित ही अमूढदृष्टि सम्यग्दृष्टि है, ऐसा जानना चाहिये । और उसको बहिर्विषयमें मूढताकृत होनेवाला बंध नहीं है अथवा मिथ्यात्व-परसमय मूढता कृत होनेवाला बंध नहीं है, किंतु पूर्वबद्धकर्मोंकी निश्चित निर्जरा ही होती है ॥ २४८ ॥

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं।
सो उवगूहणगारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४९ ॥

॥ आ. ख्या. २३३ ॥

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं शुद्धात्मभावनारूपपारमार्थिकसिद्धभक्तियुक्तः मिथ्यात्वरागादिविभावधर्माणामुपगूहकः प्रच्छादको विनाशकः। **सो उवगूहणगारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स सम्यग्दृष्टिः उपगूहनकारी मंतव्यो ज्ञातव्यः। तस्य चानुपगूहनकृतो नास्ति बंधः किंतु पूर्वसंचितकर्मणो निश्चितं निर्जरैव भवति ॥ २४९ ॥

उम्मग्गं गच्छंतं सिवमग्गे जो ठवेदि अप्पाणं।
सो ठिदिकरणेण जुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २५० ॥ आ.ख्या. २३४

उम्मग्गं गच्छंतं सिवमग्गे जो ठवेदि अप्पाणं यः कर्ता मिथ्यात्वरागादिरूपमुन्मार्गं गच्छंतं संतमात्मानं परमयोगाभ्यासबलेन शिवमार्गे स्वशुद्धात्मभावनारूपे निश्चयमोक्षमार्गे निश्चलं स्थापयति **सो ठिदिकरणेण जुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स सम्यग्दृष्टिः स्थितिकरणयुक्तो मंतव्यो ज्ञातव्यः। तस्य चास्थितिकरणकृतो नास्ति बंधः किंतु पूर्वबद्धकर्मणो निश्चितं निर्जरैव भवति ॥ २५० ॥

गाथार्थ– [**जो**] जो आत्मा [**सिद्धभत्तिजुत्तो**] शुद्धात्मानुभवसे युक्त है [**दु**] और [**सव्वधम्माणं**] अन्य वस्तुके सब धर्मोका अथवा विभावधर्मोंका [**उवगूहणगो**] नाश करनेवाला है अथवा [**सव्वधम्माणं उवगूहणगो**] अपने सभी गुणधर्मोंको गोपनेवाला-वृद्धि करनेवाला है [**सो**] वह [**उवगूहणगारी**] उपगूहनकारी वा उपवृंहक [**सम्मादिट्ठी**] सम्यग्दृष्टि [**मुणेदव्वो**] जानना चाहिये।

टीकार्थ– शुद्धात्मानुभववाले पारमार्थिकसिद्धभक्ति युक्त जो है, वह उपवृंहक अर्थात् मिथ्यात्वरागादि विभावधर्मोंका नाश करनेवाला है। वह उपगूहनकारी सम्यग्दृष्टि है ऐसा जानना चाहिये। उसको अनुपगूहन कृत बंध नहीं है, किंतु पूर्वसंचित कर्मोंकी निश्चित निर्जरा ही होती है ॥ २४९ ॥

गाथार्थ– [**जो**] जो [**उम्मग्गं गच्छंतं**] उन्मार्गपर जाते हुअे [**अप्पाणं**] अपने आत्मा को [**सिवमग्गे**] मोक्षमार्गपर [**ठवेदि**] रखता है [**सो**] वह [**ठिदिकरणेण जुदो**] स्थितिकरणसे युक्त [**सम्मादिट्ठी**] सम्यग्दृष्टि [**मुणेदव्वो**] जानना चाहिये।

टीकार्थ– जो मिथ्यात्वरागादिरूप उन्मार्गपर जाते हुअे अपने आत्माको परमयोगाभ्यासके (स्वानुभवके) बलसे शिवमार्गमें (मोक्षमार्गमें) — स्वशुद्धात्मस्वभावकी अनुभूतिवाले निश्चयमोक्षमार्गमें निश्चल स्थापन करता है। वह स्थितिकरणयुक्त सम्यग्दृष्टि है, ऐसा जानना चाहिये। और उसको अस्थितिकरणकृत बंध नहीं है, किंतु पूर्वबद्ध कर्मोंकी निश्चित निर्जरा ही होती है ॥ २५० ॥

जो कुणदि वच्छलत्तं तिण्हे साधूण मोक्खमग्गम्मि ।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।। २५१ ।।
।। आ. ख्या. २३५ ।।

जो कुणदि वच्छलत्तं तिण्हे साधूण मोक्खमग्गमि यः कर्ता मोक्षमार्गे स्थित्वा वत्सलत्वं भक्तिं करोति, केषां ? त्रयाणां स्वकीयसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां, कथंभूतानां ? साधूनां मोक्षमार्गे साधकानां अथवा व्यवहारेण तदाधारभूतसाधूनां **सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स सम्यग्दृष्टिः वात्सल्यभावयुक्तो मंतव्यो ज्ञातव्यः । तस्य चावात्सल्यभावकृतो नास्ति बंधः, किंतु पूर्वसंचितकर्मणो निर्जरैव भवति ।। २५१ ।।

विज्जारहमारूढो मणोरहरएसु हणदि जो चेदा ।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ।। २५२ ।।
।। आ. ख्या. २३६ ।।

विज्जारहमारूढो मणोरहरएसु हणदि जो चेदा यश्चेतयिता आत्मा स्वशुद्धात्मतत्त्वोपलब्धिस्वरूपविद्यारथमारूढः सन् ख्यातिपूजालाभभोगाकांक्षानिदानबंधादिविभावपरिणामरूपान् द्रव्यक्षेत्रादिपंचप्रकारसंसारदुःखकारणान् शत्रून् मनोरथरयान् वेगांश्चित्तकल्लोलान् स्वस्वभावसारथिबलेन दृढतरध्यानखड्गेन हंति । **सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो** स सम्यग्दृष्टिर्जि-

---

गाथार्थ– [**जो**] जो आत्मा [**मोक्खमग्गम्मि**] मोक्षमार्गमें [**तिण्हे**] सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्रमें अथवा तीनों [**साहूण**] साधकोंके अथवा साधुओंके प्रति [**वच्छलत्तं**] वात्सल्य [**कुणदि**] करता है [**सो**] वह [**वच्छलभावजुदो**] वात्सल्यभावयुक्त [**सम्मदिट्ठी**] सम्यग्दृष्टि है, ऐसा [**मुणेदव्वो**] जानना चाहिये ।

टीकार्थ– जो आत्मा मोक्षमार्गमें ठहरकर अपने सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी और व्यवहारसे साधुओंकी अथवा मोक्षमार्गके साधकोंकी अथवा व्यवहारसे उनके आधारभूत साधूओंकी भक्ति करता है, वह सम्यग्दृष्टि वात्सल्यभावयुक्त है, ऐसा जानना चाहिये । उसको अवात्सल्यभावकृत बंध नहीं होता है, किंतु पूर्वसंचित कर्मोंकी निर्जरा ही होती है ।। २५१ ।।

गाथार्थ– [**जो**] जो [**चेदा**] आत्मा [**विज्जारहमारूढो**] विद्यारूपी रथपर आरुढ होकर [**मणोरहरएसु**] मनरूपी रथके वेगोंको (याने विकल्पोंको) [**हणदि**] नष्ट करता है [**सो**] वह आत्मा [**जिणणाणपहावी**] जिनज्ञान-जिनवाणी-जिनेंद्रके ज्ञान की प्रभावना करनेवाला [**सम्मादिट्ठी**] सम्यग्दृष्टि है ऐसा [**मुणेदव्वो**] जानना चाहिये ।

टीकार्थ– जो चेतयिता आत्मा स्वशुद्धात्मतत्त्वकी उपलब्धि (स्वानुभूति) स्वरूप विद्यारथपर आरूढ होकर ख्यातिपूजालाभभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिविभावपरिणामरूप द्रव्य-क्षेत्रकालभवभावमय पंचप्रकारके संसारदुःख के कारणोंवाले शत्रूरूप मनोवेगोंको-चित्तके कल्लोलोंको– विकल्पोंको स्वस्वभावसारथि के बलसे, दृढतरध्यानकी तलवारसे (स्वानुभूतिके बलसे) नष्ट करता है । वह सम्यग्दृष्टि जिनज्ञानकी प्रभावना करनेवाला है, ऐसा जानना

नज्ञानप्रभावी मंतव्यो ज्ञातव्यः। तस्य चाप्रभावनाकृतो नास्ति बंधः, किं तु पूर्वसंचितकर्मणो निश्चितं निर्जरैव भवति। एवं संवरपूर्विकाया भावनिर्जराया उपादानकारणभूतानां शुद्धात्मभावनारूपाणां शुद्धनयमाश्रित्य निश्शंकाद्यष्टगुणानां व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथानवकं गतं। इदं तु निश्शंकाद्यष्टगुणव्याख्यानं निश्चयनयमुख्यत्वेन व्याख्यातं। निश्चयरत्नत्रयसाधके व्यवहाररत्नत्रयेऽपि स्थितस्य सरागसम्यग्दृष्टेरप्यंजनचौरादिकथारूपेण व्यवहारनयेन यथासंभवं योजनीयं। निश्चयं व्याख्याय पुनरपि किमर्थं व्यवहारनयव्याख्यानं ? इति चेन्नैवं। अग्निसुवर्णपाषाणयोरिव निश्चयव्यवहारनययोः परस्परसाध्यसाधकभावदर्शनार्थमिति। तथा चोक्तं–

चाहिये। उसको अप्रभावनाकृत बंध नहीं है, किन्तु पूर्वसंचितकर्मोंकी निश्चित निर्जरा ही होती है।

इसप्रकार संवरपूर्वक भावनिर्जराके उपादानकारणभूत शुद्धात्मानुभवरूप शुद्धनयका आश्रय करके निःशंकादि आठ गुणोंका व्याख्यान करनेकी मुख्यतासे नौ गाथायें पूर्ण हुअी। यहां निश्चयनयकी मुख्यतासे निःशंकादि आठ गुणोंका कथन हुआ।

निश्चयरत्नत्रयके साधकरूप व्यवहाररत्नत्रयमें रहनेवाले सराग सम्यक्त्वी अंजनचोर आदिकी कथा व्यवहारनयसे यथासंभव समझ लेना चाहिए। (व्यवहारनयसे कथन की हुअी अंजनचोरादिक की कथा अभूतार्थ है क्योंकि वह व्यवहारनयका कथन है और निश्चयनय भूतार्थ है।)

शंका– आपने निश्चयनयका व्याख्यान किसलिए किया है ? (अर्थात् वह कुछ अर्थ नहीं रखता है ? ।)

समाधान– ऐसा नही कहना चाहिए। अर्थात् निश्चयनयके कथनके बाद व्यवहारनयके व्याख्यानमें कुछ अर्थ नहीं है, ऐसा नहीं है। यहां निश्चयनयका और व्यवहारनयका परस्पर संबंध क्या है यह दिखानेके लिये दोनो नयोंका कथन किया है। निश्चयनय ही भूतार्थ है और व्यवहारनय अभूतार्थ है। शुद्धात्मानुभव ही उपादेय है। जैसे अग्नि और सुवर्णपाषाण (अशुद्ध सुवर्ण) इनका उपचारसे परस्पर साध्यसाधक संबंध है अर्थात् व्यवहारनयसे अशुद्ध सुवर्णको अग्निसे तपानेसे शुद्ध सुवर्ण होता है, ऐसा कहा जाता है। वैसे व्यवहारनयसे (देखो गाथा नं. १२३ से १२५- ता. वृ. की टीकामें) ऐसा कहा जाता है कि, व्यवहारनय साधक और निश्चयनय साध्य है। याने परस्पर साध्यसाधक भाव दिखानेके लिये दोनों नयोंका कथन किया है लेकिन स्वानुभूतिके लिये निश्चयनय ही प्रयोजनवान् है। जैसे कहा गया है कि,

" जइ जिणसमइं पउंजह " इत्यादि अर्थात् यदि जिनागममें प्रवेश करना चाहते हो तो व्यवहारनय और निश्चयनयको मत छोडो। एकके (निश्चयनयके) विना तीर्थका नाश होगा और दूसरेके (व्यवहारनयके) विना तत्त्वका नाश होगा। [याने जिनागमको या द्रव्योंको समझ लेनेके लिये द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय इन दोनोंका उपयोग करना चाहिये। द्रव्यार्थिकनयको न मानोगे और अकेले पर्यायार्थिकनयको मानोगे तो पर्यायका भी अभाव होगा और द्रव्यका भी अभाव होगा। इससे प्रत्यक्षसे विरोध प्राप्त होगा। और यदि द्रव्यार्थिकनयको

जइ जिणसमई पउंजह ता मा ववहारणिच्छए मुचह ।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण पुण तच्चं ।। इति

किंच– संवरपूर्विका निर्जरा या व्याख्याता सा सम्यग्दृष्टेर्जीवस्य शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपे मुख्यवृत्त्या निश्चयरत्नत्रये सति भवति, स च निश्चयरत्नत्रयलाभो, वीतरागधर्मध्यान शुक्लध्यानरूपे शुभाशुभबहिर्द्रव्यनिरालंबने निर्विकल्पसमाधौ सति भवति, स च समाधिरतीव दुर्लभः । कस्मात् ? इति चेद्, एकेंद्रियविकलेंद्रियपंचेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तमनुष्यदेशकुलरूपेंद्रियपटुत्व-

---

मानोगे और पर्यायार्थिक नयको न मानोगे तो नित्यका भी अभाव होनेका प्रसंग आयेगा और प्रत्यक्ष वस्तुस्थितिसे विरोध प्राप्त होगा । इसलिये द्रव्यको आगमभाषासे समझनेके लिये द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंको मत छोडो । और इस आगमभाषाको समझनेके बाद अध्यात्मभाषा भी समझ लेना चाहिये क्योंकि पारमार्थिक वस्तुस्वरूप समझनेसे शांतता प्राप्त होगी । अष्टसहस्री पृष्ठ २७ पर कहा है कि, " निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छशविषाणवत् । सामान्यरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेव हि ।। " अर्थात् विशेषके विना सामान्य खरगोशके सींगके समान है याने सामान्यका अभाव होगा और सामान्यके विना विशेषका अभाव होगा । तो शुद्धात्मानुभव प्राप्त करनेके लिये एकाकार, अखंड, अभेद, परमशुद्धनिश्चयनयके आलंबनके विना 'तीर्थका' याने मोक्षमार्गका नाश होगा । अर्थात् शुद्धोपयोगके विना मोक्षमार्ग शुरू नहीं होता है, देखो कुंदकुंदभारती पृष्ठ नं. ३१९ वारसणुपेक्खा, गाथा–६४

सुद्धुवजोगेण पुणो धम्मं सुक्कं च होदि जीवस्स ।
तम्हा संवरहेदू झाणो त्ति विंचितए णिच्चं ।।

अर्थात् शुद्धोपयोगसे जीवके धर्मध्यान और शुक्लध्यान होते हैं इसलिये ध्यान संवरका कारण है, ऐसा निरंतर विचार करना चाहिये ।

और दूसरेको याने भेदको, उपचारको, पर्यायको, अनेक वर्णमालावाले व्यवहारनयको, नहीं मानोगे तो द्रव्य का नाश होगा । पर्यायमें होनेवाले अशुद्ध और शुद्ध अवस्थाको नहीं मानोगे तो साध्य-द्रव्यका नाश होगा । याने वस्तु व्यवस्था न मानोगे तो आत्मिक शांतता प्राप्त नहीं होगी । इसलिये निश्चयनय न मानोगे तो पर्यायका भी लोप होगा और मोक्षमार्गका याने तीर्थका लोप होगा । इसलिये अध्यात्मभाषासे एकाकार अखंड अभेद निश्चयनय ही भूतार्थ है और व्यवहारनय अभूतार्थ है ।]

इसी बातको श्री जयसेनाचार्यजी कहते हैं कि,

जो संवरपूर्वक निर्जराका कथन किया हैं, वह मुख्यवृत्तिसे (पारमार्थिक दृष्टिसे) सम्यग्दृष्टि जीवको शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूप निश्चयरत्नत्रय (स्वानुभव) से ही होती है और वह स्वानुभव ही निश्चयरत्नत्रयका लाभ है, वह स्वानुभव ही वीतरागधर्मध्यान-शुक्लध्यानमें अर्थात् शुभाशुभबाह्यद्रव्यके आलंबनसे रहित ऐसे निर्विकल्पसमाधिमें होता है ।

निर्व्याध्यायुष्कवरबुद्धिसद्धर्मश्रवणग्रहणधारणश्रद्धानसंयमविषयसुखव्यावर्तनक्रोधादिकषायनिवर्तन-तपोभावनासमाधिमरणानि परम्परादुर्लभानि यतः । तदपि कस्मात् ? तत्प्रतिपक्षभूतानां मिथ्यात्वविषयकषायख्यातिपूजालाभभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिविभावपरिणामानां प्रबलत्वात् इति दुर्लभपरंपरां ज्ञात्वा सर्वतात्पर्येण समाधौ प्रमादो न कर्तव्यः । तदप्युक्तं-

इत्यतिदुर्लभरूपां बोधिं लब्ध्वा यदि प्रमादी स्यात् ।
संसृतिभीमारण्ये भ्रमति वराको नरः सुचिरं ॥ इति

तत्रैवं सति शृंगाररहितपात्रवत् शांतरसरूपेण निर्जरा निष्क्रांता ॥ २५२ ॥

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां तात्पर्यवृत्तौ गाथाचतुष्टयं पीठिकारूपेण, गाथापंचकं ज्ञानवैराग्यशक्त्योः सामान्यविवरणरूपेण, गाथादशकं निश्शंकाद्यष्टगुणकथनरूपेण चेति समुदायेन पंचाशद्गाथाभिः षड्भिरंतराधिकारैः सप्तमो निर्जराधिकारः समाप्तः ॥ ७ ॥

और वह स्वानुभव याने समाधि अतीव दुर्लभ है क्योंकि एकेंद्रिय, विकलेंद्रिय, पंचेंद्रिय-संज्ञीपर्याप्त, मनुष्य, देश, कुल, रूप, इंद्रियपटुत्व, निर्व्याधि, आयुष्य, श्रेष्ठ बुद्धि, सद्धर्मका श्रवण, सद्धर्मका ग्रहण, सद्धर्मकी धारणा, सद्धर्मकी श्रद्धा, संयम, विषयसुखसे निवृत्ति, क्रोधादिकषायोंका निवर्तन (वीतरागता), तपोभावना और समाधिमरण क्रमसे ये पद दुर्लभ दुर्लभतर है ।

और सद्धर्मके प्रतिपक्षभूत मिथ्यात्व, विषय, कषाय, ख्याति, पूजा, लाभ, भोगाकांक्षा-रूपनिदानबंधादिविभाव परिणाम ये सुलभ हैं इनकी प्रबलतासे एकेंद्रियसे लेकर आगे आगेके स्थानकी और समाधिमरण तकको दुर्लभ परंपरा जानकर सभी प्रकारसे समाधिमें (स्वानुभूतिमें) प्रमाद नहीं करना चाहिये । एक स्वानुभव ही श्रेष्ठतम है, स्वानुभवमें रत रहना चाहिये । जैसा कि कहा गया है कि, 'इत्यतिदुर्लभरूपां बोधि लब्ध्वा' इत्यादि अर्थात् उपर्युक्त प्रकारसे अत्यंत दुर्लभ ऐसी स्वानुभूतिको प्राप्त करके भी यदि मनुष्य प्रमादी रहे, तो वह बिचारा इस भयंकर संसाररूपी वनमें बहुत काल तक भ्रमण करता रहेगा ।

इस प्रकार शृंगारहित पात्रके समान शांतरसरूपसे निर्जरा चली गयी ॥ २५२ ॥

इस प्रकार श्री जयसेनाचार्यजीकृत समयसारकी व्याख्यावाली-शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवाली तात्पर्यवृत्तिमें- ४ गाथाएँ पीठिकारूप, ५ गाथाओंमें ज्ञानवैराग्यशक्तिका सामान्य कथन, १० गाथाओंमें उनका ही विशेष वर्णन, ८ गाथाओंमें ज्ञानगुणका सामान्य कथन, १४ गाथाओंमें ज्ञानगुणका ही विशेष कथन और ९ गाथाओंमें निःशंकादि आठ गुणोंका कथन, इस प्रकार समुदायरूप ५५ गाथाओंद्वारा, ६ अंतर अधिकारोंके द्वारा सातवां निर्जरा अधिकार पूर्ण हुआ ॥७॥

अथ बंधाधिकारः ॥ ८ ॥

अथ प्रविशति बंधः। तत्र '**जह णाम को वि पुरिसो**' इत्यादि गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण षट्पंचाशद्गाथापर्यंतं व्याख्यानं करोति। तासु षट्पंचाशद्गाथासु मध्ये प्रथमतस्तावद् बंधस्वरूपसूचनमुख्यत्वेन गाथादशकं। तदनंतरं निश्चयेन हिंसाहिंसाव्रताव्रतद्वयस्य लक्षणकथनरूपेण '**जो मण्णदि हिंसामि**' इत्यादि गाथासप्तकं। ततः परं बहिरंगद्रव्यहिंसा भवतु मा भवतु, निश्चयेन हिंसाध्यवसाय एव हिंसेति प्रतिपादनरूपेण '**जो मरदि**' इत्यादि गाथाषट्कं। अथानंतरं निश्चयरत्नत्रयलक्षणं यद् भेदविज्ञानं तस्माद्विलक्षणानि यानि व्रताव्रतानि तद्व्याख्यान-मुख्यत्वेन '**एवमलिए**' इत्यादि सूत्रभूतगाथाद्वयं। तदनंतरं तस्यैव भावपुण्यपापरूपव्रताव्रतस्य शुभाशुभबंधकारणभूतस्य परिणामव्याख्यानमुख्यत्वेन '**वत्थुं पडुच्च**' इत्यादि गाथात्रयोदश। एवं समुदायेन पंचदश। तदनंतरं निश्चये स्थित्वा व्यवहारो निषेध्यत इति कथनरूपेण '**ववहारणओ**' इत्यादि सूत्रषट्कं। अतः परं रागद्वेषरहितज्ञानिनां प्राशुकान्नपानाद्याहारो बंधकारणं न भवति इति पिंडशुद्धिव्याख्यानरूपेण '**आधाकम्मादीया**' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं क्रोधादिकषायाः

अब बंध प्रवेश करता है। वहां '**जह णाम को वि पुरिसो**' इत्यादि गाथासे शुरू करके पाठक्रमसे ५६ गाथापर्यंत कथन करते हैं। उन ५६ गाथाओंमें पहले बंध के स्वरूपकी सूचना करनेकी मुख्यतासे १० गाथायें हैं। तदनंतर निश्चयनयसे हिंसा, अहिंसा, व्रत, अव्रत इनका लक्षण कहनेवाली '**जो मण्णदि हिंसामि**' इत्यादि ७ गाथायें हैं। इसके आगे बहिरंगद्रव्यहिंसा हो या न हो, निश्चयनयसे हिंसाका अध्यवसान भाव ही हिंसा है, इसका प्रतिपादन करनेवाली '**जो मरदि**' इत्यादि छह गाथायें हैं। इसके बाद निश्चयरत्नत्रयलक्षणवाला (स्वानुभववाला) जो भेदविज्ञान है उससे विलक्षणवाला जो व्रत, अव्रत हैं इस कथनकी मुख्यतासे '**एवमलिए**' इत्यादि सूत्रभूत दो गाथायें हैं। तदनंतर शुभाशुभ बंध के कारणभूत उस ही भावपुण्यपापरूपव्रताव्रत के परिणामका कथन करने की मुख्यतासे '**वत्थुं पडुच्च**' इत्यादि १३ गाथायें हैं। इस प्रकार समुदायसे १५ गाथायें हैं। तदनंतर निश्चयमें ठहरकर (स्वानुभव भूतार्थ होनेसे अथवा स्वानुभव की मुख्यतासे) व्यवहारका निषेध ही किया जाता है यह कथन करनेवाले '**ववहारणओ**' इत्यादि छह सूत्र हैं। इसके बाद, रागद्वेषरहित ज्ञानियोंको (स्वानुभूतिवाले जीवोंको) प्राशुक अन्नपान आदि आहार लेना बंधका कारण नहीं है, इसतरह पिंडशुद्धिका कथन करनेवाली '**आधाकम्मादीया**' इत्यादि चार गाथायें हैं। तदनंतर क्रोधादिकषाय (अध्यवसानभाव) कर्म बंध के निमित्त है, और उन क्रोधादिकषायों

कर्मबंधनिमित्तं भवंति तेषां च चेतनाचेतनबहिर्द्रव्यं निमित्तं भवतीति प्रतिपादनरूपेण 'जह फलिहमणि विसुद्धो' इत्यादि सूत्रपंचकं। तदनंतरमप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यानं च बंधकारणं भवति न पुनः शुद्धात्मेति व्याख्यानमुख्यत्वेन 'अप्पडिकमणं' इत्यादि गाथात्रयं चेति समुदायेन षट्पंचाशद्गाथाभिरष्टांतराधिकारैः बंधाधिकारे समुदायपातनिका।

तद्यथा– वहिरात्मजीवसंबंधिनो बंधकारणभूतस्य श्रृङ्गारसहितपात्रस्थानीयस्य मिथ्याज्ञानस्य नाटकरूपेण प्रविशतः सतः शांतरसपरिणतं वीतरागसम्यक्त्वाविनाभूतं भेदज्ञानं प्रतिषेधं करोतीति उपदिशति–

जह णाम कोवि पुरिसो णेहभत्तो दु रेणुबहुलम्मि।
ठाणम्मि ठाइदूण य करेइ सत्थेहिं वायामं ॥ २५३ ॥
॥ आ. ख्या. २३७ ॥

छिददि भिददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेइ दव्वाणमुवघायं ॥ २५४ ॥
॥ आ. ख्या. २३८ ॥

(अध्यवसानभावों) को चेतन-अचेतन बाह्यद्रव्य निमित्त है, इसका प्रतिपादन करनेवाली 'जह फलिहमणि विसुद्धो' इत्यादि पांच गाथायें हैं। तदनंतर अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान बंधका कारण है और शुद्धात्मा (शुद्धात्मानुभव) बंधका कारण नहीं हैं, इस कथनकी मुख्यतासे 'अप्पडिकमणं' इत्यादि तीन गाथायें हैं। इसतरह समुदायरूपसे ५६ गाथाओं की-आठ अंतर अधिकारों की बंधाधिकारमें यह समुदायपातनिका है।

अब, वहिरात्मजीव (मिथ्यात्वी) के बंधके कारणभूत मिथ्याज्ञान है, वह मिथ्याज्ञान श्रृंगारसहित पात्रके समान नाटकरूपसे प्रवेश कर रहा है, उसीसमय शांतरससे परिणत ऐसा जो वीतरागसम्यक्त्व के अविनाभूत रहनेवाला भेदज्ञान है, वह उस मिथ्याज्ञानका प्रतिषेध (विरोध) करता है, ऐसा उपदेश करते हैं–

गाथार्थ– [जह णाम] जिस प्रकार [कोवि पुरिसो] कोई पुरुष [णेहभत्तो दु] तेल लगाकर [य] और [रेणुबहुलम्मि] वहुत धूलवाले [ठाणम्मि] स्थानमें [ठाइदूण] रहकर [सत्थेहिं] शस्त्रोंसे [वायामं] व्यायाम [करेदि] करता है [तहा] तथा [तालीतलकयलिवंसपिंडीओ] ताड, तमाल, केला और वांसके पिंडको [छिददि भिददि य] छेदता है, भेदता है और [सच्चित्ताचित्ताणं दव्वाणं] सचित्त-अचित्त द्रव्योंका [उवघादं] उपघात [करेदि] करता है [णाणाविहेहिं करणेहिं] नाना प्रकारके करणोंके द्वारा [उवघादं] उपघात [कुव्वंतस्स तस्स] करते हुये उस पुरुषके [रयबंधो दु] धूलीका बंध [दु] वास्तवमें [किं पच्चयगो] किस कारणसे होता है [णिच्छयदो] निश्चयसे यह [चिंतिज्ज] विचार करो। [तम्हि णरे] उस मनुष्यके

उवघायं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं ।
णिच्छयदो चिंतिज्ज हु किं पच्चयगो दु रयवंधो ॥ २५५ ॥
॥ आ. ख्या. २३९ ॥

जो सो दु णेहभावो तह्मि णरे तेण तस्स रयवंधो ।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥ २५६ ॥
॥ आ. ख्या. २४० ॥

एवं मिच्छादिट्ठी वट्टन्तो बहुविहासु चिट्ठासु ।
रायाई उवओगो कुव्वंतो लिप्पइ रयेण ॥ २५७ ॥ (पंचकम्)
॥ आ. ख्या. २४१ ॥

जह णाम को वि पुरिसो इत्यादि व्याख्यानं क्रियते—यथा नाम स्फुटमहो वा कश्चित्पुरुषः स्नेहाभ्यक्तः सन् रजोवहुलस्थाने स्थित्वा शस्त्रैर्व्यायाममभ्यासं श्रमं करोति इति प्रथमगाथा गता। छिनत्ति भिनत्ति च तथा। कान्? तालतमालकदलीवंशाशोकसंज्ञान् वृक्षविशेषान् तत्संबंधिसचित्ताचित्तद्रव्याणामुपघातं च करोति इति द्वितीयगाथा गता। उपघातं कुर्वाणस्य तस्य नानाविधैर्वैशाखस्थानादिकरणविशेषैर्निश्चयतश्चित्यतां विचार्यतां किं प्रत्ययकः किं निमित्तकः तस्य रजोवंधः? इति पूर्वपक्षरूपेण गाथात्रयं गतं। अत्रोत्तरं— यः स्नेहभावस्तस्मिन्नरे स पूर्वोक्तस्तैलाभ्यंगरूपः तेन तस्य रजोवंधः इति निश्चयतो विज्ञेयं न कायादिव्यापारचेष्टाभिः

शरीरपर [**सो जो दु णेहभावो**] वह जो तेलकी चिकनाहट है [**तेण**] उससे [**तस्स**] उस मनुष्यके [**रयवंधो**] धूलीका वंध होता है [**सेसाहिं**] शेष [**कायचेट्ठाहिं**] काय की चेष्टाओंसे [**ण**] धूलीका बंध नहीं होता है यह [**णिच्छयदो विण्णेयं**] निश्चयसे जानना चाहिये। [**एवं**] इसी प्रकार [**बहुविहासु**] नाना प्रकारकी [**चिट्ठासु**] चेष्टाओंमें [**वट्टंतो**] प्रवर्तमान [**मिच्छादिट्ठी**] मिथ्यादृष्टि [**उवओगे**] उपयोगमें [**रायाई**] रागादिभावोंको [**कुव्वंतो**] करता हुआ [**रयेण**] कर्मरजसे [**लिप्पइ**] लिप्त होता है।

टीकार्थ— जैसे कोई पुरुष अपने शरीरमें तैल आदि पदार्थ लगाकर बहुत धूलवाले स्थानमें ठहरकर शस्त्रोंसे व्यायाम अथवा अभ्यास अथवा श्रम करता है। यह प्रथम गाथाका अर्थ है। वह पुरुष ताल, तमाल, केला, वाँस, अशोक आदि वृक्षोंको छेदता है, भेदता है तथा उनसे संवंध रखनेवाले सचित्त-अचित्त द्रव्योंका उपघात करता है। यह दूसरी गाथाका अर्थ हुआ। खुले मैदानमें नानाविध शस्त्रोंसे उपघात करनेवाले उस पुरुषको किस कारणसे किस निमित्तसे रजोवंध होता है,। इसका निश्चयसे विचार करो? इस पूर्वपक्षका कथन करनेवाली तीन गाथायें पूर्ण हुई। इसका उत्तर यह है कि, उस पुरुषके शरीरपर जो चिकनाहट है उससे धूलीका वंध हुआ है, शरीरकी क्रिया और शस्त्रादि शेषद्रव्योंके द्वारा धूली का वंध नहीं हुआ है, यह

शेषाभिरित्युत्तरगाथा । एवं सूत्रचतुष्टयेन प्रश्नोत्तररूपेण दृष्टांतो गतः । अथ दार्ष्टान्तमाह– **एवं मिच्छादिट्ठी वट्टन्तो बहुविहासु चेट्ठासु** एवं पूर्वोक्तदृष्टांतेन मिथ्यादृष्टिर्जीवः⊗ **रागादि उवओगे कुव्वंतो लिप्पदि रयेण** शुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाणां सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणामभावात् मिथ्यात्वरागाद्युपयोगान् परिणामान् कुर्वाणः सन् कर्मरजसा लिप्यते बध्यत इत्यर्थः । एवं यथा तैलम्रक्षितस्य रजोबंधो भवति⊙इति बंधकारणतात्पर्यकथनरूपेण सूत्रपंचकं गतं ॥ २५३, २५४, २५५, २५६, २५७ ॥

अथ गाथापंचकेन वीतरागसम्यग्दृष्टेर्बंधाभावं दर्शयति–

जह पुण सो चेव णरो णेहे सव्वह्मि अवणिये संते ।
रेणुबहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहिं वायामं ॥ २५८ ॥

॥ आ. ख्या. २४२ ॥

छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेदि दव्वाणमुवघादं ॥ २५९ ॥

॥ आ. ख्या. २४३ ॥

निश्चयसे जानना चाहिये । इस प्रकार प्रश्नोत्तररूप दृष्टांत चार गाथाओंमे पूर्ण हुआ । अब दार्ष्टांत कहते हैं–

इस प्रकार पूर्वोक्त दृष्टांतके समान मिथ्यादृष्टि जीव विविध शरीरादि क्रियाओंमे प्रवर्तमान होनेसे उसको कर्मबंध नहीं होता है, लेकिन शुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूप (अभेदरत्नत्रयरूप-स्वानुभूतिरूप) सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र के अभावसे अपने उपयोगको मिथ्यात्वरागादिपरिणामरूप करनेसे वह कर्मोंसे लिप्त होता है ।

इस प्रकार जैसे चिकनाहटसे रजोबंध (धूलीबंध) होता है, वैसे मिथ्यात्वरागादि-परिणत जीवको कर्मबंध होता है । इस प्रकार बंधका कारण कहनेके तात्पर्यसे पांच गाथायें पूर्ण हुओ ॥ २५३, २५४, २५५, २५६, २५७ ॥

अब पांच गाथाओंद्वारा वीतरागसम्यग्दृष्टि-स्वानुभूतिवाले (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीवको बंधका अभाव दिखाते हैं–

गाथार्थ– [**जह**] जिस प्रकार [**पुण**] पुनः [**सो चेव**] वही [**णरो**] पुरुष [**सव्वह्मि णेहे**] सभी चिकनाहटके [**अवणिदे संते**] दूर किये जानेपर [**रेणुबहुलम्मि**] बहुत धूलवाले [**ठाणे**] स्थान में [**सत्थेहिं**] शस्त्रोंसे [**वायामं**] व्यायाम [**करेदि**] करता है [**तहा य**] और [**तालीतलकयलिवंसपिंडीओ**] ताड, तमाल, कदली और बांसके पिंडको [**छिंददि भिंददि य**] छेदता भेदता है और [**सच्चित्ताचित्ताणं दव्वाणं**] सचित्त-अचित्त द्रव्योंका [**उवघादं**] उपघात [**करेदि**] करता है [**णाणाविहेहिं**] नाना प्रकारके [**करणेहिं**] करणोंसे [**उवघादं**] उपघात [**कुव्वंतस्स**] करते हुए [**तस्स**] उसके [**हु**] वास्तवमें [**किं पच्चयगो**] किस करणसे [**रयबंधो ण**] धूलीका बंध नही होता है [**णिच्छयदो**] इसका निश्चयसे [**वितिज्ज**] विचार करो ।

उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं ।
णिच्छयदो चिंतिज्ज हु किं पच्चयगो ण रयबंधो ॥ २६० ॥
॥ आ. ख्या. २४४ ॥

जो सो अणेहभावो तह्मि णरे तेण तस्सऽरयबंधो ।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥ २६१ ॥
॥ आ. ख्या. २४५ ॥

एवं सम्मादिट्ठी वट्टंतो बहुविहेसु जोगेसु ।
अकरंतो उवओगे रागाइ ण लिप्पइ रयेण ॥ २६२ ॥
॥ आ. ख्या. २४६ ॥

यथा स एव पूर्वोक्तो नरः स्नेहे सर्वस्मिन्नपनीते सति धूलिबहुलस्थाने स्थित्वा शस्त्रैर्व्यायाममभ्यासं श्रमं करोतीति प्रथमगाथा गता । छिनत्ति भिनत्ति च तथा, कान्? तालतमालकदलीवंशपिंडीसंज्ञान् । तत्संबंधिसचित्ताचित्तद्रव्याणामुपघातं च करोति इति द्वितीयगाथा गता । उपघातं कुर्वाणस्य तस्य नानाविधैर्वैशाखस्थानादिकरणविशेषैः, निश्चयतश्चित्यतां विचार्यतां किं प्रत्ययकः किं निमित्तकः तस्य रजोबंधो न भवति । एवं प्रश्नरूपेण गाथात्रयं गतं । अत्रोत्तरं– यः स्नेहभावस्तस्मिन्नरे स पूर्वोक्तस्तैलाभ्यंगरूपः तेन स तस्य रजोबंधः, इति निश्चयतो

[तह्मि णरे] उस मनुष्यके शरीरपर [जो सो] वह जो [अणेहभावो] चिकनाहट नहीं है [तेण] इस कारणसे [तस्स] उसको [अरयबंधो] धूलीका बंध नही होता है [सेसाहिं कायचेट्ठाहिं] शेष कायकी चेष्टाओंसे [ण] धूलीका बंध नही होता है [णिच्छयदो] यह निश्चयसे [विण्णेयं] जानना चाहिये । [एवं] इसी प्रकार [सम्मादिट्ठी] सम्यग्दृष्टि जीव [बहुविहेसु] नाना प्रकारके [जोगेसु] योगों में [वट्टंतो] प्रवृत्ति करते हुये [उवओगे] उपयोग में [रागादी] रागादी भावोंको [अकरंतो] नहीं करता है इसलिये वह [रयेण] कर्मरजसे [ण लिप्पदि] लिप्त नहीं होता है ।

टीकार्थ– जैसे पूर्वोक्त पुरुष शरीरसे सर्व चिकनाहटको दूर करके बहुत धूलीवाले स्थानमें ठहरकर शस्त्रोंसे व्यायाम–श्रम करता है । यह प्रथम गाथाका अर्थ हुआ । वह पुरुष ताल, तमाल केला, बांसके पिंड आदिको छेदता है, भेदता है । उसके संबंधी सचित्त, अचित्त द्रव्योंका उपघात करता है । यह दूसरी गाथाका अर्थ हुआ । नानाविध शस्त्रोंसे उपघात करनेवाले उस पुरुष को किस कारण से, किस निमित्त से रज का बंध नहीं होता है, यह निश्चयसे विचार करो । इस प्रश्नरूपसे तीन गाथायें पूर्ण हुई ।

इस का उत्तर देते है कि– उस पुरुष के शरीरपर जो चिकनाहट पहले क्षण में थी उससे उसको. धूलीबंध होता था, शरीरकी क्रियासे, शस्त्रोंसे धूलीबंध नहीं होता था । यह

विज्ञेयं। न कायादिव्यापारचेष्टाभिः शेषाभिः, तदभावात् तस्य बंधो नास्तीत्यभिप्रायः इत्युत्तरगाथा गता। एवं सूत्रचतुष्टयेन प्रश्नोत्तररूपेण दृष्टांतो गतः। अथ दार्ष्टांतमाह– **एवं सम्मादिट्ठी वट्टंतो बहुविहेसु जोगेसु** एवं पूर्वोक्तदृष्टांतेन सम्यग्दृष्टिर्जीवः विविधयोगेषु नानाप्रकारमनोवचनकायव्यापारेषु वर्तमानः। **अकरंतो उवओगे रागादी** निर्मलात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाणां सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां सद्भावात् रागाद्युपयोगान् परिणामानकुर्वाणः सन् **णेव बज्झदि रयेण** कर्मरजसा न बध्यते। एवं तैलम्रक्षणाभावे यथा रजोबंधो न भवति तथा वीतरागसम्यग्दृष्टेर्जीवस्य रागाद्यभावाद् बंधो न भवति, इति बंधाभावकारणतात्पर्यकथनरूपेण गाथापंचकं गतं। किं च यथात्र पातनिकायां भणितं, संज्ञानिजीवस्य शांतरसे स्वामित्वमज्ञानिनस्तु श्रृङ्गाराद्यष्टरसानां स्वामित्वं, तथाध्यात्मविषये नाटकावतारप्रस्तावे नवरसानां स्वामित्वं ज्ञातव्यं। इति सूत्रदशकसमुदायेन प्रथमस्थलं गतं ॥ २५८, २५९, २६०, २६१, २६२ ॥

अथ वीतरागस्वस्वभावं मुक्त्वा हिंस्यहिंसकभावेन परिणमनमज्ञानिजीवलक्षणम्। तद्विपरीतं संज्ञानिलक्षणमिति प्रज्ञापयति–

निश्चय से जानना चाहिये। उस चिकनाहटका अभी अभाव होनेसे उसको अभी धूलीबंध नहीं होता है, यह अभिप्राय है।

इसका दार्ष्टांत कहते हैं कि– इसप्रकार पूर्वोक्त दृष्टांतसे सम्यग्दृष्टि जीव विविध योगोंमें–नानाप्रकारके मन वचन कायके क्रियामें प्रवृत्ति करता है तो भी निर्मल आत्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान–ज्ञान–अनुष्ठानरूप (स्वानुभूतिरूप–अभेदरत्नत्रयरूप) सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रके सद्भावसे अपने उपयोग को मिथ्यात्व–रागादि परिणामरूप न करने से कर्मोंके द्वारा बंधा नहीं जाता है।

इस प्रकार जैसे चिकनाहट के अभावसे धूलीका बंध नहीं होता है, वैसे वीतराग-सम्यग्दृष्टि (स्वानुभूतिवाले–चतुर्थादिगुणस्थानवाले) जीवको रागादिका अभाव होनेसे बंध नहीं होता है।

इस प्रकार बंधके अभाव का कारण कहनेके तात्पर्यसे पांच गाथायें पूर्ण हुई।

और विशेष कहते हैं कि– यहाँ पातनिकामें कहा था कि यह नाटक है– तो यहाँ सम्यग्ज्ञानी जीवका शांतरस पर स्वामित्व है और अज्ञानीका शृंगारादि आठ रसोंका स्वामित्व है, इसप्रकार इस अध्यात्म विषयमें– अध्यात्मग्रंथमें– इस नाटकमें नवरसोंका स्वामित्व जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथमस्थलमें १० सूत्रोंका समूदाय पूर्ण हुआ ॥ २५८, २५९, २६०, २६१, २६२ ॥

अब अपने वीतराग स्वभावको (स्वानुभवको) छोडकर हिंस्य-हिंसक भावसे परिणमन करना अज्ञानी (मिथ्यात्वसासादानमिश्रगुणस्थानवर्ती) जीवका लक्षण है, उससे विपरीत (याने स्वस्वभावमें-स्वानुभवमें रहना) सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीवका लक्षण है, ऐसा कहते हैं–

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥ २६३ ॥

॥ आ. ख्या. २४७ ॥

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं सो मूढो अण्णाणी यो मन्यते जीवानहं हिनस्मि परैः सत्वैरहं हिंस्ये इति च योऽसौ परिणामः स निश्चितमज्ञानः स एव बंध हेतुः, स परिणामो यस्यास्ति स चाज्ञानी। **णाणी एत्तो दु विवरीदो** एतस्माद्विपरीतो यो जीवित–मरणलाभालाभसुखदुःखशत्रुमित्रनिंदाप्रशंसादिविकल्पविषये रागद्वेषरहितशुद्धात्मभावनासंजात–परमानन्दसुखास्वादरूपे वा भेदज्ञाने रतः स ज्ञानीत्यर्थः ॥ २६३ ॥

अथ कथमयमध्यवसायः पुनरज्ञानं ? इति चेत्–

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
आउं ण हरेसि तुमं कह ते मरणं कयं तेसिं ॥ २६४ ॥

॥ आ. ख्या. २४८ ॥

गाथार्थ– [**जो**] जो पुरुष ऐसा [**मण्णदि**] मानता है कि [**हिंसामि**] मैं पर जीवको मारता हूँ [**च**] और [**परेहिं य सत्तेहिं**] दूसरें जीवोंके द्वारा अथवा शस्त्रोंद्वारा [**हिंसिज्जामि**] मैं मारा जाता हूँ [**सो**] वह पुरुष [**मूढो अण्णाणी**] मोही, अज्ञानी है [**दु एत्तो**] लेकिन जो इससे [**विवरीदो**] विपरीत है, वह [**णाणी**] ज्ञानी है।

टीकार्थ– जो मानता है कि 'मैं जीवोंको मारता हूँ, और दूसरे जीवोंके द्वारा मैं मारा जाता हूँ'। ऐसा जो परिणाम (याने मान्यता) है वह निश्चित अज्ञान है, वह ही बंधका कारण है और वह परिणाम जिसका है, वह अज्ञानी है। इससे विपरीत जो जीवितमरण, लाभ-अलाभ, सुखदुःख, शत्रुमित्र, निंद्राप्रशंसा आदि विकल्पके विषयमें रागद्वेषरहित है, अथवा शुद्धात्म-भावभासनासे उत्पन्न होनेवाले परमानन्द सुखके आस्वादरूप भेदज्ञानमें मग्न है वह ज्ञानी है ॥ २६३ ॥

तो फिर यह अध्यवसाय ही अज्ञान कैसे है? इसका उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**जीवाणं**] जीवोंका, [**मरणं**] मरण [**आउक्खयेण**] आयुकर्मके क्षयसे होता है ऐसा [**जिणवरेहिं**] जिनवरदेवोंने [**पण्णत्तं**] कहा हैं और [**तुमं**] तू [**तेसिं आउं**] उनके आयुको [**ण हरसि**] हरता नहीं है [**ते**] तो तूने [**मरणं**] उनका मरण [**कह कयं**] कैसे किया? [**जीवाणं**] जीवोंका [**मरणं**] मरण [**आउक्खयेण**] आयुकर्मके क्षय से होता है ऐसा [**जिणवरेहिं पण्णत्तं**] जिनवरोंने कहा हैं वे दूसरे जीव [**तुहं**] तेरा [**आउं**] आयुकर्म [**ण हरंति**] नहीं हरते हैं तव [**तेहिं**] उन्होंने [**ते मरणं**] तेरा मरण [**कह कयं**] कैसे किया?

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
आउं न हरंति तुहं कह ते मरणं कयं तेहिं ॥

॥ आ. ख्या. २४९ ॥

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं आयु:क्षयेण मरणं जीवानां जिनवरैः प्रज्ञप्तं कथितं । आउं ण हरेसि तुमं कह ते मरणं कदं तेसिं तेषामायु:कर्म च न हरसि त्वं तस्यायुषः स्वोपभोगेनैव क्षीयमाणत्वात् कथं ते त्वया तेषां मरणं कृतमिति ॥ २६४ ॥

जो मण्णदि जीवेमि य जीविज्जामि य परेहिं सत्तेहिं ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥

॥ आ. ख्या. २५० ॥

आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू ।
आउं च ण देसि तुमं कहं तए जीवियं कयं तेसिं ॥ २६५ ॥

॥ आ. ख्या. २५१ ॥

आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू ।
आउं च ण दिंति तुहं कहं णु ते जीविदं कयं तेहिं ॥

॥ आ. ख्या. २५२ ॥

टीकार्थ– आयुके क्षयसे जीवोंका मरण होता है, ऐसा जिनवरोंने कहा हैं और उनका आयुकर्म तूं नहीं हरता है, उसका आयुष्य उसके खुदके भोगनेसे ही नष्ट होनेसे तूने उनका मरण कैसे किया ? और उनके द्वारा तेरा मरण कैसे किया गया ? ॥ २६४ ॥

गाथार्थ– [जो] जो पुरुष [मण्णदि] ऐसा मानता है कि [जीवेमि] मैं परजीवोंको जिलाता हूँ [य] और [य परेहिं सत्तेहिं] परजीव अथवा दूसरी वस्तुयें [जीविज्जामि] मुझे जिलाते हैं [सो] वह पुरुष [मूढो] मोही है [अण्णाणी] अज्ञानी है [दु] और जो [एत्तो] इससे [विवरीदो] विपरीत है वह [णाणी] ज्ञानी है । [जीवो] जीव [आउउदयेण] आयुकर्मके उदयसे [जीवदि] जीता है [एवं] इस प्रकार [सव्वण्हू] सर्वज्ञदेव [भणंति] कहते हैं [तुमं] तू [आउंच] दूसरे को आयुकर्म [ण देसि] नहीं देता है तव [तए] तूने [तेसिं] दूसरे जीवोंको [कहं] कैसे [जीविदं कयं] जीवित किया ? [जीवो] जीव [आउउदयेण] आयुकर्मके उदयसे [जीवदि] जीता है [एवं] इसप्रकार [सव्वण्हू] सर्वज्ञदेव [भणंति] कहते हैं परजीव [तुहं] तुझे [आउं] आयुकर्म [ण दिंति] नहीं देते हैं [णु] तव [तेहिं] उन दूसरे जीवोंने [ते] तुझे [जीविदं] जीवित [कहं] कैसे [कयं] किया ?

आउउदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू आयुरुदयेन जीवति जीव एवं भणंति सर्वज्ञाः। **आउं च ण देसि तुमं कहं तए जीविदं कदं तेसिं** आयुःकर्म च न ददासि त्वं तेषां जीवानां तस्यायुषः स्वकीयशुभाशुभपरिणामेनैव उपार्ज्यमाणत्वात्, कथं त्वया जीवितं कृतं? न कथमपि। किंच ज्ञानिना पुरुषेण स्वसंवित्तिलक्षणत्रिगुणत्रिगुप्तिसमाधौ स्थातव्यं तावत्। तदभावे चाशक्यानुष्ठानेन प्रमादेन अस्य मरणं करोमि, अस्य जीवितं करोमि, इति यदा विकल्पो भवति तदा मनसि चिंतयति अस्य शुभाशुभकर्मोदये सति, अहं निमित्तमात्रमेव जातः इति मत्वा मनसि रागद्वेषरूपोऽहंकारो न कर्तव्य इति भावार्थः ॥ २६५ ॥

अथ सुखदुःखमपि निश्चयेन स्वकर्मोदयवशाद् भवति, इत्युपदिशति–

जो अप्पणा दु मण्णदि दुःखिदसुहिदे करेमि सत्ते त्ति ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥ २६६ ॥

॥ आ. ख्या. २५३ ॥

जो अप्पणा दु मण्णदि दुःखिदसुहिदे करेमि सत्ते त्ति यः कर्ता आत्मनः संबंधित्वेन मन्यते। किं? दुःखितसुखितान् सत्वान् करोम्यहं। **सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो**

टीकार्थ– आयुकर्म के उदयसे जीव जीता है ऐसा सर्वज्ञ देव कहते हैं, तो फिर तूं उनको आयुकर्म नहीं देता है, क्यों कि उन जीवोंका आयुष्य अपने अपने शुभाशुभ परिणामोंसे प्राप्त किया है, तो तूने उनको जीवित कैसे किया? तूने किसी भी प्रकारसे उनको जीवित नहीं किया है इसलिये सम्यग्ज्ञानी जीवने स्वसंवित्ति लक्षणवाले सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप त्रिगुप्तिसमाधिमें (स्वानुभवमें) स्थिर रहना चाहिये। यदि प्रमादसे या अशक्तिके कारण स्वानुभवमें निरंतर स्थिर नहीं रह सकता है अथवा स्वानुभवके अभावमें जब विकल्प आता है कि मैं उसको मारता हूँ, मैं उसको जीवित करता हूँ, उस समय ज्ञानी विचार करता है कि, उसके शुभाशुभकर्मोदयसे वह जीव मरता है, वह जीव जीता है, मैं तो निमित्तमात्र (अकिंचित्कर) ही था, ऐसा मनमें मानकर, जानकर, मनमें रागद्वेषरूप अहंकार नहीं करना चाहिये। ऐसा भावार्थ है ॥ २६५ ॥

अब, निश्चयसे सुखदुःख कर्मके उदयके वशसे होते हैं, ऐसा उपदेश करते हैं–

गाथार्थ– [**जो**] जो [**त्ति मण्णदि**] ऐसा मानता है कि मैं [**अप्पणा दु**] अपने-द्वारा ही [**सत्ते**] दूसरे जीवोंको [**दुःखिदसुहिदे**] दुःखी और सुखी [**करेमि**] करता हूँ [**सो**] वह [**मूढो**] मोही है, [**अण्णाणी**] अज्ञानी है [**एत्तो दु**] इससे जो [**विवरीदो**] विपरीत है वह [**णाणी**] ज्ञानी है।

टीकार्थ– जो अपने संबंधसे जीवोंको 'मैं दुःखीसुखी करता हूँ' ऐसा मानता है, वह जो

यश्चाहमिति परिणामो निश्चितमज्ञानः स एव बंधकारणं स परिणामो यस्यास्ति स अज्ञानी बहिरात्मा एतस्माद्विपरीतः परमोपेक्षासंयमभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणे भेदज्ञाने स्थितो ज्ञानीति ॥ २६६ ॥

अथ परस्य सुखदुःखं करोमीत्यध्यवसायकः कथमज्ञानी जातः ? इति चेत्,–

कम्मणिमित्तं सव्वे दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सत्ता ।
कम्मं च ण देसि तुमं दुक्खिदसुहिदा कहं कदा ते ॥ २६७ ॥

॥ आ. ख्या २५४ ॥

कम्मणिमित्तं सव्वे दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सत्ता ।
कम्मं च ण देसि तुमं कह तं सुहिदो कदो तेहिं ॥ २६८ ॥

॥ आ. ख्या. २५६ ॥

कम्मोदयेण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे ।
कम्मं च ण देसि तुमं कह तं दुहिदो कदो तेहिं ॥ २६९ ॥

॥ आ. ख्या. २५५ ॥

अहं' याने 'मैं' रूप जो परिणाम है वह अज्ञान है, वह अज्ञान ही बंधका कारण है, वह परिणाम जिसको है वह अज्ञानी है, वहिरात्मा है। इससे विपरीत जो परम उपेक्षासंयम–भावनासे परिणत अभेदरत्नत्रयलक्षण (स्वानुभव) रूप भेदज्ञानमें रहता है, वह ज्ञानी है ॥ २६६ ॥

अब, दूसरेको मैं सुखी दुःखी करता हूँ, यह परिणाम करनेवाला (अध्यवसाय भाव करनेवाला) अज्ञानी कैसे होता है ? उसका उत्तर कहते हैं–

गाथार्थ– [**जदि**] यदि [**कम्मणिमित्तं**] कर्मोदयके निमित्तमें [**सव्वे**] सभी [**सत्ता**] जीव [**दुक्खिदसुहिदा**] दुःखी और सुखी [**हवंति**] होते हैं [**च**] और [**तुमं**] तू उनको [**कम्मं**] कर्म तो [**ण देसि**] नहीं देता है तब [**ते**] वे जीव तेरेद्वारा [**दुक्खिदसुहिदा**] दुखी और सुखी [**कहं**] कैसे [**कदा**] किये गये। [**जदि**] यदि [**कम्मणिमित्तं**] कर्मोदयके निमित्तमें [**सव्वे**] सभी [**सत्ता**] जीव [**दुक्खिदसुहिदा**] दुःखी और सुखी [**हवंति**] होते हैं [**च**] और [**तुमं कम्मं**] तुझको कर्म तो उनके द्वारा [**ण देसि**] नहीं दिया जाता है तो [**तेहिं**] उनके द्वारा [**तं**] तूझे [**सुहिदो**] सुखी [**कहं कदो**] कैसे किया? [**जदि**] यदि [**कम्मोदयेण**] कर्मोदयसे [**सव्वे**] सभी [**जीवा**] जीव [**दुक्खिदसुहिदा**] दुःखी और सुखी [**हवंति**] होते हैं [**च**] और [**तुमं कम्मं**] तुझे कर्म तो [**ण देसि**] उनके द्वारा नहीं दिया जाता है तो [**तेहिं**] उनके द्वारा [**तं**] तुझे [**दुहिदो**] दुःखी [**कहं कदो**] कैसे किया गया ?

कम्मणिमित्तं सव्वे दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सत्ता यदि चेत् कर्मोदयनिमित्तं सर्वे सत्त्वा जीवाः सुखितदुःखिता भवंति । **कम्मं च ण देसि तुमं दुक्खिदसुहिदा कहं कदा ते** तर्हि शुभाशुभं कर्म च न ददासि त्वं कथं ते जीवास्त्वया सुखितदुःखिताः कृताः ? न कथमपि । **कम्मणिमित्तं सव्वे दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सत्ता** यदि चेत्कर्मोदयनिमित्तं सर्वे जीवाः सुखित-दुःखिता भवंति **कम्मं च ण देसि तुमं कह तं सुहिदो कदो तेहिं** तर्हि शुभाशुभं कर्म च न ददासि त्वं न प्रयच्छसि तेभ्यः कथं त्वं सुखीकृतस्तैः ? न कथमपि । **कम्मोदयेण जीवा दुःखिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे** यदि चेत् कर्मोदयेन सर्वे जीवा दुःखितसुखिता भवंति **कम्मं च ण देसि तुमं कह तं दुहिदो कदो तेहिं** तर्हि शुभाशुभं कर्म च न ददासि त्वं न प्रयच्छसि तेभ्यः कथं त्वं दुःखीकृतस्तैः ? न कथमपि । किं च तत्त्वज्ञानी जीवस्तावत् 'अन्यस्मै परजीवाय सुखदुःखे ददामि, इति विकल्पं न करोति । यदा पुनर्निर्विकल्पसमाधेरभावे सति प्रमादेन सुखदुःखं करोमीति विकल्पो भवति तदा मनसि चिंतयति-अस्य जीवस्यांतरंगपुण्यपापोदयो जातः अहं पुनर्निमित्तमात्रमेव इति ज्ञात्वा मनसि हर्षविषादपरिणामेन गर्वं न करोति इति । एवं परजीवानां जीवितमरणं सुखदुःखं करोमिति व्याख्यानमुख्यतया गाथासप्तकेन द्वितीयस्थलं गतं । ॥ २६७, २६८, २६९ ॥

टीकार्थ- यदि कर्मोदयके निमित्त में सभी जीव सुखी दुःखी होते हैं और तू तो शुभाशुभ कर्म नहीं देता है तो वे जीव तेरे द्वारा सुखी और दुःखी कैसे किये गये ? याने तेरे द्वारा वे जीव किसी भी प्रकारसे सुखी दुःखी नहीं होते हैं ।

यदि कर्मोदयके निमित्तमें सभी जीव सुखीदुःखी होते हैं और तू तो उनको शुभाशुभ कर्म नहीं देता है तो उनके द्वारा तू सुखी कैसे किया गया ? याने वे तुझे किसी भी प्रकारसे सुखी नहीं कर सकते हैं ।

यदि कर्मोदयसे सभी जीव सुखीदुःखी होते हैं तू तो उनको शुभाशुभ कर्म नहीं देता है तो उनके द्वारा तू दुःखी कैसे किया गया ? याने उनके द्वारा तुझे किसी भी प्रकारसे दुःखी नहीं किया गया ।

इसका मतलब यह है कि, सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव, 'मैं दूसरे जीवको सुखदुःख देता हूँ' ऐसा विकल्प नहीं करता है । और जब निर्विकल्प समाधिके (स्वानुभूतिके) अभावमें प्रमादसे सम्यक्त्वसहित विकल्प की भूमिकामें 'मैं सुखी दुःखी करता हूँ' ऐसा विकल्प होता है, तब मनमें विचार करता है कि, उस जीवके अंतरंग पुण्य-पापोदयसे वह जीव सुखी दुःखी हुआ है और मैं निमित्तमात्र (अकिंचित्कर) ही हूँ ऐसा मनमें जानकर (मानकर) हर्षविषादपरिणामसे गर्व नहीं करता है ।

इस प्रकार मैं दूसरे जीवोंका जीवनमरण, सुखदुःख करता हूँ, इत्यादिके व्याख्यान की मुख्यतासे सात गाथाओंवाला दूसरा स्थल पूर्ण हुआ ॥ २६७, २६८, २६९ ॥

अथ परो जनः परस्य निश्चयेन जीवितमरणसुखदुःखं करोतीति योऽसौ मन्यते स बहिरात्मेति प्रतिपादयति–

जो मरदि जो य दुहिदो जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो ।
तह्मा दु मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥ २७० ॥

॥ आ. ख्या. २५७ ॥

जो ण मरदि ण य दुहिदो सो वि य कम्मोदयेण खलु जीवो ।
तह्मा ण मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥ २७१ ॥

॥ आ. ख्या. २५८ ॥

जो मरदि जो य दुहिदो जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो यो म्रियते यश्च दुःखितो भवति स सर्वोऽपि कर्मोदयेन जायते **तह्मा दु मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा** तस्मात्कारणात् मया मारितो दुःखीकृतश्चेति तवाभिप्रायोयं न खलु मिथ्या ? किंतु मिथ्यैव । **जो ण मरदि ण य दुहिदो सो वि य कम्मोदयेण** खलु **जीवो** यो न म्रियते यश्च दुःखितो न भवति । कोऽसौ ? जीवः खलु स्फुटं स सर्वोऽपि कर्मोदयेनैव **तह्मा ण मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा**

अब, दूसरा जीव निश्चयनयसे दूसरे का जीवनमरणसुखदुःख करता है ऐसा जो मानता है, वह बहिरात्मा (मिथ्यात्वसासादानमिश्रगुणस्थानवर्ती जीव) है ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**जो**] जो [**मरदि**] मरता है [**य**] और [**जो**] जो [**दुहिदो**] दुःखी होता है [**सो सव्वो**] वह सब [**कम्मोदयेण**] कर्मके उदयसे [**जायदि**] होता है, [**तह्मा दु**] इसलिये [**मारिदो**] मैंने दूसरेको मार दिया [**च दुहाविदो**] और मैंने दूसरेको दुःखी किया [**इदि**] ऐसा [**दे**] तेरा अभिप्राय [**ण हु मिच्छा**] क्या वास्तवमें मिथ्या नहीं है ? [**जो जीवो**] जो जीव [**ण मरदि**] नहीं मरता है [**य**] और [**ण दुहिदो**] जो दुःखी नहीं होता है [**सो वि य**] वह भी [**खलु**] वास्तवमें [**कम्मोदयेण**] कर्मके उदयसे ही होता है [**तह्मा**] इसलिये [**ण मारिदो च दुहाविदो**] इसको मैंने नहीं मारा है और इसको मैंने दुःखी नहीं किया है [**इदि**] ऐसा [**दे**] तेरा अभिप्राय [**ण हु मिच्छा**] क्या वास्तवमें मिथ्या नहीं है ?

टीकार्थ– जो मरता है और जो दुःखी होता है, वह सभी कर्मोदयसे होता हैं। इस कारणसे "मैंने मारा और मैंने दुखी किया," ऐसा तेरा अभिप्राय क्या वास्तवमें मिथ्या नहीं ? याने वह अभिप्राय मिथ्या ही है।

जो जीव मारा नहीं जाता और जो दुःखी नहीं किया जाता है वास्तवमें वह सब भी कर्मोदयसे ही होता है। इस कारणसे "मैंने उसे मारा, और मैंने उसे दुःखी किया," ऐसा तेरा

तस्मात् कारणात् न मारितो मया न दुःखीकृतश्चेति तवाभिप्रायोयं न खलु मिथ्या ? अपि तु मिथ्यैव । अनेनापध्यानेन स्वस्वभावाच्च्युतो भूत्वा कर्मैव वध्नातीति भावार्थः ॥ २७०, २७१ ॥

अथ स एव पूर्वसूत्रद्वयोक्तो मिथ्याज्ञानभावो मिथ्यादृष्टेर्बंधकारणं भवतीति कथयति—

एसा दु जा मदी दे दुःखिदसुहिदे करेमि सत्ते त्ति ।
एसा दे मूढमदी सुहासुहं बंधदे कम्मं ॥ २७२ ॥

॥ आ. ख्या. २५९ ॥

एसा दु जा मदी दे दुःखिदसुहिदे करेमि सत्ते ति एषा या मतिस्ते तव दुःखितसुखितान् करोम्यहं सत्वान् एसा दे मूढमदी सुहासुहं बंधदे कम्मं सैषा भवदीया मतिः हे मूढमते ! स्वस्वभावच्युतस्य शुभाशुभं कर्म वध्नाति न किमप्यन्यत्कार्यमस्ति इति ॥ २७२ ॥

अथ निश्चयेन रागाद्यध्यवसानमेव बंधहेतुर्भवति इति प्रतिपादनरूपेण तमेवार्थं दृढयति—

दुक्खिदसुहिदे सत्ते करेमि जं एवमज्झवसिदं ते ।
तं पावबंधगं वा पुण्णस्स व बंधगं होदि ॥ २७३ ॥

॥ आ. ख्या. २६० ॥

अभिप्राय क्या वास्तवमें मिथ्या नहीं ? याने इसप्रकार का तेरा अभिप्राय मिथ्या ही है और इस अपध्यानसे स्वस्यस्वभावसे (स्वानुभवसे) च्यूत होकर कर्मका बंध ही होता है, यह भावार्थ है ॥ २७०, २७१ ॥

अब, पूर्व दो गाथाओंमे कहा हुआ मिथ्याज्ञानभाव ही मिथ्यादृष्टिके बंध का कारण है ऐसा कहते हैं—

गाथार्थ— [दे दु] तेरी [एसा जा मदी] ऐसी जो बुद्धि [ति] है कि मैं [सत्ते] जीवोंको [दुःखिदसुहिदे] दुःखीसुखी [करेमि] करता हूँ [एसा दे] यह तेरी [मूढमदी] मूढबुद्धि ही [सुहासुहं] शुभ और अशुभ [कम्मं] कर्मोंको [बंधदे] बांधती है ।

टीकार्थ— हे मूढमते ! "मैं जीवोंको सुखीदुःखी करता हूँ," ऐसी जो तेरी मति है, वह आपकी मति अपने स्वभावसे (स्वानुभवसे) च्युत होनेसे शुभाशुभ कर्मको बांधती है, और इसका कुछ भी दूसरा कार्य नहीं है ॥ २७२ ॥

अब, निश्चयनयसे रागादि अध्यवसानभाव ही बंधका कारण है, ऐसा कथन करके उस ही अर्थको दृढ करते हैं—

गाथार्थ— मैं [सत्ते] जीवोंको [दुक्खिदसुहिदे] दुःखी और सुखी [करेमि] करता हूँ [एवं] इस प्रकारका जो [ते] तेरा [अज्झवसिदं] रागादि अध्यवसान है [तं] वह अध्यवसान [पावबंधगं वा] पापका बंध करनेवाला [व पुण्णस्स बंधगं] अथवा पुण्यका

मारेमि जीवावेमि य सत्ते जं एवमज्झवसिदं ते ।
तं पाववंधगं वा पुण्णस्स व बंधगं होदि ॥ २७४ ॥

॥ आ. ख्या. २६१ ॥

दुःखितसुखितान् सत्वान् करोम्यहं कर्ता यदेवमध्यवसितं रागाद्यध्यवसानं ते तव शुद्धात्मभावनाच्युतस्य सतः पापस्य पुण्यस्य वा तदेव बंधकारणं भवति न चान्यत् किमपि दुःखादिकं कर्तुमायाति । कस्मात् ? इति चेत्, तस्य सुखदुःखपरिणामस्य जीवस्य स्वोपार्जितशुभाशुभकर्माधीनत्वात् इति । मारयामि जीवयामि सत्त्वान् यदेवमध्यवसितं ते तव शुद्धात्मश्रद्धानज्ञानानुष्ठानशून्यस्य सतः पापस्य वा पुण्यस्य वा तदेव बंधकं भवति न चान्यत् किमपि कर्तुमायाति । कस्मात् ? इति चेत्, तस्य परजीवस्य जीवितमरणादेः स्वोपार्जितकर्मोदयाधीनत्वात् इति । ॥ २७३, २७४ ॥

अथैवं निश्चयनयेन हिंसाध्यवसाय एव हिंसेत्यायातं विचार्यमाणं–

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेहि मा व मारेहि ।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥ २७५ ॥

॥ आ. ख्या. २६२ ॥

बंध करनेवाला [**होदि**] होता है मैं [**सत्ते**] जीवोंको [**मारेमि**] मारता हूँ [**य**] और [**जीवावेमि**] जिलाता हूँ [**एवं जं**] इस प्रकारका जो [**ते**] तेरा [**अज्झवसिदं**] रागादि अध्यवसान है [**तं**] वह अध्यवसान [**पाववंधगं वा**] पापका बंध करनेवाला [**व पुण्णस्स बंधगं**] अथवा पुण्यका वन्ध करनेवाला [**होदि**] होता है ।

टीकार्थ– 'मैं जीवोंको दुःखी सुखी करता हूँ' इस प्रकार का जो तेरा अध्यवसित याने रागादि अध्यवसान भाव है, वह शुद्धात्मानुभवसे च्युत होनेसे पाप अथवा पुण्यके बंधका कारण है, और अन्य दूसरा कुछ भी कारण दुःखादिक करने के लिये समर्थ नहीं है क्योंकि पर जीवोंका सुखदुःखरूप परिणमन उनके स्व उपार्जित शुभाशुभकर्मके आधीन है ।

'मैं जीवोंको मारता हूँ, मैं जीवोंको जिलाता हूँ' इसप्रकार का जो तेरा अध्यवसितभाव है वह शुद्धात्मस्वभावका श्रद्धान, ज्ञान, और अनुष्ठानसे रहित होनेसे अध्यवसान ही पाप अथवा पुण्यके बंधका कारण है, और अन्य दूसरा कुछ भी नहीं कर सकता है, क्योंकि उस पर जीवका जीवनमरण उसके स्व उपार्जित कर्मोदयके आधीन है ॥ २७३, २७४ ॥

अव, इस प्रकार निश्चयनयसे विचार किया जाय तो हिंसाका अध्यवसानभाव ही हिंसा है, ऐसा सिद्ध होता है, यह कहते हैं–

गाथार्थ– [**णिच्छयणयस्स**] निश्चयनयसे [**सत्ते**] जीवोंको [**मारेहि**] मारो [**व**] अथवा [**मा मारेहि**] न मारो [**जीवाणं**] जीवोंको [**अज्झवसिदेण**] अध्यवसानसे ही [**बंधो**] कर्मबंध होता है, [**ऐसो बंधसमासो**] यह बंधका संक्षेप है ।

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेहि मा व मारेहि अध्यवसितेन परिणामेन बंधो भवति, सत्वान् मारय मा वा मारय **एसो बंधसमासो** एष प्रत्यक्षीभूतो बंधसमासः बंधसंक्षेपः। तद्विपरीतेन निरूपाधिचिदानंदैकलक्षणनिर्विकल्पसमाधिना मोक्षो भवतीति मोक्षसमासः। केषां? **जीवाणं णिच्छयणयस्स** जीवानां निश्चयनयस्येति। एवं जीवितमरणसुखदुःखानि परेषां करोमीत्यध्यवसाय एव बंधकारणं, प्राणव्यपरोपणादिव्यापारो भवतु मा भवतु। एवं सर्वं ज्ञात्वा रागाद्यपध्यानं त्यजनीयमिति व्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रषट्केन तृतीयस्थलं गतं ॥ २७५ ॥

अथ हिंसाध्यवसानं पूर्वमुक्तं तावत् इदानीं पुनः असत्याद्यव्रताध्यवसानैः पापं सत्याद्यध्यवसानैश्च पुण्यबंधो भवतीत्याख्याति–

एवमलिये अदत्ते अबंभचेरे परिग्गहे चेव।
कीरदि अज्झवसाणं जं तेण दु बज्झदे पावं ॥ २७६ ॥

॥ आ. ख्या. २६३ ॥

टीकार्थ– जीवोंको मारो अथवा न मारो, अध्यवसानसे कर्मबंध होता है, यह प्रत्यक्षीभूत बंधका संक्षेप है। उससे विपरीत निरूपाधिचिदानंदएकलक्षणवाले निर्विकल्पसमाधिसे (स्वानुभवसे) मोक्ष होता है, यह मोक्षका संक्षेप है।

शंका– किन को बंध और मोक्ष होता है?

समाधान– निश्चयनयसे अध्यवसानभावसे ही जीवोंको कर्मबंध होता है और निश्चयनयसे स्वानुभवसे ही जीवोंको मोक्ष होता है।

इस प्रकार द्रव्यप्राणोंकी हिंसा होवो अथवा न होवो 'मैं दूसरोंके जीवनमरणसुखदुःख करता हूँ' यह अध्यवसानभाव ही बंधका कारण है।

इस प्रकार सब जानकर रागादि अध्यवसानभावका त्याग करना चाहिये इस कथनकी मुख्यतासे छः गाथाओंके द्वारा तीसरा स्थल पूर्ण हुआ ॥ २७५ ॥

अब, अध्यवसानभाव ही हिंसा है यह पहले बताया है, अब यहां असत्यादि अव्रत अध्यवसानभावोंसे पापबंध होता है और सत्यादि अध्यवसानभावोंसे पुण्यबंध होता है, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**एवं**] पहले हिंसाका अध्यवसान कहा था उसके समान [**अलिये**] असत्यमें [**अदत्ते**] चोरीमें [**अबंभचेरे**] अब्रह्मचर्यमें [**चेव**] और [**परिग्गहे**] परिग्रहमें [**जं**] जो [**अज्झवसाणं**] अध्यवसान [**कीरदि**] किया जाता है [**तेण दु**] उससे ही [**पावं**] पापका [**बज्झदे**] बन्ध होता है। [**तह वि य**] और उसी प्रकार [**सच्चे**] सत्यमें [**दत्ते**] अचौर्यमें [**बंभे**] ब्रह्मचर्यमें [**चेव**] और [**अपरिग्गहत्तणे**] अपरिग्रहमें [**जं**] जो [**अज्झवसाण**] अध्यवसान [**कीरदि**] किया जाता है [**तेण दु**] उससे ही [**पुण्णं**] पुण्यका [**बज्झदे**] बंध होता है।

तह वि य सच्चे दत्ते बंभे अपरिग्गहत्तणे चेव ।
कीरदि अज्झवसाणं जं तेण दु बज्झदे पुण्णं ।। २७७ ।।

।। आ. ख्या. २६४ ।।

एवमसत्ये चौर्येऽब्रह्मणि परिग्रहे चैव यत्क्रियतेऽध्यवसानं तेन पापं बध्यते इति प्रथमगाथा गता । यश्चाचौर्ये सत्ये ब्रह्मचर्ये तथैवापरिग्रहत्वे यत्क्रियतेऽध्यवसानं तेन पुण्यं बध्यते इति व्रताव्रतविषये पुण्यपापबंधरूपेण सूत्रभूतगाथाद्वयं गतं ।। २७६, २७७ ।।

अतः परमिदमेव सूत्रद्वयं परिणाममुख्यत्वेन त्रयोदशगाथाभिर्विवृणोति । तद्यथा– बाह्यं वस्तु रागादिपरिणामकारणं परिणामस्तु बंधकारकारणमित्यावेदयति–

वत्थुं पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं तु होदि जीवाणं ।
ण हि वत्थुदो दु बंधो, अज्झवसाणेण बंधोत्थि ।। २७८ ।।

।। आ. ख्या. २६५ ।।

वत्थुं पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं तु होदि जीवाणं बाह्यवस्तु चेतनाचेतनं पंचेंद्रियविषयभूतं प्रतीत्य आश्रित्य जीवानां तत्प्रसिद्धं रागाद्यध्यवसानं भवति **ण हि वत्थुदो दु बंधो**

टीकार्थ– इसप्रकार असत्य, अचौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रहमें जो अध्यवसानभाव किया जाता है उससे पापका बंध होता है । यह प्रथम गाथा का अर्थ हुआ । और अचौर्य, सत्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रहमें जो अध्यवसान भाव किया जाता है, उससे पुण्य का बंध होता है । इसप्रकार अव्रत और व्रत इनके विषयमें पाप और पुण्य का बंध होता है यह कथन करनेवाली दो गाथायें पूर्ण हुओ ।। २७६, २७७ ।।

अब इसके आगे परिणामोंकी मुख्यतासे इन्हीं दो गाथाओं का १३ गाथाओं से विशेष वर्णन करते हैं । यहाँ कहते हैं कि, बाह्य वस्तु रागादिपरिणामोंके लिए कारण है, और रागादिपरिणाम बंधका कारण है–

गाथार्थ– [**पुण**] और [**वत्थुं पडुच्च**] वस्तुका अवलंबन करके [**जीवाणं**] जीवों के [**जं अज्झवसाणं**] जो अध्यवसान [**होदि**] होता है [**तु**] तो भी [**वत्थुदो**] वस्तुसे [**ण हि बंधो**] बंध नहीं होता है [**दु**] लेकिन वास्तवमें [**अज्झवसाणेण**] अध्यवसानसे ही [**बंधोत्ति**] बंध होता है ।

टीकार्थ– पंचेंद्रियविषयभूत चेतन-अचेतन बाह्यवस्तुका आश्रय करके जीवोंको वह प्रसिद्ध रागादि अध्यवसान होता है । वास्तवमें वस्तुसे बंध नहीं होता है, लेकिन वीतरागपरमात्मतत्त्वसे भिन्नवाले रागादि अध्यवसानसे बंध होता है ।

न हि वस्तुनः सकाशाद्बंधो भवति। तर्हि केन बंधः? **अज्झवसाणेण बंधोत्ति** वीतरागपरमात्मतत्त्वभिन्नेन रागाद्यध्यवसानेन बंधो भवति। वस्तुनः सकाशाद्बंधो कथं न भवतीति चेत्, अन्वयव्यतिरेकाभ्यां व्यभिचारात्। तथाहि-बाह्यवस्तुनि सति नियमेन बंधो भवतीति अन्वयो नास्ति, तदभावे बंधो न भवतीति व्यतिरेकोऽपि नास्ति। तर्हि किमर्थं बाह्यवस्तुत्यागः? इति चेत्, रागाद्यध्यवसानानां परिहारार्थं। अयमत्र भावार्थः। बाह्ये पंचेद्रियविषयभूते वस्तुनि सति अज्ञानभावात् रागाद्यध्यवसानं भवति, तस्मादध्यवसानाद्बंधो भवतीति पारंपार्येण वस्तु बंधकारणं भवति न च साक्षात्। अध्यवसानं पुनर्निश्चयेन बंधकारणमिति॥ २७८॥

एवं बंध हेतुत्वेन निर्धारितस्याध्यवसानस्य स्वार्थक्रियाकारित्वाभावेन मिथ्यात्वमसत्यत्वं दर्शयति-

दुक्खिदसुहिदे जीवे करेमि बंधेमि तह विमोचेमि।
जा एसा तुज्झ मदी णिरत्थया सा हु दे मिच्छा॥ २७९॥

॥ आ. ख्या. २६६॥

दुक्खिदसुहिदे जीवे करेमि बंधेमि तह विमोचेमि दुःखितसुखितान् जीवान् करोमि,

---

शंका- वस्तुसे बंध क्यों नहीं होता है?

समाधान- वस्तु और बंधमें अन्वयव्यतिरेक संबंध नहीं बैठता है, इसलिये वस्तुसे बंध नही होता है। जैसे- बाह्य वस्तुके सद्भाव होनेपर नियमसे बंध होता है, ऐसा अन्वय नहीं है, और बाह्य वस्तुके अभावमें बंध नहीं होता है, ऐसा व्यतिरेक भी नहीं है।

शंका- तो फिर बाह्य वस्तुका त्याग किसलिये किया जाता है?

समाधान- रागादि अध्यवसानोंका परिहार होनेके लिये बाह्य वस्तुका त्याग किया जाता है। इसका भावार्थ यह है कि- पंचेंद्रियविषयभूत बाह्य वस्तुके रहनेपर अज्ञानभावसे रागादि अध्यवसान होता है, इसलिये अध्यवसानसे बंध होता है। इस तरह परंपरासे (उपचारसे) बाह्य वस्तु बंधका कारण है और साक्षात् बाह्य वस्तु बंधका कारण नहीं। और निश्चयनयसे (अशुद्धनिश्चयनयसे) अध्यवसान भाव बंधका कारण है॥ २७८॥

इस प्रकार बंधहेतुवाला निर्धारित किया हुआ अध्यवसानभाव अपनी अर्थक्रिया करनेमें असमर्थ होनेसे मिथ्या है (असत्य है), यह दिखाते हैं-

गाथार्थ- [**दे**] हे भव्य आत्मन्! मैं [**जीवे**] जीवोंको [**दुक्खिदसुहिदे**] दुःखी सुखी [**करेमि**] करता हूँ, [**बंधेमि**] बंधाता हूँ, [**तह**] तथा [**विमोचेमि**] छुडाता हूँ [**जा एसा**] जो ऐसी [**तुज्झ मदी**] तेरी मति है, [**सा**] वह मति [**णिरत्थया**] निरर्थक है [**हु**] अतः वास्तवमें वह मति [**मिच्छा**] मिथ्या है।

टीकार्थ- अहो भव्य! 'मैं जीवोंको दुःखी सुखी करता हूँ, बंधाता हूँ, तथा छुडाता हूँ जो

बध्नामि (बंधयामि), तथा विमोचयामि जा एसा तुज्झ मदी णिरत्थया सा हु दे मिच्छा या एषा तव मतिः सा निरर्थिका निष्प्रयोजना हु स्फुटं । दे अहो ततः कारणात् मिथ्या वितथा व्यलीका भवति । कस्मात् ? इति चेत्, भवदीयाध्यवसाने सत्यपि परजीवानां सातासातोदयाभावात् सुखदुःखाभावः स्वकीयाशुद्धशुद्धाध्यवसानाभावात् बंधो मोक्षाभावश्चेति ॥ २७९॥

अथ कस्मादध्यवसानं स्वार्थक्रियाकारि न भवतीति चेत्—

अज्झवसाणणिमित्तं जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि ।
मुच्चंति मोक्खमग्गे ठिदा य ते किं करोसि तुमं ॥ २८० ॥

॥ आ. ख्या. २६७ ॥

अज्झवसाणणिमित्तं जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि मिथ्यात्वरागादिस्वकीयाध्यवसाननिमित्तं कृत्वा ते जीवा निश्चयेन कर्मणा बध्यन्ते इति चेत्, मुच्चंति मोक्खमग्गे ठिदा य ते शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपनिश्चयरत्नत्रयलक्षणे मोक्षमार्गे स्थिताः पुनर्मुच्यंते यदि चेत्ते जीवाः किं करोसि तुमं तर्हि किं करोषि त्वं हे दुरात्मन् ! न किमपीति, त्वदीयाध्यवसानं स्वार्थक्रियाकारि न भवति ॥ २८० ॥

ऐसी तेरी मति है वह निरर्थक है, वास्तवमें वह मिथ्या, व्यर्थ, असत्य है । क्योंकि आपने अध्यवसान भाव करने पर भी दूसरे जीवोंके साता-असाताके उदयका अभाव होनेसे उनको सुखदुःख नहीं होता है । स्वकीयाशुद्धशुद्धाध्यवसान का अभाव होनेसे बंध और मोक्षाभाव होता है । (आपने अध्यवसान भाव करनेपर भी यदि उन जीवोंका अध्यवसानभाव न होनेपर वे बद्ध नहीं होते हैं या मुक्त नहीं हैं और आपने अध्यवसान भाव न करनेपर भी यदि उन जीवोंका रागसहित अध्यवसान भाव है, तो वे बद्ध होते हैं या उन जीवोंका वीतराग अध्यवसानभाव है तो वे मुक्त होते हैं ।) ॥ २७९ ॥

अब, अध्यवसान स्वार्थक्रियाकारी क्यों नहीं है ? इसका उत्तर देते हैं—

गाथार्थ— [जदि हि] यदि वास्तवमें [अज्झवसाणणिमित्तं] अध्यवसानके निमित्तसे [जीवा] जीव [कम्मणा] कर्मोंसे [बज्झंति] बंधते हैं [य] और [मोक्खमग्गे] मोक्षमार्गमें [ठिदा] तिष्ठे हुए [ते] वे [मुच्चंति] कर्मोंसे मुक्त होते हैं तो [तुमं] तू [किं करोसि] क्या करेगा ? (अर्थात् तेरे अध्यवसानसे दूसरेकी कुछ भी अर्थक्रिया नहीं हुई ।)

टीकार्थ— यदि अपने मिथ्यात्वरागादि अध्यवसानको निमित्त करके वे जीव अशुद्धनिश्चयनयसे भावकर्मोंसे बांधे जाते हैं । और यदि शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूप निश्चयरत्नत्रयलक्षणवाले मोक्षमार्गमें जो जीव स्थित है वे कर्मोंसे मुक्त होते हैं, तो फिर, हे दुरात्मन् ! तू उनका क्या कर सकता है ? तूं उन जीवोंका कुछ भी कर नहीं सकता है । इसलिये तेरा अध्यवसान कुछ भी स्वार्थक्रियाकारी नहीं है ॥ २८० ॥

अथ दुःखिता जीवाः स्वकीयपापोदयेन भवंति न च भवदीयपरिणामेनेति–

कायेण दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ।। २८१ ।।
वाचाए दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ।। २८२ ।।
मणसाए दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ।। २८३ ।।
सच्छेण दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि ।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ।। २८४ ।।

कायेण इत्यादि स्वकीयपापोदयेन जीवा दुःखिता भवंति यदि चेत् ? तेषां जीवानां स्वकीयपापकर्मोदयाभावे भवतो किमपि कर्तुं नायाति इति हेतोः मनोवचनकायैः शस्त्रैश्च जीवान् दुःखितान् करोमि इति रे दुरात्मन् ! त्वदीया मतिर्मिथ्या ! परं किंतु स्वस्वभावच्युतो भूत्वा त्वं पापमेव बध्नासि इति ।। २८१, २८२, २८३, २८४ ।।

अब, जीव स्वकीयपापोदयसे दुःखी होते हैं और तुम्हारे अध्यवसानभावसे वे दुःखी नहीं होते हैं, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**जदि**] यदि [**सत्ता**] जीव [**कम्मेण**] अपने कर्मोंसे [**दुहिदा**] दुःखी होते हैं तो मैं [**सत्ते**] जीवोंको [**कायेण**] शरीरसे [**दुक्खवेमिय**] दुःखी करता हूँ [**एवं**] इस प्रकार से तू [**जं मदिं**] जो बुद्धि [**कुणसि**] करता है [**सव्वावि एस मिच्छा**] वह सब भी विकल्पमयबुद्धि मिथ्या है। [**जदि**] यदि [**सत्ता**] जीव [**कम्मेण**] अपने कर्मोंसे [**दुहिदा**] दुःखी होते हैं [**तु**] तो मैं [**वाचाए** [वचनसे [**सत्ते**] जीवोंको [**दुक्खवेमिय**] दुःखी करता हूँ [**एवं**] इस प्रकार से तू [**जं मदिं**] जो बुद्धि-विकल्प [**कुणसि**] करता है [**सव्वावि एस मिच्छा**] वह सब बुद्धि भी मिथ्या है। [**जदि**] यदि [**सत्ता**] जीव [**कम्मेण**] अपने कर्मोंसे [**दुहिदा**] दुःखी होते हैं [**तु**] तो मैं [**मणसाए**] मनसे [**सत्ते**] जीवोंको [**दुक्खवेमिय**] दुःखी करता हूँ [**एवं**] इसप्रकार से तू [**जं मदिं**] जो बुद्धि [**कुणसि**] करता है [**सव्वावि एस मिच्छा**] वह सब भी बुद्धि मिथ्या है। [**जदि**] यदि [**सत्ता**] जीव [**कम्मेण**] अपने कर्मोंसे [**दुहिदा**] दुःखी होते हैं [**तु**] तो मैं [**सच्छेण**] शस्त्रोंसे [**सत्ते**] जीवोंको [**दुक्खवेमिय**] दुःखी करता हूँ [**एवं**] इसप्रकार से तू [**जं मदिं**] जो बुद्धि [**कुणसि**] करता है [**सव्वावि एस मिच्छा**] वह सब भी बुद्धि मिथ्या है।

टीकार्थ– यदि जीव स्वकीय पापोदयसे दुःखी होते हैं तो उन जीवोंके स्वकीय पापोदयके अभावमें आपको कुछ भी करने को नहीं आता है, यह कारण है। तो हे दुरात्मन् ! 'मैं मनवचनकायसे और शस्त्रोंसे जीवोंको दुःखी करता हूँ,' यह तेरी बुद्धि मिथ्या है। लेकिन तू स्वस्वभावसे (स्वानुभवसे) च्युत होकर पापको ही बांधता है ।। २८१, २८२, २८३, २८४ ।।

अथ सुखिता अपि निश्चयेन स्वकीयशुभकर्मोदये सति भवंतीति कथयति–

कायेण च वाया वा मणेण सुहिदे करेमि सत्ते ति ।
एवं पि हवदि मिच्छा सुहिदा कम्मेण जदि सत्ता ।। २८५ ।।

स्वकीयकर्मोदयेन जीवा यदि चेत् सुखिता भवंति न च त्वदीयपरिणामेन तर्हि मनोवचनकायैर्जीवान् सुखितानहं करोमि इति भवदीया मतिर्मिथ्या । एवं तवाध्यवसानं स्वार्थकं न भवति । परं किंतु निरुपरागपरमचिज्ज्योतिःस्वभावे स्वशुद्धात्मतत्त्वमश्रद्दधानः, तथैवाजानन् अभावयंश्च तेन शुभपरिणामेन पुण्यमेव बध्नाति इत्यर्थः ।। २८५ ।।

अथ स्वस्वभावप्रतिपक्षभूतेन च रागाद्यध्यवसानेन मोहितः सन्नयं जीवः समस्तमपि परद्रव्यमात्मनि नियोजयति इत्युपदिशति–

सव्वे करेइ जीवो अज्झवसाणेण तिरियणेरयिए ।
देवमणुये य सव्वे पुण्णं पावं च णेयविहं ।। २८६ ।।

।। आ. ख्या. २६८ ।।

धम्माधम्मं च तहा जीवाजीवे अलोयलोयं च ।
सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण अप्पाणं ।। २८७ ।।

।। आ. ख्या. २६९ ।।

अब, अशुद्धनिश्चयनयसे स्वकीय शुभकर्मोदय होनेपर जीव सुखी होते हैं, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**जदि**] यदि [**सत्ता**] जीव [**कम्मेण**] अपने कर्मोंसे [**सुहिदा**] सुखी होते हैं [**ति**] तो फिर मैं [**कायेण च वाया वा मणेण**] मन अथवा वचन अथवा कायासे [**सत्ते**] जीवोंको [**सुहिदे**] सुखी [**करेमि**] करता हूँ [**एवं पि मिच्छा**] ऐसी बुद्धि भी मिथ्या [**हवदि**] है ।

टीकार्थ– यदि जीव स्वकीय कर्मोदयसे सुखी होते हैं । और तेरे परिणामसे सुखी नहीं होते हैं तो फिर " मैं मनवचनकाय के द्वारा जीवोंको सुखी करता हूँ, " यह आपकी मति मिथ्या है । इस प्रकार तेरा अध्यवसान स्वार्थक्रियाकारी नहीं है । किंतु निरुपरागपरमचैतन्यज्योतिस्वभावमय स्वशुद्धात्मतत्वका श्रद्धान न होनेसे, शुभपरिणामसे पुण्य ही बांधता है ।। २८५ ।।

अब, स्वस्वभावके प्रतिपक्षभूत रागादि अध्यवसान से मोहित होकर यह जीव सभी परद्रव्योंको अपने आत्मामें (अपने स्वभावमय) मानता है, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**जीवो**] जीव [**अज्झवसाणेण**] अध्यवसानसे [**तिरियणेरयिए**] तिर्यञ्च नारक [**य**] और [**देवमणुये**] देव, मनुष्य [**सव्वे**] इन सब पर्यायरूप [**च**] और [**णेयविहं पुण्णं पावं**] अनेक प्रकारके पुण्य पापोंको अपने [**करेइ**] करता है [**तहा च**] और उसीप्रकार [**जीवो**] जीव [**अज्झवसाणेण**] अध्यवसानसे [**धम्माधम्मं**] धर्म अधर्म [**जीवाजीवे**] जीव अजीव [**च अलोयलोयं**] अलोक और लोक [**सव्वे**] इन सभी को

उदयागतनरकगत्यादिकर्मवशेन नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवपापपुण्यरूपान् कर्मजनितभावान् आत्मानं करोति आत्मनः संबंधात्करोति। निर्विकारपरमात्मतत्त्वज्ञानाद् भ्रष्टः सन् नारकोऽहमित्यादिरूपेण, उदयागतकर्मजनितविभावपरिणामान् आत्मनि योजयतीत्यर्थः। धर्माधर्मास्तिकायजीवाजीवलोकालोकज्ञेयपदार्थान् अध्यवसानेन तत्परिच्छित्तिविकल्पेनात्मानं करोति, आत्मनः संबंधात् करोतीत्यभिप्रायः। किं च, यथा घटाकारपरिणतं ज्ञानं घट इत्युपचारेणोच्यते तथा धर्मास्तिकायादिज्ञेयपदार्थविषये धर्मोऽयमित्यादि योऽसौ परिच्छित्तिरूपो विकल्पः सोप्युपचारेण धर्मास्तिकादिर्भण्यते। कथं? इति चेत्, धर्मास्तिकायादिविषयत्वात्। स्वस्वभावच्युतो भूत्वा यदा धर्मास्तिकायोयमित्यादिविकल्पं करोति तदा तस्मिन् विकल्पे कृते सति धर्मास्तिकायादिरप्युपचारेण कृतो भवति॥ २८६, २८७॥

अथ निश्चयेन परद्रव्याद्भिन्नोऽपि यस्य मोहस्य प्रभावात् आत्मानं परद्रव्ये योजयति स मोहो येषां नास्ति त एव तपोधना इति प्रकाशयति–

एदाणि णत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीणि।
ते असुहेण सुहेण य कम्मेण मुणी ण लिप्पंति॥ २८८॥

॥ आ. ख्या. २७०॥

[**अप्पाणं**] आत्मस्वरूप [**करेदि**] करता है।

टीकार्थ– उदयागतनरकगति आदि कर्मके वशसे नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव, पाप और पुण्यरूप कर्मजनित भावोंको अपने आत्मस्वभावस्वरूप मानता है। निर्विकारपरमात्मतत्त्वके अनुभवसे भ्रष्ट होकर "मैं नारकी हूँ," इत्यादि रूपसे उदयागतकर्मजनितविभावपरिणामोंको अपने आत्माके स्वभावमें योजता (मानता) है। अध्यवसानसे धर्म, अधर्म, जीव, अजीव, लोक, अलोक आदि ज्ञेयपदार्थोंको और उनकी जानकारीरूप विकल्पोंको अपने आत्मस्वभावमय मानता है। जैसे घटाकार परिणत ज्ञानको उपचारसे 'घट' ऐसा कहते हैं, वैसे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीव, अजीव, आकाश आदि ज्ञेयपदार्थोंके विषयमें "यह धर्मद्रव्य है" इत्यादि ज्ञानरूप विकल्प को भी उपचारसे धर्मास्तिकाय आदि कहते हैं, क्योंकि वह विकल्प धर्मास्तिकाय आदिको विषय करनेवाला है। स्वस्वभावसे (स्वानुभवसे) च्युत होकर जब "यह धर्मास्तिकाय है" इत्यादि विकल्प करता है, तब वह विकल्प करते समय उपचारसे उनको धर्मास्तिकायादि ऐसा कहते हैं॥ २८६, २८७॥

अब, निश्चयनयसे आत्मा परद्रव्योंसे भिन्न है, तो भी जिस मोहके प्रभावसे आत्माको परद्रव्यमें योजता है (मानता है), वह मोहभाव जिनको नहीं है वे ही तपोधन हैं, ऐसा दिखाते हैं–

गाथार्थ– [**एदाणि**] ये पूर्वमें कहे गये अध्यवसान [**एवमादीणि**] तथा इस तरहके अन्य भी [**अज्झवसाणाणि**] अध्यवसान [**जेसिं**] जिनके [**णत्थि**] नहीं हैं [**ते मुणी**] वे

एदाणि णत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीणि एतान्येवमादीनि पूर्वोक्तानि शुभाशुभाध्यवसानानि कर्मबंधनिमित्तभूतानि न संति येषां ते **असुहेण सुहेण य कम्मेण मुणी ण लिप्पंति** त एव मुनीश्वराः शुभाशुभकर्मणा न लिप्यन्ते। किं च विस्तरः, शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपं निश्चयरत्नत्रयलक्षणं भेदविज्ञानं यदा न भवति तदाहं जीवान् हिनस्मीत्यादि हिंसाध्यवसानं नारकोहमित्यादि कर्मोदयाध्यवसानं, धर्मास्तिकायोयमित्यादि ज्ञेयपदार्थाध्यवसानं च निर्विकल्पशुद्धात्मनः सकाशाद्भिन्नं न जानातीति। तदजानन् हिंसाध्यवसानविकल्पेन सहात्मानमभेदेन श्रद्दधाति, जानाति, अनुचरति च ततो मिथ्यादृष्टिर्भवति मिथ्याज्ञानी भवति मिथ्याचारित्री भवति। ततः कर्मबन्धः स्यात्। यदा पुनः पूर्वोक्तभेदविज्ञानं भवति तदा सम्यग्दृष्टिर्भवति सम्यग्ज्ञानी भवति सम्यक्चारित्री भवति ततः कर्मबन्धो न भवतीति भावार्थः ॥ २८८ ॥

कियंतं कालं परभावानात्मनि योजयतीति चेत्,

जा संकप्पवियप्पो ता कम्मं कुणदि असुहसुहजणयं।
अप्पसरूवा रिद्धि जाव ण हियए परिप्फुरइ ॥ २८९ ॥

मुनि [**असुहेण**] अशुभ [**य**] और [**सुहेण**] शुभ [**कम्मेण**] कर्मसे [**ण लिप्पंति**] लिप्त नहीं होते हैं।

टीकार्थ– ये पहले बताये गये और इसी प्रकार के अन्य भी जो कर्मबंधके निमित्तभूत शुभाशुभ अध्यवसानभाव जिनके नहीं हैं, वे ही मुनीश्वर शुभाशुभ कर्मसे लिप्त नहीं होते हैं। इसका स्पष्टीकरण यह है कि, शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूप निश्चयरत्नत्रयलक्षणवाला भेदज्ञान जब नहीं होता है तब 'मैं जीवोंको मारता हूँ' इत्यादि हिंसात्मक अध्यवसान को, 'मैं नारकी हूँ' इत्यादि कर्मोदयजनित अध्यवसान को, और 'यह धर्मास्तिकाय है' इत्यादि ज्ञेयपदार्थके अध्यवसानको निर्विकल्पस्वभावशुद्धात्मासे भिन्न नहीं जानता है। उसे न जाननेवाला हिंसाध्यवसानविकल्पकेसाथ अपने आत्मस्वभावको अभेद करके श्रद्धा करता है, जानता है, और आचरण करता है, इसलिये वह जीव मिथ्यादृष्टि हैं, मिथ्याज्ञानी है और मिथ्याचारित्री है। इसलिये उसे कर्मबंध होता है। और जब पूर्वोक्त हिंसादि अध्यवसानको अपने आत्मस्वभावसे भिन्न जाननेवाला ऐसा भेदविज्ञान होता है, तब वह जीव (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी और सम्यक्चारित्रवाला होता है, इसलिये उस भेदज्ञानी को कर्मबंध नहीं होता है ऐसा भावार्थ है ॥ २८८ ॥

यह जीव परभावोंको अपने आत्मस्वभावमें कब तक योजता (मानता) है इसका कथन करते हैं–

गाथार्थ– [**जा**] जबतक [**संकप्पवियप्पो**] संकल्प विकल्प है तबतक [**अप्पसरूवा रिद्धि**] आत्मस्वभावमय ऋद्धि (स्वात्मानुभूति) [**हियए**] हृदयमें [**ण परिप्फुरइ**] प्रगट नहीं होती है [**जाव**] जबतक स्वानुभूति प्रगट नहीं होती है [**ता**] तबतक वह जीव [**असुहसुहजणयं**] अशुभशुभ जनक [**कम्मं**] कर्म [**कुणदि**] करता है।

यावत्कालं बहिर्विषये देहपुत्रकलत्रादौ ममेतिरूपं संकल्पं करोति अभ्यंतरे हर्षविषादरूपं विकल्पं च करोति तावत्कालमनंतज्ञानादिसमृद्धिरूपमात्मानं हृदये न जानाति। यावत्कालमित्थंभूत आत्मा हृदये न परिस्फुरति तावत्कालं शुभाशुभजनकं कर्म करोतीत्यर्थः ॥ २८९ ॥

अथाध्यवसानस्य नाममालामाह–

बुद्धी ववसाओवि य अज्झवसाणं मई य विण्णाणं।
एक्कट्ठमेव सव्वं चित्तं भावो य परिणामो ॥ २९० ॥

॥ आ. ख्या. २७१ ॥

बोधनं बुद्धिः, व्यवसनं व्यवसायः, अध्यवसानमध्यवसायः, मननं पर्यालोचनं मतिश्च, विज्ञायते अनेनेति विज्ञानं, चिंतनं चित्तं, भवनं भावः, परिणमनं परिणामः, इति शब्दभेदेऽपि नार्थभेदः, किंतु सर्वोऽपि समभिरूढनयापेक्षयाऽध्यवसानार्थ एव। कथं ? इति चेत्, यथेंद्रः शक्रः पुरंदर इति। एवं व्रतैः पुण्यं, अव्रतैः पापमिति कथनेन सूत्रद्वयं पूर्वमेव व्याख्यातं तस्यैव सूत्रद्वयस्य विशेषविवरणार्थं बाह्यं वस्तु रागाद्यध्यवसानकारणं रागाद्यध्यवसानं तु बंधकारणमिति कथनमुख्यत्वेन त्रयोदश गाथा गताः, इति समुदायेन पंचदशसूत्रैश्चतुर्थस्थलं समाप्तं ॥ २९० ॥

टीकार्थ– जबतक देह पुत्र कलत्र आदि बाह्यविषयमें "ये सब मेरे हैं" ऐसा ममत्वभावमय संकल्प करता है और अभ्यंतरमें (अंतरंगमें) हर्षविषादरूप विकल्प करता है तबतक अनंतज्ञानादिसमृद्धिमय आत्मस्वभावको हृदयमें नहीं जानता है। जबतक इसप्रकार स्वात्मानुभव हृदयमें प्रगट नहीं होता है, तबतक शुभाशुभजनक कर्म करता है ॥ २८९ ॥

अब, अध्यवसान शब्दके पर्याय नाम कहते हैं–

गाथार्थ– [**बुद्धी**] बुद्धि [**ववसाओ वि य**] व्यवसाय और [**अज्झवसाणं**] अध्यवसान [**मई**] मति [**य**] और [**विण्णाणं**] विज्ञान [**चित्तं**] चित्त [**भावो**] भाव [**य**] और [**परिणामो**] परिणाम] **सव्वं**] ये सब [**एक्कट्ठमेव**] एकार्थ ही हैं, नाम भेद है इनका अर्थ भिन्न नहीं है।

टीकार्थ– बोधन याने जाननमात्र सो बुद्धि, व्यवसन अर्थात् जाननेमात्रके रूपमें क्रिया सो व्यवसाय, अध्यवसान याने समझ लेना सो अध्यवसाय, मनन अर्थात् पर्यालोचन करना मति, विज्ञान अर्थात् जिसके द्वारा विशेषको जाने सो विज्ञान, चिन्तनं याने चितवन (स्मरण) करना वह चित्त, भवन याने चेतनाका होना सो भाव, परिणमन याने चेतनाका परिणमन सो परिणाम, इस प्रकार शब्द भेद है तो भी अर्थ भेद नहीं है। किन्तु समभिरूढनयकी अपेक्षासे सभी शब्दोंका अर्थ अध्यवसान ऐसा ही है। जैसे इंद्र, शक्र, पुरंदर एकार्थ वाचक है। इसप्रकार व्रतोंसे पुण्य, अव्रतोंसे पाप ऐसा जो पूर्वमें दो गाथाओं के द्वारा कहा गया था, उन दोनों गाथाओंका ही विशेष विवरण करने के लिये बाह्यवस्तु रागादि अध्यवसानका कारण है और रागादि अध्यवसान बंधका कारण है, इस कथन की मुख्यतासे १३ गाथायें पूर्ण हुयी। इसप्रकार समुदायसे १५ गाथाओंके द्वारा चतुर्थस्थलका कथन समाप्त हुआ ॥ २९० ॥

अतः परमभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिरूपेण निश्चयनयेन विकल्पात्मकव्यवहारनयो हि बाध्यत इति कथनमुख्यत्वेन गाथाषट्कपर्यंतं व्याख्यानं करोति–

एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण ।
णिच्छयणयसल्लीणा मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥ २९१ ॥

॥ आ. ख्या. २७२ ॥

एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण एवं पूर्वोक्तप्रकारेण परद्रव्याश्रितत्वाद् व्यवहारनयः प्रतिषिद्ध इति जानीहि । केन कर्तृभूतेन ? शुद्धात्मद्रव्याश्रितनिश्चयनयेन । कस्मात् ? **णिच्छयणयसल्लीणा मुणिणो पावंति णिव्वाणं** निश्चयनयमालीना आश्रिताः स्थिताः संतो मुनयो निर्वाणं लभंते यतः कारणादिति । किं च यद्यपि प्राथमिकापेक्षया प्रारम्भप्रस्तावे सविकल्पावस्थायां निश्चयसाधकत्वाद् व्यवहारनयः सप्रयोजनस्तथापि विशुद्धज्ञानदर्शनलक्षणे शुद्धात्मनि स्थितानां

इसके आगे अभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिरूप निश्चयनयसे विकल्पात्मक व्यवहारनय का निषेध किया जाता है, इस कथनकी मुख्यतासे छः गाथाओंतक व्याख्यान करते हैं–

गाथार्थ– [**एवं**] इसप्रकार [**ववहारणओ**] व्यवहारनय [**णिच्छयणयेण**] निश्चयनयसे [**पडिसिद्धो**] निषिद्ध [**जाण**] जानो [**पुण**] और [**णिच्छयणयसल्लीणा**] निश्चयनयमें लीन रहनेवाले [**मुणिणो**] मुनि [**णिव्वाणं**] निर्वाण [**पावंति**] प्राप्त करते हैं ।

टीकार्थ– इस प्रकार जो पहले कहा गया है उससे परद्रव्यके आश्रित होनेसे व्यवहारनय निषिद्ध है, ऐसा जानो ।

शंका– किसके द्वारा व्यवहारनय निषिद्ध है ?

समाधान– स्वशुद्धात्मद्रव्यआश्रितनिश्चयनय से परद्रव्यको आश्रय करनेवाला विकल्पात्मक व्यवहारनय निषिद्ध है ।

शंका– क्यों ?

समाधान– निश्चयनयमें लीन रहनेवाले (निश्चयनय के विषयका आश्रय करनेवाले) मुनि निर्वाण प्राप्त करते हैं और व्यवहारनयका आश्रय करनेसे विकल्प होता है इस कारणसे व्यवहारनयका निषेध किया जाता है ।

और विशेष यह है कि, यद्यपि प्राथमिक अपेक्षासे याने (मिथ्यादृष्टि अथवा सविकल्पभूमिकाकी अपेक्षासे) प्रारंभकी सविकल्प अवस्थामें शुद्धद्रव्यका, द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान होनेके लिये व्यवहारनय सप्रयोजन है, तथापि विशुद्धज्ञानदर्शनलक्षणवाले शुद्धात्मामें स्थित होनेवालेको (स्वानुभव करने के लिये) व्यवहारनय निष्प्रयोजन है । ऐसा भावार्थ है ।

शंका– व्यवहारनय निष्प्रयोजन कैसे ?

निष्प्रयोजन इति भावार्थः। कथं निष्प्रयोजनः? इति चेत्, कर्मभिरमुच्यमानेनाभव्येनाप्याश्रियमाणत्वात् ॥ २९१ ॥

वदसमिदीगुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
कुव्वंतो वि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु ॥ २९२ ॥

॥ आ. ख्या. २७३ ॥

वदसमिदीगुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहिं पण्णत्तं व्रतसमितिगुप्तिशीलतपश्चरणादिकं जिनवरैः प्रज्ञप्तं कथितं **कुव्वंतो वि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठीओ** मंदमिथ्यात्वमंदकषायोदये सति कुर्वन्नप्यभव्यो जीवस्त्वज्ञानी भवति मिथ्यादृष्टिश्च भवति। कस्मात्? इति चेत्, मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृत्युपशमक्षयोपशमक्षयाभावात् शुद्धात्मोपादेयश्रद्धानाभावात् इति ॥ २९२ ॥

समाधान– कर्मोंसे बद्ध रहनेवाले अभव्य जीवके द्वारा भी व्यवहारनयका आश्रय किया जाता है। लेकिन निश्चयनयका आश्रय न करनेसे स्वशुद्धात्मानुभव नहीं होता है। इसलिये व्यवहारनयका आश्रय करनेवाले का मोक्षमार्ग शुरु नहीं होता है और उसे मोक्ष प्राप्त नहीं होता है ॥ २९१ ॥

गाथार्थ– [**अभव्वो दु अण्णाणी**] अभव्य अथवा अज्ञानी भव्य-स्वानुभवरहित जीव [**वदसमिदीगुत्तीओ सीलतवं**] व्रत, समिति, गुप्ति शील और तपश्चरण को [**कुव्वंतो वि**] करता हुआ भी [**मिच्छादिट्ठी**] मिथ्यादृष्टि रहता है ऐसा [**जिणवरेहिं**] जिनवरोंने [**पण्णत्तं**] कहा हैं।

टीकार्थ– मिथ्यात्व तथा कषाय का मंद उदय होनेपर जिनवरोंके द्वारा कहे हुअे व्रत, समिति, गुप्ति, शील, तपश्चरण आदि (व्यवहार) को करनेवाला अभव्य जीव अथवा भव्य जीव अज्ञानी और मिथ्यादृष्टि ही रहता है।

शंका– अभव्यजीव अथवा अज्ञानी भव्य जीव व्रतादिकका (व्यवहारनयका) आश्रय करते हुअे भी मिथ्यादृष्टि क्यों रहता है?

समाधान– आगमभाषासे

अभव्यजीव अथवा अज्ञानी भव्य जीव व्यवहारका (व्रतादिकका) आश्रय करते हुअे भी मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियोंका उपशम, क्षयोपशम, क्षय न होनेसे मिथ्यादृष्टि रहता है

अध्यात्मभाषासे

अभव्य जीव अथवा अज्ञानी भव्य जीव स्वशुद्धात्मस्वभाव उपादेय है ऐसा श्रद्धान (अर्थात् स्वशुद्धात्मस्वभावका आश्रय) न करनेसे मिथ्यादृष्टि रहता है। ॥ २९२ ॥

अथ तस्यैकादशांगश्रुतज्ञानमस्ति कथमज्ञानी ? इति चेत्–

मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीयेज्ज ।
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु ।। २९३ ।।

।। आ. ख्या. २७४ ।।

मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीयेज्ज मोक्षमश्रद्दधानः सन्नभव्यजीवो यद्यपि ख्यातिपूजालाभार्थमेकादशांगश्रुताध्ययनं कुर्यात् **पाठो ण करेदि गुणं** तथापि तस्य शास्त्रपाठः शुद्धात्मपरिज्ञानरूपं गुणं न करोति । किं कुर्वतस्तस्य ? **असद्दहंतस्स णाणं तु** अश्रद्दधतोऽरोच-

---

अब, अभव्यजीवको अथवा अज्ञानी भव्य जीवको ११ अंगका श्रुतज्ञान होता है, तो वह अज्ञानी कैसे ? उसका उत्तर कहते हैं–

गाथार्थ– [**जो**] जो [**अभवियसत्तो**] अभव्य जीव [**अधीयेज्ज**] शास्त्रका पाठ भी करता है [**दु**] किन्तु [**मोक्खं**] मोक्षस्वरूप अपने स्वभावका [**असद्दहंतो**] श्रद्धान –अनुभव वा प्रतीति नहीं करता है [**दु**] इसलिये [**णाणं असद्दहंतस्स**] ज्ञानका श्रद्धान नहीं करनेवाले उस अभव्य जीवका अथवा अज्ञानी भव्य जीवका [**पाठो**] शास्त्रका अभ्यास [**गुणं ण करेदि**] लाभदायक नहीं होता है अर्थात् उसको स्वानुभव नहीं होता है ।

टीकार्थ– मोक्षस्वरूप अपने स्वभावका श्रद्धान न करनेवाला अभव्य जीव यद्यपि ख्याति, पूजा, लाभ आदिके लिये ११ अंगश्रुत का अभ्यास करे तो भी उसका शास्त्राध्ययन शुद्धात्मपरिज्ञानस्वरूप (स्वानुभवस्वरूप) गुण को नहीं करता है ।

शंका– क्या करनेसे (अभव्य अथवा अज्ञानी भव्य) जीवको स्वानुभव प्राप्त नहीं होता ?

समाधान– अभव्य जीव (अथवा अज्ञानी भव्य जीव भी जबतक) अश्रद्धान करता है (याने स्वप्रतीति, स्वानुभूति नहीं करता है ।)

शंका– किसकी प्रतीति नहीं करता है ?

समाधान– ज्ञानकी प्रतीति नहीं करता है ।

शंका– कौनसे ज्ञानकी प्रतीति अथवा अनुभूति नहीं करता है ?

समाधान– (अध्यात्मभाषासे) ज्ञानकी प्रतीति (ज्ञानकी अनुभूति) याने शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानअनुष्ठानरूप निर्विकल्प समाधिसे (स्वानुभवसे) प्राप्य होनेवाले शुद्धात्मस्वभावकी प्रतीति न करनेसे ११ अंग ९ पूर्वतक का शास्त्र अध्ययन कार्यकारी (लाभदायक) नहीं होता है ।

शंका– क्यों श्रद्धा नहीं करता है ?

समाधान– उस अध्ययनसे दर्शनचारित्रमोहनीयका उपशम, क्षयोपशम, क्षय नहीं करता है ।

शंका– क्यों ?

मानस्य । किं ? ज्ञानं । कोऽर्थः ? शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेण निर्विकल्पसमाधिना प्राप्यं गम्यं शुद्धात्मस्वरूपमिति । कस्मान्न श्रद्धत्ते ? दर्शनचारित्रमोहनीयोपशमक्षयोपशमक्षयाभावात् । तदपि कस्मात् ? अभव्यत्वादिति भावार्थः ॥ २९३ ॥

अथ तस्य पुण्यरूपधर्मादिश्रद्धानमस्तीति चेत्,

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि य ।
धम्मं भोगणिमित्तं ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥ २९४ ॥

॥ आ. ख्या. २७५ ॥

सद्दहदि य श्रद्धत्ते च **पत्तेदि य** ज्ञानरूपेण प्रत्येति च प्रतीतिं परिच्छित्तिं करोति **रोचेदि य** विशेषश्रद्धानरूपेण रोचते च **तह पुणो वि फासेदि य** तथा पुनः स्पृशति च अनुष्ठानरूपेण । कं ? **धम्मं भोगणिमित्तं** अहमिंद्रादिपदवीकारणत्वादिति मत्वा भोगाकांक्षारूपेण पुण्यरूपं धर्मं **ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं** न च कर्मक्षयनिमित्तं शुद्धात्मसंवित्तिलक्षणं निश्चयधर्ममिति ॥ २९४ ॥

समाधान– अभव्य जीव अभव्य होनेसे (अपने स्वस्वभाव की प्रतीति करनेका पुरुषार्थ कभी भी नहीं करनेसे) उसको शास्त्र अध्ययनका लाभ नहीं होता है। (उसी तरह भव्य जीव भी यदि शास्त्र अध्ययन करता है लेकिन अपने स्वस्वभावकी प्रतीति अथवा अनुभूति करनेका जबतक पुरुषार्थ नहीं करता है तबतक उस शास्त्र अध्ययनका लाभ नहीं होता है) ऐसा भावार्थ है ॥ २९३ ॥

अब, उस अभव्यका पुण्यरूप धर्म आदिका श्रद्धान है तो उसको श्रद्धान नहीं है, ऐसा आपने कैसे कहा ? इस प्रश्नका उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**सो**] वह जीव [**धम्मं**] धर्मका [**सद्दहदि य**] श्रद्धान भी करता है [**पत्तेदि य**] प्रतीति भी करता है और [**रोचेदि य**] रुचि करता है [**तह**] तथा [**फासेदि य**] स्पर्श-अनुष्ठान करता है [**पुणो वि**] तो भी वह [**भोगणिमित्तं**] संसारभोग-पंचेंद्रियके विषयभोग के लिये करता है, [**हु**] वास्तवमें [**कम्मक्खयणिमित्तं**] कर्मका क्षय करने के लिये [**ण**] नहीं करता है।

टीकार्थ– वह जीव धर्मका श्रद्धान करता है और ज्ञानरूपसे प्रतीति करता है– जानता है और विशेषरूपसे श्रद्धानरूप रुचि भी करता है तथा अनुष्ठानरूपसे स्पर्श भी करता है उस धर्मसे अहमिंद्र इत्यादि पद प्राप्त होंगे, यह मानकर भोगाकांक्षारूपसे पुण्यरूप धर्मका श्रद्धान, प्रतीति, रुचि और आचरण करता है, लेकिन वास्तवमें आगमभाषासे कर्म के क्षयके लिये, अर्थात् अध्यात्मभाषासे शुद्धात्मानुभववाले निश्चयधर्मकी श्रद्धा, प्रतीति, रुचि, अनुभूति नहीं करता है। इसलिये उसकी सच्ची निश्चयधर्मकी श्रद्धा नहीं है ॥ २९४ ॥

अथ कीदृशौ तौ प्रतिषेध्यप्रतिषेधकौ व्यवहारनिश्चयनयाविति चेत्,

आयारादी णाणं जीवादी दंसणं च विण्णेयं ।
छज्जीवाणं रक्खा भणदि चरित्तं तु ववहारो ॥ २९५ ॥

॥ आ. ख्या. २७६ ॥

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य ।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥ २९६ ॥

॥ आ. ख्या. २७७ ॥

आयारादी णाणं आचारसूत्रकृतमित्यादौ एकादशांगशब्दशास्त्रं ज्ञानस्याश्रयत्वात्कारणत्वाद् व्यवहारेण ज्ञानं भवति । **जीवादी दंसणं च विण्णेयं** जीवादिनवपदार्थाः श्रद्धानविषयः सम्यक्त्वाश्रयत्वान्निमित्तत्वाद् व्यवहारेण सम्यक्त्वं भवति । **छज्जीवाणं रक्खा भणदि चरित्तं तु ववहारो** षट्जीवनिकायरक्षा चारित्राश्रयत्वात् हेतुत्वाद् व्यवहारेण चारित्रं भवति एवं पराश्रितत्वेन व्यवहारमोक्षमार्गः प्रोक्त इति । **आदा खु मज्झ णाणे** स्वशुद्धात्मा ज्ञानस्याश्रयत्वान्निमित्तत्वान्निश्चयनयेन मम सम्यग्ज्ञानं भवति । **आदा मे दंसणे** शुद्धात्मा सम्यग्दर्शनस्याश्रयत्वात् कारणत्वात् निश्चयेन सम्यग्दर्शनं भवति **चरित्ते य** शुद्धात्मा चारित्रस्याश्रयत्वाद्धेतुत्वात् निश्चयेन सम्यक्-

---

अब व्यवहारनय प्रतिषेध्य और निश्चयनय प्रतिषेधक किस तरह है ? इस प्रश्नका उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**आयारादी णाणं**] आचारांगादि शास्त्रका पढ़ना ज्ञान है [**जीवादी दंसणं**] जीवादि नवपदार्थों का श्रद्धान दर्शन है [**च**] और [**छज्जीवाणं**] छः कायके जीवोंकी [**रक्खा**] रक्षा [**चरित्तं**] चारित्र है [**विण्णेयं**] इसतरह के जाननेको [**ववहारो भणदि**] व्यवहारनय कहते हैं [**तु**] लेकिन [**खु**] निश्चय से [**मज्झ आदा**] मेरा आत्मा ही [**णाणे**] ज्ञान है [**मे आदा**] मेरा आत्मा ही [**दंसणे**] दर्शन है [**य चरित्ते**] और मेरा आत्मा ही चारित्र है [**आदा**] आत्मा ही [**पच्चक्खाणे**] प्रत्याख्यान है [**मे आदा**] मेरा आत्मा ही [**संवरे जोगे**] संवर और योग है ।

टीकार्थ– आचारांग, सूत्रकृतांग आदि ११ अंगरूप जो शब्दशास्त्र है (उसका जानना ज्ञान है ।) वह ज्ञानका आश्रय होनेके कारण व्यवहारसे सम्यग्ज्ञान है । जीवादि नवपदार्थ श्रद्धानका विषय है उनका सम्यक्त्व के लिये आश्रय करनेसे वे सम्यक्त्वको निमित्त है, इसलिए व्यवहारसे (उपचारसे) वह सम्यक्त्व है और छह कायके जीवोंकी रक्षा करना चारित्र है, उस चारित्रका आश्रय करनेसे (उस कारणसे) वह आचरण व्यवहारसे चारित्र है । इसतरह इसमें पराश्रितपना होनेसे उसे व्यवहार मोक्षमार्ग (उपचार मोक्षमार्ग) कहा गया है । लेकिन निश्चयनयसे अपने स्वभावमय शुद्धात्माका आश्रय करनेसे याने अपने स्वभावमय शुद्धात्माको निमित्त करनेसे जो ज्ञान होता है वह शुद्धात्मा ही मेरा सम्यग्ज्ञान है । निश्चयनयसे दर्शनमें अपने स्वभावमय शुद्धात्माका आश्रय होनेसे (दर्शनमें अपने स्वभावमय शुद्धात्माको निमित्त

चारित्रं भवति । **आदा पच्चक्खाणे** शुद्धात्मा रागादिपरित्यागलक्षणस्य प्रत्याख्यानस्याश्रयत्वात्कारणत्वात् निश्चयेन प्रत्याख्यानं भवति **आदामे संवरे** शुद्धात्मा स्वरूपोपलब्धिबलेन हर्षविषादादिनिरोधलक्षणसंवरस्याश्रयत्वान्निश्चयेन संवरो भवति । **जोगे** शुद्धात्मा शुभाशुभचितानिरोधलक्षणपरमध्यानशब्दवाच्ययोगस्याश्रयत्वाद्धेतुत्वात् परमयोगो भवतीति । शुद्धात्माश्रितत्वेन निश्चयमोक्षमार्गो ज्ञातव्यः । एवं व्यवहारनिश्चयमोक्षमार्गस्वरूपं कथितं । तत्र निश्चयः प्रतिषेधको भवति, व्यवहारस्तु प्रतिषेध्य इति । कस्मादिति चेत्, निश्चयमोक्षमार्गे स्थितानां नियमेन मोक्षो भवति, व्यवहारमोक्षमार्गे स्थितानां तु भवति न भवति च । कथं भवति न भवति ? इति चेत्, यदि मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृत्युपशमक्षयोपशमक्षयात्सकाशाच्छुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा वर्तते तदा मोक्षो भवति । यदि पुनः सप्तप्रकृत्युपशमाद्यभावे शुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा न वर्तते तदा मोक्षो न भवति। तदपि कस्मात् ? सप्तप्रकृत्युपशमाद्यभावे सति अनंतज्ञानादिगुणस्वरूपमात्मानमुपादेयं कृत्वा न

करनेसे) वह शुद्धात्मा ही सम्यग्दर्शन है । और निश्चयनयसे चारित्रमें अपने स्वभावमय शुद्धात्माका आश्रय करनेसे (चारित्रमें अपने स्वभावमय शुद्धात्माको निमित्त करनेसे) वह शुद्धात्मा सम्यक्चारित्र है । निश्चयनयसे प्रत्याख्यानमें अपने स्वभावमय शुद्धात्माका आश्रय करनेसे (याने रागादिपरित्यागलक्षणरूप प्रत्याख्यान स्वभावमय शुद्धात्मा कारण होनेसे) वह शुद्धात्मा ही प्रत्याख्यान है ।

स्वरूप (स्वानुभवकी) उपलब्धिके बलसे हर्षविषादादिनिरोधलक्षणरूप संवरमें अपने स्वभावमय शुद्धात्मा का आश्रय करनेसे निश्चयनयसे शुद्धात्मा ही संवर है । शुद्धोपयोगके (स्वानुभवके) बलसे शुभाशुभचितानिरोधलक्षणरूप परमध्यानशब्दसे कहे जाने वाले योगमें अपने स्वभावमय शुद्धात्माका आश्रय करनेसे निश्चयनयसे शुद्धात्मा ही परमयोग है । इस तरह वहाँ निज शुद्धात्मस्वभावका आश्रय होनेसे इसको निश्चयमोक्षमार्ग जानना चाहिये । इस प्रकार व्यवहारमोक्षमार्गका और निश्चयमोक्षमार्गका स्वरूप कहा गया है । वहाँ निश्चय प्रतिषेधक (निषेध करनेवाला) है और व्यवहार प्रतिषेध्य (निषेध करने योग्य) है ।

शंका— निश्चयमोक्षमार्ग निषेध करनेवाला (भूतार्थ) हैं और व्यवहार मोक्षमार्ग निषेध्य (अभूतार्थ) है ऐसा क्यों ?

समाधान— निश्चयमोक्षमार्गमें रहनेवाले जीवोंको नियमसे मोक्ष होता है और व्यवहारमोक्षमार्गमें रहनेवाले जीवोंको मोक्ष होगा अथवा नहीं होगा ।

शंका— " व्यवहारमोक्षमार्गवाले जीवोंको मोक्ष होगा अथवा व्यवहारमोक्षमार्गवालोंको मोक्ष नहीं होगा, " ऐसा क्यों ? निश्चयनयसे ही मोक्षमार्ग कैसे होता है ?

समाधान— आगमभाषासे	अध्यात्मभाषासे
१) यदि मिथ्यात्वादिसातप्रकृतियोंका उपशम, क्षयोपशम, क्षय करनेसे उसको मोक्ष (मोक्षमार्ग) होता है	१) यदि शुद्धात्मस्वभावको उपादेय करके स्वानुभव करता है, तो उसको मोक्ष (मोक्षमार्ग) होता है ।

वर्तते न श्रद्धत्ते यतः कारणात् । यस्तु तादृशमात्मानमुपादेयं कृत्वा श्रद्धत्ते तस्य सप्तप्रकृत्युपशमादिकं विद्यते स तु भव्यो भवति । यस्य पुनः पूर्वोक्तशुद्धात्मस्वरूपमुपादेयं नास्ति तस्य सप्तप्रकृत्युपशमादिकं न विद्यते इति ज्ञातव्यं मिथ्यादृष्टिरसौ । तेन कारणेनाभव्यजीवस्य मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृत्युपशमादिकं कदाचिदपि न संभवति इति भावार्थः । किं च, निर्विकल्पसमाधिरूपे निश्चये स्थित्वा व्यवहारस्त्याज्यः, किं तु तस्यां त्रिगुप्तावस्थायां व्यवहारः स्वयमेव नास्तीति तात्पर्यार्थः । एवं निश्चयनयेन व्यवहारः प्रतिषिद्ध इति कथनरूपेण षट्सूत्रैः पंचमं स्थलं गतं ॥ २९५, २९६ ॥

आगमभाषासे	अध्यात्मभाषासे
२) और– यदि मिथ्यात्वादिसातप्रकृतियोंका उपशम, क्षयोपशम, क्षय नहीं करेगा तो मोक्ष (मोक्षमार्ग) नहीं होता है ।	२) और– यदि शुद्धात्मस्वभावको उपादेय करके स्वानुभव नहीं करता है तो मोक्ष (मोक्षमार्ग) नहीं होता है ।

शंका– वह भी क्यों ?

समाधान– व्यवहारमोक्षमार्गमें रहनेवाला जीव ११ अंगका शास्त्र ज्ञान, श्रद्धा और जीवोंकी रक्षा करनेका चारित्र पालन करता है और–

आगमभाषासे	अध्यात्मभाषासे
१) यदि ७ प्रकृतियोंका उपशम, क्षयोपशम, क्षय नहीं करता है तो मोक्ष मार्ग नहीं होता है ।	१) अनंतज्ञानादि गुणस्वरूप स्वस्वभावशुद्धात्माको उपादेय करके स्वानुभव नहीं करता है, तो मोक्षमार्ग नहीं होता है ।
२) इस तरह जो इन सात प्रकृतियोंका उपशम या क्षयोपशम या क्षय करके सम्यक्त्व प्राप्त करता है, वह भव्य है।	२) इस तरह जो अपने स्वभाव शुद्धात्माको उपादेय करके स्वानुभव करता है, वह भव्य है।
३) और जिसके सात प्रकृतियोंका उपशम, क्षयोपशम, क्षय नहीं होता है, वह मिथ्यादृष्टि है (फिर वह भव्य हो तो भी मिथ्यादृष्टि है)	३) और जिसको स्वस्वभावशुद्धात्मा उपादेय नहीं है (स्वानुभव नहीं करता है) वह मिथ्यादृष्टि है । (फिर वह भव्य हो तो भी मिथ्यादृष्टि है ।)

इस कारणसे अभव्य जीवके मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियोंका उपशमादिक कभी भी नहीं होता है (अभव्य जीव कभी भी स्वानुभव नहीं करता है) । ऐसा भावार्थ है ।

इसलिये निर्विकल्पसमाधि (स्वानुभूति) वाले निश्चयनयमें रहकर व्यवहार त्यागने योग्य (अभूतार्थ) है । किंतु त्रिगुप्ति अवस्थामें (स्वानुभवमें) व्यवहार (विकल्प) स्वयमेव नहीं रहता है, ऐसा तात्पर्यार्थ है,

इस प्रकार निश्चयनयसे व्यवहार निषिद्ध है यह कथन करनेवाले छह गाथाओं के द्वारा पंचम स्थल पूर्ण हुआ ॥ २९५, २९६ ॥

अथाहारविषये सरसविरसमानापमानादिचिंतारूपरागद्वेषकारणाभावादाहारग्रहणकृतो ज्ञानिनां बंधो नास्ति इति कथयति–

आधाकम्मादीया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा ।
कह ते कुव्वदि णाणी परदव्वगुणा हु जे णिच्चं ॥ २९७ ॥

॥ आ. ख्या. २८६ ॥

आधाकम्मादीया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा ।
कहमणुमण्णदि अण्णेण कीरमाणा परस्स गुणा ॥ २९८ ॥

स्वयं पाकेनोत्पन्न आहार अधःकर्मशब्देनोच्यते तत्प्रभृतिव्याख्यानं करोति- अधःकर्माद्या ये इमे दोषाः, कथंभूताः ? शुद्धात्मनः सकाशात्परस्याभिन्नस्याहाररूपपुद्गलद्रव्यस्य गुणाः । पुनरपि कथंभूताः ? तस्यैवाहारपुद्गलस्य पचनपाचनादिक्रियारूपाः तान्निश्चयेन कथं करोतीति ज्ञानीति प्रथमगाथार्थः । अनुमोदयति वा कथमिति द्वितीयगाथार्थः । परेण गृहस्थेन क्रियमाणान्, न कथमपि । कस्मात् ? निर्विकल्पसमाधौ सति आहारविषयमनोवचनकायकृतकारितानुमनना-भावात् इत्यधःकर्मव्याख्यानरूपेण गाथाद्वयं गतं ॥ २९७, २९८ ॥

अब, आहार लेनेके विषयमें सरस, विरस, मान, अपमान आदि चितारूप राग द्वेषके कारणका अभाव होनेसे आहार ग्रहण करते हुअे भी सम्यग्ज्ञानियोंको बंध नहीं है, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**आधाकम्मादीया**] अधःकर्म आदि [**जे इमे**] जो ये [**पुग्गलदव्वस्स**] पुद्गलद्रव्यके [**दोसा**] दोष है [**ते**] उनको [**णाणी**] सम्यग्ज्ञानी [**कह**] कैसे [**कुव्वदि**] कर सकता है ? [**हु जे**] क्योंकि [**जे**] ये [**णिच्चं**] सदा ही [**परदव्वगुणा**] पुद्गलद्रव्यके-परद्रव्यके गुण है । [**आधाकम्मादीया**] अधःकर्म आदि [**जे इमे दोसा**] जो ये दोष हैं वे [**अण्णेण**] दूसरे के द्वारा [**कीरमाणा**] किये हुअे [**परस्स गुणा**] दूसरेके गुण है तो वह [**कहमणुमण्णदि**] अनुमोदना कैसे कर सकता है ?

टीकार्थ– स्वयं अपने वनानेसे संपन्न हुआ आहार 'अधःकर्म' शब्दसे कहा जाता है। ये अधःकर्म आदि जो दोष हैं, वे शुद्धात्मासे भिन्न हैं और वे दोष पुद्गलमय आहारसे अभिन्न है क्योंकि वे पुद्गलद्रव्यके गुण है और उसही पुद्गलद्रव्यको पकने-पकाने आदि क्रियारूप होते हैं इसलिये निश्चयनयसे सम्यग्ज्ञानी उन्हें कैसे कर सकता है ? यह प्रथम गाथाका अर्थ हुआ।

इसप्रकार दूसरे गृहस्थने किये हुअे अधःकर्मादि को सम्यग्ज्ञानी कैसे अनुमोदना कर सकता है? याने सम्यग्ज्ञानी कृतकारितअनुमोदन किसी भी प्रकारसे नहीं कर सकता है। क्योंकि निर्विकल्पसमाधि में (स्वानुभवके समयमें) आहारविपर्यक मनवचनकाय, कृतकारित-अनुमोदना का अभाव है। इसप्रकार अधःकर्मका व्याख्यान करनेवाली दो गाथायें पूर्ण हुअी ॥ २९७, २९८ ॥

आहारग्रहणात्पूर्वं तस्य पात्रस्य निमित्तं यत्किमप्यशनपानादिकं कृतं तदौपदेशिकं भण्यते तेनोपदेशिकेन सह तदेवाधःकर्म पुनरपि गाथाद्वयेन कथ्यते-

आधाकम्मं उद्देसियं च पोग्गलमयं इमं दव्वं ।
कह तं मम होदि कदं जं णिच्चमचेदणं वुत्तं ॥ २९९ ॥

॥ आ. ख्या. २८७ ॥

आधाकम्मं उद्देसियं च पोग्गलमयं इमं दव्वं ।
कह तं मम कारविदं जं णिच्चमचेदणं वुत्तं ॥ ३०० ॥

यदिदमाहारकपुद्गलद्रव्यमधःकर्मरूपमौपदेशिकं च चेतनशुद्धात्मद्रव्यपृथक्त्वेन नित्यमेवाचेतनं भणितं तत्कथं मया कृतं भवति कारितं वा कथं भवति ? न कथमपि । कस्माद्धेतोः? निश्चयरत्नत्रयलक्षणभेदज्ञाने सति आहारविषये मनोवचनकायकृतकारितानुमननाभावात् । इत्यौपदेशिकव्याख्यानमुख्यत्वेन च गाथाद्वयं गतं । अयमत्राभिप्रायः पश्चात्पूर्वं संप्रतिकाले वा योग्याहारादिविषये मनोवचनकायकृतकारितानुमतरूपैर्नवभिर्विकल्पैः शुद्धास्तेषां परकृताहारविषये बंधो नास्ति । यदि पुनः परकीय परिणामेन बंधो भवति तर्हि क्वापि काले निर्वाणं नास्ति ।

आहार ग्रहण करनेसे पहले उस पात्रको निमित्त करके जो कुछ अन्नपान सम्पन्न किया जाता है उसको औद्देशिक दोष कहते हैं, उस औद्देशिक दोषके साथ उसी अधःकर्म दोषका फिरसे दो गाथाओंके द्वारा कथन करते हैं-

गाथार्थ- [**च**] और [**इमं**] यह [**आधाकम्मं**] अधःकर्म [**च उद्देसियं**] और औद्देशिक [**पोग्गलमयं दव्वं**] पुद्गलमय द्रव्य है [**जं**] जो [**णिच्चं**] सदा ही [**अचेदणं**] अचेतन [**वुत्तं**] कहा गया है [**तं**] वह [**मम कदं**] मेरे द्वारा किया हुआ [**कह होदि**] कैसे हो सकता है ? [**च**] और [**इमं**] यह [**आधाकम्मं च उद्देसियं**] अधःकर्म और उद्देशिक [**पोग्गलमयं दव्वं**] पुद्गलमय द्रव्य है [**जं**] जो [**णिच्चं**] सदा ही [**अचेदणं**] अचेतन [**वुत्तं**] कहा गया है [**तं**] वह [**मम**] मेरेद्वारा [**कारविदं**] कारित भी [**कह**] कैसे हो सकता है ?

टीकार्थ- जो अधःकर्मरूप और औद्देशिकरूप आहार पुद्गलमय द्रव्य है, वह चेतनमय शुद्धात्मद्रव्यसे भिन्न होनेसे ~~वह चेतनमय शुद्धात्मद्रव्यसे भिन्न होनेसे~~ वह नित्य ही अचेतन कहा गया है । वह मेरे द्वारा कृत, कारित कैसे हो सकता है ? याने वह आहार मेरे द्वारा कृत, कारित कभी भी नहीं है, क्योंकि निश्चयरत्नत्रय लक्षणरूप भेदज्ञान (स्वानुभूति) होनेसे आहारके विषयमें मनवचनकाय और कृतकारितअनुमोदना इनका अभाव हैं । इसप्रकार औद्देशिक कथन की मुख्यतासे दो गाथाये पूर्ण हुअी ।

तथा चोक्तं। णवकोडिकम्मसुद्धो पच्छापुरदो य संपदियकाले। परसुहदुःखणिमित्तं बज्झदि जदि णत्थि णिव्वाणं ॥ एवं ज्ञानिनामाहारग्रहणकृतो बंधो नास्तीति व्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयेन षष्ठस्थलं गतं ॥ २९९, ३०० ॥

अथ रागादयः किल कर्मबन्धकारणं भणिताः, तेषां पुनः किं कारणं ? इति पृष्टे प्रत्युत्तरमाह–

जह फलिहमणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं।
राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादीहिं दव्वेहिं ॥ ३०१ ॥

॥ आ. ख्या. २७८ ॥

एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं।
राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रागादीहिं दोसेहिं ॥ ३०२ ॥

॥ आ. ख्या. २७९ ॥

इसका अभिप्राय यह है कि, पूर्व, पश्चात् अथवा वर्तमानकालमें योग्य आहार आदिके विषयमें मनवचनकाय, कृत, कारित और अनुमोदना इनके नव प्रकारके विकल्पोंसे रहित ऐसे जो शुद्ध (सम्यग्ज्ञानी) हैं उन सम्यग्ज्ञानी जीवोंको परकृत आहारादिके विषयमें बंध नहीं है। और यदि परकीय परिणामसे बंध होता है तो किसी भी कालमें निर्वाण नहीं हो सकता है

उसी प्रकार कहा गया है कि, 'णवकोडी' आदि-अर्थात् पूर्व, पश्चात् और वर्तमानमें मनवचनकाय, कृतकारितअनुमोदनारूप नव कोटीसे जो शुद्ध है, ऐसा जीव यदि दूसरोंके सुख दुःख को निमित्त करके कर्मोंसे बंधता है तो किसीको निर्वाण प्राप्त नहीं हो सकता है। इसप्रकार ज्ञानियोंको आहार ग्रहण करते हुओ भी बंध नहीं है, इस कथनकी मुख्यतासे ४ गाथायें पूर्ण हुओ, और यह छट्ठा स्थल पूर्ण हुआ ॥ २९९, ३०० ॥

अब, कर्मबंधके कारण रागादि हैं, तो फिर उन रागादिभावोंका (विकारीभावोंका) क्या कारण है ? ऐसा प्रश्न पूछनेपर उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**जह**] जैसे [**सुद्धो फलिहमणी**] शुद्ध स्वभाववाला स्फटिकमणि [**रायमाईहिं**] ललाई आदि रंगरूप [**स्वयं**] स्वयं [**ण परिणमइ**] परिणत नहीं होती है [**दु**] परन्तु [**सो**] वह स्फटिकमणि [**अण्णेहिं रत्तादीहिं दव्वेहिं**] दूसरे लाल, काले आदि द्रव्योंसे (वर्णवाले द्रव्योंके सांनिध्यमें) [**राइज्जदि**] ललाई आदि रंग स्वरूप परिणत होती है [**एवं**] इसी प्रकार [**णाणी सुद्धो**] ज्ञानी शुद्ध है [**सो**] वह [**रायमाईहिं**] रागादि भावोंसे [**स्वयं**] स्वयं [**ण परिणमइ**] नहीं परिणमता है [**दु**] लेकिन [**सो**] वह [**अण्णेहिं रागादीहिं दोसेहिं**] अन्य रागादि दोषोंसे [**राइज्जदि**] रागादी विकार भावमय किया जाता है।

यथा स्फटिकमणिर्विशुद्धो बहिरूपाधिं विना स्वयं रागादिभावेन न परिणमति पश्चात् स एव रज्यते, कैः ? जपापुष्पादिबहिर्भूतान्यद्रव्यैरिति दृष्टांतो गतः। एवमनेन दृष्टांतेन ज्ञानी शुद्धो भवन् स्वयं निरूपाधिचिच्चमत्कारस्वभावेन कृत्वा जपापुष्पस्थानीयकर्मोदयरूपपरोपाधिं बिना रागादिविभावैर्न परिणमति पश्चात्सहजस्वच्छभावच्युतः सन् स एव रज्यते। कैः ? अन्यैः कर्मोदयनिमित्तै रागादिदोषैः परिणामैरिति, तेन ज्ञायते, कर्मोदयजनिता रागादयो न तु ज्ञानि-जीवजनिता इति दार्ष्टांतो गतः ॥ ३०१, ३०२ ॥

एवं चिदानंदैकलक्षणं स्वस्वभावं जानन् ज्ञानी रागादीन्न करोति ततो नवतररागाद्युत्पत्तिकारणभूतकर्मणां कर्ता न भवतीति कथयति–

ण वि रागदोसमोहं कुव्वदि णाणी कसायभावं वा ।
सयमप्पणो ण सो तेण कारगो तेसिं भावाणं ॥ ३०३ ॥

॥ आ. ख्या. २८० ॥

ण वि रागदोसमोहं कुव्वदि णाणी कसायभावं वा ज्ञानी न करोति। कान् ?

टीकार्थ– जैसे स्फटिकमणि विशुद्ध है, वह वाह्य उपाधिके विना स्वयं रागादिभावसे नहीं परिणमती है। वह जपापुष्प आदि वर्णवाले वाह्य द्रव्योंके द्वारा रंगरूप परिणमन की जाती है। यह दृष्टांत है।

इस दृष्टांतके समान ज्ञानी शुद्ध होता हुआ स्वयं उपाधिरहित चैतन्य चमत्कार स्वभाव के कारण जपापुष्पस्थानीय कर्मोदय रूप परोपाधिके विना रागादि विभावोंके द्वारा स्वयं परिणमन नहीं करता है। पश्चात् जीव सहजशुद्धस्वभावसे च्युत होकर अन्य कर्मोदय-निमित्तजन्य रागादिदोषवाले परिणामोंसे विकारी किया जाता है (विकारी हो जाता है)।

इससे यह सिद्ध होता है कि, रागादिभाव कर्मोदयजनित है, लेकिन ज्ञानी जीवजनित नहीं है। इसप्रकार यह दार्ष्टांत पूर्ण हुआ ॥ ३०१, ३०२ ॥

इसप्रकार चिदानंद-एकलक्षणवाले अपने स्वभावको जाननेवाला ज्ञानी रागादिविकारी-भाव नहीं करता है। इसलिये वह ज्ञानी नूतन रागादि के उत्पत्ति के कारणभूत कर्मोंका कर्ता नहीं होता है, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [णाणी] ज्ञानी [रागदोसमोहं] रागद्वेषमोहको [वा कसायभावं] या कषायभावको [सयं] स्वयं [अप्पणो] ~~अपने कारण से~~ [ण वि कुव्वदि] नहीं करता है [तेण] इसलिये [सो] वह ज्ञानी [तेसिं भावाणं] उन भावोंका [कारगो ण] कर्ता नहीं है।

टीकार्थ– रागादिदोषरहितशुद्धात्मस्वभावसे भिन्न जो रागद्वेषमोह अथवा क्रोधादि-कषायभाव है उनको ज्ञानी नहीं करता है।

शंका– ज्ञानी कषायभावको कैसे नहीं करता है ?

रागादिदोषरहितशुद्धात्मस्वभावात्पृथग्भूतान् रागद्वेषमोहान् क्रोधादिकषायभावं वा। कथं न करोति ? सयं स्वयं शुद्धात्मभावेन कर्मोदयसहकारिकारणं विना। कस्य संबंधित्वेन ? अप्पणो आत्मनः ण सो तेण कारगो तेसिं भावाणं तेन कारणेन स तत्त्वज्ञानी तेषां रागादिभावानां कर्ता न भवतीति ॥ ३०३ ॥

अज्ञानी जीवः शुद्धस्वभावमात्मानमजानन् रागादीन् करोति ततः स भाविरागादिजनकनवतरकर्मणां कर्ता भवतीत्युपदिशति–

रायह्मि य दोसह्मि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा।
तेहिं दु परिणममाणो रागादी बंधदि पुणो वि ॥ ३०४ ॥

॥ आ. ख्या. २८१ ॥

रायह्मि य दोसह्मि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा रागद्वेषकषायरूपे द्रव्यकर्मण्युदयागते सति स्वस्वभावच्युतस्य तदुदयनिमित्तेन ये जीवगतरागादिभावाः परिणामा भवंति। **तेहिं दु परिणममाणो रागादी बंधदि पुणो वि** तैः कृत्वा रागादिरहमित्यभेदेनाहमिति प्रत्ययेन कृत्वा

समाधान– ज्ञानी अपने आत्माके स्वयं-शुद्धात्मभावसे कर्मोदयके सहकारी कारण के विना कषायभाव नहीं करता है।

इसलिये वह तत्त्वज्ञानी (सम्यग्ज्ञानी–चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव उन रागादिभावोंका कर्ता नहीं है।

[निगोदसे लेकर सिद्धजीवतकके सभी जीवोंका स्वभाव कषायरहित (विकाररहित) है। यह वचन शुद्धनिश्चयनयसे है। इसलिये सभी जीव शुद्धनिश्चयसे स्वभावदृष्टिसे कषाय रहित हैं। इसको ज्ञानी जानता है इसलिये चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव कषायभावका कर्ता नहीं है।] ॥ ३०३ ॥

अपने शुद्धस्वभावको न जाननेवाला अज्ञानी (मिथ्यात्वसासादानमिश्रगुणस्थानवर्ती) जीव रागादिविकारभावोंको करता है, इसलिये वह अज्ञानी भाविरागादिजनक नूतन कर्मोंका कर्ता है, ऐसा दिखाते हैं–

गाथार्थ– [**रायह्मि य**] रागके होनेपर [**दोसह्मि य**] द्वेषके होने पर, [**कसायकम्मेसु चेव**] और कषायकर्मोंके होनेपर ही [**जे भावा**] जो भाव होते हैं [**तेहिं दु**] उनरूप [**परिणममाणो**] परिणमन करनेवाला अज्ञानी [**रागादी**] रागादीको [**पुणो वि**] वार वार [**बंधदि**] बाँधता है।

टीकार्थ– रागद्वेषकषायरूप द्रव्यकर्मोंके उदय होने पर उसी समय जो जीव अपने शुद्धस्वभावसे च्युत होकर उस उदयके निमित्तमात्रसे जो जीवगतरागादिभाव (विकारी परिणाम) होते हैं। उन के द्वारा किए हुए रागादिरूप मैं हूँ, इस प्रकारकी, (४) प्रतीति करके परिणमन

परिणमन् सन् पुनरपि भाविरागादिपरिणामोत्पादकानि द्रव्यकर्माणि बध्नाति ततस्तेषां रागादीनामज्ञानी जीवः कर्ता भवतीति ॥ ३०४ ॥

तमेवार्थं दृढयति—

रायह्मि य दोसह्मि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा ।
तेहिं दु परिणमंतो रागादी बंधदे चेदा ॥ ३०५ ॥

॥ आ. ख्या. २८२ ॥

पूर्वगाथायामहं रागादीत्यभेदेन परिणमन् सन् तानि रागादिभावोत्पादकानि नवतरद्रव्यकर्माणि बध्नातीत्युक्तं । अत्र तु शुद्धात्मभावनारहितत्वेन मदीयो रागः इति संबंधेन परिणमन् सन् तानि नवतरद्रव्यकर्माणि बध्नाति, इति विशेषः ? किंच विस्तरः — यत्र मोहरागद्वेषा व्याख्यायंते तत्र मोह शब्देन दर्शनमोहः, मिथ्यात्वादिजनक इति ज्ञातव्यं, रागद्वेषशब्देन तु क्रोधादिकषायोत्पादकश्चारित्रमोहो ज्ञातव्यः । अत्राह शिष्यः — मोहशब्देन तु मिथ्यात्वादिजनको दर्शनमोहो भवतु दोषो नास्ति रागद्वेषशब्देन चारित्रमोह इति कथं भण्यते ? इति पूर्वपक्षे परिहारं ददाति— कषायवेदनीयाभिधानचारित्रमोहमध्ये क्रोधमानौ द्वेषांगौ द्वेषोत्पादकत्वात्, मायालोभौ

करनेवाला फिरसे भाविरागादिरूप परिणामोंके उत्पादक द्रव्यकर्मोंको बांधता है, इसलिये उन रागादिकोंका वह अज्ञानी (मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानवर्ती) जीव कर्ता होता है ॥ ३०४ ॥

उस ही अर्थ को दृढ करते हैं—

गाथार्थ— [**रायह्मि य**] रागके होनेपर, [**दोसह्मि य**] द्वेषके होनेपर [**कसायकम्मेसु चेव**] और कषाय कर्मोके होनेपर [**जे भावा**] जो रागादि परिणाम होते है [**तेहिं दु**] उनरूप [**परिणमंतो**] परिणमन करता हुआ [**चेदा**] आत्मा [**रागादी**] रागादिकोंको [**बंधदे**] बांधता है ।

टीकार्थ— पूर्व गाथामें " मैं रागादि हूँ, " इसतरह अभेदसे परिणमन करता हुआ रागादिभावोंको उत्पन्न करनेवाले नूतन द्रव्यकर्मोंको बांधता हैं, ऐसा कहा गया है। यहां शुद्धात्मभावना (स्वानुभव) से रहितपनासे " रागभाव मेरा है " इसप्रकार रागके साथ संबंध करता हुआ नूतन द्रव्यकर्मों को बांधता है । इसका विशेष यह है कि, जहां मोहरागद्वेष इनका कथन करते हैं वहां मोह शब्दसे दर्शन मोह है, जो मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिजनक है, ऐसा जानना चाहिये और रागद्वेष शब्दसे क्रोधादिकषायोत्पादक चारित्रमोह है, ऐसा जानना चाहिये ।

शिष्य शंका पूछता है कि—

मोह शब्दसे मिथ्यात्वादिजनक दर्शनमोह है यह ठीक है, इसमें दोष नहीं, लेकिन रागद्वेष शब्दसे चारित्रमोह है यह कैसे कहते हो ?

रागांगी रागजनकत्वात्, नोकषायवेदनीयसंज्ञचारित्रमोहमध्ये स्त्रीपुन्नपुंसकवेदत्रयहास्यरतयः पंचनोकषायाः रागांगा रागोत्पादकत्वात्, अरतिशोकभयजुगुप्सासंज्ञाः चत्वारो द्वेषांगा द्वेषोत्पादकत्वात्, इत्यनेनाभिप्रायेण मोहशब्देन दर्शनमोहो मिथ्यात्वं भण्यते, रागद्वेषशब्देन पुनश्चारित्रमोह इति सर्वत्र ज्ञातव्यं। एवं कर्मबंधकारणं रागादयः, रागादीनां च कारणं निश्चयेन कर्मोदयो, न च ज्ञानी जीव इति व्याख्यानमुख्यत्वेन सप्तमस्थले गाथापंचकं गतं ॥ ३०५ ॥

अथ कथं सम्यग्ज्ञानी जीवो रागादीनामकारक इति पृष्टे प्रत्युत्तरमाह–

अपडिक्कमणं दुविहं अपच्चक्खाणं तहेव विण्णेयं।
एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा ॥ ३०६ ॥

॥ आ. ख्या. २८३ ॥

समाधान– कषायवेदनीय नामक चारित्रमोहमें क्रोध और मान ये दोनों द्वेषके अंग हैं क्योंकि वे द्वेषके उत्पादक है, माया और लोभ ये राग के अंग हैं क्योंकि वे रागके उत्पादक है। नोकषायवेदनीयचारित्रमोहमें स्त्री, पुं, नपुंसक ये तीन वेद और हास्य, रति मिलकर ये पांच नोकषाय रागके अंग हैं क्योंकि वे रागके उत्पादक है, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा ये चार नोकषाय द्वेष के अंग हैं क्योंकि वे द्वेषके उत्पादक है। इस अभिप्रायसे मोह शब्दसे मिथ्यात्वको दर्शनमोह कहते हैं, और रागद्वेषशब्दसे चारित्रमोह कहते है, ऐसा सर्वत्र जानना चाहिये। इसप्रकार कर्मबंधके कारण रागादि है और निश्चयसे रागादिकोंका कारण कर्मोदय है, और ज्ञानी जीव रागादिकोंका कारण नहीं है और ज्ञानी जीव कर्मबंधका कारण नहीं है। इस कथन की मुख्यतासे पांच गाथायें सप्तमस्थलमें पूर्ण हुओ।

भावार्थ– स्वभावसे च्युत (स्वानुभवसे च्युत मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानवर्ती) जीव "मैं रागी हूँ," इसप्रकार अभेद मानकर परिणमन करते हैं, इसलिये रागभावके और कर्मके कर्ता है। और स्वानुभववाले चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव अपने स्वभावको रागादिसे भिन्न जानते हैं, इसलिये रागादि के और कर्म के कर्ता नहीं है ॥ ३०५ ॥

अब, सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव रागादिभावोंका अकर्ता कैसे है? ऐसा प्रश्न पूछनेपर उत्तर कहते हैं–

गाथार्थ– [**अपडिक्कमणं**] अप्रतिक्रमण [**दुविहं**] दो प्रकारका है [**तहेव**] उसी प्रकार [**अपच्चक्खाणं**] अप्रत्याख्यान दो प्रकारका [**विण्णेयं**] जानना चाहिये [**एदेणुवदेसेण दु**] इस उपदेशसे [**चेदा**] आत्मा [**अकारगो**] अकारक [**वण्णिदो**] कहा गया है [**अपडिक्कमणं**] अप्रतिक्रमण [**दव्वे भावे**] द्रव्य और भावरूप [**दुविहं**] दो प्रकारका है [**अपच्चक्खाणं पि**] अप्रत्याख्यान भी द्रव्य और भावरूप दो प्रकारका है [**एदेणुवदेसेण दु**] इस उपदेशसे [**चेदा**] आत्मा [**अकारगो**] अकारक [**वण्णिदो**] कहा गया है [**जाव**] जबतक [**आदा**] आत्मा [**दव्वभावाणं**] द्रव्य और भावरूप का [**अपडिक्कमणं**] प्रतिक्रमण नहीं करता है [**दु**] और

अपडिक्कमणं दुविहं दव्वे भावे तहा अपच्चक्खाणं पि ।
एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा ॥ ३०७ ॥

॥ आ. ख्या. २८४ ॥

जाव ण पच्चक्खाणं अपडिक्कमणं तु दव्वभावाणं ।
कुव्वदि आदा तावदु कत्ता सो होदि णादव्वो ॥ ३०८ ॥

॥ आ. ख्या. २८५ ॥

अपडिक्कमणं दुविहं अपच्चक्खाणं तहेव विण्णेयं पूर्वानुभूतविषयानुभवरागादिस्मरणरूपमप्रतिक्रमणं द्विविधं, भाविरागादिविषयाकांक्षारूपमप्रत्याख्यानमपि तथैव द्विविधं विज्ञेयं **एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा** एतेनोपदेशेन परमागमेन ज्ञायते । किं ज्ञायते? चेतयितात्मा हि द्विप्रकाराप्रतिक्रमणेन द्विप्रकाराप्रत्याख्यानेन च रहितत्वात् कर्मणामकर्ता भवतीति । **अपडिक्कमणं दुविहं दव्वे भावे अपच्चक्खाणं पि** द्रव्यभावरूपेणाप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यानं च द्विविधं भवति **एदेणुवदेसेण दु अकारगो, वण्णिदो चेदा** तदेव बंधकारणमित्युपदेश आगमः तेनोपदेशेन ज्ञायते, किं ज्ञायते? द्रव्यभावरूपेणाप्रत्याख्यानेनाप्रतिक्रमणेन च परिणतः शुद्धात्मभावनाच्युतो योऽसावज्ञानी जीवः स कर्मणां कारकः । तद्विपरीतो ज्ञानी चेतयिता पुनरकारक इति । तमेवार्थं दृढयति **जाव ण पच्चक्खाणं** यावत्कालं द्रव्यभावरूपं, निर्विकारस्वसंवित्तिलक्षणं प्रत्याख्यानं नास्ति

[**पच्चक्खाणं**] द्रव्य और भाव रूप प्रत्याख्यान भी [**ण कुव्वदि**] नहीं करता है [**तावदु**] तबतक [**सो**] वह आत्मा [**कत्ता**] कर्ता [**होदि**] होता है ऐसा [**णादव्वो**] जानना चाहिए ।

टीकार्थ— पूर्वकालमें अनुभव किये हुये विषयोंका अनुभवन करनेरूप रागादिका स्मरण करना, सो अप्रतिक्रमण है, वह दो प्रकारका है । इस प्रकार भविष्यकालमें होनेवाले रागादिके विषयोंकी आकांक्षारूप जो अप्रत्याख्यान है, वह भी उसीतरह दो प्रकारका है । इस प्रकार परमागमके उपदेशसे ऐसा जाना जाता है कि, आत्मा दोनों प्रकारके अप्रतिक्रमणसे रहित (याने सप्रतिक्रमण) है और दोनों प्रकारके अप्रत्याख्यानसे रहित (याने प्रत्याख्यान सहित) होनेसे कर्मोंका अकर्ता है ।

द्रव्य अप्रतिक्रमण, भाव अप्रतिक्रमण और द्रव्य अप्रत्याख्यान, भाव अप्रत्याख्यान इस तरह अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान दो-दो प्रकारका है । वह अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान ही बंधका कारण है, ऐसा आगमका उपदेश है । उस उपदेशसे ऐसा जाना जाता है कि, द्रव्यभाव अप्रतिक्रमणसे और द्रव्यभाव अप्रत्याख्यानसे परिणत जो जीव शुद्धात्मभावभासनासे (स्वानुभवसे) च्युत है वह अज्ञानी है । वह कर्मोंका कारक (कर्त्ता) है उससे विपरीतवाला याने द्रव्यभाव-प्रतिक्रमणसे और द्रव्यभाव-प्रत्याख्यान से परिणत ऐसा चेतयिता ज्ञानी है, वह ज्ञानी कर्मोंका अकर्ता है । इस अर्थ को ही दृढ़ करते हैं—

अपडिक्कमणं तु दव्वभावाणं कुव्वदि यावत्कालं द्रव्यभावरूपमप्रतिक्रमणं च करोति **आदा तावदु कत्ता सो होदि णादव्वो** तावत्कालं परमसमाधेरभावात् स चाज्ञानी जीवः कर्मणां कारको भवतीति ज्ञातव्यः। किं चाप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यानं च कर्मणां कर्तृ, न च ज्ञानी जीवः। यदि जीवः कर्ता भवति ? तदा सर्वदैव कर्तृत्वमेव। कस्मात् ? इति चेत्, जीवस्य सदैव विद्यमानत्वात् इति। अप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यानं पुनरनित्यं रागादिविकल्परूपं, तच्च स्वस्थभावच्युतानां भवति न सर्वदैव। तेन किं सिद्धं ? यदा स्वस्थभावच्युतः सन् अप्रतिकमणाप्रत्याख्यानाभ्यां परिणमति तदा कर्मणां कारको भवति। स्वस्थभावे पुनरकारकः इति भावार्थः। एवमज्ञानिजीवपरिणतिरूपमप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यानं च बंधकारणं न च ज्ञानी जीवः इति व्याख्यानमुख्यत्वेनाष्टमस्थले गाथात्रयं गतं।

जबतक द्रव्यभावरूप निर्विकारस्वसंवित्तिलक्षणवाला (स्वानुभववाला) प्रत्याख्यान नहीं है और जबतक द्रव्यभावरूप प्रतिक्रमण (स्वानुभव) नहीं है, तबतक आत्मा परमसमाधि का (स्वानुभवका) अभाव होनेसे वह अज्ञानी जीव कर्मोंका कारक (कर्ता) है, ऐसा जानना चाहिये।

और विशेष कहते हैं कि, अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यानवाला कर्मोंका कर्ता है और ज्ञानी (सम्यग्ज्ञानी-चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती जीव) कर्मोंका कर्ता नहीं है।

यदि जीव ही कर्ता है तो सर्वदा (अज्ञान अवस्थामें और सम्यग्ज्ञान अवस्थामें) ही कर्तृत्व का ही प्रसंग आता है, क्योंकि जीव (सब ही प्रकारके) सदा ही (अज्ञान अवस्थामें और सम्यग्ज्ञान अवस्थामें) विद्यमान है। रागादि विकल्परूप अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान अनित्य है, और वह स्वस्थभावसे (स्वभावसे याने स्वानुभवसे) च्युत होनेवाले जीवोंके होते हैं (सभी जीवोंके) सदा ही नहीं होते हैं।

शंका– उससे क्या सिद्ध हुआ ?

समाधान– जब जीव स्वस्थभावसे (स्वभावसे-स्वानुभूतिसे) च्युत होकर अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यानमय परिणति करता है तब कर्मोंका कर्ता है (कारक है)। और जब जीव स्वस्थभावमें-स्वभावमें (स्वानुभवमें) रहता है तब कर्मोंका अकर्ता (अकारक) है। यह भावार्थ है।

इस प्रकार अज्ञानी जीवकी अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यानमय परिणति बंधका कारण है और सम्यग्ज्ञानी जीवकी प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यानमय परिणति बंधका कारण नहीं है।

[शंका– क्या चतुर्थगुणस्थानवर्ती अव्रती सम्यक्त्वी जीवकी प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यानमय परिणति है ?

समाधान– चतुर्थगुणस्थानवर्ती अव्रती सम्यक्त्वी जीव स्वानुभव करता है इसलिये चतुर्थगुणस्थानवर्ती अव्रती सम्यक्त्वी जीवकी प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यानमय परिणति है।]

इस कथन की मुख्यतासे अष्टमस्थलमें तीन गाथायें पूर्ण हुयी।

अथ निर्विकल्पसमाधिरूपनिश्चयप्रतिक्रमणनिश्चयप्रत्याख्यानरहितानां जीवानां योऽसौ बंधो भणितः स च हेयस्याशेषस्य नारकादिदुःखस्य कारणत्वाद्धेयः। तस्य बंधस्य विनाशार्थं विशेषभावनामाह–

सहजशुद्धज्ञानानंदैकस्वभावोऽहं, निर्विकल्पोऽहं, उदासीनोऽहं, निरंजननिजशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातवीतरागसहजानंदरूपसु–खानुभूतिमात्रलक्षणेन स्वसंवेदनज्ञानेन संवेद्यो गम्यः प्राप्यो भरितावस्थोऽहं, रागद्वेषमोहक्रोधमानमायालोभपंचेंद्रियविषयव्यापारमनोवचनकायव्यापारभावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मख्यातिपूजालाभ–दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानमायामिथ्याशल्यत्रयादिसर्वविभावपरिणामरहितः। शून्योऽहं, जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च शुद्धनिश्चयेन, तथा सर्वे जीवाः इति निरंतरं भावना कर्तव्या ॥ ३०६, ३०७, ३०८ ॥

अब निर्विकल्पसमाधिरूप (स्वानुभूतिरूप) निश्चयप्रतिक्रमणनिश्चयप्रत्याख्यानरहित जीवोंका (मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानवर्ती जीवोंका) जो बंध कहा गया है, वह त्यागने योग्य संपूर्ण नारकादिदुःखका कारण होनेसे हेय है। उस बंधके नाशके लिये विशेष भावना कहते हैं–

१) मैं सहजशुद्धज्ञानानंद एक स्वभाववाला हूँ,

२) मैं निर्विकल्प हूं,

३) मैं उदासीन हूँ,

४) मैं निरंजन निजशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानअनुष्ठानरूप निश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधि से उत्पन्न वीतरागसहजानंदरूपसुखानुभूतिमात्रलक्षणवाले स्वसंवेदनज्ञानसे संवेद्य, गम्य-प्राप्य, भरित (संतृप्त) अवस्थावाला हूँ,

५) मैं रागद्वेषमोहक्रोधमानमायालोभपंचेंद्रियविषयव्यापार, मनवचनकायव्यापार-भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म-ख्याति–पूजा-लाभदृष्टश्रुतअनुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानमायामिथ्याशल्य–त्रयादिसर्वविभावपरिणामसे रहित हूँ,

६) मैं सर्व विभावपरिणामोंसे शून्य हूँ,

तीन लोक और तीन कालमें भी मनवचनकायसे और कृतकारितअनुमोदनसे और शुद्धनिश्चयनयसे मैं तथा सभी जीव इसतरह शुद्ध हैं, ऐसी भावना निरंतर करनी चाहिये ॥ ३०६, ३०७, ३०८ ॥

इति श्री जयसेनाचार्यकृतायां समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां तात्पर्यवृत्तौ पूर्वोक्तक्रमेण **जह णाम कोवि पुरिसो** इत्यादि मिथ्यादृष्टिसद्दृष्टिव्याख्यानरूपेण गाथादशकं। निश्चयहिंसाकथनरूपेण गाथासप्तकं, निश्चयेन रागादिविकल्प एव हिंसेति कथनरूपेण सूत्रषट्कं, अव्रतव्रतानि पापपुण्यबंधकारणानीत्यादि कथनेन गाथापंचदश, निश्चयनयेन स्थित्वा व्यवहारस्त्याज्य इति मुख्यत्वेन गाथाषट्कं, पिंडशुद्धिमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं। निश्चयनयेन रागादयः कर्मोदयजनिता इति कथनमुख्यत्वेन सूत्रपंचकं, निश्चयनयेनाप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यानं च बंधकारणमिति प्रतिपादनरूपेण गाथात्रयमित्येवं समुदायेन षट्पंचाशद्गाथाभिरष्टभिरंतराधिकारैः अष्टमो बंधाधिकारः समाप्तः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्री जयसेनाचार्यद्वारा की हुयी समयसारकी टीका शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवाली तात्पर्यवृत्ति में पूर्वोक्त क्रमसे '**जह णाम कोवि पुरिसो**' इत्यादि मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि का कथन करनेवाली १० गाथायें, निश्चयहिंसाका कथन करनेवाली ७ गाथायें, निश्चयनयसे रागादिविकल्प ही हिंसा है ऐसा कथन करनेवाली ६ गाथायें, व्रतअव्रत पुण्यपापके बंधके कारण है इत्यादि कथन करनेवाली १५ गाथायें, निश्चयनयमें ठहरकर व्यवहार त्याज्य है इस कथन की मुख्यतासे ६ गाथायें, पिंडशुद्धिकी मुख्यतासे ४ गाथायें, निश्चयनयसे रागादि कर्मोदयजनित है इस कथन की मुख्यतासे ५ गाथायें और निश्चयनयसे अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान बंध के कारण है यह कथन करनेवाली तीन गाथायें है। इस तरह ५६ गाथाओं के समुदायमें, आठ अंतर अधिकारों के द्वारा आठवा बंधाधिकार समाप्त हुआ ॥ ८ ॥



अथ मोक्षाधिकारः ॥ १ ॥

तत्रैवं सति पात्रस्थानीयशुद्धात्मनः सकाशात्पृथग्भूत्वा श्रृंगारस्थानीयबंधो निष्क्रांतः। अथ प्रविशति मोक्षः-**जह णाम कोवि पुरिसो** इत्यादि गाथामादिं कृत्वा यथाक्रमेण द्वाविंशतिगाथा-पर्य्यंतं मोक्षपदार्थव्याख्यानं करोति-तत्रादौ मोक्षपदार्थस्य संक्षेपव्याख्यानरूपेण गाथासप्तकं, तदनंतरं मोक्षकारणभूतभेदविज्ञानसंक्षेपसूचनार्थं **बंधाणं च सहावं** इत्यादि सूत्रचतुष्टयं, अतः परं तस्यैव भेदज्ञानस्य विशेषविवरणार्थं **'पण्णाए घेत्तव्वो'** इत्यादि सूत्रपंचकं, तदनंतरं वीतराग-चारित्रसहितस्य द्रव्यप्रतिक्रमणादिकं विषकुंभः सरागचारित्रस्यामृतकुंभ इति युक्तिसूचनमुख्यत्वेन **'तेयादी अवराहे'** इत्यादि सूत्रषट्कं कथयतीति द्वाविंशतिगाथाभिः स्थलचतुष्टये मोक्षाधिकारे समुदायपातनिका।

तद्यथा– विशिष्टभेदज्ञानावष्टंभेन बंधात्मनोः पृथक्करणं मोक्ष इति प्रतिपादयति–

जह णाम कोवि पुरिसो बंधणयह्मि चिरकालपडिबद्धो।
तिव्वं मंदसहावं कालं च वियाणए तस्स ॥ ३०९ ॥

॥ आ. ख्या. २८८ ॥

इस प्रकार वहाँ पात्रस्थानीय शुद्धात्मासे भिन्न होकर श्रृंगारस्थानीय बंध निष्क्रांत हो गया।

अब, मोक्ष प्रवेश करता है– **'जह णाम कोवि पुरिसो'** इत्यादि गाथासे शुरू करके यथाक्रमसे २२ गाथाओं तक मोक्षपदार्थका कथन करते हैं– वहां पहले मोक्षपदार्थका संक्षेपरूपसे कथन ७ गाथाओंमें है। तदनंतर मोक्षके कारणभूत भेदविज्ञान है उसका संक्षेपमें कथन **'बंधाणं च सहावं'** इत्यादि ४ गाथाओंमें है। इसके आगे उस ही भेदज्ञानका विशेष वर्णन करने के लिये **'पण्णाए घेत्तव्वो'** इत्यादि ५ गाथायें हैं। तदनंतर वीतरागचरित्रवालेके (स्वानुभववालेके) द्रव्यप्रतिक्रमणादिक विषकुंभ है और सरागचारित्र धारीके द्रव्यप्रतिक्रमणादिक अमृतकुंभ है, इस युक्तिके कथन की मुख्यतासे **'तेयादी अवराहे'** इत्यादि छह गाथायें कही हैं। इस प्रकार २२ गाथाओंसे ४ स्थलोंमें मोक्षाधिकारकी समुदायपातनिका है।

यहां, विशिष्टभेदज्ञानके अवलंबनसे (स्वानुभूतिके बलसे) बंध और आत्मा को भिन्न करना सो मोक्ष है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं–

गाथार्थ– [**जह णाम**] जैसे [**बंधणयह्मि**] बंधनमें [**चिरकालपडिबद्धो**] बहुत समयसे बंधा हुआ [**कोवि पुरिसो**] कोई पुरुष [**तस्स**] उस बन्धन के [**तिव्वं**] तीव्र

जइ णवि कुणइ च्छेदं ण मुच्चए तेण बंधणवसो सं।
कालेण उ बहुएणवि ण सो णरो पावइ विमोक्खं ॥ ३१० ॥

॥ आ. ख्या. २८९ ॥

इय कम्मबंधणाणं पयेसपयडिट्ठिदीय अणुभागं।
जाणंतो वि ण मुंचदि मुंचदि सव्वे जदि विसुद्धो ॥ ३११ ॥

॥ आ. ख्या. २९० ॥

जइ णाम इत्यादि। यथा कश्चित्पुरुषः बंधनके चिरकालबद्धस्तिष्ठति तस्य बंधस्य तीव्रमंदस्वभावं जानाति दिवसमासादिकालं च विजानाति इति प्रथमगाथा गता। जानन्नपि यदि बंधच्छेदं न करोति तदा न मुच्यते तेन कर्मबंधविशेषेणामुच्यमानः सन् पुरुषो बहुतरकालेऽपि मोक्षं न लभते इति गाथाद्वयेन दृष्टांतो गतः। अथ इय कम्मबंधणाणं पदेसपयडिट्ठिदीय अणुभागं जाणंतो वि ण मुंचदि एवं ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नकर्मबंधनानां प्रदेशं

[मंदसहावं] मंद स्वभावको [च कालं] और उसके कालको [वियाणए] जानता है [जदि] यदि वह [छेदं ण वि कुव्वदि] उस बंधनको नहीं काटता है तो वह [तेण] उस बन्धनसे [ण मुच्चए] नहीं छुटता है [उ] और [बंधणवसो सं] बन्धन के वश हुआ [सो णरो] वह मनुष्य [बहुएण वि कालेण] बहुत कालमें भी [विमोक्खं ण पावइ] छुटकारा प्राप्त नहीं करता है। [इय] इसी प्रकार जीव [कम्मबंधणाणं] कर्मबंधनों के [पयेसपयडिट्ठिदीय अणुभागं] प्रदेश, प्रकृति, स्थिति और अनुभाग को [जाणंतो वि] जानता हुआ भी [ण मुच्चदि] कर्मबंधनसे नहीं छूटता है [जदि] यदि वह [विसुद्धो] शुद्ध है तो [सव्वे मुंचदि] सब कर्मोंसे छूट जाता हैं।

टीकार्थ– जैसे कोओी पुरुष बंधनमें चिरकालसे बद्ध है। उस बंधन के तीव्र मंद स्वभावको जानता है और दिवस, मास आदि कालको जानता है। यह प्रथम गाथा का अर्थ हुआ। यह जानते हुवे भी यदि बंधका च्छेद नहीं करता है तब वह छूटता नहीं। इसलिये कर्मबंध के विशेषसे (वशसे) न छूटा हुआ पुरुष बहुत कालमें भी मोक्ष नहीं पाता है। इस-तरह दोनों गाथाओंसे दृष्टांत का कथन हुआ। इस प्रकार ज्ञानावरणादि मूलोत्तर प्रकृतियों के भेदवाले कर्मबंधनोंके प्रदेश, प्रकृति, स्थिति, और अनुभाग को जानता हुआ भी वह उनसे नहीं छूटता है।

आगमभाषासे

जब मिथ्यात्वरागादिरहित होता है तब सभी कर्मबंधनोंको छोडता है।

अध्यात्मभाषासे

जब अनंतज्ञानादिगुणात्मकपरमात्मस्वभावमें स्थित होता है तब सभी कर्मबंधनोंको छोडता है।

प्रकृतिस्थिती, अनुभागं च जानन्नपि कर्मणा न मुंचति । **मुंचदि सव्वे जदि विसुद्धो** यदा मिथ्यात्वरागादिरहितो भवति तदाऽनंतज्ञानादिगुणात्मकपरमात्मस्वरूपे स्थितः सर्वान्कर्मबंधान् मुंचति । अथवा पाठांतरं **मुंचदि सव्वे जदि स बंधे** मुच्यते कर्मणा यदि किं, सिस्यति छिनत्ति । कान् ? कर्मबंधान् । अनेन व्याख्यानेन ये प्रकृत्यादिबंधपरिज्ञानमात्रेण संतुष्टास्ते प्रतिबोध्यंते । कथं ? इति चेत्, बंधपरिज्ञानमात्रेण स्वरूपोपलब्धिरूपवीतरागचारित्ररहितानां स्वर्गादिसुख-निमित्तभूतः पुण्यबंधो भवति न च मोक्ष इति दार्ष्टांतगाथा गता । एतेन व्याख्यानेन कर्मबंध-प्रपंचरचनाविषये चिंतामात्रपरिज्ञानेन संतुष्टा निराक्रियंते ॥ ३०९, ३१०, ३११ ॥

जह बंधे चिंतंतो बंधणबद्धो ण पावइ विमोक्खं ।
तह बंधे चिंतंतो जीवो वि ण पावइ विमोक्खं ॥ ३१२ ॥

॥ आ. ख्या. २९१ ॥

जह बंधे चिंतंतो बंधणबद्धो ण पावदि विमोक्खं यथा कश्चित्पुरुषो बंधनबद्धो बंधं चिंतयमानो मोक्षं न लभते **तह बंधे चिंतंतो जीवो वि ण पावदि विमोक्खं** तथा जीवोऽपि

अथवा दूसरे पाठ का अर्थ इस प्रकार है कि, यदि उन सभी कर्मबंधनोंको छेदता है, तो कर्मोंसे मुक्त होता है (छूटता है) ।

इस प्रकारके कथनसे जो प्रकृति, प्रदेश, स्थिति आदि बंधके परिज्ञानमात्रसे (मालूमातमात्रसे) संतुष्ट होकर रहते है उनको संबोधन करते हैं ।

शंका– कैसे ?

समाधान– जो जीव प्रकृति, प्रदेश आदि बंधके परिज्ञानमात्रसे संतुष्ट हैं ऐसे स्वरूप उपलब्धि (स्वानुभूति) रूप वीतराग चारित्ररहितवालोंको स्वर्गादिसुखका कारणभूत पुण्यबंध होता है तथापि मोक्ष नहीं होता है । यह दार्ष्टांत गाथा का अर्थ हुआ । इस कथनसे कर्मबंधके प्रपंचकी रचनाके विषयका चिंतनमात्र करके उसके परिज्ञानसे जो संतुष्ट होते हैं उनका निराकरण किया हैं। (स्वानुभव नहीं करते हैं, वे मोक्षमार्गस्थ नहीं है) ॥ ३०९, ३१०, ३११ ॥

गाथार्थ– [जह] जैसे [बंधणबद्धो] बंधनमें पडा हुआ कोई पुरुष [बंधे] बंधनोंका [चिंतंतो] चिंतन करता हुआ [विमोक्खं] मोक्ष [ण पावदि] नहीं प्राप्त करता है [तह] वैसे [बंधे] कर्मबंधोंका [चिंतंतो] मनन-चिंतन करता हुआ [जीवो वि] जीव भी [विमोक्खं] मोक्षको [ण पावदि] नहीं पाता है ।

टीकार्थ– जैसे बंधनमें बद्ध हुआ कोई पुरुष बंधका चिंतन करता हुआ मोक्ष नहीं पाता है, वैसे जीव भी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश बंधोंका मनन-चिंतन-चर्चा करता हुआ स्वशुद्धात्मा (स्वानुभव) की प्राप्तिलक्षणस्वरूप मोक्ष को प्राप्त नहीं होता है ।

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधांश्चिंतयमानः स्वशुद्धात्मावप्तिलक्षणं मोक्षं न लभते । किं च समस्त-शुभाशुभबहिर्द्रव्यालंबनरहितचिदानंदैकशुद्धात्मावलंबनस्वरूपवीतरागधर्मध्यानशुक्लध्यानरहितो जीवः बंधप्रपंचरचनाचितारूपसरागधर्मध्यानशुभोपयोगेन स्वर्गादिसुखकारणपुण्यबंधं लभते न च मोक्षमिति भावार्थः ॥ ३१२ ॥

अथ कस्तर्हि मोक्षहेतुरिति प्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति–

जह बंधे मुत्तूण य बंधणबद्धो य पावदि विमोक्खं ।
तह बंधे मुत्तूण य जीवो संपावदि विमोक्खं ॥ ३१३ ॥

॥ आ. ख्या. २९२ ॥

जह बंधे मुत्तूण य बंधणबद्धो य पावदि विमोक्खं तह बंधे मुत्तूण य जीवो संपावदि

इसका स्पष्टीकरण यह है कि, सभी शुभाशुभबाह्यद्रव्यके अवलंबन से रहित (याने परिपूर्ण स्वतंत्र स्वभाव शुद्धात्मस्वरूप) चिदानंद एक शुद्धात्माका आलंबन जिसमें है ऐसा वीतराग (स्वानुभवमय) धर्मध्यानशुक्लध्यान से रहित जीव बंधप्रपंचरचनाके चिंतनस्वरूप सरागधर्मध्यानरूप शुभोपयोगसे स्वर्गादिसुखके कारणरूप पुण्यबंधको प्राप्त होता है, और मोक्षको प्राप्त नहीं होता है । ऐसा भावार्थ हैं ।

भावार्थ– जो कोई ऐसा मानते है कि, "शास्त्रके पठन-पाठन, कर्मबंधके उदय, बंध, उदीरणा आदि और प्रकृतिबंध, स्थितिबंध आदि प्रकारकी चिंता-चर्चा-मनन-चिंतन-चिंतवन आदि करके और बहिरंग क्रिया करनेसे सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ और मोक्षमार्ग शुरू हुआ," उनके प्रति संबोधन करते हुअे श्री आचार्यदेव कहते हैं की, बंधका चिंतन करनेसे शुभोपयोग होता है। वह चिंतवन बाह्यद्रव्यका आलंबन लेकर होता है, उससे विकल्प ही होते हैं, वह निर्विकल्प-समाधि (स्वानुभूति–शुद्धोपयोग) नहीं है इसलिये मोक्षमार्ग शुरू नहीं होता है । इस बंधनकें विकल्प करते रहनेसे सम्यग्दर्शन–स्वानुभव प्राप्त नहीं होता है। याने स्वानुभव लेनेसे ही चतुर्थादिगुणस्थान प्रगट होते हैं । स्वानुभवसेही मोक्ष प्राप्त होता है । स्वानुभवके समय अपने स्वभावशुद्ध, परिपूर्ण, स्वतंत्र, चिदानंदमय आत्माका आलंबन होनेसे वहां शुभाशुभभाव नहीं है इसलिये कर्मबंधकी संवरपूर्वक निर्जरा होती है– कर्मबंध छूटते हैं ॥ ३१२ ॥

अब, तो फिर मोक्षका कारण कौनसा है ? इस प्रश्नका उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [जह] जैसे [बंधणबद्धो] बंधनसे बंधा हुआ कोअी पुरुष [बंधे मुत्तूण य] बंधन को छोडकर [विमोक्खं] मोक्षको [पावदि] पाता है [तह य] वैसे ही [बंधे मुत्तूण य] बंधनको छोडकर [जीवो] जीव [विमोक्खं] मोक्षको [संपावदि] अच्छीतरह प्राप्त करता है ।

टीकार्थ– जैसे बंधनसे बंधा हुआ कोई पुरुष रज्जुबंधको या सांकल बंधको या काठ की

विमोक्खं यथा बंधनबद्धः कश्चित्पुरुषो रज्जुबंधं शृङ्खलाबंधं काष्ठनिगलबंधं वा कमपि बंधं छित्त्वा कमपि भित्वा कमपि मुक्त्वा स्वकीयविज्ञानपौरुषबलेन मोक्षं प्राप्नोति। तथा जीवोऽपि वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानायुधेन बंधं छित्त्वा द्विधा कृत्वा, भित्त्वा विदार्य, मुक्त्वा छोटयित्वा च निजशुद्धात्मोपलंभस्वरूपं मोक्षं प्राप्नोतीति। अत्राह शिष्यः— प्राभृतग्रंथे यन्निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानं भण्यते तन्न घटते। कस्मात्? इति चेत्, तदुच्यते—सत्तावलोकनरूपं चक्षुरादिदर्शनं यथा जैनमते निर्विकल्पं कथ्यते तथा बौद्धमते ज्ञानं निर्विकल्पं भण्यते परंतु तन्निर्विकल्पमपि विकल्पजनकं भवति। जैनमते तु विकल्पस्योत्पादकं भवत्येवं न किंतु स्वरूपेणैव सविकल्पमिति तथैव स्वपरप्रकाशकं चेति। तत्र परिहारः— कथंचित्सविकल्पमपि च कथंचिन्निर्विकल्पं च। तद्यथा—यथा विषयानंदरूपं सरागस्वसंवेदनज्ञानं सरागसंवित्तिविकल्परूपेण सविकल्पमपि शेषानीहितसूक्ष्मविकल्पानां सद्भावेऽपि सति तेषां मुख्यत्वं नास्ति तेन कारणेन निर्विकल्पमपि भण्यते। तथापि स्वशुद्धात्मसंवित्तिरूपं वीतरागस्वसंवेदनज्ञानमपि स्वसंवित्त्याकारैकविकल्पेन सविकल्पमपि बहिर्विषयानीहितसूक्ष्मविकल्पानां सद्भावेऽपि सति तेषां मुख्यत्वं नास्ति तेन करणेन निर्विकल्पमपि भण्यते। यत एवेहापूर्वस्वसंवित्त्याकारांतर्मुख्यप्रतिभासेऽपि बहिर्विषयानी-

---

वेडी के बंध को याने किसी भी प्रकारके बंधनको किसीको छेदकर, किसीको भेदकर, किसी को छोडकर अपने विज्ञान और पुरुषार्थ के बलसे मुक्त होता है। वैसे जीव भी वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान (स्वानुभव) के शस्त्रसे बंधको छेदकर या दो भेद कर, खोलकर, विदारण कर और छोडकर निजशुद्धात्मउपलब्धि (स्वानुभूति) स्वरूप मोक्ष प्राप्त करता है।

(शंका—) शिष्य पूछता है कि— इस प्राभृतग्रंथमें जो निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान कहा गया हैं वह घटित नहीं होता है क्यों कि जैसे सत्ताके अवलोकनरूप चक्षु आदिके दर्शनको जैनमतमें निर्विकल्प कहा है, वैसे बौद्धमतमें ज्ञानको निर्विकल्प कहा गया है, लेकिन वह निर्विकल्प भी विकल्पजनक है। परन्तु जैनमतमें वह ज्ञान विकल्पका उत्पादक है इस प्रकार नहीं है, किन्तु ज्ञान स्वरूपसे ही सविकल्प है तथा स्वपरप्रकाशक है?

उसका समाधान— जैनमतमें (वास्तवमें) ज्ञानको कथंचित् सविकल्प और कथंचित् निर्विकल्प कहा है। उसका स्पष्टीकरण यह है कि,— जैसे विषयानंदरूप सरागस्वसंवेदनज्ञान सरागसंवित्ति (विकल्परूप) से सविकल्प है तो भी शेष अनिच्छित सूक्ष्म विकल्पोंका सद्भाव होनेपर भी उनकी मुख्यता नहीं है इस कारणसे उस विषयानंदरूप स्वसंवेदनज्ञानको निर्विकल्प-भी कहा गया है। वैसे ही अपनी स्वभावशुद्धात्माकी संवित्ति (स्वानुभूति) वाला वीतराग-स्वसंवेदनज्ञान भी स्वसंवित्तिरूप (स्वभावशुद्धात्म) आकारवाला ज्ञान एक दृष्टिसे सविकल्प भी है, वहाँ बाह्यविषयोंके अनिच्छित (अबुद्धिपूर्वक) सूक्ष्म विकल्पोंका सद्भाव भी होते हुओ उन विकल्पोंकी मुख्यता नहीं है, इस कारणसे अपनी स्वभावशुद्धात्माकी अनुभूति निर्विकल्प कही गयी है।

और बुद्धिपूर्वक स्वसंवित्ति आकार (स्वानुभव आकार) का जो अन्तर्मुख प्रतिभास

हितसूक्ष्मविकल्पा अपि संति तत एव कारणात् स्वपरप्रकाशकं च सिद्धं इदं निर्विकल्पसविकल्पस्य तथैव स्वपरप्रकाशकस्य च ज्ञानस्य च व्याख्यानं यथागमाध्यात्मतर्कशास्त्रानुसारेण विशेषेण व्याख्यायते तदा महान् विस्तरो भवति स चाध्यात्मशास्त्रत्वान्न कृतः। एवं मोक्षपदार्थसंक्षेपसूचनार्थं गाथासप्तकं गतं ॥ ३१३ ॥

अथ किमयमेव मोक्षमार्गः ? इति चेत्–

बंधाणं च सहावं वियाणिदुं अप्पणो सहावं च ।
बंधेसु जो ण रज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणदि ॥ ३१४ ॥

॥ आ. ख्या. २९३ ॥

बंधाणं च सहावं वियाणिदुं भावबंधानां मिथ्यात्वरागादीनां स्वभावं ज्ञात्वा कथं ज्ञात्वा ? मिथ्यात्वस्वभावो हेयोपादेयतत्त्वविषये विपरीताभिनिवेशो भण्यते रागादीनां च स्वभावः पंचेंद्रियविषयेष्विष्टानिष्टपरिणाम इति न केवलं बंधस्वभावं ज्ञात्वा **अप्पणो सहावं च** अनंतज्ञानादिस्वरूपं शुद्धात्मनः स्वभावं च ज्ञात्वा **बंधेसु जो ण रज्जदि** द्रव्यबंधहेतुभूतेषु मिथ्यात्वरागादिभावबंधेषु निर्विकल्पसमाधिबलेन यो न रज्यते **सो कम्मविमोक्खणं कुणदि** स कर्मविमोक्षणं करोति ॥३१४॥

होता है तो भी वहीं पर बाह्यविषयोंके अनिच्छित (अबुद्धिपूर्वक) सूक्ष्म विकल्प भी होते हैं उस ही कारणसे ज्ञान स्व-पर प्रकाशक सिद्ध होता है। इसलिये यह निर्विकल्प और सविकल्प ज्ञानका तथा स्व-पर प्रकाशक ज्ञानका कथन स्पष्ट सिद्ध है। इस का आगम-आध्यात्म-तर्कशास्त्रके अनुसार विशेष व्याख्यान किया जावे तो महान् विस्तार होता है। और यहां अध्यात्मशास्त्र होनेसे वह कथन महान विस्तारसे कथन नहीं किया गया है। इसप्रकार मोक्षपदार्थके संक्षेप सूचनाके लिये प्रथमस्थलमें सात गाथायें पूर्ण हुई।

(गाथा नं ३१३ में जह बंधे छित्तूण य, जह बंधे भित्तूण य, जह बंधे मुत्तूण य इत्यादि इसप्रकार तीन प्रकारसे पाठ पाया जाता है इसलिये पांच गाथाओंके स्थान में सात गाथायें समझ लेना चाहिये) ॥ ३१३ ॥

अब, क्या यही मोक्षमार्ग है ? इस प्रश्नका उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**बंधाणं सहावं च**] बंधोंके स्वभावको और [**अप्पणो सहावं च**] आत्मा के स्वभावको [**वियाणिदुं**] जानकर [**जो**] पुरुष [**बंधेसु**] बंधोंमें [**ण रज्जदि**] रममाण नहीं होता है [**सो**] वह [**कम्मविमोक्खणं कुणदि**] कर्मोंसे मुक्त होता है।

टीकार्थ– भावबंधवाले मिथ्यात्वरागादिकोंके स्वभावको जानकर, हेय उपादेयतत्व के विषयमें विपरीत अभिनिवेश मिथ्यात्व कहलाता है और पंचेंद्रियोंके विषयोंमें इष्ट, अनिष्ट भाव होना रागादिकोंका स्वभाव हैं उनको जानकर, केवलबंधस्वभावको ही नहीं किन्तु शुद्ध आत्माके अनंतज्ञानादिस्वभावको जानकर निर्विकल्पसमाधि (स्वानुभूति) के बलसे द्रव्यबंधहेतुभूत मिथ्यात्वरागादिभावबंधोंमें जो रंजायमान नहीं होता है, वह कर्मोंका नाश करता है ॥ ३१४ ॥

अथ केन कृत्वात्मबंधो द्विधा भवति ? इति चेत्–

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं ।
पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा ।। ३१५ ।।

।। आ. ख्या. २९४ ।।

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं यथा जीवस्तथा बंधश्चैतौ द्वौ छिद्येते पृथक् क्रियेते, काभ्यां कृत्वा ? स्वलक्षणरूपाभ्यां निजकाभ्यां **पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा** प्रज्ञाछेदनैकलक्षणेन भेदज्ञानेन छिन्नौ संतौ नानात्वमापन्नौ इति । तथाहि– जीवस्य लक्षणं शुद्धचैतन्यं भण्यते, बंधस्य लक्षणं मिथ्यात्वरागादिकं, ताभ्यां पृथक् कृतौ । केन ? कारणभूतेन प्रज्ञाछेदनकेन, शुद्धात्मानुभूतिलक्षणभेदज्ञानरूपा प्रज्ञैव छेत्र्येव छुरिका तया एवेत्यर्थः । छिन्नौ संतौ नानात्वमापन्नौ ।। ३१५ ।।

आत्मबंधयोर्द्विधाकरणे किं साध्यं ? इति चेत्–

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं ।
बंधो छेदेदव्वो सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो ।। ३१६ ।।

।। आ. ख्या. २९५ ।।

अब, आत्मा और बंध को किस प्रकार से भिन्न भिन्न करते हैं ? इसका उत्तर कहते हैं–

गाथार्थ– [**जीवो**] जीव [**य**] और [**बंधो**] बंध [**णियएहिं सलक्खणेहिं**] निश्चित अपने अपने लक्षणों के द्वारा [**पण्णाछेदणएण**] प्रज्ञारूपी छैनी से [**तहा**] इसतरह [**छिज्जंति**] पृथक् किये जाते हैं [**दु**] कि जिस तरह [**छिण्णा णाणत्तमावण्णा**] छेदे हुअे नानापनको प्राप्त हो जाय ।

टीकार्थ– जीव तथा बंध अपने अपने स्वभाव लक्षणोंसे पृथक् किये जाते हैं ।

शंका– किसके द्वारा आत्मा और बंध भिन्न किये जाते हैं ?

समाधान– प्रज्ञा रूपी छैनी है एक लक्षण जिसका ऐसे भेदज्ञानसे छिन्न करते हुअे नानापनको प्राप्त किये जाते है ।

जीवका लक्षण शुद्धचैतन्य है, बंधका लक्षण मिथ्यात्वरागादिक है । उनको प्रज्ञा छैनीसे याने शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवाले भेदज्ञानसे भिन्न भिन्न करते हुअे नानापनाको प्राप्त किये जाते हैं ।। ३१५ ।।

आत्मा और बंध दोनोंको पृथक् करनेमें क्या साध्य करना चाहिये ? इस प्रश्नका उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**जीवो**] जीव [**य**] और [**बंधो**] बंध इन दोनोंको [**णियएहिं सलक्ख-**

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं जीवबंधौ द्वौ पूर्वोक्ताभ्यां स्वलक्षणाभ्यां निजकाभ्यां छिद्येते पूर्ववत् । ततश्छेदानंतरं किं साध्यं ? **बंधो छेदेदव्वो** विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकभेदज्ञानछुरिकया मिथ्यात्वरागादिरूपो बंधश्छेत्तव्यः शुद्धात्मनः सकाशात्पृथक्कर्तव्यः । **सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो** वीतरागसहजपरमानंदलक्षणः सुखसमरसीभावेन शुद्धात्मा च गृहीतव्य इत्यभिप्रायः ।। ३१६ ।।

इदमेवात्मबंधयोर्द्विधाकरणे प्रयोजनं यद्बंधपरिहारेण शुद्धात्मोपादानमित्युपदिशति–

कह सो घिप्पदि अप्पा पण्णाए सो दु घिप्पदे अप्पा ।
जह पण्णाए विभत्तो तह पण्णाएव घित्तव्वो ।। ३१७ ।।

।। आ॰ ख्या॰ २९६ ।।

कह सो घिप्पदि अप्पा कथं स गृह्यते आत्मा 'दृष्टिविषयो न भवत्यमूर्त्तत्वात्' इति प्रश्नः ? **पण्णाए सो दु घिप्पदे अप्पा** प्रज्ञया भेदज्ञानेन गृह्यते, इत्युत्तरं । कथं ? इति चेत् **जह**

णेहिं] निश्चित अपने अपने लक्षणोंसे [**तहा**] इस तरह [**छिज्जंति**] भिन्न करते है कि [**बंधो**] बंध [**छेदेदव्वो**] तो छिदकर भिन्न हो जाय [**य**] और [**सुद्धो अप्पा घेत्तव्वो**] शुद्ध आत्मा ग्रहण किया जाय ।

टीकार्थ– जीव और बंध पहले कहे अनुसार अपने अपने लक्षणोंसे भिन्न किये जाते हैं ।

शंका– आत्मा और बंधको भिन्न करनेके वाद क्या साध्य करना चाहिये ?

समाधान– विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावपरमात्मतत्त्वका सम्यक्श्रद्धानज्ञानअनुचरणरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मक भेदज्ञान (स्वानुभूति) रूप छुरीसे मिथ्यात्वरागादिरूप बंध छेदना चाहिए, बंधको शुद्धात्मासे पृथक् करना चाहिये और सुखसमरसीभावसे (स्वानुभवसे) वीतरागसहजपरमानंदलक्षणवाला शुद्धात्मा ग्रहण करना चाहिये, यह अभिप्राय है ।। ३१६ ।।

आत्मा और बंध को पृथक् करनेमें प्रयोजन यह है कि, बंधका त्याग करके शुद्धात्माका ग्रहण करना चाहिए इस प्रकारका उपदेश देते हैं–

गाथार्थ– शिष्य पूछता है कि [**सो अप्पा**] वद शुद्धात्मा [**कह**] कैसे [**घिप्पदि**] ग्रहण किया जा सकता है ? आचार्य उत्तर देते हैं कि [**सो दु अप्पा**] वह शुद्ध आत्मा [**पण्णाए**] प्रज्ञासे ही [**घिप्पदि**] ग्रहण किया जाता है [**जह**] जैसे पहले [**पण्णाए**] प्रज्ञासे [**विभत्तो**] भिन्न किया था [**तह**] वैसे [**पण्णाएव**] प्रज्ञासे ही [**घित्तव्वो**] ग्रहण करना चाहिये ।

टीकार्थ– शंका– आत्मा तो अमूर्त्त हैं अतः वह दृष्टिका विषय नहीं है, तो फिर उसको कैसे ग्रहण किया जा सकता है ?

समाधान– भेदज्ञानरूप बुद्धिके द्वारा शुद्धात्माको ग्रहण किया जाता है

पण्णाए विभत्तो यथा पूर्वसूत्रे प्रज्ञया विभक्तः रागादिभ्यः पृथक्कृतः तह पण्णाएव घित्तव्वो तथा प्रज्ञयैव गृहीतव्यः । ननु केन शुद्धोऽयमात्मा गृहीतव्यः ? प्रज्ञयैव शुद्धोऽयमात्मा गृहीतव्यः शुद्धस्यात्मनः स्वयमात्मानं गृह्णतोऽपि विभजत इव प्रज्ञैककरणत्वात् । अतो यथा प्रज्ञया प्रविभक्तस्तथा प्रज्ञयैव गृहीतव्यः ।। ३१७ ।।

कथमात्मा प्रज्ञया गृहीतव्य इति चेत्–

पण्णाए घित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णायव्वा ।। ३१८ ।।

।। आ. ख्या. २९७ ।।

प्रज्ञया गृहीतव्यो यश्चेतयिता सोहं तु निश्चयतः। अवशेषा ये भावास्ते मम परे इति ज्ञातव्याः। यो हि निश्चयतः स्वलक्षणावलंबिन्या प्रज्ञया प्रविभक्तश्चेतयिता सोऽयमहं, ये त्वमी अवशिष्टा अन्ये स्वलक्षणलक्ष्या व्यवह्रियमाणा भावास्ते सर्वेऽपि चेतयितृत्वस्य व्यापकस्य व्याप्यत्वमनायांतोऽत्यंतं मत्तो भिन्नास्ततोऽहमेव मयैव मह्यमेव मत्त एव मय्येव मामेव गृह्णामि,

---

शंका– कैसे ?

समाधान– जैसे पहले सूत्रमें कहा था कि, वुद्धि के द्वारा रागादिसे आत्माको पृथक् किया गया है वैसे वुद्धिके द्वारा ही ग्रहण करना चाहिये ।

शंका– यह शुद्धात्मा किस साधनसे ग्रहण करना चाहिये ?

समाधान– वुद्धिके द्वारा ही यह शुद्धात्मा ग्रहण करना चाहिये, शुद्धात्मासे स्वयं शुद्धात्माको ग्रहण किया जाता है जैसे वुद्धिरूपी एक साधनसे भिन्न करते हैं।

इसलिये जैसे प्रज्ञासे भिन्न किया वैसे प्रज्ञासे ही ग्रहण करना चाहिये ।। ३१७ ।।

आत्मा प्रज्ञाके द्वारा कैसे ग्रहण करना चाहिये ? इसका उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**णिच्छयदो**] निश्चयसे [**जो चेदा**] जो चेतनस्वभाववाला आत्मा है [**सो दु**] वह [**अहं**] मैं हूँ इस तरह [**पण्णाए**] वुद्धिपूर्वक [**घित्तव्वो**] ग्रहण करना चाहिये [**तु**] और [**अवसेसा जे भावा**] अवशेष जो भाव हैं [**ते**] वे [**मज्झ परे त्ति**] मुझ से पर हैं ऐसा [**णायव्वा**] जानना चाहिये ।

टीकार्थ– निश्चयसे अपने स्वभावका अवलंवन करनेवाली वुद्धि के द्वारा जो प्रविभक्त किया हुआ चैतन्यमय आत्मा है वह यह मैं (चैतन्य आत्मा हूँ) और जो यह अवशेष दूसरे अपने लक्षणसे लखे जानेवाले व्यवह्रियमाण भाव हैं वे सब भी व्यापक चेतयितापनके व्याप्यत्वको प्राप्त नहीं होते हुये चेतनसे शून्य चेतनसे रहित हैं, वे सब भाव मेरेसे अत्यंत भिन्न हैं। इसलिये मैं ही मेरे द्वारा ही, मेरे लिये ही, मेरेसे ही, मुझमें ही, और मुझको ही ग्रहण करता

यत् किल गृह्णामि तच्चेतनैकक्रियत्वादात्मनश्चेतये एव, चेतयमान एव चेतये, चैतयमानेनैव चेतये, चेतयमानायैव चेतये, चेतयमानादेव चेतये, चेतयमान एव चेतये, चेतयमानमेव चेतये। अथवा न चेतये, न चेतयमानश्चेतये, न चेतयमानेन चेतये, न चेतयमानाय चेतये, न चेतयमानाच्चेतये, न चेतयमाने चेतये, न चेतयमानं चेतये, किंतु सर्वविशुद्धचिन्मात्रो भावोऽस्मि। ("भित्वा सर्वमपि स्वलक्षणबलाद्भेत्तुं हि यच्छक्यते चिन्मुद्रांकितनिर्विभागमहिमा शुद्धश्चिदेवास्म्यहं।) भिद्यंते यदि कारकाणि यदि वा धर्मा गुणा वा यदि भिद्यंतो न भिदास्ति काचन विभौ भावे विशुद्धे चिति ॥ आ. ख्या. कलश १८२ ॥

पण्णाए घित्तव्वो जो दट्ठा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णायव्वा ॥ ३१९ ॥

॥ आ. ख्या. २९८ ॥

हूँ। जो मैं निश्चयतः ग्रहण करता हूँ वह आत्मा की चेतना ही एक क्रिया है। उस क्रिया से चेतता ही हूँ, चेतता हुआ ही चेतता हूँ, चेतते हुये से ही चेतता हूँ, चेतते हुये के लिये ही चेतता हूँ, चेतते हुये से ही चेतता हूँ, चेतते हुये में ही चेतता हूँ, चेतते हुये को ही चेतता हूँ। अथवा न तो चेतता हूँ, न चेतता हुआ चेतता हूँ, न चेतते हुये से चेतता हूँ, न चेतते हुये के लिये चेतता हूँ, न चेतते हुये से चेतता हूँ, न चेतते हुये में चेतता हूँ, न चेतते हुये को चेतता हूँ। किन्तु सर्व विशुद्ध चैतन्य मात्र भाव हूँ।

श्री अमृतचंद्राचार्य आत्मख्याति कलश नं. १८२ में लिखते हैं "भित्वा सर्वमपि" इत्यादि– अर्थात् ज्ञानी कहता है कि, जो भेदने को समर्थ है उस सबको निजलक्षण के बलसे भेदकर चैतन्य चिन्हसे चिन्हित, विभागरहित महिमावाला मैं शुद्ध चैतन्य ही हूँ। यदि कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण ये छह कारक और सत्व–असत्व, नित्यत्व–अनित्यत्व, एकत्व–अनेकत्व आदि धर्म और ज्ञान दर्शन आदि गुण ये भेदरूप हैं तो भेदरूप हों परंतु विशुद्ध समस्त भावोंसे रहित एक तथा सब गुणपर्यायों में व्यापक ऐसे चैतन्यभावमें तो कुछ भेद नहीं है।

भावार्थ– जिस प्रज्ञा के द्वारा आत्मा को बंधसे भिन्न किया था उस समय स्वलक्षणसे, कारकसे, धर्मसे और गुण से भेद किया था। वहाँ अभिन्न (एक द्रव्यमें) छह कारक लगाकर दिखाये हैं और बादमें एक द्रव्यमें भी छह कारक लगाना, गुण, धर्मादि के भेद करनेका निषेध किया गया है। और मैं शुद्ध चैतन्यमात्र भाव हूँ सो एक अभेद हूँ, द्रव्यदृष्टिसे कर्ता कर्म आदि षट्कारक का भी भेद मुझमें नहीं है। इसतरह स्वभावशुद्धपरिपूर्ण अभेद आत्माका ग्रहण करना चाहिए ॥ ३१८ ॥

गाथार्थ– [णिच्छयदो] निश्चयसे [जो दट्ठा] जो देखनेवाला आत्मा है [सो] वह [अहं] मैं हूँ इसतरह [पण्णाए] बुद्धिपूर्वक [घित्तव्वो] ग्रहण करना चाहिये [तु]

पण्णाए घित्तव्वो जो णादा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा ॥ ३२० ॥

॥ आ. ख्या. २९९ ॥

चेतनाया दर्शनज्ञानविकल्पानतिक्रमणाच्चेतयितृत्वमिव द्रष्टृत्वं ज्ञातृत्वं चात्मनः स्वलक्षणमेव । ततोऽहं द्रष्टारमात्मानं गृह्णामि । यत्किल गृह्णामि तत्पश्याम्येव, पश्यन्नेव पश्यामि, पश्यतैव पश्यामि, पश्यते एव पश्यामि, पश्यत एव पश्यामि, पश्यत्येव पश्यामि पश्यंतमेव पश्यामि । अथवा न पश्यामि, न पश्यन् पश्यामि, न पश्यता पश्यामि, न पश्यते पश्यमि, न पश्यतः पश्यामि, न पश्यति पश्यामि, न पश्यंतं पश्यामि । किंतु सर्वविशुद्धो दृङमात्रो भावोऽस्मि । अपि च ज्ञातारमात्मानं गृह्णामि यत्किल गृह्णामि तज्जानाम्येव, जानन्नेव जानामि, जानतैव जानामि, जानते एव जानामि जानत एव जानामि, जानत्येव जानामि, जानंतमेव जानामि । अथवा न जानामि, न जानन् जानामि, न जानतैव जानामि, न जानते जानामि, न जानतो जानामि, न जानति जानामि, न जानंतं जानामि । किंतु सर्वविशुद्धो ज्ञप्तिमात्रो भावोऽस्मि । ननु कथं चेतना दर्शनज्ञानविकल्पौ नातिक्रामति येन चेतयिता द्रष्टा ज्ञाता च

और [**अवसेसा**] अवशेष [**जे भावा**] जो भाव हैं [**ते**] वे [**मज्झ परे त्ति**] मुझसे पर हैं ऐसा [**णायव्वा**] जानना चाहिये । [**णिच्छयदो**] निश्चयसे [**जो णादा**] जो ज्ञाता जाननेवाला आत्मा है [**सो** [वह [**अहं**] मैं हूँ इसतरह [**पण्णाए**] बुद्धिपूर्वक [**घित्तव्वो**] ग्रहण करना चाहिये [**तु**] और [**अवसेसा**] अवशेष [**जे भावा**] जो भाव हैं [**ते**] वे [**मज्झ परे त्ति**] मुझसे पर हैं ऐसा [**णादव्वा**] जानना चाहिये ।

टीकार्थ– चेतना में दर्शनज्ञानके भेदका उल्लंघन नहीं हैं । इस कारण चेतकत्वकी तरह दर्शकपना व ज्ञातापना आत्मा का निजलक्षण ही है । इसलिये ऐसा अनुभव करना कि मैं देखनेवाले आत्माको ग्रहण करता हूँ, जो निश्चयसे ग्रहण करता हूँ, सो देखता ही हूँ, देखता ही देखता हूँ, देखते हुअे के द्वारा ही देखता हूँ, देखते हुअे के लिये ही देखता हूँ, देखते हुअे से ही देखता हूँ, देखते हुअे में ही देखता हूँ और देखते हुअे को ही देखता हूँ । अथवा नहीं देखता, न देखते हुअे को देखता हूँ, न देखते हुए के द्वारा देखता हूँ, न देखते हुअे के लिये देखता हूँ, न देखते हुए से देखता हूँ, न देखते हुए में देखता हूँ, न देखते हुए को देखता हुँ, किन्तु सर्व विशुद्ध एक दर्शनमात्र भाव मैं हूँ ।

तथा उसी तरह ज्ञान पर लगाना । मैं जाननेवाले ज्ञाता आत्माको ग्रहण करता हूँ, जो ग्रहण करता हूँ, सो निश्चय से जानता ही हूँ, जानता हुआ ही जानता हूँ, जानते हुए के द्वारा ही जानता हूँ, जानते हुए के लिये ही जानता हूँ, जानता हुए से ही जानता हूँ, जानते हुए में ही जानता हूँ, जानते हुए को ही जानता हूँ । अथवा नहीं जानता, न जानते हुए को जानता हूँ, न जानते हुए के द्वारा जानता हूँ, न जानते हुए के लिये जानता हूँ, न जानते हुए से जानता हूँ,

स्यात् ? उच्यते– चेतना तावत्प्रतिभासरूपा सा तु सर्वेषामेव वस्तूनां सामान्य विशेषात्मकत्वाद् द्वैरूप्यं नातिक्रामति। ये तु तस्या द्वे रूपे ते दर्शनज्ञाने, ततः सा ते नातिक्रामति। यद्यतिक्रामति ? सामान्यविशेषातिक्रांतत्वाच्चेतनैव न भवति। तदभावे द्वौ दोषौ स्वगुणोच्छेदाच्चेतनस्याचेतनतापत्तिः, व्यापकाभावे व्याप्यस्य चेतनस्याभावो वा। ततस्तद्दोषभयाद्दर्शनज्ञानात्मिकैव चेतनाभ्युपगंतव्या।

अद्वैतापि हि चेतना जगति चेद्दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत् तत्सामान्यविशेषरूपविरहात्सास्तित्वमेव त्यजेत्। तत्त्यागे जडता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापकादात्मा चांतमुपैति तेन नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपास्ति चित् ॥ आ. ख्या. कलश १८३॥ एकश्चितचिन्मय एव भावो भावाः परे ये किल ते परेषां। ग्राह्यस्ततश्चिन्मय एव भावो भावाः परे सर्वत एव हेयाः ॥ आ. ख्या. १८४ कलश ॥

न जानते हुए में जानता हूँ, न जानते हुए को जानता हूँ, किंतु सर्वविशुद्ध एक जाननक्रियामात्र भाव में हूँ।

इस तरह दर्शन और ज्ञान पर छह कारक लगाके फिर अभेदरूप करने को कारक भेद का निषेध कर ज्ञाता द्रष्टा मात्र अपना अनुभव करना चाहिये।

शंका– चेतना दर्शनज्ञान भेदोंको कैसे उल्लंघन नहीं करती है कि जिससे आत्मा द्रष्टा ज्ञाता हो जाता हैं ?

समाधान– पहले तो चेतना प्रतिभासरूप है, ऐसी चेतना दोरूपपने को उल्लंघन नहीं करती क्योंकि सभी वस्तूका सामान्य विशेषरूप स्वरूप है। सो चेतना भी वस्तु है वह सामान्य-विशेषरूप को कैसे उल्लंघन करे। उसके दो रूप हैं वे दर्शन, ज्ञान हैं इसलिये वह चेतना दर्शनज्ञान इन दोनोंको उल्लंघन नहीं करती। यदि इन दो स्वरूपोंको उल्लंघे तो सामान्यविशेषरूपके उल्लंघनेपनेसे चेतना ही नहीं होती। उस चेतना के अभावसे दो दोष आते हैं– एक तो अपने गुणका उच्छेद होनेसे चेतनको अचेतनपनाकी प्राप्ति आती है और दूसरे व्यापक चेतनका अभाव होनेसे व्याप्य जो चेतन आत्मा उसका अभाव होता है। इस कारण इन दोषोंके भयसे चेतना दर्शनज्ञानात्मक ही अंगीकार करनी चाहिये।

श्री अमृतचंद्राचार्य आत्मख्याति कलश नं. १८३ में कहते हैं कि– "अद्वैतापि हि" इत्यादि– अर्थात् जगतमें निश्चयसे चेतना अद्वैत है, तो भी जो दर्शनज्ञानरूपको छोडे तो सामान्य विशेषरूप के अभावसे वह चेतना अपने अस्तित्वको छोड दे और जब चेतना अपने अस्तित्वको छोड दे तो चेतनके (आत्माको) जडपना हो जाय। तथा व्याप्य–आत्मा व्यापक–चेतना के विना अंत को प्राप्त हो जाय इसलिये चेतना नियमसे दर्शनज्ञान स्वरूप ही है।

आत्मख्याति कलश नं १८४– "एकश्चितश्चिन्मय" इत्यादि– अर्थात् चैतन्य का तो एक चिन्मय ही भाव है। दूसरे जो भाव हैं, वे निश्चयसे परके भाव हैं। इसलिये एक चिन्मयभाव ही ग्रहण करने योग्य है और जो परभाव हैं वे सभी त्यागने योग्य है।

निश्चयत: अवशेषा ये रागादिभावा विभावपरिणामास्ते चिदानंदैकभावस्य ममापेक्षया परा इति ज्ञातव्या: । अत्राह शिष्य: – चेतनाया ज्ञानदर्शनभेदौ न स्त:, एकैव चेतना ततो ज्ञाता द्रष्टेति द्विधात्मा कथं घटते इति ? अत्र पूर्वपक्षे परिहार:–सामान्यग्राहकं दर्शनं विशेषग्राहकं ज्ञानं । सामान्यविशेषात्मकं च वस्तु । सामान्यविशेषात्मकत्वाभावे चेतनाया अभाव: स्यात् । चेतनाया अभावे सति आत्मनो जडत्वं, चेतनालक्षणस्य विशेषगुणस्याभावे सत्यभावो वा भवति । नचात्मनो जडत्वं दृश्यते, न चाभाव: । प्रत्यक्षविरोधात् । तत: स्थितं यद्यप्यभेदनयेनैकरूपा चेतना तथापि सामान्यविशेषविषयभेदेन दर्शनज्ञानरूपा भवतीत्यभिप्राय: ।। ३१९, ३२० ।।

अथ शुद्धबुद्धैकस्वभावस्य परमात्मन: शुद्धचिद्रूप एक एव भाव:, न च रागादय इत्याख्याति–

को णाम भणिज्ज बुहो णादुं सव्वे परोदये भावे ।
मज्झमिणंति य वयणं जाणंतो अप्पयं सुद्धं ।। ३२१ ।।

।। आ. ख्या. ३०० ।।

निश्चयसे अवशेष जो रागादिभाव परिणाम हैं वे मेरे चिदानंद एक भावकी अपेक्षासे पर हैं, ऐसा जानना चाहिये ।

शंका– शिष्य पूछता है कि चेतना के ज्ञानदर्शन दो भेद नहीं हैं, चेतना एक ही है । इसलिये ज्ञाता द्रष्टा ऐसा द्विधा आत्मा कैसे घटित होता है ?

समाधान– सामान्यका ग्रहण करनेवाला दर्शन है, विशेषका ग्रहण करनेवाला ज्ञान है । और सामान्यविशेषात्मक वस्तु है । सामान्यविशेषात्मक के अभावमें चेतनाका अभाव होता है । चेतना के अभावमें आत्मा जडत्वको प्राप्त होता है अथवा चेतना लक्षण विशेष गुण का अभाव होनेपर आत्माका (द्रव्यका) अभाव होनेका प्रसंग आता है । और आत्मा जडत्वको प्राप्त हुआ नहीं दिखायी देता है और आत्माका अभाव भी नहीं है । क्योंकि १) आत्माको जड माननेमें प्रत्यक्षसे विरोध आता है और २) आत्माका अभाव मानना प्रत्यक्षसे विरुद्ध है ।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, यद्यपि अभेदनयसे चेतना एक ही है, तथापि सामान्य-विशेषात्मक भेद दृष्टिसे दर्शनज्ञानरूप है । ऐसा अभिप्राय है ।। ३१९, ३२० ।।

अब, शुद्धबुद्ध एक स्वभाववाले परमात्माका शुद्धचिद्रूपएक ही भाव है और उस आत्मा के रागादिक भाव नहीं है, ऐसा कहते है–

गाथार्थ– [**अप्पयं**] आत्माको [**सुद्धं**] शुद्ध [**जाणंतो**] जानते हुअे (अनुभव करते हुअे), [**सव्वे भावे**] शेष सब भावों को [**परोदये**] परके संबंधमें उदयमें आनेवाले है ऐसा [**णादुं**] जानकर [**को णाम बुहो**] कौन बुद्धिमान [**मज्झमिणं ति**] "ये परभाव मेरे हैं," [**य**] ऐसा [**वयणं**] वचन [**भणिज्ज**] कहेगा !

को णाम भणिज्ज बुहो को ब्रूयाद् बुधो ज्ञानी विवेकी नाम स्फुटमहो वा न कोऽपि। किं ब्रूयात्। **मज्झमिणंति य वयणं** ममेति वचनं, किं कृत्वा ? पूर्वं **णादुं** निर्मलात्मानुभूतिलक्षण-भेदज्ञानेन ज्ञात्वा। कान् ? **सव्वे परोदये भावे** सर्वान् मिथ्यात्वरागादिभावान् विभावपरिणामान्। कथंभूतान् ? परोदयान् शुद्धात्मनः सकाशात् परेण कर्मोदयेन जनितान्। किं कुर्वन् सन् ? **जाणंतो अप्पयं सुद्धं** जानन् परमसमरसीभावेनानुभवन्, कं ? आत्मानं। कथंभूतं ? शुद्धं भावकर्मद्रव्यकर्म-नोकर्मरहितं। केन कृत्वा जानन् ? शुद्धात्मभावनापरिणताभेदरत्नत्रयलक्षणेन भेदज्ञानेनेति। एवं विशेषभेदभावनाव्याख्यानमुख्यत्वेन तृतीयस्थले सूत्रपंचकं गतं ॥ ३२१ ॥

अथ मिथ्यात्वरागादिपरभावस्वीकारेण बध्यते वीतरागपरमचैतन्यलक्षणस्वस्वभावस्वीकारेण मुच्यते जीव इति प्रकाशयति–

टीकार्थ– शंका– कौन ज्ञानी विवेकी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) ऐसा कहेगा ?

समाधान– कोअी सम्यग्ज्ञानी पुरुष ऐसा नहीं कहता है।

शंका– क्या नहीं कहता ?

समाधान– "ये परभाव मेरे हैं" ऐसा वचन कोअी सम्यग्ज्ञानी नहीं कहता है।

शंका– क्या करके नहीं कहता है ?

समाधान– निर्मल आत्मानुभूतिलक्षणवाले भेदज्ञानसे सभी मिथ्यात्वरागादिविभाव भावोंको जानकर "ये परभाव मेरे हैं," ऐसा वचन नहीं कहता है।

शंका– मिथ्यात्वरागादिविभाव भाव कैसे हैं ?

समाधान– अपने शुद्धात्मस्वभावसे भिन्न ऐसे परकर्मोदयमें प्रगट होनेवाले ये मिथ्यात्वरागादि विभाव भाव हैं।

शंका– क्या करनेवाला ?

समाधान– परमसमरसीभावसे अपने आत्मस्वभावको अनुभव करनेवाला मिथ्यात्वरागादिभावोंको "ये परभाव मेरे हैं," ऐसा वचन नहीं कहता है।

शंका– कैसा है आत्मस्वभाव ?

समाधान– शुद्ध याने भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहित ऐसा शुद्धात्मस्वभाव है।

शंका– इस शुद्धात्मस्वभावको क्या करके (किस साधन द्वारा) जानता है ?

समाधान– शुद्धात्मभावनापरिणत-अभेदरत्नत्रयलक्षण (स्वानुभव) वाले भेदज्ञानसे अपने शुद्धात्मस्वभावको जानता है। (उसे जानते हुअे मिथ्यात्वरागादि भावोंको "ये मेरे हैं" ऐसा वचन नहीं कहता है)। इस प्रकार विशेष भेदभावनाके कथनकी मुख्यतासे तीसरे स्थलमें पांच गाथायें पूर्ण हुअी ॥ ३२१ ॥

अब, मिथ्यात्वरागादिपरभावोंको स्वभावमें स्वीकार करनेसे जीव कर्मोंसे बांधा जाता है और वीतरागपरमचैतन्य लक्षणवाले स्व स्वभावका स्वीकार करनेसे जीव कर्मोंसे मुक्त हो जाता है, ऐसा कहते हैं–

तेयादी अवराहे कुव्वदि सो ससंकिदो होदि ।
मा बज्झेऽहं केणवि चोरो त्ति जणह्मि विवरंतो ॥ ३२२ ॥
॥ आ. ख्या. ३०१ ॥

जो ण कुणदि अवराहे सो णिस्संको दु जणवदे भमदि ।
ण वि तस्स बज्झिदुं जे चिंता उप्पज्जदि कया वि ॥ ३२३ ॥
॥ आ. ख्या. ३०२ ॥

एवं हि सावराहो बज्झामि अहं तु संकिदो चेदा ।
जो पुण णिरवराहो णिस्संकोहं ण बज्झामि ॥ ३२४ ॥
॥ आ. ख्या. ३०३ ॥

तेयादी अवराहे कुव्वदि सो ससंकिदो होदि यः स्तेयपरदाराद्यपराधान् करोति स पुरुषः सशंकितो भवति । केन रूपेण ? **मा बज्झेहं केणवि चोरोत्ति जणह्मि विवरंतो** जने विचरन् माहं बध्ये केनापि तलवरादिना । किं कृत्वा ? चोर इति मत्वा । इत्यन्वयदृष्टांतगाथा गता । **जो ण कुणदि अवराहे सो णिस्संको दु जणवदे भमदि** यः स्तेयपरदाराद्यपराधं न करोति स

गाथार्थ– [**जो**] जो पुरुष [**तेयादी अवराहे**] चोरी आदि अपराधों को [**कुव्वदि**] करता है [**सो**] वह पुरुष [**ससंकिदो**] सशंकित [**होदि**] रहता है कि [**जणह्मि**] मनुष्यों के बीच [**विवरंतो**] घुमते हुओ [**चोरो त्ति**] "चोर है," ऐसा जानकर [**केण वि**] किसी के द्वारा भी [**अहं मा बज्झे**] मैं बांध लिया न जाऊं [**जो**] जो पुरुष [**अवराहे**] अपराध [**ण कुणदि**] नहीं करता [**सो दु**] वह तो [**जणवदे**] देशमें [**णिस्संको**] निःशंक [**भमदि**] घूमता है क्योंकि [**जे तस्स**] जो उसके मनमें [**बज्झिदुं चिंता**] बंधने की चिंता [**कया वि**] कभी भी [**ण वि उप्पज्जदि**] नहीं उत्पन्न होती [**एवं ही**] इस प्रकार ही [**सावराहो चेदा**] अपराधी आत्मा [**संकिदो**] शंकित रहता है कि [**अहं तु बज्झामि**] मैं कर्मोंसे बंधको प्राप्त होऊंगा [**जो पुण णिरावराहो**] और जो निरपराध है वह तो [**णिस्संको**] निःशंक रहता है कि [**अहं ण बज्झामि**] मैं नहीं बंधूंगा ।

टीकार्थ– जो पुरुष चोरी, परदार गमनादि अपराधों को करने वाला है, वह सशंकित रहता है ।

शंका– किस प्रकारसे वह शंकित रहता है ?

समाधान– लोगोंमें घुमते हुओ "मैं चोर हूं" यह जानकर किसी कोटपाल आदि के द्वारा बांध न लिया जाऊं । यह अन्वय दृष्टांत गाथाका अर्थ हुआ ।

जो कोओी चोरी आदि अपराध नहीं करता है वह निःशंक होता हुआ लोकमें

निश्शंको जनपदे लोके भ्रमति। **ण वि तस्स बज्झिदुं जे चिंता उप्पज्जदि कयावि** तस्य चिंता नोत्पद्यते कदाचिदपि जे अहो यस्मात्कारणात् वा निरपराधः, केन रूपेण चिंता नोत्पद्यते? नाहं बध्ये केनापि चौर इति मत्वा। एवं व्यतिरेकदृष्टांतगाथा गता। **एवं हि सावराहो बज्झामि अहं तु संकिदो चेदा** यो रागादिपरद्रव्यग्रहणं स्वीकारं करोति स स्वस्थभावच्युतः सन् सापराधो भवति सापराधोऽत्र शंकितो भवति। केन रूपेण? बध्येऽहं कर्मतापन्नो ज्ञानावरणादिकर्मणा। ततः कर्मबंधभीतः प्रायश्चित्तं प्रतिक्रमणरूपं दंडं ददाति। **जो पुण णिरवराहो णिस्संकोऽहं ण बज्झामि** यस्तु पुनर्निरपराधो भवति स तु दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिसमस्तविभावपरिणामरहितो भूत्वा निश्शंको भवति। केन रूपेण? इति चेत्, रागाद्यपराधरहितत्वात् नाहं बध्ये केनापि कर्मणेति प्रतिक्रमणादिदंडं विनाप्यनंतज्ञानादिरूपनिर्दोषपरमात्मभावनयैव शुद्ध्यति इत्यन्वयव्यतिरेकदार्ष्टांतगाथा गता॥ ३२२, ३२३, ३२४॥

अथ को हि नामायमपराधः? इति पृच्छति–

संसिद्धिराधसिद्धी साधिदमाराधिदं च एयट्ठो।
अवगदराधो जो खलु चेदा सो होदि अवराहो॥ ३२५॥

॥ आ. ख्या. ३०४॥

घुमता है। क्योंकि उसे कभी भी चिंता उत्पन्न नहीं होती है अथवा वह निरपराध है।

शंका– निरपराधी को किसप्रकार की चिंता उत्पन्न नहीं होती है?

समाधान– "मुझे चोर मानकर मैं किसीसे बांध लिया जाता हूँ," यह चिंता निरपराध पुरुष को उत्पन्न नहीं होती है। यह व्यतिरेक दृष्टांत गाथापूर्ण हुआ।

जो रागादि परद्रव्यको ग्रहण (स्वीकार) करता है वह स्वस्थभावसे (स्वभावसे–स्वानुभवसे) च्युत होकर सापराधी (अपराधसहित) होता है। वह अपराधी यहाँ शंकित है, क्योंकि ज्ञानावरणादि कर्मोंसे मैं बांध लिया जाऊंगा। इसलिये कर्मबंधोंके भयसे प्रतिक्रमण–प्रायश्चित्तरूप दंड देता (भोगता) है। लेकिन जो निरपराध है वह दृष्टश्रुतअनुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंध आदि सभी विभाव भावोंसे रहित होनेसे निःशंक है।

शंका– किसप्रकार निःशंक है?

समाधान– रागादि अपराधभावोंसे रहित होनेसे मैं किसी भी कर्मसे बांधा नहीं जाता हूँ। इसलिये वह प्रतिक्रमण आदिरूप दंड विधानके विना भी अनंतज्ञानादिमय निर्मल-परमात्मभावनासे (अपने स्वभावशुद्धात्माकी अनुभूतिसे) शुद्ध हो जाता है। यह अन्वयव्यतिरेक दार्ष्टांत गाथा का अर्थ हुआ॥ ३२२, ३२३, ३२४॥

अब, यह अपराध क्या हैं? ऐसा पूछनेपर उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**संसिद्धिराधसिद्धी**] संसिद्ध, राध, सिद्ध, [**साधिदमाराधिदं च**] साधित और आराधित [**एयट्ठो**] ये सब एकार्थ वाचक हैं। [**जो खलु चेदा**] जो आत्मा

संसिद्धिराधसिद्धी साधिदमाराधिदं च एयट्ठो कालत्रयवर्तिसमस्तमिथ्यात्वविषयकषायादिविभावपरिणामरहितत्वेन निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा निजशुद्धात्माराधनं सेवनं राध इत्युच्यते संसिद्धि सिद्धिरिति साधितमित्याराधितं च तस्यैव राधशब्दस्य पर्यायनामानि । **अवगदराधो जो खलु चेदा सो होदि अवराहो** अपगतो विनष्टो राधः शुद्धात्माराधना यस्य पुरुषस्य स पुरुष एवाभेदेन भवत्यपराधः । अथवा अपगतो विनष्टो राधः शुद्धात्माराधः शुद्धात्माराधना यस्य रागादिविभावपरिणामस्य स भवत्यपराधः सहापराधेन वर्तते यः स सापराधः, चेतयितात्मा तद्विपरीतः त्रिगुप्तिसमाधिस्थो निरपराध इति ॥ ३२५ ॥

अथ हे भगवन् ! किमनेन शुद्धात्माराधनाप्रयासेन यतः प्रतिक्रमणाद्यनुष्ठानेनैव निरपराधो भवत्यात्मा, कस्मात् ? इति चेत्, सापराधस्याप्रतिक्रमणादेर्दोषशब्दवाच्यापराधाविनाशकत्वेन विषकुंभत्वे सति प्रतिक्रमणादेर्दोषशब्दवाच्यापराधविनाशकत्वेनामृतकुंभत्वात् इति । तथा चोक्तं चिरंतनप्रायश्चित्तग्रंथे—

[**अवगदराधो**] राधसे रहित हो– निजशुद्धात्माकी आराधनासे रहित है [**सो**] वह [**अवराहो**] अपराध [**होदि**] है ।

टीकार्थ– (नास्ति कथन)	(अस्ति कथन)
तीन कालवर्ती सभी मिथ्यात्वविषयकषायादिविभावपरिणामोंसे रहितपनासे निजशुद्धात्माका सेवन करनेको राध, संसिद्धि, सिद्धि, साधित, आराधित ऐसा कहते हैं ।	निर्विकल्पसमाधिमें ठहरकर निजस्वभावशुद्धात्माकी आराधना-सेवन करनेको संसिद्धि, सिद्धि, साधित, आराधित ऐसा कहते हैं ।

ये सभी एकार्थवाचक शब्द हैं । जिस पुरुषका शुद्धात्माका आराधन करना नष्ट हुआ है, उस पुरुष से अपराध पर्याय का अभेद करनेसे (याने अभेदोपचार करनेसे) वह पुरुष ही अपराधक–अपराधी है । अथवा अपगत है अर्थात् नष्ट हो गया है राध अर्थात् शुद्धात्माकी आराधना, जिसके वह रागादि विभाव परिणाम ही अपराध है । उस अपराधसे सहीत पुरुषको सापराधी कहते हैं ।

किन्तु इसके विपरीत जो आत्मा त्रिगुप्तिसमाधि (स्वानुभव) में रहता है वह निरपराध है ॥ ३२५ ॥

अब, शिष्य कहता है कि, हे भगवन् ! शुद्धात्मा की आराधना का (स्वानुभवका) प्रयास करने से क्या प्रयोजन है, जब कि प्रतिक्रमणादि अनुष्ठानसे ही आत्मा निरपराध होता है क्योंकि अपराधीके जो अप्रतिक्रमणादिक हैं वे दोष शब्द के वाच्य अपराध को नष्ट न करनेवाले होनेसे विषकुंभस्वरूप कहे जाते हैं, लेकिन जो प्रतिक्रमणादि हैं वे दोष शब्द के वाच्य अपराधका नाश करनेवाले होनेसे अमृतकुंभ कहे जाते हैं । इसीप्रकार चिरंतनप्रायश्चित्तग्रंथमें कहा है कि–

अपडिकमणं अपडिसरणं अप्पडिहारो अधारणा चेव । अणियत्तीय अणिंदा अगरुहाऽसोहीय विसकुंभो ॥ १ ॥ पडिकमणं पडिसरणं पडिहरणं धारणा णियत्तीय । णिंदा गरुहा सोही अट्ठविहो अमयकुंभो ॥ २ ॥ अत्र पूर्वपक्षे परिहारः–

पडिकमणं पडिसरणं पडिहरणं धारणा णियत्ती य ।
णिंदा गरुहा सोही अट्ठविहो होइ विसकुंभो ॥ ३२६ ॥

॥ आ. ख्या. ३०६ ॥

अपडिकमणं अपडिसरणं अप्परिहारो अधारणा चेव ।
अणियत्ती य अणिंदाऽगरहाऽसोही अमयकुंभो ॥ ३२७ ॥

॥ आ. ख्या. ३०७ ॥

पडिकमणमित्यादि । **पडिकमणं** प्रतिहरणं कृतदोषनिराकरणं । **पडिसरणं** प्रतिसरणं सम्यक्त्वादिगुणेषु प्रेरणं । **पडिहरणं** प्रतिहरणं मिथ्यात्वरागादिदोषेषु निवारणं । **धारणा**

" अपडिकमणं अपडिसरणं अप्पडिहारो अधारणा चेव ।
अणियत्ती य अणिंदा अगरुहाऽसोहीय विसकुंभो ॥ १ ॥
पडिकमणं पडिसरणं पडिहरणं धारणा णियत्तीय ।
णिंदा गरुहा सोही अट्ठविहो अमयकुंभो ॥ २ ॥

अर्थात्– अप्रतिक्रमण, अप्रतिसरण, अपरिहार, अधारणा, अनिवृत्ति, अनिंदा, अगर्हा और अशुद्धि ऐसे आठ प्रकारके लगे हुये दोषोंका प्रायश्चित्त न करना वह तो विषकुंभ है और प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निंदा, गर्हा और शुद्धि इसतरह आठ प्रकारसे लगे हुअे दोषका प्रायश्चित्त करना वह अमृतकुंभ है ।

इस तरह पूर्वपक्षका कथन करनेपर उसका उत्तर देते हैं–

गाथार्थ– [**पडिकमणं**] प्रतिक्रमण [**पडिसरणं**] प्रतिसरण [**पडिहरणं**] परिहार [**धारणा**] धारणा [**णियत्ती**] निवृत्ति [**णिंदा**] निंदा [**गरुहा**] गर्हा [**य**] और [**सोही**] शुद्धि [**अट्ठविहो**] यह आठ प्रकारका [**विसकुंभो**] विषकुंभ [**होइ**] है । [**अपडिकमणं**] अप्रतिक्रमण [**अपडिसरणं**] अप्रतिसरण [**अप्परिहारो**] अपरिहार [**अधारणा**] अधारणा [**अणियत्ती**] अनिवृत्ति [**य**] और [**अणिंदा**] अनिंदा [**अगरुहा**] अगर्हा [**च**] और [**असोही**] अशुद्धि ये आठ [**अमयकुंभो एव**] अमृतकुंभ ही हैं ।

टीकार्थ– प्रतिक्रमण– किये हुअे दोषोंका निराकरण करना ।

प्रतिसरण– सम्यक्त्वादि गुणोंमें प्रेरणा करना ।

प्रतिहरण– मिथ्यात्वरागादिदोषोंका निवारण करना ।

धारणा– पंचनमस्कारप्रभृतिमंत्रप्रतिमा आदि बाह्य द्रव्यके आलंबनसे चित्तको स्थिर करना ।

पंचनमस्कारप्रभृतिमंत्रप्रतिमादिबहिर्द्रव्यावलंबनेन चित्तस्थिरीकरणं धारणा। णियत्तीय बहिरंग-विषयकषायादीहागतचित्तस्य निवर्तनं निवृत्तिः। णिंदा आत्मसाक्षिदोषप्रकटनं निंदा। गरुहा गुरुसाक्षिदोषप्रकटनं गर्हा। सोहि य दोषे सति प्रायश्चित्तं गृहीत्वा विशुद्धिकारणं शुद्धिः। इत्यष्टविकल्परूपशुभोपयोगो यद्यपि मिथ्यात्वादिविषयकषायपरिणतिरूपाशुभोपयोगापेक्षया सविकल्पसरागचारित्रावस्थायाममृतकुंभो भवति। तथापि रागद्वेषमोहख्यातिपूजालाभ-दृष्टश्रुतानुभूत-भोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिसमस्तपरद्रव्यालंबनविभावपरिणामशून्या, चिदानंदैकस्वभावविशुद्धात्मालंबनभरितावस्था निर्विकल्पशुद्धोपयोगलक्षणा, अपडिकमणं इति गाथाकथितक्रमेण ज्ञानिजनाश्रितनिश्चयाप्रतिक्रमणादिरूपा तु या तृतीया भूमिस्तदपेक्षया वीतरागचारित्रस्थितानां पुरुषाणां विषकुंभ एवेत्यर्थः।

किंच विशेषः– अप्रतिक्रमणं द्विविधं भवति ज्ञानिजनाश्रितं, अज्ञानिजनाश्रितं चेति। अज्ञानिजनाश्रितं यदप्रतिक्रमणं तद्विषयकषायपरिणतिरूपं भवति। ज्ञानिजीवाश्रितमप्रतिक्रमणं तु शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानलक्षणं त्रिगुप्तिरूपं। तच्च ज्ञानिजनाश्रितमप्रतिक्रमणं सरागचारित्रलक्षणशुभोपयोगापेक्षया यद्यप्यप्रतिक्रमणं भण्यते तथापि वीतरागचारित्रापेक्षया तदेव

निवृत्ति– बाह्य विषयकषायादि ईहागत चित्तका निवर्तन करना-निवृत्ति करना।

निंदा– आत्मसाक्षीसे दोषप्रकटन करना।

गर्हा– गुरुके समक्ष अपने दोषप्रकटन करना।

शुद्धि– दोष होनेपर विशुद्धिके लिये प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि करना। ये आठ विकल्परूप शुभोपयोग हैं। ये यद्यपि मिथ्यात्वादिविषयकषायपरिणतिरूप अशुभोपयोगकी अपेक्षा से सविकल्पसरागचारित्रकी अवस्थामें अमृतकुंभ हैं। तथापि रागद्वेषमोहख्यातिपूजालाभ, दृष्ट-श्रुत-अनुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादि सभी परद्रव्यके आलंबनवाले विभावपरिणामसे रहित ऐसे चिदानंद-एक-स्वभाव-विशुद्ध आत्माके आलंबनवाले, भरित अवस्थावाले, निर्विकल्प शुद्धोपयोग (स्वानुभूति) लक्षणवाले "अपडिकमणं" इत्यादि गाथाकथित क्रमसे ज्ञानि-जनाश्रितनिश्चयाप्रतिक्रमणादिरूप जो तृतीय भूमि है, उसकी अपेक्षासे वीतरागचारित्रस्थित (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती स्वानुभूति) जनोंको विषकुंभ ही हैं। यह अर्थ है।

इसका विशेष स्पष्टीकरण यह है कि, अप्रतिक्रमण दो प्रकारका हैं– १) ज्ञानिजनोंके आश्रितवाला अप्रतिक्रमण, २) अज्ञानी (मिथ्यात्वसासादानमिश्रगुणस्थानवर्ती) जनोंके आश्रितवाला अप्रतिक्रमण। अज्ञानीजनके आश्रितवाला जो अप्रतिक्रमण है वह विषयकषाय परिणतिवाला अप्रतिक्रमण है लेकिन सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीवके आश्रितवाला अप्रतिक्रमण शुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानअनुष्ठानलक्षणस्वानुभूतिवाला अप्रतिक्रमण हैऔर सम्यग्ज्ञानी-जीवके आश्रितवाला वह जो अप्रतिक्रमण है उसको सरागचारित्रलक्षणवाले (प्रतिक्रमणवाले) शुभोपयोगकी अपेक्षासें यद्यपि अप्रतिक्रमण कहा जाता है तथापि वीतराग (स्वानुभव) चारित्रकी अपेक्षासे सम्यग्ज्ञानीजनके आश्रितवाला वह अप्रतिक्रमण ही निश्चयप्रतिक्रमण है।

निश्चयप्रतिक्रमणं । कस्मात् ? इति चेत्, समस्तशुभाशुभास्रवदोषनिराकरणरूपत्वादिति । ततः स्थितं तदेव निश्चयप्रतिक्रमणं । व्यवहारप्रतिक्रमणापेक्षया, अप्रतिक्रमणशब्दवाच्यं ज्ञानिजनस्य मोक्षकारणं भवति । व्यवहारप्रतिक्रमणं तु यदि शुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा तस्यैव निश्चयप्रतिक्रमणस्य साधकभावेन विषयकषायवंचनार्थं करोति तदपि परंपरया मोक्षकारणं भवति, अन्यथा स्वर्गादिसुखनिमित्तपुण्यकारणमेव । यत्पुनरज्ञानिजनसंबंधिमिथ्यात्वविषयकषायपरिणतिरूपमप्रतिक्रमणं तन्नरकादिदुःखकारणमेव । एवं प्रतिक्रमणाद्यष्टविकल्परूपः शुभोपयोगो यद्यपि सविकल्पावस्थायाममृतकुंभो भवति तथापि सुखदुःखादिसमतालक्षणपरमोपेक्षारूपसंयमापेक्षया विषकुंभ एवेति व्याख्यानमुख्यत्वेन चतुर्थस्थले गाथाष्टकं गतं ।। ३२६, ३२७ ।।

तत्रैवं सति श्रृंगाररहितपात्रवद्रागादिरहितशांतरसपरिणतशुद्धात्मरूपेण मोक्षो निष्क्रांतः ।

इति श्री जयसेनाचार्यकृतायां समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां तात्पर्यवृत्तौ द्वाविंशतिगाथाभिश्चतुर्भिरंतराधिकारैर्नवमो **मोक्षाधिकारः** समाप्तः ।। ९ ।।

शंका– क्यों ?

समाधान– क्योंकि स्वानुभववाले अप्रतिक्रमण (निश्चयप्रतिक्रमण) में समस्त शुभ-अशुभ आस्रव-दोषोंका निराकरण होता है । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि वह स्वानुभववाला अप्रतिक्रमण ही निश्चयप्रतिक्रमण है ।

यह, व्यवहार प्रतिक्रमणकी अपेक्षासे अप्रतिक्रमण शब्द के द्वारा कहा जाकर भी ज्ञानी जनोंके लिये मोक्षका कारण है लेकिन व्यवहार प्रतिक्रमण तो यदि शुद्धात्माको उपादेय (स्वानुभवको उपादेय) मानकर उसी निश्चयप्रतिक्रमणका (स्वानुभवका) उपचारसे साधक होनेसे, विषयकषायोंसे बचने के लिये करता है तो वह परंपरासे (उपचारसे) मोक्षका कारण होता है अन्यथा (याने यदि शुद्धात्मानुभवको उपादेय न मानते हुये किया हुआ) व्यवहार प्रतिक्रमण स्वर्गादिसुख के लिये पुण्यका कारण ही है (मोक्षका कारण नहीं है) और जो अज्ञानी जीवका मिथ्यात्वविषयकषायपरिणतिवाला अप्रतिक्रमण है, वह अप्रतिक्रमण नरकादि दुःखका कारण ही है ।

इस प्रकार प्रतिक्रमणादि आठविकल्प (आठ भेदवाला) शुभोपयोग यद्यपि सविकल्प अवस्थामें अमृतकुंभ है, तथापि सुखदुःखोंमे समतालक्षणवाले परमोपेक्षासंयम (स्वानुभूति) की अपेक्षासे व्यवहार प्रतिक्रमण विषकुंभ ही है, इस कथनकी मुख्यतासे चतुर्थस्थलमें आठ गाथायें पूर्ण हुयी ।

वहाँ इस प्रकार श्रृंगाररहित पात्रके समान रागादिरहित शांतरससे परिणत शुद्धात्मरूपसे मोक्ष निष्क्रांत हो गया ।। ३२६, ३२७ ।।

इस तरह श्री जयसेनाचार्यजीकृत शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवाली समयसारकी तात्पर्यवृत्तिमें २२ गाथाओं के द्वारा, चार अंतर अधिकारोंमें यह नवम मोक्ष अधिकार समाप्त हुआ ।। ९ ।।



अथ सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारः ॥ १० ॥

अथ प्रविशति सर्वविशुद्धज्ञानं । संसारपर्यायमाश्रित्याशुद्धोपादानरूपेणाशुद्धनिश्चयनयेन यद्यपि कर्तृत्वभोक्तृत्वबंधमोक्षादिपरिणामसहितो जीवस्तथापि सर्वविशुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धोपादानरूपेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन कर्तृत्वभोक्तृत्वबंधमोक्षादिकारणभूतपरिणामशून्य एवेति । '**दवियं जं उप्पज्जदि**' इत्यादि गाथामादिं कृत्वा चतुर्दशगाथापर्यंतं मोक्षपदार्थचूलिका व्याख्यानं करोति । तत्रादौ निश्चयेन कर्मकर्तृत्वाभावमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं । तदनंतरं शुद्धस्यापि यद्ज्ञानावरणादिप्रकृतिभिः बंधो भवति तदज्ञानस्य माहात्म्यमिति कथनार्थं '**चेदा दु पयडिअट्ठं**' इत्यादि प्राकृतश्लोकचतुष्टयं । अतः परं निश्चयेन भोक्तृत्वाभावज्ञापनार्थं '**अण्णाणी कम्मफलं**' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं । तदनंतरं मोक्षचूलिकोपसंहाररूपेण '**विकुणादि**' इत्यादि सूत्रद्वयं कथयतीति मोक्षपदार्थचूलिकायां समुदायपातनिका ।

अथ निश्चयेन कर्मणां कर्ता न भवति इत्याख्याति—

दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं ।
जह कडयादीहिं दु पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह ॥ ३२८ ॥

॥ आ. ख्या. ३०८ ॥

अब, यहां **सर्वविशुद्धज्ञान** प्रवेश करता है । वहां संसारपर्यायका आश्रय लेकर अशुद्ध उपादानरूपसे अशुद्धनिश्चयनयसे यद्यपि कर्तृत्व, भोक्तृत्व, बंध, मोक्षादि परिणामसहित यह जीव है तथापि सर्वविशुद्धपारिणामिकपरमभावका ग्राहकवाले शुद्धोपादनरूप शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे कर्तृत्व, भोक्तृत्व, बंधमोक्षादिके कारणभूत परिणामोंसे रहित ही है । '**दवियं जं उप्पज्जदि**' इत्यादि गाथासे शुरू करके १४ गाथाओं तक मोक्षपदार्थचूलिका कथन करते हैं । सबसे पहले निश्चयनयसे कर्मकर्तृत्वके अभावकी मुख्यतासे ४ गाथायें है । तदनंतर शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे द्रव्य शुद्ध है तो भी जो ज्ञानावरणादिप्रकृतिबंध होता है वह अज्ञानका माहात्म्य है ऐसा कथन करने के लिये '**चेदा दु पयडिअट्ठं**' इत्यादि ४ गाथायें है । इसके आगे निश्चयनयसे भोक्तृत्वका अभाव दिखाने के लिये '**अण्णाणी कम्मफलं**' इत्यादि ४ गाथायें है । तदनंतर मोक्षचूलिकाका उपसंहार करने के लिये '**विकुणदि**' इत्यादि २ गाथायें कहते हैं । यह मोक्षपदार्थचूलिकाकी समुदाय पातनिका है ।

अब, निश्चयनयसे जीव कर्मोंका कर्ता नहीं है, ऐसा कहते हैं—

गाथार्थ— [**जं दवियं**] जो द्रव्य [**गुणेहिं**] जिन अपने गुणोंसे [**उप्पज्जइ**] उपजता है [**तं**] वह [**तेहिं**] उन गुणोंसे [**अणण्णं**] अन्य नहीं है याने अनन्य है ऐसा [**जाणसु**] जानो— द्रव्य उन गुणमय ही है [**जह**] जैसे [**कणयं**] सुवर्ण [**कडयादीहिं**]

जीवस्साजीवस्स दु जे परिणामा दु देसिया सुत्ते ।
तं जीवमजीवं वा तेहिमणण्णं वियाणाहि ।। ३२९ ।।
।। आ. ख्या. ३०९ ।।

ण कुदोच्चि वि उप्पण्णो जह्मा कज्जं ण तेण सो आदा ।
उप्पादेदि ण किंचिवि कारणमवि तेण ण सो होइ ।। ३३० ।।
।। आ. ख्या. ३१० ।।

कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि ।
उप्पज्जंति य णियमा सिद्धी दु ण दीसए अण्णा ।। ३३१ ।।
।। आ. ख्या. ३११ ।।

यथा कनकमिह कटकादिपर्यायैः सहानन्यदभिन्नं भवति तथा द्रव्यमपि यदुत्पद्यते परिणमति । कैः सह ? स्वकीयस्वकीयगुणैः, तद्द्रव्यं तैर्गुणैः सहानन्यदभिन्नमिति जानीहि इति प्रथमगाथा गता । **जीवस्साजीवस्स य जे परिणामा दु देसिदा सुत्ते** जीवस्य अजीवस्य च ये परिणामाः पर्याया देशिताः कथिताः सूत्रे परमागमे तैः सह तेनैव पूर्वोक्तसुवर्णदृष्टांतेन तमेव

अपने कटक कडे आदि पर्यायोंसे [इह] लोकमें [अणण्णं दु] अन्य नहीं हैं–अनन्य ही है–कटकादि है वह सुवर्ण ही । [दु] उसी तरह [**जीवस्साजीवस्स**] जीव अजीवके [**जे परिणामा दु**] जो परिणाम [**सुत्ते**] सूत्रमें–आगममें [**देसिदा**] कहे हैं [**तेहिं**] उन परिणामोंसे [**तं जीवमजीवं वा**] उस जीव और अजीव को [**अणण्णं**] अनन्य है ऐसा [**वियाणाहि**] जानना । परिणाम हैं वे द्रव्य ही हैं । [**जह्मा**] जिस कारण [**सो आदा**] वह आत्मा [**कुदोच्चि वि**] किसी से भी [**ण उप्पण्णो**] उत्पन्न नहीं हुआ है [**तेण**] इस से [**कज्जं ण**] वह किसीका किया हुआ कार्य नहीं है [**किंचि वि**] किसी अन्यको भी [**ण उप्पादेदि**] उत्पन्न नहीं करता है [**तेण**] इसलिये [**सो**] वह आत्मा [**कारणमवि**] किसी का कारण भी [**ण होदि**] नहीं है [**णियमा**] नियमसे [**कम्मं पडुच्च**] कर्म का आश्रय करके [**कत्ता**] कर्ता होता है [**तह**] तथा [**कत्तारं पडुच्च**] कर्ताका आश्रय करके [**कम्माणि उप्पज्जंते**] कर्म उत्पन्न होते हैं [**य अण्णा सिद्धी दु**] और कर्ता-कर्म की अन्य कोभी सिद्धि भी [**ण दिस्सदे**] नहीं देखी जाती ।

टीकार्थ– लोकमें जैसे सुवर्ण अपनी कटकादिपर्यायोंसे अनन्य अर्थात् अभिन्न है वैसे द्रव्य भी जो परिणमन करता, उत्पन्न होता है वह द्रव्य अपने गुण पर्यायोंसे अभिन्न है, ऐसा जानो, यह प्रथम गाथाका अर्थ पूर्ण हुआ ।

सूत्रमें– परमागममें जीव और अजीव द्रव्योंके जो परिणाम-पर्याय कहे गये हैं वे ऊपरके सुवर्ण दृष्टांतके समान उन पर्यायों के साथ यह जीव या अजीव द्रव्य अनन्य-अभिन्न ही हैं,

जीवाजीवद्रव्यमनन्यदभिन्नं विजानीहीति द्वितीयगाथा गता । यस्माच्छुद्धनिश्चयनयेन नरनारकादिविभावपर्यायरूपेण कदाचिदपि नोत्पन्नः कर्मणा न जनितः तेन कारणेन कर्मनोकर्मापेक्षयात्मा कार्यं न भवति । न च तत्कर्मनोकर्मोपादानरूपेण किमप्युत्पादयति । तेन कारणेन कर्मनोकर्मणां कारणमपि न भवति, यतः कर्मणां कर्ता मोचकश्च न भवति ततः कारणाद् बंधमोक्षयोः शुद्धनिश्चयनयेन कर्ता न भवतीति तृतीयगाथा गता । कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि उप्पज्जंते णियमा यतः पूर्वं भणितं सुवर्णद्रव्यस्य कुंडलपरिणामेनैव सह जीवपुद्गलयोः स्वपरिणामैः सहैवानन्यत्वमभिन्नत्वं । पुनश्चोक्तं कर्मनोकर्मभ्यां कर्तृभूताभ्यां जीवो नोत्पद्यते जीवश्च कर्मनोकर्मणां नोत्पादयति ततो ज्ञायते कर्म प्रतीत्योपचारेण जीवः कर्मकर्ता । तथा कर्माणि चोत्पद्यंते जीवकर्तारमाश्रित्योपचारेण नियमान्निश्चयात् संदेहो नास्ति सिद्धी दु ण दिस्सदे अण्णा अनेन प्रकारेण, अनेन कोऽर्थः ? परस्परनिमित्तभावं विहाय शुद्धोपादानरूपेण शुद्धनिश्चयेन जीवस्य कर्मकर्तृत्वविषये सिद्धिर्निष्पत्तिर्घटना न दृश्यते कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलानां च कर्मत्वं न दृश्यते ततः स्थितं शुद्धनिश्चयेनाकर्ता जीव इति चतुर्थगाथा गता । एवं निश्चयेन जीवः कर्मणां कर्ता न भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथाचतुष्टयं गतं ॥ ३२८, ३२९, ३३०, ३३१ ॥

ऐसा जानो । यह दूसरे गाथाका अर्थ पूर्ण हुआ । जिस कारणसे शुद्धनिश्चयनयसे नर, नारक, तिर्यंच, देव आदि विभाव पर्यायों के रूप से जीव कदाचित् भी उत्पन्न नहीं होता है, कर्मसे जीव (आत्मा) उत्पन्न नहीं हुआ है इस कारणसे कर्मनोकर्मकी अपेक्षासे आत्मा उस कर्मका कार्य नहीं है । और आत्मा उपादानरूपसे परिणमन करके किसी भी कर्मनोकर्मको उत्पन्न नहीं करता है । इस कारणसे आत्मा कर्मनोकर्मोंका कारण भी नहीं है । जिस कारणसे आत्मा कर्मोंका कर्ता नहीं और आत्मा कर्मोंका मोचक भी नहीं है, इस कारणसे आत्मा बंधमोक्षका शुद्धनिश्चयनयसे कर्ता नहीं है, यह तीसरी गाथा का अर्थ हुआ ।

जो पहले कहा गया है कि, सुवर्णद्रव्य कटकादि पर्यायोंसे अभिन्न है और जीव अपने पर्यायोंसे अभिन्न है और पुद्गल अपने पर्यायोंसे अभिन्न है । और भी कहा गया कि, कर्मनोकर्मसे-उपादानरूपसे-कर्तापनासे जीव उत्पन्न नहीं होता है । और जीवके कर्तापनासे कर्मनोकर्म उत्पन्न नहीं होते हैं । इससे यह जाना जाता है कि, कर्मको प्रतीतिमें लाकर उपचारसे जीव कर्म का कर्ता है । तथा जीवको कर्तारूपमें आश्रय करके उपचारसे कर्म उत्पन्न होते हैं । यह नियम है, इसमें संदेह नहीं है । इसप्रकार परस्परके निमित्तभावको छोडकर शुद्ध उपादानरूपसे—शुद्धनिश्चयनयसे जीवके कर्मकर्तृत्वके विषयमें सिद्धि नहीं होती अर्थात् यह बात घटित नहीं होती (नहीं देखी जाती) तथा कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलोंका कर्मत्व भी नहीं देखा जाता (नहीं सिद्ध होता) है । इससे यह सिद्ध हुआ कि, शुद्धनिश्चयनयसे जीव परिणामोंका और कर्मनोकर्मरूप द्रव्यकर्मका अकर्ता है, यह चौथी गाथा का अर्थ हुआ । इसप्रकार शुद्धनिश्चयनयसे जीव भावकर्मका अकर्ता तथा द्रव्यकर्मका अकर्ता है, इस कथनकी मुख्यतासे प्रथमस्थलमें चार गाथायें पूर्ण हुयी ॥ ३२८, ३२९, ३३०, ३३१ ॥

अथ शुद्धस्यात्मनो ज्ञानावरणादिप्रकृतिभिर्यद् बंधो भवति तदज्ञानस्य माहात्म्यमिति प्रज्ञापयति–

चेदा उ पयडियट्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ ।
पयडी वि चेययट्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ ॥ ३३२ ॥

॥ आ. ख्या. ३१२ ॥

एवं बंधो उ दोण्हं पि अण्णोण्णप्पच्चया हवे ।
अप्पणो पयडीए य संसारो तेण जायए ॥ ३३३ ॥

॥ आ. ख्या. ३१३ ॥

चेदा आत्मा स्वस्थभावच्युतः सन् प्रकृतिनिमित्तं कर्मोदयनिमित्तमुत्पद्यते । विनश्यति च विभावपरिणामैः पर्यायैः । प्रकृतिरपि चेतयितृकार्यं जीवसंबंधिरागादिपरिणामनिमित्तं ज्ञानावरणादिकर्मपर्यायैः उत्पद्यते विनश्यति च । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण बंधो जायते द्वयोः-स्वस्थभावच्युतस्यात्मनः कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलपिंडरूपाया ज्ञानावरणादिप्रकृतेश्च । कथंभूतयोर्द्वयोः ? अन्योन्यप्रत्यययोः, परस्परनिमित्तकारणभूतयोः । एवं रागाद्यज्ञानभावेन बंधो भवति तेन बंधेन संसारो जायते, न च स्वस्वरूपत इत्युक्तं भवति ॥ ३३२, ३३३ ॥

अब, (शुद्धनिश्चयनयसे) आत्मा शुद्ध ही है तो भी उसको ज्ञानावरणादिप्रकृतियोंके द्वारा जो बंध होता है वह अज्ञानका माहात्म्य है, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**चेदा उ**] चेतनेवाला आत्मा तो [**पयडियट्ठं**] ज्ञानावरणादि कर्म की प्रकृतियोंके निमित्तसे [**उप्पज्जइ**] उत्पन्न होता है [**विणस्सइ**] तथा विनाशको प्राप्त होता है और [**पयडी वि**] प्रकृति भी [**चेययट्ठं**] उस चेतनेवाले आत्मा के लिये [**उप्पज्जइ**] उत्पन्न होती है [**विणस्सइ**] तथा विनाशको प्राप्त होती है । आत्मा के परिणामों के निमित्तसे उसी तरह परिणमती है । [**एवं**] इस तरह [**दोण्हं पि**] दोनों [**अप्पणो य पयडीए**] आत्मा और प्रकृतिके [**अण्णोण्णपच्चया**] परस्पर निमित्तसे [**बंधो**] बंध होता है [**उ तेण**] और उस बंधसे [**संसारो जायए**] संसार उत्पन्न होता है ।

टीकार्थ– स्वस्थभावसे च्युत होता हुआ आत्मा प्रकृतिको अर्थात् कर्मोदयको निमित्त करके विभावपरिणामोंसे उत्पन्न होता है और विनाशको प्राप्त होता है । प्रकृति भी चैतन्यमय कार्य करनेवाले जीवसंबंधिरागादिविभावपरिणामोंको निमित्त करके ज्ञानावरणादिकर्मपर्यायोंके द्वारा उत्पन्न होती है और विनाश को प्राप्त होती है । इस पूर्वोक्त प्रकारसे स्वस्थभाव से च्युतवाले आत्माका और कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलपिंडरूप ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंका-इन दोनोंका अन्योन्यप्रत्ययरूपसे एक दूसरेमें निमित्तकारणवालोंका बंध होता है ।

इसप्रकार रागादि अज्ञानभावसे बंध होता है, उस बंधसे संसारपरिभ्रमण– दुःख होता है और अपने स्वस्वभावसे बंध नहीं होता है– संसार नहीं होता है, ऐसा कहा गया है ॥ ३३२, ३३३ ॥

अथ यावत्कालं शुद्धात्मसंवित्तिच्युतः सन् प्रकृत्यर्थं प्रकृत्युदयरूपं रागादिकं न मुंचति तावत्कालमज्ञानी स्यात् तदभावे ज्ञानी च भवतीत्युपदिशति–

जा एस पयडीयट्ठं चेया णेव विमुंचए ।
अयाणओ हवे ताव मिच्छाइट्ठी असंजओ ॥ ३३४ ॥

॥ आ. ख्या. ३१४ ॥

जया विमुञ्चए चेया कम्मप्फलमणंतयं ।
तया विमुत्तो हवइ जाणओ पासओ मुणी ॥ ३३५ ॥

॥ आ. ख्या. ३१५ ॥

यावत्कालमेष चेतयिता जीवः, चिदानंदैकस्वभावपरमात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभवरूपाणां सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणामभावात्प्रकृत्यर्थं रागादिकर्मोदयरूपं न मुंचति, तावत्कालं रागादिरूपमात्मानं श्रद्धाति जानात्यनुभवति च ततो मिथ्यादृष्टिर्भवति, अज्ञानी भवति, असंयतश्च भवति, तथाभूतः सन् मोक्षं न लभते । यदा पुनरयमेव चेतयिता मिथ्यात्वरागादिरूपं कर्मफलं शक्तिरूपेणानंतं विशेषेण सर्वप्रकारेण मुंचति तदा शुद्धबुद्धैकस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभवरूपाणां सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणां सद्भावात् लाभान्मिथ्यात्वरागादिभ्यो भिन्नमात्मानं

अब, जबतक शुद्धात्मानुभवसे च्युत होनेवाला जीव प्रकृत्यर्थं याने प्रकृतिके उदयके समय होनेवाले रागादिकोंको नहीं छोडता है, तबतक अज्ञानी है और उसके अभावमें याने शुद्धात्मानुभवसे च्युत न होनेवाला जीव ज्ञानी है, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**जा**] जबतक [**एस चेया**] यह आत्मा [**पयडीयट्ठं**] प्रकृत्यर्थं ज्ञेयार्थं परिणमनको-प्रकृतिके निमित्तमें विभावमय उपजना विनशना [**णेव विमुंचए**] नहीं छोडता है [**ताव**] तबतक [**अयाणओ**] अज्ञानी [**मिच्छाइट्ठी**] मिथ्यादृष्टि [**असंजओ**] असंयमी [**हवे**] होता है । [**जया**] जब [**चेया**] आत्मा [**अणंतयं कम्मफलं**] अनंत कर्मफलको [**विमुञ्चए**] छोड देता है [**तया**] तब [**विमुत्तो**] बंधसे मुक्त हुआ [**जाणओ पासओ**] ज्ञाता-द्रष्टा [**मुणी**] मुनि [**हवइ**] होता है ।

टीकार्थ– जबतक यह चैतन्यमय जीव चिदानंद-एक-स्वभाव-परमात्मतत्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभवरूप सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रका (स्वानुभूतिका) अभाव होनेसे प्रकृत्यर्थं-कर्मोदयमें उत्पन्न होनेवाले रागादिभावोंको नहीं छोडता है तबतक रागादिमय आत्माकी (आत्माका स्वभाव रागादिमय मानकर उसकी) श्रद्धा करता है, जानता है और अनुभवता है इसलिये मिथ्यादृष्टि है, अज्ञानी है और असंयमी है, ऐसा होनेसे वह जीव मोक्ष को नहीं पाता है । और जब वह ही आत्मा शक्तिरूपसे अनंत भेदवाले मिथ्यात्वरागादिरूप कर्मफलोंको सर्वप्रकारसे छोड देता है तब शुद्धबुद्ध एक स्वभावमय आत्मतत्त्वका सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभवस्वरूप (स्वानुभव स्वरूप) सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्रका सद्भाव होनेसे (स्वानुभवका लाभ होनेसे) मिथ्यात्व-

श्रद्दधाति जानात्यनुभवति च। ततः सम्यग्दृष्टिर्भवति, ज्ञानी भवति, संयतो मुनिश्च भवति। तथाभूतः सन् विशेषेण द्रव्यभावगतमूलोत्तरप्रकृतिविनाशेन मुक्तो भवतीति। एवं यद्यप्यात्मा शुद्धनिश्चयेन कर्ता न भवति तथाप्यनादिकर्मबंधवशान्मिथ्यात्वरागाद्यज्ञानभावेन कर्म बध्नातीति अज्ञानसामर्थ्यज्ञापनार्थं द्वितीयस्थले सूत्रचतुष्टयं गतं ॥ ३३४, ३३५ ॥

अथ शुद्धनिश्चयनयेन कर्मफलभोक्तृत्वं जीवस्वभावो न भवति, कस्मात्? अज्ञानस्वभावत्वात्, इति कथयति–

अण्णाणी कम्मफलं पयडिसहावट्ठिदो दु वेदेदि।
णाणी पुण कम्मफलं जाणदि उदिदं ण वेदेदि ॥ ३३६ ॥

॥ आ. ख्या. ३१६ ॥

अण्णाणी कम्मफलं पयडिसहावट्ठिदो दु वेदेदि विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मकभेदज्ञानस्याभावादज्ञानी जीवः उदयागतकर्मप्रकृतिस्वभावे सुखदुःखस्वरूपे स्थित्वा हर्षविषादाभ्यां तन्मयो भूत्वा कर्मफलं वेदयत्यनुभवति। **णाणी पुण**

रागादिसे भिन्न आत्माका श्रद्धान करता है, जानता है, और अनुभव करता है। इसलिये सम्यग्दृष्टि है, ज्ञानी है और संयत है (इसलिये चतुर्थादि गुणस्थानमें चारित्र है) और मुनि होता है ऐसा होकर विशेष प्रकारसे द्रव्यभावगत मूलोत्तर प्रकृतिका नाश होनेसे मुक्त होता है।

इस प्रकार यद्यपि आत्मा शुद्धनिश्चयनयसे कर्ता नही है तथापि अनादिकर्मबंध के वश होनेसे (होकर) मिथ्यात्वरागादिअज्ञानभावसे कर्म बांधता है। इसतरह अज्ञानका सामर्थ्य दिखाने के लिये द्वितीय स्थलमें चार गाथायें पूर्ण हुओ ॥ ३३४, ३३५ ॥

अब, शुद्धनिश्चयनयसे कर्मफलभोक्तृत्व जीवका स्वभाव नहीं है, क्योंकि कर्मफलभोक्तृत्व अज्ञानभाव है, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**अण्णाणी**] अज्ञानी [**कम्मफलं**] कर्मके फलको [**पयडिसहावट्ठिदो**] प्रकृतिके स्वभावमें ठहरा हुआ [**वेदेदि**] भोगता है [**पुण**] और [**णाणी**] सम्यग्ज्ञानी [**उदिदं**] उदयमें आये हुअे [**कम्मफलं**] कर्मके फलको [**जाणदि**] जानता है, [**दु ण वेदेदि**] लेकिन भोगता नहीं है।

विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वका सम्यक्श्रद्धानज्ञानअनुष्ठानवाले अभेदरत्नत्रयात्मक (स्वानुभववाले) भेदज्ञानके अभावसे अज्ञानी (मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानवर्ती) जीव उदयागतकर्मप्रकृतिस्वभाववाले सुखदुःखमें ठहरकर हर्षविषादोंके साथ तन्मय होकर कर्मफलका अनुभव करता (भोगता) है और सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव तन्मय होकर भी

कम्मफलं जाणदि उदिदं ण वेदेदि ज्ञानी पुनः तन्मयो भूत्वा पूर्वोक्तभेदज्ञानसद्भावात् वीतराग-सहजपरमानंदरूपसुखरसास्वादेन परमसमरसीभावेन परिणतः सन् कर्मफलमुदितं वस्तुस्वरूपेण जानात्येव न च हर्षविषादाभ्यां तन्मयो भूत्वा वेदयति ।। ३३६ ।।

अथाज्ञानी जीव सापराधः सशंकितः सन् कर्मफलं तन्मयो भूत्वा वेदयति, यस्तु निरपराधो ज्ञानी स कर्मोदये सति किं करोति ? इति कथयति–

जो पुण णिरवराहो चेदा णिस्संकिदो दु सो होदि ।
आराहणाए णिच्चं वट्टदि अहमिदि वियाणंतो ।। ३३७ ।।

।। आ. ख्या. ३०५ ।।

जो पुण णिरवराहो चेदा णिस्संकिदो दु सो होदि यस्तु चेतयिता ज्ञानी जीवः स निरपराधः सन् परमात्माराधनविषये निःशंको भवति । निःशंको भूत्वा किं करोति ? **आराहणाए णिच्चं वट्टदि अहमिदि वियाणंतो** निर्दोषपरमात्माराधनारूपया निश्चयाराधनया नित्यं सर्वकालं वर्तते । किं कुर्वन् ? अनंतज्ञानादिरूपोऽहमिति निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा शुद्धात्मानं सम्यग्जानन् परमसमरसीभावेन चानुभवति इति ।। ३३७ ।।

पूर्वोक्त (स्वानुभववाले) भेदज्ञानके सद्भावसे वीतरागसहजपरमानंदका सुखरसके आस्वादसे, परमसमरसीभावसे परिणत होकर उदयमें आये हुअे कर्मफलको वस्तुस्वरूपसे जानता ही है, लेकिन हर्षविषादमयतासे तन्मय होकर नहीं भोगता (अनुभवता) है ।। ३३६ ।।

अब, अज्ञानी (मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानवर्ती) जीव सापराधी, सशंकित होकर कर्मफलको तन्मय होकर भोगता है, लेकिन जो निरपराधी ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) है वह ज्ञानी जीव कर्मोंके उदय के समयमें क्या करता है ? इसका उत्तर कहते हैं–

गाथार्थ– [**जो पुण**] जो [**चेदा**] आत्मा [**णिरवराहो**] निरपराध है [**सो दु**] वह [**णिस्संकिदो**] शंकारहित-निःशंक [**होदि**] है [**अहं इदि**] "मैं शुद्धात्मा हूँ" ऐसा [**वियाणंतो**] जानता हुआ [**आराहणाए**] आराधनासे [**णिच्चं**] नित्य [**वट्टदि**] वर्तता है ।

टीकार्थ– जो चैतन्यमय ज्ञानी जीव है वह निरपराध होकर (निरपराधी होनेसे) परमात्माकी आराधनाके विषयमें निःशंक है ।

शंका– वह ज्ञानी निःशंक होकर क्या करता है ?

समाधान– "अनंतज्ञानादिरूप मैं हूँ" इसतरह निर्विकल्पसमाधिमें (स्वानुभवमें) स्थित होकर शुद्धात्माको सम्यक्रूपसे जानता हुआ परमसमरसीभावसे अनुभव करता है, वह निर्दोष परमात्माकी आराधनासे (स्वानुभवसे-निश्चय आराधनासे-अपने स्वभावकी आराधनासे) नित्य वर्तता है ।। ३३७ ।।

अज्ञानी कर्मणां नियमेन वेदको भवतीति दर्शयति-

ण मुयदि पयडिमभव्वो सुट्ठुवि अज्झाइऊण सत्थाणि ।
गुडदुद्धंपि पिबंता ण पण्णया णिव्विसा हुंति ॥ ३३८ ॥

॥ आ. ख्या. ३१७ ॥

यथा पन्नगाः सर्पाः शर्करासहितं दुग्धं पिबंतोऽपि निर्विषा न भवंति तथाऽज्ञानी जीवो मिथ्यात्वरागादिरूपकर्मप्रकृत्युदयस्वभावं न मुंचति । किं कृत्वापि? अधीत्यापि । कानि? शास्त्राणि । कथं सुट्ठुवि सुष्ट्वपि । कस्मान्न मुंचति? वीतरागस्वसंवेदनज्ञानाभावात् कर्मोदये सति मिथ्यात्वरागादीनां तन्मयो भवति यतः कारणात् इति ॥ ३३८ ॥

ज्ञानी कर्मणां नियमेन निश्चयेन वेदको न भवतीति दर्शयति-

णिव्वेयसमावण्णो णाणी कम्मफलं वियाणादि ।
महुरं कडुवं बहुविहमवेदगो तेण पण्णत्तो ॥ ३३९ ॥

॥ आ. ख्या. ३१८ ॥

अज्ञानी जीव नियमसे कर्मोंका वेदक (भोक्ता) ही है, यह दिखाते हैं-

गाथार्थ- [**अभव्वो**] अभव्य [**सत्थाणि**] शास्त्रोंको [**सुट्ठु**] अच्छीतरह [**अज्झाइऊण वि**] पढ़कर भी [**पयडिं**] प्रकृति के स्वभावको [**ण मुयदि**] नहीं छोडता है जैसे [**पण्णया**] सर्प [**गुडदुद्धं**] गुडसहित दूधको [**पिबंता पि**] पीते हुए भी [**णिव्विसा**] विष रहित [**ण हुंति**] नहीं होते ।

टीकार्थ- जैसे सांप शक्कर सहित दूध पीते हुअे भी विष रहित नहीं होते हैं, वैसे अज्ञानी जीव शास्त्रोंको अच्छी तरह पढ़कर भी मिथ्यात्वरागादिरूप कर्मप्रकृति के उदय स्वभावको नहीं छोडता है ।

शंका- अज्ञानी (मिथ्यादृष्टि) जीव मिथ्यात्वरागादि भावको क्यों नहीं छोडता है?

समाधान- वीतरागस्वसंवेदनज्ञान (स्वानुभवके) अभावसे कर्मोदयके समय मिथ्यात्वरागादिभावों के साथ तन्मय होता है इसलिए अज्ञानी जीव मिथ्यात्वरागादिभावोंको नहीं छोडता है ॥ ३३८ ॥

सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव कर्मोंका नियमसे शुद्धनिश्चयनयसे वेदक (भोक्ता) नहीं है, यह दिखाते हैं-

गाथार्थ- [**णाणी**] ज्ञानी [**णिव्वेयसमावण्णो**] वैराग्यको प्राप्त हुआ [**महुरं कडुवं बहुविहं कम्मफलं**] मधुर तथा कडवा इत्यादि वहुविध कर्मफलको [**वियाणादि**] जानता ही है [**तेण अवेदगो**] इसलिए अवेदक है [**पण्णत्तो**] ऐसा जिनेंद्रदेवने बताया है ।

णिव्वेदसमावण्णो णाणी कम्मफलं वियाणादि परतत्त्वज्ञानी जीवः संसारशरीरभोगरूपत्रिविधवैराग्यसंपन्नो भूत्वा शुभाशुभकर्मफलमुदयागतं वस्तुस्वरूपेण विशेषेण निर्विकारस्वशुद्धात्मनो भिन्नत्वेन जानाति। कथंभूतं जानाति ? महुरं कडुवं बहुविहमवेदको तेण पण्णत्तो अशुभकर्मफलं निंवकांजीरविषहालाहलरूपेण कटुकं जानाति। शुभकर्मफलं बहुविधं गुडखंडशर्करामृतरूपेण मधुरं जानाति। न च शुद्धात्मोत्थसहजपरमानन्दरूपमतींद्रियसुखं विहाय पंचेन्द्रियसुखे परिणमति तेन कारणेन ज्ञानी वेदको भोक्ता न भवतीति नियमः। एवं ज्ञानी शुद्धनिश्चयेन शुभाशुभकर्म फलभोक्ता न भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन तृतीयस्थले सूत्रचतुष्टयं गतं। ॥ ३३९ ॥

अथ निरुपरागशुद्धात्मानुभूतिलक्षणभेदज्ञानी कर्म न करोति न च वेदयति इति प्रकाशयति–

णवि कुव्वदि णवि वेददि णाणी कम्माइ बहुपयाराइ ।
जाणदि पुण कम्मफलं बंधं पुण्णं च पावं च ॥ ३४० ॥

॥ आ. ख्या. ३१९ ॥

टीकार्थ– परमतत्त्वज्ञानी स्वानुभूतिवाला (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव संसारशरीरभोगरूपत्रिविधवैराग्यसे संपन्न होकर वस्तुस्वरूपवाले भेदविज्ञानसे उदयागत शुभाशुभकर्मफलको निर्विकारस्वशुद्धात्मासे भिन्नपनासे जानता है।

शंका– किस प्रकारके कर्मफलको जानता है ?

समाधान– अशुभकर्मफलको निंवकांजीरविषहालाहल रूपसे कड़वा जानता है। बहुविध शुभकर्मफलको गुडखांडशर्करा अमृतरूपसे मधूर जानता है।

और शुद्धात्मोत्थसहजपरमानंदवाले अतींद्रिय आनंदको छोडकर पंचेद्रियसुखमें परिणमन नहीं करता है, इस कारणसे सम्यग्ज्ञानी - चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव कर्मफलका भोक्ता नहीं है ऐसा नियम है। इसप्रकार शुद्धनिश्चयनयसे सम्यग्ज्ञानी शुभाशुभ कर्मके फलका भोक्ता नहीं है, इस कथनकी मुख्यतासे तृतीयस्थलमें चार गाथायें पूर्ण हुओ। ॥ ३३९ ॥

अब, निरूपरागशुद्धात्मानूभूतिलक्षणवाला भेदज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव कर्मको नहीं करता है और कर्मको नहीं भोगता है, ऐसा बताते हैं–

गाथार्थ– [णाणी] सम्यग्ज्ञानी [वहुपयाराइ] बहुत प्रकारके [कम्माइ] कर्मोंको [णवि कुव्वदि] न तो कर्ता है [ण वि वेददि] और न भोगता है [पुण] परन्तु [बंधं] कर्मके वंधको [च] और [कम्मफलं] कर्मके फल [पुण्णं च पावं] पुण्य और पापोंको [जाणदि] जानता ही है।

णवि कुव्वदि णवि वेददि णाणी कम्माइ बहुपयाराइ त्रिगुप्तिगुप्तत्वबलेन ख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिसमस्तपरद्रव्यालंबनशून्येनानंतज्ञानदर्शनसुखवीर्यस्वरूपेण सालंबने भरितावस्थे निर्विकल्पसमाधौ स्थितो ज्ञानी कर्माणि बहुप्रकाराणि ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नानि निश्चयनयेन न करोति न च तन्मयो भूत्वा वेदयत्यनुभवति। तर्हि किं करोति ? **जाणदि पुण कम्मफलं बंधं पुण्णं च पावं च** परमात्मभावनोत्थसुखे तृप्तो भूत्वा वस्तुस्वरूपेण जानात्येव। किं जानाति ? सुखदुःखस्वरूपकर्मफलं प्रकृतिबंधादिभेदभिन्नं पुनः कर्मबंधं, सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्ररूपं पुण्यं, अतोऽन्यदसद्वेद्यादिरूपं पापं चेति। ॥ ३४० ॥

तमेव कर्तृत्वभोक्तृत्वाभावं विशेषेण समर्थयति–

दिट्ठी सयंपि णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव।
जाणदि य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव ॥ ३४१ ॥

॥ आ. ख्या. ३२० ॥

दिट्ठी सयंपि णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव यथा दृष्टिः कर्त्री दृश्यमग्निरूपं वस्तुसंधुक्षणं पुरुषवन्न करोति तथैव च तप्तायःपिंडवदनुभवरूपेण न वेदयति। तथा शुद्धज्ञानमप्यभेदेन

टीकार्थ– सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव त्रिगुप्तिगुप्तत्व के बलसे (स्वानुभवके बलसे) ख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतअनुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादि सभी परद्रव्यके आलंबनसे शून्य अर्थात् अनंतज्ञानदर्शनसुखवीर्यस्वभाव के आलंबनसे भरित अवस्थावाले निर्विकल्प समाधिमें (स्वानुभवमें) स्थित है। वह ज्ञानी नाना प्रकारके ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृति भेदभिन्नवाले कर्मबंधोंको निश्चयनयसे नहीं करता है और तन्मय होकर नहीं भोगता है।

शंका– तो सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव क्या करता है ?

समाधान– तो सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव परमात्मभावनासे (स्वानुभवसे) उत्पन्न हुये सुखसे तृप्त होकर वस्तुस्वरूपसे जानता ही है।

शंका– क्या जानता है ?

समाधान– सुखदुःखस्वरूप कर्मके फलको, प्रकृतिबंधादिके भेदसे अनेक प्रकार होनेवाले कर्मोंके बंध को, तथा सातावेदनीय, शुभ आयु, शुभनाम, शुभगोत्ररूप पुण्यको व इससे अन्य विपरीत असातावेदनीय आदिरूप पापको भी जानता है। ॥ ३४० ॥

वही कर्तृत्वके अभावका और भोक्तृत्वके अभावका विशेषरूपसे समर्थन करते हैं–

गाथार्थ– [**जह एव दिट्ठी**] जैसे नेत्र दृश्यपदार्थको देखता है लेकिन पदार्थका कर्ता भोक्ता नहीं है, [**तह**] उसी प्रकार [**णाणं सयंपि**] ज्ञान स्वयं भी [**अकारयं**] अकारक [**अवेदयं च एव**] तथा अवेदक है [**य**] और [**बंधमोक्खं**] बंधमोक्ष [**कम्मुदयं**] कर्मोदय [**णिज्जरं च**] तथा निर्जराको [**जाणदि एव**] जानता ही है।

टीकार्थ– जैसे नेत्र अग्निरूप दृश्यको देखता है लेकिन प्रज्वलित करनेवाले आदमीके समान वह उस अग्निको जलानेका कर्ता नहीं है, तथा तप्तलोहपिंडके समान वह उस अग्निको

शुद्धज्ञानपरिणतजीवो वा स्वयं शुद्धोपादानरूपेण न करोति न च वेदयति। अथवा पाठांतरं **दिट्ठी स्वयंपि णाणं** तस्य व्याख्यानं न केवलं दृष्टिः क्षायिकज्ञानमपि निश्चयेन कर्मणामकारकं तथैवावेदकमपि। तथाभूतः सन् किं करोति ? **जाणदि य बंधमोक्खं** जानाति च। कौ ? बंधमोक्षौ। न केवलं बंधमोक्षौ **कम्मुदयं णिज्जरं चेव** शुभाशुभरूपं कर्मोदयं सविपाकाविपाकरूपेण सकामाकामरूपेण वा द्विधा निर्जरां चैव जानाति इति। एवं सर्वविशुद्धपरिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धोपादानभूतेन शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन कर्तृत्वभोक्तृत्वबंधमोक्षादिकारणपरिणामशून्यो जीव इति सूचितम्। समुदायपातनिकायां पश्चाद्गाथाचतुष्टयेन जीवस्याकर्तृत्वगुणव्याख्यानमुख्यत्वेन सामान्यविवरणं कृतं। पुनरपि गाथाचतुष्टयेन शुद्धस्यापि यत्प्रकृतिभिर्बंधो भवति तदज्ञानस्य माहात्म्यमित्यज्ञानसामर्थ्यकथनरूपेण विशेषविवरणं कृतं। पुनश्च गाथाचतुष्टयेन जीवस्याभोक्तृत्वगुणव्याख्यान मुख्यत्वेन व्याख्यानं कृतं। तदनंतरं शुद्धनिश्चयेन तस्यैव कर्तृत्वबंधमोक्षादिककारणपरिणामवर्जनरूपस्य द्वादशगाथाव्याख्यानस्योपसंहाररूपेण गाथाद्वयं गतं।

इति समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां तात्पर्यवृत्तौ मोक्षाधिकारसंबंधिनी चतुर्दशगाथाभिश्चतुर्भिरंतराधिकारैः चूलिका समाप्ता। अथवा द्वितीयव्याख्यानेनात्र मोक्षाधिकारः समाप्तः। ॥ ३४१ ॥

अनुभवरूपसे वेदता नहीं (भोक्ता नहीं) है। वैसे शुद्धज्ञान भी अथवा अभेदसे शुद्धज्ञानपरिणत हुआ जीव स्वयं शुद्धोपादानरूपसे न कर्ता है, न भोक्ता है। अथवा पाठांतरसे-केवल दृष्टि ही नहीं किन्तु क्षायिकज्ञान भी निश्चयसे कर्मका अकारक है तथा अभोक्ता भी है।

शंका— ऐसा होता हुआ क्या करता है ?

समाधान— बंधमोक्षको जानता है। केवल बंधमोक्षको जानता है ऐसा नही तो, शुभाशुभरूप कर्मोदयको तथा सविपाक अविपाकरूपसे अथवा सकाम, अकामरूपसे दोनों प्रकारकी निर्जराको भी जानता है।

इसतरह सर्वविशुद्धपरमपरिणामिकभावग्राहक शुद्ध उपादानभूत शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे जीव कर्तृत्वसे रहित, भोक्तृत्वसे रहित बंधमोक्षादिकारणपरिणामसे रहित है। ऐसा सूचित किया है।

इसप्रकार समुदायपातनिकामें पीछेकी चार गाथाओंके द्वारा जीवके अकर्तापन गुण के व्याख्यानकी मुख्यतासे सामान्य कथन किया है। फिर चार गाथाओंसे शुद्धको भी जो प्रकृतियोंसे बंध होता है वह अज्ञानका माहात्म्य है, इसतरह अज्ञानके सामर्थ्यका कथनरूपसे विशेष विवरण किया है। फिर चार गाथाओंसे जीवके अभोक्तृत्व गुण के व्याख्यानकी मुख्यतासे कथन किया है। उसके बाद शुद्धनिश्चयसे कर्तृत्वबंधमोक्षादिककारणपरिणामवर्जनरूप जो व्याख्यान १२ गाथाओं द्वारा किया है उसके ही उपसंहार रूपसे दो गाथायें समाप्त हो गयी।

इसप्रकार समयसारकी व्याख्या करनेवाली, शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवाली तात्पर्यवृत्तिमें मोक्षाधिकार संबंधी १४ गाथाओंसे, चार अंतराधिकारोंसे चूलिका समाप्त हुयी। अथवा दुसरी पद्धतिसे यहाँ मोक्षाधिकार समाप्त हुआ ॥ ३४१ ॥

किं च विशेषः औपशमिकादिपंचभावानां मध्ये केन भावेन मोक्षो भवतीति विचार्यते। तत्रौपशमिकक्षायोपशमिकक्षायिकौदयिकभावचतुष्टयं पर्यायरूपं भवति शुद्धपारिणामिकस्तु द्रव्यरूप इति। तच्च परस्परसापेक्षं द्रव्यपर्यायद्वयमात्मपदार्थो भण्यते। तत्र तावज्जीवत्व-भव्यत्वाभव्यत्वत्रिविधपारिणामिकभावमध्ये शुद्धजीवत्वं शक्तिलक्षणं यत्परिणामिकत्वं तच्छुद्ध-द्रव्यार्थिकनयाश्रितत्वान्निरावरणं शुद्धपारिणामिकभावसंज्ञं ज्ञातव्यं तत्तु बंधमोक्षपर्यायपरिणति-रहितं। यत्पुनर्दशप्राणरूपं जीवत्वं भव्याभव्यत्वद्वयं च तत्पर्यायार्थिकनयाश्रितत्वादशुद्धपारिणामिक-भावसंज्ञमिति। कथमशुद्धमिति चेत्, संसारिणां शुद्धनयेन सिद्धानां तु सर्वथैव दशप्राणरूपजीवत्व-भव्याभव्यत्वद्वयाभावादिति। तस्य त्रयस्य मध्ये भव्यत्वलक्षणपारिणामिकस्य तु यथासंभवं सम्यक्त्वादिजीवगुणघातकं देशघातिसर्वघातिसंज्ञं मोहादिकर्मसामान्यं पर्यायार्थिकनयेन प्रच्छादकं भवति इति विज्ञेयम्। तत्र च यदा कालादिलब्धिवशेन भव्यत्वशक्तेर्व्यक्तिर्भवति तदायं

यहां कुछ विशेष विचार किया जाता है कि—

शंका— औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक, औदयिक और पारिणामिक इन पांच भावोंमें से किस भावसे मोक्ष होता है ?

समाधान— यहाँ औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और औदयिक ये चार भाव पर्याय-रूप हैं, लेकिन शुद्धपारिणामिकभाव द्रव्यरूप है। वे परस्पर सापेक्ष द्रव्यपर्याय द्वयरूप आत्मा पदार्थ हैं। वहां जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व इन तीन प्रकारके पारिणामिकभावोंमें शुद्धजीवत्व-शक्तिलक्षण जो पारिणामिकभाव है वह शुद्धद्रव्यार्थिकनयके आश्रित होनेसे निरावरण है, उसकी "शुद्ध पारिणामिकभाव" यह संज्ञा है ऐसा जानना चाहिये, लेकिन वह शुद्धपारिणामिकभाव बंधमोक्षपर्यायपरिणतिसे रहित है। और जो दसप्राणरूप जीवत्व और भव्यत्वाभव्यत्वद्वय ये पर्यायार्थिकनयके आश्रित होनेसे अशुद्ध पारिणामिकभाव नामवाले हैं।

शंका— वे (जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व) अशुद्ध कैसे है ?

समाधान— संसारी जीवोंमें शुद्धनयसे दशप्राणरूप जीवत्व और भव्यत्वाभव्यत्वद्वय इनका अभाव होनेसे जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व ये अशुद्ध (अशुद्धनयका विषय) है लेकिन सिद्धोंमे तो सर्वथा ही याने द्रव्यार्थिकनयसे (शुद्धनयसे) और पर्यायार्थिकनयसे (व्यवहारनयसे) दशप्राणरूप जीवत्व और भव्यत्वाभव्यत्वद्वय इनका अभाव होनेसे जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व ये अशुद्ध (अशुद्धनयका विषय) हैं।

उन तीनोंमें (याने जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व इन तीनोंमें) भव्यत्वलक्षणवाला पारिणामिकभावका तो यथासंभव पर्यायार्थिकनयसे सम्यक्त्वादि जीवके गुणोंका घात करनेवाला देशघातिसर्वघातिसंज्ञावाला मोहादिकर्मसामान्य प्रच्छादक (आवरण करनेवाला) है, ऐसा जानना चाहिये। और वहाँ जब कालादिलब्धिके वशसे भव्यत्वशक्तिकी व्यक्ति (प्रगट) होती है,

जीव : सहजशुद्धपारिणामिकभावलक्षणनिजपरमात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणपर्यायेण परिणमति। तच्च परिणमनमागमभाषयौपशमिकक्षायोपशमिकक्षायिकं भावत्रयं भण्यते। अध्यात्मभाषया पुनः शुद्धात्माभिमुखपरिणामः शुद्धोपयोग इत्यादि पर्यायसंज्ञां लभते। स च पर्यायः शुद्धपारिणामिकभावलक्षणशुद्धात्मद्रव्यात्कथंचिद्भिन्नः। कस्मात् ? भावनारूपत्वात्। शुद्धपारिणामिकस्तु भावनारूपो न भवति। यद्येकांतेनाशुद्धपारिणामिकादभिन्नो भवति तदास्य भावनारूपस्य मोक्षकारणभूतस्य मोक्षप्रस्तावे विनाशे जाते सति शुद्धपारिणामिकभावस्यापि विनाशः प्राप्नोति; न च तथा। ततः स्थितं–शुद्धपारिणामिकभावविषये या भावना तद्रूपं यदौपशमिकादिभावत्रयं

तब यह जीव सहजशुद्धपरिणामिकभावलक्षणनिजपरमात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणपर्यायसे परिणमता है।

आगमभाषा

और उस परिणमनको आगमभाषासे (व्यवहारनयसे) औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व इसप्रकार तीन भाव कहे जाते हैं।

अध्यात्मभाषा

और उस परिणमनको अध्यात्मभाषासे (निश्चयनयसे) शुद्धात्माभिमुख परिणाम (याने जो चेतनोपयोग परमशुद्धपारिणामिकभावके तरफ उपयोग लगाकर या परमशुद्धपारिणामिकभावको विषय बनाकर जो शुद्धात्मानुभवपरिणाम प्रगट होता है) शुद्धोपयोग, निर्विकल्प स्वसंवेदन, समाधि, निश्चयसम्यक्त्व अभेदरत्नत्रय इत्यादि पर्यायवाची नामोंसे (संज्ञाओंसे) कहा जाता है।

और वह पर्याय शुद्धपारिणामिकभावलक्षणशुद्धात्मद्रव्यसे कथंचित् भिन्न है।

शंका– वह शुद्धोपयोग (स्वानुभूति) पर्याय शुद्धपरमपारिणामिकभावलक्षणवाले द्रव्यसे कैसे भिन्न है ?

समाधान– वह शुद्धोपयोग भावनारूप (स्वानुभूति वा समाधि अथवा निर्विकल्पस्वसंवेदन) पर्याय होनेसे अनित्य है इसलिये शुद्धपरमपारिणामिकभावलक्षणवाले द्रव्यसे वह पर्याय कथंचित् भिन्न है। शुद्धपारिणामिकभाव ध्रुव अथवा नित्य है। और शुद्धपारिणामिकभाव भावनारूप (पर्यायरूप) नहीं होता है। यदि एकांतसे अशुद्धपारिणामिकसे (पर्यायसे) शुद्धपारिणामिकभाव (ध्रुव) अभिन्न है ऐसा माना जाय तो मोक्षपर्याय प्रगट होते ही वह मोक्षकारणभूत भावनारूप (स्वानुभूति पर्याय) का नाश होता है और भव्यत्व-अशुद्धपारिणामिकभाव का भी नाश होता है उसीतरह शुद्धपारिणामिकभावका भी नाश हो जायेगा, लेकिन शुद्धपारिणामिकभाव का नाश नहीं होता है (क्योंकि शुद्धपारिणामिकभाव ध्रुव होनेसे उस शुद्धपारिणामिकभावका नाश नहीं होता है)

इसलिये यह सिद्ध (निश्चित) हुआ कि,

तत्समस्तरागादिरहितत्वेन शुद्धोपादानकारणत्वान्मोक्षकारणं भवति; न च शुद्धपारिणामिकः। यस्तु शक्तिरूपो मोक्षः स शुद्धपरिणामिके पूर्वमेव तिष्ठति। अयं तु व्यक्तिरूपमोक्षविचारो वर्तते। तथा चोक्तं सिद्धांते 'निष्क्रियः शुद्धपारिणामिकः' निष्क्रिय इति कोऽर्थः? वंधकारणभूता या क्रिया रागादिपरिणतिः, तद्रूपो न भवति। मोक्षकारणभूता च क्रिया शुद्धभावनापरिणतिस्तद्रूपश्च न भवति। ततो ज्ञायते शुद्धपारिणामिकभावो ध्येयरूपो भवति ध्यानरूपो न भवति। कस्मात्? ध्यानस्य विनश्वरत्वात्। तथा योगींद्रदेवैरप्युक्तं– ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ वंधु ण मोक्खु

अध्यात्मभाषा

१) शुद्ध पारिणामिक भाव के विषय की जो भावना (भावभासना अथवा स्वानुभूति पर्याय) तद्रूप (स्वभावरूप परिणति) होती है, वह पर्याय समस्त रागादिरहितपनेसे-शुद्ध उपादानरूप कारण होनेसे मोक्षका कारण है।

आगमभाषा

जो औपशमिक सम्यक्त्व या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व या क्षायिक सम्यक्त्व भाव (सम्यक्त्व भाव) है वह भाव मोक्षका कारण है।

शुद्धपारिणामिकभाव अपरिणामी होनेसे मोक्षका कारण नहीं है।

जो शक्तिरूप मोक्ष है वह शुद्धपारिणामिकमें पहले ही स्थित है लेकिन यह व्यक्तिरूप (प्रगटरूप) मोक्षका विचार है। इसी तरह सिद्धांत ग्रंथमें कहा है कि, 'निष्क्रियः शुद्धपारिणामिकः' याने शुद्धपारिणामिक भाव निष्क्रिय है।

शंका– यहाँ शुद्धपारिणामिकभावको निष्क्रिय ऐसा किस अर्थसे कहा है?

समाधान– वंधके कारणभूत जो क्रिया-रागादिपरिणति शुद्धपारिणामिकभावके साथ तादात्म्य नहीं होती है। और (उसी तरह) मोक्षके कारणभूत जो क्रिया याने शुद्धभावनापरिणति (शुद्धात्मानुभूति पर्याय) शुद्धपारिणामिकभावके साथ तादात्म्य नहीं होती है (क्योंकि शुद्धात्मानुभूति पर्याय अनित्य है)।

इसलिये यह जाना जाता है कि, शुद्धपारिणामिकभाव ध्येयरूप (ध्यान करने के लिये योग्य विषय) है, ध्यानरूप (ध्यानपर्याय अथवा स्वानुभूतिपर्याय) नहीं है।

शंका– शुद्धपारिणामिकभाव ध्यानरूप (स्वानुभूतिपर्यायरूप) क्यों नहीं होता है?

समाधान– ध्यानपर्याय (स्वानुभूतिपर्याय) विनाश होनेवाली होनेसे शुद्धपारिणामिकभाव ध्यानरूप (स्वानुभूतिपर्यायरूप) नहीं होता है।

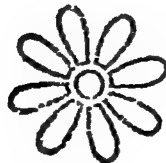
उसी तरह परमात्मप्रकाशमें ६८ गाथामें श्री योगींदुदेव कहते हैं कि, "ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ वंधु ण मोक्खु करेइ। जिउ परमत्थे जोइया, जिणवर एउँ भणेइ ॥ ६८॥" अर्थात्– हे योगी! परमार्थसे (शुद्धनिश्चयनयसे) यह जीव न उपजता (जन्मता) है, न मरता है, न वंधता है, न मोक्ष प्राप्त करता है, ऐसा श्री जिनवर भगवान कहते हैं।

करेइ । जिउ परमत्थे जोइया जिणवरु एउँ भणेइ ॥ परमात्मप्रकाश– ६८ ॥ किंच विवक्षितैकदेशशुद्धनयाश्रितेयं भावना निर्विकारस्वसंवेदनलक्षणभेदक्षायोपशमिकज्ञानत्वेन यद्यप्येकदेशव्यक्तिरूपा भवति तथापि ध्याता पुरुषः यदेव सकलनिरावरणमखंडैकप्रत्यक्षप्रतिभासमयमविनश्वरं शुद्धपारिणामिकपरमभावलक्षणं निजपरमात्मद्रव्यं तदेवाहमिति भावयति न च खंडज्ञानरूपमिति भावार्थः । इदं तु व्याख्यानं परस्परसापेक्षागमाध्यात्मनयद्वयाभिप्रायस्याविरोधेनैव कथितं सिध्द्यतीति ज्ञातव्यं विवेकिभिः ।

और विशेष कहते हैं कि, विवक्षितएकदेशशुद्धनयके आश्रित यह भावना (भावभासना अथवा स्वानुभूति) निर्विकारस्वसंवेदनलक्षणक्षायोपशमिकज्ञानत्वसे यद्यपि एकदेश व्यक्तिरूप (प्रकटरूप) है तो भी ध्याता पुरुष "जो सकलनिरावरणअखंड-एक-प्रत्यक्षप्रतिभासमय–अविनश्वरशुद्धपारिणामिकपरमभावलक्षणवाला निजपरमात्मद्रव्य है वही मैं हूं", ऐसी भावभासना (अनुभूति) करता है, अपितु खंडज्ञानरूप मैं नहीं हूं । ऐसा भावार्थ है । यह सब कथन आगमका अभिप्राय और अध्यात्मका अभिप्राय इन दोनोंमें परस्पर सापेक्षता है, विरोध ही नहीं है, यह सिद्ध करनेके लिये किया है ऐसा विवेकी लोगोंने जानना चाहिये ।

भावार्थ– इस विवेचनसे श्री जयसेनाचार्यजीने यह दिखाया है कि, शुद्धोपयोगसे (स्वानुभूतिसे अथवा निर्विकल्पसमाधिसे) ही चतुर्थादि गुणस्थान प्रगट होते हैं । उस शुद्धोपयोगको निश्चयसम्यक्त्व, अथवा अभेदरत्नत्रय आदि कहा जाता है ।

यहाँ ध्यान, ध्याता और ध्येयका सूक्ष्म विवेचन किया है । पर्याय एक समयवर्ती होती है । ध्यानपर्याय भी एक समयवर्ती है । ध्यानपर्याय भी अनित्य है । ध्यानका विषय (स्वानुभूतिमें जो विषय है वह विषय) परमशुद्धपारिणामिकमय निजात्मद्रव्य है । परमशुद्धपारिणामिकभाव नित्य है । परमशुद्धपारिणामिकभाव अपरिणामी है । भेदरत्नत्रय अथवा खंडज्ञान स्वानुभूतिका विषय नहीं है ।



समयसार चूलिका

अत: परं जीवादिनवाधिकारेषु जीवस्य कर्तृत्वभोक्तृत्वादिस्वरूपं यथास्थानं निश्चय-व्यवहारविभागेन सामान्येन यत्पूर्वं सूचितं, तस्यैव विशेषविवरणार्थं 'लोकस्स कुणदि विहूणू' इत्यादि गाथामादि कृत्वा पाठक्रमेण षडधिकनवतिगाथापर्यंतं चूलिकाव्याख्यानं करोति – चूलिकाशब्दस्यार्थः कथ्यते। तथाहि – विशेषव्याख्यानं, उक्तानुक्तव्याख्यानं उक्तानुक्तसंकीर्ण-व्याख्यानं चेति त्रिधा चूलिकाशब्दस्यार्थो ज्ञातव्यः। तत्र षण्णवतिगाथासु मध्ये विष्णोर्देवादिपर्याय-कर्तृत्वनिराकरणमुख्यत्वेन 'लोगस्स कुणदि विहूणू' इत्यादि गाथासप्तकं च भवति। तदनंतरं, अन्य: कर्ता, भुंक्ते चान्यः इत्येकांतनिषेधरूपेण बौद्धमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं 'केहिं दु पज्जयेहिं' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं। अतः परं सांख्यमतानुसारिशिष्यं प्रति एकांतेन जीवस्य भावमिथ्यात्वा-कर्तृत्वनिराकरणार्थं 'मिच्छत्ता जदि पयडि' इत्यादि सूत्रपंचकं। ततः परं ज्ञानाज्ञानसुखदुःखादि-भावान् कर्मैवैकांतेन करोति न चात्मेति पुनरपि सांख्यमतनिराकरणार्थं – 'कम्मेहिं अण्णाणी'

इसके आगे जीवादि नौ अधिकारोंमें जीवके कर्तापन भोक्तापन आदिके स्वरूपका यथास्थान निश्चयनय और व्यवहारनय के विभाग द्वारा सामान्यसे जो पूर्वमें कहा गया है, उसका ही विशेष वर्णन करनेके लिये 'लोकस्स कुणदि विहूणू' इत्यादि गाथासे शुरू करके पाठक्रमसे ९६ गाथाओंतक चूलिका का व्याख्यान करते हैं। चूलिका शब्दका अर्थ कहते हैं १) विशेष व्याख्यान, २) कहे हुअे और न कहे हुअे का व्याख्यान तथा ३) कहा हुआ और न कहा हुआसे मिश्रित व्याख्यान, इस तरह तीन प्रकारसे व्याख्यान करना यह चूलिका शब्दका अर्थ जानना चाहिये।

वहाँ ९६ गाथाओंमें पहले सात गाथाओंमें देवादिपर्यायोंका विष्णु कर्ता नहीं है इसकी मुख्यतासे 'लोगस्स कुणदि विहूणू' इत्यादि (गाथायें) हैं। इसके बाद अन्यकर्ता है और अन्य भोक्ता है इस प्रकारके एकांतका निषेध करते हुअे बौद्धमतके अनुसार मान्यतावाले शिष्यको संबोधन करने के लिये 'केहिं दु पज्जयेहि' इत्यादि ४ गाथायें हैं। इसके आगे एकांतसे जीवके भावमिथ्यात्वका अकर्तृत्व माननेवाले सांख्यमतानुसारी शिष्यके मतका निराकरण करनेके लिये 'मिच्छत्ता जदि पयडि' इत्यादि पांच गाथायें हैं। इसके आगे ज्ञान – अज्ञान – सुख – दुःखादि भावोंको एकांतसे कर्म ही करते हैं और उनको आत्मा नहीं करता है ऐसी मान्यतावाले सांख्यमतानुसारी शिष्यके मतका निराकरण करनेके लिये 'कम्मेहिं अण्णाणी' इत्यादि १३ गाथायें हैं। इसके बाद कोई प्राथमिक शिष्य शब्द आदि पंचेंद्रियोंके विषयों को नष्ट करना चाहता है लेकिन मनमें स्थित रहनेवाले विषयानुरागका घात करना चाहिये ऐसे भेदज्ञानको

इत्यादि त्रयोदशसूत्राणि। अथानंतरं कोऽपि प्राथमिकशिष्य: शद्वादिपंचेन्द्रियविषयाणां विनाशं कर्तुं वांछति किंतु मनसि स्थितस्य विषयानुरागस्य घातं करोमीति विशेषविवेकं न जानाति तस्य संबोधनार्थं **'दंसणणाणचारित्तं'** इत्यादि सूत्रसप्तकं। तदनंतरं यथा सुवर्णकारादिशिल्पी कुंडलादि कर्म हस्तकुट्टकाद्युपकरणैः करोति तत्फलं मूल्यादिकं भुंक्ते च तथापि तन्मयो न भवति। तथा जीवोऽपि द्रव्यकर्म करोति भुंक्ते च तथापि तन्मयो न भवतीत्यादिप्रतिपादनरूपेण **'जह सिप्पियो दु'** इत्यादि गाथासप्तकं। ततः परं यद्यपि श्वेतमृत्तिका कुड्यादिकं श्वेतं करोति तथापि निश्चयेन तन्मयो न भवति। तथा जीवोऽपि व्यवहारेण ज्ञेयभूतं च द्रव्यमेव जानाति पश्यति परिहरति श्रद्दधाति च तथापि निश्चयेन तन्मयो न भवति इति ब्रह्माद्वैतमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं **'जह सेडिया'** इत्यादि सूत्रदशकं। ततः परं शुद्धात्मभावनारूपनिश्चयप्रतिक्रमणनिश्चयप्रत्याख्यान – निश्चयालोचना – निश्चयचारित्रव्याख्यानमुख्यत्वेन **'कम्मं जं पुव्वकयं'** इत्यादि सूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं रागद्वेषोत्पत्तिविषयेऽज्ञानरूपस्वकीयबुद्धिरूपदोष एव कारणं न चाचेतनशद्वादिविषया इति कथनार्थं **'णिंददि संथुदि वयणाणि'** इत्यादि गाथादशकं। अतः परं उदयागतं कर्म वेदयमानो मदीयमिदं मया कृतं च मन्यते स्वस्थभावशून्यः सुखितो दुःखितश्च भवति यः सः पुनरप्यष्टविधं कर्म दुःखबीजं बध्नातीति प्रतिपादनमुख्यत्वेन

नहीं जानता है उसको संबोधन करनेके लिये **'दंसणणाणचरित्तं'** इत्यादि ७ गाथायें हैं। तदनंतर जैसे स्वर्णकारादि शिल्पकार हथोडे आदि उपकरणोंके द्वारा कुण्डल आदि बनाता हैं, उनसे जो फल मिलता है, उन मूल्य आदिको भोगता है किन्तु सुवर्णादिसे तन्मय नहीं होता है वैसे जीव भी द्रव्यकर्म करता है और उसको भोगता है तथापि उनसे तन्मय नहीं होता है इत्यादिका प्रतिपादन करनेवाली **'जह सिप्पियो दु'** इत्यादि ७ गाथायें हैं। उसके आगे ब्रह्माद्वैतमतानुसारी शिष्यको संबोधन करनेके लिये **'जह सेडिया'** इत्यादि १० गाथायें हैं। उसमें कहते हैं कि, यद्यपि सफेद मिट्टी भीत आदिको सफेद करती है तथापि निश्चयनयसे वह उससे तन्मय नहीं होती है, वैसे जीव भी व्यवहारनयसे ज्ञेयभूत द्रव्यको जानता है, देखता है, दूर करता है, और श्रद्धा करता है तथापि निश्चयनयसे उससे तन्मय नहीं होता है। इसके आगे शुद्धात्मभावनावाला निश्चयप्रतिक्रमण, निश्चयप्रत्याख्यान, निश्चय आलोचना और निश्चयचारित्र इनका कथन करनेकी मुख्यतासे **'कम्मं जं पुव्वकयं'** इत्यादि ४ गाथायें हैं। तदनंतर रागद्वेषकी उत्पत्तिके विषयमें अज्ञानरूप अपना बुद्धिरूप दोष ही कारण है और अचेतन शद्वादिविषय रागद्वेषके उत्पत्तिके कारण नहीं है, इस कथनके लिये **'णिंददि संथुदि वयणाणि'** इत्यादि १० गाथायें हैं। इसके आगे उदयागत कर्मको भोगनेवाला जो मानता है कि "यह मेरा है, यह मैंने किया है", और जो स्वस्थभावसे शून्य होकर सुखी और दुःखी होता है वह फिरसे दुःखके बीजवाले आठ प्रकारके कर्म बांधता है, यह कथन करनेकी मुख्यतासे **'वेदंतो-कम्मफलं'** इत्यादि तीन गाथायें हैं। इसके बाद आचारांग, सूत्रकृतांग आदि द्रव्यश्रुत, इंद्रियोंके विषय, द्रव्यकर्म, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, और कालद्रव्य और रागादिविभाव ये

'वेदंतो कम्मफलं' इत्यादि गाथात्रयं। तदनंतरं आचारसूत्रकृतादि द्रव्यश्रुतेन्द्रियविषयद्रव्यकर्म धर्माधर्माकाशकालाः शुद्धनिश्चयेन रागादयोऽपि शुद्धजीवस्वरूपं न भवंतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन **'सच्छं णाणं ण हवदि'** इत्यादि पंचदश सूत्राणि। ततः परं यस्य शुद्धनयस्याभिप्रायेणात्मा मूर्तिरहितस्तस्याभिप्रायेण कर्मनोकर्माहाररहित इति व्याख्यानरूपेण **'अप्पा जस्स अमुत्तो'** इत्यादि गाथात्रयं। तदनंतरं देहाश्रितद्रव्यलिंगं निर्विकल्पसमाधिलक्षणभावलिंगरहितयतीनां मुक्तिकारणं न भवति भावलिंगसहितानां पुनः सहकारिकारणं भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन **'पाखंडी लिंगाणि य'** इत्यादि सूत्रसप्तकं। पुनश्च समयप्राभृताध्ययनफलकथनरूपेण ग्रंथसमाप्त्यर्थं **'जो समयपाहुडमिणं'** इत्यादि सूत्रमेकं कथयतीति त्रयोदशभिरंतराधिकारैः समयसारचूलिकाधिकारे समुदायपातनिका।

इदानीं त्रयोदशाधिकाराणां यथाक्रमेण विशेषव्याख्यानं क्रियते। तद्यथा— एकांतेनात्मानं कर्तारं ये मन्यंते तेषामज्ञानिजनवन्मोक्षो नास्तीत्युपदिशति—

लोगस्स कुणदि विहूणू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते।
समणाणं पि य अप्पा जदि कुव्वदि छव्विहे काए॥ ३४२॥
॥ आ. ख्या. ३२१॥

सब भी शुद्धनिश्चयनयसे शुद्धजीवस्वरूप नहीं हैं इस कथनकी मुख्यतासे **'सच्छं णाणं ण हवदि'** इत्यादि १५ गाथायें हैं। इसके बाद जिस शुद्धनयके अभिप्रायसे आत्मा अमूर्त्त है उसी शुद्धनयके अभिप्रायसे आत्मा कर्मनोकर्मरहित है इस कथनकी मुख्यतासे **'अप्पा जस्स अमुत्तो'** इत्यादि तीन गाथायें हैं। उसके बाद निर्विकल्पसमाधिलक्षणवाले भावलिंगसे रहित यतियोंका देहाश्रित-द्रव्यलिंग मोक्षका कारण नहीं है और भावलिंगसहित यतियोंका द्रव्यलिंग सहकारी कारण हैं, इस कथनकी मुख्यतासे **'पाखंडी लिंगाणि य'** इत्यादि ७ गाथायें है। इसके आगे इस समयप्राभृतग्रंथके अध्ययनका फल कहते हुये इस ग्रंथको समाप्त करनेके लिये **'जो समयपाहुड-मिणं'** इत्यादि एक गाथा है। इस प्रकार १३ अंतर अधिकारोंसे समयसारकी चूलिकाके अधिकार की यह समुदायपातनिका है।

अब १३ अधिकारोंका यथाक्रमसे विशेष व्याख्यान किया जाता है। अब यहां, जो एकांतसे आत्माको कर्ता मानते हैं उनको अज्ञानी जनकी तरह मोक्ष नहीं है, ऐसा उपदेश देते हैं—

गाथार्थ— [**लोगस्स**] लौकिकजनोंके मतानुसार [**विहूणू**] विष्णु [**सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते**] देव, नारक, तिर्यंच, मनुष्य प्राणियोंको [**कुणदि**] करता है [**य**] और इसी तरह [**जदि**] यदि [**समणाणं पि**] मुनियोंके मतमें भी [**अप्पा**] आत्मा [**छव्विहे काए**] छह कायके जीवोंको [**कुव्वदि**] करता है तो [**लोगसमणाणमेवं**] लोक और यतियोंके मतमें [**सिद्धंतं पडि**] सिद्धांतकी दृष्टिसे [**विसेसो**] भेद [**ण दिस्सदि**] नहीं दिखता है [**लोगस्स**] लोकके मतमें [**विहूणू**] विष्णु [**कुणदि**] करता है [**समणाणं**] यतियोंके मतमें [**अप्पओ**]

लोगसमणाणमेवं सिद्धंतं पडि ण दिस्सदि विसेसो ।
लोगस्स कुणदि विण्हू समणाणं अप्पओ कुणदि ।। ३४३ ।।

।। आ. ख्या. ३२२ ।।

एवं ण कोवि मुक्खो दीसदि दुण्हं पि समणलोयाणं ।
णिच्चं कुव्वंताणं सदेव मणुआसुरे लोगे ।। ३४४ ।।

।। आ. ख्या. ३२३ ।।

लोगस्स कुणदि विण्हू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते लोकस्य मते विष्णुः करोति । कान् ? सुरनारकतिर्यङ्मानुषान् सत्वान् **समणाणं पि य अप्पा जदि कुव्वदि छव्विहे काए** श्रमणानां मते पुनरात्मा करोति यदि चेत् । कान् ? षट्जीवनिकायानिति **लोगसमणाणमेवं सिद्धंतं पडि ण दिस्सदि विसेसो** एवं पूर्वोक्तप्रकारेण सिद्धांतं प्रति, आगमं प्रति न दृश्यते कोऽपि विशेषः । कयोः संबंधी ? लोकश्रमणयोः, कस्मात् इति चेत्, **लोगस्स कुणदि विण्हू समणाणं (पि) अप्पओ कुणदि** लोकमते विष्णुनामा कोऽपि परकल्पितपुरुषविशेषः करोति । श्रमणानां मते पुनरात्मा करोति, तत्र विष्णुसंज्ञा श्रमणमते चात्मसंज्ञा, नास्ति विप्रतिपत्तिर्न चार्थे । **एवं ण कोवि मुक्खो दीसदि दुण्हं पि समणलोयाणं** एवं कर्तृत्वे सति को दोषः ? मोक्षः कोऽपि न दृश्यते कयोर्लोकश्रमणयोः । किंविशिष्टयोः ? **णिच्चं कुव्वंताणं सदेव मणुआसुरे लोगे** नित्यं

आत्मा [**कुणदि**] करता है [**एवं**] इसतरह [**सदेवमणुआसुरे लोगे**] देव, मनुष्य और असुर और लोग [**णिच्चं कुव्वंताणं**] नित्य करते-कर्ता हुये [**समणलोयाणं दुण्णंपि**] यति और लोग इन दोनोमें से [**कोवि**] कोअी भी [**मुक्खो**] मुक्त हुआ [**ण दीसदि**] नहीं दिखता है ।

टीकार्थ– लौकिक जनोंके मतमें विष्णु देव, नारक, तिर्यंच् मनुष्य प्राणियोंको करता है और इसीतरह यदि श्रमणोंके मतमें भी आत्मा छहकायके जीवोंको करता है तो लोगोंके और श्रमणोंके मतमें सिद्धांत की दृष्टिसे भेद–अन्तर नहीं दीखता है क्योंकि लोगोंके मतमें विष्णु नामका कोअी परकल्पित पुरुष विशेष कर्ता है और श्रमणोंके मतमें आत्मा कर्ता है, वहाँ विष्णु संज्ञा है और श्रमणोंके मतमें आत्मा संज्ञा है, विष्णु और आत्मा संज्ञामें अर्थसे भेद नहीं, प्रतीतिमें भेद नहीं, नाम भेद है ।

शंका– इसप्रकार कर्तृत्व माननेमें क्या दोष है ?

समाधान– इस जगत्में नित्य कर्मकर्तृत्व माननेवाले देव, मनुष्य, असुर सहित श्रमण इनमेंसे कोअी भी मुक्त हुआ दीखाअी नहीं देता है ।

सर्वकालं कर्म कुर्वंतोः । क्व ? लोके । कथंभूते ? देवमनुष्यासुरसहिते । किंच– रागद्वेषमोहरूपेण परिणमनमेव कर्तृत्वमुच्यते । तत्र रागद्वेषमोहपरिणमने सति शुद्धस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धान-ज्ञानानुचरणरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गाच्च्यवनं भवति ततश्च मोक्षो न भवतीति भावार्थः। एवं पूर्वपक्षरूपेण गाथात्रयं गतं ॥ ३४२, ३४३, ३४४ ॥

अथोत्तरं निश्चयेनात्मनः पुद्गलद्रव्येण सह कर्तृकर्मसंबंधो नास्ति कथं कर्ता भविष्यतीति कथयति–

ववहारभासिदेण दु परदव्वं मम भणंति विदिदच्छा ।
जाणंति णिच्छयेण दु ण य इह परमाणुमित्त मम किंचि ॥ ३४५ ॥

॥ आ. ख्या. ३२४ ॥

जह कोवि णरो जंपदि अह्माणं गामविसयपुररट्ठं ।
ण य हुंति ताणि तस्स दु भणदि य मोहेण सो अप्पा ॥ ३४६ ॥

॥ आ. ख्या. ३२५ ॥

इसका स्पष्टीकरण यह है कि, रागद्वेषमोहमय परिणमन करना ही कर्तृत्व कहलाता है। वहाँ रागद्वेषमोहमय परिणमन करते समय शुद्धस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानु-चरणरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गसे च्युत होता है। इसलिये मोक्ष नहीं होता है, यह भावार्थ है।

इस प्रकार पूर्वपक्षका (पूर्वपक्ष और उसके संक्षेपरूप उत्तरका) कथन करनेवाली तीन गाथायें पूर्ण हुओ ॥ ३४२, ३४३, ३४४ ॥

अब पूर्वपक्षके उत्तरमें (विशेष) कथन करते हैं कि, निश्चयनय से आत्माका पुद्गलद्रव्यके साथ कर्ताकर्म संबंध नहीं है तब आत्मा कैसे कर्ता होगा ?–

गाथार्थ– [**विदिदच्छा**] ज्ञानी जन [**ववहारभासिदेण**] व्यवहारनयसे [**परदव्वं**] परद्रव्य [**मम**] मेरा है ऐसा [**भणंति**] कहते हैं [**दु**] तो भी [**णिच्छयेण**] निश्चयनयसे [**जाणंति दु**] जानते हैं कि [**इह**] इस जगतमें [**परमाणुमित्त मम किंचि य**] परमाणुमात्र भी कोई मेरा [**ण**] नहीं है। [**जह**] जैसे [**कोवि णरो**] कोओ मनुष्य [**जंपदि दु**] कहता है कि यह [**अह्माणं**] हमारा [**गामविसयपुररट्ठं**] ग्राम, जनपद, नगर और राष्ट्र है [**दु**] किंतु [**ताणि**] वे ग्रामादिक [**तस्स**] उसके [**ण य हुंति**] नहीं है [**य**] और [**सो अप्पा**] वह आत्मा [**मोहेण भणदि**] मोहसे ऐसा कहता है [**एमेव**] इसी प्रकार [**जो णाणी**] जो जीव [**परदव्वं मम**] परद्रव्य मेरा है [**इदि जाणंतो**] ऐसा अनुभवता हुआ [**अप्पयं**] परद्रव्यको आत्मस्वरूप [**कुणदि**] करता है [**एसो**] वह जीव [**णिस्संसयं**] निःसंशय [**मिच्छादिट्ठी**] मिथ्यादृष्टि [**हवदि**] होता है [**तह्मा**] इस कारणसे [**ण मे त्ति**] ये परद्रव्य

एमेव मिच्छदिट्ठी णाणी णिस्संसयं हवदि एसो ।
जो परदव्वं मम इदि जाणंतो अप्पयं कुणदि ॥ ३४७ ॥

॥ आ. ख्या. ३२६ ॥

तह्मा ण मेत्ति णच्चा दोह्लंवि एयाण कत्तिववसाओ ।
परदव्वे जाणंतो जाणिज्जो दिट्ठिरहिदाणं ॥ ३४८ ॥

॥ आ. ख्या. ३२७ ॥

ववहारभासिदेण दु परदव्वं मम भणंति विदिदच्छा परद्रव्यं मम भणंति । के ते ? विदितार्थाः – ज्ञातार्थाः तत्त्ववेदिनः । केन कृत्वा भणंति ? व्यवहारभाषितेन व्यवहारनयेन । **जाणंति णिच्छयेण दु ण य इह परमाणुमित्त मम किंचि** निश्चयेन पुनर्जानंति । किं ? न चेह परद्रव्यं परमाणुमात्रमपि ममेति । **जह कोवि णरो जंपदि अह्माणं गामविसयपुररट्ठं** यथा नाम स्फुटमहो वा कश्चित्पुरुषो जल्पति । किं जल्पति ? वृत्यावृतो ग्रामः, देशाभिधानो विषयः, नगराभिधानं पुरं, देशैकदेशसंज्ञं राष्ट्रमस्माकमिति । **ण य हुंति ताणि तस्स दु भणदि य मोहेण सो अप्पा** न च तानि तस्य भवंति राजकीयनगरादीनि तथाप्यसौ मोहेन ब्रूते मदीयं ग्रामादिकमिति दृष्टांतः । अथ दार्ष्टांतः–एवं पूर्वोक्तदृष्टांतेन ज्ञानी व्यवहारमूढो भूत्वा यदि परद्रव्यमात्मीयं भणति तदा मिथ्यात्वं प्राप्तः सन् मिथ्यादृष्टिर्भवति निस्संशयं निश्चितं । संदेहो न कर्तव्यः इति । तह्मा इत्यादि । तह्मा तस्मात् परकीयग्रामादिदृष्टांतेन स्वानुभूतिभावनाच्युतः सन् योऽसौ परद्रव्यं व्यवहारेणात्मीयं करोति स मिथ्यादृष्टिर्भवतीति भणितं पूर्वं । तस्मात्कारणाज्ज्ञायते **दुह्लं एदाण कत्तिववसाओ** परद्रव्ये तयोः पूर्वोक्तलौकिकजैनयोः

मेरे नहीं है यह [**णच्चा**] जानकर [**एदाण दोह्लं वि**] लोक और श्रमण इन दोनोंके [**परदव्वे**] परद्रव्यमें [**कत्तिववसाओ**] कर्तृत्वके व्यवसायको [**जाणंतो**] जानते हुओ [**जाणिज्जो**] समझो कि यह व्यवसाय [**दिट्ठिरहिदाणं**] सम्यग्दृष्टिरहितवालोंका– मिथ्यादृष्टियोंका है ।

टीकार्थ– ज्ञानी-तत्ववेदी व्यवहारनयसे कहते हैं कि, परद्रव्य मेरा है किन्तु निश्चय-नयसे जानते हैं कि, इस जगत्का परमाणुमात्र भी परद्रव्य मेरा नहीं है । जैसे कोओी पुरुष कहता है कि, ग्राम, जनपद, नगर, देश, और राष्ट्र हमारा है लेकिन वे ग्राम, नगर आदि उसके नहीं है । तो भी वह मोहसे ग्रामादिकको 'मेरे हैं,' ऐसा कहता है । यह दृष्टांत है । अब दार्ष्टांत कहते हैं– इस प्रकार पूर्वोक्त दृष्टांतसे आत्मा व्यवहारमूढ होकर यदि परद्रव्यको अपना निजस्वरूप कहता है तब मिथ्यात्वको प्राप्त होकर मिथ्यादृष्टि होता है यह निश्चित है, इसमें संदेह नहीं करना चाहिये ।

इसलिये परकीयग्रामादि के दृष्टांतसे जो आत्मा स्वानुभूतिसे च्यूत होकर व्यवहारसे कहे हुओ "परद्रव्य मेरे है," इनको अपना निजस्वरूप मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा पहले कहा गया है ।

इस कारणसे जाना जाता है कि, परद्रव्यके बारेमें पूर्वोक्त लौकिक लोग और व्यवहार-

आत्मा परद्रव्यं करोतीत्यनेन रूपेण योऽसौ परद्रव्यविषये कर्तृत्वव्यवसायः। किं कृत्वा ? **पूर्वं ण ममेति णच्चा** निर्विकारस्वपरपरिच्छित्तिज्ञानेन परद्रव्यं मम संबंधि न भवति इति ज्ञात्वा **जाणंतो जाणिज्जो दिट्ठिरहिदाणं** इमं लौकिकजैनयोः परद्रव्ये कर्तृत्वव्यवसायं अन्यः कोऽपि तृतीयतटस्थः पुरुषो जानन् सन् जानीयात्। स कथंभूतं जानीयात् ? वीतरागसम्यक्त्वसंज्ञा या तु निश्चयदृष्टिस्तद्रहितानां व्यवसायोऽयमिति। ज्ञानी भूत्वा व्यवहारेण परद्रव्यमात्मीयं वदन् सन् कथमज्ञानी भवतीति चेत् ? व्यवहारो हि म्लेच्छानां म्लेच्छभाषेव प्राथमिकजनसंबोधनार्थं काल एवानुसर्तव्यः। प्राथमिकजनप्रतिबोधनकालं विहाय कतकफलवदात्मशुद्धिकारकात् शुद्धनयाच्च्युतो भूत्वा यदि परद्रव्यमात्मीयं करोति तदा मिथ्यादृष्टिर्भवति।

किं च विशेषः – लोकानां मते विष्णुः करोतीति यदुक्तं पूर्वं तल्लोकव्यवहारापेक्षया भणितं। न चानादिभूतस्य देवमनुष्यादिभूतलोकस्य विष्णुर्वा ब्रह्मा वा महेश्वरो वा कोऽपि कर्तास्ति। कथमिति चेत्, सर्वोऽपि लोकस्तावदेकेंद्रियादिजीवैर्भृतस्तिष्ठति। तेषां च जीवानां निश्चयनयेन विष्णुपर्यायेण ब्रह्मपर्यायेण महेश्वरपर्यायेण जिनपर्यायेण च परिणमनशक्तिरस्ति तेन

मोहित जैन लोग इन दोनोंके मतमें आत्मा परद्रव्यका कर्ता है।

इसप्रकारसे परद्रव्यमें जो कर्तृत्वभावना है, कोअी तीसरा तटस्थ पुरुष निर्विकार स्वपरपरिच्छित्तिरूप ज्ञानसे परद्रव्य मेरा संबंधी नहीं है इसको जानकर लौकिक लोग और जैन लोगोंका परद्रव्य के बारेमें होनेवाले उस कर्तृत्व के अध्यवसानको जानो।

शंका– वह उस अध्यवसायको कैसे जानता है ?

समाधान– वीतरागसम्यक्त्ववाली जो निश्चयदृष्टि है, उस निश्चयदृष्टिसे रहितवालोंका यह अध्यवसायभाव है, ऐसा सम्यग्ज्ञानी जानता है।

शंका– ज्ञानी होकर व्यवहारसे परद्रव्यको निजस्वरूप कहनेवाला अज्ञानी कैसे होता है ?

समाधान– जैसे म्लेच्छोंको समझाने के लिये म्लेच्छभाषाका ही उपयोग किया जाता है वैसे प्राथमिक जीवोंको संबोधन करनेके लिए उस कालमें ही व्यवहारनयका अनुसरण करना चाहिये। लेकिन प्राथमिक जीवोंके प्रतिबोधनकालको छोडकर अन्य कालमें भी यदि कोअी ज्ञानी जीव कतकफलके समान आत्माको शुद्ध करनेवाले शुद्धनयसे च्युत होकर यदि परद्रव्यको अपना निजस्वरूप मानता है, तो उस समय ही वह मिथ्यादृष्टि होता है।

इसका स्पष्टीकरण यह है कि, लोगोंके मतमें विष्णु करता है ऐसा जो पहले कहा गया वह लोकव्यवहार की अपेक्षासे कहा गया है. किन्तु अनादिस्वरूप इस देवमनुष्यादिप्राणियोंसे भरे हुअे लोकका विष्णु अथवा ब्रह्मा अथवा महेश्वर अथवा अन्य कोअी भी कर्ता नहीं है। क्योंकि सब लोक ही एकेंद्रियादि जीवोंसे भरा हुआ है। और उन जीवोंकी निश्चयनयसे विष्णुपर्यायरूप, ब्रह्मपर्यायरूप, महेश्वरपर्यायरूप, और जिनपर्यायरूप परिणमन करनेकी शक्ति है,

कारणेनात्मैव विष्णुः, आत्मैव ब्रह्मा, आत्मैव महेश्वरः, आत्मैव जिनः । तदपि कथमिति चेत्, कोऽपि जीवः पूर्वं मनुष्यभवे जिनरूपं गृहीत्वा भोगाकांक्षानिदानबंधेन पापानुबंधि पुण्यं कृत्वा स्वर्गे समुत्पद्य तस्मादागत्य मनुष्यभवे त्रिखंडाधिपतिरर्द्धचक्रवर्ती भवति तस्य विष्णुसंज्ञा न चापरः कोऽपि लोकस्य कर्ता विष्णुरस्ति इति । तथा चापरः कोऽपि जीवो जिनदीक्षां गृहीत्वा रत्नत्रयाराधनया पापानुबंधिपुण्योपार्जनं कृत्वा विद्यानुवादसंज्ञं दशमपूर्वं पठित्वा चारित्रमोहोदयेन तपश्चरणच्युतो भूत्वा हुण्डावसर्पिणीकालप्रभावेन विद्याबलेन लोकस्याहं कर्तेत्यादि चमत्कारमुत्पाद्य मूढजनानां विस्मयं कृत्वा महेश्वरो भवति न सर्वावसर्पिणीषु । सा च हुण्डावसर्पिणी-संख्यातीतोत्सर्पिण्यवसर्पिणीषु गतासु समुपयाति । तथा चोक्तं- संखातीदवसप्पिणि गयासु हुण्डावसप्पिणी एइ । परसमयहं उप्पत्ती तर्हि जिणवर एव पभणेइ ॥ १ ॥ न चान्यः कोऽपि जगत्कर्त्ता महेश्वराभिधानः पुरुषविशेषोऽस्ति इति । तथा चापरः कोऽपि पुरुषो विशिष्टतपश्चरणं कृत्वा पश्चात्तपःप्रभावेन स्त्रीविषयनिमित्तं चतुर्मुखो भवति तस्य ब्रम्हा संज्ञा । न चान्यः कोऽपि जगतः कर्ता व्यापकैकरूपो ब्रह्माभिधानोऽस्ति । तथैवापरः कोऽपि दर्शनविशुद्धिविनयसंपन्नतेत्यादि

इस कारणसे आत्मा ही विष्णु है, आत्मा ही ब्रह्मा है, आत्मा ही महेश्वर है, और आत्मा ही जिन है।

शंका- वह भी कैसे ?

समाधान- कोओी जीव पूर्व मनुष्यभवमें जिनरूप (मुनिव्रत) ग्रहण करके भोगाकांक्षानिदानबंधसे पापानुबंधिपुण्य करके स्वर्गमें उत्पन्न हुआ, वहांसे मनुष्यभवमें आकर तीन खंडोंका अधिपति - अर्धचक्रवर्ती होता है, उसको विष्णु संज्ञा है, अन्य दूसरा कोओी लोकका कर्ता विष्णु नहीं है। उसी तरह अन्य दूसरा कोओी जीव जिनदीक्षा ग्रहण करके रत्नत्रयकी आराधनासे पापानुबंधिपुण्य प्राप्त करके विद्यानुवादनामवाले दशवें पूर्वतक पढ़कर चारित्रमोहके उदयसे तपश्चरणसे भ्रष्ट होकर हुण्डावसर्पिणी कालके प्रभावसे, विद्या के बलसे " लोकका मैं कर्ता हूँ " इत्यादि चमत्कार प्रगट करके मूढ-अज्ञानी लोगोंको आश्चर्य पैदा करके महेश्वर होता है, यह सभी अवसर्पिणी कालमें नहीं होता है, किन्तु हुण्डावसर्पिणी में होता है जो कि असंख्यात उत्सर्पिणी और असंख्यात अवसर्पिणी कालोंके बीत जानेपर ही आया करता है, जैसे कि कहा गया है- " संखातीदवसप्पिणी " इत्यादि, अर्थात्- असंख्यात अवसर्पिणी कालोंके बीत जानेपर एक हुण्डावसर्पिणी काल आता है, जिसमें जैनेतर मतोंकी भी उत्पत्ति होती है ऐसा जिनेंद्र देव कहते हैं।

और अन्य कोओी जगत्का कर्ता महेश्वर नामवाला पुरुष विशेष नहीं है। इसी तरह अन्य कोओी जीव विशिष्ट तपश्चरण करने के बाद तप के प्रभावसे स्त्रीविषयक निमित्त पाकर चतुर्मुख होता है उसको ब्रह्मा संज्ञा है। और अन्य कोओी जगत्को करनेवाला व्यापक एकरूपवाला ब्रह्मा नामका कोओी कर्ता नहीं है। इसी प्रकार अन्य कोओी दर्शनविशुद्धिविनयसंपन्नता

षोडशभावनां कृत्वा देवेंद्रादिविनिर्मितपंचमहाकल्याणपूजायोग्यं तीर्थंकरपुण्यं समुपार्ज्य जिनेश्वराभिधानो वीतरागसर्वज्ञो भवतीति वस्तुस्वरूपं ज्ञातव्यं। एवं यद्येकांतेन कर्ता भवति तदा मोक्षाभाव इति विष्णुदृष्टांतेन गाथात्रयेण पूर्वपक्षं कृत्वा गाथाचतुष्टयेन परिहारव्याख्यानमिति प्रथमस्थले सूत्रसप्तकं गतं ॥ ३४५, ३४६, ३४७, ३४८ ॥

अथ द्रव्यार्थिकनयेन य एव कर्म करोति स एव भुंक्ते। पर्यायार्थिकनयेन पुनरन्यः करोत्यन्यो भुंक्ते इति च योऽसौ मन्यते स सम्यग्दृष्टिर्भवति इति प्रतिपादयति–

केहिचि दु पज्जयेहिं विणस्सदे णेव केहिचि दु जीवो।
जह्मा तह्मा कुव्वदि सो वा अण्णो व णेयंतो ॥ ३४९ ॥
॥ आ. ख्या. ३४५ ॥

केहिचि दु पज्जयेहिं विणस्सदे णेव केहिचि दु जीवो।
जह्मा तह्मा वेददि सो वा अण्णो व णेयंतो ॥ ३५० ॥
॥ आ. ख्या. ३४६ ॥

आदि १६ भावनाओंको करके देवेंद्रादिके द्वारा विनिर्मित पंचमहाकल्याणपूजायोग्य तीर्थंकरपुण्य को प्राप्त कर जिनेश्वर नामवाला वीतराग सर्वज्ञ होता है। ऐसा वस्तुस्वरूप जानना चाहिये।

एवं यदि एकांतसे आत्मा को कर्ता मान लिया जाय तो मोक्षका अभाव ठहरता है। इस तरह विष्णुके दृष्टांतके द्वारा तीन गाथाओंमें पूर्वपक्ष करके उसका परिहार चार गाथाओं के द्वारा किया गया है। इस तरह कथन करनेवाली ७ गाथायें प्रथमस्थलमें पूर्ण हुओ ॥ ३४५, ३४६, ३४७, ३४८ ॥

अब द्रव्यार्थिकनयसे जो ही करता है वह ही भोक्ता है। और पर्यायार्थिकनयसे अन्य कर्ता है और अन्य ही भोक्ता है इस प्रकार जो मानता है, वह सम्यग्दृष्टि है ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [जह्मा] जिस कारण [जीवो] जीव [केहिचि दु पज्जयेहिं] कितनी ही पर्यायोंसे [विणस्सदे] नष्ट होता है [केहिचि दु] और कितनी ही पर्यायोंसे [णेव] नष्ट नहीं होता [तह्मा] इसलिये [सो वा अण्णो कुव्वदि] वह ही करता है अथवा अन्य करता है [णेयंतो] एकांत नहीं है (स्याद्वाद है) [जह्मा] जिस कारण [जीवो] जीव [केहिचि दु पज्जयेहिं] कितनी ही पर्यायोंसे [विणस्सदे] नष्ट होता है [केहिचि दु] कितनी ही पर्यायोंसे [णेव] नष्ट नहीं होता [तह्मा] इसलिये [सो वा अण्णो व वेददि] वह जीव भोगता है अथवा अन्य भोगता है [णेयंतो] एकांत नहीं है (स्याद्वाद है)। स्या।–

टीकार्थ– पर्यायार्थिकनयविभागसे देवमनुष्यादिरूप कितनी ही पर्यायोंसे जीव नष्ट होता है। और द्रव्यार्थिक नय विभागसे कितनी ही पर्यायोंसे जीव नष्ट नहीं होता है।

केहिचिदु पज्जयेहिं विणस्सदे णेव केहिचि दु जीवो कैश्चित्पर्यायैः पर्यायार्थिकनयविभागैर्देवमनुष्यादिरूपैर्विनश्यति जीवः। न नश्यति कैश्चिद्द्रव्यार्थिकनयविभागैः **जह्मा** यस्मादेवं नित्यानित्यस्वभावं जीवरूपं **तह्मा** तस्मात्कारणात् **कुव्वदि सो वा** द्रव्यार्थिकनयेन स एव कर्म करोति। स एव कः? इति चेत्, यो भुंक्ते। **अण्णो वा** पर्यायार्थिकनयेन पुनरन्यो वा। **णेयंतो** न चैकांतोऽस्ति। एवं कर्तृत्वमुख्यत्वेन प्रथमगाथा गता। **केहिचि दु पज्जयेहिं विणस्सदे णेव केहिचि दु जीवो** कैश्चित् पर्यायैः पर्यायार्थिकनयविभागैः देवमनुष्यादिरूपैर्विनश्यति जीवः न नश्यति कैश्चिद्द्रव्यार्थिकनयविभागैः। **जह्मा** यस्मादेवं नित्यानित्यस्वभावं जीवस्वरूपं **तह्मा** तस्मात्कारणात् **वेददि सो वा** निजशुद्धात्मभावनोत्थसुखामृतरसास्वादमलभमानः स एव कर्मफलं वेदयत्यनुभवति। स एव कः? इति चेत्, येन पूर्वकृतं कर्म **अण्णो वा** पर्यायार्थिकनयेन पुनरन्यो वा **णेयंतो** न चैकांतोऽस्ति। एवं भोक्तृत्वमुख्यत्वेन द्वितीयगाथा गता। किं च येन मनुष्यभवे शुभाशुभं कर्म कृतं स एव जीवो द्रव्यार्थिकनयेन देवलोके नरके वा भुंक्ते। भवांतरापेक्षया तु मनुष्यपर्यायेण कृतं देवादिपर्यायेण भुंक्ते इति भावार्थः। एवं गाथाद्वयेनानेकांतव्यवस्थापनारूपेण स्वपक्षसिद्धिः कृता ॥ ३४९, ३५० ॥

जिसकारणसे जीवका स्वरूप नित्यानित्य है। इसलिये द्रव्यार्थिकनयसे जो ही कर्म भोगता है, वह ही करता है। और पर्यायार्थिकनयसे एक कर्म करता है, दूसरा भोगता है, इसमें एकांत नहीं है। इसप्रकार कर्तृत्वकी मुख्यतासे प्रथम गाथा पूर्ण हुअी।

पर्यायार्थिकनयविभागोंसे देवमनुष्यादिरूप कितनी ही पर्यायोंसे जीव नष्ट होता है, और द्रव्यार्थिकनयविभागोंसे कितनी ही पर्यायोंसे जीव नष्ट नहीं होता है। जिस कारणसे जीवका स्वरूप नित्यानित्य है, इसलिये जिसको निजशुद्धात्मभावनासे (स्वानुभवसे) उत्पन्न सुखामृतरसका स्वाद प्राप्त नहीं होता है, वह ही कर्मफलको अनुभवता (भोगता) है। याने जिसने पहले कर्म किये थे वही जीव कर्मफलको अनुभवता (भोगता) है। और पर्यायार्थिकनयसे एक कर्म करता है, अन्य कर्मका फल भोगता है, इसमें एकांत नहीं है। इस प्रकार भोक्तृत्वकी मुख्यतासे दूसरी गाथा पूर्ण हुअी।

इसका स्पष्टीकरण यह है कि, द्रव्यार्थिकनयसे जो जीव मनुष्यभवमें शुभाशुभ कर्म करता है वह ही जीव स्वर्गमें अथवा नरकादिमें उस कर्मका फल भोगता है। और पर्यायार्थिकनयसे उस ही भवकी अपेक्षासे बालकालमें किये हुअे कर्म का फल यौवनादि अन्य पर्यायमें भोगता है। और अति संक्षेपसे कहा जाय तो अंतर्मुहूर्तके बाद भोगता है। किन्तु भवांतरकी अपेक्षासे मनुष्यपर्यायमें किया हुआ कर्म देवादिपर्यायमें भोगता है। यह भावार्थ है।

इसतरह अनेकांतकी व्यवस्थापनारूपसे स्वपक्षकी सिद्धि करनेवाली दो गाथायें पूर्ण हुअी ॥ ३४९, ३५० ॥

अथैकांतेन य एव करोति स एव भुंक्ते, अथवान्यः करोत्यन्यो भुंक्ते इति यो वदति स मिथ्यादृष्टिरित्युपदिशति–

जो चेव कुणदि सो चेव वेदको जस्स एस सिद्धंतो ।
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ॥ ३५१ ॥

॥ आ. ख्या. ३४७ ॥

अण्णो करेदि अण्णो परिभुंजदि जस्स एस सिद्धंतो ।
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ॥ ३५२ ॥

॥ आ. ख्या. ३४८ ॥

जो चेव कुणदि सो चेव वेदको जस्स एस सिद्धंतो य एव जीवः शुभाशुभं कर्म करोति स एव चैकांतेन भुंक्ते न पुनरन्यः यस्यैष सिद्धांतः – आगमः । **सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो** स जीवो मिथ्यादृष्टिरनार्हतो ज्ञातव्यः । कथं मिथ्यादृष्टिः ? इति चेत्, यदैकांतेन नित्यकूटस्थोऽपरिणामी टंकोत्कीर्णः सांख्यमतवत् तदा येन मनुष्यभवेन नरकगतियोग्यं पापकर्मकृतं स्वर्गगतियोग्यं पुण्यकर्म कृतं तस्य जीवस्य नरके स्वर्गे वा गमनं न प्राप्नोति । तथा शुद्धा-

---

अब एकांतसे जो करता है वही भोक्ता है अथवा एकांतसे अन्य करता है और दूसरा अन्य भोक्ता है, इसतरह जो एकांतसे कहता है वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ– [**जो चेव कुणदि**] जो जीव करता है [**सो चेव वेदको**] वह ही भोक्ता है [**जस्स**] जिसका [**एस सिद्धंतो**] ऐसा एकांतसे सिद्धांत है [**सो जीवो**] वह जीव [**मिच्छादिट्ठी**] मिथ्यादृष्टि [**अणारिहदो**] अर्हंतके मतको न माननेवाला [**णादव्वो**] जानना चाहिये । [**अण्णो करेदि**] कोओी अन्य करता है [**अण्णो परिभुंजदि**] कोओी अन्य भोगता है [**जस्स**] जिसका [**एस सिद्धंतो**] ऐसा एकांतसे सिद्धांत है [**सो जीवो**] वह जीव [**मिच्छादिट्ठी**] मिथ्यादृष्टि [**अणारिहदो**] अर्हंतके मतको न माननेवाला है [**णादव्वो**] जानना चाहिये ।

टीकार्थ– जिसका एकांतसे ऐसा सिद्धांत है कि जो शुभ या अशुभ कर्म करता है वही उसके फलको भोगता है और दूसरा नहीं वह जीव मिथ्यादृष्टि, अर्हंतके मतको न माननेवाला है ऐसा जानना चाहिये ।

शंका– वह मिथ्यादृष्टि क्यों है ?

समाधान– यदि सांख्यमत के समान एकांतसे जीवको नित्यकूटस्थ टंकोत्कीर्ण अपरिणामी माना जाय तो जिस जीवने मनुष्यभवमें नरकगतियोग्य पापकर्म अथवा स्वर्गगतियोग्य पुण्यकर्म किया उस जीवका नरकमें अथवा स्वर्गमें गमन नहीं होगा । उसी तरह नित्य एकांत माननेसे शुद्धात्मानुष्ठानसे मोक्ष भी कैसे होगा ? अन्य (एक) कर्म करता है और अन्य

त्मानुष्ठानेन मोक्षश्च कुतः ? नित्यैकांतत्वादिति अण्णो करेदि अण्णो परिभुंजदि जस्स एस सिद्धंतो अन्यः करोति कर्म भुंक्ते चान्यः, यद्यैकांतेन ब्रूते सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो यदा येन मनुष्यभवे पुण्यकर्म कृतं पापकर्म कृतं मोक्षार्थं शुद्धात्मभावनानुष्ठानं च, तस्य पुण्यकर्मणो देवलोकेऽन्यः कोऽपि भोक्ता प्राप्नोति न च स जीवः। नरकेऽपि तथैव। केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपं मोक्षं चान्यः कोऽपि लभते। ततश्च पुण्यपापमोक्षानुष्ठानं वृथेति बौद्धमतदूषणं, इति गाथाद्वयेन नित्यैकांतक्षणिकैकांतमतं निराकृतं। एवं द्वितीयस्थले सूत्रचतुष्टयं गतं ॥ ३५१, ३५२ ॥

अथ यद्यपि शुद्धनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावत्वात् कर्मणामकर्ता जीवस्तथाप्यशुद्धनयेन रागादिभावकर्मणां स एव कर्ता न च पुद्गल इत्याख्याति। अथ गाथापंचकेन प्रत्येकं गाथापूर्वार्धेन सांख्यमतानुसारिशिष्यं प्रति पूर्वपक्ष उत्तरार्द्धेन परिहार इति ज्ञातव्यः–

मिच्छत्ता जदि पयडी मिच्छादिट्ठी करेदि अप्पाणं।
तह्मा अचेदणा दे पयडी णणु कारगो पत्तो ॥ ३५३ ॥

॥ आ. ख्या. ३२८ ॥

(दूसरा) उस कर्मका फल भोगता है ऐसा यदि एकांतसे कहता है तब जिसने मनुष्यभवमें पुण्यकर्म किया अथवा पापकर्म किया अथवा मोक्ष के लिये शुद्धात्मभावनाका अनुष्ठान किया उसके पुण्यकर्मका फल देवलोकमें अन्य दूसरा कोअी भोगेगा, वह ही जीव नहीं भोग सकता है। उसीतरह पापकर्मका फल नरकमें अन्य दूसरा कोअी भोगेगा, वह ही जीव नहीं भोग सकता है और अन्य-दूसरा कोअी केवलज्ञानादिव्यक्तिरूप मोक्ष को प्राप्त करेगा। इसलिए पुण्यपापमोक्षका अनुष्ठान वृथा ठहरेगा। इसतरह बौद्धमतको दूषण दिया है।

इसतरह इन दो गाथाओं के द्वारा नित्य एकांत और क्षणिक एकांत मतका निराकरण किया है इसतरह द्वितीयस्थलमें चार गाथायें पूर्ण हुअी ॥ ३५१, ३५२ ॥

अब, यद्यपि शुद्धनिश्चयनयसे शुद्धबुद्धएकस्वभाव होनेसे जीव कर्मोंका अकर्ता है तथापि अशुद्धनिश्चयनयसे रागादि भावकर्मोंका वह ही जीव कर्ता है और पुद्गलद्रव्य जीवके रागादि-भावकर्मोंका कर्ता नहीं है, ऐसा कहते हैं। यहां पांच गाथाओंमें से प्रत्येक गाथाके पूर्वार्धमें सांख्यमतानुसारिशिष्यका पूर्वपक्ष और प्रत्येक गाथाके उत्तरार्धमें उसका परिहार है, ऐसा जानना चाहिये–

गाथार्थ– [**जदि**] यदि [**मिच्छत्ता पयडी**] मोहनीयकर्मकी मिथ्यात्वप्रकृति [**अप्पाणं**] आत्माको [**मिच्छादिट्ठी**] मिथ्यादृष्टि [**करेदि**] करती है [**तह्मा**] तो इस मान्यतासे [**दे**] तेरे मतानुसार [**अचेदणा पयडी**] अचेतन प्रकृति [**णणु**] निश्चय ही [**कारगो पत्तो**] मिथ्यात्वभावकी कर्ता हो गयी। ऐसा बनता नहीं। [**जदि**] यदि [**सम्मत्ता पयडी**]

सम्मत्ता जदि पयडि सम्मादिट्ठी करेदि अप्पाणं ।
तह्मा अचेदणा दे पयडी णणु कारगो पत्तो ॥ ३५४ ॥
अहवा एसो जीवो पुग्गलदव्वस्स कुणदि मिच्छत्तं ।
तह्मा पुग्गलदव्वं मिच्छादिट्ठी ण पुण जीवो ॥ ३५५ ॥
॥ आ. ख्या. ३२९ ॥

अह जीवो पयडी विय पुग्गलदव्वं कुणंति मिच्छत्तं ।
तह्मा दोवि कदं तं दोह्णि वि भुंजंति तस्स फलं ॥ ३५६॥
॥ आ. ख्या. ३३० ॥

अह ण पयडी ण जीवो पुग्गलदव्वं करेदि मिच्छत्तं ।
तह्मा पुग्गलदव्वं मिच्छत्तं तं तु ण हु मिच्छा ॥ ३५७ ॥
॥ आ. ख्या. ३३१ ॥

मिच्छत्ता जदि पयडी मिच्छादिट्ठी करेदि अप्पाणं द्रव्यमिथ्यात्वप्रकृतिः कर्ता यद्यात्मानं स्वयमपरिणामिनं हठान्मिथ्यादृष्टिं, करोति **तह्मा अचेवणादे पयडी णणु कारगो पत्तो** तस्मात्कारणादचेतना तु या द्रव्यमिथ्यात्वप्रकृतिः सा तव मते नन्वहो भावमिथ्यात्वस्य कर्त्री प्राप्ता

मोहनीय कर्मकी सम्यक्त्वप्रकृति [**अप्पाणं**] आत्माको [**सम्मादिट्ठी**] सम्यग्दृष्टि [**करेदि**] करती है [**तह्मा**] तो इस मान्यतासे [**दे**] तेरे मतके अनुसार [**अचेदणा पयडी**] अचेतन प्रकृति [**णणु**] निश्चयसे [**कारगो पत्तो**] सम्यक्त्व भावकी कर्ता हो जाय। ऐसा भी नहीं बन सकता। [**अहवा**] अथवा [**एसो जीवो**] यह जीव [**पुग्गलदव्वस्स**] पुद्गलद्रव्यके [**मिच्छत्तं**] मिथ्यात्वको [**कुणदि**] करता है [**तह्मा**] तो ऐसा माननेसे [**पुग्गलदव्वं**] पुद्गलद्रव्य [**मिच्छादिट्ठी**] मिथ्यादृष्टि सिद्ध हुआ [**ण पुण जीवो**] और जीव मिथ्यादृष्टि नहीं ठहरा, ऐसा भी नहीं बन सकता। [**अह**] अथवा [**जीवो**] जीव [**य**] तथा [**पयडी वि**] प्रकृति भी [**पुग्गलदव्वं**] पुद्गलद्रव्यको [**मिच्छत्तं**] मिथ्यात्वरूप [**कुणंति**] करते हैं [**तह्मा**] तो ऐसा माननेसे [**दोवि कदंतं**] दोनोंके द्वारा किये हुवे [**तस्स फलं**] मिथ्यात्व फलको [**दोह्णि वि**] वे दोनों भी [**भुंजंति**] भोगेंगे ऐसा भी नहीं वन सकता। [**अह**] अथवा [**ण पयडी**] न तो प्रकृति ही और [**ण जीवो**] न जीव ही [**पुग्गलदव्वं**] पुद्गलद्रव्यको [**मिच्छत्तं**] मिथ्यात्वरूप [**करेदि**] करता है [**तह्मा**] तो ऐसा माननेसे [**पुग्गलदव्वं**] पुद्गलद्रव्यको [**मिच्छत्तं**] मिथ्यात्वभावका प्रसंग आयेगा [**तं तु ण हु मिच्छा**] क्या वह वास्तवमें मिथ्या नहीं है ?

टीकार्थ– यदि स्वयं परिणमन न करनेवाले आत्माको द्रव्यमिथ्यात्वप्रकृति हटसे मिथ्यादृष्टी करती है, तव हे जीव (निश्चयाभासी अथवा सांख्यमतानुसारी जो) तेरे मतसे तो

जीवश्चैकांतेनाकर्ता प्राप्तः। ततश्च कर्मबंधाभावः कर्मबंधाभावे संसाराभावः। स च प्रत्यक्षविरोधः। **सम्मत्ता जदि पयडी सम्मादिट्ठी करेदि अप्पाणं** सम्यक्त्वप्रकृतिः कर्त्री यद्यात्मानं स्वयमपरिणामिनं सम्यग्दृष्टिं करोति **तह्मा अचेदणा दे पयडी णणु कारगो पत्तो** तस्मात्कारणात् अचेतना प्रकृति दे तव मते नन्वहो कर्त्री प्राप्ता जीवश्चैकांतेन सम्यक्त्वपरिणामस्याकर्तेति ततश्च वेदकसम्यक्त्वाभावो, वेदकसम्यक्त्वाभावे क्षायिकसम्यक्त्वाभावः ततश्च मोक्षाभावः। स च प्रत्यक्षविरोधः आगमविरोधश्च। अत्राह शिष्यः— प्रकृतिस्तावत्कर्मविशेषः स च सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयरूपस्य त्रिविधदर्शनमोहस्य सम्यक्त्वाख्यः प्रथमविकल्पः स च कर्मविशेषः कथं सम्यक्त्वं भवति ? सम्यक्त्वं तु निर्विकारसदानंदैकलक्षणपरमात्मतत्त्वादिश्रद्धानरूपो मोक्षबीजहेतुर्भव्यजीवपरिणाम इति। परिहारमाह— सम्यक्त्वप्रकृतिस्तु कर्मविशेषो भवति तथापि यथा निर्विषीकृतं विषं मरणं न करोति तथा शुद्धात्माभिमुखपरिणामेन मंत्रस्थानीयविशुद्धिविशेषमात्रेण विनाशितमिथ्यात्वशक्तिः सन् क्षायोपशमिकादिलब्धिपंचकजनितप्रथमौपशमिकसम्यक्त्वानंतरोत्पन्नवेदकसम्यक्त्वस्वभावं तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं जीवपरिणामं न हंति तेन कारणेनोपचारेण

अचेतन द्रव्यमिथ्यात्व नाम की प्रकृति है वह ही भावमिथ्यात्व की कर्त्री हो गयी। जीव तो फिर सर्वथा अकर्ता ही होगा। इसलिये जीवको कर्मबंधका अभाव होगा और कर्मबंधके अभावमें संसारका अभाव होगा और यह तो प्रत्यक्ष से विरुद्ध है।

यदि स्वयं अपरिणमन करनेवाले आत्माको सम्यक्त्वप्रकृति कर्त्री होकर सम्यग्दृष्टी करती है तब हे भव्य ! यह अचेतन प्रकृति कर्त्री हो गयी और एकांतसे जीव सम्यक्त्व परिणामका अकर्ता हो गया और इससे वेदकसम्यक्त्वका अभाव हो जायेगा और वेदकसम्यक्त्वके अभावमें क्षायिक सम्यक्त्वका अभाव हो जायेगा और इससे मोक्षके अभावका प्रसंग आता है। और वह प्रत्यक्षसे विरुद्ध है और आगमसे भी विरुद्ध है।

शंका— शिष्य पूछता है— सम्यक्त्वप्रकृति तो कर्म का भेद है जो कि सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व के भेदसे ३ प्रकार के होनेवाले दर्शनमोहनीय का प्रथम भेद है। वह सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है ? क्योंकि सम्यक्त्व तो भव्य जीवका निर्विकारसदानंदएकलक्षणवाले परमात्मतत्त्व आदिका श्रद्धानरूप परिणाम है और मोक्षबीजहेतू है ?

समाधान— यद्यपि सम्यक्त्वप्रकृति कर्मका भेद है तथापि निर्विष किया हुआ विष जैसे मारनेवाला नहीं होता है वैसे ही मंत्रस्थानीय विशुद्धिविशेष—

अध्यात्मभाषासे	आगमभाषासे
शुद्धात्माके अभिमुख पारिणामके द्वारा मिथ्यात्वशक्तिका नाश होकर प्रथमोपशमसम्यक्त्व के बाद होनेवाला वेदकसम्यक्त्व	क्षायोपशमिकादि पांच लब्धिजनित प्रथमोपशम सम्यक्त्व के बाद होनेवाला वेदकसम्यक्त्व उत्पन्न होता है, उस तत्वार्थश्रद्धानरूप वेदक-

सम्यक्त्वहेतुत्वात्कर्मविशेषोऽपि सम्यक्त्वं भण्यते स च तीर्थंकरनामकर्मवत् परंपरया मुक्तिकारणं भवतीति नास्ति विरोधः **अहवा एसो जीवो पुग्गलदव्वस्य कुणदि मिच्छत्तं** अथवा पूर्वदूषणभयादेष प्रत्यक्षीभूतो जीवः, द्रव्यकर्मरूपस्य पुद्गलद्रव्यस्य शुद्धात्मतत्त्वादिषु विपरीताभिनिवेशजनकं भावमिथ्यात्वं करोति, न पुनः स्वयं भावमिथ्यात्वरूपेण परिणमति इति मतं **तह्मा पुग्गलदव्वं मिच्छादिट्ठी ण पुण जीवो** तर्ह्येकांतेन पुद्गलद्रव्यं मिथ्यादृष्टिर्न पुनर्जीवः। कर्मबंधः तस्यैव, संसारोऽपि तस्यैव, न च जीवस्य। स च प्रत्यक्षविरोध इति। **अह जीवो पयडी विय पुग्गलदव्वं कुणंति मिच्छत्तं** अथ पूर्वदूषणभयाज्जीवः प्रकृतिरपि पुद्गलद्रव्यं कर्मतापन्नं भावमिथ्यात्वं कुरुत इति मतं **तह्मा दोवि कदत्तं** तस्मात्कारणाज्जीवपुद्गलाभ्यामुपादानकारणभूताभ्यां कृतं तन्मिथ्यात्वं **दुण्णिवि भुंजंति तस्स फलं** तर्हि द्वौ जीवपुद्गलौ तस्य फलं भुंजाते ततश्चाचेतनायाः प्रकृतेरपि भोक्तृत्वं प्राप्तं स च प्रत्यक्षविरोध इति। **अह ण पयडी ण जीवो पुग्गलव्वं करेदि मिच्छत्तं** अथ मतं न प्रकृतिः करोति न च जीव एव एकांतेन। किं? पुद्गलद्रव्यं कर्मतापन्नं। कथंभूतं।

अध्यात्मभाषासे	आगमभाषासे
होता है जीवके उस परिणामका सम्यक्त्व-प्रकृति घात नहीं करती है	सम्यक्त्वका सम्यक्त्वप्रकृति घात नहीं करती है। इसलिये उपचारसे सम्यक्त्वका हेतु होनेसे कर्मविशेष है तो भी सम्यक्त्व कहा जाता है और वह नामकर्मके तीर्थंकर प्रकृतिकी तरह परंपरासे मुक्तिका कारण है इसमें विरोध नहीं है।

अथवा यदि पूर्वोक्त दूषण के भयसे यह प्रत्यक्षीभूत जीव द्रव्यकर्मरूप पुद्गलद्रव्यके शुद्धात्मतत्त्वादिकमें विपरीत अभिनिवेश पैदा करनेवाले भावमिथ्यात्व को करता है, लेकिन स्वयं भावमिथ्यात्वरूप परिणमन नहीं करता है, ऐसा माना जाय तो फिर एकांतसे वह पुद्गल-द्रव्य ही मिथ्यादृष्टी होगा और जीव मिथ्यादृष्टि नहीं होगा। पुद्गल द्रव्यकर्म में ही द्रव्यकर्मका बंध होगा और द्रव्यकर्मकाही संसार होगा और जीवको कर्मबंध और संसार–दुःख नहीं होगा। और यह तो प्रत्यक्षसे विरुद्ध है।

अब पूर्व दूषण के भयसे जीव और प्रकृति दोनों भी पुद्गलद्रव्यकर्मको भावमिथ्यात्वरूप करते हैं, ऐसा माना जाय तो इस कारणसे उपादानकारणभूत उन (जीव और पुद्गल) दोनोंके द्वारा वह भाव मिथ्यात्व किया है ऐसा होगा तो फिर उस मिथ्यात्वके फलको जीव और पुद्गल दोनों भी भोगें इससे अचेतनमय प्रकृति को भी भोक्तापना प्राप्त होगा। और वह तो प्रत्यक्षसे विरुद्ध है।

यदि ऐसा माना जाय कि एकांतसे न तो प्रकृति ही करती है और न अकेला जीव ही इस द्रव्यकर्मको भावमिथ्यात्वरूप करता है, तो फिर जो पहले सूत्रमें 'अहवा एसो जीवो

न करोति ? मिथ्यात्वं भावमिथ्यात्वरूपं । तह्मा पुग्गलदव्वं मिच्छत्तं तं तु ण हु मिच्छा तर्हि यदुक्तं पूर्वसूत्रे 'अहवा एसो जीवो पुग्गलदव्वस्स कुणदि मिच्छत्तं' तद्वचनं तु पुनः हु स्फुटं । किं मिथ्या न भवति ? अपि तु भवत्येव । किंच यद्यपि शुद्धनिश्चयेन शुद्धो जीवस्तथापि पर्यायार्थिकनयेन कथंचित्परिणामित्वे सत्यनादिकर्मोदयवशाद्रागाद्युपाधिपरिणामं गृह्णाति स्फटिकवत् । यदि पुनरेकांतेनापरिणामी भवति तदोपाधिपरिणामो न घटते । जपापुष्पोपाधिपरिणमनशक्तौ सत्यां स्फटिके जपापुष्पमुपाधिं जनयति न च काष्ठादौ । कस्मादिति चेत् तदुपाधिपरिणमनशक्त्यभावात् इति । एवं यदि द्रव्यमिथ्यात्वप्रकृतिः कर्त्री एकांतेन यदि भावमिथ्यात्वं करोति तदा जीवो भावमिथ्यात्वस्य कर्ता न भवति । भावमिथ्यात्वाभावे कर्मणो बंधाभावः ततश्च संसाराभावः स च प्रत्यक्षविरोधः । इत्यादि व्याख्यानरूपेण तृतीयस्थले गाथापचकं गतं ।। ३५३, ३५४, ३५५, ३५६, ३५७ ।।

अथ ज्ञानाज्ञानसुखदुःखादिकर्मैकांतेन कर्मैव करोति न चात्मेति सांख्यमतानुसारिणो वदंति तान्प्रति पुनरपि नयविभागेनात्मनः कथंचित्कर्तृत्वं व्यवस्थापयति – तत्र त्रयोदशगाथासु मध्ये कर्मैवैकांतेन कर्तृ भवति इति कथनमुख्यत्वेन 'कम्मेहिं दु अण्णाणी' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं । ततः परं सांख्यमतेप्येवं भणितमास्ते – इति संवाददर्शनार्थं ब्रह्मचर्यस्थापनमुख्यत्वेन 'पुरुसित्थि-

---

पुग्गलदव्वस्स कुणदि मिच्छत्तं' वह वचन निश्चितरूपसे क्या मिथ्या नहीं है? अपितु मिथ्या ही है।

इसका स्पष्टीकरण यह है कि यद्यपि शुद्धनिश्चयनयसे जीव शुद्ध है तथापि पर्यायार्थिकनयसे कथंचित् परिणामीपना होनेसे, अनादिकर्मोदयके वश होनेसे स्फटिक पाषाणके समान रागादिविभाव परिणाम को ग्रहण करता है। यदि एकांतसे पर्यायार्थिकनयसे जीव अपरिणामी है तो विभाव परिणाम घटित नहीं होता। स्फटिकपाषाणमें जपापुष्पकी उपाधिरूप परिणमन करनेकी शक्ति होनेसे स्फटिकमें जपापुष्पके सांनिध्यमें उपाधि उत्पन्न होती है, लेकिन काष्ठादिकमें उस ही जपापुष्पके सांनिध्यमें उपाधि उत्पन्न नहीं होती है। क्योंकि काष्ठादिकमें उस उपाधिरूप परिणमन करनेकी शक्ति नहीं है। इसप्रकार यदि द्रव्यमिथ्यात्वप्रकृति कर्त्री बनकर एकांतसे यदि भावमिथ्यात्वको करती है, तब जीव भावमिथ्यात्वका कर्ता नहीं होता है। भावमिथ्यात्वके अभावमें कर्मोंके बंधका अभाव होगा और इससे जीवके संसारके अभाव का प्रसंग आयेगा। और वह तो प्रत्यक्षसे विरुद्ध है। इत्यादिका कथन करनेवाली पांच गाथायें तीसरे स्थलमें पूर्ण हुअी ।। ३५३, ३५४, ३५५, ३५६, ३५७ ।।

अब, ज्ञान, अज्ञान, सुख, दुःख आदि कर्मको एकांतसे कर्म ही करता है, आत्मा नहीं करता है ऐसा सांख्यमतवाले कहते हैं। उन्हींके प्रति नयविभागसे यह सिद्ध करते हैं कि यह जीव कथंचित् कर्ता है। यहाँ १३ गाथाओंमें से 'कम्मेहिं दु अण्णाणी' इत्यादि पाठक्रमसे ४ गाथाओंमे कर्म ही एकांतसे कर्ता है इस कथनकी मुख्यता है। इसके आगे सांख्यमतमें भी ऐसा कहा गया है, इसप्रकार संवाद बताते हुअे ब्रह्मचर्यके स्थापनाकी मुख्यतासे 'पुरुसित्थि-

याहिलासी' इत्यादि गाथाद्वयं। अहिंसास्थापनमुख्यत्वेन 'जह्मा घादेदि परं' इत्यादि गाथाद्वयं। प्रकृतेरेव कर्तृत्वं न चात्मन इत्येकांतनिराकरणार्थं तस्यैव गाथाचतुष्टयस्यैव दूषणोपसंहाररूपेण 'एवं संखुवदेसं' इत्यादि गाथैका इति सूत्रपंचकसमुदायेन द्वितीयमंतरस्थलं। तदनंतरं आत्मा कर्म न करोति कर्मजनितभावांश्च किंत्वात्मानं करोतीत्येकगाथायां पूर्वपक्षो गाथात्रयेण परिहार इति समुदायेन 'अहवा मण्णसि मज्झं' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं। एवं चतुरंतराधिकारे स्थलत्रयेण समुदायपातनिका–

कम्मेहिं दु अण्णाणी किज्जदि णाणी तहेव कम्मेहिं।
कम्मेहिं सुवाविज्जदि जग्गाविज्जदि तहेव कम्मेहिं॥ ३५८॥
॥ आ. ख्या ३३२॥

कम्मेहिं सुहाविज्जइ दुक्खाविज्जइ तहेव कम्मेहिं।
कम्मेहिं य मिच्छत्तं णिज्जइ णिज्जइ असंजमं चेव॥ ३५९॥
॥ आ. ख्या. ३३३॥

याहिलासी' इत्यादि दो गाथायें हैं। अहिंसाके स्थापनाकी मुख्यतासे 'जह्मा घादेदि परं' इत्यादि दो गाथायें हैं। प्रकृति ही कर्ता है, आत्मा कर्ता नहीं है इस एकांतका निराकरण करनेके लिये उस ही ४ गाथाओंके ही दिखाये हुअे दूषणका ही कथन करनेवाली उपसंहाररूप 'एवं संखुवदेसं' इत्यादि एक गाथा है। इसतरह द्वितीय स्थलमें यह समुदायरूप ५ गाथायें हैं। तदनंतर आत्मा कर्म नहीं करता है और आत्मा कर्मजनित भावोंका कर्ता नहीं है किंतु आत्मा आत्माको करता है इस तरह एक गाथामें पूर्वपक्ष और ३ गाथाओंसे उसका परिहार किया है इसतरह समुदायरूप 'अहवा मण्णसि मज्झं' इत्यादि ४ गाथायें हैं। इस प्रकार चार अंतर अधिकार में ३ स्थलोंसे यह समुदाय पातनिका है।

गाथार्थ– जीव [कम्मेहिं दु] कर्मोंसे [अण्णाणी] अज्ञानी [किज्जइ] किया जाता है [तहेव] उसी प्रकार [कम्मेहिं] कर्मोंसे [णाणी] ज्ञानी होता है [कम्मेहिं] कर्मोंसे [सुवाविज्जइ] सुलाया जाता है [तहेव] उसी प्रकार [कम्मेहिं] कर्मोंसे ही [जग्गाविज्जइ] जगाया जाता है [कम्मेहिं] कर्मोंसे [सुहाविज्जइ] सुखी किया जाता है [तहेव] उसी प्रकार [कम्मेहिं] कर्मोंसे [दुक्खाविज्जइ] दुःखी किया जाता है [य] और [कम्मेहिं] कर्मोंसे [मिच्छत्तं] मिथ्यात्वको [णिज्जइ] प्राप्त किया जाता है [चेव] तथा [असंजमं] असंयमको [णिज्जइ] प्राप्त किया जाता है [कम्मेहिं] कर्मोंसे [उड्ढमहो चावि तिरियलोयं य भमाडिज्जइ] जीव उर्ध्वलोक, तथा अधोलोक और तिर्यग्लोकमें भ्रमाया जाता है [च कम्मेहिं एव] और कर्मोंसे ही [जित्तियं किंचि सुहासुहं किज्जइ] जो कुछ शुभाशुभ है वह किया जाता है [जह्मा] क्योंकि [कम्मं] कर्म [कुव्वइ] करता है [कम्मं]

कम्मेहिं भमाडिज्जइ उड्ढमहो चावि तिरियलोयं य ।
कम्मेहिं चेव किज्जइ सुहासुहं जित्तियं किंचि ।। ३६० ।।

।। आ. ख्या. ३३४ ।।

जह्मा कम्मं कुव्वइ कम्मं देई हरत्ति जं किंचि ।
तह्मा उ सव्वजीवा अकारया हुंति आवण्णा ।। ३६१ ।।

।। आ. ख्या. ३३५ ।।

पुरुसित्थियाहिलासी इत्थीकम्मं च पुरिसमहिलसइ ।
एसा आयरियपरंपरागया एरिसी दु सुई ।। ३६२ ।।

।। आ. ख्या. ३३६ ।।

तह्मा ण कोवि जीवो अबंभचारी उ तुह्ममुवदेसे ।
जह्मा कम्मं चेव हि कम्मं अहिलसइ इदि भणियं ।। ३६३ ।।

।। आ. ख्या. ३३७ ।।

कर्म [देई] देता है [त्ति जं किंचि] इस प्रकार जो कुछ है उसे कर्म ही [हरति] हरता है [तह्मा उ] इसलिये [सव्वजीवा] सभी जीव [अकारया आवण्णा हुंति] अकर्ता सिद्ध होते हैं।

[पुरिसित्थियाहिलासी] पुरुष वेदकर्म स्त्री की अभिलाषा करता है [च] और [इत्थीकम्मं] स्त्रीवेदकर्म [पुरिसमहिलसइ] पुरुषकी अभिलाषा करता है [एसा आयरियपरंपरागया] यह आचार्य परंपरासे आयी हुअी [एरिसी दु सुदी] ऐसी श्रुति है [तह्मा] इस मान्यतानुसार [तुह्ममुवदेसे दु] तुम्हारे उपदेशमें-मतमें [को वि जीवो] कोअी भी जीव [अबंभचारी] अब्रह्मचारी [ण] नहीं है [जह्मा] क्योंकि [कम्मं चेव हि] कर्म ही [कम्मं अहिलसइ] कर्मको चाहता है [इदि भणियं] ऐसा कहा है। [जह्मा] क्योंकि [परं घाएइ] दूसरेको मारता है [य] और [परेण घाइज्जए] परके द्वारा मारा जाता है [सा पयडी] वह प्रकृति ही है [एएणच्छेण किर] इसी अर्थमें [परघायणामित्ति भण्णइ] परघात नामा प्रकृति है ऐसा कहोगे [तह्मा] इस कारणसे [तुह्म उवदेसे] तुम्हारे उपदेशमें–मतमें [को वि जीवो] कोअी भी जीव [वघायओ] उपघात करनेवाला [ण अत्थि] नहीं है [जह्मा] क्योंकि [कम्मं चेवं हि] कर्म ही [कम्मं घाएदि] कर्मको मारता है [इदि भणियं] ऐसा कहा है। [एवं दु] इसप्रकार [जे समणा] जो श्रमण [एरिसं संखुवदेसं] ऐसा सांख्यमतका उपदेश [परूविंति] प्ररूपण करते हैं [तेसिं] उनके मतमें [पयडी] प्रकृति ही [कुव्वदि] करती है [य] और [सव्वे अप्पा] जीव सब [अकारया] अकारक है ऐसा सिद्ध होता है [अहवा] अथवा [मण्णसि] ऐसा मानो कि [मज्झं अप्पा] मेरा आत्मा [अप्पणो अप्पाणं] अपने आत्माको [कुणई] करता है [एवं मुणंतस्स तुम्हं]

जह्मा घाएइ परं परेण घाइज्जए य सा पयडी ।
एएणच्छेण किर भण्णइ परघायणामित्ति ।। ३६४ ।।

।। आ. ख्या. ३३८ ।।

तह्मा ण कोवि जीवो वघायओ अत्थि तुह्म उवदेसे ।
जह्मा कम्मं चेव हि कम्मं घाएदि इदि भणियं ।। ३६५ ।।

।। आ. ख्या. ३३९ ।।

एवं संखुवदेसं जे दु परूविंति एरिसं समणा ।
तेसिं पयडी कुव्वदि अप्पा य अकारया सव्वे ।। ३६६ ।।

।। आ. ख्या. ३४० ।।

अहवा मण्णसि मज्झं अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणदि ।
एसो मिच्छसहावो तुह्मं एवं मुणंतस्स ।। ३६७ ।।

।। आ. ख्या. ३४१ ।।

अप्पा णिच्चो असंखेज्जपदेसो देसिदो दु समयम्मि ।
णवि सो सक्कदि तत्तो हीणो अहियो व कादुं जे ।। ३६८ ।।

।। आ. ख्या. ३४२ ।।

जीवस्स जीवरूवं वित्थरदो जाण लोगमित्तं हि ।
तत्तो सो किं हीणो अहिओ व कदं भणसि दव्वं ।। ३६९ ।।

।। आ. ख्या. ३४३ ।।

ऐसा माननेवाला तेरा [**एसो मिच्छसहावो**] यह मिथ्यात्व भाव हैं क्योंकि [**समयम्मि दु**] परमागममें [**अप्पा**] आत्मा [**णिच्चो असंखिज्जपदेसो**] नित्य असंख्यांत प्रदेशवाला [**देसिदो**] कहा गया है [**जे सो**] जो वह आत्मा [**तत्तो हीणो य अहिओ**] उससे हीन अथवा अधिक [**कादुं ण वि सक्कदि**] नहीं किया जा सकता हैं [**वित्थरदो**] विस्तारकी अपेक्षा [**जीवस्स जीवरूवं**] जीवका जीवरूप [**हि**] निश्चयसे [**लोगमित्तं**] लोकमात्र [**जाण**] जानो [**तत्तो**] उससे [**सो**] आत्मा [**किं हीणो व अहिओ दव्वं कदं भणसि**] हीन अथवा अधिक द्रव्यमय किया ऐसा तूं कैसे कहता है ? [**अह**] अथवा [**जाणगो दु भावो**] ज्ञायक भाव तो [**णाणसहावेण**] ज्ञानस्वभावसे [**अत्थि**] स्थित है [**दे दि मदं**] आपका–तेरा ऐसा मत है [**तु**] तो [**तह्मा**] इससे [**अप्पा सयं**] आत्मा स्वयं [**अप्पणो अप्पयं**] अपने आत्माको [**णवि कुणदि**] नहीं करता है [**सम्मतमेव**] यह सिद्ध हुआ ।

अह जाणगो दु भावो णाणसहावेण अत्थि देदि मदं।
तह्मा णवि अप्पा अप्पयं तु सयमप्पणो कुणदि ॥ ३७० ॥

॥ आ. ख्या. ३४४ ॥

कर्मभिरज्ञानी क्रियते जीव एकांतेन तथैव च ज्ञानी क्रियते कर्मभिः। स्वापं निद्रां नीयते जागरणं तथैवेति प्रथमगाथा गता। कर्मभिः सुखीक्रियते दुःखीक्रियते तथैव च कर्मभिः। कर्मभिश्च मिथ्यात्वं नीयते तथैवासंयमं चैवैकांतेन द्वितीयगाथा गता। कर्मभिश्चैवोर्ध्वाधस्तिर्यग्लोकं च भ्राम्यते कर्मभिश्चैव क्रियते शुभाशुभं यदन्यदपि किंचिदिति तृतीयगाथा गता। यस्मादेवं भणितः कर्मैव करोति कर्मैव ददाति कर्मैव हरति यत्किंचिच्छुभाशुभं तस्मादेकांतेन सर्वे जीवा अकारकाः प्राप्ताः, ततश्च कर्माभावः कर्माभावे संसाराभावः स च प्रत्यक्षविरोधः – इति कर्मैकांतकर्तृत्वदूषणमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं। कर्मैव करोत्येकांतेनेति पूर्वोक्तमर्थं श्रीकुंदकुंदाचार्यदेवः सांख्यमतसंवादं दर्शयित्वा पुनरपि समर्थयंति। वयं ब्रूमो द्वेषेणैवं न। भवदीयमतेऽपि भणितमास्ते पुंवेदाख्यं कर्म कर्तृ स्त्रीवेदकर्माभिलाषं करोति, स्त्रीवेदाख्यं कर्म पुंवेदकर्माभिलषत्येकांतेन, न च जीवः। एवमाचार्यपरंपरायाः समागता श्रुतिरीदृशी। श्रुतिः कोऽर्थः? आगमो

टीकार्थ– एकांतसे यह जीव कर्मोंके द्वारा अज्ञानी किया जाता है, उसी प्रकार कर्मोंसे ही ज्ञानी किया जाता है, कर्मोंसे निद्रालु बना लिया जाता है, और कर्मोंसे जागरूक किया जाता है। यह प्रथम गाथाका अर्थ हुआ। और एकांतसे कर्मोंसे सुखी किया जाता है, वैसे कर्मोंसे ही दुःखी किया जाता है और एकांतसे कर्मोंसे मिथ्यात्वी किया जाता है और कर्मोंसे असंयत हो जाता है। यह दूसरी गाथाका अर्थ हुआ। एकांतसे कर्मोंसे ही उर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोकमें भ्रमाया जाता है और जो कुछ भी शुभाशुभ किया जाता है, वह कर्मोंसे ही होता है यह तीसरी गाथाका अर्थ हुआ। इसलिये ही कहा जाता है कि जो कुछ शुभाशुभ है वह कर्म ही करता है, कर्म ही देता है, कर्म ही हरण कर लेता है। इसलिये एकांतसे सभी जीव अकर्ता सिद्ध हो जाते हैं। और इसलिए कर्मके अभाव का प्रसंग आता है, कर्मका अभाव होनेसे संसारके अभावका प्रसंग आता है और वह तो प्रत्यक्षसे विरुद्ध है। इसतरह कर्मके एकांतकर्तृत्वके दूषण की मुख्यतासे कथन करनेवाली ४ गाथायें पूर्ण हुयी। "एकांतसे कर्म ही करते हैं," इस पूर्वोक्त अर्थको श्रीकुंदकुंदाचार्यदेव सांख्यमतके संवादको दिखाकर और भी समर्थन करते हैं। हमारा यह कथन द्वेषभावसे नहीं है। आपके मतमें भी कहा है कि, एकांतसे पुंवेद कहा जानेवाला कर्म स्त्रीवेदकर्मकी अभिलाषा करता है, स्त्रीवेद कहा जानेवाला कर्म पुंवेदकर्म की अभिलाषा करता है और जीव ऐसी अभिलाषा नहीं करता है। इसप्रकार आचार्य परंपरासे आयी हुयी ऐसी ही श्रुति है।

शंका– श्रुति याने क्या ?

भवतां सांख्यानामिति प्रथमगाथा गता। तथा सति किं दूषणं चेति? एवं न कोपि जीवोऽस्त्य-ब्रह्मचारी युष्माकमुपदेशे किंतु यथा शुद्धनिश्चयेन सर्वे जीवा ब्रह्मचारिणो भवंति तथैकांतेना-शुद्धनिश्चयेनापि ब्रह्मचारिण एव यस्मात्पुंवेदाख्यं कर्म स्त्रीवेदाख्यं कर्माभिलषति न च जीव इत्युक्तं पूर्वं स च प्रत्यक्षविरोधः। इत्यब्रह्मकथनरूपेण गाथाद्वयं गतं। यस्मात्कारणात् परं कर्म-स्वरूपं प्रकृतिः कर्त्री हंति परेण कर्मणा सा प्रकृतिरपि हन्यते न च जीवः। एतेनार्थेन किल जैनमते परघातनामकर्मेति भण्यते। परं किंतु जैनमते जीवो हिंसाभावेन परिणमति परघातनाम सहकारिकारणं भवति इति नास्ति विरोध इति प्रथमगाथा गता। तस्मात्किं दूषणं? शुद्धपारि-णामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन तावदपरिणामी हिंसापरिणामरहितो जीवो जैनागमे कथितः, कथं? इति चेत्, 'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया' इति वचनात्, व्यवहारेण तु परिणामीति। भवदीयमते पुनर्यथा शुद्धनयेन चाशुद्धनयेनाप्युपघातको हिंसकः कोऽपि नास्ति। कस्मात्? इति चेत्, यस्मादेकांतेन कर्म चैव हि स्फुटमन्यत् कर्म हंति, न चात्मेति पूर्वसूत्रे भणितमिति। एवं

समाधान– श्रुति याने आप सांख्यलोगोंका आगम। यह प्रथम गाथाका अर्थ हुआ।

शंका– इस प्रकारके मतमें क्या दोष है?

समाधान– इसप्रकार आपके मतमें (सांख्यमतमें–तुम्हारे मतमें) कोभी भी जीव अब्रह्मचारी नहीं ठहरता है। किन्तु जैसे शुद्धनिश्चयनयसे सभी जीव ब्रह्मचारी हैं उसही एकांतसे अशुद्धनिश्चयनयसे भी सभी जीव ब्रह्मचारी ही हैं क्योंकि पुंवेदाख्यकर्म स्त्रीवेदाख्यकर्म की अभिलाषा करता है जीव कुछ भी अभिलाषा नहीं करता है, ऐसा आपका (तुम्हारा) कहना है और वह तो प्रत्यक्षसे विरुद्ध है। इस प्रकार अब्रह्मचर्य का कथन करनेवाली दो गाथायें हैं।

जिस कारणसे प्रकृति अन्य (पर) कर्मका नाश करती है और किसी दूसरे कर्मके द्वारा उस प्रकृतिका भी नाश किया जाता है और जीव किसीको नहीं मारता है और दूसरोंके द्वारा जीवका भी नाश नहीं किया जाता है। इसही अर्थसे निश्चित जैनमतमें परघात नामकर्म ऐसा कहा जाता है। लेकिन जैनमतमें जीव हिंसाभावसे परिणमन करता है तो उस समय परघात नामकर्म सहकारी कारण है इसमें विरोध नहीं, यह प्रथम गाथाका अर्थ हुआ।

शंका– इससे क्या दोष आता है?

समाधान– शुद्धपरिणामिकपरमभावग्राहकवाले शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे जीव अपरिणामी है, हिंसा परिणामसे रहित है ऐसा जैन आगममें कहा गया है। कैसे कहोगे तो 'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया' ऐसा आगम वचन है लेकिन व्यवहारनयसे जीव परिणामी है, (हिंसा करनेवाला जीव हिंसाभावसे परिणत है।)

आपके मतमें (तुम्हारे सांख्यमतमें) जैसे शुद्धनयसे कोभी भी जीव हिंसक नहीं है वैसे अशुद्धनयसे भी कोभी भी जीव हिंसक–उपघात करनेवाला नहीं है। क्योंकि एकांतसे कर्म ही अन्य कर्मका नाश करता है आत्मा किसीका नाश नहीं करता है, इसतरह पहले सूत्रमें कहा गया है। इसप्रकार हिंसाके विचारकी मुख्यतासे कथन करनेवाली दो गाथायें पूर्ण हुभी।

हिंसाविचारमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं। **एवं संखुवदेसं जे दु परूविंति एरिसं समणा** एवं पूर्वोक्तं सांख्योपदेशमीदृशमेकांतरूपं ये केचन परमागमोक्तं नयविभागमजानंतः **समणा** श्रमणाभासाः द्रव्यलिंगिनः प्ररूपयंति कथयंति। **तेसिं पयडी कुव्वदि अप्पा य अकारया सव्वे** तेषां मतेनैकांतेन प्रकृतिः कर्त्री भवति। आत्मानश्च पुनरकारकाः सर्वे। ततश्च कर्तृत्वाभावे कर्माभावः कर्माभावे संसाराभावः। ततो मोक्षप्रसंगः स च प्रत्यक्षविरोध इति। जैनमते पुनः परस्परसापेक्षनिश्चय-व्यवहारनयद्वयेन सर्वं घटत इति नास्ति दोषः। एवं सांख्यमतसंवादं दर्शयित्वा जीवस्यैकांतेना-कर्तृत्वदूषणद्वारेण सूत्रपंचकं गतं। **अहवा मण्णसि मज्झं अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणदि** हे सांख्य ! अथवा मन्यसे त्वं पूर्वोक्ताकर्तृत्वदूषणभयान्मदीयमते जीवो ज्ञानी, ज्ञानित्वे च कर्मकर्तृत्वं न घटते यतः कारणादज्ञानिनां कर्मबंधो भवति। किंत्वात्मा कर्त्ता आत्मानं कर्मतापन्नं आत्मना करणभूतेन करोति ततः कारणादकर्तृत्वे दूषणं न भवति ? इति चेत् **एसो मिच्छसहावो तुह्मं एवं मुणंतस्स** अयमपि मिथ्यास्वभाव एवं मन्यमानस्य तव इति पूर्वपक्षगाथा गता। अथ सूत्रत्रयेण परिहारमाह। कस्मान्मिथ्यास्वभावः ? इति चेत्, **जे** यस्मात् कारणात् **अप्पा णिच्चासंखेज्जपदेसो देसिदो दु समयम्मि** आत्मा द्रव्यार्थिकनयेन नित्यस्तथा चासंख्यातप्रदेशो देशितः समये परमागमे तस्यात्मनः

इसप्रकार पूर्वोक्त सांख्यमतके उपदेशकी तरह परमागममें कहे हुअे नयविभागको न जाननेवाले जो कोअी श्रमणाभास-द्रव्यलिंगी एकांतमतका कथन करते हैं उनके मतसे एकांतसे प्रकृति कर्त्री है और सभी आत्माएँ अकर्ता है। और इससे कर्तृत्वके अभावमें कर्मका अभाव हो जानेका प्रसंग आता है और कर्मके अभावसे संसारके अभावका प्रसंग आता है। इससे सभी जीव मुक्त है, ऐसा प्रसंग आता है। और वह तो प्रत्यक्षके विरुद्ध है। और जैनमतमें परस्पर सापेक्ष निश्चयनय और व्यवहारनय इन दोनोंके द्वारा सब बाते घट जाती है, इसमें कोअी दोष नहीं है।

इस प्रकार सांख्यमतके संवादको दिखलाकर जीव को एकांतरूपसे अकर्ता माननेमें जो दूषण आता है उसका कथन पांच गाथाओंमें हुआ।

हे सांख्य ! अथवा पूर्वोक्त दूषणके भयसे यदि तू मानेगा कि, 'हमारे मतसे जीव ज्ञानी है और ज्ञानीपना होनेसे कर्मकर्तृत्व नहीं घटता है क्योंकि अज्ञानीको कर्मबंध होता है। किंतु आत्मा कर्ता है, वह आत्माको करता है और करणभूत आत्माके द्वारा ही करता है इसलिये हमारे यहाँ अकर्ताका दोष नहीं आता है ?' तो इसप्रकारकी तेरी यह मान्यता भी मिथ्यात्व-भाववाली ही है। इस प्रकार यह पूर्वपक्ष की गाथा हुअी। इसका उत्तर ३ गाथाओंमें देते हैं।

शंका— यह मिथ्यास्वभाव क्यों है ?

समाधान— द्रव्यार्थिक नयसे आत्मा नित्य है तथा असंख्यातप्रदेशवाला है, ऐसा परमागममें

शुद्धचैतन्यान्वयलक्षणद्रव्यत्वं तथैवासंख्यातप्रदेशत्वं च पूर्वमेव तिष्ठति **ण वि सो सक्कदि तत्तो हीणो अहियो य कादुं जे** तद्द्रव्यं प्रदेशत्वं च तत्प्रमाणादधिकं हीनं वा कर्तुं नायाति इति हेतोरात्मा आत्मानं करोतीति वचनं मिथ्येति। अथ मतं असंख्यातमानं जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन बहुभेदं तिष्ठति तेन कारणेन जघन्यमध्यमोत्कृष्टरूपेणासंख्यातप्रदेशत्वं जीवः करोति, तदपि न घटते यस्मात्कारणात् **जीवस्स जीवरूवं वित्थरदो जाण लोगमित्तं हि** जीवस्य जीवरूपं प्रदेशापेक्षया विस्तरतो महामत्स्यकाले लोकपूरणकाले वा अथवा जघन्यतः सूक्ष्मनिगोदकाले नानाप्रकारमध्यमावगाहशरीरग्रहणकाले वा प्रदीपवद्विस्तारोपसंहारवशेन लोकमात्रप्रदेशमेव जानीहि हि स्फुटं **तत्तो सो किं हीणो अहिओ व कदं भणसि दव्वं** तस्माल्लोकमात्रप्रदेशप्रमाणात्स जीवः किं हीनोऽधिको वा कृतो येन त्वं भणसि आत्मद्रव्यं कृतं किंतु नैवेति। **अह जाणगो दु भावो णाणसहावेण अत्थि देदि मदं** अथ हे शिष्य। ज्ञायको भावः पदार्थः आत्मा ज्ञानरूपेण पूर्वमेवास्तीति मतं। **सम्मतमेव तह्मा ण वि अप्पा अप्पयं तु सयमप्पणो कुणदि** यस्मान्निर्मलानंदैकज्ञानस्वभावशुद्धात्मा पूर्वमेवास्ति तस्मादात्मा कर्ता आत्मानं कर्मतापन्नं स्वयमेवात्मना कृत्वा नैव करोतीत्येकं दूषणं। द्वितीयं च निर्विकारपरमतत्त्वज्ञानी तु कर्ता न भवतीति पूर्वमेव भणितमास्ते। एवं पूर्वपक्षपरिहाररूपेण तृतीयांतरस्थले गाथाचतुष्टयं गतं।

कश्चिदाह जीवात्प्राणा भिन्ना अभिन्ना वा? यद्यभिन्नास्तदा यथा जीवस्य विनाशो

कहा गया है। उस आत्माका शुद्धचैतन्यअन्वयलक्षणवाला द्रव्यत्व तथा असंख्यातप्रदेशत्व पहलेसे ही रहता है, उस द्रव्यको और प्रदेशत्वको हीन अथवा अधिक करना शक्य नहीं है, यह कारण होनेसे "आत्मा आत्माको करता है," यह तेरा वचन मिथ्या है। यदि तूं कहेगा कि 'असंख्यातके परिमाणमें जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट आदि बहुत भेद हैं, इस कारणसे जीव जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट रूपसे असंख्यातप्रदेशत्वको करता है' तो वह मान्यता भी घटित नहीं होती है क्योंकि जीवका जो जीवरूप है वह प्रदेशोंकी अपेक्षासे जब विस्तारको प्राप्त हो जाता है, तब महामत्स्यके कालमें या लोकपूरणकालमें अथवा जघन्य रूपसे सूक्ष्मनिगोदियाके शरीरके कालमें या नानाप्रकारके मध्यम अवगाहनावाले शरीरोंके ग्रहण के कालमें दीपक के प्रकाश के समान विस्तार और उपसंहारके वशसे भी लोकमात्र (असंख्यातप्रदेशमात्र) प्रदेशवाला ही रहता है, ऐसा निश्चित जानो। ऐसी दशामें जीव लोकमात्र प्रदेशके परिमाणसे भी हीन या अधिक किया जा सकता है क्या जिससे कि तूं आत्मद्रव्यको किया गया हुआ कहता है? किन्तु आत्मा तो कभी हीन या अधिक नहीं होता है, लोकप्रमाण प्रदेशवाला ही रहता है।

हे शिष्य! ज्ञायक भाव अर्थात् पदार्थ जो आत्मा है वह ज्ञानरूपसे पहलेसे (सदासे) ही है, ऐसा मत है। क्योंकि निर्मलआनंदएकज्ञानस्वभाववाला शुद्धात्मा पहले से ही है, "इसलिये आत्मा स्वयं ही अपने द्वारा आत्माको करता है, यह एक दोष है क्यों कि आत्मा ऐसा करता ही नहीं है। और "निर्विकार परमतत्त्वज्ञानीको कर्ता मानना" यह दूसरा दोष है, क्योंकि परमतत्त्वज्ञानी तो कर्ता नहीं होता है, ऐसा पहले ही कहा गया है।

इस प्रकार पूर्वपक्षका परिहार करनेवाले तृतीय अंतरस्थलमें ४ गाथायें पूर्ण हुओ।

शंका— जीवसे प्राण भिन्न है अथवा अभिन्न है? यदि जीवसे प्राण अभिन्न है तो

नास्ति तथा प्राणानामपि विनाशो नास्ति कथं हिंसा? अथ भिन्नास्तर्हि जीवस्य प्राणघातेऽपि किमायातं? तत्रापि हिंसा नास्तीति। तन्न, कायादिप्राणैः सह कथंचिद्‌भेदाभेदः। कथं? इति चेत्, तप्तायःपिंडवद्वर्तमानकाले पृथक्त्वं कर्तुं नायाति तेन कारणेन व्यवहारेणाभेदः। निश्चयेन पुनर्मरणकाले कायादिप्राणा जीवेन सहैव न गच्छंति तेन कारणेन भेदः। यद्येकांतेन भेदो भवति तर्हि यथा परकीये काये छिद्यमाने भिद्यमानेऽपि दुःखं न भवति तथा स्वकीयकायेऽपि दुःखं न प्राप्नोति। न च तथा, प्रत्यक्षविरोधात्। ननु तथापि व्यवहारेण हिंसा जाता न तु निश्चयेनेति? सत्यमुक्तं भवता व्यवहारेण हिंसा तथा पापमपि नारकादिदुःखमपि व्यवहारेणेत्यस्माकं सम्मतमेव। तन्नारकादिदुःखं भवतामिष्टं चेत्तर्हि हिंसा कुरुत। भीतिरस्ति? इति चेत्, तर्हि त्यज्यतामिति। ततः स्थितमेतत्, एकांतेन सांख्यमतवदकर्ता न भवति किं तर्हि रागादिविकल्परहितसमाधिलक्षण-भेदज्ञानकाले कर्मणः कर्ता न भवति शेषकाले कर्तेति व्याख्यानमुख्यतयांतरस्थलत्रयेण चतुर्थस्थले त्रयोदश सूत्राणि गतानि॥ ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३६४, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३६९ ३७०॥

जीवका नाश नहीं होता है, वैसे प्राणोंका भी नाश नहीं है तो हिंसा कैसे? यदि जीवसे प्राण भिन्न है तो फिर जीवके प्राणोंका घात होनेपर भी क्या बिगाड़ हुआ? वहाँ भी हिंसा नहीं है।

समाधान– ऐसी बात नहीं है। क्योंकि कायादिरूप प्राणोंके साथ जीवका कथंचिद् भेद है और कथंचित् अभेद है।

शंका– प्राणोंके साथ जीवका कथंचित् भेद और कथंचित् अभेद कैसे है?

समाधान– जैसे तप्तायमान लोहेके गोलेमें से उसीसमय अग्निको पृथक् नहीं किया जा सकता है उसी प्रकार वर्तमानकालमें कायादि प्राणोंको जीवसे पृथक् नहीं किया जा सकता है इसलिये व्यवहारनयसे कायादि प्राणोंका जीवके साथ अभेद है। किन्तु निश्चयनयसे मरणकालमें कायादिप्राण जीवके साथ नहीं जाते हैं, इस कारणसे प्राणोंके साथ जीवका भेद भी है। यदि एकांतसे भेद ही माना जाय तो फिर दूसरेके शरीरके छिन्न भिन्न होनेपर भी अपने को दुःख नहीं होता है वैसे अपने शरीरके छिन्न भिन्न होनेपर भी दुःख नहीं प्राप्त होगा। किन्तु ऐसा तो नहीं है क्योंकि इसमें तो प्रत्यक्षसे विरोध आता है।

शंका– तथापि यह हिंसा व्यवहारसे हुयी, लेकिन निश्चयसे हिंसा नहीं हुयी?

समाधान– आपकी यह बात सत्य है, व्यवहारसे हिंसा होती है तथा पाप भी और नारकादिदुःख भी व्यवहारसे होते हैं। यह बात हमको मान्यही है। वे नारकादिदुःख तुम्हें इष्ट है तो हिंसा करो और यदि नारकादिक दुःख से तुम्हें डर लगता है तो हिंसा करना छोडो।

इससे यह सिद्ध हुआ कि, सांख्यमतके समान जैनमतमें आत्मा एकांतसे अकर्ता नहीं है, किन्तु रागादिविकल्परहित समाधि (स्वानुभूति) लक्षणवाले भेदज्ञानके कालमें आत्मा कर्मोंका कर्ता नहीं है, अवशेषकालमें कर्मोंका कर्ता है। इस प्रकारके कथनकी मुख्यतासे इस चौथे स्थलमें तीन अंतरस्थलोंके द्वारा १३ गाथायें पूर्ण हुयी॥ ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३६४, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३६९, ३७०॥

अथ यावत्कालं निजशुद्धात्मानमात्मत्वेन न जानाति, पंचेन्द्रियविषयादिकं परद्रव्यं च परत्वेन न जानात्ययं जीवस्तावत्कालं रागद्वेषाभ्यां परिणमतीति (आवेदयति)। अथवा बहिरंग-पंचेन्द्रियविषयत्यागसहकारित्वेनाविक्षिप्तचित्तभावनोत्पन्ननिर्विकारसुखामृतरसास्वादबलेन विषय-कर्मकायानां विघातं करोम्यहमित्यजानन् स्वसंवित्तिरहितकायक्लेशेनात्मानं दमयति। तस्य भेदज्ञानार्थं सिद्धान्तं प्रयच्छति—

दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेदणे विसए।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु विसएसु ॥ ३७१ ॥

॥ आ. ख्या. ३६६ ॥

दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेयणे कम्मे।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तम्मि कम्मह्मि ॥ ३७२ ॥

॥ आ. ख्या. ३६७ ॥

दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेदणे काये।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु कायेसु ॥ ३७३ ॥

॥ आ. ख्या. ३६८ ॥

अब, जबतक अपने शुद्धात्माको आत्मत्वसे नहीं जानता है और पांचों इंद्रियोंके विषय आदि परकीय द्रव्यको अपनेसे भिन्न पररूप नहीं जानता है तबतक यह जीव रागद्वेषसे परिणमन करता है। अथवा बाहर के पंचेंद्रियविषय के त्याग की सहायतासे शांतचित्तकी भावनासे उत्पन्न होनेवाले निर्विकार सुखमय अमृतरसास्वादके बलसे "मैं विषयकर्मकायोंका घात करता हूँ" यह न जाननेवाला स्वसंवित्तिसे (स्वानुभूतिसे) रहित कायक्लेशसे आत्माका दमन करता है, उसको भेदज्ञान होनेके लिये सिद्धांत कहते हैं—

गाथार्थ— [दंसणणाणचरित्तं] दर्शन ज्ञान चारित्र [अचेदणे विसए दु] अचेतन विषयमें तो [किंचि वि] कुछ भी [णत्थि] नहीं है [तह्मा] इसलिए [चेदयिदा] आत्मा [तेसु विसएसु] उन विषयोंमें [किं घादयदे] क्या घात करेगा? [दंसणणाणचरित्तं] दर्शन ज्ञान चारित्र [अचेदणे कम्मे दु] अचेतन कर्ममें तो [किंचि वि णत्थि] कुछ भी नहीं है [तह्मा] इसलिये [तम्मि कम्मह्मि] उस कर्ममें [चेदयिदा] आत्मा [किं घादयदे] क्या घात करेगा? [दंसणणाणचरित्तं] दर्शन ज्ञान चारित्र [अचेदणे काये दु] अचेतन कायमें तो [किंचि वि णत्थि] कुछ भी नहीं है [तह्मा] इसलिये [तेसु कायेसु] उन कायोंमें [चेदयिदा] आत्मा [किं घादयदे] क्या घात करेगा? [णाणस्स] ज्ञानका [य दंसणस्स] और दर्शनका [तहा चरित्तस्स] तथा चारित्रका [घादो] घात [भणिदो] कहा है [तह्मि पुग्गलदव्वे] उस पुद्गलद्रव्यमें तो [कोवि घादो] कुछ भी घात [ण वि णिद्दिट्ठो] निर्दिष्ट नहीं किया है। [जे केई] जो कुछ [जीवस्स गुणा] जीवके गुण हैं [ते] वे [खलु]

णाणस्स दंसणस्य य भणिदो घादो तहा चरित्तस्स ।
ण वि तह्मि को वि पुग्गलदव्वे घादो दु णिद्दिट्ठो ।। ३७४ ।।
।। आ. ख्या. ३६९ ।।

जीवस्स जे गुणा केई णत्थि ते खलु परेसु दव्वेसु ।
तह्मा सम्मादिट्ठिस्स णत्थि रागो दु विसएसु ।। ३७५ ।।
।। आ. ख्या. ३७० ।।

रागो दोसो मोहो जीवस्स दु जे अणण्णपरिणामा ।
एदेण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादी ।। ३७६ ।।
।। आ. ख्या. ३७१ ।।

दर्शनज्ञानचारित्रं किमपि नास्ति । केषु ? शब्दादिपंचेंद्रियविषयेषु ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मसु औदारिकादिपंचकायेषु । कथंभूतेषु ? अचेतनेषु । तस्मात्किं घातयते चेतयिता आत्मा तेषु जडस्वरूपविषयकर्मकायेषु ? न किमपि । किंच शब्दादिपंचेंद्रियविषयाभिलाषरूपो ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मबंधकारणभूतः कायममत्वरूपश्च योऽसौ मिथ्यात्वरागादिपरिणामो मनसि तिष्ठति तस्य घातः कर्तव्यः ते च शब्दादयो रागादीनां बहिरंगकारणभूतास्त्याज्याः इति भावार्थः । तस्यैव पूर्वोक्तगाथात्रयस्य विशेषविवरणं करोति – तद्यथा – **णाणस्स दंसणस्य य भणिदो घादो तहा चरित्तस्य** शब्दादिपंचेंद्रियाभिलाषरूपेण कायममत्वरूपेण वा ज्ञानावरणादिकर्मबंधनिमित्तमनंतानुबंध्यादिरागद्वेषरूपं यन्मनसि मिथ्याज्ञानं तिष्ठति तस्य मिथ्याज्ञानस्य निर्विकल्पसमाधिप्रहरणेन

निश्चयसे [**परेसु दव्वेसु**] परद्रव्योंमें [**णत्थि**] नहीं है [**तह्मा**] इसलिये [**सम्मादिट्ठीस्स**] सम्यग्दृष्टिके [**विसएसु**] विषयोंमे [**रागो दु**] राग ही [**णत्थि**] नहीं है [**दु**] लेकिन [**जे रागो दोसो मोहो**] जो राग, द्वेष, मोह है वे [**जीवस्स**] जीवके [**दु**] ही [**अणण्णपरिणामा**] अनन्य परिणाम हैं [**एदेण कारणेण**] इसी कारणसे [**रागादी**] रागादि [**सद्दादिसु**] शब्दादिकोंमें [**णत्थि**] नहीं हैं ।

टीकार्थ– अचेतन शब्दादिपंचेंद्रियविषयोंमें, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मोमें, औदारिकादि पांच शरीरोंमें दर्शनज्ञानचारित्र कुछ भी नहीं है । इसलिये चेतन आत्मा उन अचेतन द्रव्योंमें– विषयोंमे, कर्मोंमें, शरीरोंमें क्या घात करता है ? याने चेतन आत्मा उन अचेतनद्रव्योंका कुछ भी घात नहीं कर सकता है । इसका विशेष कथन यह है कि, शब्दादिपंचेंद्रियोंके विषयोंकी अभिलाषारूप, और ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मबंधके कारणभूत शरीरका ममत्वरूप, जो मिथ्यात्वरागादि परिणाम मनमें हैं उसका घात करना कर्तव्य है और रागादिभावोंके बहिरंगकारणभूत वे शब्दादिक होनेसे वे त्याज्य है । यह भावार्थ है ।

ऊपर कहे हुये तीन गाथाओंका विशेष विवरण करते हैं– शब्दादि पांचो इंद्रियोंके विषयों की अभिलाषा रूपसे और शरीर के साथ ममत्व रूपसे होनेवाला अनंतानुबंधि आदि राग द्वेष रूप जो मिथ्याज्ञान है, वह ज्ञानावरणादि कर्मोके बंधका निमित्त कारण है वही मिथ्याज्ञान जो मनमें रहता है उस मिथ्याज्ञान का निर्विकल्पसमाधिरूप हथियार से घात करना चाहिये ऐसा

सर्वज्ञैर्घातो भणितः न केवलं मिथ्याज्ञानस्य मिथ्यादर्शनस्य च। तथैव मिथ्यात्वचारित्रस्य च **ण वि तह्मि कोवि पुग्गलदव्वे घादो दु णिद्दिट्ठो** न च तत्राचेतने शब्दादिविषयकर्मकायरूपे पुद्‌गलद्रव्ये कोऽपि घातो निर्दिष्टः। किं च यथा घटाधारभूते प्रदीपे हते सति घटो हतो न भवति तथा रागादिनिमित्तभूते शब्दादिपंचेंद्रियविषये हतेऽपि सति मनसि गता रागादयो हता न भवंति न चान्यस्य घाते कृते सत्यन्यस्य घातो भवति। कस्मात्? अतिप्रसंगादिति भावः **जीवस्स जे गुणा केई णत्थि ते खलु परेसु दव्वेसु** यस्माज्जीवस्य ये केचन सम्यक्त्वादयो गुणास्ते परेषु परद्रव्येषु शब्दादिविषयेषु न संति खलु स्फुटं **तह्मा सम्मादिट्ठिस्स णत्थि रागो दु विसयेसु** तस्मात्कारणान्निर्विषयस्वशुद्धात्मभावनोत्थसुखतृप्तस्य सम्यग्दृष्टेर्विषयेषु रागो नास्तीति **रागो दोसो मोहो जीवस्स दु जे अणण्णपरिणामा** रागद्वेषमोहा यस्मादज्ञानिजीवस्याशुद्धनिश्चयेनाभिन्न-परिणामाः **एदेण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादी** तेन कारणेन शब्दादिमनोज्ञामनोज्ञपंचेंद्रिय विषयेष्वचेतनेषु यद्यप्यज्ञानी जीवो भ्रांतिज्ञानेन शब्दादिषु रागादीन् कल्पयत्यारोपयति तथापि शब्दादिषु रागादयो न संति। कस्मात्? शब्दादीनामचेतनत्वात्। ततः स्थितं तावदेव रागद्वेष-द्वयमुदयते वहिरात्मनो यावन्मनसि त्रिगुप्तिरूपं स्वसंवेदनज्ञानं नास्ति। इति गाथाषट्कं गतं ॥ ३७१, ३७२, ३७३, ३७४, ३७५, ३७६ ॥

सर्वज्ञ देवने कहा है, केवल मिथ्याज्ञानका ही घात करना है ऐसा नहीं, तो मिथ्यादर्शनका भी घात करना चाहिये। और मिथ्याचारित्रका भी घात करना चाहिये। और वहां अचेतन शब्दादिविषय, द्रव्यकर्मशरीररूप इन पुद्‌गलद्रव्योंमें कुछ भी घात निर्दिष्ट नहीं किया गया है। इसका स्पष्टीकरण यह है कि, जैसे घडेके आधारसे रहनेवाले प्रदीपका नाश होनेपर घडेका नाश नहीं होता है वैसे रागादिको निमित्तमात्र होनेवाले शब्दादिपंचेंद्रियविषयोंका घात होनेपर भी मनमें रहनेवाले रागादिओंका घात नहीं होता है क्योंकि अन्यका घात करनेपर अन्यका (अन्य दूसरे किसीका) घात नहीं होता है, ऐसा न्याय है अन्यथा फिर अतिप्रसंग दोष आता है कोअी भी व्यवस्था नहीं वनती। क्योंकि जीवके जो सम्यक्त्व आदि गुण है वे शब्दादिविषयक पर-द्रव्योंमें नहीं है, यह स्पष्ट है। इसलिये निर्विषय स्वशुद्धात्मभावनासे उत्पन्न होनेवाले, सुखमय तृप्तिवाले सम्यग्दृष्टि (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीवको विषयोंमें राग नहीं है। जिस कारणसे अशुद्धनिश्चयनयसे अज्ञानी जीवके रागद्वेषमोह अनन्य परिणाम है। इस कारणसे अचेतन शब्दादिमनोज्ञ–अमनोज्ञ पंचेंद्रियविषयोंमें यद्यपि अज्ञानी जीव भ्रांतिज्ञानसे (मिथ्याज्ञानसे) रागादिकोंकी कल्पना आरोपित करता है तथापि शब्दादिकोंमें रागादि नहीं हैं। क्योंकि शब्दादिकोंको अचेतनपना है।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, जवतक वहिरात्माके मनमें–चित्तमें (मिथ्यात्वसासादन-मिश्रगुणस्थानवर्ती जीवके चित्तमें) त्रिगुप्तिरूप स्वसंवेदनज्ञान (स्वानुभूति) नहीं है तवतक रागद्वेष उत्पन्न होते हैं।

इसतरह छह गाथाओंका अर्थ पूर्ण हुआ ॥ ३७१, ३७२, ३७३, ३७४, ३७५, ३७६ ॥

एवमेतदायति शब्दादींद्रियविषया अचेतनाश्चेतनरागाद्युत्पत्तौ निश्चयेन कारणं न भवंति–

अण्णदवियेण अण्णदवियस्स णो कीरदे गुणविघादो ।
तह्मा दु सव्वदव्वा उप्पज्जंते सहावेण ।। ३७७ ।।

।। आ. ख्या. ३७२ ।।

अण्णदविएण अण्णदवियस्स णो कीरदे गुणविघादो अन्यद्रव्येण बहिरंगनिमित्तभूतेन कुंभकारादिनाऽन्यद्रव्यस्योपादानरूपस्य मृत्तिकादेर्न क्रियते । स कः ? चेतनस्याचेतनरूपेण, अचेतनस्य चेतनरूपेण वा चेतनाचेतनगुणघातो विनाशो न क्रियते यस्मात् **तह्मा दु सव्वदव्वा उप्पज्जंते सहावेण** तस्मात्कारणात्मृत्तिकादिसर्वद्रव्याणि कर्तृणि घटादिरूपेण जायमानानि स्वकीयोपादानकारणेन मृत्तिकादिरूपेण जायंते न च कुंभकारादिबहिरंगनिमित्तरूपेण । कस्मात् ? इति चेत्, उपादानकारणसदृशं कार्यं भवतीति यस्मात् । तेन किं सिद्धं ? यद्यपि पंचेंद्रियविषयरूपेण शब्दादीनां बहिरंगनिमित्तभूतेनाज्ञानिजीवस्य रागादयो जायंते तथापि जीवस्वरूपा एव चेतना

पूर्वोक्त छह गाथाओंके कथनसे यह सिद्ध हुआ कि, शब्दादि-इंद्रिय-विषय अचेतन है, वे चेतनरूप रागादिकोंकी उत्पत्तिमें निश्चयसे कारण नहीं है–

गाथार्थ– [**अण्णदविएण**] अन्य द्रव्यसे [**अण्णदवियस्स**] अन्य द्रव्यके [**गुणविघादो**] गुणोंका विघात [**णो कीरदे**] नहीं किया जाता है [**तह्मा**] इसलिये [**सव्वदव्वा**] सभी द्रव्य [**सहावेण**] अपने अपने स्वभावसे [**उप्पज्जंते**] उत्पन्न होते हैं, परिणमन करते हैं ।

टीकार्थ– कुंभकारादि बहिरंगनिमित्तवाले अन्य द्रव्यसे उपादानरूप मिट्टीके अचेतन गुण का नाश नहीं किया जाता । क्योंकि चेतनके चेतनगुणका अचेतनसे अथवा अचेतनके अचेतनगुणका चेतनसे नाश नहीं किया जाता है । इसलिये मिट्टी आदिक सब द्रव्य जो घट आदि के रूप में उपजते हैं वे सब मृत्तिका आदि रूप अपने अपने उपादान कारण के रूपमें उत्पन्न होते हैं, बहिरंग निमित्तकारण कुंभकारादिके रूपमें नहीं उत्पन्न होते हैं, क्योंकि उपादान कारण के सदृश ही कार्य होता है, ऐसा अटल सिद्धांत है ।

शंका– उससे क्या सिद्ध हुआ ?

समाधान– यद्यपि पंचेंद्रियविषयरूप शब्दादिकों के बहिरंगनिमित्तमात्रसे अज्ञानी जीवके रागादि उत्पन्न होते हैं, तथापि वे रागादि चेतनमय जीवस्वरूप ही हैं वे रागादि शब्दादिरूप अचेतन नहीं हैं । यह भावार्थ है ।

न पुनः शब्दादिरूपा अचेतना भवंतीति भावार्थः । एवं कोऽपि प्राथमिकशिष्यश्चित्तस्थानुरागादीन्न जानाति बहिरंगशब्दादिविषयाणां रागादिनिमित्तानां घातं करोमीति निर्विकल्पसमाधिलक्षणभेदज्ञानाभावाच्चिंतयति तस्य संबोधनार्थं पूर्वं गाथाषट्केन सह सूत्रसप्तकं गतं ॥ ३७७ ॥

अथ व्यवहारेण कर्तृकर्मणोर्भेदः, निश्चयेन पुनर्यदेव कर्तृ तदेव कर्मेत्युपदिशति–

जह सिप्पिओ उ कम्मं कुव्वइ ण य सो उ तम्मओ होइ ।
तह जीवोवि य कम्मं कुव्वदि ण य तम्मओ होइ ॥ ३७८ ॥
॥ आ. ख्या. ३४९ ॥

जह सिप्पिओ उ करणेहिं कुव्वइ ण य सो उ तम्मओ होइ ।
तह जीवो करणेहिं कुव्वइ ण य तम्मओ होइ ॥ ३७९ ॥
॥ आ. ख्या. ३५० ॥

जह सिप्पिओ उ करणाणि गिह्लइ ण य सो उ तम्मओ होइ ।
तह जीवो करणाणि उ गिह्लइ ण य तम्मओ होइ ॥ ३८० ॥
॥ आ. ख्या. ३५१ ॥

इस प्रकार कोअी प्राथमिक शिष्य अपने चित्तमें रहनेवाले रागादिओंको नहीं जानता है, किन्तु " उन रागादिभावोंको निमित्तमात्र होनेवाले बहिरंगशब्दादिविषयोंका मैं घात करता हूँ, " इसतरह निर्विकल्पसमाधि (स्वानुभूति) लक्षणवाले भेदज्ञानके अभावमें चिंतन करता है, उसको समझानेके लिये पहले ६ गाथाओंके साथ यह सातवीं गाथा कही है ॥ ३७७ ॥

अब, व्यवहारसे कर्ता और कर्म का भेद है लेकिन निश्चयनयसे जो ही कर्ता है वह ही कर्म है, ऐसा उपदेश करते हैं–

गाथार्थ– [जह] जैसे [सिप्पिओ उ] शिल्पी-सुनार आदि कारीगर [**कम्मं**] आभूषणादिक कर्मको [कुव्वइ] करता है [दु] परन्तु [सो] वह [तम्मओ ण य होइ] आभूषणादिकोंसे तन्मय नहीं होता हैं [तह] वैसे [जीवो वि य] जीव भी [कम्मं] ज्ञानावरणादि कर्मको [कुव्वइ] करता है [य] तो भी [**ण तम्मओ होइ**] तन्मय नहीं होता । [जह] जैसे [सिप्पिओ दु] कारीगर-शिल्पी [करणेहिं] हथौडा आदि करणोंसे [कुव्वइ] कर्म करता है [उ] परन्तु [सो] वह [**तम्मओ ण होइ**] उनसे तन्मय नहीं होता [तह] वैसे [जीवो] जीव [करणेहिं] मनवचनकाय आदि करणोंसे [कुव्वइ] कर्मको करता है [य] तो भी [**तम्मओ ण होई**] उनसे तन्मय नहीं होता । [जह] जैसे [सिप्पिओ उ] शिल्पी [करणाणि] करणोंको [गिह्लइ] ग्रहण करता है [उ] तो भी [सो] वह [**तम्मओ ण होइ**] उनसे तन्मय नहीं होता है [तह] उसी तरह [**जीवो**] जीव [**करणाणि गिह्लइ**] मनवचन-

जह सिप्पिओ उ कम्मफलं भुंजदि ण य सो उ तम्मओ होइ ।
तह जीवो कम्मफलं भुंजइ ण य तम्मओ होइ ॥ ३८१ ॥
॥ आ. ख्या. ३५२ ॥

एवं ववहारस्स उ वत्तव्वं दंसणं समासेण ।
सुणु णिच्छयस्स वयणं परिणामकदं तु जं हवदि ॥ ३८२ ॥
॥ आ. ख्या. ३५३ ॥

जह सिप्पिओ दु चेट्ठं कुव्वदि हवदि य तहा अणण्णो सो ।
तह जीवो वि कम्मं कुव्वदि हवदि य अणण्णो सो ॥ ३८३ ॥
॥ आ. ख्या. ३५४ ॥

जह चेट्ठं कुव्वंतो दु सिप्पिओ णिच्च दुक्खिदो होदि ।
तत्तो सेय अणण्णो तह चेट्ठंतो दुही जीवो ॥ ३८४ ॥
॥ आ. ख्या. ३५५ ॥

यथा लोके शिल्पी तु सुवर्णकारादिः सुवर्णकुंडलादिकर्म करोति, कैः कृत्वा ? हस्तकुट्टकादिकरणैरूपकरणैः । हस्तकुट्टकाद्युपकरणानि च हस्तेन गृह्णाति, तथापि तैः सुवर्णकुंडलादि-

---

कायरूप करणोंको ग्रहण करता है [उ य] तो भी [तम्मओ ण होइ] उनसे तन्मय नहीं होता । [जह] जैसे [सिप्पिओ उ] शिल्पी [कम्मफलं] आभूषणादिक कर्मोंके फलको [भुंजदि] भोगता है [उ य] तो भी [सो] वह उनसे [तम्मओ ण होइ] तन्मय नहीं होता [तह] वैसे [जीवो] जीव [कम्मफलं] सुखदुःख आदि कर्मके फलको [भुंजइ] भोगता है [य] लेकिन [तम्मओ ण होइ] उनसे तन्मय नहीं होता । [एवं उ] इस तरहसे तो [ववहारस्स दंसणं] व्यवहारका मत [समासेण] संक्षेपसे [वत्तव्वं] कहने योग्य है [उ] और [जं] जो [णिच्छयस्स] निश्चयनयके [वयणं] वचन हैं वह [परिणामकदं] अपने परिणामोंसे किया हुआ [होदि] होता है [सुणु] उनको सुनो । [जह] जैसे [सिप्पिओ] शिल्पी [चेट्ठं] अपने परिणामरूप चेष्टा [कुव्वदि] करता है [दु य] लेकिन [सो] वह [तहा अणण्णो हवदि] उस चेष्टासे अनन्य है [तह] वैसे [जीवो वि य] जीव भी [कम्मं] अपने परिणामरूप चेष्टा रूप कर्मको [कुव्वदि] करता है [य] और [सो] वह [अणण्णो हवदि] उस भावकर्मसे अनन्य-तन्मय है। [जह] जैसे [सिप्पिओ] शिल्पी [चेट्ठं कुव्वंतो] चेष्टा करता-हुआ [णिच्च] नित्य [दुक्खिदो] दुःखी [होदि] होता है [तत्तो] उस दुःखसे [अणण्णो सेय] अनन्य-तन्मय है [तह] वैसे [जीवो] जीव [चेट्ठंतो दुही] चेष्टा करता हुआ दुःखी होता है ।

टीकार्थ– जैसे लोकमें सुनार आदि कारीगर सुवर्णके कुंडलादि आभूषणादि को बनाता है। किनसे बनाता है ? कि हथौडे आदि उपकरणोंके द्वारा बनाता है। उन हथौडे आदि

कर्महस्तकुट्टकादिकरणैरुपकरणैः सह तन्मयो न भवति। तथैवाज्ञानी जीवोऽपि निष्क्रियवीतराग-स्वसंवेदनज्ञानच्युतः सन् ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्माणि करोति। कैः कृत्वा? मनोवचनकाय-व्यापाररूपैः कर्मोत्पादककरणैरुपकरणैः तथैव च कर्मोदयवशान्मनोवचनकायव्यापाररूपाणि कर्मोत्पादककरणान्युपकरणानि संश्लेषरूपेण व्यवहारनयेन गृह्णाति तथापि ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्म-मनोवचनकायव्यापाररूपकर्मोत्पादकोपकरणैः सह टंकोत्कीर्णज्ञायकत्वेन भिन्नत्वात्तन्मयो न भवति। तथैव च स एव शिल्पी सुवर्णकारादिः सुवर्णकुंडलादिकर्मणि कृते सति यत्किमप्यशनपानादिकं मूल्यं लभते भुंक्ते च तथापि तेनाशनपानादिना सह तन्मयो न भवति। तथा जीवोऽपि शुभाशुभकर्मफलं बहिरंगेष्टानिष्टाशनपानादिरूपं निजशुद्धात्मभावनोत्थमनोहरानंदसुखास्वादमल-भमानो भुंक्ते न च तन्मयो भवति। **एवं ववहारस्स उ वत्तव्वं दंसणं समासेण** एवं पूर्वोक्तप्रकारेण गाथाचतुष्टयेन द्रव्यकर्मकर्तृत्वभोक्तृत्वरूपस्य व्यवहारनयस्य दर्शनं निदर्शनं दृष्टांत उदाहरणं हे शिष्य! वक्तव्यं व्याख्येयं कथनीयं समासेन संक्षेपेण **सुणु णिच्छयस्स वयणं परिणामकदं तु जं हवदि** इदं त्वग्रे वक्ष्यमाणं निश्चयस्य वचनं व्याख्यानं शृणु, यत् कथंभूतं? परिणामकृतं रागादिविकल्पेन निष्पादितमिति। **जह सिप्पिओ दु चेट्ठं कुव्वदि हवदि य तहा अणण्णो सो** यथा सुवर्णकारादिशिल्पी कुंडलादिकमेवमेवं करोमीति मनसि चेष्टां करोति इति तया चेष्टया सह भवति चानन्यस्तन्मयः **तह जीवोवि य कम्मं कुव्वदि हवदि य अणण्णो सो** तथैवाज्ञानी जीवः

उपकरणोंको अपने हाथसे ग्रहण करता है तो भी उन सोनेके कुंडलादि आभूषणोंसे और उपकर-णोंसे वह तन्मय नहीं होता है। उसी प्रकार अज्ञानी (मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानवर्ती) जीव भी निष्क्रिय वीतरागस्वसंवेदनज्ञानसे च्युत होकर ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मको करता है। किनसे करता है? कि कर्मोंको उत्पन्न करनेवाले मनवचनकायव्यापाररूप उपकरणोंसे करता है। और व्यवहारनयसे कर्मोदयवशसे कर्मोत्पादकरूप मनवचनकायव्यापाररूप उपकरणोंको संश्लेश-रूपसे ग्रहण करता है, तथापि ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मवाले मनवचनकायव्यापाररूप कर्मोत्पादक उपकरणोंके साथ तन्मय नहीं होता है क्यों कि वे टंकोत्कीर्णज्ञायकत्वस्वभावसे भिन्न है।

जैसे वह ही सुनार आदि कारीगर सुवर्णके कुंडल आदि बन जाने पर जो कुछ भी आहारपानादिक मूल्य प्राप्त करता है और उसे भोगता है, तो भी वह उस अन्नपानादिके साथ तन्मय नहीं होता हैं वैसे ही निजशुद्धात्मभावनासे उत्पन्न होनेवाला मनोहर सुख आस्वाद जिसको प्राप्त नहीं है ऐसा मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानवर्ती जीव बहिरंग इष्ट-अनिष्ट अन्नपानादि शुभाशुभकर्मफलको भोगता है तो भी उनसे तन्मय नहीं होता है। हे शिष्य! इस पूर्वोक्त रीति से चार गाथाओं से द्रव्यकर्मके कर्तापना भोक्तापना रूप जो व्यवहारनय है उसके दृष्टांतका संक्षेपसे कथन करना योग्य है और इसके आगे कहे जानेवाले अशुद्ध निश्चयनयके कथन को याने जो रागादिविकल्पसे उत्पन्न किये हुअे परिणामको सुनो। जैसे सुवर्णकार आदि कारीगर "मैं इस इस प्रकार सुवर्णके कुंडल आदि करता हूँ," इसी प्रकार मनमें चेष्टा करता है, उस चेष्टाके साथ वह अनन्य-तन्मय होता है। वैसे ही केवलज्ञानादिव्यक्तिरूप कार्यसमयसारका जो निर्विकल्पसमाधिरूप कारणसमयसारवाला साधक है उसका अभाव होनेसे अशुद्धनिश्चयनयवाले

केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्य योऽसौ साधको निर्विकल्पसमाधिरूपः कारणसमयसारस्तस्याभावे सत्यशुद्धनिश्चयनयेन अशुद्धोपादानरूपेण मिथ्यात्वरागादिरूपं भावकर्म करोति तेन भावकर्मणा सह भवति चानन्यः इति भावकर्मकर्तृत्वगाथा गता। **जह चेट्ठं कुव्वंतो दु सिप्पिओ णिच्चं दुःखितो होदि** यथा स एव शिल्पी कुंडलादिकमेवमेवं करोमीति मनसि चेष्टां कुर्वाणः सन् चित्तखेदेन नित्यं दुःखितो भवति। न केवलं दुःखितः। **तत्तो सेय अणण्णो** तस्माद्दुःखविकल्पादनुभवरूपेणानन्यश्च स स्यात् **तह चेट्ठंतो दुही जीवो** तथैवाज्ञानिजीवोऽपि विशुद्धज्ञानदर्शनादिव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्य साधको योऽसौ निश्चयरत्नत्रयात्मककारणसमयसारः, तस्यालाभे सुखदुःखभोक्तृत्वकाले हर्षविषादरूपां चेष्टां कुर्वाणः सन्मनसि दुःखितो भवति इति। तया हर्षविषादचेष्टया सह अशुद्धनिश्चयेनाशुद्धोपादानरूपेणानन्यश्च भवति इति। एवं पूर्वोक्तप्रकारेणाज्ञानिजीवो निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानात् च्युतो भूत्वा सुवर्णकारादिदृष्टांतेन व्यवहारनयेन द्रव्यकर्म करोति भुंक्ते च। तथैवाशुद्धनिश्चयेन भावकर्म चेति व्याख्यानमुख्यत्वेन षष्ठस्थले गाथासप्तकं गतं ॥ ३७८, ३७९, ३८०, ३८१, ३८२, ३८३, ३८४ ॥

अथ ज्ञानं ज्ञेयं वस्तु जानाति तथापि धवलकुड्ये श्वेतमृत्तिकावन्निश्चयेन तन्मयं न भवति इति निश्चयमुख्यत्वेन गाथापंचकं। यथैव च श्वेतमृत्तिका कुड्यं श्वेतं करोतीति व्यवह्रियते तथैव च ज्ञानं ज्ञेयं वस्तु जानात्येवं व्यवहारोऽस्तीति व्यवहारमुख्यत्वेन गाथापंचकं। एवं समुदायेन दशकं। तद्यथा–

अशुद्ध उपादानरूपसे अज्ञानी (मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानवर्ती) जीव मिथ्यात्वरागादिरूप भावकर्म को करता है और उस भावकर्मके साथ अनन्य-तन्मय है। इस प्रकार भावकर्मकर्तृत्वका कथन करनेवाली गाथा का अर्थ हुआ। जैसे "मैं इस इसप्रकार कुंडलादिक करता हूँ," इस प्रकार मनमें चेष्टा करनेवाला वह ही कारीगर चित्त खेदसे (आकुलतासे) नित्य दुःखी होता है, केवल दुःखी ही नहीं होता है तो वह उस दुःखविकल्पसे अनुभवरूपसे अनन्य-तन्मय होता है। वैसे ही विशुद्धज्ञानदर्शनादिव्यक्तिरूप कार्यसमयसारका साधक जो निर्विकल्पसमाधि–निश्चयरत्नत्रयात्मककारणसमयसार है, उसके अभावसे सुखदुःखभोक्तृत्वकालमें हर्षविषादरूप चेष्टा करनेवाला अज्ञानी (मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानवर्ती) जीव मनमें दुःखी होता है। अशुद्धनिश्चयनयवाले अशुद्ध उपादानरूपसे उस हर्षविषादचेष्टाके साथ अनन्य–तन्मय है। इस पूर्वोक्त प्रकारसे अज्ञानी जीव निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानसे च्युत होकर सुनार आदि कारीगर के दृष्टांतके समान व्यवहारनयसे द्रव्यकर्म करता है और भोगता है। उसी प्रकार अशुद्धनिश्चयनयसे भावकर्म करता है और भोगता है, इस कथन की मुख्यतासे छट्ठे स्थलमें सात गाथायें पूर्ण हुई ॥ ३७८, ३७९, ३८०, ३८१, ३८२, ३८३, ३८४ ॥

अब, ज्ञान ज्ञेय वस्तुको जानता है तथापि निश्चयनयसे उससे तन्मय नहीं होता जैसे सफेत मिट्टी दीवालको सफेद करती है तो भी श्वेतमिट्टी दीवालसे तन्मय नहीं होती है। इस प्रकार निश्चयनयकी मुख्यतासे ५ गाथाये हैं। इसके आगे जैसे व्यवहारनयसे श्वेतमिट्टी दीवालको सफेद करती है ऐसा व्यवहार होता है वैसे ही ज्ञान ज्ञेयवस्तु को व्यवहारनयसे जानता है,

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि ।
तह जाणओ दु ण परस्स जाणओ जाणओ सो दु ॥ ३८५ ॥
॥ आ. ख्या. ३५६ ॥

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि ।
तह पासओ दु ण परस्स पासओ पासओ सो दु ॥ ३८६ ॥
॥ आ. ख्या. ३५७ ॥

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया दु सा होदि ।
तह संजओ दु ण परस्स संजओ संजओ सो दु ॥ ३८७ ॥
॥ आ. ख्या. ३५८ ॥

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया दु सा होदि ।
तह दंसणं दु ण परस्स दंसणं दंसणं तं तु ॥ ३८८ ॥
॥ आ. ख्या. ३५९ ॥

ऐसा व्यवहार है इस तरह व्यवहारकी मुख्यतासे ५ गाथायें है। इसप्रकार दोनों मिलकर १० गाथायें है। जैसे–

गाथार्थ– [जह] जैसे [सेडिया दु] सफेदी करनेवाली कलई-खड़ियामिट्टी तो [परस्स] परकी– दीवाल आदिकी [ण] नहीं है [सेडिया] सफेदी तो [सा य सेडिया होइ] स्वयं सफेदी ही है [तह] उसी प्रकार [जाणओ दु] ज्ञायक आत्मा तो [परस्स] परद्रव्यका [ण] नहीं है [जाणओ सो दु जाणओ] ज्ञायक आत्मा तो स्वयं ज्ञायक ही है [जह] जैसे [सेडिया दु] सफेदी-खड़ियामिट्टी तो [परस्स] परकी-दीवाल आदिकी [ण] नहीं है [सेडिया] सफेदी तो [सा य सेडिया होइ] स्वयं सफेदी ही है [तह] वैसे [पासओ दु] देखनेवाला आत्मा [परस्स ण] परका नहीं है [पासओ सो दु पासओ] दर्शक तो स्वयं दर्शक ही है। [जह] जैसे [सेडिया दु] सफेदी तो [परस्स ण] परकी-दीवाल आदि की नहीं है [सेडिया] सफेदी तो [सा य सेडिया होइ] स्वयं सफेदी ही है [तह] वैसे [संजओ] संयममय आत्मा [परस्स ण] परद्रव्यका नहीं है [संजओ सो दु संजओ] संयत तो स्वयं संयत ही है। [जह] जैसे [सेडिया दु] सफेदी तो [परस्स ण] परकी-दीवाल आदिकी नहीं है [सेडिया] सफेदी तो [सा य सेडिया होदि] स्वयं सफेदी ही है [तह] वैसे [दंसणं दु] श्रद्धान [परस्स ण] पर पदार्थका नहीं है [दंसणं तं तु दंसणं] श्रद्धान तो स्वयं श्रद्धान ही है। [एवं तु] इस प्रकार [णाणदंसणचरित्ते] ज्ञान दर्शन चारित्रमें [णिच्छयणयस्स] निश्चयनयका [भासियं] कथन है [से य] और उस संबंधमें [समासेण ववहारणयस्स वत्तव्वं सुणु] संक्षेपसे व्यवहारनयका कथन सुनो। [जह] जैसे [सेडिया]

एवं तु णिच्छयणयस्स भासियं णाणदंसणचरित्ते ।
सुणु ववहारणयस्स य वत्तव्वं से समासेण ।। ३८९ ।।

।। आ. ख्या. ३६० ।।

जह परदव्वं सेडिदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं जाणइ णाया वि सयेण भावेण ।। ३९० ।।

।। आ. ख्या. ३६१ ।।

जह परदव्वं सेडिदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं पस्सइ जीवोवि सयेण भावेण ।। ३९१ ।।

।। आ. ख्या. ३६२ ।।

जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं विजहइ णायावि सयेण भावेण ।। ३९२ ।।

।। आ. ख्या. ३६३ ।।

जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं सद्दहइ सम्मदिट्ठी सहावेण ।। ३९३ ।।

।। आ. ख्या. ३६४ ।।

सफेदी-खड़िया [अप्पणो सहावेण हु] अपने स्वभावसेही [परदव्वं] परद्रव्य—दीवाल आदिको [सेडदि] सफेद करती है [तह] उसी प्रकार [णाया वि] ज्ञाता आत्मा भी [सएण भावेण] अपने स्वभावसे [परदव्वं] परद्रव्यको [जाणइ] जानता है। [जह] जैसे [सेडिया] सफेदी-खड़िया [अप्पणो सहावेण हु] अपने स्वभावसे ही [परदव्वं] परद्रव्य-दीवाल आदि को [सेडदि] सफेद करती है [तह] उसी प्रकार [जीवो वि] जीव भी [सएण भावेण] अपने स्वभावसे [परदव्वं] परद्रव्यको [पस्सइ] देखता है। [जह] जैसे [सेडिया] सफेदी-खडिया [अप्पणो सहावेण हु] अपने स्वभावसे ही [परदव्वं] परद्रव्य-दीवाल आदि को [सेडदि] सफेद करती है [तह] उसी प्रकार [णाया वि] ज्ञाता आत्मा भी [सएण भावेण] अपने स्वभावसे [परदव्य] परद्रव्यको [विजहइ] त्यागता है। [जह] जैसे [सेडिया] सफेदी-खड़िया [अप्पणो सहावेण हु] अपने स्वभावसे ही [परदव्वं] परद्रव्य-दीवाल आदि को [सेडदि] सफेद करती है [तह] उसी प्रकार [सम्मादिट्ठी] सम्यग्दृष्टि [सहावेण] अपने स्वभावसे [परदव्वं] परद्रव्यका [सद्दहइ] श्रद्धान करता है। [एवं दु] इस प्रकार [णाणदंसणचरित्ते] ज्ञान, दर्शन और चारित्रमें [ववहारस्स] व्यवहारनयका [विणिच्छओ] निर्णय कहा है [अण्णेसु पज्जएसु वि एमेव णादव्वो] अन्य पर्यायोंमें भी ऐसा ही जानना चाहिये।

एवं ववहारस्स दु विणिच्छओ णाणदंसणचरित्ते ।
भणिओ अण्णेसु वि पज्जएसु एमेव णायव्वो ।। ३९४ ।।

।। आ. ख्या. ३६५ ।।

यथा लोके श्वेतिका श्वेतमृत्तिका खटिका परद्रव्यस्य कुड्यादेर्निश्चयेन श्वेतमृत्तिका न भवति तन्मयो न भवति बहिर्भागे तिष्ठतीत्यर्थः । तर्हि किं भवति ? श्वेतिका श्वेतिकैव स्वस्वरूपे तिष्टतीत्यर्थः । तथा श्वेतमृतिका दृष्टांतेन ज्ञानात्मा घटपटादिज्ञेयपदार्थस्य निश्चयेन ज्ञायको न भवति तन्मयो न भवतीत्यर्थः । तर्हि किं भवति ? ज्ञायको ज्ञायक एव स्वस्वरूपे तिष्ठतीत्यर्थः । एवं ब्रह्माद्वैतवादिवत् – ज्ञानं ज्ञेयरूपेण न परिणमति – इति कथनमुख्यत्वेन गाथा गता । तथा तेनैव च श्वेतमृतिकादृष्टांतेन दर्शक आत्मा दृश्यस्य घटादिपदार्थस्य निश्चयेन दर्शको न भवति, तन्मयो न भवतीत्यर्थः । तर्हि किं भवति ? दर्शको दर्शक एव स्वस्वरूपेण तिष्ठतीत्यर्थः । एवं सत्तावलोकनदर्शनं दृश्यपदार्थरूपेण न परिणमतीति कथनमुख्यत्वेन गाथा गता । तथा तेनैव श्वेतमृतिकादृष्टांतेन संयत आत्मा त्याज्यस्य परिग्रहादेः परद्रव्यस्य निश्चयेन

टीकार्थ– जैसे लोकमें सफेद खडिया मिट्टी निश्चयनयसे परद्रव्य-दीवालादिकी नहीं होती है- दीवालके साथ तन्मय नहीं होती है वाह्य भागपर रहती है, ऐसा भावार्थ है।

शंका– फिर क्या होता है ?

समाधान– सफेद खडिया तो सफेद खडिया ही है अर्थात् सफेद खडिया अपने स्वरूपमें रहती है। उस सफेद खडिया मिट्टी के दृष्टांतके समान निश्चयनयसे ज्ञानमय आत्मा घटपटादि ज्ञेय पदार्थका ज्ञायक नहीं होता अर्थात् उन ज्ञेय पदार्थोंसे तन्मय नहीं होता है।

शंका– तो फिर क्या होता है ?

समाधान– ज्ञायक तो ज्ञायक ही रहता है, अर्थात् ज्ञायक अपने स्व स्वरूपमें रहता है।

इस तरह ब्रह्म-अद्वैतवादियोंके समान ज्ञान ज्ञेय के रूपसे परिणमन नहीं करता है, इस कथनकी मुख्यतासे प्रथम गाथा पूर्ण हुअी।

इसी प्रकार उसही सफेद खडिया मिट्टीके दृष्टांतके समान निश्चयनयसे दर्शक आत्मा घट, वस्त्र आदि दृश्य पदार्थका दर्शक नहीं है अर्थात् उन पदार्थोंके साथ तन्मय नहीं है।

शंका– तो क्या होता है ?

समाधान– दर्शक तो दर्शक ही रहता है, अर्थात् दर्शक अपने स्वस्वरूपमें रहता है।

इसप्रकार सत्तावलोकनदर्शन (दर्शनोपयोग-निराकारोपयोग) दृश्यमान पदार्थके रूपसे परिणमन नहीं करता है, इस कथनकी मुख्यतासे दूसरी गाथा हुअी।

त्याजको न भवति, तन्मयो न भवतीत्यर्थः। तर्हि किं भवति? संयतः संयत एव निर्विकार-निजमनोहरानंदलक्षणस्वस्वरूपे तिष्ठतीत्यर्थः। एवं वीतरागचारित्रमुख्यत्वेन गाथा गता। तथैव च तेनैव श्वेतमृत्तिकादृष्टांतेन तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं सम्यग्दर्शनं श्रद्धेयस्य बहिर्भूतजीवादिपदार्थस्य निश्चयनयेनश्रद्धानकारकं, न भवति, तन्मयं न भवतीत्यर्थः। तर्हि किं भवति? सम्यग्दर्शनं सम्यग्दर्शनमेव स्वस्वरूपे तिष्ठतीत्यर्थः। एवं तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणसम्यग्दर्शनमुख्यत्वेन गाथा गता। **एवं तु णिच्छयणयस्स भासिदं णाणदंसणचरित्ते** एवं पूर्वोक्तगाथाचतुष्टयेन भाषितं व्याख्यानं कृतं। कस्य संबंधित्वेन? निश्चयनयस्य। क्व विषये? ज्ञानदर्शनचारित्रे **सुणु ववहारणयस्स य वत्तव्वं** इदानीं हे शिष्य! श्रृणु समाकर्णय। किं? वक्तव्यं व्याख्यानं। कस्य संबंधित्वेन? व्यवहारनयस्य। कस्य संबंधिव्यवहारः? **से** तस्य पूर्वोक्तज्ञानदर्शनचारित्रत्रयस्य। केन? **समासेण** संक्षेपेण। इति निश्चयनयेन व्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रपंचकं गतं। गा/

इस प्रकार उसही सफेद खडिया मिट्टीके दृष्टांतके समान निश्चयनयसे संयत आत्मा त्याग करने योग्य परिग्रहादि परद्रव्योंका त्याजक-त्यागी नहीं है अर्थात् उन पदार्थोंके (त्याग के) साथ तन्मय नहीं है।

शंका– तो क्या होता है?

समाधान– संयत संयत ही है, अर्थात् संयत निर्विकार निजमनोहरआनंदलक्षणवाले स्वस्वरूपमें रहता है।

इसप्रकार वीतराग (स्वानुभव-शुद्धोपयोग) चारित्रकी मुख्यतासे गाथा पूर्ण हुओ।

और इस प्रकार उस ही सफेद खड़िया मिट्टीके दृष्टांतके समान निश्चयनयसे तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन बाह्य जीवादि श्रद्धेयपदार्थका श्रद्धान कारक नहीं है अर्थात् जीवादि श्रद्धेय पदार्थोंके साथ तन्मय नहीं है।

शंका– तो क्या होता है?

समाधान– सम्यग्दर्शन सम्यग्दर्शन ही है, अर्थात् सम्यग्दर्शन अपने स्वस्वरूपमें रहता है।

इसप्रकार तत्वार्थश्रद्धानलक्षणवाले सम्यग्दर्शनकी मुख्यतासे गाथा पूर्ण हुओ।

इसप्रकार पूर्वोक्त ४ गाथाओंसे ज्ञान, दर्शन और चारित्रके विषयमें निश्चयनयसे कथन किया गया। अब हे शिष्य! उन ज्ञान, दर्शन और चारित्रके विषयमें व्यवहारनयका संक्षेपसे कथन सुनो। इसतरह निश्चयनयके व्याख्यान की मुख्यतासे ५ गाथायें पूर्ण हुओ।

अब व्यवहारनयका कथन किया जाता है–

जैसे लोकमें जिस प्रकारसे सफेद-खड़िया मिट्टी दीवाल आदि परद्रव्यको व्यवहारनयसे सफेद करती है और वह सफेद ख़ड़िया दीवाल आदि परद्रव्यके साथ तन्मय नहीं होती है।

अथ व्यवहारः कथ्यते – यथा येन प्रकारेण लोके परद्रव्यं कुड्यादिकं व्यवहारनयेन श्वेतयते श्वेतं करोति न च कुड्यादिपरद्रव्येण सह तन्मयी भवति। का कर्त्री ? श्वेतिका श्वेतमृत्तिका खटिका। केन कृत्वा श्वेतं करोति ? स्वकीयश्वेतभावेन। तथा तेन श्वेतमृत्तिकादृष्टांतेन परद्रव्यं घटादिकं ज्ञेयं वस्तु व्यवहारेण जानाति न च परद्रव्येण सह तन्मयो भवति। कोऽसौ कर्ता ? ज्ञातात्मा। केन जानाति ? स्वकीयज्ञानभावेनेति प्रथमगाथा गता। तथैव च तेनैव श्वेतमृत्तिकादृष्टांतेन घटादिकं दृश्यं परद्रव्यं व्यवहारेण पश्यति न च परद्रव्येण सह तन्मयो भवति। कोऽसौ ? ज्ञातात्मा। केन पश्यति ? स्वकीयदर्शनभावेनेति द्वितीयगाथा गता। तथैव च तेनैव श्वेतमृत्तिकादृष्टांतेन परिग्रहादिकं परद्रव्यं व्यवहारेण विरमति त्यजति न च परद्रव्येण सह तन्मयो भवति। स कः कर्ता ? ज्ञातात्मा। केन कृत्वा त्यजति ? स्वकीयनिर्विकल्पसमाधिपरिणामेनेति तृतीयगाथा गता। तथैव च तेनैव श्वेतमृत्तिकादृष्टांतेन जीवादिकं परद्रव्यं व्यवहारेण श्रद्दधाति न च परद्रव्येण सह तन्मयो

शंका– वह किस साधनसे सफेद करती है ?

समाधान– वह सफेद खड़िया अपने श्वेत स्वभावसे परद्रव्यको सफेद करती है।

उस सफेद मिट्टी के दृष्टांत के समान ज्ञाता आत्मा घट वस्त्र आदि परद्रव्यवाले ज्ञेय पदार्थको व्यवहारसे जानता है और वह ज्ञाता आत्मा उस परद्रव्यरूप ज्ञेय पदार्थके साथ तन्मय नहीं होता है।

शंका– वह ज्ञाता आत्मा किस साधनसे जानता है ?

समाधान– वह ज्ञाता आत्मा अपने ज्ञानभावसे ज्ञेयको जानता है। यह प्रथम गाथाका अर्थ हुआ।

तथा उस ही सफेद खड़िया मिट्टीके दृष्टांतके समान ज्ञाता आत्मा व्यवहारनयसे घटादिक दृश्य परद्रव्यको देखता है और उन दृश्य परद्रव्यके साथ तन्मय नहीं होता है।

शंका– वह ज्ञाता आत्मा किस साधनसे देखता है ?

समाधान– वह ज्ञाता आत्मा अपने दर्शन (निराकारोपयोग) भावसे परद्रव्यको देखता है। यह दूसरी गाथा पूर्ण हुई।

तथा उस ही सफेद खड़िया मिट्टीके दृष्टांतके समान ज्ञाता आत्मा व्यवहारनयसे परिग्रहादिक परद्रव्यको त्यागता है और उन परद्रव्योंके साथ तन्मय नहीं होता है।

शंका– कैसे त्यागता है ?

समाधान– ज्ञाता आत्मा अपने निर्विकल्पसमाधि (स्वानुभूति) परिणामसे परद्रव्यको त्यागता है। यह तीसरी गाथा का अर्थ हुआ।

भवति। स कः कर्ता ? सम्यग्दृष्टिः। केन कृत्वा ? स्वकीयश्रद्धानपरिणामेनेति चतुर्थगाथा गता। एसो ववहारस्स दु विणिच्छियो णाणदंसणचरित्ते भणिदो भणितः कथितः। कोऽसौ। कर्मतापन्नः ? एष प्रत्यक्षीभूतः पूर्वोक्तगाथाचतुष्टयेन निर्दिष्टो विनिश्चयः व्यवहारानुयायी निश्चय इत्यर्थः। कस्य संबंधी ? व्यवहारनयस्य। क्व विषये ? ज्ञानदर्शनचारित्रत्रये अण्णेसु वि पज्जएसु एमेव णादव्वो इदमोदनादिकं मया भुक्तं, इदमहिविषकंटकादिकं त्यक्तं, इदं गृहादिकं कृतं, तत्सर्वं व्यवहारेण। निश्चयेन पुनः स्वकीयरागादिपरिणाम एव कृतो भुक्तश्च। एवमित्याद्यन्येष्वपि पर्यायेषु निश्चयव्यवहारनयविभागो ज्ञातव्य इति। किंच यदि व्यवहारेण परद्रव्यं जानाति तर्हि निश्चयेन सर्वज्ञो न भवतीति पूर्वपक्षे परिहारमाह – यथा स्वकीयसुखादिकं तन्मयो भूत्वा जानाति तथा वहिर्द्रव्यं न जानाति तेन कारणेन व्यवहारः। यदि पुनः परकीयसुखादिकमात्मसुखादिवत्तन्मयो भूत्वा जानाति तर्हि यथा स्वकीयसुखसंवेदने सुखी भवति तथा परकीयसुखदुःखसंवेदनकाले सुखी दुःखी च प्राप्नोति न च तथा। यद्यपि स्वकीयसुखसंवेदनापेक्षया

तथा उस ही सफेद खड़िया मिट्टीके दृष्टांतके समान सम्यग्दृष्टि (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव व्यवहारनयसे जीवादिक परद्रव्यका श्रद्धान करता है, और उन जीवादिक परद्रव्योंके साथ तन्मय नहीं होता है।

शंका– वह कैसे श्रद्धान करता है ?

समाधान– वह सम्यग्दृष्टि अपने श्रद्धान परिणामसे श्रद्धान करता है। यह चौथी गाथाका अर्थ हुआ।

इस तरह पूर्वोक्त चार गाथाओंसे निर्दिष्ट ज्ञान, दर्शन और चारित्रके विषयमें यह प्रत्यक्षीभूत व्यवहारनयका निर्णय–विनिश्चय कहा गया है। वह व्यवहारानुयायि निश्चय है।

इस तरह यह भात मेरे द्वारा खाया गया, यह सांप का विष, कंटकादिकका त्याग मेरे द्वारा किया गया, यह घर-मकान आदि मेरे द्वारा बनाया गया, इत्यादि सब कथन व्यवहारनयका है और निश्चयनयसे इन पदार्थों के बारेमें अपने रागादि परिणाम ही अपनेद्वारा किये गये हैं और भोगे गये हैं।

इस प्रकार अन्य पर्यायोंमें भी निश्चयनय और व्यवहारनयका नयविभाग जानना चाहिये। इसका विशेष स्पष्टीकरण–

शंका– यदि व्यवहारनयसे परद्रव्यको जानता है तो फिर निश्चयनयसे सर्वज्ञ नहीं है (सर्वज्ञता काल्पनिक है) ?

समाधान– जैसे आत्मा अपने सुखदुःखादिक को तन्मय होकर जानता है वैसे बाह्य परद्रव्यको तन्मय होकर नहीं जानता है इसलिये उस जाननेको व्यवहार कहते हैं। यदि दूसरेके सुखादिक को भी यह आत्मा अपने सुखादिके समान तन्मय होकर जानता है तो फिर जैसे अपने स्वकीयसंवेदन में सुखी होता है उसी तरह दूसरेके सुख दुःख के संवेदन कालमें भी सुखी दुःखी होनेका प्रसंग आयेगा, लेकिन वैसा नहीं है। यद्यपि सर्वज्ञका ज्ञान स्वकीय सुख

निश्चयः परकीयसुखसंवेदनापेक्षया व्यवहारस्तथापि छद्मस्थजनापेक्षया सोऽपि निश्चय एवेति। ननु सौगतोऽपि ब्रूते व्यवहारेण सर्वज्ञः तस्य किमिति दूषणं दीयते भवद्भिरिति ? तत्र परिहारमाह–सौगतादिमते यथा निश्चयापेक्षया व्यवहारो मृषा, तथा व्यवहारेणापि व्यवहारो न सत्य इति, जैनमते पुनर्व्यवहारनयो यद्यपि निश्चयापेक्षया मृषा तथापि व्यवहाररूपेण सत्य इति। यदि पुनर्लोकव्यवहारेणापि सत्यो न भवति तर्हि सर्वोऽपि लोकव्यवहारो मिथ्या भवति तथा सत्यतिप्रसंगः। एवमात्मा व्यवहारेण परद्रव्यं जानाति पश्यति निश्चयेन पुनः स्वद्रव्यमेवेति। तत एतदायाति ग्रामारामादि सर्वं खल्विदं ब्रह्म ज्ञेयवस्तु किमपि नास्ति यद् ब्रह्माद्वैतवादिनो वदंति तन्निषिद्धं। यद्यपि सौगतो वदति ज्ञानमेव घटपटादिज्ञेयाकारेण परिणमति न च ज्ञानाद्भिन्नं ज्ञेयं किमप्यस्ति तदपि निराकृतं। कथं ? इति चेत्, यदि ज्ञानं ज्ञेयरूपेण परिणमति तदा ज्ञानाभावः प्राप्नोति यदि वा ज्ञेयं ज्ञानरूपेण परिणमति तदा ज्ञेयाभावस्तथा सत्युभयशून्यत्वं, स च प्रत्यक्षविरोधः। एवं निश्चयव्यवहारव्याख्यानमुख्यतया समुदायेन सप्तमस्थले सूत्रदशकं गतं ॥ ३८५, ३८६, ३८७, ३८८, ३८९, ३९०, ३९१, ३९२, ३९३, ३९४ ॥

संवेदनकी अपेक्षा तो निश्चय है और परकीय सुख संवेदनकी अपेक्षासे वह व्यवहार है तथापि छद्मस्थकी अपेक्षासे दूसरेके सुखको जाननेवाला सर्वज्ञका ज्ञान भी निश्चय ही याने वास्तविक ही है– (सर्वज्ञता काल्पनिक नहीं है)

शंका– बौद्धमतके अनुयायी भी कहते हैं कि, सौगत भगवान व्यवहारसे सर्वज्ञ है तो फिर आप उनको क्यों दूषण देते हो ?

समाधान– सौगतादिमतमें जैसे निश्चयनयकी अपेक्षा से व्यवहार असत्य है उसी तरह व्यवहारनयकी अपेक्षासे भी व्यवहार सत्य नहीं है। और जैनमतमें यद्यपि निश्चयनयकी अपेक्षासे व्यवहारनय असत्य है तथापि व्यवहारनयकी अपेक्षासे व्यवहारनय सत्य है। और यदि लोकव्यवहारकी अपेक्षासे भी व्यवहार सत्य नहीं है तो फिर सब लोकव्यवहार भी मिथ्या ठहरेगा, और वैसा होनेसे-माननेसे अतिप्रसंग दोष आता है।

इसलिये आत्मा व्यवहारनयसे परद्रव्यको जानता है, देखता है और निश्चयनयसे स्व द्रव्यको ही जानता है, देखता है इसलिये यह सिद्ध हुआ कि– ग्राम, बगीचा आदि सब भी ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्मके शिवाय कुछ भी ज्ञेय वस्तु नहीं है ऐसा जो ब्रह्म-अद्वैतवादी कहते हैं, वह निषिद्ध है।

यद्यपि सौगत कहता है कि, 'ज्ञान ही घट, वस्त्र आदि ज्ञेयोंके आकारसे परिणत होता है और ज्ञानसे भिन्न कुछ भी ज्ञेय नहीं है,' उस सौगत मतका भी निराकरण किया गया।

शंका– कैसे ?

समाधान– यदि ज्ञान ज्ञेयरूपसे परिणमन करता है, तो ज्ञानके अभावका प्रसंग आता है अथवा यदि ज्ञेय ज्ञानरूपसे परिणमन करता है, तो ज्ञेयके अभाव का प्रसंग आता है। ऐसा होनेपर ज्ञान और ज्ञेय दोनों के अभावका प्रसंग आता है। और वह तो प्रत्यक्षसे विरुद्ध है।

इस प्रकार निश्चयनयके और व्यवहारनयके कथनकी मुख्यतासे सप्तमस्थलमें समुदाय रूपसे १० गाथायें पूर्ण हुयी ॥ ३८५, ३८६, ३८७, ३८८, ३८९, ३९०, ३९१, ३९२, ३९३, ३९४ ॥

अथ निश्चयप्रतिक्रमणनिश्चयप्रत्याख्याननिश्चयालोचनपरिणतस्तपोधन एवाभेदेन निश्चयचारित्रं भवतीत्युपदिशति–

कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं ।
तत्तो णियत्तदे अप्पयं तु जो सो पडिक्कमणं ॥ ३९५ ॥
॥ आ. ख्या. ३८३ ॥

कम्मं जं सुहमसुहं जह्मि य भावह्मि वज्झदि भविस्सं ।
तत्तो णियत्तदे जो सो पच्चक्खाणं हवे चेदा ॥ ३९६ ॥
॥ आ. ख्या. ३८४ ॥

जं सुहमसुहमुदिण्णं संपडि य अणेय वित्थरविसेसं ।
तं दोसं जो चेयइ सो खलु आलोयणं चेया ॥ ३९७ ॥
॥ आ. ख्या. ३८५ ॥

णिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वइ णिच्चं पि जो पडिक्कमदि ।
णिच्चं आलोचेविय सो हु चरित्तं हवदि चेदा ॥ ३९८ ॥
॥ आ. ख्या. ३८६ ॥

अब, निश्चयप्रतिक्रमण, निश्चयप्रत्याख्यान और निश्चयआलोचना से परिणत हुआ स्वयं तपोधन ही अभेदनयसे (निश्चयनयसे) निश्चय चारित्र है, ऐसा कथन करते हैं ।

गाथार्थ– [पुव्वकयं] अतीत कालमें किये हुये [जं] जो [सुहासुहं] शुभ अशुभ [अणेयवित्थरविसेसं] ज्ञानावरण आदि अनेक प्रकार विस्तार विशेषरूप [कम्मं] कर्म हैं [तत्तो] उनसे [जो तु] जो चेतयिता [अप्पयं] अपनेको [णियत्तए] निवृत्त करता है [सो] वह आत्मा [पडिक्कमणं] प्रतिक्रमण हैं [य] और [जं भविस्सं] जो आगामी कालमें [सुहमसुहं] शुभ तथा अशुभ [कम्मं] कर्म [जह्मि भावह्मि] जिस भावके होनेपर [वज्झइ] बंधे [तत्तो] उस भाव से [जो चेदा] जो ज्ञानी [णियत्तदे] निवृत्त होता है [सो] वह आत्मा [पच्चक्खाणं हवे] प्रत्याख्यान है। [य] और [जं संपडि] जो वर्तमान कालमें [सुहमसुहं] शुभ अशुभ कर्म [अणेयवित्थरविसेसं] अनेक प्रकार ज्ञानावरण आदि विस्ताररूप विशेषोंको लिये हुये [उदिण्णं] उदय आया है [तं दोसं] उस दोषको [जो चेदा] जो ज्ञानी [चेयइ] जानकर उसका स्वामीपना, कर्तापना छोडता है [सो खलु] वह आत्मा निश्चयसे [आलोयणं] आलोचना स्वरूप है [य] इस तरह [जो] जो [चेदा] आत्मा [णिच्चं पडिक्कमदि] नित्य प्रतिक्रमण करता है, [णिच्चं पच्चक्खाणं] नित्य प्रत्याख्यान करता है [पि] और [णिच्चं आलोचेदि] नित्य आलोचना करता है [सो हु] वह आत्मा वास्तवमें [चरित्तं हवदि] चारित्र स्वरूप है ।

णियत्तदे अप्पयं तु जो इहलोकपरलोकाकांक्षारूपख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षालक्षणनिदानबंधादिसमस्तपरद्रव्यालंबनोत्पन्नशुभाशुभसंकल्पविकल्परहिते शून्ये विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभवनरूपाभेदरत्नत्रयात्मके निर्विकल्पपरमसमाधिसमुत्पन्नवीतरागसहजपरमानंदस्वभावसुखरसास्वदसमरसीभावपरिणामेन सालंबने भरितावस्थे केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्योत्पादके कारणसमयसारे स्थित्वा यः कर्ता, आत्मानं कर्मतापन्नं निवर्तयति । कस्मात्सकाशात् ? **कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयविस्थरविसेसं तत्तो** शुभाशुभमूलोत्तरप्रकृतिभेदेनानेकविस्तरविस्तीर्णं पूर्वकृतं यत्कर्म तस्मात् **सो पडिक्कमणं** स पुरुष एवाभेदनयेन निश्चयप्रतिक्रमणं भवतीत्यर्थः **णियत्तदे जो** अनंतज्ञानादिस्वरूपात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभूतिस्वरूपाभेदरत्नत्रयलक्षणे परमसामायिके स्थित्वा यः कर्ता आत्मानं निवर्तयति । कस्मात्सकाशात् ? **कम्मं जं सुहमसुहं जह्मि य भावह्मि वज्झदि भविस्सं तत्तो** शुभाशुभानेकविस्तरविस्तीर्णं भविष्यत्कर्म यस्मिन्मिथ्यात्वादिरागादिपरिणामे सति वध्यते तस्मात् **सो पच्चक्खाणं हवे चेदा** स एवं गुणविशिष्टस्तपोधन एवाभेदनयेन निश्चयप्रत्याख्यानं

टीकार्थ– जो आत्मा, इसलोक और परलोक की आकांक्षामय ख्याति, पूजा, लाभ, दृष्ट, श्रुत और अनुभूत भोगोंकी आकांक्षारूप निदान बंधादि समस्त परद्रव्यके आलंबनसे उत्पन्न होनेवाले शुभाशुभसंकल्पविकल्प से रहित (शून्य) तथा विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाववाले आत्मतत्त्व की सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और अनुभवरूप अभेदरत्नत्रयमय निर्विकल्पपरमसमाधिसे उत्पन्न होनेवाले वीतरागसहजपरमानंदस्वभावसुखरसास्वादसमरसीभावपरिणामके आलंबनसे भरितावस्थामें केवलज्ञानादिअनंतचतुष्टय की व्यक्तिरूप कार्यसमयसारको उत्पन्न करनेवाले कारणसमयसारमें स्थिर होकर आत्माको दूर करता है।

शंका– आत्माको किससे दूर करता है ?

समाधान– जो आत्माको शुभाशुभमूलोत्तरप्रकृति के भेदसे अनेक विस्ताररूप विस्तीर्ण पूर्वकृत कर्मोंसे दूर करता है । वह पुरुष ही अभेदनयसे निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप होता है।

जो अनंतज्ञानादिस्वरूप-आत्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभूतिस्वरूप-अभेदरत्नत्रयलक्षणवाले परमसामायिकमें (स्वानुभवमें) स्थिर होकर आत्माको दूर करता है ।

शंका– किससे दूर करता है ?

समाधान– जिन मिथ्यात्वरागादिपरिणामसे बांधा जाता है उन शुभाशुभ अनेक विस्तारविस्तीर्ण ऐसे भविष्यमें होनेवाले कर्मोंसे आत्माको दूर करता है ।

इसप्रकारसे वह गुणविशिष्ट तपोधन ही अभेदनयसे निश्चयप्रत्याख्यानस्वरूप है ऐसा जानो ।

भवतीति विज्ञेयं जो वेददि नित्यानंदैकस्वभावशुद्धात्मसम्यक्‌श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मके सुखदुःखजीवितमरणादिविषये सर्वोपेक्षासंयमे स्थित्वा यः कर्ता वेदयत्यनुभवति जानाति। किं जानाति ? जं यत्कर्म तं तत्। केन रूपेण ? दोसं दोषोयं मम स्वरूपं न भवति। कथंभूतं कर्म ? उदिण्णं उदयागतं पुनरपि कथंभूतं ? सुहमसुहं शुभाशुभं। पुनश्च किरूपं ? अणेयवित्थरविसेसं मूलोत्तरप्रकृतिभेदेनानेकविस्तरविस्तीर्णं संपडिय संप्रति काले खलु स्फुटं सो आलोयणं चेदा स चेतयिता पुरुष एवाभेदनयेन निश्चयालोचनं भवतीति ज्ञातव्यं। णिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वदि णिच्चं पि जो दु पडिक्कमदि णिच्चं आलोचेदिय निश्चयरत्नत्रयलक्षणे शुद्धात्मस्वरूपे स्थित्वा यः कर्ता पूर्वोक्तनिश्चयप्रत्याख्यानप्रतिक्रमणालोचनानुष्ठानानि नित्यं सर्वकालं करोति सो दु चरित्तं हवदि चेदा स चेतयिता पुरुष एवाभेदनयेन निश्चयचारित्रं भवति। कस्मात् ? इति चेत् शुद्धात्मस्वरूपे चरणं चारित्रमिति वचनात्। एवं निश्चयप्रतिक्रमणप्रत्याख्यानालोचनाचारित्रव्याख्यानरूपेणाष्टमस्थले गाथाचतुष्टयं गतं ॥ ३९५, ३९६, ३९७, ३९८ ॥

नित्यानंदैकस्वभावशुद्धात्मसम्यक्‌श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूप अभेदरत्नत्रयात्मकमें याने सुखदुःखजीवितमरणादि विषयमें– सब उपेक्षासंयममें स्थिर रहकर जो अनुभवता है-जानता है।

शंका– क्या जानता है ?

समाधान– स्वानुभवमें रहकर कर्मको जानता है।

शंका– कर्म को किसरूपसे जानता है ?

समाधान– ये कर्म दोषमय हैं, ये मेरा स्वरूप (स्वभाव) नहीं है इस प्रकार कर्मको जानता है।

शंका– कैसे हैं वे कर्म ?

समाधान– वर्तमानकालमें उदयमें आनेवाले मूलोत्तर प्रकृतिके भेदसे अनेक प्रकारके वे शुभाशुभ कर्म हैं। वे दोषमय है, वे मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसा जो जानता है वह आत्मा ही अभेदनयसे निश्चय आलोचना स्वरूप है, ऐसा जानना चाहिए।

निश्चयरत्नत्रयलक्षणवाले शुद्धात्मस्वभावमें स्थिर रहकर जो आत्मा पूर्वोक्त निश्चय-प्रत्याख्यान-निश्चयप्रतिक्रमण– निश्चय आलोचना– इनका अनुष्ठान नित्य करता है वह ही अभेदनयसे निश्चयचारित्रस्वरूप है। क्योंकि 'शुद्धात्मस्वरूपे चरणं चारित्रम्' ऐसा वचन है (याने स्वशुद्धात्मस्वभावका अनुभव करना ही चारित्र है, ऐसा वचन है)।

इस प्रकार निश्चयप्रतिक्रमण-निश्चयप्रत्याख्यान-निश्चय आलोचना-रूप चारित्रके कथनरूपसे अष्टमस्थलमें ४ गाथायें पूर्ण हुओ।

भावार्थ– चतुर्थगुणस्थानवर्ती अव्रती सम्यग्दृष्टिसे सिद्धतक के जीवों की स्वानुभूति जाति अपेक्षासे समान होनेसे निश्चयप्रतिक्रमणनिश्चयप्रत्याख्याननिश्चयआलोचनावाला चारित्र चतुर्थगुणस्थावर्ती अव्रती सम्यग्दृष्टिसे ही शुरू होता है। मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानवर्ती-जीवको स्वानुभूति नहीं होनेसे निश्चयप्रतिक्रमणनिश्चयप्रत्याख्याननिश्चयआलोचनावाला चारित्र नहीं है ॥ ३९५, ३९६, ३९७, ३९८ ॥

अथेन्द्रियमनोविषयेषु रागद्वेषौ मिथ्याज्ञानपरिणत एव जीवः करोतीत्याख्याति—

णिंदियसंथुयवयणाणि पोग्गला परिणमंदि बहुयाणि ।
ताणि सुणिऊण रूसदि तूसदि य अहं पुणो भणिदो ॥ ३९९ ॥
॥ आ. ख्या. ३७३ ॥

पोग्गलदव्वं सद्दत्तपरिणयं तस्स जइ गुणो अण्णो ।
तह्मा ण तुमं भणिओ किंचिवि किं रूससि अबुद्धो ॥ ४०० ॥
॥ आ. ख्या. ३७४ ॥

असुहो सुहो व सद्दो ण तं भणइ सुणसु मं ति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं सोयविसयमागयं सद्दं ॥ ४०१ ॥
॥ आ. ख्या. ३७५ ॥

अब, मिथ्याज्ञानसे परिणमित करनेवाला जीव ही इंद्रिय और मनके विषयोंमें रागद्वेष करता है, ऐसा कहते हैं—

गाथार्थ— [बहुयाणि] बहुत प्रकारके [णिंदियसंथुयवयणाणि] निंदा और स्तुति के वचन हैं [पोग्गला परिणमंति] पुद्‌गल उनरूप परिणमते हैं [ताणि] उनको [सुणिऊण] सुनकर [अहं भणिदो] यह अज्ञानी जीव ऐसा मानता है कि मुझको कहा है [पुणो] इसलिये [रूसदि] ऐसा मानकर रोस (गुस्सा) करता है [य] और [तूसदि] संतुष्ट होता है। [पोग्गलदव्वं] पुद्‌गल द्रव्य [सद्दत्तपरिणयं] शब्दरूप परिणत हुआ है [तस्स गुणो] उसका गुण [जइ अण्णो] यदि तुझसे अन्य है [तह्मा] तो फिर [तुमं किंचि वि ण भणिओ] तुझको तो कुछ भी नहीं कहा, तो [अबुद्धो] तू अज्ञानी होकर [किं रूससि] क्यों रोष करता है ? [असुहो सुहो व] अशुभ अथवा शुभ [सद्दो] शब्द [तं ण भणइ ति] तुझको ऐसा नहीं कहता कि [मं सुणसु] मुझको सुन [य] और [सोयविसयमागयं] श्रोत्र इंद्रियके विषयमें आये हुये [सद्दं] शब्दके [विणिग्गहिउं] ग्रहण करनेको [सो चेव] वह आत्मा भी अपने स्वरूपको छोड [ण एइ] नहीं जाता है। [असुहं सुहं च] शुभ और अशुभ [रूवं] रूप [तं ण भणइ ति] तुझको ऐसा नहीं कहता कि [मं पिच्छ] मुझको देख [य] और [सो चेव] वह आत्मा भी अपने स्वरूपको छोड [चक्खुविसयमागयं] चक्षु इंद्रियके विषयमें आये हुये [रूवं] रूपको [विणिग्गहिदुं] ग्रहण करनेके लिये [ण एइ] नहीं जाता है। [असुहो सुहो व] अशुभ अथवा शुभ [गंधो] गंध [तं ण भणइ ति] तुझको ऐसा नहीं कहता कि [मं जिग्घ] मुझे तूं सूंघ [य सो चेव] और आत्मा भी अपने स्वरूपको छोड [घाणविसयमागयं गंधं] घ्राणेंद्रियके विषयमें आये हुये गंधको [विणिग्गहिदुं] ग्रहण करने के लिए [ण एइ] नहीं जाता है। [असुहो सुहो च] अशुभ अथवा शुभ [रसो] रस [तं] तुझको [ति] ऐसा [ण भणइ] नहीं कहता कि [मं रसय] तूं मुझको चख-आस्वाद कर

असुहं सुहं च रूवं ण तं भणइ पिच्छ मं ति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं चक्खुविसयमागयं रूवं ॥ ४०२ ॥

॥ आ. ख्या. ३७६ ॥

असुहो सुहो व गंधो ण तं भणइ जिग्घ मं ति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं घाणविसयमागयं गंधं ॥ ४०३ ॥

॥ आ. ख्या. ३७७ ॥

असुहो सुहो व रसो ण तं भणइ रसय मं ति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं रसणविसयमागयं तु रसं ॥ ४०४ ॥

॥ आ. ख्या. ३७८ ॥

असुहो सुहो व फासो ण तं भणइ फुससु मं ति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं कायविसयमागयं फासं ॥ ४०५ ॥

॥ आ. ख्या. ३७९ ॥

असुहो सुहो व गुणो ण तं भणइ वुज्झ मं ति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं बुद्धिविसयमागयं तु गुणं ॥ ४०६ ॥

॥ आ. ख्या. ३८० ॥

[य] और [सो चेव] वह आत्मा भी अपने स्वरूपको छोड [रसणविसयमागयं तु रसं] रसना इंद्रियके विषयमें आये हुअे रसको [विणिग्गहिदुं] ग्रहण करने के लिए [ण एइ] नहीं जाता है । [असुहो सुहो व] अशुभ अथवा शुभ [फासो] स्पर्श [तं] तुझको [ति ण भणइ] ऐसा नहीं कहता कि [मं फुससु] तूं मुझको स्पर्श कर [य] और [सो चेव] वह आत्मा भी अपने स्वरूपको छोड [कायविसयमागयं फासं] स्पर्शन इंद्रिय के विषयमें आये हुअे स्पर्शको [विणिग्गहिदुं] ग्रहण करनेके लिये [ण एइ] नहीं जाता है [असुहो सुहो व] अशुभ अथवा शुभ [गुणो] गुण [तं] तुझको [ति ण भणइ] ऐसा नहीं कहता है कि [मं वुज्झ] तूं मुझको जान [य] और [सो चेव] वह आत्मा भी अपने स्वरूपको छोड [बुद्धिविसयमागयं तु गुणं] बुद्धि के विषयमें आये हुअे गुणको [विणिग्गहिदुं] ग्रहण करने के लिये [ण एइ] नहीं जाता है । [असुहं सुहं व] अशुभ अथवा शुभ [दव्वं] द्रव्य [तं] तुझको [ति ण भणइ] ऐसा नहीं कहता है कि [मं वुज्झ] तूं मुझको जान [य] और [सो चेव] वह आत्मा भी अपने स्वरूपको छोड [बुद्धिविसयमागयं] बुद्धि के विषयमें आये

असुहं सुहं व दव्वं ण तं भणइ बुज्झ मं ति सो चेव ।
ण य एइ विणिग्गहिउं बुद्धिविसयमागयं दव्वं ।। ४०७ ।।
।। आ. ख्या. ३८१ ।।

एयं तु जाणिऊण उवसमं णेव गच्छई मूढो ।
णिग्गहमणा परस्स य सयं च बुद्धि सिवमपत्तो ।। ४०८ ।।
।। आ. ख्या. ३८२ ।।

रूसदि तूसदि य एकेंद्रियविकलेंद्रियादिदुर्लभपरंपराक्रमेणातीतानंतकाले दृष्टश्रुतानुभूतमिथ्यात्वविषयकषायादिविभावपरिणामाधीनतया अत्यंतदुर्लभेन कथंचित्कालादिलब्धिवशेन मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृतीनां तथैव चारित्रमोहनीयस्य चोपशमक्षयोपशमक्षये सति षड्द्रव्यपंचास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थादिश्रद्धानज्ञानरागद्वेषपरिहाररूपेण भेदरत्नत्रयात्मकव्यवहारमोक्षमार्गसंज्ञेन व्यवहारकारणसमयसारेण साध्येन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेद-

---

हुये [दव्वं] द्रव्यको [विणिग्गहिउं] ग्रहण करने के लिये [ण एइ] नहीं जाता है। [मूढो] मूढ जीव [एयं तु जाणिऊण] ऐसा जानकर भी [उवसमं णेव गच्छइ] उपशम भावको नहीं प्राप्त होता [य] और [परस्स] परके [णिग्गहमणा] ग्रहण करने का मन करता है [च] क्योंकि [सयं बुद्धि सिवमपत्तो] आप कल्याणरूप वुद्धि जो सम्यग्ज्ञान उसको प्राप्त नहीं हुआ है।

टीकार्थ— आगमभाषासे

एकेंद्रियविकलेंद्रिय आदि की उत्तरोत्तर दुर्लभ परंपरा के क्रमसे भूतकालके अनंत कालमें देखे, सुने और अनुभव किये हुये मिथ्यात्व-विषयकपायादिरूप विभाव परिणाम के आधीनतासे जो अत्यंत दुर्लभ है और जो कथंचित् कालादि लब्धिके वशसे मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियोंका तथा चारित्र मोहनीयका उपशम, क्षयोपशम और क्षय होनेपर षड्द्रव्य, पंचास्तिकाय, साततत्त्व, नवपदार्थ आदिका श्रद्धान, ज्ञान और रागद्वेषका परिहाररूप भेदरत्नत्रयात्मकव्यवहारमोक्षमार्ग की संज्ञावाले व्यवहारकारणसमयसारसे साध्यरूप अनंतकेवलज्ञानादि चतुष्टयकी व्यक्तिरूप कार्यसमयसारके विना अज्ञानी जीव रोष करता है और संतुष्ट होता है। याने रागद्वेष करता है।

अध्यात्मभाषासे

विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मतत्त्व का सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूप अभेदरत्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधि से साध्यरूप कार्यसमयसारको उत्पन्न करनेवाले निश्चयकारणसमयसारके विना निश्चयसे अज्ञानी जीव रोष करता है और संतुष्ट होता है याने रागद्वेष करता है— विकल्प करता है।

रत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिरूपेणानंतकेवलज्ञानादिचतुष्टयव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्योत्पादकेन निश्चयकारणसमयसारेण विना खल्वज्ञानिजीवो रुष्यति तुष्यति च। किं कृत्वा? **सुणिऊण** श्रुत्वा। पुनः पश्चात् केन रूपेण? **अहं भणिदो** अनेनाहं भणित इति। कानि श्रुत्वा? **णिंदिदसंथुदवयणाणि** निंदितसंस्तुतवचनानि ताणि तानि। किंविशिष्टानि? **पोग्गला परिणमंति बहुगाणि** भाषावर्गणायोग्यपुद्गलाः कर्तारो यानि कर्मतापन्नानि बहुविधानि परिणमंति। ज्ञानी पुनर्व्यवहारमोक्षमार्गं निश्चयमोक्षमार्गभूतं पूर्वोक्तद्विविधकारणसमयसारं ज्ञात्वा बहिरंगेष्टानिष्टविषये रागद्वेषौ न करोतीति भावार्थः। **पुग्गलदव्वं सद्दत्तपरिणदं** भाषावर्गणायोग्यपुद्गलद्रव्यं कर्तृ म्रियस्वेति जीवत्वमिति रूपेण निंदितसंस्तुतशब्दरूपत्वपरिणतं **तस्स जदि गुणो अण्णो** तस्य पुद्गलद्रव्यस्य शुद्धात्मस्वरूपाद्यदि गुणोऽन्यो भिन्नो जडरूपः तर्हि जीवस्य किमायातं? न किमपि। तस्यैवाज्ञानिजीवस्य पूर्वोक्तव्यवहारकारणसमयसारनिश्चयकारणसमयसाररहितस्य संबोधनं क्रियते। कथं? इति चेत्, यस्मान्निंदितसंस्तुतवचनेन पुद्गलाः परिणमंति **तह्मा ण तुमं भणिदो किंचिवि** तस्मात्कारणात्त्वं न भणितः किंचिदपि **किं रूससे अबुहो** किं रुष्यसे अबुध। बहिरात्मन्निति। स चैवाज्ञानिजीवो व्यवहारनिश्चयकारणसमयसाराभ्यां रहितः पुनरपि संबोध्यते।

शंका– अज्ञानी जीव क्या करके रागद्वेष करता है?

समाधान– भाषावर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्यसे बने हुये नानाप्रकारके निंदा और स्तुति के वचनोंको सुनकर अज्ञानी जीव ऐसा मानता है कि, "इसने मुझको कहा है," इससे अज्ञानी रागद्वेष करता है।

और सम्यग्ज्ञानी (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीव) पूर्वोक्त व्यवहारमोक्षमार्ग और निश्चयमोक्षमार्गभूत द्विविध कारणसमयसारको जानकर बहिरंग इष्ट अनिष्ट विषयोंमें रागद्वेष नहीं करता है, यह भावार्थ है।

'मर जावो या जीते रहो,' इत्यादि प्रकारके निंदा और स्तुति को लिए हुये जो भाषावर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्य है, उस पुद्गलद्रव्यका गुणधर्म यदि शुद्धात्माके स्वरूपसे पृथक्रूप है, जडरूप है तो फिर उससे जीवको क्या हानिलाभ है? कुछ भी नहीं। इस प्रकार कहकर फिर भी पूर्वोक्त व्यवहारकारणसमयसार और निश्चयकारणसमयसार इन दोनोंसे रहित जो अज्ञानी जीव है उसको ही संबोधन कर कहते हैं।

शंका– क्या संबोधन करते है?

समाधान– हे अबुध! हे बहिरात्मन्! जो निंदा और स्तुति रूपमें परिणत हुये शब्द– भाषावर्गणा-पुद्गलस्कंध हैं, उन पुद्गलस्कंधोंने तुमसे कुछ भी नहीं कहा है। तो फिर तूं क्यों रोष करता है? तथा व्यवहारकारणसमयसारसे और निश्चयकारणसमयसार से-इन दोनोंसे रहितवाले उस ही अज्ञानी जीवको फिरसे संबोधन करते हैं कि हे अज्ञानिन्! शब्द, रूप, गंध,

हे अज्ञानिन् ! शब्दरूपगंधरसस्पर्शरूपा मनोज्ञामनोज्ञपंचेंद्रियविषयाः कर्तारः, त्वां कर्मतापन्नं किमपि न भणंति । किं न भणंति ? हे देवदत्त ! मां कर्मतापन्नं श्रृणु, मां पश्य, मां जिघ्र, मां स्वादय, मां स्पृशेति । पुनरप्यज्ञानी ब्रूते एते शब्दादयः कर्तारो मां किमपि न भणंति, परं किंतु मदीयश्रोत्रादिविषयस्थानेषु समागच्छंति ? आचार्या उत्तरमाहुः– हे मूढ ! न चायांति विनिर्गृहीतुं एते शब्दादिपंचेंद्रियविषयाः । कथंभूताः संतः ? श्रोत्रेंद्रियादिस्वकीयस्वकीयविषयभावमागच्छंतः । कस्मात् ? इति चेत् वस्तुस्वभावादिति । यस्तु परमतत्त्वज्ञानी जीवः स पूर्वोक्तव्यवहारनिश्चयकारणसमयसाराभ्यां बाह्याभ्यंतररत्नत्रयलक्षणाभ्यां सहितः सन् मनोज्ञामनोज्ञशब्दादिविषयेषु समागतेषु ⊗ न करोति, किंतु स्वस्थभावेन शुद्धात्मस्वरूपमनुभवतीति भावार्थः । यथा पंचेंद्रियविषये मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियसंकल्पवशेन रागद्वेषौ करोत्यज्ञानी जीवः, तथा परकीयगुणपरिच्छेद्यरूपे परद्रव्यपरिच्छेद्यरूपे च मनोविषयेऽपि रागद्वेषौ करोति तस्याज्ञानिजीवस्य पुनरपि संबोधनं क्रियते तद्यथा–परकीयगुणः शुभोऽशुभो वा चेतनोऽचेतनो वा । द्रव्यमपि परकीयं कर्तृत्वं । कर्मतापन्नं न भणति हे मनोबुद्धे ! हे अज्ञानिजनचित्त ! मां कर्मतापन्नं बुधस्व जानीहि अज्ञानी वदति-एवं न ब्रूते किंतु मदीयमनसि परकीयगुणो द्रव्यं वा परिच्छित्तिसंकल्परूपेण स्फुरति

रस और स्पर्श इन स्वरूप मनोज्ञ या अमनोज्ञ ऐसे जो पांचो इंद्रियोंके विषय हैं वे सब तो तुम्हें कुछ भी नहीं कहते हैं कि, हे देवदत्त ! तू मुझे सुन, तू मुझे देख, तू मुझे सूंघ, तू मुझे चख, तू मुझे स्पर्श कर ।

शंका– इस पर अज्ञानी जीव कहता है कि, यद्यपि ये शब्दादि तो मुझे कुछ भी नहीं कहते किन्तु ये शब्दादि मेरे श्रोत्र आदि इंद्रियोंके विषयस्थानोंमें आ जाते हैं ?

समाधान– आचार्य उत्तर देते हैं कि, हे मूढ ! ये शब्दादिपंचेंद्रियविषय आपको ग्रहण करने के लिये नहीं आते हैं । क्योंकि श्रोत्रेंद्रिय आदिके विषयोंका (शब्दादिकोंका) स्वभाव ही ऐसा है कि अपनी अपनी श्रोत्र आदि इंद्रियों के विषय भावको प्राप्त हो जानेवाले हैं । लेकिन जो परमतत्त्वज्ञानी– स्वानुभूतिवाला (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती) जीव है वह पूर्वोक्त व्यवहारकारणसमयसार याने बाह्यरत्नत्रयलक्षण और निश्चयकारणसमयसार याने अभ्यंतररत्नत्रय–अभेदरत्नत्रयलक्षण इन दोनोंसे सहित होनेसे समागत मनोज्ञ-अमनोज्ञ शब्दादिविषयोंमें रागद्वेष नहीं करता है, किन्तु स्वस्थभावसे स्वशुद्धात्मस्वभावको अनुभवता है, ऐसा भावार्थ है ।

जैसे पंचेंद्रियविषयमें मनोज्ञ अमनोज्ञ इंद्रियसंकल्प के वशसे अज्ञानी जीव रागद्वेष करता है, वैसे ही अज्ञानी जीव परकीय गुणको जानते समय, और परकीय द्रव्यको जानते समय मन के विषयमें भी रागद्वेष करता है ।

उस अज्ञानी जीवको फिरसे संबोधन करते हैं कि– शुभ अथवा अशुभ, चेतन अथवा अचेतन परकीय गुण तथा परकीय द्रव्य तुझे नहीं कहता है कि, हे मनोबुद्धे ! अज्ञानीजनचित्त ! तू मुझे जान ले ।

प्रतिभाति। तत्रोत्तरं दीयते-स चैव परकीयगुणः परकीयद्रव्यं वा मनोबुद्धिविषयमागतं-विनिर्गृहीतुं नायाति। कस्मात्? ज्ञेयज्ञायकसंबंधस्य निषेधयितुमशक्यत्वात् इति हेतोः-यद्रागद्वेष-करणं तदज्ञानं। यस्तु ज्ञानी स पुनः पूर्वोक्तव्यवहारनिश्चयकारणं समयसारं जानन् हर्षविषादौ न करोतीति भावार्थः एवं तु पूर्वोक्तप्रकारेण मनोज्ञामनोज्ञशब्दादिपंचेंद्रियविषयस्य परकीयगुण-द्रव्यरूपस्य मनोविषयस्य वा, कथंभूतस्य? जाणिदव्वस्स ज्ञातद्रव्यस्य पंचेंद्रियमनोविषयभूतस्येत्यर्थः। तस्य पूर्वोक्तप्रकारेण स्वरूपं ज्ञात्वापि **उवसमं णेव गच्छदे मूढो** उपशमं नैव गच्छति मूढो बहिरात्मा स्वयं। कथंभूतः? **णिग्गहमणा** निग्रहमनाः निवारणबुद्धिः। कस्य संबंधित्वेन? **परस्स य** परस्य पंचेंद्रियमनोविषयस्य। कथंभूतस्य? परकीयशब्दादिगुणद्रव्यरूपस्य। पुनरपि कथंभूतस्य? स्वकीयविषयमागतस्य प्राप्तस्य। पुनरपि किं रूपश्चाज्ञानी जीवः। **सयं च बुद्धिं सिवमपत्तो** स्वयं च शुद्धात्मसंवित्तिरूपां बुद्धिमप्राप्तः। वीतरागसहजपरमानंदरूपं शिवशब्दवाच्यं सुखं चाप्राप्त इति। किं च, यथायस्कांतोपलाकृष्टा सूची स्वस्थानात्प्रच्युत्यायस्कांतोपलपाषाण-समीपं गच्छति तथा शब्दादयश्चित्तक्षोभरूपविकृतिकरणार्थं जीवसमीपं न गच्छंति। जीवोऽपि तत्समीपं न गच्छति निश्चयतः किंतु स्वस्थाने स्वस्वरूपेणैव तिष्ठति। एवं वस्तुस्वभावे सत्यपि

इस पर वह अज्ञानी कहता है कि, ऐसा तो वह (द्रव्य अथवा गुण) नहीं कहता है, लेकिन मेरे मनमें परकीय गुण अथवा परकीय द्रव्य जानकारीके संकल्पके रूप से प्रस्फुरित होता है– प्रतिभासता है। उसको श्री आचार्यजी उत्तर देते हैं कि, मन-बुद्धिके विषयमें आनेवाला वह परकीय गुण अथवा द्रव्य आपको ग्रहण करनेके लिये नहीं आता है क्यों कि ज्ञेयज्ञायक संबंधको दूर नहीं किया जा सकता है। (इसलिये वे ज्ञेय याने द्रव्य, गुण, पर्याय ज्ञेयाकाररूपसे ज्ञान में आ जाते हैं। उसमें कुछ दोष नहीं है।) लेकिन तू जो रागद्वेष करता है वह तेरा अज्ञान है।

और जो ज्ञानी है वह पूर्वोक्त व्यवहारनिश्चयकारणसमयसारको जाननेवाला होनेसे उनमें (द्रव्य, गुण और पर्यायमें) हर्षविषाद नहीं करता है, ऐसा भावार्थ है।

इस प्रकार जाननेयोग्य पंचेंद्रियोंके विषय मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दादि तथा मनके विषय जो परकीय गुण और द्रव्य, उन मन और इंद्रियोंके विषय को जानकर भी मूढ बहिरात्मा जीव स्वयं उपशम भावको प्राप्त नहीं होता है (शांत नहीं रहता है)। वह तो अपने जाननेमें आये हुअे परकीय शब्दादि, गुण या द्रव्य रूप उन पंचेंद्रिय और मनके विषयभूत वस्तुका निग्रह–निवारण करना चाहता है क्योंकि स्वयं शुद्धात्मानुभवरूप बुद्धिको प्राप्त नहीं होता है और वीतरागसहजपरमानंदरूप तथा शिवशब्दसे कहे जानेवाले सुखको प्राप्त नहीं होता है।

विशेष स्पष्टीकरण यह है कि, जैसे चुम्बकपाषाणसे खेंची हुअी लोह सुई अपने स्थानसे च्युत होकर चुम्बकपाषाणके समीप आती है वैसे शब्दादि चित्तमें क्षोभरूपविकृति करने के लिये जीवके समीप नहीं आते है। और निश्चयसे जीव भी उनके पास नहीं जाता है किंतु स्वस्थानमें स्वस्वभावसे ही रहता है। इस प्रकारका वस्तुका स्वभाव होते हुअे भी जो अज्ञानी जीव उदासीनभावको छोडकर रागद्वेष करता है वह अज्ञान ही है।

यदज्ञानी जीव उदासीनभावं मुक्त्वा रागद्वेषौ करोति तदज्ञानमिति। हे भगवन्! पूर्वं बंधाधिकारे भणितं "एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमदि रायमादीहिं। राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादि एहिं भावेहिं" ॥ ता. वृ. ३०२॥ इत्यादि रागादीनामकर्ता ज्ञानी, परद्रव्यजनिता रागादयः इत्युक्तं। अत्र तु स्वकीयबुद्धिदोषजनिता रागादयः परेषां शब्दादिपंचेन्द्रियविषयाणां दूषणं नास्तीति पूर्वापरविरोधः? अत्रोत्तरमाह- तत्र बंधाधिकारव्याख्याने ज्ञानिजीवस्य मुख्यता ज्ञानी तु रागादिभिर्न परिणमति तेन कारणेन परद्रव्यजनिता भणिताः। अत्र चाज्ञानिजीवस्य मुख्यता स चाज्ञानी जीवः स्वकीयबुद्धिदोषेण परद्रव्यनिमित्तमात्रमाश्रित्य रागादिभिः परिणमति, तेन कारणेन परेषां शब्दादिपंचेंद्रियविषयाणां दूषणं नास्तीति भणितं। ततः कारणात् पूर्वापरविरोधो नास्ति इति। एवं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गभतं निश्चयकारणसमयसारव्यवहारकारणसमयसारद्वयमजानन् सन्नज्ञानी जीवः स्वकीयबुद्धिदोषेण रागादिभिः परिणमति। परेषां शब्दादीनां दूषणं नास्तीति व्याख्यानमुख्यत्वेन नवमस्थले गाथादशकं गतं ॥ ३९९, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०६, ४०७, ४०८॥

शंका- "हे भगवन्! इसके पहले बंधाधिकारमें कहा है कि 'एवं णाणी सुद्धो ण स्वयं परिणमदि रायमादीहिं। राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादि एहिं भावेहिं ॥ ३०२ ता. वृ. गाथा॥ अर्थात् इसप्रकार ज्ञानी शुद्ध है वह रागादि भावोंसे स्वयं परिणमन नहीं करता है, लेकिन वह अन्य रागादि भावोंसे (दोषोंसे) रागादिविकारभावमय किया जाता है।" इसलिये ज्ञानी (आत्मा) रागादिकोंका अकर्ता है और रागादि परद्रव्यसे उत्पन्न होते हैं ऐसा कहा गया है। लेकिन यहाँ 'स्वकीयबुद्धि दोष से उत्पन्न होनेवाले रागादिभाव है, परकीय शब्दादि पंचेंद्रियोंके विषयोंका दोष नहीं है, ऐसा कहते हो तो इसमें पूर्वापर विरोध आता है?

समाधान- वहाँ बंधाधिकारके व्याख्यानमें ज्ञानी जीवकी मुख्यता है और सम्यग्ज्ञानी तो रागादि भावोंसे परिणमन नहीं करता है, इसलिये रागादिभाव परद्रव्यजनित है, ऐसा कहा है। और यहाँ अज्ञानी जीवकी मुख्यता है, वह अज्ञानी जीव अपने बुद्धिदोषसे परद्रव्यको निमित्तमात्र आश्रय करके रागादिसे परिणमन करता है इस कारणसे परकीय शब्दादि पंचेंद्रियविषयोंका दोष नहीं है, ऐसा कहा गया है। इसलिये इसमें पूर्वापर विरोध नहीं है।

इस प्रकार निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गभूत निश्चयकारणसमयसार और व्यवहारकारणसमयसार इन दोनोंको न जाननेवाला होकर अज्ञानी जीव स्वकीयबुद्धिदोषसे रागादिभावरूपसे परिणमन करता है, इसमें परकीय शब्दादिकोंका दोष नहीं है, इस प्रकारके कथनकी मुख्यतासे नवमस्थलमें १० गाथायें पूर्ण हुओ।

भावार्थ- जो कहेंगे कि, हमारे पास व्यवहारमोक्षमार्गभूत भेदरत्नत्रय है लेकिन स्वानुभूतिवाला-अभ्यंतर अभेदरत्नत्रयवाला निश्चयकारणसमयसार नहीं है, तो ऐसा कहनेवाला मिथ्यात्वी है॥ ३९९, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०६, ४०७, ४०८॥

अथ मिथ्यात्वरागादिपरिणतजीवस्याज्ञानचेतना केवलज्ञानादिगुणप्रच्छादकं कर्मबंधं जनयतीति प्रतिपादयति–

वेदंतो कम्मफलं अप्पाणं कुणइ जो दु कम्मफलं।
सो तं पुणो वि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥ ४०९ ॥

॥ आ. ख्या. ३८७ ॥

वेदंतो कम्मफलं मए कयं मुणइ जो दु कम्मफलं।
सो तं पुणो वि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥ ४१० ॥

॥ आ. ख्या. ३८८ ॥

वेदंतो कम्मफलं सुहिदो दुहिदो य हवदि जो चेदा।
सो तं पुणो वि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥ ४११ ॥

॥ आ. ख्या. ३८९ ॥

ज्ञानाज्ञानभेदेन चेतना तावद्द्विविधा भवति। इयं तावदज्ञानचेतना गाथात्रयेण कथ्यते– उदयागतं शुभाशुभं कर्म वेदयन्ननुभवन् सन्नज्ञानिजीवः स्वस्थभावाद् भ्रष्टो भूत्वा मदीयं कर्मेति

अब, मिथ्यात्वरागादिपरिणत जीवके अज्ञानचेतना होती है, वह केवलज्ञानादिगुणको प्रच्छादन करनेवाली कर्मबंधको उत्पन्न करती है, यह कहते हैं–

गाथार्थ– [जो दु] जो आत्मा [**कम्मफलं वेदंतो**] कर्म के फलको अनुभव करता हुआ [**कम्मफलं अप्पाणं कुणइ**] कर्मफलको निजरूप ही करता है [**सो**] वह [**पुणोवि**] फिर भी [**दुक्खस्स वीयं**] दुःखका बीज [**अट्ठविहं तं**] ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मको [**बंधइ**] बांधता है। [**जो दु**] जो आत्मा [**कम्मफलं वेदंतो**] कर्मके फलको अनुभव करता हुआ [**कम्मफलं मए कयं मुणइ**] उस कर्मफलको मैंने किया है ऐसा मानता है [**सो**] वह [**पुणो वि**] फिर भी [**दुक्खस्स वीयं**] दुःखका बीज [**अट्ठविहं तं**] ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मको [**बंधइ**] बांधता है। [**जो चेदा**] जो आत्मा [**कम्मफलं वेदंतो**] कर्मके फलको अनुभव करता हुआ [**सुहिदो य दुहिदो**] सुखी और दुःखी [**हवदि**] होता है [**सो**] वह आत्मा [**पुणोवि**] फिर भी [**दुक्खस्स वीयं**] दुःख का बीज [**अट्ठविहं तं**] ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मको [**बंधइ**] बांधता है।

टीकार्थ– ज्ञान और अज्ञान के भेदसे चेतना दो प्रकारकी याने ज्ञानचेतना और अज्ञान-चेतना है। (ज्ञानचेतना– चतुर्थगुणस्थानसे सिद्धतक और अज्ञानचेतना – मिथ्यात्वसासादन-मिश्रगुणस्थानवर्ती जीव की होती हैं।)

यहाँपर तीन गाथाओं के द्वारा अज्ञानचेतनाका वर्णन किया जाता है– उदयमें आये हुये शुभ या अशुभ कर्मको भोगता हुआ यह अज्ञानी जीव स्वस्थभावसे भ्रष्ट होकर 'यह मेरा

भणति। मया कृतं कर्मेति च यो भणति। स जीवः पुनरपि तदष्टविधं कर्म बध्नाति। कथंभूतं? बीजं कारणं। कस्य? दुःखस्य। इति गाथाद्वयेनाज्ञानरूपा कर्मचेतना व्याख्याता। कर्मचेतना कोऽर्थः? इति चेत् मदीयं कर्म मया कृतं कर्मेत्याद्यज्ञानभावेन–ईहापूर्वकमिष्टानिष्टरूपेण निरुपरागशुद्धात्मानुभूतिच्युतस्य मनोवचनकायव्यापारकरणं यत् सा बंधकारणभूता कर्मचेतना भण्यते। उदयागतं कर्मफलं वेदयन् शुद्धात्मस्वरूपमचेतयमानो मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियविषयनिमित्तेन यः सुखितो दुःखितो वा भवति स जीवः पुनरपि तदष्टविधं कर्म बध्नाति। कथंभूतं? बीजं कारणं। कस्य? दुःखस्य। इत्येकगाथाया कर्मफलचेतना व्याख्याता। कर्मफलचेतना कोऽर्थः? इति चेत्, स्वस्थभावरहितेनाज्ञानभावेन यथासंभवं व्यक्ताव्यक्तस्वभावेनेहापूर्वकमिष्टानिष्टविकल्परूपेण हर्षविषादमयं सुखदुःखानुभवनं यत्, सा बंधकारणभूता कर्मफलचेतना भण्यते। इयं कर्मचेतना कर्मफलचेतना च द्विरूपापि त्याज्या बंधकारणत्वादिति। तत्र तयोर्द्वयोः कर्मचेतनाकर्मफलचेतनयोर्मध्ये पूर्वं तावन्निश्चयप्रतिक्रमण–निश्चयप्रत्याख्यान–निश्चयालोचनास्वरूपं यत्पूर्वं

कर्म है,' ऐसा कहता है। "मैंने यह कर्म किया है," ऐसा जो कहता है वह जीव फिर भी आठ प्रकारके कर्मको बांधता है।

शंका– कैसा है वह कर्म?

समाधान– दुःखका बीज–कारण है।

इस प्रकार दो गाथाओं के द्वारा अज्ञानरूप कर्मचेतना का व्याख्यान किया है।

शंका– कर्मचेतना का क्या अर्थ है?

समाधान– "यह मेरा कर्म है, मैंने किया हुआ यह कर्म है," इसप्रकार अज्ञानभावके द्वारा वीतरागमय शुद्धात्मानुभूतिसे च्युत हुओ जीवका जो इच्छापूर्वक इष्ट अनिष्ट भावसे मन, वचन और कायकी चेष्टा करना है, वह बंधकारणभूत कर्मचेतना कहलाती है।

उदयमें आये हुओ कर्मफलको अनुभव करनेवाला याने शुद्धात्मानुभव न करनेवाला जो जीव मनोज्ञ-अमनोज्ञ इंद्रियोंके विषयको निमित्तमात्र करके सुखी अथवा दुःखी होता है, वह जीव फिर भी उन आठ प्रकारके कर्मोंको बांधता है।

शंका– वे कर्म कैसे हैं?

समाधान– वे कर्म दुःखका बीज – कारण हैं।

इस प्रकार तीसरी गाथासे कर्मफलचेतना का व्याख्यान किया है।

शंका– कर्मफलचेतना का क्या अर्थ है?

समाधान– स्वस्थभावसे रहित (शुद्धात्मानुभवसे रहित) अज्ञानभावसे–अज्ञानचेतनासे यथासंभव व्यक्ताव्यक्तस्वभावसे इच्छापूर्वक किये जानेवाले इष्टानिष्टविकल्प रूपसे हर्षविषादमय सुखदुःखका अनुभव करनेवाली ज़ो अज्ञान चेतना है, वह बंधका कारणवाली कर्मफलचेतना कहलाती है।

व्याख्यातं तत्र स्थित्वा शुद्धज्ञानचेतनावलेन कर्मचेतनासंन्यासभावनां नाटयति। कर्मचेतनात्याग-भावनां कर्मवंधविनाशार्थं करोतीत्यर्थः। तद्यथा—यदहमकार्षं यदहमचीकरं यदहं कुर्वंतमप्यन्यं प्राणिनं समन्वज्ञासिषं। केन ? मनसा वाचा कायेन तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति षड्संयोगेनैकभंगः। यदहमकार्षं यदहमचीकरं यदहं कुर्वंतमप्यन्यं प्राणिनं समन्वज्ञासिषं। केन ? मनसा वाचा तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति पंचसंयोगेन, एकैकापनयनेन भंगत्रयं भवति। संयोगेनेत्याद्यक्षसंचारेणैकोनपंचाशद्भंगा भवंतीति टीकाभिप्रायः। अथवा त एव सुखोपायेन कथ्यंते। कथं ? इति चेत्, कृतं कारितमनुमतमिति प्रत्येकं भंगत्रयं भवति। कृतकारितद्वयं कृतानुमतद्वयं कारितानुमतद्वयमिति द्विसंयोगेन च भंगत्रयं जातं। कृतकारितानुमतत्रयमिति त्रिसंयोगेनैको भंग इति सप्तभंगी। तथैव च मनसा वाचा कायेनेति प्रत्येकं भंगत्रयं भवति। मनोवचनद्वयं मनःकायद्वयं वचनकायद्वयमिति द्विसंयोगेन भंगत्रयं जातं। मनोवचनकायत्रयमिति च त्रिसंयोगेनैको भंग इयमपि सप्तभंगी। कृतं मनसा सह, कृतं वाचा सह, कृतं कायेन सह, कृतं मनोवचनद्वयेन सह, कृतं मनःकायद्वयेन सह, कृतं वचनका-

---

यह कर्मचेतना और कर्मफलचेतना दोनों भी वंधका कारण होनेसे त्याज्य है। वहाँ कर्मचेतना और कर्मचेतनाफल इन दोनोंमें पहले तो निश्चयप्रतिक्रमणनिश्चयप्रत्याख्याननिश्चया-लोचना इनका जो स्वरूप पूर्वमें कहा था उसमें रहकर शुद्धज्ञानचेतनाके वलसे कर्मचेतनाके संन्यासकी भावना को नचाते हैं– करते हैं। अर्थात् कर्मके बंधका नाश करनेके (होनेके) लिये कर्मचेतनाके त्यागकी भावनाको करते हैं। जैसे मनसे, वचनसे और कायसे मैंने जो पहले (भूतकालमें) किया, मैंने पहले किसी से करवाया, करते हुये को अच्छा माना, वह सब मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो जाय, इस प्रकार यह छहोंके संयोगरूप पहला भंग हुआ। मनसे और वचनसे जो मैंने किया, किसीसे करवाया, और किसी करते हुओ को अच्छा माना, वह सब मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होओ इस प्रकार यह पांच संयोग का एक भंग हुआ। एक एक को कम करनेसे तीन भंग पांच संयोगी होंगे। इस प्रकार संयोग करनेपर अक्ष संचार के द्वारा ४९ भंग हो जाते हैं, यही टीकाकार के कहनेका अभिप्राय है। (जैसा कि श्री अमृतचंद्राचार्यजीने आत्मख्याति टीकामें बताया हैं।) अथवा वे भंग ही सरल रूपसे बताये जा रहे हैं। कैसे ? तो– कृत, कारित और अनुमोदन इसप्रकार प्रत्येक तीन तीन भंग हुओ, फिर कृत, कारित ये दोनों, कृत अनुमोदन ये दोनों, कारित अनुमोदन ये दोनों, इस प्रकार दो दो के संयोगसे तीन भंग हो गये और कृत कारित और अनुमोदन इन तीनोंके संयोगसे एक भंग हुआ। इस प्रकार सब मिलकर एक सप्तभगी हुओ। उसी प्रकार मनसे, वचनसे, कायसे प्रत्येक को लेकर तीन भंग हुओ। फिर मन और वचन ये दो, मन और काय ये दो, वचन व काय ये दो, इस प्रकार दो के संयोगसे तीन भंग हुओ। मन, वचन और काय इन तीनोंके संयोगसे एक भंग हुआ। इस प्रकार यह दूसरी सप्तभंगी हुओ। मनके साथ करना, वचन के साथ करना, और काय के साथ करना, मन और वचन दोनोंके साथ करना, मन और काय दोनोंके साथ करना, वचन और

यद्वयेन सह, कृतं मनोवचनकायत्रयेण सहेति कृते निरुद्धे विवक्षिते सप्तभंगी जाता यथा। तथा कारितेऽपि, तथा अनुमतेऽपि, तथा कृतकारितद्वयेऽपि, तथा कृतानुमतद्वयेऽपि तथा कारितानुमत-द्वयेऽपि, तथा कृतकारितानुमतत्रये चेति प्रत्येकमनेन क्रमेण सप्तभंगी योजनीया। एवं- एकोनपं-चाशद्भंगा भवंतीति प्रतिक्रमणकल्पः समाप्तः।

इदानीं प्रत्याख्यानकल्पः कथ्यते-तथाहि-यदहं करिष्यामि, यदहं कारयिष्यामि यदहं कुर्वंतमप्यन्यं प्राणिनं समनुज्ञास्यामि। केन? मनसा वाचा कायेन तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति पूर्ववत् षट्संयोगेनैको भंगः। यथा यदहं करिष्यामि यदहं कारयिष्यामि यदहं कुर्वंतमप्यन्यं प्राणिनं समनुज्ञास्यामि। केन? मनसा वाचा चेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति पूर्ववदेकैकापनयनेन पंचसंयोगेन भंगत्रयं भवति। एवं पूर्वोक्तक्रमेण—एकोनपंचाशद्भंगा ज्ञातव्याः। इति प्रत्याख्यानकल्पः समाप्तः।

इदानीमालोचनाकल्पः कथ्यते तद्यथा— यदहं करोमि यदहं कारयामि यदहं कुर्वंतमप्यन्यं प्राणिनं समनुजानामि। केन? मनसा वाचा कायेनेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति पूर्ववत् षट्संयोगे-नैकभंगः। तथा यदहं करोमि यदहं कारयामि यदहं कुर्वंतमप्यन्यं प्राणिनं समनुजानामि। केन? मनसा वाचेति तन्मिथ्या मे दुष्कृतमिति—एकैकापनयनेन पंचसंयोगेन भंगत्रयं भवति। एवं

काय दोनोंके साथ करना, और मनवचनकाय इन तीनोंके साथ करना इस प्रकार कृतके निरुद्ध विवक्षितमें तीसरी सप्तभंगी हुआ। जिस प्रकार कृत की सप्तभंगी बतलाई उसी प्रकार कारित पर भी, अनुमोदना पर भी, तथा कृतकारित इन दोनोंपर भी, कृत अनुमोदना इन दोनोंपर भी, कारित अनुमोदना इन दोनोंपर भी, तथा कृतकारित और अनुमोदना इन तीनोंपर भी ऐसे प्रत्येक की इस क्रमसे सप्तभंगी लगा लेना चाहिये, इस प्रकार ये सब मिलकर ४९ भंग होते हैं। यह प्रतिक्रमण कल्प समाप्त हुआ।

अब प्रत्याख्यान कल्पका वर्णन करते हैं— मनसे, वचनसे, कायसे जो मैं (भविष्यकालमें) करूंगा, जो मैं कराऊंगा, करते हुओ किसी अन्यको अच्छा मानूंगा, मेरे ये दुष्कृत्य मिथ्या हो जाये। यह छहोंके संयोगरूप पहले के अनुसार एक पहला भंग हुआ। इसी प्रकार मनसे और वचनसे मैं करुंगा, मैं कराऊंगा और करते हुओ किसी अन्यको मैं अच्छा मानूंगा मेरे दुष्कृत्य मिथ्या होवे। यह पंचसंयोगी भंग भी पहले कहे अनुसार एक एक को कम कर देनेपर तीन प्रकारका होता हैं। इसी प्रकार पहले कहे अनुसार इसको कर लेनेसे ४९ भंग हो जाते हैं ऐसा जानना चाहिए। यह प्रत्याख्यान कल्प समाप्त हुआ।

अब, आलोचना कल्पका वर्णन करते हैं— वर्तमान कालमें मनसे, वचनसे, कायसे जो मैं करता हूँ, कराता हूँ, करते हुओ किसी अन्यको अच्छा मानता हूँ, मेरे ये दुष्कृत्य मिथ्या हो जाये। यह पहले के समान छहोंके संयोग रूप पहला भंग हुआ। इसीप्रकार मनसे और वचनसे जो मैं करता हूँ, मैं कराता हूँ, और करते हुओ किसी अन्य जीव को मैं अच्छा मानता हूँ, मेरे ये

पूर्वोक्तप्रकारेण एकोनपंचाशद्‌भंगा ज्ञातव्याः। इत्यालोचनाकल्पः समाप्तः। कल्पः पर्वपरिच्छेदोऽधिकारोऽध्यायः प्रकरणमित्याद्येकार्था ज्ञातव्याः। एवं निश्चयप्रतिक्रमण-निश्चयप्रत्याख्यान-निश्चयालोचनाप्रकारेण शुद्धज्ञानचेतनाभावनारूपेण गाथाद्वयव्याख्यानेन कर्मचेतनासंन्यासभावना समाप्ता।

इदानीं शुद्धज्ञानचेतनाभावनाबलेन कर्मफलचेतनासंन्यासभावनां नाटयति करोतीत्यर्थः। तद्यथा-नाहं मतिज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे। तर्हि किं करोमि? शुद्धचैतन्यस्वभावमात्मानमेव संचेतये। सम्यगनुभवे इत्यर्थः। नाहं श्रुतज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे। तर्हि किं करोमि? शुद्धचैतन्यस्वभावमात्मानमेव संचेतये। नाहमवधिज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे। तर्हि किं करोमि? शुद्धचैतन्यस्वभावमात्मानमेव संचेतये। नाहं मनःपर्ययज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे। तर्हि किं करोमि? शुद्धचैतन्यस्वभावमात्मानमेव संचेतये। नाहं केवलज्ञानावरणीयकर्मफलं भुंजे। तर्हि किं करोमि? शुद्धचैतन्यस्वभावमात्मानमेव संचेतये। इति पंचप्रकारज्ञानावरणीयरूपेण कर्मफलचेतनासंन्यासभावना व्याख्याता। नाहं चक्षुर्दर्शनावरणीयफलं भुंजे। तर्हि किं करोमि? शुद्धचैतन्यस्वभावमात्मानमेव संचेतये। एवं टीकाकथितक्रमेण– पण णव दु अट्ठवीसा चउ तिय णउ दीय

दुष्कृत्य मिथ्या हो जाये। इस प्रकार पूर्वोक्त क्रमसे एक एक को कम करनेपर पंच संयोगी तीन भंग होते हैं। इसप्रकार पहले कहे अनुसार ४९ भंग होते हैं, ऐसा जानना चाहिये। यह आलोचना कल्प समाप्त हुआ। कला, पर्व, अधिकार, अध्याय, परिच्छेद, प्रकरण इत्यादि सब एकार्थ नाम हैं, ऐसा जानना चाहिये।

इस प्रकार निश्चयप्रतिक्रमणनिश्चयप्रत्याख्याननिश्चयालोचनाप्रकारवाली शुद्धज्ञानचेतनाभावनासे दो गाथाओंमें कर्मचेतनाके संन्यासकी भावना समाप्त हुयी।

अब, शुद्धज्ञानचेतनाके भावनाके बलसे कर्मफलचेतना के संन्यास (– त्याग) की भावना को करते हैं– जैसे कि मतिज्ञानावरण कर्मके फलको मैं नहीं भोगता हूँ। तो फिर क्या करता हूँ? कि मैं तो स्वशुद्धचैतन्य स्वभावमय आत्माका ही सम्यक् अनुभव करता हूँ। श्रुतज्ञानावरणकर्मके फलको मैं नहीं भोगता हूँ। तो फिर क्या करता हूँ? कि मैं तो स्वशुद्धचैतन्यस्वभावमय आत्माका ही सम्यक् अनुभव करता हूँ। अवधिज्ञानावरण कर्मके फलको मैं नहीं भोगता हूँ। तो फिर क्या करता हूँ? कि मैं तो स्व शुद्धचैतन्यस्वभावमय आत्माका ही सम्यक् अनुभव करता हूँ। मनःपर्ययज्ञानावरण कर्मके फलको मैं नहीं भोगता हूँ। तो फिर क्या करता हूँ? मैं तो स्वशुद्धचैतन्यस्वभावमय आत्माका ही सम्यक् अनुभव करता हूँ। केवलज्ञानावरण कर्मके फलको मैं नहीं भोगता हूँ। तो फिर क्या करता हूँ? मैं तो स्व शुद्धचैतन्यस्वभावमय आत्माका ही सम्यक अनुभव करता हूँ। इस प्रकार पांच प्रकारके ज्ञानावरण कर्मके रूपसे कर्मफलसंन्यासकी भावना की जाती है इसका कथन हुआ। चक्षुदर्शनावरण कर्म के फलको मैं नहीं भोगता हूँ। तो फिर क्या करता हूँ? कि मैं तो स्वशुद्धचैतन्यस्वभावमय आत्माका ही सम्यक् अनुभव करता हूँ। इस प्रकार टीकामें बताये हुये क्रमके अनुसार "पण णव दु इत्यादि,"

दुण्णि पंचेव। बावण्णहीण वियसय पयडिविणासेण होंति ते सिद्धा॥ इमां गाथामाश्रित्य अष्टचत्वारिंशदधिकशतप्रमितोत्तरप्रकृतीनां कर्मफलसंन्यासभावना नाटयितव्या, कर्तव्येत्यर्थः। किंच जगत्त्रयकालत्रयसंबंधिमनोवचनकायकृतकारितानुमतख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिसमस्तपरद्रव्यालंबनोत्पन्नशुभाशुभसंकल्पविकल्परहितेन शून्येन चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्‌श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातवीतरागसहजपरमानंदरूपसुखरसास्वादपरमसमरसीभावानुभवसालंबनेन भरितावस्थेन केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयव्यक्तिरूपस्य साक्षादुपादेयभूतस्य कार्यसमयसारस्योत्पादकेन निश्चयकारणसमयसाररूपेण शुद्धज्ञानचेतनाभावनावष्टंभेन कृत्वा कर्मचेतनासंन्यासभावना कर्मफलचेतनासंन्यासभावना च मोक्षार्थिना पुरुषेण कर्तव्येति भावार्थः। एवं गाथाद्वयं कर्मचेतनासंन्यासभावनामुख्यत्वेन, गाथैका कर्मफलचेतनासंन्यासभावनामुख्यत्वेनेति दशमस्थले गाथात्रयं गतं॥ ४०९, ४१०, ४११॥

अथेदानीं व्यावहारिकजीवादिनवपदार्थेभ्यो भिन्नमपि टंकोत्कीर्णज्ञायकैकपारमार्थिकपदार्थसंज्ञं गद्यपद्यादिविचित्ररचनारचितशास्त्रैः शब्दादिपंचेंद्रियविषयप्रभृतिपरद्रव्यैश्च शून्यमपि, रागादिविकल्पोपाधिरहितं सदानंदैकलक्षणसुखामृतरसास्वादेन भरितावस्थं परमात्मतत्त्वं

अर्थात् ५ ज्ञानावरण, कर्म की, ९ दर्शनावरण की, २ वेदनीय की, २८ मोहनीयकी, ४ आयु की, ९३ नाम की २ गोत्र की, और ५ अंतराय की इसप्रकार ५२ कम २०० अर्थात् १४८ कर्म प्रकृतियें हुई। इन सब प्रकृतियोंका नाशकर सिद्ध होते हैं। इस गाथाका आशय लेकर १४८ संख्यावाली उत्तर कर्मकी प्रकृतियोंके फलके त्यागकी भावना करने योग्य हैं।

इसका विशेष स्पष्टीकरण यह है कि, तीन लोक और तीन कालसे संबंध रखनेवाले जो मनवचनकाय तथा कृतकारित और अनुमोदना तथा ख्यातिपूजालाभ तथा देखे, सुने और अनुभव किये हुओ भोगोंकी आकांक्षारूप निदानबंधादि सब परद्रव्यके आलंबनसे उत्पन्न होनेवाले शुभ-अशुभ संकल्पविकल्परहित अर्थात् चिदानंद, एक, स्वभाव शुद्धात्मतत्त्वसम्यक्‌श्रद्धानज्ञानानुचरणरूप अभेदरत्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधिसे उत्पन्न होनेवाले वीतरागसहजपरमानंदमयसुखरसके आस्वादवाले परमसमरसीभावके अनुभवके अवलंबनसे भरित अवस्थावाले, केवलज्ञानादि अनंतचतुष्टयके व्यक्तिरूप साक्षात् उपादेयभूत कार्यसमयसारको उत्पन्न करनेवाले, निश्चयकारणसमयसारवाले शुद्धज्ञानचेतनाकी भावनाका अवलंबन करके कर्मचेतनाकी संन्यासभावना और कर्मफलचेतनाकी संन्यास भावना मुमुक्षु पुरुषद्वारा की जानी चाहिये, यह भावार्थ है।

इसप्रकार दो गाथाओंमें कर्मचेतनाके संन्यासकी भावनाकी मुख्यतासे कथन है और एक गाथामें कर्मफलचेतनाके संन्यास की भावना की मुख्यतासे कथन है, इसतरह दशमस्थलमें तीन गाथायें पूर्ण हुओ॥ ४०९, ४१०, ४११॥

अब यहाँ जो व्यावहारिक जीवादि नवपदार्थोंसे भिन्न है तो भी टंकोत्कीर्णज्ञायकएकपारमार्थिकपदार्थ नामवाला है, तथा गद्यपद्यादिविचित्ररचनारचितशास्त्रोंसे और शब्दादिपंचेंद्रियविषयप्रभृतिपरद्रव्योंसे शून्य है तो भी रागादिविकल्पोंकी उपाधिसे रहित सदानंदएकलक्षणसुखा-

प्रकाशयति–

सत्थं णाणं ण हवदि जह्मा सत्थं ण याणदे किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं सत्थं जिणा विंति ॥ ४१२ ॥
॥ आ. ख्या. ३९० ॥

सद्दो णाणं ण हवइ जह्मा सद्दो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं सद्दं जिणा विंति ॥ ४१३ ॥
॥ आ. ख्या. ३९१ ॥

रूवं णाणं ण हवइ जह्मा रूवं ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं रूवं जिणा विंति ॥ ४१४ ॥
॥ आ. ख्या. ३९२ ॥

वण्णो णाणं ण हवइ जह्मा वण्णो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं वण्णं जिणा विंति ॥ ४१५ ॥
॥ आ. ख्या. ३९३ ॥

गंधो णाणं ण हवइ जह्मा गंधो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं गंधं जिणा विंति ॥ ४१६ ॥
॥ आ. ख्या. ३९४ ॥

मृतरसास्वाद से भरित अवस्थावाला परमात्म तत्त्व है। उस परमात्मतत्त्वको प्रगट करते हैं–

गाथार्थ– [सत्थं] शास्त्र [णाणं] ज्ञान [ण हवइ] नहीं है [जह्मा] क्योंकि [सत्थं किंचि ण याणए] शास्त्र कुछ नहीं जानता है याने शास्त्र जड है [तह्मा] इसलिये [णाणं अण्णं] ज्ञान अन्य है [सत्थं अण्णं] शास्त्र अन्य है, ऐसा [जिणा विंति] जिनेंद्र भगवान कहते हैं। [सद्दो] शब्द [णाणं ण हवइ] ज्ञान नहीं है [जह्मा] क्योंकि [सद्दो किंचि ण याणए] शब्द कुछ नहीं जानता है याने जड है [तह्मा] इसलिये [णाणं अण्णं] ज्ञान अन्य है, [सद्दं अण्णं] शब्द अन्य है ऐसा [जिणा विंति] जिनेंद्र भगवान कहते हैं। [रूवं] रूप [णाणं ण हवइ] ज्ञान नहीं है [जह्मा] क्योंकि [रूवं किंचि ण याणए] रूप कुछ नहीं जानता है [तह्मा] इसलिये [णाणं अण्णं] ज्ञान अन्य है [रूवं अण्णं] रूप अन्य है ऐसा [जिणा विंति] जिनेंद्र भगवान कहते हैं। [वण्णो णाणं ण हवइ] वर्ण ज्ञान नहीं है [जह्मा] क्योंकि [वण्णो किंचि ण याणए] वर्ण कुछ जानता नहीं है [तह्मा] इसलिये [णाणं अण्णं] ज्ञान अन्य है [वण्णं अण्णं] वर्ण अन्य है ऐसा [जिणा विंति] जिनेंद्र देव कहते हैं। [गंधो] गंध [णाणं ण हवइ] ज्ञान नहीं है [जह्मा] क्योंकि [गंधो किंचि ण याणए] गंध कुछ नहीं जानता है [तह्मा] इसलिये [णाणं अण्णं] ज्ञान अन्य है [गंधं अण्णं] गंध अन्य है, ऐसा [जिणा विंति] जिनेंद्र देव कहते हैं [रसो दु णाणं ण हवइ] रस तो ज्ञान नहीं

ण रसो दु हवदि णाणं जह्मा दु रसो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं रसं य अण्णं जिणा विंति ॥ ४१७ ॥

॥ आ. ख्या. ३९५ ॥

फासो ण हवइ णाणं जह्मा फासो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं फासं जिणा विंति ॥ ४१८ ॥

॥ आ. ख्या. ३९६ ॥

कम्मं णाणं ण हवइ जह्मा कम्मं ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं कम्मं जिणा विंति ॥ ४१९ ॥

॥ आ. ख्या. ३९७ ॥

धम्मो णाणं ण हवइ जह्मा धम्मो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं धम्मं जिणा विंति ॥ ४२० ॥

॥ आ. ख्या. ३९८ ॥

णाणमधम्मो ण हवइ जह्मा धम्मो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णमधम्मं जिणा विंति ॥ ४२१ ॥

॥ आ. ख्या. ३९९ ॥

है [जह्मा] क्योंकि [रसो दु किंचि ण याणए] रस तो कुछ नहीं जानता है [तह्मा] इसलिये [णाणं अण्णं य] ज्ञान अन्य है और [रसं अण्णं] रस अन्य है, ऐसा [जिणा विंति] जिनेंद्र-देव कहते हैं । [फासो] स्पर्श [णाणं ण हवई] ज्ञान नहीं है [जह्मा] क्योंकि [फासो ण याणए किंचि] स्पर्श कुछ नहीं जानता है [तह्मा] इसलिये [णाणं अण्णं] ज्ञान अन्य है [फासं अण्णं] स्पर्श अन्य है ऐसा [जिणा विंति] जिनेंद्र देव कहते हैं [कम्मं] कर्म [णाणं ण हवइ] ज्ञान नहीं है [जह्मा] क्योंकि [कम्मं किंचि ण याणए] कर्म कुछ नहीं जानता है [तह्मा] इसलिये [णाणं अण्णं] ज्ञान अन्य है [कम्मं अण्णं] कर्म अन्य है ऐसा [जिणा विंति] जिनेंद्र देव कहते हैं । [धम्मो] धर्मास्तिकाय [णाणं ण हवइ] ज्ञान नहीं है [जह्मा] क्योंकि [धम्मो किंचि ण याणए] धर्मद्रव्य कुछ नहीं जानता है [तह्मा] इसलिये [णाणं अण्णं] ज्ञान अन्य है [धम्मं अण्णं] धर्मद्रव्य अन्य है ऐसा [जिणा विंति] जिनेंद्र-देव कहते हैं । [अधम्मो] अधर्मद्रव्य [णाणं ण हवइ] ज्ञान नहीं है [जह्मा] क्योंकि [अधम्मो किंचि ण याणए] अधर्मद्रव्य कुछ नहीं जानता है [तह्मा] इसलिये [णाणं अण्णं] ज्ञान अन्य है [अधम्मं अण्णं] अधर्मद्रव्य अन्य है ऐसा [जिणा विंति] जिनेंद्र देव कहते है । [कालो] कालद्रव्य [णाणं ण हवइ] ज्ञान नहीं है [जह्मा] क्योंकि [कालो किंचि ण याणए]

कालो णाणं ण हवइ जह्मा कालो ण याणए किंचि ।
तह्मा अण्णं णाणं अण्णं कालं जिणा विंति ॥ ४२२ ॥
॥ आ. ख्या. ४०० ॥

आयासंपि ण णाणं जह्मायासं ण याणए किंचि ।
तह्मायासं अण्णं अण्णं णाणं जिणा विंति ॥ ४२३ ॥
॥ आ. ख्या. ४०१ ॥

णज्झवसाणं णाणं अज्झवसाणं अचेदणं जह्मा ।
तह्मा अण्णं णाणं अज्झवसाणं तहा अण्णं ॥ ४२४ ॥
॥ आ. ख्या. ४०२ ॥

जह्मा जाणइ णिच्चं तह्मा जीवो दु जाणओ णाणी ।
णाणं च जाणयादो अव्वदिरित्तं मुणेयव्वं ॥ ४२५ ॥
॥ आ. ख्या. ४०३ ॥

णाणं सम्मादिट्ठिं दु संजमं सुत्तमंगपुव्वगयं ।
धम्माधम्मं च तहा पव्वज्जं अब्भुवंति बुहा ॥ ४२६ ॥
॥ आ. ख्या. ४०४ ॥

न श्रुतं ज्ञानं – अचेतनत्वात् ततो ज्ञानश्रुतयोर्व्यतिरेकः । न शब्दो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानशब्दयोर्व्यतिरेकः । न रूपं ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानरूपयोर्व्यतिरेकः । न वर्णो ज्ञानमचे-

---

कालद्रव्य कुछ नहीं जानता है [तह्मा] इसलिये [णाणं अण्णं] ज्ञान अन्य है [कालं अण्णं] कालद्रव्य अन्य है ऐसा [जिणा विंति] जिनेंद्रदेव कहते हैं । [आयासंपि णाणं ण] आकाशद्रव्य भी ज्ञान नहीं है [जह्मा] क्योंकि [आयासं किंचि ण याणए] आकाशद्रव्य कुछ नहीं जानता है [तह्मा] इसलिये [णाणं अण्णं] ज्ञान अन्य है [आयासं अण्णं] आकाशद्रव्य अन्य है ऐसा [जिणा विंति] जिनेंद्र भगवान कहते हैं । [णज्झवसाणं णाणं] अध्यवसान ज्ञान नहीं है [जह्मा] क्योंकि [अज्झवसाणं अचेदणं] अध्यवसान अचेतन है [तह्मा] इसलिये [णाणं अण्णं] ज्ञान अन्य है [अज्झवसाणं अण्णं तहा] तथा अध्यवसान अन्य है ऐसा जिनेंद्र भगवान कहते हैं । [जह्मा] क्योंकि [जीवो] जीव [णिच्चं] नित्य [जाणइ] जानता है [तह्मा] इसलिये [जाणओ जीवो दु] ज्ञायक जीव ही [णाणी] ज्ञानी है [च] और [णाणं] ज्ञान [जाणयादो] ज्ञायक से [अव्वदिरित्तं] अभिन्न है ऐसा [मुणेयव्वं] जानना चाहिये । [बुहा] ज्ञानीजन – गणधरदेव – जिनेंद्रदेव [णाणं दु] ज्ञान को ही [सम्मादिट्ठिं] सम्यग्दृष्टि [संजमं] संयम [अंगपुव्वगयं सुत्तं] अंगपूर्वगत सूत्र [धम्माधम्मं च] धर्म और अधर्म [तहा] तथा [पव्वज्जं] दीक्षा [अब्भुवंति] मानते हैं ।

टीकार्थ– श्रुत ज्ञान नहीं है क्योंकि श्रुत अचेतन है इसलिये ज्ञानमें और श्रुतमें भिन्नता है । शब्द ज्ञान नहीं है क्योंकि शब्द पुद्‌गलकी पर्याय है – अचेतन है इसलिये ज्ञानमें और शब्दमें भेद है । रूप ज्ञान नहीं है क्योंकि रूप–मूर्तिकत्व पुद्‌गलका गुण है–अचेतन है इसलिये रूपमें

तनत्वात् ततो ज्ञानवर्णयोर्व्यतिरेकः। न गंधो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानगंधयोर्व्यतिरेकः। न रसो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानरसयोर्व्यतिरेकः। न स्पर्शो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानस्पर्शयोर्व्यतिरेकः। न कर्म ज्ञानं अचेतनत्वात् ततो ज्ञानकर्मणोर्व्यतिरेकः। न धर्मो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानधर्मयोर्व्यतिरेकः। नाधर्मो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाधर्मयोर्व्यतिरेकः। न कालो ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानकालयोर्व्यतिरेकः। नाकाशं ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाकाशयोर्व्यतिरेकः। नाध्यवसानं ज्ञानमचेतनत्वात् ततो ज्ञानाध्यवसानयोर्व्यतिरेकः। इत्येवं ज्ञानस्य सर्वैरेव परद्रव्यैः सह व्यतिरेकः निश्चयसाधितो द्रष्टव्यः। अथ जीव एवैको ज्ञानं चेतनत्वात् ततो ज्ञानजीवयोरेवाव्यतिरेकः। न च जीवस्य स्वयं ज्ञानत्वात् ततो व्यतिरेकः कश्चनापि शंकनीयः। एवं सति ज्ञानमेव सम्यग्दृष्टिः, ज्ञानमेव संयमः, ज्ञानमेवांगपूर्वरूपं सूत्रं, ज्ञानमेव धर्माधर्मौ, ज्ञानमेव प्रव्रज्येति ज्ञानस्य जीवपर्यायैरपि सहाव्यतिरेको निश्चयसाधितो द्रष्टव्यः। अथैवं सर्वपरद्रव्यव्यतिरेकेण सर्वदर्शनादिजीवस्वभावाव्यतिरेकेण चातिव्याप्तिमव्याप्तिं च परिहरमाणमनादिविभ्रममूलं धर्मा-

---

और ज्ञानमें भिन्नता है। वर्ण ज्ञान नहीं है क्योंकि वर्ण पुद्गलका गुण है– अचेतन है इसलिये वर्ण में और ज्ञानमें भिन्नता है। गंध ज्ञान नहीं है क्योंकि गंध पुद्गलका गुण है अचेतन है इसलिये रसमें और ज्ञानमें भिन्नता है। स्पर्श ज्ञान नहीं है क्योंकि स्पर्श अचेतन है इसलिये स्पर्शमें और ज्ञानमें भिन्नता है। कर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि कर्म अचेतन है, इसलिये कर्ममें और ज्ञानमें भिन्नता है। धर्मद्रव्य ज्ञान नहीं है क्योंकि धर्मद्रव्य अचेतन हैं, इसलिये धर्मद्रव्यमें और ज्ञानमें भिन्नता है। अधर्मद्रव्य ज्ञान नहीं हैं क्योंकि अधर्मद्रव्य अचेतन है, इसलिये अधर्मद्रव्यमें और ज्ञानमें भिन्नता है। कालद्रव्य ज्ञान नहीं है क्योंकि कालद्रव्य अचेतन है, इसलिये कालद्रव्यमें और ज्ञानमें भिन्नता है। आकाशद्रव्य ज्ञान नहीं है क्योंकि आकाशद्रव्य अचेतन है, इसलिये आकाशद्रव्यमें और ज्ञानमें भिन्नता है। अध्यवसान ज्ञान नहीं है क्योंकि अध्यवसान अचेतन है, इसलिये अध्यवसानमें और ज्ञानमें भिन्नता है। इस प्रकार ज्ञान का सब ही परद्रव्योंके साथ व्यतिरेक है, वह निश्चयसाधित देखना चाहिये।

अब, जीव ही एक ज्ञान है क्योंकि जीव चेतन है, इसलिये जीवमें और ज्ञानमें ही अभेद है। जीवका स्वयं ज्ञानपना होनेसे जीव और ज्ञानमें कुछ भी भेद शंकनीय नहीं है।

इसप्रकार ज्ञान ही सम्यग्दृष्टि है, ज्ञान ही संयम है, ज्ञान ही अंगपूर्वरूप सूत्र है, ज्ञान ही धर्माधर्म है, ज्ञान ही दीक्षा है। ज्ञानका जीवपर्यायोंके साथ भी अभेद है वह निश्चयसाधित देखना चाहिये।

अब, इसप्रकार सब परद्रव्योंके साथ तो व्यतिरेक होनेसे तथा सब दर्शनादि जीवस्वभावोंके साथ अभेद होनेसे अतिव्याप्ति और अव्याप्ति दोषको दूर करता हुआ, अनादिविभ्रममूल धर्माधर्मरूप परसमयको दूर करके स्वयं ही प्रवज्यारूप (निश्चयचारित्र को)

धर्मरूपं परसमयमुद्वम्य स्वयमेव प्रव्रज्यारूपमासाद्य दर्शनज्ञानचारित्रस्थितिस्वरूपं स्वसमयमवाप्य मोक्षमार्गमात्मन्येव परिणतं कृत्वा समवाप्तसंपूर्णविज्ञानघनभावं हानोपादानशून्यं साक्षात्समयसारभूतं परमार्थरूपं शुद्धज्ञानमेकमेवावस्थितं द्रष्टव्यं । अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं बिभ्रत्पृथग्वस्तुतामादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथावस्थितं । मध्याद्यंतविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभास्वरः शुद्धज्ञानघनो यथास्य महिमा नित्योदितस्तिष्ठति ।। १ ।। – ।। आ. ख्या. कलश २३५ ।। उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्तथात्तमादेयमशेषतस्तत् । यदात्मनः संहृतसर्वशक्तेः पूर्णस्य संधारणमात्मनीह ।। २ ।। – ।। आ. ख्या. कलश २३६ ।। तपश्चरणं च यत् केन नयेन एतत्सर्वं ज्ञानं मन्यते ? इति चेत्, मिथ्यादृष्टयादिक्षीणकषायपर्यंतस्वकीयस्वकीयगुणस्थानयोग्यशुभाशुभशुद्धोपयोगाविनाभूतविवक्षिताशुद्धनिश्चयनयेनाशुद्धोपादानरूपेणेति । ततः स्थितं शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुद्धोपादानरूपेण जीवादिव्यावहारिकनवपदार्थेभ्यो भिन्नमादि-

---

प्राप्त करके, दर्शनज्ञानचारित्रमें स्थितिस्वरूप स्वसमय को व्यापकर आत्मा में ही मोक्षमार्ग के परिणाम कर के जिसने संपूर्ण विज्ञानघनस्वभाव प्राप्त किया है ऐसा त्याग ग्रहण से रहित साक्षात् समयसारभूत परमार्थरूप शुद्ध एक ज्ञान ही अवस्थित हुआ देखना अर्थात् प्रत्यक्ष स्वसंवेदन–अनुभव करना चाहिये ।

आत्मख्याति कलश – २३५ का अर्थ–

यह ज्ञान उस तरह अवस्थित हुआ है जैसे इसकी महिमा निरंतर उदित रहे, प्रतिपक्षी कर्म न रहे । अन्य परद्रव्योंसे भिन्न अवस्थित हुआ है अपने में ही निश्चित है पृथक् वस्तुत्व धारणा करता हुआ है अर्थात् वस्तु का स्वरूप सामान्यविशेषात्मक है सो ज्ञानने भी सामान्य विशेषात्मकपनेको धारण कर रक्खा है, ग्रहण त्यागसे रहित है, रागादिक मलसे रहित है । और इसकी महिमा नित्य उदयरूप ठहर रही है । आदि मध्य अंत जो भेद है उनसे रहित स्वाभाविक विस्ताररूप हुअे प्रकाश कर दैदीप्यमान है और शुद्धज्ञानका समूह है । ऐसी जिसकी महिमा सदा उदयमान है, उस तरह ठहरा हुआ है ।

आत्मख्याति कलश २३६ का अर्थ–

जिसने सब शक्तियाँ समेंट ली है, ऐसे पूर्ण स्वरूप आत्मा का आत्मामें ही धारण करना वही तो छोडने योग्य छोडा और जो ग्रहण करने योग्य था सो सब ग्रहण कर लिया ।

शंका– और जो तपश्चरण आदि है उन सब को किस नयसे ज्ञान माना जाता है ?

समाधान– मिथ्यादृष्टयादिक्षीणकषायपर्यंत अपने अपने गुणस्थान योग्य, शुभ अथवा अशुभ अथवा शुद्ध उपयोगके साथ अविनाभाव है वह विवक्षित अशुद्धनयसे अशुद्ध उपादानसे उन सब को ज्ञान माना जाता है ।

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि, शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकवाले, शुद्धोपादानवाले शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे जो जीवादिव्यावहारिकनवपदार्थोंसे भिन्न है, वह आदिमध्यअंत से रहित

मध्यांतमुक्तमेकमखंडप्रतिभासमयं निजनिरंजनसहजशुद्धपरमसमयसाराभिधानं सर्वप्रकारोपादेयभूतं शुद्धज्ञानस्वभावं शुद्धात्मतत्त्वमेव श्रद्धेयं ज्ञेयं ध्यातव्यमिति। एवं व्यावहारिकनवपदार्थमध्ये भूतार्थनयेन शुद्धजीव एक एव वास्तवः स्थित इति व्याख्यानमुख्यत्वेन एकादशस्थले पंचदश गाथा गताः।

किंच – मत्यादिसंज्ञानपंचकं पर्यायरूपं तिष्ठति शुद्धपारिणामिकभावस्तु द्रव्यरूपः। जीवपदार्थो हि न च केवलं द्रव्यं, न च पर्यायः, किंतु परस्परसापेक्षद्रव्यपर्यायधर्माधर्माधारभूतो धर्मी। तत्रेदानीं केन ज्ञानेन मोक्षो भवतीति विचार्यते – केवलज्ञानं तावत्फलभूतमग्रे भविष्यति। अवधिमनःपर्ययज्ञानद्वयं च 'रूपिष्ववधेः। तदनंतभागे मनःपर्ययस्य' इति वचनात् मूर्तविषयत्वादेव मूर्तः मोक्षकारणं न भवति ततः सामर्थ्यादेव बहिर्विषयमतिज्ञानश्रुतविकल्परहितत्वेन स्वशुद्धात्माभि-

---

एक अखंडप्रतिभासमय निजनिरंजनसहजशुद्धपरमसमयसार नामवाला है, सर्वप्रकारसे उपादेयभूत है, शुद्धज्ञानस्वभाव है, शुद्धात्मतत्त्व है, वह ही श्रद्धा करने योग्य है, जानने योग्य है और उसका ही ध्यान करना चाहिये।

इसप्रकार व्यावहारिक जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन नवपदार्थोंमें भूतार्थनयसे एक ही शुद्धजीव वास्तव-वास्तविक स्थित है। (ऐसा ही समयसार गाथा– १५ में कहा है– भूदत्थेणभिगदा जीवाजीव य पुण्णपावं च। आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं॥ इस कथनकी मुख्यतासे ग्यारहवे स्थलमें १५ गाथायें पूर्ण हुयी।

इसका विशेष स्पष्टीकरण यह है कि, मतिश्रुतावधिमनःपर्यय और केवलज्ञान ये पांच ज्ञान पर्यायरूप है। और शुद्धपारिणामिकभाव द्रव्यरूप है। और जीवपदार्थ केवल द्रव्य नहीं हैं, और केवल पर्याय नहीं है किंतु परस्परसापेक्ष द्रव्यपर्यायधर्माधर्म के आधारभूत धर्मी है (द्रव्यमें वस्तुमें द्रव्यपर्यायरूप नित्यानित्य है, उसमें स्वभावभूत परिणामिकभाव धर्मरूप है और औदयिकउपशमक्षायोपशमिकक्षायिक ये भाव अधर्मरूप है अथवा द्रव्यस्वभावका आश्रय करनेसे आकुलता नष्ट होती है इसलिये धर्म है और पर्याय का आश्रय करनेसे आकुलता-दुःख होता है इसलिये अधर्म हैं, अथवा द्रव्यपर्यायरूप याने नित्यानित्यात्मकवाले धर्मके साथ आधर्म याने अनंतधर्म है इन सब धर्मोंका आधारभूत धर्मी – याने द्रव्य है।) यहाँ इनमेंसे किसका अवलंबन लेनेसे मोक्ष होता है ? इसका विचार किया जाता है–

केवलज्ञान पर्यायरूप फल आगे भविष्यमें होगा। और अवधिमनःपर्यय ये दो ज्ञान है– उनके बारेमें 'रुपिष्ववधेः। तदनंतभागे मनःपर्ययस्य' इस प्रकार आगमका वचन है इसलिये अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान इन दोनोंका मूर्तिकही विषय होनेसे मूर्तविषयको जानते हैं, इसलिये अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान मोक्षका कारण नहीं है। इसलिये सामर्थ्यसे ही यह बात सिद्ध हुयी कि, बाह्यविषयक मतिज्ञानश्रुतज्ञानके विकल्पोंसे रहितपनासे जो ज्ञान अपने स्वभावशुद्धात्माके अभिमुखपरिच्छित्तिलक्षणवाले (अपने स्वभावशुद्धात्माको जाननेवाले) निश्चयनिर्विकल्प

मुखपरिच्छित्तिलक्षणं निश्चयनिर्विकल्पभावरूपमानसमतिज्ञानश्रुतज्ञानसंज्ञं पंचेंद्रियाविषयत्वेनातींद्रियं शुद्धपारिणामिकभावविषये तु या भावना तद्रूपं निर्विकारस्वसंवेदनशब्दवाच्यं संसारिणां क्षायिकज्ञानाभावात् क्षायोपशमिकमपि विशिष्टभेदज्ञानं मुक्तिकारणं भवति। कस्मात्? इति चेत्, समस्तमिथ्यात्वरागादिविकल्पोपाधिरहितस्वशुद्धात्मभावनोत्थपरमाल्हादैकलक्षणसुखामृतरसास्वादैकाकारपरमसमरसीभावपरिणामेन कार्यभूतस्यानंतज्ञानसुखादिरूपस्य मोक्षफलस्य विवक्षितैकशुद्धनिश्चयनयेन शुद्धोपादानकारणत्वादिति। तथा चोक्तं– "भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन। तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन" ॥ आ. ख्या. कलश १३१ ॥ ४१२, ४१३, ४१४, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४२६ ॥

भावरूपमानसमतिज्ञानश्रुतज्ञान नामवाले हैं, वे दोनों पंचेंद्रियोंके विषयोंको न जाननेसे अतींद्रिय ज्ञान है, और शुद्धपारिणामिकभावको विषय करनेवाली जो भावना (ज्ञान) है, शुद्धपरिणामिकभावके साथ तन्मय (तद्रूप) होनेसे उसको निर्विकारस्वसंवेदन (स्वानुभूति) शब्दसे कहते हैं, संसारिजीवोंको क्षायिकज्ञानका अभाव होनेसे वह निर्विकारस्वसंवेदनवाला क्षायोपशमिकज्ञान भी विशिष्टभेदज्ञानवाला है, वह ज्ञान मुक्तिका कारण है।

शंका– संसारी जीवोंका निर्विकारस्वसंवेदन (स्वानुभूति) वाला मतिश्रुतज्ञानजनित क्षायोपशमिकज्ञान भी मुक्तिका कारण क्यों है?

समाधान– आगमभाषासे समस्तमिथ्यात्वरागादिविकल्पोंकी उपाधिसे रहित परिणामसे कार्यभूत अनंतज्ञानसुखादिवाले मोक्षफलके विवक्षित एकशुद्धनिश्चयनयसे शुद्धउपादानका कारण होनेसे क्षायोपशमिकवाला सम्यक्मतिश्रुतज्ञान (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीवका ज्ञान) मुक्तिका कारण है अर्थात् अध्यात्मभाषासे (स्वानुभवसे) स्वशुद्धात्मभावनासे (स्वानुभवसे) उत्पन्न होनेवाले, परमाह्लाद एक लक्षणवाले सुखामृतरसास्वादैकाकारपरमसमरसीभावसे कार्यभूत अनंतज्ञानसुखादिवाले मोक्षफलके विवक्षितैकशुद्धनिश्चयनयसे शुद्ध उपादानका कारण होनेसे क्षायोपशमिकवाला सम्यक्मतिश्रुतज्ञान (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीवका स्वानुभव ज्ञान) मुक्तिका कारण है।

आत्मख्याति कलश– १३१ में श्री अमृतचंद्राचार्य कहते हैं कि "भेदविज्ञानतः" इत्यादि अर्थात् जो कोई सिद्ध हुअे हैं वे इस भेदविज्ञानसे ही हुअे है और जो कर्मसे बंधे हुअे हैं वे इसी भेदविज्ञानके अभावमें बंधे हुअे है।

भावार्थ– श्रीजयसेनाचार्यजी आगमभाषा और अध्यात्मभाषाका मिलान दिखाते हुअे कहते हैं कि, स्वानुभूतिसे ही सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, याने स्वानुभूति होती है तो ही दर्शनमोहनीयके प्रकृतियोंका उपशमक्षयोपशम होता है, स्वानुभूति नहीं होती तो मिथ्यादृष्टि है, वह चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती नहीं है ॥ ४१२, ४१३, ४१४, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४२६ ॥

अतः परमेवं सति शुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मतत्त्वस्य देह एव नास्ति कथमाहारो भविष्यतीत्युपदिशति–

अत्ता जस्स अमुत्तो ण हु सो आहारगो हवदि एवं ।
आहारो खलु मुत्तो जह्मा सो पुग्गलमओ दु ॥ ४२७ ॥

॥ आ. ख्या. ४०५ ॥

ण वि सक्कदि घित्तुं जे ण मुंचिदुं चेव जं परं दव्वं ।
सो कोवि य तस्स गुणो पाउग्गिय विस्ससो वापि ॥ ४२८ ॥

॥ आ. ख्या. ४०६ ॥

तह्मा उ जो विसुद्धो चेया सो णेव गिह्लदे किंचि ।
णेव विमुंचइ किंचिवि जीवाजीवाण दव्वाणं ॥ ४२९ ॥

॥ आ. ख्या. ४०७ ॥

अत्ता जस्स अमुत्तो आत्मा यस्य शुद्धनयस्याभिप्रायेण मूर्तो न भवति **ण हु सो आहारगो हवदि एवं** स एवममूर्तत्वे सति हु स्फुटं तस्य शुद्धनयस्याभिप्रायेणाहारको न भवति । **आहारो**

जब कि शुद्धबुद्धएकस्वभाववाले परमात्मतत्वको देह ही नहीं है, तब उसको आहार कैसे होगा ? यह बतलाते हैं–

गाथार्थ– [**एवं**] इसप्रकार [**जस्स अत्ता अमुत्तो**] जिसका आत्मा अमूर्तिक है [**सो हु**] वह निश्चयसे [**आहारगो ण हवदि**] आहारक नहीं है] **जह्मा**] क्योंकि [**आहारो खलु मुत्तो**] आहार मूर्तिक है [**सो दु पुग्गलमओ**] वह तो पुद्गलमय है । [**जं परं दव्वं**] जो परद्रव्य है [**जे घित्तं य मुंचिदुं वि ण सक्कदि**] वह ग्रहण भी नहीं किया जा सकता और वह छोडा भी नहीं जा सकता [**सो कोवि य तस्स गुणो**] वह कोओ ऐसा ही आत्माका गुण [**पाउग्गिय वापि विस्ससो**] प्रायोगिक तथा वैस्रसिक है [**तह्मा दु**] इसलिये [**जो विसुद्धो चेदा**] जो विशुद्ध आत्मा है [**सो**] वह [**जीवाजीवाण दव्वाणं**] जीव-अजीव परद्रव्यमेंसे [**किंचि णेव गिह्लदे**] किसी को भी न तो ग्रहण ही करता है [**किंचि वि णेव विमुंचइ**] और न किसी को भी छोडता है ।

टीकार्थ– जिस शुद्धनयके अभिप्रायसे आत्मा मूर्त्त नहीं है– याने अमूर्त्त है इसप्रकार आत्मा अमूर्त्त होनेसे उस शुद्धनयके अभिप्रायसे आहारक नहीं है । क्योंकि आहार तो स्पष्टरूपसे मूर्त्त है (मूर्तिक है) क्योंकि वह नोकर्म आदि आहार पुद्गलमय है । वह कोओ उस आत्माका प्रायोगिक और वैस्रसिक गुण है । प्रायोगिक याने कर्मसंयोगजनित और वैस्रसिक याने स्वभावमय ।

खलु मुत्तो आहारः । कथंभूतः ? खलु स्फुटं मूर्तः । **जह्मा सो पुग्गलमओ दु** यस्मात् स नोकर्माद्याहारः पुद्गलमयः । **सो कोवि य तस्स गुणो** स कोपि तस्य गुणोऽस्त्यात्मनः । कथं ? **पाउग्गिय विस्ससो वावि** प्रायोगिको वैश्रसिकश्चेति । प्रायोगिकः कर्मसंयोगजनितः । वैस्रसिकः स्वभावजः । येन गुणेन किं करोति ? **ण वि सक्कदि घित्तुं जे ण मुञ्चिदुं चेव जं परं दव्वं** परद्रव्यमाहारादिकं गृहितुं मोक्तुं च न शक्नोति । अहो हे भगवन् ! कर्मजनितप्रायोगिकगुणेन आहारं गृह्णंतस्ते च कथमनाहारका भवंति इति । हे शिष्य ! भद्रमुक्तं त्वया परं किंतु निश्चयेन तन्मयो न भवति स व्यवहारनयः । इदं तु निश्चयव्याख्यानमिति । **तह्मा दु जो विशुद्धो चेदा** यस्मान्निश्चयनयेनानाहारकः तस्मात्कारणात् यस्तु विशेषेण शुद्धो रागादिरहितश्चेतयितात्मा **सो णेव गिह्णदे किंचि णेव विमुंचदि किंचिवि जीवाजीवाण दव्वाणं** कर्माहार-नोकर्माहार-कवलाहार-लेप्याहार-ओज-आहारमानसाहाररूपेण जीवाजीवद्रव्याणां मध्ये सचित्ताचित्ताहारं नैव किंचिद् गृह्णाति न मुंचति । ततः कारणान्नोकर्माहारमयशरीरं जीवस्वरूपं न भवति । शरीराभावे शरीरमयद्रव्यलिंगमपि जीवस्वरूपं न भवति इति । एवं निश्चयेन जीवस्याहारो नास्ति, इति व्याख्यानमुख्यत्वेन द्वादशस्थले गाथात्रयं गतं ॥ ४२७, ४२८, ४२९ ॥

अथैवं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावस्य परमात्मनो नोकर्माहाराद्यभावे सत्याहारमयदेहो नास्ति । देहाभावे देहमयं द्रव्यलिंगं निश्चयेन मुक्तिकारणं न भवतीति प्रतिपादयति—

शंका— उस गुणसे आत्मा क्या करता है ?

समाधान— उससे आत्मा आहारादिक परद्रव्यको ग्रहण नहीं कर सकता और छोड नहीं सकता ।

शंका— हे भगवन् ! कर्मजनितप्रायोगिक गुणसे आहारको ग्रहण किया जाता है, तो वे अनाहारक कैसे होते हैं ?

समाधान— हे शिष्य ! आपने जो कहा है सो ठीक ही कहा है, किन्तु निश्चयनयसे आत्मा उन आहार के साथ तन्मय नहीं है वह व्यवहारनय है । लेकिन यह तो निश्चयनयका कथन है । क्योंकि निश्चयनयसे आत्मा अनाहारक है । इस कारणसे विशेषसे जो रागादिरहित चैतन्य आत्मा शुद्ध है वह कर्माहार, नोकर्माहार, कवलाहार, लेप्याहार, ओज आहार, मानस आहाररूपसे जीव अजीव द्रव्योंमें से सचित्ताचित्त आहारको कुछ भी ग्रहण नहीं करता है और कुछ भी नहीं छोडता है इसलिये नोकर्म आहारमय शरीर जीवका स्वरूप नहीं है । शरीरके अभावमें शरीरमय द्रव्यलिंग भी जीवका स्वरूप नहीं है ।

इसप्रकार निश्चयनयसे जीवके आहार नहीं है, इस कथनकी मुख्यतासे बारहवे स्थलमें तीन गाथायें पूर्ण हुओ ॥ ४२७, ४२८, ४२९ ॥

अब, इसप्रकार विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाववाले परमात्माको नोकर्म आहारादिका अभाव होनेसे आहारमय देह नहीं है । निश्चयनयसे देह का अभाव होनेसे देहमय द्रव्यलिंग मुक्तिका कारण नहीं है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं—

पाखंडीलिंगाणि य गिहलिंगाणिय बहुप्पयाराणि ।
घित्तुं वदंति मूढा लिंगमिणं मोक्खमग्गो त्ति ।। ४३० ।।

।। आ. ख्या. ४०८ ।।

ण उ होदि मोक्खमग्गो लिंगं जं देहणिम्ममा अरिहा ।
लिंगं मुइत्तु दंसणणाणचरित्ताणि सेवंते ।। ४३१ ।।

।। आ. ख्या. ४०९ ।।

पाखंडीलिंगानि गृहस्थलिंगानि च बहुप्रकाराणि गृहीत्वा वदंति मूढाः । किं वदंति ? इदं द्रव्यमयलिंगमेव मुक्तिकारणं । कथंभूताः संताः ? रागादिविकल्पोपाधिरहितं परमसमाधिरूपं भावलिंगमजानंतः **ण य होदि मोक्खमग्गो लिंगं** भावलिंगरहितं द्रव्यलिंगं केवलं मोक्षमार्गो न भवति । कस्मात् ? इति चेत्, **जं** यस्मात्कारणात् **देहणिम्ममा अरिहा** अर्हंतो भगवंतो देहनिर्ममाः संतः । किं कुर्वंति ? **लिंगं मुइत्तु** लिंगाधारं यच्छरीरं तस्य शरीरस्य यन्ममत्वं तन्मनोवचनकायैर्मुक्त्वा । पश्चात् **दंसणणाणचरित्ताणि सेवंते** चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मतत्त्वविषये यानि श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाणि सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणि तानि सेवंते भावयंतीत्यर्थः ।। ४३०, ४३१ ।।

गाथार्थ– [**पाखंडीलिंगाणि**] पाखंडी लिंग [**य**] और [**गिहलिंगाणि य**] गृहस्थलिंग ऐसे [**बहुप्पयाराणि**] बहुतप्रकारके बाह्य लिंग है उनको [**घित्तुं**] ग्रहण करके [**मूढा त्ति वदंति**] अज्ञानी लोग ऐसा कहते हैं कि [**इणं लिंगं**] यह लिंग ही [**मोक्खमग्गो**] मोक्षमार्ग है । आचार्य कहते हैं कि [**लिंगं**] लिंग [**मोक्खमग्गो ण होदि**] मोक्षका मार्ग नहीं है [**जं**] क्योंकि [**अरिहा उ**] अर्हंत देव भी [**देहणिम्ममा**] देहसे निर्ममत्व हुअे [**लिंगं मुइत्तु**] लिंग को छोडकर [**दंसणणाणचरित्ताणि सेवंते**] दर्शनज्ञानचारित्रका ही सेवन करते हैं ।

टीकार्थ– रागादिविकल्पोंके उपाधिसे रहित परमसमाधिरूप भावलिंगका न अनुभव करते हुअे (न जानते हुअे) बहुत प्रकारके पाखंडीलिंग और गृहस्थलिंगोंको धारण करके अज्ञानी लोग कहते हैं कि, " यह द्रव्यमयलिंग ही मुक्तिका कारण है । " तो आचार्य देव कहते हैं कि, " भावलिंगरहित (स्वानुभवरहित) केवल द्रव्यलिंग मोक्षमार्ग नहीं है । क्योंकि अर्हंत भगवान देहसे निर्ममत्व होकर, लिंगका आधार जो शरीर है, उसके ममत्वको मनवचनकायसे छोड़कर सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रोंकी सेवा करते हैं अर्थात् चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मतत्त्वके विषयमें जो श्रद्धानज्ञानानुचरण है, उन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रका अनुभव करते हैं (सेवन करते हैं) । ।। ४३०, ४३१ ।।

अथैतदेव व्याख्यानं विशेषेण दृढयति–

ण वि एस मोक्खमग्गो पाखंडीगिहमयाणि लिंगाणि ।
दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा विंति ।। ४३२ ।।

।। आ. ख्या. ४१० ।।

ण वि एस मोक्खमग्गो न चैष मोक्षमार्गः । एषः कः ? **पाखंडिगिहमयाणि लिंगाणि** निर्विकल्पसमाधिरूपभावलिंगान्निरपेक्षाणि रहितानि यानी पाखंडिगृहिमयानि द्रव्यलिंगानि । कथंभूतानि ? निर्गंथकौपीनग्रहणरूपाणि बहिरंगाकारचिन्हानि । तर्हि को मोक्षमार्गः ? इति चेत्, **दंसणणाणचारित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा विंति** शुद्धबुद्धैकस्वभाव एव परमात्मतत्त्वश्रद्धानज्ञानानुभूतिरूपाणि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गं जिना वदंति कथयंति ।। ४३२ ।।

अब इसी बातको फिर विशेषरूपसे दृढ़ करते हैं–

गाथार्थ– [**पाखंडीगिहमयाणि लिंगाणि**] पाखंडी मुनिलिंग और गृहस्थलिंग [**एस**] यह [**मोक्खमग्गो**] मोक्षमार्ग [**ण वि**] ही नहीं है [**दंसणणाणचरित्ताणि**] दर्शनज्ञानचारित्र [**मोक्खमग्गं**] मोक्षमार्ग है [**जिणा विंति**] ऐसा जिनेंद्रदेव कहते हैं ।

टीकार्थ– यह मोक्षमार्ग ही नहीं है ।

शंका– कौनसा मोक्षमार्ग नहीं है ?

समाधान– निर्विकल्पसमाधिवाले भावलिंगसे निरपेक्ष याने स्वानुभूतिसे रहित जो निर्ग्रंथ मुनि, ऐलक, क्षुल्लक और जिनानुयायी मानकर जिनेंद्र देवगुरुशास्त्रकी वंदनापूजादि करनेवाले अव्रती गृहस्थ बाह्याकारचिन्हवाले हैं, वे द्रव्यलिंग मोक्षमार्ग नहीं हैं । (वे बाह्यचिन्हवाले मुनि, ऐलक, क्षुल्लक आदि मोक्षमार्गस्थ नहीं है ।)

शंका– तो फिर मोक्षमार्ग कौनसा है ?

समाधान– शुद्धबुद्ध एक स्वभाव ही परमात्मतत्त्व है, उसका श्रद्धानज्ञानानुभूतिवाला सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र मोक्षमार्ग है, ऐसा जिनेंद्रदेव कहते हैं ।

भावार्थ– जिसने कभी वस्तुस्वरूप जानकर स्वानुभूति नहीं ली, लेकिन जिनेंद्रभगवानकथित देवगुरुशास्त्र का वंदन, पूजा, व्रत, महाव्रत पालन करते हैं । वे मोक्षमार्गस्थ नहीं हैं । बहिरंग आकार, बाह्यचिन्ह, अव्रत और व्रत मोक्षमार्ग नहीं है । वस्तुस्वरूप जानकर स्वानुभव करना ही मोक्षमार्ग है । वह ही परमात्मतत्त्वका सम्यक्श्रद्धानज्ञानचारित्रवाला मोक्षमार्ग है ।। ४३२ ।।

यत एवं-

तह्मा जहित्तु लिंगे सागारणगारिएहिं वा गहिदे ।
दंसणणाणचरित्ते अप्पाणं जुंज मोक्खपहे ॥ ४३३ ॥

॥ आ. ख्या. ४११ ॥

तह्मा जहित्तु लिंगे सागारिणगारिएहिं वा गहिदे यस्मात्कारणात्पूर्वोक्तप्रकारेण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गं जिनाः प्रतिपादयंति तस्मात्त्यक्त्वा । कानि ? निर्विकारस्वसंवेदनरूपभावलिंगरहितानि सागारानगारवर्गैः समूहैः- गृहितानि बहिरंगाकारद्रव्यलिंगानि । पश्चात् किं कुरु ? **दंसणणाणचरित्ते अप्पाणं जुंज मोक्खपहे** हे भव्य ! आत्मानं योजय संबंधं कुरुष्व । क्व? केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयस्वरूपशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयलक्षणे मोक्षपथे मोक्षमार्गे ॥ ४३३ ॥

अथ निश्चयरत्नत्रयात्मकः शुद्धात्मानुभूतिलक्षणो मोक्षमार्गो मोक्षार्थिना पुरुषेण सेवितव्य इत्युपदिशति-

---

जिससे इसप्रकार आचार्यदेव कहते हैं-

गाथार्थ- [**तह्मा**] इसकारण [**सागारणगारिएहिं वा**] गृहस्थोंके अथवा मुनियोंके [**गहिदे लिंगे**] ग्रहण किये गये लिंगोंको [**जहित्तु**] मोक्षमार्ग मानना छोडकर [**अप्पाणं**] अपने आत्माको [**दंसणणाणचरित्ते**] दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप [**मोक्खपहे**] मोक्षमार्गमें [**जुंज**] युक्त करो ।

टीकार्थ- पूर्वोक्त प्रकारसे जिस कारणसे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र ही मोक्षमार्ग है ऐसा जिनेंद्रदेव कहते हैं, इसलिये निर्विकारस्वसंवेदनवाले (स्वानुभूतिवाले) भावलिंगसे रहित रहनेवाले (अव्रती गृहस्थ से लेकर मुनितक का समूह) जो बहिरंग आकारवाला द्रव्यलिंग ग्रहण करके मोक्षमार्ग मानते हैं, उस मान्यताको छोडकर हे भव्य ! केवलज्ञानादि अनंतचतुष्टयस्वभाववाले स्वशुद्धात्माके सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूप अभेदरत्नत्रयलक्षणवाले (स्वानुभूतिवाले) मोक्षमार्गमें आत्माका संबंध करो (जोडो) ।

भावार्थ- यहाँ द्रव्यलिंग को छुडाकार दर्शन, ज्ञान और चारित्रमें लगानेका वचन है । सो यह सामान्य परमार्थ वचन है । मुनि और अव्रती गृहस्थके क्रियाको छोडनेका उपदेश है याने जो केवल द्रव्यलिंग- बाह्यक्रियाको ही मोक्षमार्ग जानकर भेष धारण करते हैं, उनके द्रव्यलिंगका-बाह्यक्रियाका पक्ष छुडाया है कि भेषमात्रसे मोक्ष नहीं है परमार्थरूप मोक्षमार्ग आत्माके दर्शनज्ञानचारित्ररूप परिणाम ही है ॥ ४३३ ॥

अब, मोक्षकी भावना करनेवाले (अव्रती और व्रती) जीवके द्वारा निश्चयरत्नत्रयात्मक शुद्धात्मानुभूतिवाले मोक्षमार्ग का सेवन करना चाहिये, ऐसा कहते हैं-

मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि चेदयहि झायहि तं चेव ।
तत्थेव विहर णिच्चं मा विहरसु अण्णदव्वेसु ।। ४३४ ।।

।। आ. ख्या. ४१२ ।।

मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि हे भव्य ! आत्मानं स्थापय । क्व विषये ? शुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयस्वरूपे मोक्षपथे । **चेदयहि** तमेव मोक्षपथं चेतयस्व परमसमरसीभावेन अनुभवस्व **झायहि तं चेव** तमेव ध्याय निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा भावय । **तत्थेव विहर णिच्चं** तत्रैव विहर वर्तनापरिणतिं कुरु । नित्यं सर्वकालं **मा विहरसु अण्णदव्वेसु** दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंधादिपरद्रव्यालंबनोत्पन्नशुभाशुभसंकल्पविकल्पेषु मा विहार्षीः, मा गच्छ, मा परिणतिं कुर्विति ।। ४३४ ।।

अथ सहजशुद्धपरमात्मानुभूतिलक्षणभावलिंगरहिता ये द्रव्यलिंगे ममतां कुर्वंति तेऽद्यापि समयसारं न जानंतीति प्रकाशयति—

पाखंडीलिंगेसु व गिहलिंगेसु व बहुप्पयारेसु ।
कुव्वंति जे ममत्तिं तेहिं ण णादं समयसारं ।। ४३५ ।।

।। आ. ख्या. ४१३ ।।

गाथार्थ— [**मोक्खपहे**] मोक्षमार्गमें [**अप्पाणं**] अपने आत्माको [**ठवेहि**] स्थापन कर [**तं चेव चेदयहि झायहि**] उसीका अनुभव कर और उस ही का ध्यान कर [**तत्थेव**] वहीं पर [**णिच्चं**] नित्य [**विहर**] विहार कर [**अण्णदव्वेसु मा विहरसु**] अन्यद्रव्योंमें विहार मत कर ।

टीकार्थ— हे भव्य ! शुद्धदर्शनज्ञानस्वभावमय आत्मतत्त्वका सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूप अभेदरत्नत्रयस्वरूप (स्वानुभवमय) मोक्षमार्गमें आत्माको स्थापन कर । उस ही मोक्षपथ का परमसमरसीभावसे अनुभव करो और उसका ही ध्यान करो, निर्विकल्पसमाधिमें स्थिर रहकर उसकी ही अनुभूति-भावभासना कर । वहाँपर ही नित्य विहार करो-आचरण करो । और दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबंध आदि परद्रव्यके आलंबनसे उत्पन्न होनेवाले शुभ-अशुभ संकल्पविकल्पोंमें विहार मत कर, मत जा, परिणति मत कर ।। ४३४ ।।

अब सहजशुद्धपरमात्मानुभूतिलक्षणवाले भावलिंगसे रहित जो जीव द्रव्यलिंगमें—बाह्यचिन्होंमें ममता करते हैं वे अद्यापि समयसारको नहीं जानते हैं (याने मिथ्यादृष्टि हैं), ऐसा प्रगट करते हैं—

गाथार्थ— [**जे**] जो जीव [**पाखंडीलिंगेसु व**] पाखंडीलिंगोंमें-मुनियोंमें अथवा [**बहुप्पयारेसु गिहलिंगेसु व**] बहुतप्रकारके गृहस्थलिंगोंमे याने अव्रती से ऐलक तकके लिंगोंमें

पाखंडिलिंगेसु व गिहिलिगेसु व बहुप्पयारेसु कुव्वंति जे ममत्ति वीतरागस्वसंवेदनज्ञानलक्षणभावलिंगरहितेषु निर्ग्रंथरूपपांखडिद्रव्यलिंगेषु कौपीनचिन्हादिगृहस्थद्रव्यलिंगेषु बहुप्रकारेषु ये ममतां कुर्वंति **तेहि ण णादं समयसारं** जगत्त्रयकालत्रयवर्तिख्यातिपूजालाभमिथ्यात्वकामक्रोधादिसमस्तपरद्रव्यालंबनसमुत्पन्नशुभाशुभसंकल्पविकल्परहितः शून्यः चिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातवीतरागसहजापूर्वपरमाह्लादरूपसुखरसानुभवपरमसमरसीभावपरिणामेन सालंवनः पूर्णकलशवद्भरितावस्थः केवलज्ञानाद्यनंतचतुष्टयव्यक्तिरूपस्य साक्षादुपादेयभूतस्य कार्यसमयसारस्योत्पादको योऽसौ निश्चयकारणसमयसारः स खलु तैर्न ज्ञात इति ॥ ४३५ ॥

अथ निर्विकारशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणभावलिंगसहितं निर्ग्रंथयतिलिंगं कौपीनकरणादिवहुभेदसहितं गृहिलिंगं चेति द्वयमपि मोक्षमार्गे व्यवहारनयो मन्यते । निश्चयनयस्तु सर्वद्रव्यलिंगानि न मन्यत इत्याख्याति–

[**ममत्ति**] ममता [**कुव्वंति**] करते हैं [**तेहिं**] उन अव्रतीसे मुनितक के सभी बाह्यलिंग धारण करनेवालोंके द्वारा [**समयसारं**] समयसार [**ण णादं**] नहीं जाना गया है ।

टीकार्थ– जो जीव वीतरागस्वसंवेदज्ञानलक्षणवाले भावलिंग से रहितवाले (स्वानुभवसे रहितवाले), निर्ग्रंथरूप पाखण्डी (पापोंका खंडन करनेवाले) बाह्य मुनिलिंगोंमें और ऐलकक्षुल्लक से अव्रती गृहस्थ तक के बहुत प्रकारके बाह्यलिंगोंमें ममता करते हैं (याने द्रव्यलिंगसे ही संवर, निर्जरा और मोक्ष मानते हैं) वे निश्चयकारणसमयसार को नहीं जानते ।

शंका– वह निश्चयकारणसमयसार कैसा है ?

समाधान– तीन लोक और तीन कालमें होनेवाले ख्यातिपूजालाभमिथ्यात्वकामक्रोध आदि समस्त परद्रव्योंके आलंबनसे उत्पन्न होनेवाले शुभाशुभसंकल्पविकल्पों से रहित अर्थात् चिदानंदएकस्वभावमयशुद्धात्मतत्त्वका सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूप अभेदरत्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधिसे उत्पन्न होनेवाले वीतरागसहजअपूर्वपरमआह्लादरूप सुखरसका अनुभव करना वही हुआ परमसमरसी भाव और उसके आलंबनसे पूर्णकलश के समान भरा पूरा है और केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टय की प्रकटतारूप साक्षात् उपादेयभूत कार्यसमयसारका उत्पादक है ऐसा जो निश्चयकारणसमयसार है ।

उस निश्चयकारणसमयसारको वे (बाह्यलिंगोंमें ममता रखनेवाले) नहीं जानते हैं । (इसलिये वे मिथ्यादृष्टि हैं– मोक्षमार्गस्थ नहीं हैं– इस कारणसे वे चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती भी नहीं हैं ।) ॥ ४३५ ॥

अब, निर्विकारशुद्धात्मानुभवलक्षणवाले भावलिंगसहित निर्ग्रंथ यतिलिंग है और स्वानुभवसहित अव्रती-गृहस्थसे स्वानुभवसहित ऐलक तक के बहुभेदसहित गृहस्थलिंग हैं । इन दोनोंको (याने निर्ग्रंथमुनिको और गृहस्थलिंगोंको) व्यवहारनय मोक्षमार्ग मानता है, लेकिन

ववहारिओ पुण णओ दोण्णिवि लिंगाणि भणदि मोक्खपहे ।
णिच्छयणओ दु णेच्छदि मुक्खपहे सव्वलिंगाणि ॥ ४३६ ॥

॥ आ. ख्या. ४१४ ॥

ववहारिओ पुण णओ दोण्णिवि लिंगाणि भणदि मोक्खपहे व्यावहारिकनयो द्वे लिंगे मोक्षपथे मन्यते। केन कृत्वा ? निर्विकारस्वसंवित्तिलक्षणभावलिंगस्य वहिरंगसहकारिकारणत्वेनेति। **णिच्छयणओ दु णेच्छदि मुक्खपहे सव्वलिंगाणि** निश्चयनयस्तु निर्विकल्पसमाधिरूपत्रिगुप्तिगुप्त-बलेन अहं निर्ग्रंथलिंगी, कौपीनधारकोऽहमित्यादि मनसि सर्वद्रव्यलिंगविकल्पं रागादिविकल्प-वन्नेच्छति। कस्मात् ? स्वयमेव निर्विकल्पसमाधिस्वभावत्वात् इति। किंच – अहो शिष्य। **'पाखंडीलिंगाणि य'** इत्यादि गाथासप्तकेन द्रव्यलिंगं निषिद्धमेवेति त्वं मा जानाहि किं तु निश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिरूपं भावलिंगरहितानां यतीनां संबोधनं कृतं। कथं ? इति चेत्, अहो तपोधनाः ! द्रव्यलिंगमात्रेण संतोषं मा कुरुत किंतु द्रव्यलिंगाधारेण निश्चयरत्नत्रया-

---

निश्चयनय भावलिंगी निर्ग्रंथमुनि का बाह्यलिंग स्वानुभूतिसहित अव्रती के बाह्यलिंग से स्वानुभूतिसहित ऐलक तक बाह्यलिंग और भावलिंग रहित मुनि का बाह्यलिंग और स्वानुभूतिरहित अव्रतीसे स्वानुभूतिं रहित ऐलक तकका बाह्यलिंग जो है। इन सब बाह्य (द्रव्य) लिंगोंको मोक्षमार्ग नहीं मानता है (याने निश्चयनय स्वानुभूति को ही मोक्षमार्ग मानता है) । ऐसा कहते है—

गाथार्थ– [**ववहारिओ णओ पुण**] व्यवहारनय तो [**दोण्णि लिंगाणि वि**] इन दोनों लिंगोंको भी [**मोक्खपहे**] मोक्षमार्ग [**भणदि**] कहता है [**दु**] लेकिन [**णिच्छयणओ**] निश्चयनय [**सव्वलिंगाणि**] सभी लिंगोंको [**मुक्खपहे**] मोक्षमार्ग [**णेच्छदि**] नहीं मानता।

टीकार्थ– निर्विकारस्वानुभूतिलक्षणवाले भावलिंगका बहिरंगसहकारिकारणपना होनेसे मुनि और गृहस्थ इन दोनों लिंगोंको व्यवहारनय मोक्षमार्ग मानता/कहता है, लेकिन निश्चयनय निर्विकल्पसमाधिवाले त्रिगुप्तिगुप्तवलसे (स्वानुभूतिसे) "मैं निर्ग्रंथमुनि हूँ, मैं ऐलक हूँ, मैं अव्रती गृहस्थ हूँ," इत्यादि मनमें रागादिविकल्पके समान सभी द्रव्यलिंगविकल्पोंको मोक्षमार्ग नहीं कहता है।

शंका– निश्चयनय सभी लिंगोंको मोक्षमार्ग क्यों नहीं कहता है ?

समाधान– स्वयमेव निर्विकल्पसमाधि (स्वानुभूति) मय स्वभाव होनेसे निश्चयनय सभी लिंगोंको मोक्षमार्ग नहीं कहता है।

इसका स्पष्टीकरण यह है कि, हे शिष्य ! तू **'पांखडीलिंगाणि य'** इत्यादि सात गाथाओंसे द्रव्यलिंगको निषिद्ध ही नहीं जानना, किंतु निश्चयरत्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधि (स्वानुभूति) वाले भावलिंगरहित यतियोंको संबोधन किया गया है कि, "हे तपोधन ! द्रव्यलिंगमात्रसे (बाह्यचिह्नमात्रसे) संतोष मत करना, किंतु द्रव्यलिंगके आधारसे निश्चयरत्न-त्रयात्मक निर्विकल्पसमाधिरूप भावना (स्वानुभूति) करना चाहिए।

ग्रंथमकनिर्विकल्पसमाधिरूपभावनां कुरूत । ननु भवदीयकल्पनेयं द्रव्यलिंगनिषेधो न कृत इति अत्र ग्रंथे पुनर्लिखितमास्ते 'ण य होदि मोक्खमग्गो लिंगं इत्यादि'? नैव, ण य होदि मोक्खमग्गो लिंगमित्यादि वचनेन भावलिंगरहितं द्रव्यलिंगं निषिद्धं, न च भावलिंगसहितं । कथं ? इति चेत्, द्रव्यलिंगाधारभूतो योऽसौ देहस्तस्य ममत्वं निषिद्धं । न च द्रव्यलिंगं निषिद्धं । केन रूपेण ? इति चेत्, पूर्वं दीक्षाकाले सर्वसंगपरित्याग एव कृतो न च देहत्यागः । कस्मात् ? देहाधारेण ध्यानज्ञानानुष्ठानं भवति इति हेतोः । न च देहस्य पृथक्त्वं कर्तुमायाति शेषपरिग्रहवदिति । वीतरागध्यानकाले पुनर्मदीयो देहोऽहं लिंगीत्यादिविकल्पो व्यवहारेणापि न कर्तव्यः । देहनिर्ममत्वं कृतं कथं ज्ञायते ? इति चेत्, जं देहणिम्ममा अरिहा दंसणणाणचरित्ताणि सेवंते इत्यादि वचनेनेति । न हि शालितंदुलस्य बहिरंगतुषे विद्यमाने सत्यभ्यंतरतुषस्य त्यागः कर्तुमायाति । अभ्यंतरतुषत्यागे सति बहिरंगतुषत्यागो नियमेन भवत्येव । अनेन न्यायेन सर्वसंगपरित्यागरूपे बहिरंगद्रव्यलिंगे सति

शंका— यह आपकी कल्पना है कि यहाँ द्रव्यलिंगका निषेध नहीं किया है लेकिन इस ग्रंथमें स्पष्टरूपसे '**ण य होदि मोक्खमग्गो लिंगमित्यादि**' ऐसा लिखा हुआ है, जिसका अर्थ यह होता है कि द्रव्यलिंग मोक्षमार्ग नहीं है इत्यादि ?

समाधान— ऐसा नहीं है । '**ण य होदि मोक्खमग्गो लिंगं**' इत्यादि वचनसे भावलिंग (स्वानुभूति) रहित द्रव्यलिंग निषिद्ध है और भावलिंगसहित (स्वानुभूति सहित) द्रव्यलिंग-बाह्यचिन्ह निषिद्ध नहीं है !

शंका— स्वानुभूतिरहित द्रव्यलिंग-बाह्यचिन्ह निषिध्य कैसे ? और भावलिंग (स्वानुभूति) सहित बाह्यचिन्ह-द्रव्यलिंग कैसे निषिद्ध नहीं है ?

समाधान— द्रव्यलिंगका आधारवाला जो देह है उस देहका ममत्व निषिद्ध है और स्वानुभूतिसहितवाला द्रव्यलिंग निषिद्ध नहीं है ।

शंका— किस तरहसे ?

समाधान— पहले जब दीक्षा ली गयी उस समय संपूर्ण परिग्रहका त्याग ही किया था, तब वहाँ देहका त्याग नहीं किया था (याने देहको छेदकर-तोडकर-भेदकर त्याग नहीं किया था) । क्योंकि देहके आधारसे ध्यान और ज्ञान का अनुष्ठान होता है । और शेष परिग्रहके समान देहको पृथक् नहीं किया जा सकता है । और **वीतरागध्यानकालमें याने स्वानुभूतिकालमें "यह मेरा देह है, मैं लिंगी (अव्रती गृहस्थ अथवा व्रती गृहस्थ अथवा मुनि) हूँ," इत्यादि विकल्प व्यवहारके द्वारा भी करना योग्य** नहीं है ।

शंका— इस कथनसे देहका ममत्व छुडाया है यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान— 'जं देहणिम्ममा अरिहा दंसणणाणचरित्ताणि सेवंते' इत्यादि इस ग्रंथका वचन है, इससे जाना जाता है कि देहका ममत्त्व छुडाया है । क्योंकि शालीतंदुलके ऊपर बाह्यतुष जबतक लगा रहता है तबतक अंतरगतुषको नहीं छुडाया जा सकता । जब अंतरंग तुषका त्याग होता है तब उसके बाह्यतुषका त्याग अवश्य होता है । इस न्यायसे जहाँ सर्वसंग

भावलिंगं भवति न भवति वा नियमो नास्ति, अभ्यंतरे तु भावलिंगे सति सर्वसंगपरित्यागरूपं द्रव्यलिंगं भवत्येवेति। हे भगवन्! भावलिंगे सति बहिरंगं द्रव्यलिंगं भवतीति नियमो नास्ति साहारणासाहारणेत्यादि वचनादिति? परिहारमाह–कोऽपि तपोधनो ध्यानारूढस्तिष्ठति तस्य केनापि दुष्टभावेन वस्त्रवेष्टनं कृतं। आभरणादिकं वा कृतं तथाप्यसौ निर्ग्रंथ एव। कस्मात्? इति चेत्, बुद्धिपूर्वकममत्वाभावात् पांडवादिवत्। येऽपि घटिकाद्वयेन मोक्षं गता भरतचक्रवर्त्यादयस्तेऽपि निर्ग्रंथरूपेणैव। परं किंतु तेषां परिग्रहत्यागं लोका न जानंति स्तोककालत्वादिति भावार्थः। एवं भावलिंगरहितानां द्रव्यलिंगमात्रं मोक्षकारणं न भवति। भावलिंगसहितानां पुनः सहकारिकारणं भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन त्रयोदशस्थले गाथासप्तकं गतं।

अत्राह शिष्यः – केवलज्ञानं शुद्धं छद्मस्थज्ञानं पुनरशुद्धं शुद्धस्य केवलज्ञानस्य कारणं न भवति। कस्मात्? इति चेत्, **सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धमेवप्पयं लहदि जीवो** इति वचनात्, इति?

नैवं, छद्मस्थज्ञानस्य कथंचिच्छुद्धाशुद्धत्वं। तद्यथा-यद्यपि केवलज्ञानापेक्षया शुद्धं न भवति तथापि मिथ्यात्वरागादिरहितत्वेन वीतरागसम्यक्त्वचारित्रसहितत्वेन च शुद्धं। अभेदनयेन

अर्थात् परिग्रहके त्यागस्वरूप बाह्य द्रव्यलिंग होता है वहाँ भावलिंग होता भी है और नहीं भी होता कोअी एक नियम नहीं है लेकिन अंतरंग भावलिंग जहां होता है वहाँ सब परिग्रह के त्यागरूप बाह्यलिंग-द्रव्यलिंग अवश्य होता ही है, ऐसा नियम है।

शंका– हे भगवन्! जहां भावलिंग होता है वहाँ बाह्यलिंग-द्रव्यलिंग भी होता ही है ऐसा नियम नहीं है क्योंकि 'साहारणासाहारणेत्यादि' आगम वचन है?

समाधान– कोअी तपस्वी ध्यानारूढ है—ध्यानमें है। उसको किसीने भी दुष्टभावसे वस्त्रलपेट दिया अथवा आभूषण आदि पहना दिये तो भी वह तपस्वी निर्ग्रंथ ही है। क्योंकि पांडवादिके समान उसके बुद्धिपूर्वक ममत्वका अभाव है। तथा भरत चक्रवर्ती आदि भी दो घडी कालमें ही मुक्त हो गये हैं, वे भी निर्ग्रंथरूप धारण करके ही मुक्त हुअे हैं। लेकिन उनके परिग्रहके त्याग का काल अल्प होनेसे साधारण लोग उनके परिग्रह के त्यागको नहीं जानते हैं, ऐसा भावार्थ है।

इस प्रकार भावलिंगरहितवालोंको केवल द्रव्यलिंग मोक्षका कारण नहीं हैं। और भावलिंगसहितवालोंको द्रव्यलिंग बाह्य सहकारिकारण है, इस कथन की मुख्यतासे तेरहवे स्थलमें ७ गाथायें हो गई।

यहाँ शिष्य फिर शंका पूछता है—केवलज्ञान शुद्ध है, और छद्मस्थका ज्ञान अशुद्ध है, वह छद्मस्थोंका अशुद्ध ज्ञान शुद्धकेवलज्ञानका कारण नहीं होता है क्योंकि '**सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धमेवप्पयं लहदि जीवो**', ऐसा इस समयसारमें वचन आया है अर्थात् शुद्धको जाननेवाला ही आत्मा शुद्ध बनता है?

पुनः छद्मस्थानां संबंधि भेदज्ञानमात्मस्वरूपमेव ततः कारणात्तेनैकदेशव्यक्तिरूपेणापि सकलव्यक्तिरूपं केवलज्ञानं जायते नास्ति दोषः। अथ मतं सावरणत्वात्क्षायोपशमिकत्वाद्वा शुद्धं न भवति तर्हि मोक्षोऽपि नास्ति। कस्मात्? छद्मस्थानां ज्ञानं यद्यप्येकदेशेन निरावरणं तथापि केवलज्ञानापेक्षया नियमेन सावरणमेव क्षायोपशमिकमेवेति। अथाभिप्रायः पारिणामिकभावशुद्धः तेन मोक्षो भविष्यति तदपि न घटते। कस्मात्? इति चेत्, केवलज्ञानात्पूर्वं पारिणामिकभावस्य शक्तिमात्रेण शुद्धत्वं न व्यक्तिरूपेणेति। तथाहि—जीवत्वभव्यत्वाभव्यत्वरूपेण त्रिविधो हि पारिणामिकः। तत्र तावदभव्यत्वं मुक्तिकारणं न भवति यत्पुनर्जीवत्वभव्यत्वद्वयं तस्य द्वयस्य तु यदायं जीवो दर्शनचारित्रमोहनीयोपशमक्षयोपशमक्षयलाभेन वीतरागसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयेण परिणमति तदा शुद्धत्वं। तच्च शुद्धत्वं—औपशमिकक्षायोपशमिकक्षायिकभावत्रयस्य संबंधि मुख्यवृत्त्या, पारिणामिकस्य पुनर्गौणत्वेनेति। तत्र शुद्धपारिणामिकस्य बंधमोक्षस्य कारणरहितत्वं पंचास्तिकायेऽनेन श्लोकेन

समाधान— छद्मस्थ जीव का ज्ञान केवलज्ञान का कारण नहीं है, ऐसा नहीं है। छद्मस्थका ज्ञान कथंचित् शुद्ध है, कथंचित् अशुद्ध है। जैसे— यद्यपि केवलज्ञानकी अपेक्षासे छद्मस्थका ज्ञान शुद्ध नहीं है, तथापि चतुर्थ आदि गुणस्थानवर्ती छद्मस्थका ज्ञान मिथ्यात्वरागादिरहित होनेसे और वीतरागसम्यक्त्वचारित्र (स्वानुभूति) सहित होनेसे शुद्ध है। और अभेदनयसे वह छद्मस्थ संबंधित भेदज्ञान आत्मस्वरूप ही होता है (स्वानुभूतिस्वरूप ही होता है), इसलिये एकदेशव्यक्तिरूप उस ज्ञानके द्वारा सकलादेश व्यक्तिरूप केवलज्ञान उत्पन्न हो हो जाता है, इसमें कुछ दोष नहीं है। इसपर भी यदि आपका ऐसा अभिप्राय हो कि, 'छद्मस्थका ज्ञान आवरणसहित होनसे अथवा क्षायोपशमिक होनेसे शुद्ध नहीं है', तो फिर मोक्ष भी नहीं होगा क्योंकि छद्मस्थोंका ज्ञान यद्यपि एकदेशसे निरावरण है तथापि केवलज्ञानकी अपेक्षासे नियमसे आवरणसहित ही क्षायोपशमिकवाला ही है। इसपर यदि आप ऐसा कहेंगे कि छद्मस्थके पास पारिणामकभाव शुद्ध है उससे मोक्ष होगा। तो यह भी आपका कहना ठीक नहीं बैठता क्योंकि केवलज्ञानपर्याय प्रकट होनेके पहले तो पारिणामिकभावका शक्तिरूपसे शुद्धत्व है, लेकिन व्यक्तिरूपसे नहीं है। देखो, पारिणामिक भाव जीवत्व, भव्यत्व, और अभव्यत्व रूपसे तीन प्रकारका है। वहाँ अभव्यत्व तो मुक्तिका कारण नहीं है, और जो जीवत्वभव्यत्व इन दोनोंका शुद्धपना तब होता है जब कि यह जीव आगमभाषासे दर्शनचारित्रमोहनीयके उपशम, क्षयोपशम और क्षयको (क्रमसे) प्राप्त करेगा अर्थात अध्यात्मभाषासे वीतरागसम्यक्दर्शनज्ञानचारित्ररत्नत्रयसे परिणमन (स्वानुभूति) करेगा। और वह शुद्धत्व भी

आगमभाषासे	अध्यात्मभाषासे
औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक तीन पर्याय की मुख्यतासे वह शुद्धत्व है	स्वानुभूतिमय अभेदरत्नत्रयकी पर्यायकी मुख्यतासे वह शुद्धत्व है

और पारिणामिकभावका गौणत्व है। क्योंकि शुद्धपारिणामिक भाव को तो बंधमोक्ष का कारण नहीं है। देखो पंचास्तिकायमें 'मोक्षं कुर्वंति' इत्यादि कहा गया है अर्थात् जीवके

भणितमास्ते-"मोक्षं कुर्वंति मिश्रौपशमिकक्षायिकाभिधाः। बंधमौदयिको भावो निष्क्रियः पारिणामिकः॥ १ ॥" तत एव स्थितं निर्विकल्पशुद्धात्मपरिच्छित्तिलक्षणं वीतरागसम्यक्त्वचारित्राविनाभूतमभेदनयेन तदेव शुद्धात्मशब्दवाच्यं क्षायोपशमिकमपि भावश्रुतज्ञानं मोक्षकारणं भवतीति। शुद्धपारिणामिकभावः पुनरेकदेशव्यक्तिलक्षणायां कथंचिद्भेदाभेदरूपस्य द्रव्यपर्यायात्मकस्य जीवपदार्थस्य शुद्धभावनावस्थायां ध्येयभूतद्रव्यरूपेण तिष्ठति न च ध्यानपर्यायरूपेण, कस्मात्? ध्यानस्य विनश्वरत्वात् इति ॥ ४३६ ॥

अथेदं शुद्धात्मतत्त्वं निर्विकारस्वसंवेदनप्रत्यक्षेण भावयन्नात्मा परमाक्षयसुखं प्राप्नोतीत्युपदिशति, - **श्रीकुंदकुंदाचार्यदेवा समयसारग्रंथसमाप्तिं कुर्वंतः फलं दर्शयंति-तद्यथा-**

जो समयपाहुडमिणं पठिदूणय अत्थतच्चदो णाउं।
अत्थे ठाहि(दि)चेदा सो पावदि उत्तमं सोक्खं॥ ४३७॥

॥ आ. ख्या. ४१५ ॥

उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, औदयिक और पारिणामिक भाव हैं, उनमें औदयिकभाव बंध करनेवाला है और औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भाव मोक्षके कारण हैं, पारिणामिक भाव निष्क्रिय है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि निर्विकल्पशुद्धात्मपरिच्छित्तिलक्षणवाला (स्वानुभूतिवाला) वीतरागसम्यक्त्वचारित्रके अविनाभूत है, उसको ही अभेदनयसे शुद्धात्मा-स्वानुभूति-स्वानुभव शब्दसे कहते हैं, ऐसा क्षायोपशमिक ज्ञान भी भावश्रुत है, वह मोक्षका कारण है। और एकदेशव्यक्तिलक्षणमें कथंचित् भेदाभेदारूप द्रव्यपर्यायात्मक जीवपदार्थके शुद्धभावनाकी (स्वानुभूतिकी) अवस्थामें (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीवोंको स्वानुभूतिकी अवस्थामें) शुद्धपारिणामिकभाव ध्येयभूत द्रव्य (ध्यान करने योग्य विषय) है और शुद्धपारिणामिकभाव ध्यानपर्यायरूप नहीं है क्योंकि ध्यानकी पर्याय नश्वर (अनित्य) है॥ ४३६॥

अब, इस शुद्धात्मतत्त्वको निर्विकारस्वसंवेदन प्रत्यक्षके द्वारा भावभासित होनेवाला (अनुभवमें आनेवाला) आत्मा परम अक्षय सुखको प्राप्त करता है, ऐसा कहते हैं- अथवा श्री कुंदकुंदाचार्यदेव इस समयसार ग्रंथ को समाप्त करते हुये इसके फलको दिखाते हैं-

गाथार्थ- [**जो चेदा**] जो आत्मा [**इणं समयपाहुडं पठिदूणय**] इस समयप्राभृतको पढ़कर [**अत्यतच्चदो णाउं**] अर्थसे और तत्वसे-भावसे-अनुभवसे जानकर [**अत्थे ठाहि(दि)**] इसके अर्थमें ठहरेगा [**सो**] वह आत्मा [**उत्तमं सोक्खं**] उत्तम सुखको [**पावदि**] पाता है।

टीकार्थ- जो आत्मा इस समयसार-समयप्राभृत शास्त्रको पढ़कर याने न केवल पढ़कर तो जानकर भी याने न केवल ग्रंथके अर्थको जानकर, तो भावपूर्वक-भावभासनापूर्वक उपादेयरूप शुद्धात्मलक्षणवाले अर्थमें याने निर्विकल्पसमाधिमें (स्वानुभूतिमें) ठहरेगा वह आत्मा भविष्यकालमें प्राप्त करेगा [प्राप्त करता है]।

जो समयपाहुणमिणं पठिदूणय यः कर्ता समयप्राभृताख्यमिदं शास्त्रं पूर्वं पठित्वा न केवलं पठित्वा **अत्थतच्चदो णादुं** ज्ञात्वा च। कस्मात् ? ग्रंथार्थतः, न केवलं ग्रंथार्थतः ? तत्त्वतो भावपूर्वेण **अत्थे ठाहिदि** पश्चादुपादेयरूपे शुद्धात्मलक्षणेऽर्थे निर्विकल्पसमाधौ स्थास्यति **चेदा सो पावदि उत्तमं सोक्खं** स चेतयितात्मा भाविकाले प्राप्नोति लभते। किं लभते ? वीतरागसहजापूर्वपरमाह्लादरूपं, आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतबाधं विशालं वृद्धिह्रासव्यपेतं विषयविरहितं निःप्रतिद्वंद्वभावं। अन्यद्रव्यानपेक्षं निरुपममभितं शाश्वतं सर्वकालमुत्कृष्टानंतसारं परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातमिति।

अत्राह शिष्यः – हे भगवन् ! अतींद्रियसुखं निरंतरं व्याख्यातं भवद्भिस्तच्च जनैर्न ज्ञायते ? भगवानाह-कोऽपि देवदत्तः स्त्रीसेवनाप्रभृतिपंचेंद्रियविषयव्यापाररहितप्रस्तावे निर्व्याकुलचित्तः तिष्ठति, स केनापि पृष्टः भो देवदत्त ! सुखेन तिष्ठसि त्वमिति ? तेनोक्तं सुखमस्तीति तत्सुखमतींद्रियं। कस्मात् ? इति चेत् संसारिकसुखं पंचेंद्रियप्रभवं। यत्पुनरतींद्रियसुखं तत्पंचेंद्रियविषयव्यापाराभावेऽपि दृष्टं यत इदं तावत्सामान्येनातींद्रियसुखमुपलभ्यते। यत्पुनः पंचेंद्रियमनोभवसमस्तविकल्पजालरहितानां समाधिस्थपरमयोगिनां स्वसंवेदनगम्यमतींद्रियसुखं

शंका– क्या प्राप्त करेगा (करता है ?)

समाधान– वीतरागसहजापूर्वपरमाह्लादरूप आत्माको प्राप्त करेगा। जैसा सिद्धभक्तिके ७ वे श्लोकमें कहा–

" **आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतबाधं विशालं** " इत्यादि अर्थात् वह आत्मा सिद्ध सुख प्राप्त करता है। वह परमसुख अपने आत्मासे ही उत्पन्न होता है, स्वयं अतिशय सहित है, सबबाधाओंसे रहित है, विशाल है, उससे अच्छा सुख दुसरा कोई नहीं है, हानि और वृद्धिसे रहित है, अन्य द्रव्योंकी अपेक्षा रखनेवाला नहीं है (स्वतंत्र है।) अनुपम है, विषयोंकी वासनासे रहित है, अनंत है, शाश्वत है, सर्वकाल रहनेवाला है, उत्कृष्ट है, अनंतसारवाला है।

अब शिष्य **शंका** पूछता है– हे भगवन् ! आपने निरंतर अतींद्रिय सुखकी बात कही लेकिन लोग उसको नहीं जानते हैं ?

आचार्यदेव उत्तर देते हैं-कोओ देवदत्त स्त्रीसेवन आदि पंचेंद्रियोंके विषयसुख के व्यापारसे रहित अवस्थामें निराकुल चित्तसे बैठा है, उसको किसीने आकर पूछा कि "हे देवदत्त ! सुखसे तो हो ?, " इसपर वह उत्तर देता है कि " सुखसे हूँ।" तो यह सुख अतींद्रिय सुख है क्योंकि सांसारिकसुख विषयोंके सेवनसे पैदा होता है और यहाँ पंचेंद्रियोंके विषयोंके व्यापार का अभाव होते हुवे भी सुख दीख रहा है वह सामान्यसे अतींद्रियसुख है। और पंचेंद्रिय और मन इनसे उत्पन्न होनेवाले सभी विकल्पजालोंसे रहितवालोंको याने समाधिस्थ होनेवाले परमयोगीयोंको जो स्वसंवेदनगम्य अतींद्रिय सुख है वह जाति अपेक्षासे अतींद्रिय है तो भी विशदताकी अपेक्षासे विशेष है। और जो मुक्त आत्माको होनेवाला अतींद्रिय सुख है वह अनुमानगम्य और आगमगम्य है।

तद्विशेषेणेति । यच्च मुक्तात्मनामतींद्रियसुखं तदनुमानगम्यमागमगम्यं च । तथाहि–मुक्तानामिंद्रियविषयव्यापाराभावेऽपि अतींद्रियसुखमस्तीति पक्षः । कस्मात्? इति चेत् इदानीं तेन विषयव्यापारातीतनिर्विकल्पसमाधिरतपरममुनींद्राणां स्वसंवेद्यात्मसुखोपलब्धिरिति हेतुः । एवं पक्षहेतुरूपेण द्व्यंगमनुमानं ज्ञातव्यं । आगमे तु प्रसिद्धमेवात्मोपादानसिद्धमित्यादिवचनेन । अतः कारणात् अतींद्रियसुखे संदेहो न कर्तव्य इति । उक्तं च–

यद्देवमनुजाः सर्वे सौख्यमक्षार्थसंभवं । निर्विशंति निराबाधं सर्वाक्षप्रीणनक्षमं ॥ १ ॥
सर्वेणातीतकालेन यच्च भुक्तं महर्द्धिकं । भाविनो ये च भोक्ष्यंति स्वादिष्टं स्वांतरंजकं ॥ २ ॥
अनंतगुणिनं तस्मादत्यक्षं स्वस्वभावजं । एकस्मिन् समये भुंक्ते तत्सुखं परमेश्वरः ॥ ३ ॥

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण विष्णुकर्तृत्वनिराकरणमुख्यत्वेन गाथासप्तकं । तदनंतरमन्यः करोति अन्यो भुंक्ते– इति बौद्धमतैकांतनिराकरणमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं । ततः परमात्मा रागादिभावकर्म न करोति इति सांख्यमतनिराकरणरूपेण सूत्रपंचकं । ततः परं कर्मैव सुखादिकं करोति न चात्मेति

मुक्त आत्माको इंद्रियविषयव्यापारके अभावमें भी अतींद्रियसुख है– यह पक्ष है। क्योंकि अभी वर्तमानकालमें विषयव्यापारसे रहितवाले अर्थात् निर्विकल्पसमाधिमें (स्वानुभूति में) रत रहनेवाले भावलिंगी मुनियोंको स्वसंवेद्य आत्मसुखकी (स्वानुभूतिके सुखकी) उपलब्धि है– यह हेतु है। इसप्रकार पक्ष और हेतु ये दोनों अनुमानके अंग है, ऐसा जानना चाहिये। आगम में तो (सिद्धभक्तिके ७ वे श्लोकमें) यह स्पष्ट है कि, "आत्मोपादानसिद्धं" इत्यादि वचन है। इसलिये (वर्तमानकालमें चतुर्थ, पंचम और सप्तम गुणस्थानमें भी) अतींद्रियसुखमें– स्वानुभवजन्यसुखके विषयमें संदेह नहीं करना चाहिये।

कहा भी है कि,

'यद्देवमनुजाः सर्वे सौख्यमक्षार्थसंभवं' इत्यादि अर्थात्–वर्तमानमें जो देव और मनुष्य हैं वे सब निरर्गलरूपसे अपने सभी इंद्रियोंको प्रसन्न करनेवाला इंद्रियजन्य और ऋद्धि आदिसे प्राप्त हुअे सुख भोग रहे हैं। और पहले भूतकालमें देव और मनुष्योंने जो महर्द्धिक सुख भोगा है तथा आगे होनेवाले देव और मनुष्य इंद्रियजन्य स्वादिष्ट और मनोरंजक सुखको भोगेंगे उस समस्त सुखसे भी अतींद्रियजन्य अपने स्वभावसे उत्पन्न होनेवाला अनंतगुणा सुख परमेश्वर सिद्ध भगवानको एक समयमें होता हैं।

इसप्रकार पूर्वोक्त प्रकारसे विष्णुके कर्तृत्वका निराकरण करनेकी मुख्यतासे ७ गाथायें हैं। तदनंतर अन्य करता है और अन्य भोगता है इस प्रकारके एकांत बौद्धमतका निराकरण करनेकी मुख्यतासे ४ गाथायें हैं। इसके आगे परमात्मा रागादिभावकर्म का कर्ता नहीं है, इस सांख्यमतका निराकरण करनेवाली ५ गाथायें हैं। इसके आगे कर्म ही सुखी आदि करता है, आत्मा कुछ नहीं करता है इस एकांत सांख्यमतका भी निराकरण करनेकी मुख्यतासे १३ गाथायें

पुनरपि सांख्यमतैकांतनिराकरणमुख्यत्वेन गाथात्रयोदश। तदनंतरं चितस्थरागस्य घातः कर्तव्य—इत्यजानन्वहिरंगशद्वादिविषयाणां घातं करोमीति योऽसौ चिंतयति तत्संवोधनार्थं गाथासप्तकं। तदनंतरं द्रव्यकर्म व्यवहारेण करोति भावकर्म निश्चयेन करोतीति मुख्यत्वेन गाथासप्तकं। ततः परं ज्ञानं ज्ञेयरूपेण न परिणमति इति कथनरूपेण सूत्रदशकं। तदनंतरं शुद्धात्मोपलब्धिरूप-निश्चयप्रतिक्रमणनिश्चयप्रत्याख्याननिश्चयालोचनाचारित्रव्याख्यानमुख्यत्वेन सूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं पंचेंद्रियमनोविषयनिरोधकथनरूपेण सूत्रदशकं। तदनंतरं कर्मचेतनाकर्मफलचेतनाविनाशनिरूपण-मुख्यत्वेन गाथात्रयं। ततः परं शास्त्रेंद्रियविषयादिकं ज्ञानं न भवतीति प्रतिपादनरूपेण गाथापंचदश। ततः परं शुद्धात्मा कर्मनोकर्माहारादिकं निश्चयेन न गृह्णाति इति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं। तदनंतरं शुद्धात्मभावनारूपं भावलिंगनिरपेक्षं द्रव्यलिंगं मुक्तिकारणं न भवतीति प्रतिपादनमुख्यत्वेन गाथासप्तकं। तदनंतरं सुखरूपफलदर्शनमुख्यत्वेन सूत्रमेकं ॥ ४३७ ॥

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां तात्पर्यवृत्तौ समुदायेन षडधिकनवतिगाथाभिस्त्रयोदशाधिकारैः समयसारचूलिकाभिधानो सर्वविशुद्धज्ञाननामा दशमोऽधिकारः समाप्तः ॥ १० ॥

है। इसके आगे चितस्थरागका घात करनेके कर्तव्य को न जाननेवाला "वहिरंगशब्दादिविषयोंका घात मैं करता हूँ," ऐसा जो चिंतन करता है उसको संवोधन करनेके लिए ७ गाथायें हैं। इसके वाद व्यवहारनयसे द्रव्यकर्म करता है, निश्चयनयसे भावकर्म करता है इस कथनकी मुख्यतासे ७ गाथायें हैं। इसके आगे ज्ञान ज्ञेयरूपसे परिणमन नहीं करता है ऐसा कथन करनेवाली १० गाथायें हैं। इसके आगे शुद्धात्मानुभूतिरूप निश्चयप्रतिक्रमणनिश्चयप्रत्याख्याननिश्चयालोचना-चारित्रके व्याख्यानकी मुख्यतासे ४ गाथायें हैं। इसके आगे पंचेंद्रिय और मन इनके विषयका निरोध करनेका कथन करनेवाली १० गाथायें हैं। इसके आगे कर्मचेतनाकर्मफलचेतना के नाश करनेका निरूपण करनेकी मुख्यतासे ३ गाथायें हैं। इसके आगे शास्त्र और इंद्रियविषय आदिक ज्ञान नहीं हैं इसका कथन करनेवाली १५ गाथायें हैं। इसके आगे शुद्धात्मा निश्चयनयसे कर्म-नोकर्म-आहारादिक को ग्रहण नहीं करता है इस कथनकी मुख्यतासे ३ गाथायें हैं। इसके आगे शुद्धात्मभावनारूप भावलिंगसे रहित द्रव्यलिंग मुक्तिका कारण नहीं है इस कथनकी मुख्यतासे ७ गाथायें हैं। इसके आगे सुखरूप फल दिखानेकी मुख्यतासे १ गाथा है ॥ ४३७ ॥

इसप्रकार इस समयसार ग्रंथकी श्री जयसेनाचार्यजीकृत शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवाली तात्पर्यवृत्तिमें ९६ गाथाओंसे और १३ अंतर अधिकारवाली समयसारचूलिका नामक सर्वविशुद्ध-ज्ञान नामका १० वाँ अधिकार पूर्ण हुआ ॥ १० ॥



अथ परिशिष्टम् ॥ ११ ॥

अत्र स्याद्वादसिद्ध्यर्थं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः ।
उपायोपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चिंत्यते ॥

चिंत्यते विचार्यंते कथ्यते मनाक् संक्षेपेण भूयः पुनरपि। काऽसौ ? वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः ? वस्तुतत्त्वस्य वस्तुस्वरूपस्य व्यवस्थितिर्व्याख्या। किमर्थं ? स्याद्वादशुद्धयर्थं स्याद्वादनिश्चयार्थं। अत्र समयसारव्याख्याने समाप्तिप्रस्तावेन केवलं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिश्चिन्त्यते। उपायोपेयभावश्च। उपायो मोक्षमार्गः उपेयो मोक्ष इति। अतः परं स्याद्वादशब्दार्थः कः ? – इति प्रश्ने सत्याचार्या उत्तरमाहुः – स्यात्कथंचित् विवक्षितप्रकारेणानेकांतरूपेण वदनं वादो जल्पः कथनं प्रतिपादनमिति स्याद्वादः स च स्याद्वादो भगवतोऽर्हतः शासनमित्यर्थः। तच्च भगवतः शासनं किं करोति ? सर्वं वस्तु, अनेकांतात्मकमित्यनुशास्ति । अनेकांत इति कोऽर्थः ? इति चेत्, एकवस्तुनि वस्तुत्वनिष्पादकं अस्तित्वनास्तित्वद्वयादिस्वरूपं परस्परविरूद्धसापेक्षशक्तिद्वयं यत्तस्य प्रतिपादनं स्यादनेकांतो भण्यते। स चानेकांतः किं करोति ? ज्ञानमात्रो योऽसौ भावो जीवपदार्थः शुद्धात्मा स तदतद्रूप

अब, यहाँ फिरसे स्याद्‌वादकी सिद्धिके लिये वस्तुतत्त्वकी व्यवस्थिति और उपायोपेय भाव इनका संक्षेपमें विचार किया जाता हैं। [वस्तुतत्त्व याने वस्तुस्वरूप है। व्यवस्थिति याने व्याख्या। उपाय याने मोक्षमार्ग और उपेय याने मोक्ष। ऐसे अर्थ हैं।]

शंका– स्याद्‌वाद शब्दका क्या अर्थ है ?

समाधान– 'स्यात्' अर्थात कथंचित्, विवक्षित प्रकारसे, अपनी विवक्षाको लिये हुअे अनेकांत रूपसे कथन करना। और वाद याने जल्प करना, कथन करना, प्रतिपादन करना। इस-तरह स्याद्वाद शब्दका अर्थ अर्हंतभगवानके शासनमें है। यह अर्हंतभगवानका स्याद्वाद शासन है।

शंका– और वह भगवानका शासन क्या करता है ?

समाधान– यह भगवानका शासन सब वस्तुओंको अनेकांतात्मक बतलाता है।

शंका– अनेकांत का क्या अर्थ है ?

समाधान– एक ही वस्तुमें वस्तुत्वको निष्पन्न करनेवाली आस्तित्व और नास्तित्व इसतरह दो परस्परविरूद्ध सापेक्ष दोनों शक्तियोंका जो प्रतिपादन – कथन है, उसको अनेकांत कहते हैं।

शंका– और वह अनेकांत क्या करता है।

समाधान– वह अनेकांत यह कहता है कि, ज्ञानमात्र जो भाव है अर्थात् जीव पदार्थ

एकानेकात्मकः सदसदात्मको नित्यानित्यादिस्वभावात्मको भवतीति कथयति। तथाहि – ज्ञानरूपेण तद्रूपो भवति। ज्ञेयरूपेणातद्रूपो भवति। द्रव्यार्थिकनयेनैकः। पर्यायार्थिकनयेनानेकः। स्वद्रव्यक्षेत्र-कालभावचतुष्टयेन सद्रूपः। परद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयेनासद्रूपः। द्रव्यार्थिकनयेन नित्यः। पर्यायार्थिकनयेनानित्यः। पर्यायार्थिकनयेन भेदात्मकः द्रव्यार्थिकनयेयनाभेदात्मको भवतीत्याद्यनेक-धर्मात्मक इति। तदेव स्याद्वादस्वरूपं तु समंतभद्राचार्यदेवैरपि भणितमास्ते–

सदेकनित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः।
सर्वथेति प्रदुष्यंति पुष्यंति स्यादितीह ते॥ १॥
सर्वथा नियमत्यागी यथा दृष्टमपेक्षकः।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषां॥ २॥
अनेकांतोप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः।

है, शुद्धात्मा है वह तत्‌रूप अतत्‌रूप, एकमय अनेकमय, सत्‌मय असत्‌मय, नित्यानित्यस्वभावात्मक है। जैसे-यह आत्मा ज्ञानरूपसे तद्रूप है, (बाह्य) ज्ञेयरूपसे अतद्रूप है। द्रव्यार्थिकनयसे एक है, पर्यायार्थिकनयसे अनेक है। स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयसे सद्रूप है, परद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयसे असद्रूप है। द्रव्यार्थिकनयसे नित्य है, पर्यायार्थिकनयसे अनित्य है। पर्यायार्थिकनयसे भेदात्मक है, द्रव्यार्थिकनयसे अभेदात्मक है। इत्यादि अनेकधर्मात्मक यह आत्मा हैं।

और उस ही स्याद्वादस्वरूपको श्रीसंमतभद्राचार्यदेवके द्वारा भी कहा गया है कि,

त्य| –सदेकनित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः।
सर्वथेति प्रदुष्यंति पुष्यंति स्यादितीह ते॥ १॥

अर्थ– परस्परविरूद्ध नयोंके युगल इसतरह होते हैं कि (१) सत्–असत् (२) एक–अनेक (३) नित्य–अनित्य (४) वक्तव्य–अवक्तव्य इत्यादि। इनको यदि सर्वथा एकांत दृष्टिसे मानेंगे तो ये एक दूसरे के विरूद्ध होकर दूषित बनते हैं और यदि स्यात् अर्थात् कथंचित् रूपसे उन्हें स्वीकार करनेपर ये एक दूसरेके पोषक बनते हैं।

सर्वथा नियमत्यागी यथा दृष्टमपेक्षकः।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम्॥ २॥

अर्थ– हे भगवन्! 'स्यात्' शब्द आपके न्यायमें है जो कि सर्वथा एकान्त का त्यागी है। जैसा प्रत्यक्ष देखनेमें आता है। यह 'स्यात्' शब्द अपने आपका भी विगाड़ करनेवाले ऐसे अन्य लोगोंके यहाँ नहीं हैं।

अनेकांतोप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः।
अनेकांतः प्रमाणात्ते तदेकांतोऽर्पितान्नयात्॥ ३॥

अर्थ– हे भगवन्! यद्यपि आपका मत अनेकांतात्मक है तो भी वह अनेकांत भी एकांत

अनेकांतः प्रमाणात्ते तदेकांतोऽर्पितान्नयात् ॥ ३ ॥
धर्मिणोऽनंतरूपत्वं धर्माणां न कथंचन।
अनेकांतोप्यनेकांत इति जैनमतं ततः ॥ ४ ॥

एवं कथंचिच्छब्देन वाचकस्यानेकांतात्मकवस्तुप्रतिपादकस्य स्याच्छब्दस्यार्थः संक्षेपेण ज्ञातव्यः। तत्रैवमनेकांतव्याख्यानेन ज्ञानमात्रभावो जीवपदार्थः एकानेकात्मको जातः। तस्मिन्नेकानेकात्मके जाते सति ज्ञानमात्रस्य जीवपदार्थस्य नयविभागेन भेदाभेदरत्नत्रयात्मकं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गद्वयरूपेणोपायभूतं साधकरूपं घटते। मोक्षरूपेण पुनरुपेयभूतं साध्यरूपं च घटत इति ज्ञातव्यं। अथ प्राभृताध्यात्मशब्दयोरर्थः कथ्यते। तद्यथा — यथा कोऽपि देवदत्तो राजदर्शनार्थं किंचित्सारभूतं वस्तु राज्ञे ददाति तत्प्राभृतं भण्यते। तथा परमात्माराधकपुरुषस्य निर्दोषिपरमात्मराजदर्शनार्थमिदमपि शास्त्रं प्राभृतं। कस्मात्? सारभूतत्वात् इति प्राभृतशब्दस्यार्थः। रागादि-

---

से नहीं है किन्तु वहां भी कथंचित् एकांत और कथंचित् अनेकांत हैं जो कि प्रमाण और नयके साधनद्वारा सिद्ध कर लिया जाता हैं अर्थात् आपके यहाँ प्रमाणके द्वारा तो प्रत्येक वस्तु अनेकांत रूप है किन्तु अपेक्षित नयके द्वारा देखी गई जो वस्तु नित्य है वह उस नयसे नित्य ही है और दूसरे नयसे वही द्रव्य अनित्य है वह उस अपेक्षासे अनित्य ही है, नित्य नहीं है।

(जैसे— द्रव्यदृष्टिसे आत्मा नित्य ही है अनित्य नहीं है, और पर्यायदृष्टिसे आत्मा अनित्य ही है नित्य नहीं हैं। इसलिये आत्मा नित्यानित्यात्मक है।)

धर्मिणोऽनंतरूपत्वं धर्माणां न कथंचन।
अनेकांतोप्यनेकांत इति जैनमतं ततः ॥ ४ ॥

अर्थ— धर्मी में अनंतरूपत्व है, किंतु प्रत्येक धर्म पृथक् पृथक् एक एक है। इसलिये अनेकांत में भी अनेकांतपना है यह जैनमत है।

इसप्रकार कथंचित् शब्दका वाचक, अनेकांतात्मक वस्तुका प्रतिपादन करनेवाले 'स्यात्' शब्दका अर्थ हैं वह संक्षेपमें कहा गया है, ऐसा समझ लेना चाहिये। इसप्रकार अनेकांतके व्याख्यानसे ज्ञानमात्रस्वभाववाला जीवपदार्थ भी एकानेकांतात्मक सिद्ध हुआ। उस एकानेकांतात्मक की सिद्धी होनेपर ज्ञानमात्रभाववाले जीवपदार्थका नयविभागसे भेदाभेदरत्नत्रयात्मक निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गरूपसे उपायभूत साधकरूप घटता है। और मोक्षरूपसे उपेयभूत साध्यरूप घटता है। ऐसा जानना चाहिये।

अब इस प्राभृतशब्दका और अध्यात्मशब्दका अर्थ कहा जाता है — जैसे कोअी देवदत्त नामका पुरुष राजाके दर्शनके लिये जाता है तो उस राजाको कुछ सारभूत वस्तु देता है, उसको प्राभृत कहा जाता है। वैसे ही परमात्माका आराधक पुरुष है उसको निर्दोषिपरमात्मराजाके दर्शनके लिये यह भी शास्त्र प्राभृत है क्यों कि यह सारभूत है। इस प्रकार प्राभृतशब्दका अर्थ है।

परद्रव्यनिरालंबत्वेन निजशुद्धात्मनि विशुद्धाधारभूतेऽनुष्ठानमध्यात्मं । इदं प्राभृतशास्त्रं ज्ञात्वा किं कर्तव्यं ? सहजशुद्धज्ञानानंदैकस्वभावोऽहं, निर्विकल्पोऽहं, उदासीनोऽहं, निजनिरंजनशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातवीतरागसहजानंदरूपसुखानुभूतिमात्रलक्षणेन स्वसंवेदनेन संवेद्यो गम्यः प्राप्यो भरितावस्थोऽहं। रागद्वेषमोहक्रोधमानमायालोभपंचेंद्रियविषयव्यापारमनोवचनकायव्यापारभावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानमायामिथ्याशल्यत्रयादिसर्वविभावपरिणामरहितः शून्योऽहं । जगत्त्रयेऽपि कालत्रयेऽपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च शुद्धनिश्चयेन तथा सर्वजीवाः। इति निरन्तरं भावना कर्तव्या । इति स्याद्वादोऽधिकारः ।

अत्र ग्रंथे प्रचुरेण पदानां सन्धिर्न कृता । वाक्यानि च भिन्नभिन्नानि कृतानि सुखबोधार्थं । तेन कारणेन लिंगवचनक्रियाकारकसन्धिसमासविशेष्यविशेषणवाक्यसमाप्त्यादिकं दूषणं न ग्राह्यं

रागादिपरद्रव्योंके आलंबनसे रहित अपने स्वभावशुद्धात्मावाले विशुद्धआधारभूतमें अनुष्ठान करना ही अध्यात्म है ।

शंका– इस प्राभृतशास्त्रको जानकर क्या करना चाहिये ?

समाधान– ऐसी निरंतर भावना करनी चाहिये कि,

१) मैं तो सहजशुद्धज्ञानानंदस्वभावमय हूँ,

२) मैं निर्विकल्प हूँ,

३) मैं उदासीन हूँ,

४) मैं निजनिरंजनशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातवीतरागसहजानंदरूपसुखानुभूतिमात्रलक्षणवाले स्वसंवेदनसे संवेद्य, गम्य, प्राप्य भरितावस्थावाला हूँ,

५) मैं रागद्वेषमोहक्रोधमानमायालोभपंचेंद्रियविषयव्यापारमनवचनकायव्यापारभावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानमायामिथ्यात्वशल्यत्रयादिसर्वविभावपरिणामोंसे रहित (याने शून्य) हूँ,

६) तीनों जगतमें भी तथा तीनों कालोंमें भी मनवचनकायके द्वारा और कृतकारितानुमोदना के द्वारा शुद्धनिश्चयनयसे सभी जीव शुद्ध हैं, मैं भी शुद्ध हूँ, ।

यह स्याद्वाद अधिकार समाप्त हुआ ।

यहाँ इस ग्रंथमें लोगोंको सरलतासे (सुलभतासे) ज्ञान प्राप्त हो जाय इसलिये प्रायः पदोंकी संधि नहीं की गयी है और वाक्य भी भिन्न भिन्न रक्खे गये हैं, इसलिये विवेकी लोगोंको यहाँपर लिंग, वचन, क्रिया, कारक, संधि, समास, विशेष्य, विशेषण और वाक्य परिस–

विवेकिभिः। शुद्धात्मादितत्त्वप्रतिपादनविषये यदज्ञानात् किंचिद्विस्मृतं तदपि क्षमितव्यमिति।

जयउ रिसि पउमणंदी जेण महातच्चपाहुडसेलो।
बुद्धिसिरेणुद्धरिओ समप्पिओ भव्वलोयस्स॥ १॥
जं अल्लीणा जीवा तरंति संसारसायरमणंतं।
तं सव्वजीवसरणं णंदउ जिणसासणं सुइरं॥ २॥
यश्चाभ्यस्यति संश्रृणोति पठति प्रख्यापयत्यादरात्।
तात्पर्याख्यमिदं स्वरूपरसिकैः संवर्णितं प्राभृतं।
शश्वद्रूपमलं विचित्रसकलं ज्ञानात्मकं केवलं।
संप्राप्याग्रपदेऽपि मुक्तिललनारक्तः सदा वर्तते॥ ११॥

इति श्री कुंदकुंददेवाचार्यविरचितसमयसारप्राभृताभिधानग्रंथस्य संबंधिनी श्री जयसेनाचार्यकृता दशाधिकारैरेकोनचत्वारिंशदधिकगाथाशतचतुष्टयेन तात्पर्यवृत्तिः समाप्ता॥

माप्ति आदि विषय के दोष दीख पडे तो उनको ग्रहण नहीं करना चाहिये (उन दोषोंके तरफ ध्यान नहीं देना चाहिये)। तथा शुद्धात्मादितत्त्वोंके प्रतिपादनके विषयमें जो अज्ञानसे कुछ विस्मरण हो तो क्षमा कर देने योग्य है।

श्री जयसेनाचार्यजीने जो अंतिम मंगलाचरण किया हैं उसका अर्थ—

जिन महाऋषि पद्मनंदीने अपनी बुद्धिरूपी सिरसे महातत्त्वपाहुड अर्थात् समयपाहुड रूप पर्वतको उठाकर भव्य जीवोंके लिये अर्पण कर दिया वे पद्मनंदी महर्षि जयवंत रहो॥ १॥

जिसका आश्रय लेकर भव्य जीव अनंत संसारसागर को पार कर जाते हैं वह सब जीवों के लिये शरणभूत हो रहनेवाला जिनशासन चिरकाल तक जयवंत रहे॥ २॥

आत्मरसके रसिकोंके द्वारा वर्णन किया हुआ यह तात्पर्य नामका प्राभृत शास्त्र है, इसको जो कोअी आदरपूर्वक सुनेगा, पढेगा, अभ्यास करेगा और इसकी प्रभावना करेगा वह जीव सदा रहनेवाला अद्भूत सकलज्ञानस्वरूप केवलज्ञान को प्राप्त करके उसके आगे सदाके लिये मुक्तिरूपी ललना-मोक्षलक्ष्मी में आसक्त रहेगा [लीन रहेगा]।

इस प्रकार श्री कुंदकुंदाचार्य देवके द्वारा रचे गये समयसार प्राभृत नामक ग्रंथकी चार सौ उनतालीस गाथायें हैं। उसकी श्री जयसेनाचार्यके द्वारा बनायी हुअी दस (११) अधिकारवाली यह तात्पर्यवृत्ति नामक टीका है, इसका हिंदी भावानुवाद समाप्त हुआ।



आत्मख्याति- गाथा नंबर	पृष्ठ	आत्मख्याति- गाथा नंबर	पृष्ठ	आत्मख्याति- गाथा नंबर	पृष्ठ
१९३	२११	२२५	२३९	२५७	२६१
१९४	२१२	२२६	२३९	२५८	२६१
१९५	२१३	२२७	२३९	२५९	२६२
१९६	२१४	२२८	२४२	२६०	२६२
१९७	२१५	२२९	२४२	२६१	२६३
१९८	२१८	२३०	२४३	२६२	२६३
१९९	२१६	२३१	२४३	२६३	२६४
२००	२१७	२३२	२४४	२६४	२६५
२०१	२१९	२३३	२४५	२६५	२६५
२०२	२१९	२३४	२४५	२६६	२६६
२०३	२२४	२३५	२४६	२६७	२६७
२०४	२२६	२३६	२४६	२६८	२६९
२०५	२२७	२३७	२५१	२६९	२६९
२०६	२२६	२३८	२५१	२७०	२७०
२०७	२२४	२३९	२५२	२७१	२७२
२०८	२२३	२४०	२५२	२७२	२७३
२०९	२२५	२४१	२५२	२७३	२७४
२१०	२२८	२४२	२५३	२७४	२७५
२११	२२९	२४३	२५३	२७५	२७६
२१२	२३०	२४४	२५४	२७६	२७७
२१३	२३१	२४५	२५४	२७७	२७७
२१४	२३२	२४६	२५४	२७८	२८२
२१५	२३२	२४७	२५६	२७९	२८२
२१६	२२१	२४८	२५६	२८०	२८३
२१७	२२२	२४९	२५७	२८१	२८४
२१८	२३४	२५०	२५७	२८२	२८५
२१९	२३४	२५१	२५७	२८३	२८६
२२०	२३६	२५२	२५७	२८४	२८७
२२१	२३७	२५३	२५८	२८५	२८७
२२२	२३७	२५४	२५९	२८६	२८०
२२३	२३७	२५५	२५९	२८७	२८१
२२४	२३९	२५६	२५९	२८८	२९१

आत्मख्याति-गाथा नंबर	पृष्ठ	आत्मख्याति-गाथा नंबर	पृष्ठ	आत्मख्याति-गाथा नंबर	पृष्ठ
३८५	३६५	३९६	३८२	४०६	३८८
३८६	३६५	३९७	३८२	४०७	३८८
३८७	३७५	३९८	३८२	४०८	३९०
३८८	३७५	३९९	३८२	४०९	३९०
३८९	३७५	४००	३८३	४१०	३९१
३९०	३८१	४०१	३८३	४११	३९२
३९१	३८१	४०२	३८३	४१२	३९३
३९२	३८१	४०३	३८३	४१३	३९३
३९३	३८१	४०४	३८३	४१४	३९५
३९४	३८१	४०५	३८८	४१५	३९९
३९५	३८२				



अकारादि क्रमेण समयपाहुड गाथा सूची

अकारादि क्रमेण समयपाहुड गाथा सूची

अकारादि क्रमेण समयपाहुड गाथा सूची

अकारादि क्रमेण समयपाहुड गाथा सूची

अकारादि क्रमेण समयपाहुड गाथा सूची

अकारादि क्रमेण समयपाहुड गाथा सूची

अकारादि क्रमेण समयपाहुड गाथा सूची

अकारादि क्रमेण समयपाहुड गाथा सूची

अकारादि क्रमेण समयपाहुड गाथा सूची

अकारादि क्रमेण समयपाहुड गाथा सूची

अकारादि क्रमेण समयपाहुड गाथा सूची

अकारादि क्रमेण समयपाहुड गाथा सूची

अकरादि क्रमेण समयपाहुड गाथा सूची

अकारादि-क्रमेण समयपाहुड गाथा सूची

अकारादि क्रमेण समयपाहुड गाथा सूची

अकारादि क्रमेण समयपाहुड गाथा सूची



शुद्धिपत्रक

पृष्ठ नं.	पंक्ति नं.	अशुद्धि	शुद्धि
१	१८	ववहारेणणुवदिस्सदि	ववहारेणुवदिस्सदि
४	५-६	की, व्यवहारनयकी	की (व्यवहारनयकी)
४	२८	व	वह
६	१६	अर्थात् जो अपने	अर्थात् जो जानते हुये अपने
८	५	मिथ्यात्वरागदिरहितं	मिथ्यात्वरागादिरहितं
९	८	शुद्धनयावलविनः	शुद्धनयावलंविनः
९	२६	कहूगा	कहूँगा
११	२	तां विना	तां विना ।
१२	५	इमं प्रत्यक्षीभूतं । तं पुरुषं ।	इमं प्रत्यक्षीभूतं तु पुनः । किम्विशिष्टम् । केवलम् असहायं सुद्धं रागादिरहितं । तं पुरुषं ।
१३	४	भावश्रुतेन	भावश्रुतरूपेण
१३	१३	आ. ख्या. ११	×
१४	६	आ. ख्या. १२	×
१४	२६	कथन करते हैं	कथन करते हैं शेषकालमें म्लेच्छभाषामें प्रतिपादन नहीं करते हैं।
१५	४	आ. ख्या. १३	आ. ख्या. ११
१६	१०	आ. ख्या. १४	आ. ख्या. १२
१८	६	शुद्धात्मापारिणामिक भाववाला	शुद्धात्मा-पारिणामिकभाववाला
१७	७	अपरम भाववाले	अपरमभाववाले
१९	४	पर्थायकी	पर्यायकी
२०	२	काश्चिदासन्नभव्यः	कश्चिदासन्नभव्यः
२१	१	संत	संतस्त
२१	२	निश्चयेन	निश्चयनयेन
२२	२२	ध्रवरूपसे	ध्रुवरूपसे
२४	७	द्रव्यकर्मनोकर्मभ्यास-संस्पृष्टं	द्रव्यकर्मनोकर्मभ्यामसंस्पृष्टं

पृष्ठ नं.	पंक्ति नं.	अशुद्धि	शुद्धि
२५	१	मृत्तिका द्रव्यवत् । अविसेसं	मृत्तिका द्रव्यवत् । णियदं नियतमवस्थितं निस्तरंगोत्तरंगावस्थासु समुद्रवत् अविसेसं ।
२५	२७	अवद्धस्पृष्ठ	अवद्धस्पृष्ट
२६	२	अवद्धपुट्ठं	अवद्धपुट्ठं अवद्धस्पृष्टं ।
२६	१६	अवद्धपुट्टं	अवद्धपुट्ठं
२६	२७	सूत्रोमें	सूत्रमें
२८	६	योगे कोऽर्थः	योगे कोऽर्थः ?
२९	१९	पंचेद्रियविषयक्रोवकपायदिसे	पंचेंद्रियविषयक्रोधकषायादिसे
३४	२०	पूव्वं	पुव्वं
३४	२६	संवंधि	संवंधी
३५	१६	अशुद्धपर्यायका चिंतवन अचित्त	अशुद्धपर्यायका चिंतवन) अचित्त
३५	२१	भविष्यके परद्रव्यके	भविष्यके बारेमें परद्रव्यके
३९	१६	" द्वौ कंदेंदुतुषारहारधवलौ	द्वौ कुंदेंदुतुषारहारधवलौ
३९	१७	तीर्थंकरोंकी आचार्योंकी	तीर्थंकरोंकी (शरीर की स्तुति) और " देसकुलजाइसुद्धा " इत्यादि आचार्योंकी
४०	४	व्यवहारेणैकत्वेपि प्रायेण निश्चयेन	व्यवहारेणैकत्वेपि निश्चयेन
४०	४	जीवदेहयोरिति भावार्थः	जीवदेहयोरिति भावार्थः ।
४२	१०	द्रव्येंद्रियभावेंद्रियविषयान्	द्रव्येंयभावेंद्रियपंचेंद्रियविषयान्
४२	२१	उतरदेते	उत्तर देते
४६	७	द्वितीया ।	द्वितीया चेति गाथाद्वयं
४७	१२	—	॥ आ. ख्या. ३५ ॥
५१	१	अनादिदेहात्मैक्य भ्रांत्याऽज्ञानेन	अनादिदेहात्मैक्यभ्रांत्याऽज्ञानेन
५१	११	सप्तविंशतिगाथाभिर्जीवाधिकारः	सप्तविंशति गाथाः । तदनन्तरमुपसंहारसूत्रमेकमिति समुदायेनाष्टविंशतिगाथाभिर्जीवाधिकारः
५२	१९	रागदिभाव-परद्रव्य	रागादिभाव-परद्रव्य
५३	५	णिट्दिट्ठा	णिद्दिट्ठा

पृष्ठ नं.	पंक्ति नं.	अशुद्धि	शुद्धि
५३	२६	नहीं है,	नहीं है, वैसे ही रागादि भावोंसे भिन्न जीव नहीं है,
५४	४	अष्टकाष्ठखट्वाव-दष्टकर्मणा	अष्टकाष्ठखट्वावदष्टकर्मणां
५५	३	इत्युच्चन्ते	इत्युच्यन्ते
५५	२७	स्वभाव जीवकी	स्वभावमय जीवकी
५७	४	कार्यमनाकुल-	कार्यमनाकुलत्वलक्षणपरमार्थसुख-विलक्षणमाकुलत्वोत्पादकं दुःखं रागादयोऽप्याकुल
५९	१६	....भावपरिणत शुद्ध-	....भावपरिणतशुद्ध-
६१	६	....नानावर्णभेद....	....नानावर्णभेद....
६२	१४	[णो अज्झप्पठ्ठाणा]	[णो अज्झप्पट्ठाणा]
६२	१७	[णेव उदयठ्टाणा]	[णेव उदयट्ठाणा]
६२	१७	[केइ मग्गणट्ठाणा ण]	[केइ मग्गणट्ठाणया ण]
६२	१८	[णो ठिदिबंधठ्टाणा]	[णो ठिदिबंधट्ठाणा]
६२	२८	शुद्धात्मानुतिसे	शुद्धात्मानुभूतिसे
६४	१३	भावार्थ सिद्धांतादि....	भावार्थः सिद्धांतादि....
६४	१९	फलको	फलके
६५	१	सिद्धातादौ	सिद्धांतादौ
६५	१३	सिद्धातादिग्रंथोंमें	सिद्धांतादिग्रंथोंमें
६६	९	पूर्वोक्तव्यवहारस्यविरोधं	पूर्वोक्तव्यवहारस्य विरोधं
६७	८	...हारीलोका भणन्ति	....हारीलोका भणंति। किं भणंति।
६७	२४	मार्ग लूटता है	मार्ग तो चोरोंद्वारा लूट लिया जाता है।
६७	३०	गाथाद्वारा	गाथाओंद्वारा
६८	१	समुदिष्टाः	समुद्दिष्टाः
७०	१७	मनमें	मतमें
७२	११	निश्चयेन	निश्चयनयेन
७२	२८-२९	किसी मी प्रकारसे नहीं	किसी भी प्रकारसे जीव नहीं
७३	६	जे चेव पर्याप्ता....	जे चेव पर्याप्तापर्याप्ता ये जीवाः कथिताः सूक्ष्मवादराश्चैव ये कथिताः देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता पर्याप्ता....

पृष्ठ नं	पंक्ति नं.	अशुद्धि	शुद्धि
७४	१९	[वाण्णिदा]	[वण्णिदा]
७६	१०	सामान्यव्याख्या	सामान्यव्याख्यान
७६	१०	अथवा रागादिसे	अथवा वहाँ रागादिसे
८०	१८	धादिरूप	क्रोधादिरूप
८०	२९	[नियत्ति]	[णियत्ति]
८१	२७	[निम्ममो]	[णिम्ममो]
८२	३	परिपूर्णः एवं	परिपूर्णः । एवं
८३	२१	परमार्थिक	पारमार्थिक
८४	१४	दोही	दो ही
८४	२६	द्रव्यरूप	भावरूप
८५	११	....दशगाथासु मध्ये	....दशगाथापर्यन्तं पुनरपि सज्ञानीजीवस्य विशेषव्याख्यानं करोति । तत्रैकादशगाथासु मध्ये
८६	२	इत्यदि प्रथम गाथा ।	इत्यादिप्रथमगाथा ।
८६	८	सूत्रमेकं ततश्च	सूत्रमेकं । ततश्च
८७	१-२	मृत्तिकाकलश-मुपादानरूपेण	मृत्तिका कलशमुपादानरूपेण
८७	२५	पारिणामोंका	परिणामोंका
८८	११	कर्ता है जो ख्याति....	कर्ता है । ख्याति....
९२	३	मृत्तिकाकलशरूपेणेव	मृत्तिकाद्रव्यकलशरूपेणेव
९६	३२	मुख्यतासे ' जीवं हि हेदुभूदे '	मुख्यतासे ' जो पुग्गलदव्वाणं ' इत्यादि चार गाथायें हैं । उसके आगे उपचारसे द्रव्यकर्मोंका जीव कर्ता है इस मुख्यतासे ' जीवं हि हेदुभूदे '
९८	११	प्राप्नोतीति ।	प्राप्नोति ।
९८	२८-२९	जीवत्व प्राप्त होता है ।	जीवत्त्व प्राप्त होता है । और कहते है– ' शुभाशुभकर्मको मैं करता हूँ ' ऐसा महाहंकार रूपी अंधःकार मिथ्याज्ञानीयोंका नाश नहीं होगा ।
९९	२१	और कहते हैं– ' शुभाशुभ....	×

पृष्ठ नं.	पंक्ति नं.	अशुद्धि	शुद्धि
१०२	६	यद्यपि शुद्धबुद्धैकस्वभावो	यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावो
१०२	१९	यद्यापि	यद्यपि
१०३	८	द्रव्यकर्मत्वेन	कर्मत्वेन
१०३	१३	शुद्धभावच्युत:	शुद्धस्वभावच्युत:
१०३	१७	होकर जो भाव	होकर आत्मा जो भाव
१०३	१८	कहते हैं उस	कहते हैं तो उस
१०५	९	वीतरागस्वसंवेदज्ञानात्....	वीतरागस्वसंवेदनज्ञानात्....
१०५	१५	शुद्धात्मभावको	शुद्धात्मस्वभावको
११४	१०	घटं पटं नैव	घटं न पटं नैव
११५	६	मुख्यवृत्या	मुख्यवृत्त्या
११५	६	तर्हीं	तर्हि
११६	२२	सुवर्ण कर्त्ता	सुवर्ण कर्ता है
११७	१	....चक्षुघ्राण....	....चक्षुर्घ्राण....
११७	२१	[कर्त्ता]	[कत्ता]
११९	१०	जलस्वरूपं	जटस्वरूपं
११९	१५	नहीं करता है	नहीं करता है और अन्यद्रव्यभी उस द्रव्यमें संक्रमण नहीं करता है
१२०	१६	सानिघ्यमें	सांनिध्यमें
१२३	१	लोके-यवहारेण	लोके व्यवहारेण
१२३	३	पुद्गल द्रव्यस्य	पुद्गलद्रव्यस्य
१२३	१३	सप्तकमर्घ्यें	सप्तकमध्ये
१२८	२७	[जीवस्साजीवस्य य]	[जीवस्साजीवस्स य]
१२९	२	.... चाग्नेरूष्णवत्	चाग्नेरुष्णवत्
१३०	४	लभते	लभ्यते
१३०	९	क्रोधादि परिणमनाभावे सर्वदा	क्रोधादि परिणमनाभावे सति सिद्धानामिव कर्मबंधाभाव: कर्मबंधाभावे संसाराभाव:, संसाराभावे सर्वदा
१३०	११	तत्रैव	तत्रैवं
१३०	१२	भिन्न आहे	भिन्न है
१३०	१३	मिन्न	भिन्न
१३२	२०	कार्मभावसे	कर्मभावसे

पृष्ठ नं.	पंक्ति नं.	अशुद्धि	शुद्धि
१३४	४	कथंचित्परिणाममित्वशक्तिः	कथंचित्परिणामित्वशक्तिः
१३५	२७	[कहं]	[कह]
१३६	११	मुकत्त्वत्वात् ।	मुक्तत्वात् ।
१३६	१६	पुग्गलकम्मं परिणामएदि	पुग्गलकम्मं कोहो जीवं परिणामएदि
१३७	१९	परिणमशील	परिणमनशील
१५३	५	सद्भूतव्यवहारस्यापेक्षया	.... सद्भूतव्यवहारेण कर्ता जीवः रागादिभावकर्मणाम् अशुद्धनिश्चयेन। स चाशुद्धनिश्चयः यद्यपि द्रव्यकर्म-कर्तृत्वविषयभूतस्यानुपचरितासद्भूत व्यवहारस्यापेक्षया
१५४	२८	लौर	और
१५७	८	सततमुल्लसन्	सततसमुल्लसन्
१५७	९	श्रुताज्ञानावरणीय....	श्रुतज्ञानावरणीय....
१५९	१	२५ गाथायें है । इसके बाद मिथ्यात्वदि प्रत्यय ही कर्म करते हैं, इसका समर्थन करनेवाली सात	×
१५९	११	२५ गाथायें कहीं हैं।	२५ गाथायें है । इसके बाद मिथ्यात्वादि प्रत्यय ही कर्म करते हैं, इसका समर्थन करनेवाली सात गाथायें....
१५९	८	शुद्धनिश्चयन	शुद्धनिश्चयेन
१६०	१२	व्यवहारनयसे पुण्य और	व्यवहारनयसे पुण्य और पापमें भेद हैं तथापि निश्चयनयसे पुण्य और पापमें भेद नहीं है
१६१	१	उपनयवशाद्....	उपनयनवशाद्....
१६२	२	एव इव इति	एव इति
१६५	२	बंधहेतुः	बंधहेतुं
१६६	१२	सोऽपि परमात्मैव	सोऽपि प्रत्यक्षज्ञानी सोऽपि परमात्मैव
१६७	१८	स्वसंवेदज्ञानसे	स्वसंवेदनज्ञानसे
१६७	२२	[सव्वहणू]	[सव्वह्णू]
१७१	८	गाथात्रयमिती	गाथात्रयमिति
१७१	९	करोति । अथ	करोति । तद्यथा । अथ

पृष्ठ नं.	पंक्ति नं.	अशुद्धि	शुद्धि
१७२	१९	अव्रतिसम्यक्त्वीसे	अव्रतीसम्यक्त्वीसे
१७३	७	वत्यस्य	वत्यस्स
१७४	१३	....कर्मरजसावच्छन्नो	....कर्मरजसोवच्छन्नो
१७८	२४	कारण (व्यवहार) से	कारण (व्यवहारसे)
१७९	३	वहुभेया	वहुविहभेया
१८०	४	अथमत्र	अयमत्र
१८२	२३	किया है	किया गया है
१८५	२५	[णाणादंसणगुणेहिं]	[णाणदंसणगुणेहिं]
१८६	२०	जाता हैं। (क्योंकि....	जाता हैं। इसे ही कोई " अणाणदंसणगुणेहि " ऐसा पढते हैं। (क्योंकि....
१८७	२०-२१	जघन्य याने मिथ्या....	जघन्य याने मिथ्यादृष्टि और मिथ्या....
१८८	५	तावत्पर्यंतं शुद्धात्म....	तावत्पर्यंतं शुद्धात्मस्वरूपं द्रष्टव्यं ज्ञातव्यमनुचरितव्यं च। यावत्तस्य शुद्धात्म....
१८९	१४-१५	पुल्लिगनिर्देशः पुल्लिगेऽपि	पुंल्लिगनिर्देशः। पुंल्लिगेऽपि
१८९	२७	पुल्लिग और पुल्लिग	पुंल्लिग और पुंल्लिग
१९०	३१	केवलिसमुद्धातः	केवलिसमुद्घातः
१९३	३	....पदार्थरूपस्य	....पदार्थरुचिरूपस्य
१९३	५	सम्मत्तस्स ॥	सम्मत्तजुत्तस्स ॥
१९४	२८	है कि मिथ्यात्व	है कि, प्रथम मिथ्यात्व
१९६	८	मंसवसारूहिरादी	मंसवसारुहिरादि
१९७	२	भेदज्ञानात्	भेदज्ञानरूपात्
२०१	५	णाणि	णाणी
२०१	१६	अण्णाणि	अण्णाणी
२०२	१३	रूंविऊण	रुंधिऊण
२०४	३	पूर्वोक्त प्रकारेणात्मानं	पूर्वोक्तप्रकारेणात्मानं
२०६	२५	कहनमें	कहनेमें
२०७	१	उदयप्राप्त द्रव्यप्रत्यय....	उदयप्राप्तद्रव्यप्रत्यय....
२०७	२४	[कम्मसाभावेण]	[कम्मस्साभावेण]
२११	७	बंधकारणमिति	बंधकारणमपि
२१२	१	....लोभादय....	....लोभोदय....

पृष्ठ नं.	पंक्ति नं.	अशुद्धि	शुद्धि
२२१	२	....जनितानांभूमिरेखादि....	....जनितानां भूमिरेखादि....
२२१	११	क़खंदि	कंखदि
२२१	२९	संमयमें और	समयमें होकर नष्ट हो जाते हैं। इसलिये वर्तमानमें और
२२२	७	रागाद्युदयरूपेण	रागाद्युदयरूपेषु
२२५	१०	यस्मात् कारणाद्वा	यस्मात् तस्मात् कारणाद्वा
२२५	१४	ऐसा नहीं कहेगा ?	ऐसा नहीं कहेगा।
२२७	२४	परमात्मद शुद्धात्मा....	परमात्मपद है, वह परमात्मपद शुद्धात्मा....
२२८	१	बहुवि	बहूवि
२३१	२	पाणस्य	पाणस्स
२३५	१-२	यतः कर्दममध्यगतं	यतः कारणात् ततः कर्दममध्यगतं
२३५	१०	दृष्टांत गाथा गता	दृष्टांतगाथा गता ॥ २३२ ॥
२४०	४	भोगाऽकांक्षा....	भोगाऽऽकांक्षा....
२४०	६	....दुःखपरंपरा	....दुःखपरंपरां
२४१	८	तत्पद	तत्पदं
२४१	२७	होनेवाले सम्यग्दृष्टि	होनेवाले सुखामृतरसके आस्वादनसे तृप्त होनेवाले
२४३	१	बाधाकरांस्तान	बाधाकरांस्तान्
२४४	३	स्वस्वभावानां	स्वभावानां
२४४	२०	स्वस्वभावकी	स्वभावोंकी
२४५	१०	×	आ. ख्या. २३४
२४६	१३	....भोगाकांक्षानिदान....	....भोगाकांक्षारूपनिदान....
२४७	१६	व्याख्यान किसलिए	व्याख्यान करने के बाद फिरसे व्याख्यान किसलिए
२४८	४	मुख्यवृत्या	मुख्यवृत्त्या
२४८	५	ध्यान शुक्लध्यानरूपे	ध्यानशुक्लध्यानरूपे
२४९	९	गाथादशकं	गाथादशकं तयोरेव विशेष-विवरणरूपेण, गाथाष्टकं ज्ञानगुणस्य सामान्यविवरणरूपेण, गाथाचतुर्दश तस्यैव विशेषविवरणरूपेण, गाथानवकं
२४९	२२	बिचारा	बेचारा

पृष्ठ नं.	पंक्ति नं.	अशुद्धि	शुद्धि
२५१	२३	[णेहभ्भत्तो दु]	[णेहभत्तो दु]
२५१	२९	घुलीका	घूलीका
२५२	१४	....निश्चयश्चित्यतां	....निश्चयंतश्चित्यतां
२५३	२	वहन्तो	वट्टन्तो
२५३	२	मिथ्यादृष्टिर्जीवः रागादि	मिथ्यादृष्टिर्जीवः विविधासु कायादि-व्यापारचेष्टासु वर्तमानः रागादि
२५३	५	भवति इति	भवति तथा मिथ्यात्वरागादि-परिणतस्य जीवस्य कर्मबंधो भवति इति
२५४	१२	....पिंडीसंज्ञान् । तत्संवधि....	....पिंडीसंज्ञान् वृक्षविशेषान्। तत्संबंधि....
२५७	१	जिवणरेहिं	जिणवरेहिं
२५८	१४	जीवन	जीव
२६३	८	नशून्यस्य	शून्यस्य
२६६	८	वंध हेतुत्वेन	वंधहेतुत्वेन
२६७	१८	मुक्त नहीं है	मुक्त नहीं होते हैं
२६८	२४	इसप्रकाण	इसप्रकार
२६९	२४	होनेसे, शुभपरिणामसे	होनेसे, तथा न जाननेसे ही और न अनुभव करनेसे, उस शुभपरिणामसे
२७०	१	नारकतिर्यङ्मनुष्य....	नारकतिर्यङ्मनुष्य....
२७१	७	धर्मास्तिकादिर्भण्यते	धर्मास्तिकायादिर्भण्यते
२७१	९	भवति ॥ २८६, २८७ ॥	भवति इति ॥ २८६, २८७ ॥
२७१	१२	रिद्धि	रिद्धी
२७१	३०	रिद्धि	रिद्धी
२७२	१	हर्षाविषादरूपं	हर्षविषादरूपं
२७२	९	शुद्धभेदेऽपि	शब्दभेदेऽपि
२७३	२३-२४	इस कारणसे व्यवहार....	इस कारणसे निश्चयनयसे व्यवहार-कारणका
२७६	८	परिछित्ति	परिच्छित्ति
२७६	१०	भोगाकांरूक्षापेण पुण्यरूपं धर्म	भोगाकांक्षारूपेण पुण्यरूपं धर्मं
२७७	१	....निश्चनयाविति,	....निश्चयनयाविति
२७७	८	....सूत्रकृतमित्यादी	....सूत्रकृतमित्यादि

पृष्ठ नं.	पंक्ति नं.	अशुद्धि	शुद्धि
२७७	१२	चारित्रं भवति एवं ।	चारित्रं भवति । एवं
२८०	८	पाकेनोत्वत्पन्न	पाकेनोत्पन्न
२८०	१४	सरस, मान	सरस, विरस, मान
२८१	१०	कस्माद्धेतो ?	कस्माद्धेतोः ?
२८१	१३	परकृताहारविषये	परकृताहारादिविषये
२८२	३०	कया जाता है ।	किया जाता है ।
२८३	१	बहिरूपाधि	बहिरुपाधि
२८३	२६	अपने कारणसे	निजरूप
२८४	३०	प्रकारकी प्रतीति	प्रकारकी अभेदसे प्रतीति
२८५	१०	मोह शब्देन	मोहशब्देन
२८८	१२	कारण	कारक
२९०	४	....कारणानीत्यादि कथनेन	....कारणानीत्यादिकथनेन
२९३	२२	किया है (स्वानुभव	किया है । (अर्थात् जो स्वानुभव
२९३	३०	वशुद्धात्मा	स्वशुद्धात्मा
२९६	१०	विपरीतभिनिवेशो	विपरीताभिनिवेशो
२९८	२६	[यिभत्तो]	[विभत्तो]
३०२	८-९	एकाश्चितचिन्मय एव भावो भावाः परे थे किल ये ते परेषां ।	एकश्चितश्चिन्मय एव भावो भावाः परे ये किल ते परेषां ।
३०३	३	पूर्वपक्ष	पूर्वपक्षे
३०४	४	जनितान् किं	जनितान् । किं
३०४	८	....लक्षणस्वभाव....	....लक्षणस्वस्वभाव....
३०६	१	बज्झिदुं	बज्झिदुं
३०६	३०	संसद्ध	संसिद्ध
३०७	६	चेतायितात्मा	चेतयितात्मा
३०८	३	अमयकुंभो ॥ २ ॥	अमयकुंभो दु ॥ २ ॥
३०९	५	श्रुतानुभूति-	....श्रुतनुभूत....
३११	१९	मुख्यत्वासे	मुख्यतासे
३१२	१५	वह सुवर्ण ही ।	वह सुवर्ण ही है ।
३१३	७	नोत्पद्यते	नोत्पाद्यते
३१७	३	वेदयति ॥ ३३६ ॥	वेदयति इति ॥ ३३६ ॥
३२१	२	क्षयिकज्ञानमपि	क्षायिकज्ञानमपि
३२२	२७	अभव्यत्वलक्षणवाला	भव्यत्वलक्षणवाला

पृष्ठ	पंक्ति नं.	अशुद्धि	शुद्धि
३२७	६	श्वेतमृत्तिका कुड्यादिकं	श्वेतमृत्तिका व्यवहारेण कुड्यादिकं
३२७	९	'जह सोडिया'	'जह सेडिया'
३३४	२७	(स्वाद्वाद है)।	(स्याद्वाद है)।
३३५	११	....नरके वा भुंक्ते....	नरके वा भुंक्ते। पर्यायार्थिकनयेन पुनस्तद्भवापेक्षया बालकाले कृतं यौवनादिपर्यायान्तरे भुंक्ते। अति संक्षेपेण अंतर्मुहुर्तानन्तरे च भुंक्ते।
३३६	२१	[णादव्वो]	[णादव्वो] ऐसा
३३७	३	अणारिहदो यदा	अणारिहदो तदा
३४१	४	गृह्लति	गृह्लाति
३४७	२	परमागमोक्त	परमागमोक्तं
३५०	३०	[तह्मि पुग्गलदव्वे]	[तह्मि पुग्गलदव्वे दु]
३५१	११	कथंभूतेषु ?	कथंभूतेपु तेषु ?
३५२	१९	सम्यग्दृष्टि के	सम्यग्दृष्टि को
३५४	३	संवोधघनार्थं	संवोधनार्थं
३५५	७	य अणण्णो	य तहा अणण्णो
३५६	१९	मनवचनकाव्यापाररूप	मनवचनकायव्यापाररूप
३६०	८	ज्ञानं ज्ञानरूपेण न	ज्ञानं ज्ञेयरूपेण न
३६१	४	निश्चयनयेनश्रद्धानकारकं	निश्चयनयेन श्रद्धानकारकं
३६१	१०	ततं।	गतं।
३६३	२	णाणदंसणचरित्रे	णाणदंसणचरित्ते
३६४	३	व्यवहारेणापि	व्यवहाररूपेणापि
३६४	५	पुनर्लोकव्यवहारेणापि	पुनर्लोकव्यवहाररूपेणापि
३६८	२	परिणमंदि	परिणमंति
३६८	११	अव, मिथ्याज्ञानमें परिणमन करनेवाला जीव ही इंद्रिय	अव मिथ्याज्ञानपरिणत ही जीव इंद्रिय
३६८	२९	[घाणविसयमागयं गघं	[घाणविसयमागयं गंधं]
३७०	७	एकेंद्रियकलेंद्रियादि....	एकेंद्रियविकलेंद्रियादि....
३७२	४	समागच्छति ?	समागच्छंति ?
३७२	८	समागतेषु न	समागतेषु रागद्वेषौ न
३७२	९	मनोज्ञामनोज्ञेंद्रिय-संकल्पवशेन	मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियसंकल्पवशेन

पृष्ठ नं.	पंक्ति नं.	अशुद्धि	शुद्धि
३७३	४	एवं तु पूर्वोक्तप्रकारेण	एवं तु एवं पूर्वोक्तप्रकारेण
३७७	३	षड्संयोगनैकभंगः।	षड्संयोगेनैकभंगः।
३७९	२५	हूँ ? मैं	हूँ ? कि मैं
३८०	४	चिदानंदैक	चिदानंदैक-
३८०	६	....समरसीभावनानुभव....	....समरसीभावानुभव....
३८०	१२	....परद्रव्यैश्चशून्यमपि	....परद्रव्यैश्च शून्यमपि
३८४	१३-१४	अचेतन है इसलिये	अचेतन है इसलिए गंध और ज्ञानमें भिन्नता है। रस ज्ञान नहीं है क्यों कि रस अचेतन है इसलिये
३८६	९	....बर्हिविषयमतिज्ञान-विकल्परहितत्वेन	बहिर्विषयमतिज्ञानश्रुतज्ञान-विकल्परहितत्वेन
३९२	८	आत्मनं	आत्मानं
३९५	१०	यतिनां	यतीनां
३९५	१३	अनुभूतसहित	स्वानुभूतिसहित
३९५	१५	मानता है)।	मानता है) ऐसा कहते हैं-
३९६	१	....यत्मकनिर्विकल्प....	....त्मकनिर्विकल्प....
३९६	१६	नहीं है !	नहीं है।
३९७	२	द्रव्यलिगं	द्रव्यलिंगं
३९९	१०	अत्थे ठाहि	अत्थे ठाहिदि
३९९	२६	[अत्थे ठाहि]	[अत्थे ठाहिदि]
४००	२	तत्वतो	तत्त्वतो
४०१	३	स्वसवेद्यात्म....	स्वसंवेद्यात्म....
४०१	४	द्वयंगमनुमानं	द्व्यंगमनुमानं
४०१	६	निर्विशति	निर्विशंति
४०३	२	×	अथ स्याद्वादाधिकारः।
४०४	२४	नान्यैषामा....	नान्येषामा....
४०५	६	ज्ञानमात्रस्य	ज्ञानमात्रभावस्य
४०६	१	परद्रव्यनिरालंबत्वेन	परद्रव्यनिरालंबनत्वेन
४०७	३	बुद्धि सिरेणुद्धरिओ	बुद्धिसिरेणुद्धरिओ

* इस ग्रंथमे जो गलतीयाँ हो गयी हैं, उसके लिये क्षमा किजीए। *

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

◉ दातारोंकी सूची ◉

रु. ४०००

श्री. अशोककुमार माणिकचंद कोठारी राशीनकर

रु. १००१

श्री. रायचंद गौतमचंद चंकेश्वरा
श्री. फुलचंद गंगाराम शहा (कोठारी)
पद्मश्री पंडिता सुमतिबाई शहा व सुश्री
विद्युलता शहा
सौ. जिवुबाई नानचंद गांधी, हैद्राबाद
श्रीमती ललिताबाई प्रकाशचंद मेहता, पंदारकर
श्रीमती जमनाबाई माणिकचंद शहा, आगरखेडकर
श्रीमती मनोरमाबाई जीवराज शहा, आगरखेडकर

रु. ५११

सौ. राजूबाई मोतीचंद गांधी
श्रीमती लक्ष्मीबाई कलगोंडा पाटील

रु. ५०१

श्रीमती केशरबाई नानचंद कोठाडिया
श्रीमती मैनाबाई मोतीचंद तारापूरकर
श्रीमती जिऊबाई जिवराज शहा
सौ. लीलाबाई हिरालाल गांधी
सौ. शशिकला माणिकलाल गांधी, मुंबई
श्रीमती रतनबाई वालचंद शहा, कुर्डुवाडीकर
सौ हिरुबाई छगनलाल दोशी, ढाकळकर
श्री. स्व. गुलाबचंद सखाराम गांधी
श्री. कस्तूरचंद जिवराज शहा
श्री. स्व. जंबूकुमार माणिकचंद शहा
श्री. हिरालाल कस्तूरचंद दोशी, चडचणकर

रु. ५०१

सौ. कमलबाई शंकरराव आहेरकर
श्री. मोतीचंद वालचंद शहा, जेऊरकर
सौ. माणिकबाई रावजी शहा, पिंपळनेरकर
स्व. माणिकचंद फुलचंद शहा, वाडीकर
श्री. हिराचंद नेमचंद मेहता, कळमणकर

रु. २५१

श्री. माणिकचंद कस्तूरचंद शहा
श्री. नेमचंद माणिकचंद पिंपळेकर
श्री. महेंद्रभाई शहा
सौ. प्रभावती रतनचंद शहा, बोराळकर
सौ. जयश्री जयकुमार भुमकर
सौ. बकुलाबाई विद्याचंद्र मेहता, पंदारकर
सौ. इंदुमती चंद्रनाथ वनकुद्रे
सौ. चंपाबाई हिराचंद गांधी
सौ. शोभा संगप्पा स्वामी
सौ. सरोजिनी महावीर कोठाडिया
सौ. चतुरबाई गुलाबचंद गांधी, कुर्डुवाडी
श्रीमति माणिकबाई रतनचंद शहा, वळसंगकर

रु. २०१

श्री. गुलाबचंद हिराचंद शहा, मैंदर्गीकर
श्री. फुलचंद वालचंद शहा, जेऊरकर
श्रीमती जमनाबाई रामचंद्र खंडाळकर
श्रीमती राजूबाई फुलचंद मेहता, अक्कलकोट
सौ. अनिता शिवलाल शहा

रु. १८१

सौ. शकुंतला धन्यकुमार रोकडे

रु. १७१

स्व. सौ. गजराबाई आमीचंद गांधी
सौ. सुनंदाबाई रतिलाल गांधी
श्री. रतिलाल आमीचंद गांधी

रु. १५१

सौ. शशिकला अभयकुमार कोठाडिया
सौ. सुनिता गजकुमार कोठाडिया
सौ. केशरबाई माणिकचंद शहा करकंबकर
सौ. लिलावती गुलाबचंद शहा
सौ. मिनाक्षी सुभाष शहा, मैंदर्गीकर
कु. मयुरा मोतीचंद शहा
श्रीमती वनमाला विजयकुमार निंबर्गीकर

रु. १११

श्री. कांतीलाल आमीचंद गांधी
सौ. अनंतमती मोतीलाल वाडीकर

रु. १०१

श्रीमती जमनाबाई नानचंद गांधी
श्रीमती प्रभावती सुभाष शहा, इंडीकर
श्रीमती चतुरबाई मनोरंजन कोठारी
श्रीमती फुलुबाई माणिकचंद करकंबकर
श्रीमती राजूबाई हिराचंद शहा, फलटणकर
श्रीमती राजूबाई शिवलाल वडाळेकर
सौ. सरोजिनी गजकुमार शहा
सौ. सुचिता राजकुमार शहा, वाळूजकर
सौ. रत्नप्रभा चंदुलाल शहा
सौ कुसुमबाई शांतीकुमार शहा
सौ. वीरमती सुरेश मेहता, अक्कलकोट
सौ. शीतल माणिकचंद वाडीकर
सौ. प्रमिला वसंत मोहरे, बेळगाव
सौ. इंदुमती चंदुलाल कटके
सौ. पद्मावती धरणेंद्र सास्तुरे
सौ. शांताबाई शंकरराव गौडराय
सौ. विजया विद्याचंद्र चंकेश्वरा

रु. १०१

सौ. डॉ. कालिंदी अमृत गांधी
सौ. आश्विनी अरविंद शहा
सौ. लीलावती वालचंद शहा, पापरीकर
सौ. मैनादेवी चंपालाल काले
सौ. इंदुबाई धन्यकुमार सावळेश्वरकर
सौ. लीलावती मोतीचंद बोराळकर
सौ. कुसुमबाई बापूसाहेब गरगट्टे, बेळगांव
सौ. मनोरमा मोतीचंद वाळूजकर
श्रीमति अनुसयाबाई घोडके
सौ. मधुमालती अभयकुमार रणदिवे
सौ. शांताबाई पार्श्वनाथ शेटे
सौ. माधुरी दीपक वर्णे
श्रीमति केशरबाई शंकरराव कटके
सौ. सुलोचना राजकुमार आळंदकर
श्रीमति चंचलाबाई बापूचंद गांधी, निमगांव
सौ. प्रभावती रतनचंद शहा, वाडीकर
श्री जैन महिला विकास मंडळ
श्री. जिवराज हिराचंद शहा, जवळगीकर
श्री. कस्तूरचंद नेमचंद मेहता
श्री. सुभाष मोतीचंद पटवा
श्री. पोपटलाल माणिकचंद शहा शिंदेवाडी
श्री. शांतीनाथ विश्वनाथ क्षीरसागर
श्री. रमेशभाई एम्. गांधी
श्री. रमणिकभाई हंसराज देसाई
श्री. मलूकचंद खुशालचंद गांधी
श्री. राजेंद्रकुमार लक्ष्मीचंद जैन
श्री. मोहनलाल जिवराज दोशी
श्री. रतिलाल रावजी शहा, दहिटणेकर
सौ. अलका अरविंद मोहोळकर
श्री. जयकुमार जिनदास मोहरे
श्री. जगन्नाथ बाळकृष्ण कंदले
श्री. जयकुमार माणिकचंद शहा, मोहोळकर
श्री. हिम्मतलाल छगनलाल गांधी

रु. १०१

श्री. शांतीलाल माणिकचंद वाडीकर

रु. ५१

श्री. रतिलाल नानचंद गांधी
श्री. मोहनलाल रावजी शहा
श्री. फुलचंद उगरचंद शहा, वळसंग
श्री. नाभीराज आदिनाथ नारकर
सौ. कमलवाई चंदुलाल शहा
सौ. शुभदा अरुण व्होरा
सौ. ज्योती प्रकाशचंद गांधी
सौ. प्रभावती भारत हुरडे
श्रीमती गुंडकर
सौ. शारदावाई चंद्रप्रभू अन्नदाते
इंदूमती माणिकराव एडके
सौ. सुरेखा राजकुमार शहा, वाडीकर
सौ. शशिकला शांतीकुमार शहा, वाडीकर
स्व. सौ. फुलुवाई माणिकचंद शहा, वाडीकर
सौ. लीला वालचंद शहा
श्री. रत्नपाल कळसकर

रु. ५१

श्री. हिरालाल ताराचंद व्होरा, पुणे
सौ. गुणमाला पोपट शहा, शिंदेवाडी

रु. ३१

श्री. चंद्रकांत प्रेमचंद गांधी

रु. २५

श्री. माणिकचंद मोतीचंद शहा अगरखेडकर
श्री. विद्याधर बन्सीलाल कांभोज
डॉ. विजया जवाहरलाल दोशी

रु. २१

श्रीमति राजूवाई कोठारी
डॉ. विद्युल्लता मोतीलाल वाळूजकर
सौ. सुमन चंद्रनाथ होनपेरी

रु. १५

श्रीमती कस्तुरवाई मोतीचंद मैंदर्गीकर

रु. ११

सौ. अरुणा प्रदीप शहा

